मुग्धवीधं व्यॉकरंगंम्

महामहोपाध्यायेन श्रीमता वोपदेव-परिहतेन

विरचितम्

योमद्भि र्दुर्गोदास राम-गङ्गाधर-तंर्कवागीशै:

प्रणीताभ्यो विद्वतिभ्यः सारमाकलय्य पाणिन्यादिस्त्रसाम्यमभिग्नदृश्ये च ८ ।

संस्कृतविद्यालयाश्रापक परिक

स्रीगिरिशचन्द्र-विद्यारलेन'

हतीयं संस्तरणम

कलिकाता

गिरिय-विद्यारत-वर्त्तान चतुर्वियति-सङ्गाब-स्वान गिरिय-विद्यारत-यन्त्रे शीयसिम्बय भटावार्येण सुद्रित

१८८१

প্রথম সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

এতদেশে যে যে ছলে সংস্কৃত ভাষা শিক্ষার রীতি আছে তাহার অধিকাংশেই, অন্নারাসে ও অন্ন ধিবনে বৃৎপাদক বলিয়া, মুদ্ধবোধ ব্যাকরণ পাঠনার প্রচলন দেখা যায়। তনিমিত্ত এই ব্যাকরণ অনেকপ্রকার আকারে অনেকবার মৃদ্রিত হইয়াছে। কিন্তু ঐ সকল মৃদ্রিত প্রত্যাকরণ অধিকাংশই অম-প্রমাদে পরিকলিত। তন্তিবন্ধন অধ্যাপক ও অধ্যত্পণের পাঠনা ও পঠন কার্য্যের অত্যন্ত অস্থিধা জন্মে, এবং অনেক বালকই অভন্ধ ও অসংলগ্ন পুত্তক অস্থালনবশতঃ প্রায়ই প্রকৃত বৃৎপত্তি লাভ কুরিতে সমর্থ হয় না। আমি ঐ অস্থিধা ও অনিষ্ঠ নিবারণের বাসনায় এই শ্বন্তক মৃদ্রিত করিলাম।

শীন্ত বাবু ভাষাচবণ দরকার মহাশার, ইতিপুর্পে মুগ্ধবোধ ব্যাকরণ সজ্জিপ্ত টীকার সহিত বাঙ্গালা অক্ষরে মুল্তিক করিতে আবন্ত করিয়ছিলেন, দক্ষ্যার এবং শব্দেরও কিয়দংশ প্রাক্তরণের টাকা-দক্ষলেন প্রথ ব্যবহাদর্শানি এন্থ প্রথমনে ব্যন্ততা প্রমুক্ত দম্যাতাবে ব্যাকরণের টীকা-দক্ষলেন সমর্থ না হইয়া, নিল প্রণালীতে তাহা প্রস্তুত করিতে, এই অভিদন্ধিপ্রকিক, আমাকে ভার দেন, যে দম্যে দম্যে উভয়ে এক প্রিত হইয়া মংসংগৃহীত টীকা পুন্দৃষ্টি করত মুদ্যাকনার্থে প্রস্তুত করিব। কিন্তুতাহা করিতেও তিনি সময় না পাইয়া আমার প্রতিই দম্পূর্ণ ভারার্পণ করেন। তদম্সারে আমি ঐ প্রণালীমতে ছুগানাল, রাম ও গঙ্গান্ব তর্করাগীশের টীকা হইতে সার সংগ্রপ্রকিক সম্দ্র গ্রন্থ মুদ্তিত করিলাম। সংশোধন ও স্থাবোধ বিষয়ে যথায়াগার যাজ ও পরিশ্রম করিয়াছি।

অধ্যাপক ও ছাক্র-বর্গের বিশেষ স্থবিধার উদ্দেশে, প্রত্যেক স্ক্রের নিম্নভাগে পদচ্ছেদপূর্বক বিভাক্ত-নির্দেশ কবিয়াছি। ১া২ ইত্যাদি অঙ্ক, প্রথমা দ্বিতীয়াদি বিভক্তির জ্ঞাপক,
এবং ।, ॥, ॥, এই চিহুগুলি, একবচন, দ্বিচন ও বছবচনের স্চক। আর কোন কোন
স্থলে ১া২ ইত্যাদি অংশব পশ্চাৎভাগে (1) এক দাঁড়ি চিহু দিয়া লুপু বিভক্তির সঙ্কেত
করা হইয়াছে। মূল প্রস্থে সমস্ত স্ত্রের আদি ভাগে একাদিক্রমে আরু বিন্যান করিয়া,
টাকার মধ্যে পদসাধন-স্থলে ঐ সকল অংকর উল্লেখ করিয়াছি, ভাহাতে পদসাধনের
উপ্যোগী সম্প্রস্ত্রি আনায়ানেই নিকাশিত হইতে পারিবে। এই প্রণাণীতে সন্ধি,
শক্ষ, তিগুও ও কুদ্যেব সমস্ত পদই প্রায় মাধিত হইয়াছে।

গ্রন্থকার এই ব্যাকবণে দশটী অধ্যায় এবং প্রত্যেক অধ্যায়ে চারি চারি পাদ নির্দেশ করিয়াছেন; ঐ দশ অধ্যায় ও চল্লিশটা পাদ যে যে পৃষ্ঠে মৃত্রিত হইয়াছে, ঐ ঐ পৃষ্ঠের অধ বিন্যাসপূর্বেক একটা নির্ঘট-পত্র আদিভাগে বেজিত হইল। এবং এই গ্রন্থে যতগুলি সংজ্ঞা, শব্দ, ধাতু, সমাসাত্ত, স্থী-প্রত্যায়, তদ্ধিত-প্রত্যায় এবং কং-প্রত্যায় নির্দিপ্ত ইইয়াছে ঐ সমত্তই, অকাষ্যাদি বর্ণজ্ঞানে স্থটী করিয়া, এই পৃত্তকের যে যে পৃষ্ঠে বা যে যে স্ক্রেই সকল বিষয় নির্দিপ্ত আছে, ঐ সূচী সকলে তাহার অধ বিন্যাসপূর্বেক, শেষ ভাগে সংযোজিত হইল। যে কোন ব্যক্তির এই ব্যাকরণের যে কোন বিষয় জ্ঞানিবার প্রয়োজন হইবে, তিনি ঐ সূচী দৃষ্টে তংক্ষণাৎ তাহা অক্লেশেই নিষ্ণাশিত করিতে পাবিবেন।

এই গ্ৰন্থ মূজিত করিতে যেরূপ বায় হইয়াছে, ন্নেকরেও চানি টাকা মূল্য করিলেও চাহার অক্রপ হয় না, কিন্তু চাহা হইলে পাঠকবণের, বিশেষতঃ বালকদিগের, ক্রয় করিতে কট হইতে পাবে, এই বিবেচনায়, বিন্দুমাত্র অর্থকাতাংশ পরিত্যাগ করিয়া, ইহার মূল্য ২॥। আড়াই টাকা ছুরে করিলাম। এক্সনে অধ্যাপক মহাশ্যদিগের নিকট প্রার্থনা—

এই পুস্তকে যে সকল দোৰ দৃষ্ট হইবে, অথবা কোন বিষয়ের ন্নেডা বা আধিক্য অমুভূত হুইবে, অমুগ্রহ করিয়া ঐ ফ্রটি সংশোধনপুর্লক অব্যয়ন কবাইবেন। এবং আমার প্রতি বিশেষ অমুগ্রহ ক্রিয়া ঐ ফ্রটি আমাকে জানাইবেন; তাহা হুইলে, যদি কথন এই পুস্তক পুন্ম ক্রিত ক্রিতে হয়, ঐ ফ্রটি আর ঘটতে পারিবে না। ইতি

জ্যানুয়ারি, ১৮৭১ প্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ন শংশ্বত কলেজ, কলিকাতা।

দ্বিতীয় সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

প্রায় মাদশ বংলবের পর মুগ্ধনোধ পুন্ম জিত হইল। গতবার মুলাকর প্রমাদবশতঃ যে মুই একটা অম ঘটিয়াছিল, দেওলি এবার সংশোধন কবা গেল। অধিকস্ত এবারে সামা-প্রদর্শনার্থ প্রায় প্রত্যেক স্ত্রের টাকায় পাণিনি ব্যাকবণেব স্ত্রের অধ্যায়, পাদ ও সংব্যা লিখিত হইল। এবং শেষভাগে বোপদেব-সম্মত একটা লিখানুশানন ও কতকগুলি উপাদি-প্রত্যায় সন্ধিবেশিত হইল; আরি স্ত্র, আগম, আদেশ ও ধার্ব্যব স্থ্যায় সূচী ক্যেকটাও সংযোজিত হইল। ইতি

১লা নবেম্বর, ১৮৮২ শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ব সংস্কৃত কলেজ, কলিকাতা।

তৃতীয় সংস্করণের বিজ্ঞাপন।

শ্রেষ নাম বংশবের পর মুগ্রনোধের তৃতীর সংক্ষরণ মুক্তিত হইল। এবারে পুত্তকের অবমার কিছু সন্ধিত হইয়াছে। পুথরবাবে প্র ও বৃত্তিওলি কুজাকরে মুক্তিত হইয়াছিল, পাঠের
স্ববিধার্থ এবার ঐগুলি ওদপেকা বৃহৎ অক্ষরে মুক্তিত হইয়াছে। আর পুর্বারে কেবল
পাশিন ও কাত্যায়নের সুরপ্তলি টাকায় দশিত হইয়াছিল; এবার প্রয়োজনমতে মহাভারা,
নিদ্ধান্তকৌমুণী, স্পান, কনাগে ও সংক্রিয়াবের সূত্র বা তত্তমত লিখিত হইয়াছে। বে বে
স্থানে বোপদেবের মতের সহিত পাশিভাদির অনৈক; বা মতাপ্তর আছে, তথায় তাহাদিগের সেই
ভিন্ন মত লিখিয়া দেওখা গিখাছে। এবার শন্ত থাত্র গণগুলি প্রয় সম্পূর্ণরূপে
নিবেশিত ইইয়াছে। কলতঃ ব্যাকবণবানির অল্রেনিক সম্পাদনে বিশেষ মই করা গিয়াছে।
শারীরিক অনুস্থতাবশতঃ স্থাং নন্ধানা হওয়ায় এই তৃতীয় সংক্রণ মুক্তিত করিবার ভাব
আমার ক্রেষ্ঠ পুত্র কলিকাতা প্রসিডেগী কলেজের সহকাবী সংক্রণাণ্যক শীমান হরিকল
ক্রিরেপ্র উপর অর্পিত হয়। তিনি ব্যাশান্ত পরিশ্রম করিয়া এই কোয় সম্পন্ন করিয়া
ছেন। ইতি

১লা অক্টোবর, ১৮৯১

শ্রীগিরিশচন্দ্র বিদ্যারত্ন।

'निर्घग्टः।

	प्रषादः ।	
मङ्गलाचरणम्	•१-३	
वाद्यन्ताधिकार:	8-२८ ७	
१मः । सन्ध्यध्यायः	8-३€	Ę
१म पादःसंजा	8-65	(
२य पादः — भच्मस्थिः	१३-२४	
२ य पाद: इस्-सन्धिः	२४-३१	
४र्थ पाद.—वि-सन् थि :	३२ ३६	
२य:। श्रजन्ताध्याय:	₹9-८€	
१म पाद: – संज्ञा	₹ <i>9-</i> 88	e
२य पाद: — प जन्तपुंलिङका	द: ४५-७२	
३य पाद:भजन्तस् बीलिङ्ग	भन्द.७३-८०	•
४ र्थपादः — श्रजन्त क्षीत्रलिङ्ग	शब्द;⊏१-⊏६	
३यः । इसन्ताध्यायः	- ,	
१म पाद: — इसन्तपृंतिङ्गग्रब्द	: 50.850	5
२य पाद:हमनस्वौतिङ्गश	व्द:१२०-१२३	
३यपाद: — इसन्तक्षीवलिङ्गभ	ब्द:१२३-१२६	
३र्थ पाद:— मत्ययश्रन्द:	१२०-१२८	
र्षः। स्याचन्ताध्यायः १	३५-२८७	1
१म पाद — स्त्रोत्य:	१३५-१५६	
२ गपादः — कारक म् (क)	१४६ १८०	
३य पाद. — समानः (स)	०६६-१3१	`
द न्द-समासः (च)	१९४-१९६	
वहुत्रीहि-समासः (इ)	085-638	
कर्माघारय-समान: (य)	<i>२११</i> .२१ <i>७</i>	
तत्पुरुष-समामः (प)	285-550	
दिगु-सम[सः (ग)	२२१-२२१	8
· भव्ययीभाव-समासः (व)	258-550	
षट् समासाः	6 \$ 5-5 \$	
धर्थपाद:—तज्ञित: (त)	\$\$C-\$C0	
ाद्यन्ताधिकार्:२	दद-५्६द	
५मः। स्वाद्यध्यायः २		
१म पादसंज्ञा	२८६-२६२	;
	, ,,,,,	

प्रशादाः । २य पाद: -- पवत् 3 6 6 - 8 3 6 ३य पाद: -- मवत् 385-355 ४थं पाद:--सिम्र: ₹५०-३€• ष्ठः।१म-चतुर्गणाध्याय:३६१-४०४ १म पाद: -- भदादि: ३६१-३५२ ह्वादि: **♥**⊏₹-३⊏**८** ै श्य पादः--दिवादिः ३८८ ३८५ • ३य पाद:-स्वादि: २८५-३८८ ४र्थ पाद: --- तृदादि: 8 08-23 € मः।२य-चतुर्गणाध्यायः ४०४-४१४ १म पाद:-- कथादि: 808.80€ २य पाद: -- तनादि: 80€.80 € ३य पाद: — क्रग्रादि: 598.308 धर्ष पाँद.—चुरादि: म:।३य-चतुर्गणाध्याय:४१४ ४५२ १म पाद:-- आन्तुः 88-878 २व पाट: — सननः ४२५-४३३ ३य पाद:--यङन्तः 358-858 यङ्जुगन्तः ४३६-४४२ ४ यं पाद: — लिघु: ४४३-४५२ ८म:। त्याद्यन्ताध्याय:४५३-४८० १म पाद:---पं ४५३-४५४ २य पाद: -- मं • 68 8 8 · 8 • • ३य पाद: -- ढभावं 308-908 **%र्थपाद: — ति:** 850-8€0 ॰ मः। सदन्ताध्यायः ४८१-५६⊏ १म पाद: -- ल्य: ४८१-५०२ २य पाद: -- तृनादि: • ५०३-५२३ **३ य पाद: — क्ता**दि: प्रह प्रह ४ थे पाट:--- इण्यादि: परिशिष्ट-पचस ५६८-५०५ सूचीपत्राणि े५०६-६१८

मुग्धबोध-पठन-प्रयोजनम् ।

गीर्वाणवाणीवदनं मुकुन्द-सङ्कीर्त्तनचित्युभयं हि लोके । सुदुर्लभं तच न मृग्धबोधा-न्न लभ्यतेऽतः पठनीयमेतत् ॥

यन्यक्तत्-परिचयः ।

विद्वतिखरच्छात्रो भिषक्षेग्रवनन्दनः। वापदेवस्रकारेदं विप्रो वेदपदास्पदम्॥

वीपदेव प्रशंसा।

द्यौर्वाचस्पतिनेव, पत्रगपुरी श्रेषाहिनेवाभवत् येनेकेन विदुषाती वसुमती मुख्येन सङ्घावताम्। स्रोऽयं व्याकरणार्णवैकतरणि-यातुर्व्यविन्तामणि-जीयात् कोविदगर्व्यपर्वेतपविः श्रीवीपदेवः कविः॥

संशोधनी प्रवर्द्धनी च।

પૃષ્ઠે	पङ्कौ	પ શુર્સ	गुडं
ŧ	٠ ۶	निग्वकाश्यक:∦	निग्यकाण्यक:॥ (११५, सू)
₹₹	₹ ₹	''वाससाने'' ●	''वावसाने''
. ۶۲	39	सुटप्रत्याद्वाग्स्वीकारेण 🤰	सुट्पत्याहारस्य
		न पृथक् संज्ञालता 🥈	सर्वनामस्थानसंज्ञा
		•	क्रता (१।१।४३) ।
٩c	२२।२३	थ। १।२० सूत्रे 🚶	
		द्रष्टव्यम् । 🔰 🔭	1 581818
8 0	3	*	.
8 •	२०	१।१।२४-३६	₹18138-3€
४२	१०	द त्ती	इंसी
80	ર	षु:	8.
4 0	?	स्थः	स्थे:
8.3	१३	918100	01810=
१२०	₹8	प्रसिद्धः ।	प्रसिद्धः। इति इकारानाः।
682	१	सीऽक्तवी	तो ऽभी वी
१५६	63	नपुंसक किति	नपुंसकमिति
१५६	6 =	भा त्पान्त	धात्पाच •
२३३	१	भूम: ।	भूमी: ।
२६५	8	गुचा हे छयम् ।	गुणादे छेयस् ।
139	११	घू: ।	षु:।
१३६	१६	पाणिनि: १।१।४५।	पाचिनिः १।१।४५,६।१।१०८ ।
. २६७	হ্ ৪	१८, १६, २२, २३, २४।	१८, ११, २२, २३, ९४, २३।
₹०२	.0	(१ <i>०७७</i> ,	(१० ७ ₹,
११२	२२	खम	स्त्र न
\$00	3	खुपाजेऽन्नाजे	स्युपाजेऽन्वाजे •
४२१	¥	E 8 1	1830
प्र१€	•	भनडुक्के त	षगड् क्वेत
५२२	१६	⁰ सिज्ञम्।	सिदम्। ''वहेर्धीवा ''इतिकातनाः
५६१	१ •	तादय	तादधौ
प्रथ	२।३०	विन्ती वा	विन्दी वा



मुग्धवीधं व्याकरणम्।



मङ्गलाचर्राम्।

मुकुन्दं सिचदान न्दं प्रणिपत्य प्रणीयते। मुग्धनोधं व्याकरणं परीपक्षतये मया॥

१। ऋीं नमः शिवाय 🚉

(भी ११), नम: ११।, शिवाय ४।) ।

द्रति नमस्तारस्त्रम्।

[ा] नया वीपदेवेन सिंबरानस्टं —संयासी विश्वासावानन्दस्वि — नित्यज्ञानसुख-स्वरं, सक्तन्दं —सुकुम् सुर्क्तं ददातीति —सुक्तिदावारं विश्वितिलयः । "सुकुमस्ययमानस्य निर्वासमीचवाचकम्। यसद्दाति भक्तेश्यो सुकुन्दस्वेन कीर्तितः"॥ इति वश्ववैद्यंत्रपुराषम् । प्रिषयल प्रकर्षेष भिक्तयद्वातिषयेन नला, सुन्धभीधं माम सुन्दरसेधजनकम् भल्यवृद्धिने विषयः, त्याकरणं — त्याक्रियन्ते त्युत्युद्धिने साध्यस्टाः भनिति यद्व्युत्यादक्यास्तं, परीपक्ततये परिवां पाठकानासुपकाराय, श्रेष्ठोपकाराय वा, प्रयोगते प्रकर्षेष भीयते विस्तिहतं क्रियते इत्यर्थः।

[†] विषयाहरू या प्रमम्बाल भाषाति । शिवाय नियुषातौताय बद्धाणे घों नमः, "प्रमाण्डी पदे निस्तैयुर्ण्य शिवाय नमी नमः" इति प्रमाणम् । घों शब्दप्रयोगेणापि मङ्गलं स्चितं, — तथाच घोडारयायशब्दय दावेतौ बद्धाणः पुरा । कर्ण्यं भिष्का विनियां तौ तेन माङ्गलिकावुभी इति । घयशा शिवाय क्षिटिति यन्यसमाप्तिकपमङ्गलाय घों नमः इरिड्रबद्धाकिपणे नमः, तथाच — घकारी विणुद्दिष्ट छकारसु महेघरः । मकारिणो चिते बद्धा प्रचर्वन वयी सताः॥ इति ।

[‡] इति, "घों नमः शिवाय" एतत् वाकां, नमस्तारस्य सूर्वं नूचकं — सूत्रयति ऋषेँ प्रत्याययतौति सूत्रम्॥ तथाच —

खत्याचर मसन्दिग्धं सारवत् विश्वतीमस्तमः । श्रक्षीम-मनवद्यस्य सूत्रं स्वविदी विद्: ॥ इति ।

स्त्याधरं — इस्रदीर्घगणहिद्याच्दानां स्वर्धपतिक्षेण मंज्ञाकरणेन, उटीऽन् ई-कसंगोलादि (१।२१४) पाणिनिम्त्राणाम् उटीऽन् हें हें (८००) इत्याटि संचेपकरणेन च स्त्याधरत्नमें तद्ययस्य म्वाणाम् । चन्निस्यां — भूस्यापिवर्दनी जुक् पे (५५२) इत्यत्र पाधातुस्थाने पिवनिर्देशात् रचनार्थक जीधनार्थक यीने सन्देष्टः । सारवत — निष्कृष्टार्थ-युक्तम् । विश्वतीसुर्वः — गुणविस्तृत्वयोः (५४२,५००) चृत्येषाच्च वषुषु प्रवित्तः । चन्नीभं — निर्थक श्रव्यक्तितम् । चनवद्यं — च्यालवादिद्रोधग्रत्यम् चनभिप्रति चित्रिनिवर्षक स्व । तद्य पष्टिधम् —

> संज्ञाच परिभाषाच विधिनियम् एव च। चित्रदेशीऽधिकारस षड्यं स्वलचणम्॥ इति।

स्यवद्वारार्थे प्रास्त्र कृतः संद्रोतः संज्ञाः। यत्र्यस्य सङ्कोपनिक्वीहार्थे सदितिविधेयः परिभाषा। अपाप्तप्रापको विधिः, स च दिविधः—वर्षौत्य।दनरूपः अभावरूपयः अभावरूपयः अभावरूपयः अभावर्षेद्रि दिविधः—नाभी निविध्यः। सामान्यप्राप्तस्य विश्रेषावधारणं नियमः। अन्यसम्बद्धः अन्यवारीपणमतिदेशः। पूजेम्बस्थपदस्य परमुचेश्वपस्थितरिधकारः, स तु विविधः—सिंहावलीकिताच्य्रय मन्द्रकस्तृतिदेव च।

गङ्गासीत इव ख्याता चिषकारास्त्रयी मताः। चाकाङ्गायान् सर्वेषामनुकृतिः परेभवेत्॥ इति ।

कस्यापि श्रन्यस्य कतिपयस्वपर्धनमनुवित्तः सिंडावलोकिताच्या, एतदपेचया पित्रसंख्यक्म्वानुवित्तः गङ्गास्रीतः। यया, (३६) इस्यच दासी इत्यस्य पादश्यन् पर्यम्ममनुवत्तिः सिंडावलोकिताच्या, (६८) इत्यादौ मस्युक्तमृतिः, (६५) इत्यच विरित्यस्य

गंद्रास्तीत:।
स्वलच्यां तद्वेदांघ निर्दृश्य मस्प्रति स्वे वर्णनीयविषयानुपत्यस्रति --कार्यों कार्या निर्कत्तव विभि: स्वमुदाष्ट्रतम्।
कदाचित् कार्यिकार्यास्यां किचित् कार्यनिमित्ततः॥
यस्य निर्दृश्यते कार्यं म कार्यों गरितो बुगः।
कियते{यम् तत् कार्यं-मादेगप्रत्यागमम्।

यस्राज्यरं, परे यक्षिन्, तिर्ज्ञामभं दिशा मतम् ॥ यथा (११५) अरम् अरावि तु इति स्वे अराग्रस्टः कार्थीं, अरम् कार्यम्, भवीति निमित्तम् ।

े चन्वज्ञ, स्वविषयक-विश्वेषमियमाः — विहरक्षविषिश्वः स्थादसरक्षविषिवंकौ । प्रथयात्रिकार्यन्तु वहिरकसुद्दाष्ठतम् ।

२। शंशब्दैः।

(मं।१।, म्बद्दे: २॥)।

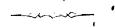
शब्दैर्भक्षतं स्थात्। इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः। *

प्रकृत्यायितकाय्ये स्वाद्तरक्षानिति भुवम् ।—(भ्रषा ७०२ मुवे ददरिद्र इत्यादौ)।
प्रकृतीः पूर्वपूर्वे स्वाद्तरक्षतरं तथा॥
सावकाश्विधिभ्यः स्वाः वली निरयकाशकः।
कस्विद्विद्वकार्यस्य प्रयमं पहतल्या ।
सभवत् विषयो यस्य स विधिः स्वावकाशकः॥
श्वादो हि विषयो यस्य परती न हि सभवत्।
स पश्चितगणेकका विधिनिर्वकाशकः॥
तथा—सामान्यस्य विश्वेषस्य स्वाहिशेषविधिभवत्।
सन्दा विषया यस्य स सामान्यविधिभवत्।
सन्दा स्वाहिषयो यस्य स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वयः स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य विश्वयः स विश्वविधिभवत्।
सामान्यस्य से सामान्यविधिभवत्।
सामान्यस्य से स्वाहिष्यस्य च ।
तथीयं उपघाती सः प्रकृतेः परिकौत्तिः॥
सक्तिभो विधिन्यः स्वाद्वली लोपविधिन्तवा ।
लोपस्रादेश्योसु स्वरादेशविधिवंती॥ इति ।

म प्रयोजनाभिध्यसम्बन्धाना प्रवर्तने इलं स्वादिति । प्रत्येदे मङ्गलसृचितं स्वादिल्ययंः, प्रव्देख्यादकशास्त्रारक्षे प्रव्देदेव मङ्गलं कर्त्तव्यमिति न्यायात् । स्वाक्तरचव्युक्तप्रव्दज्ञानाधीनं प्रास्तान्तरज्ञानं, तदधीना च वैदिक्तिया, तरफलं स्वादि, चतएव
प्रव्देश्वलम् । इति प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाः— इतिप्रस्टाव्ययत्वेन प्रयोजनपचे सम्बन्धपचे च त्रतीयान्त्रसम्, भभिधेयपचे प्रथमान्त्वं वेश्व्यं, तेन 'इति' एभिः प्रवृद्धांकरपस्य
प्रयोजनं — मङ्गलकपम्, 'इति' इमे प्रव्दाः व्याकरणस्यभिधेयाः — वाच्याः, 'इति' एभिः
प्रव्देः सङ्ग व्याकरणस्य सम्बन्धः व्यात्याय्वात्यादकभावः इत्यर्थः ।

स्याद्यन्ताधिकारः। *

१म:। सन्ध्यधार्य:। 🕆



१म पादः—संज्ञा । 🕸

३। ऋइ उच्हलुका, ए चो ङ, ऐ चौ च,— इयवर ल, जणन ङ म, आढ घघ भ, जड दगहा, खफ ऋ ठथ, चटत का प, शष साद्यन्ताख्या:। §

(श—स ।१॥, भावनाख्याः १०)।

एषां मध्ये ये वर्णास्ते पादिवर्णान्तवर्णसमाहारसंत्राः स्युः। श

एकार्थाविकिन्नाध्यायसमृहः श्रिकारः।

⁺ एकार्थाविकित्रपादसमूदः अध्यायः।

[🛨] एतायोविष्ठित्रम्यसमूहः पार्दः।

[§] चादिना संदितोऽनाः चादानाः स एव चाख्या येषां ते ।

बा एवा मध्ये इति मध्यश्रद्धीः धिकरणवानी, तेन अन मूने ये वर्षांसी चादि-वर्णान्तवर्णीर्यां समाद्वारी सेलनं स एव संज्ञा येवां ताह्याः — मध्यवर्णसिहतादि-वर्णान्तवर्णामिलिता चक्-चादिसंज्ञकाः स्थः, यथा — चक, चन, चन, चन, चन। इत, इ.ज., इत्त, इत्त। स्टका। एङ, एच, एइ। ऐन। इत, इत, इत। यत्त, यम, यप। वस। इतम, अप, अस। चङ, यम, यप। अस, अन, अप, अस। दस। जन। ख्व, खप, खर। इत। चक, चप। यस।—(४०)। पाचिनिः — धिवम्बाचि, १।१।९१ च।

४। इत् सते।

(इ.स् ।१।, कृति ।४।)।

कसीचित् कार्यायीचार्यमाणी वर्ण इसंज्ञः स्यात् । तस्य कार्ये . अनुचारः । यथा अचि क-ुङ-चाः संज्ञार्याः । इसे अकार-ज्ञारणार्थः । अ

प्र। चावत् खर्वम्।

(भा।शा, वत्।शा, स्त्र-घं सु।शा)।

श्र श्रा श्र इति वर्णनयं क्रमेण ख-र्घ-प्रु-संज्ञंस्थात्। वत्श्रव्हात् इ. इ. इ. द्वयादिषु च । 🕆 स्व एज् नास्ति'। 🕸

६। अपोऽक् समोर्ण ऋक् च।,

(ञप: १।, चक् ।१।, सम: १।, र्थ: १।, ऋक् ।१।, च ।१।) ।

^{*} क्रते इति एकारासमन्ययं, क्रते कार्याय इत्। एति गच्छतीति इत्, कार्यकाले न तिष्ठतीति यावत्। द्वष्टानभाइ यथा—चित्र चम्रत्याहारमध्ये क-ड-पाँ: संज्ञायाः संज्ञैत षये: प्रयोजनं येषां ते। एवं इसे बकार खबारणायं:, खबारणमेव चयं: प्रयोजनं यथ सः, हसवर्षे बकारस्य प्रयोजनान्तरं नासि। एतेन उंचारणार्थोऽपि वर्षः इत्। पाणिनिः १।२।२-२।

^{ां} भय त्राय त्रय दित समाहारे या, विदित दर्गाधाँ त्रयय व्याद्धः, तत्रय त्रा स्वधं मुन्सं स्थात्, भावत् भन्धोऽपि स्वधं मुसंद्याः स्थादिव्यथः। तेन यथा प त्रा भ, तथा द दंद्र, उ ऊ उ, स्ट ऋ ऋ, ल ऋ ल च। संसेपक्षता यन्यकारेण ऋखदीषं मृत्यव्येथः संविष्य स्वधं मुतंत्र काता, एवं सर्व्यः। एकमानी भवेत् ऋखी, दिमानी दीर्षं उच्यते। विमानस्तु मृतो ज्ञेथी, व्यञ्जनधादं मानकम् ॥ कालेन यावता पाणिः पर्योति नातुमच्छले। स माना कविभिजीये खुक्त खामरविदिभिः। दूराह्वाने च गाने भ रोदने च मृतो सतः॥ पृथिनिः शरार्थः।

[ः] स्व एज् नासीति न स्वं,चा वदिति स्वस्य व्याख्यासर्गतमेव। चलाया 'स्व एज् न' इत्येव वर्षस्यम् । एच् क्रस्तसंधी न भवति, किस्तु दीर्घसंतः सुतसंत्रस्य भवतीत्यर्थः।

समानी जपीऽक् च परस्परं गीसंद्रः स्वात्, ऋक च । अ साम्यन्वेत्रस्थान्वम । 🌵

त्रवयम् एइ 🕸 व ख ग घ ङा: वाएठाः। दन्यं च छ ज भा अ या ए ऐ या स्तालव्याः। ऋनयं ठठ ड ढ ण र वा सूर्डन्याः। खनयंत यद धन लसां वो दन्साः। उत्रयंप फ ब भ म वा श्री श्री श्रीष्ठराः। ६ णवां मध्ये यो येन समः स तस्य तच ततः ।श

^{*} अप: चक इति पृथक्पदकरणेन सम इत्यस्य प्रत्येकेन सम्बन्धात् समीअप: परस्करं र्णसंज्ञ:, सभीऽक च परस्पर ग्रेमज्ञ: स्थादित्यर्थ:, नतु अपाकी: परस्परं ग्रेमंज्ञीत । भको (अन्तर्गतस्यापि में का: पृथगुपादानेन मृदर्ण ल्वयणी अपनानावपि परस्परं र्णसंजी कः । एतत्र साष्टतरसुचाते, एकस्थानीय-वर्गीय-वर्णाः परस्परं र्णसंज्ञाः स्यः । अकसर्था एकस्थानीया वर्णाश्च परस्परं र्णसंज्ञाः स्यः। ऋवर्णः खवर्णां च परस्परं र्णसंज्ञी सः। र्षाः सवर्षः। "तुल्यास्यप्रयवं नवर्षम्"--पाणिनिः १।१।६।

[।] समख भाव: साम्यं समानवर्णातम्। एकं स्थानं थेपां ते एकस्थानाः तेषां भावः एक खानलम्, एक खानी चरितल मित्यर्थः ।

t स्थानजानाधीनं साम्यज्ञाननिति स्थानं निष्पयति अत्रयमित्यादि । एह---ए भी ऐ भी ह।

[§] पूरि भी भी दलेतेपान उचारणस्थानं करू मुक्का, ए पे इत्यभयी ना लव्यकार्या थे तालव्यमध्ये, भी श्री इत्यमयोग भोष्ठाकार्यार्थम् श्रीष्ठामध्ये भिन्नपद पृथक् पठनम् । एवम् चनाःस्यवकारस्य वैयाकरणमते उद्यारणस्यानम् चीष्ठमुक्ता दन्यकार्यार्थे दन्यमध्ये भित्रपदे पाइ:।

बु एवां करहा-तालव्य-मुईन्ट-दन्वीष्ठाानां वर्णानां मध्ये यी वर्णी धेन वर्णेन समी भवति सः तस्य स्थाने (१), तिकान परे (२), तकादत्तरे च (३), स्थान, यथा- चभविदं (१), श्रान्त: (२), बाग्धरि: (३) । अब ततलस्य तबीति नीक्वा, यहातिल्लानेण निर्देश: तन् इस्थी: चयाणांवा समवार्थे पूर्व्वपूर्वम्य प्रथमप्राप्त्रार्थम् । चन्न वदन्ति — वष्ठी स्वे ततः: स्याने, पश्चमी चतद्त्तरे। सप्तमी चपरे वार्चगर्यं चोपपदे कवित्॥ इति।

७। चपोदिताकानिता गः।

(चपा ३।, उदिता ३।, श्रका ३।, भिनता ३।, र्षः १।)।

उकारेता चपेन * इट्र हितेनाका 🕆 णीं ग्टह्यते।

८। इङोऽरलेङ् णुः।

(इङ: ६।, पर् पल् एङ् ।१।, गः १।)।

इडः स्थाने अर् अल् एङ् एते सा संज्ञाः स्युः । 🕸

१। अच आरालैज वि:।

(भव: ६।, भा श्रार् भाल् ऐच् ।१।, ब्रि: १।)। .

अर्चः स्थाने आ आर् आल् ऐच् एते विसंज्ञाः स्युः। §

^{*} च ट त का पाः यदा उदितः खुनादा सवर्षं यक्कानि, तेन उदिक्षिः चुटुतु कु पुनिः क्रमेषा च-वर्गटवर्गत-वर्गक-वर्गप-वर्गाषां प्राप्तिः खान्। उदिह्हितेन तु च ट त का प इति वर्षापञ्चकीन कीवलं तत्त्त्वर्णनाचं यद्यति ।

[†] ष इ. छ च्छ छ एते यदा इद्रहिताः खुक्तदा सवर्षं यक्तित्, तेन षिनि क्षिः अ इ. छ च्छ छ द्रत्येतेः क्षमेण प्रयाच, इ. ई. इ. छ ज छ, च्छ च्छ छ हत्येते क्षां प्राप्तः, किल् प्रकारादि छकाराना वर्षां नां मध्ये इत्युक्तेन येन केनिथत् वर्षेन केवल-तन्याववर्षों यहाते, यथा च न इत्यनेन केवलम् च इति वर्षमाचं यहाते, नतु च चा च इति वर्षनाचं यहाते, नतु च चा च इति वर्षन्ययम्। परलु चादेशे प्रत्यये च प्रायशः चनिता चका तक्तत्सवर्षों न याह्यः। वर्षात् कारतकारी खक्षपे राचु छेक इत्यौषादिकस्त्रम् । पाणिनिः १।१।६६-७०।

ţ 🧣 च स्ट ए भी वर्षान रंखाने क्रमेग। दिष्टा: —

ए ची भर् मल्ए ची वर्णाः (य) ग्रुष्टाचंत्राः सुः । समलात् इ-वर्ण-एकारयो-रिकारः, छ-वर्ण-भोकारथोरोकारः । भर् भल् इति द्योरेकदेश-रेफ-लक्षुःराभ्यां मह भर् ख इति द्योः समलात् तयोगुंचे कमेण भरलौ स्थातां, ससुदायसास्याभावंऽिप भाशिकसास्यस्य याद्यालात् । इडिविधायकस्वेऽप्येवम् । पाणिनिः १।१।२ ।

प्रच कर क्ल ए ऐ भी भी वर्णानां स्थाने क्रभेणादिष्टाः
 मा ऐ भी भार् भाल् ऐ ऐ भी भी वर्णाः (त्रि) इत्तिसंज्ञाः स्युः ।
 भादिसविज्ञेषसु सञ्चारणस्थानसाम्यात् पूर्श्वत् ज्ञेयः । पाणिनिः १।१।१ ।

१०। प्रपरापसंन्यवानुनिर्दुर्व्येधिसूत्यरिप्रत्य-भ्यत्यपुपाङ् गि:।

(म-न्नाङ ।१।, सि: १।)।

एते विंगतिर्गि-संज्ञाः खुः। *

े क्रियायीगिन: प्रादेशेव उपसर्गमंजा, न तु द्रव्यादियोगिन:। द्रव्यादियोगिनसु प्रक्रटयामावे नर्थति 'प्रेन' इत्यादी उपसर्गमंजाभावात् (२४) गेथीरिति न गा:। भादी धातुयोगे पयात् लिङ्गमंज्ञायामुपसर्गत्वमस्यव ।

क्षियावाचित्नमाच्यातुं प्रसिद्धीऽर्थः प्रदर्भितः । प्रयोगतोऽत्वे विज्ञेया अनेकार्था हि धातवः ॥ इति धातुपाठे वीपदेववचनात् धातूनामनेकार्थतं सिद्धम्, उपसर्गाः पुनस्तद्यं-द्यीतकाः, न तु वाकेकाः । उपसर्गस्य धातुलीनार्थयीतकत्वम् आदानसन्दानादावनसम्यम् इति माघटीकार्या मिह्निनायः । उक्तभ्व, निपातायाद्यो ज्ञेया उपसर्गाय प्राद्यः। द्यीतकत्वात् क्षियायोगे लोकादवगता इसे ॥ इति ।

प्रादयः उपसर्गः चासंयुक्तावस्थायां न केषाधिदर्थानां योतकाः, क्रियपदात् धातु-मूलकणच्दाद्य प्राक् प्रयुज्यमानाः प्रायणी व्यवज्ञियने । क्रिचिट्रपसर्गदयं तस्रयं तस्रयं वस्त्रतृष्टयं वा सिखिलां व्यवज्ञियतं — यथा, विहारः, स्थवहारः, स्वव्यवहारः, समसिव्याहारः।

धालये वाधते कथिन् कथिन्मतुवर्तते । तमेव विशिवश्यन्यः उपसर्गगितिस्विधा ॥ प्राद्यः कचिन्,मूनपद्मकाशितायंख परिवर्षकाः,—यथा, षादने, षागच्छति ; कचिवा तद्धें लीगक्ते,—यथा, प्रमृते, षविद्यतिः ; कचित्र मूलपद्मकाशितायें विशेषेण ष्रयोन्तरं योजयन्ति,—यथा, प्रणमित, ष्रतृनापः । किन्तु कस्य पदविशेषस्य संयोगे प्राद्यः तद्थे परिवर्त्तयन्ति, तत्पदार्थे कमये योजयन्ति, कमये न योजयन्ति वा, तन् सव्वंमिन्धानाभिधेयम् । पाणिनिः १।४।४९। अ

प्रादीन्। सर्थानाइ पुरुषीत्तमदेव:—
प्र-गत्यारकीत्तर्व सर्व्वतीभाव प्रायम्य ख्यात्यति व्यवहारेषु ।
परा-पराभवानादर प्रत्यावत्ति न्यस्भावेषु ।
प्रा-पनादर भंग साकत्य वैरूष त्याग नत्रयेषु ।
सम्-प्रकर्ष श्रेष नैरन्तर्यौतित्याभिसुक्येषु ।
नि-नित्रय निषेषयी: ।

मनार्चायां खती, नातिक्रमे ऽतिः, पर्यक्षी गतीं। चिपः पदार्ध-सभाव्य-गर्चानुज्ञा-समस्यो ॥ *

११। भ्वादिर्धः।

(खादि. १।, धु: २१) ।

भू सत्तायामित्यादिर्गणी धुसंज्ञ:.स्यात् । १

चव--- निचय साकल्यानाटरेष ।

भनु--पथात् साहस्य लचण वीक्षित्यसाव भाग हीन सामर्थं सहायं सामीय देर्घं पनर्थेया

निर निम - पत्थर्थ निषेध निषय वहिन्तर्शेष ।

द्र ट्रस - — निषेध कष्ट निन्दावचीपणेषु।

वि — विशेष वैष्य नजर्थगति दान्धु।

श्रधि-उपरिभावे।

सु-पूजन भोभनानावासः तिश्रवेष ।

छत्-कडींत्वरं प्राक्तका नैककीयः (छद इति पृथ्यत्वयम्)।

परि-- सर्वतीभावातिशय वीभीत्यकाव विक्र भाग त्याग नियमेव।

प्रति -- ल तथ व्यावित प्रमतीत्यभाव भाग प्रत्यपेण साहस्य विरोध वीसा समाधिव ।

मि - समनादुभवार्थ लच्च वीश्वत्यसाव धर्वणेष्

पनि -- पतिश्यातिकामे पुजनासुन्धावनेषु ।

श्रीय--- पाइरणालास संभावन निन्दानुका समुद्र्येष ।

छप — चनुगति पञ्चाद्वावानुक्तम्याधिका भीन सामीस्य प्राथस्येषु ।

चाक-मननाद यहणाप्रवाहत्तीवद्वे सर्यादा व्याप्तिव ।

• भन स्वे, स चित प्रश्ने नायां, चित चितकसे प्रश्वीदियऽपि कियाप्रहतीं, परि चिध गतीं प्रतो यदा गल्यंधात्योगे गति योतयतस्वा, चिप चललकियायोग्यतावस्वान निन्दानु मितसमुद्ययेषु गि-संज्ञा न स्युः। एषु चर्येषु गिसंज्ञाभावात्, सुक्षला इलादौ व्यस्ययनुकारित (५४८) सर्व में स्यांत, क्राची यप् च (११७६) व स्यात्, द्वित फंडम्। किन्तु गिसंज्ञापितस्य निपातलित्यवस्यं वाच्यं, निपातले सित चययत्वम्, चतोऽतिराजीति धिद्यम्, — च्ययंके स्यं पूर्वमियनेन (१६६) चतीः पूर्वमियातक। पार्विनिः १।४८२-६६।

† भूजव्दक धातुर्धक्रानिरासायाड भू संत्राधानिर्वादिर्गर्वदित । भू द्वादि मक्ततयः यदा सत्तादि-क्रिया नाविकासदैन (५)धातुर्वज्ञाः खुः। आदिगर्वो यदा-स्वादादादी

१२। सित्यादिः तिः।

(सिव्यादिः १।, क्तिः १।)।

स्यादिस्यादिय क्तिसंज्ञः स्यात्। *

१३। क्र-द-ब्जान्येक्र-दि-बक्त व्येक्शः।

(क इ-स्वानि १॥, एक, डि-बहुषु ७॥, एकश्रः ।१॥)।

क्रीरेकैकं वचनं क्रमात् क द-ब्व-संज्ञं स्थात्, तानि च क्रमादेकः दि बहुष्वर्थेषु प्रयुज्यन्ते । गं

१४। क्रान्तान्यौ दली।

(क्रयन्तान्यौ १॥, दःखी १॥)।

क्राम्तग्रब्दो दसंज्ञः स्थात्, त्रन्यस् सिसंज्ञः। 🕸

सुद्दीकादिः विवादिः स्वादिरेव च, तृदादिस वधादिस तनक्षादिचुरादय इति । "भुवा-द्यो धातवः"—पाणिनिः १।६।१ ।

- * निम्न तिम निती, िनती चादी यस्य स नित्यादिः, इन्हालपरः मूयमाणः मन्दः प्रस्थेकमिसस्यंथिते इति न्यायात् स्यादिस्थादियेति । मन्दोत्तरं प्रयुक्तमानाः सि घी जसादयः एकविमतिः, धातृत्तरं प्रयुक्तमानाः तिप्-तनादयः सामीति-मत-संख्यकासः (क्रि)विभक्तिसंज्ञाः स्युः । पाणिनिः १।४।१०४ ।
- † विभक्तेरेक-वचनं क्रसंज्ञं, वि-वचनं वसंज्ञं, वष्टु-वचनं व्यानं व्यान् । एकवचनम् एकार्थे, विवन्ननं विसंख्यायें, वष्ट्वचनं वैद्वयें प्रयुज्यते । एकस्य क्र-कारं वचनस्य व-कारं रुद्धौता क्र-वात् चिद्धितिनं, व्यायोर्थ्यवभेव । नित्यवष्ट्वचनास्ता चिपि अव्दाः सिल-यणा—दाराः, वर्षाः, निक्ताः, जलीकसः, द्याः (वस्तानवानिन्यः), वष्टुलाः, क्रिक्ताः, अपाः, लानाः, रुद्धाः प्रसाः, व्यादि । गौरवे सर्व्येभ्यो वष्ट्वचनं—भद्दारकपादाः प्रसादि । विक्तिःऽपि वष्ट्वचनं क्रिवि्—यथा—सुमनसः सुमनाः, चस्ररसः चस्रराः द्यादि । पाषितः १।४।१०२-१०३।
- ‡ विभक्तान्त्रपट्टः (द)पदसंगः, तक्षित्रगर्व्यो (लि) लिक्यमंग्रः खात् । (१२२) त्यलीपे व्यक्तच्यमिति न्यायात् लुप्तविभक्तिकामां पदलन्तुः चातिदेशिकां — यथा, चमा,गीरीत्यादि । घाचिनिः १/४।१४, १।२ ४५-४६ च ; तन्त्रते वि = प्रातिपदिकम् ।

१५। लुपि न सन्ध्याद्यविधी।

. (लुपि ७), न ।१।, सन्याद्यविधी १॥) ।

लुबिति लोपे क्षते यो लुप्तस्तदाद्यन्तयोः सन्धिन स्थात्, तदा-दास्य च यो विधिः स च न.स्थात्। *

१६। चादिर्गिनि: ।

(चादिः १।, गिः १।, निः १।)।

चारिगेणो गिय नि-संग्नः स्यात्। 🌵

१७। णमितोऽन्याचोऽन्तेऽन्यस्यादी।

(चन-इत: १॥, श्रत्यातः ५।, श्रत्ये ।, श्रत्यस्य ६।, श्रादी ७।)।

^{*} लुप्यब्देन लोपे कते यो लुपसदायन्त्रथी: सिवर्न छान् - ग्रैया, (३०) हरएिं। तदायस च विवानं यन किसपि तद्म स्थान, तेन राजस्यासित्यादी (१०८) न या। इदन न सर्वेच, दसी समीकरण इत्यादिज्ञापकान्, कविन प्राथाकारस्याने विधि-भेवतीत, यहा नजा निर्द्धिसनित्यसिति न्यायान भसीकरणिनत्यच न लुप्यपि प्रायाकारस्थाने दंभीवतीति। पम, पादिपदेन सिवी अधि इति प्रवर्णयहणम् प्रवर्णीयत-निवेधार्यम्, तेन लुप्तस्यादिस्थितावर्णनिमित्तकविधिरिप न स्थान, यया, — राजभितिसच (१०६) न ऐम्। प्रश्नितिक न्यु स्थादंव, यथा, पक्रवित्यं इत्यादी नस्य लुप्यपि इत्यान् (१११) प्रवस् । प्रव 'सिविध मस्य एपणिन: १११६६ ।

मं चादिर्गय:—ज, वा, इ. इा, हि, ही, हे, हे, हो, रे. भी, तु, तु, छ, वै शीस, खिब, घइ, एव. एवन, नृतन, अवन, भूयस् चेत् निवित् यत्र, तत्र, इन्त, भाड़, नुक्र, यावन, तावन, वषट, वीषट्, खाहा, खधा. खिल, घोम्. खल्, किल, चथा, सहु, भ, भा, इ. ई. उ. ज, भा, छ, ए. ऐ. भी, भी, यथा, तथा, यदि, यत्, तन, िकम, िवंब, हाहा, भाही, उत, भहे, भाही, भथी, नतु. भिस, भिक्त, इत, वत, भामा, जातु, कथं, कुत:, कुत, भाहीखित्, दिव्या, भङ्ग, फट् भ्रेंग्रे, उर्दी, कुरी, उर्दी, कुरी, उर्दी, उर्दी, उर्दी, उर्दी, अपन भानितः स्थानितः, एते (नि)निपासस्ताः स्थानितः प्राथमितः प्राथमितः प्राथमितः प्राथमितः प्राथमितः विवितः प्रतिनितः विवितः प्राथमितः स्थानितः स्यानितः स्थानितः स्थानित

णित् यसीचिते तसान्याद्यः परः, निदन्ते, डिव्ह्यस्य स्थाने, मिदादी, स्थात्। *

१८। परस्य:।

(परः १।, त्यः १।०।

प्रकर्तः परी यः स त्यसंज्ञः स्थात् । 🕆

१८। ऋं ऋ: नुबी।

(अ प: ११॥, नुवी १॥) ।

श्रकार उचारणार्थः, विन्दुदिविन्दुमात्री वर्णौ क्रमाद्यु-वि-संज्ञी स्तः । इ

२०। ्क × पौक मून्यौ ।

वज-गजकुमाकती वर्णी क्रमात मू-नी संजी स्तः। §

अ षम्— थ न ङ म — इत् येश ते सिनतः, भन्ते भवम् भन्तम् भन्यभ् तम् भवित् तसात् भन्नेति मृद्देन्यणकारिदागमः स्थानिनः भन्ताचः परे भविति, दन्यमकारिदागमः स्थानिनोऽन्ते, ङ कारेदादेशः स्थानिनोऽन्यवर्णस्य स्थाने, भकारेदागमः स्थानिनः भादौ । यस्योभिते इति षष्ठान्तिनिद्देशात् प्रत्ययेषु न प्रसङः । तेन ङकारेतो ङो-भादिविभन्नौयः लिङ्गात् पगः एवं मृद्धन्यपकारंतो स्थादयः धातोः परा एवं । पासिनः १११।४६,४०,४०,४०,५६; तन्त्रते सित् = मित्, नित् = कित्, मित् = टित्।

[†] मक्रतेः परीयः सं(त्य)प्रत्ययस्तः स्थात्। पदस्य सूलभागः प्रकृतिः। "प्रती-यते विधीयते इति प्रत्ययः।" सिङ्कालकौसुदी। पैप्यिनिः शशरा

[‡] तुरतुखार:। विविंसर्ग:।

मूर्जिन्नामुणीयः — निन्नामुणीचार्यः । नीक्पाभानीयः — उपाभानीयस्थीत्पत्तिः
 स्थानम् भोषः, धवारवन्तु सर्पत्रासवत् । कपाव्यारवार्यो । (६० स्वं द्रष्टस्यम्) ।
 नु-वि मू-नीनां चलविधी स्वरता, स्वरस्थीः यसनता, तथान-- नुवी पूर्वेत सम्बद्धी

११। हो अस्।

(इ: १।, भास ।१।)।

इकारो आसंजः स्वात्। *

इति संज्ञापाटै.।

२य पादः—ग्रच्सन्धः। 🕆

२२। सहर्षे र्घः।

(सह।१। र्णे ७।, र्घ: १।)।

र्षे परे पूर्वस्य, र्षेत्र सङ्घीः स्थात्। 🕸

मृत्यो तु परगानियो। चेलारीऽयोगवादाख्याः खलकर्षाख्यको नताः। ऋषः स्वयं विराजनो, इससुपरगानियः॥

- भस-मलाहारमध्ये (३) हतारसाभावात (५०) वृंहितनिलादिसिद्धार्षं हवारी
 भस्यं द्वायां परिगणितः । पाणिनौतु हल् इति प्रयत् प्रलाहारस्वीकारः ।
- † संयोगशीलथब्दानामसंयोगे तेवासुकारणकाकंग्रम् वस्याव्यता च स्वित्तं तहीव-निवारणाय ही शन्दी, पूर्वशन्दग्रेवाचरस्य परशन्दप्रयमाचरस्य वा स्वस्योदां परिवर्तनेन, संयुक्येते,—प्वंविधर्सयांगः स्विराख्यातः। तस्य सामान्यनियमः—सन्विरेकप्दे नित्यो नित्यो धातुपसर्गयोः। स्मासेऽपि च नित्यः स्थान् स्व चान्यव विभावितः॥ प्रति ।

मुरारिः, लक्कीयः, विष्णूसवः, धांतृतिः, यङ्गृदन्तः, होतृ-कार: । 🕸

२३। श्रादिगेचोर्णुबी।

(भात् ५।, इक् एची: ६॥, सुन्नी १॥)।

अवर्णात् परयोरिगेचोरवर्णेन सङ्कमात् खत्री स्त:। 🕆 **ह**षीकेशः, दामीदरः । ध सन्धिग्रहणात् सन्धिलुप्येव न सन्धिः। § माधवर्डिः, गिवल्कारः, क्षणैकालं, मुकुन्दीकः, क्षणेकं, भवी-षधम्। १

२४ | गेधीरनेधिन एड्-ऋको: । (गः ६।, धोः ६।, धन्-एष्-इनः ६।, एङ-ऋकोः ६॥) ।

गैरवर्णात् परयोरिधन्विर्जातस्य धोरेङ्ऋकोरवर्णेन सह क्रमात् ख्रवी स्तः। ∥

सुर-मरि: = सुरारि:, लच्छी-द्रेश: = लच्छीश:, विक्-उत्सवः = विक्तायत:, घाट-ऋदि: = धार्नुदः, मन्नु-खदनाः = मन्दनः, हीव-खनारः = हीतृनारः।

[†] अवर्णात् परस्य यथासभावम् इतः अवर्षेन सह गुणः (८) स्थात्, एवस् अवर्षेन सद्द बिर्डि: (१) स्थात् । पूर्वतः सहानुवत्तिः । पाणिनिः ६।१।८०-८८ ।

[🖠] भूगीक-र्रूग: = इशीकेग:, दामन-खदर: = दामीदर:।

[§] लुनि न सम्भावविधी रत्यत्र सन्धिणव्दयद्वणात् सम्यध्यायसूत्रेण सुध्येव सन्धिनं स्वात, अध्यायान्तरसूत्रेण लुपितुसन्धिः स्थात्. अतोऽत्र दामन् इति अब्दस्य न-कारस्य अध्यायान्तर(अजन्ताध्याय)सूचेण (११८) लुपि दासीदर इति सन्धिः।

[¶] नाथव-ऋडिः ⇒ नाधवर्डिः, शिव-रूकारः ⇒ शिवरूकारः, क्षण-एकस्यं ⇒ क्रचीक्रलं, सुकुन्द-भीक: = सुकुन्दीक:, कृषा-ऐकां = कृषीकां, भव-भीवभम् = भवीवभम् ।

[🎚] चात् सइ चेश्यनुवर्भते। खपस्र्याणां मध्ये प्रपराचप चव उपचा(उः) एभः।

प्रेजते, परोखित, श्रपाच्छेति। * श्रनेधिनः कि—उपैधते, श्रवैति। क

२५। लिधोवी।

(लिघी: ६।, वा (१))।

लिधोलु पूर्व्वीतां कार्यं वास्यात् , क्ष प्रेकीयति प्रैकीयति, प्रांचीयति प्रौघीयति, प्रार्चीयति प्रर्ची-यति, प्राल्कारीयति प्रस्कारीयति ।§

२६। लोपोऽस्थोमाङोः।

(लीपः १।, अस्य ६।, श्रीम्-भाडीः ॥) ।

त्रवर्णस्य त्रोमाङोः परयोत्तीपः स्थात् । ¶ यिवायोत्तमः, भिवेहि, ब्रह्मोतं, राजर्षिः । ∥

[ा]रस्य एघ-अन वर्जितस्य घातीः प्रादीनामवर्षेत्रं सह एक्षीगुणः (८), स्वकोइितः (८) स्यात् । घातीर्जृकाराभावात् एङ्स्तीरित्यनेनापि श्रष्टसित्तै स्वप्रस्यं परवातुक्वयंसीय । गाणिनि ६।शन्ट.८१.८४ ।

प्र-एजते = प्रेजते, परा-भोखित = परीखित, अप ऋक्षित = प्रपार्क्कति ।

[†] उप-एधते (२३) = उपैधते, चन-एति (२३) = चनैति ।

[‡] पूर्व्वाक्तिनिमत्तीभृतेन उपसर्गावर्षेन सह नामधातोः एउन्हकीः क्रमान गुण(८) ह्वी (८) वा सः। प्र-चोद्वारीयति इत्यादी पूर्व्वापरयीः परिविधर्वकवान इति नायान्। ।रस्वेष (२६) चवर्णस्य लोपे प्रोद्वारीयनि. न तु प्रौद्वारीयति । पाणिनि: ६।१।१५,८८।

[्]र प्र-एकीयति = प्रेकीयति (वा २३) प्रेकीयति, प्र-भोधीयति = प्रोधीयति (वा २३) । ोधीयति, प्र-स्टबीयति = प्राचीयति (वा २३) प्रचीयति, प्र-स्टकारीयति = प्रास्कारीयति, वा २३) प्रस्कारीयति ।

य इन्ह भवर्णयहणं सह-निवृत्त्वयंत् । भवर्णस भोद्वारे भादिष्टाङ च परे लोप: वात, भनादिष्ट भाङि परे दीवेंग्येव पदसिन्धे: भवर्णलीपस्य वैयर्थात् । पाणिनि: !११८५ ।

[∥] शिवाय-चीम्-नमः (५०,५१) = श्रिवायीत्रमः; चत्र, स्रोपोऽध्यादेश उच्नते इति शयात् स्थानिवदादेश इति नियमेन चसारस्य स्थानिवस्नेन चर्याग्रीरिति (३०)

स्यानिवदादेश: । * दयोविभाषयोर्मधे विधिनित्यः । १

२७। एवेऽनियोगे।

(एवे ७। चनियोगे ७।)।

त्रवर्षस्ट एवे परे लोपः स्थात् त्रज़ियोगे। ‡ त्रदीव। नियोगे तु—त्रदीवृगच्छः।§

२८। बौष्ठोत्वोः से।

(बा।१।, चीशीबी: ११, से १।)।

भवर्णस्य भ्रोष्ठोत्वोः परयोत्तीपः स्थात् वा से सति । ¶ विस्बोष्टः विस्बोष्टः, स्थूत्वोतुः स्थूतीतुः ।∥ से वितं—तवीष्ठः । ॐ

यकारस्य न लुप्। श्रिव मा-इडि (२३) = श्रिव-एडि च श्रिवेडि, मा-कतन (२३) च भीतं, ब्रह्म-भीत च ब्रह्मीतम्, भा-ऋषि: (२३) च मर्थः, राजा-मर्थः: च राजर्षि:।

- स्थानसस्यांकीति स्थानी, भादिस्यतिऽसी भाटिमः। यो वर्षीयस्य वर्णस्य स्थानी
 भादिष्टः स पूर्वावश्वत् भवतील्ययः। यसुत्रस्य येषु भनिष्टं तेषु स्थानिवस्तं नानितः
 भात्यव प्राचः इष्ट साधनार्थसेव न्यायः स्वीकियते, नलनिष्ट नाधनार्थमिति । पा.१।१।५६।
- + पूर्व्यापरयोः स्वयोः विकल्पवाचिम वाग्रव्हे प्रयुक्ते तमाध्यवित्ति मृत् स्वयोः स्वयं वा वाग्रव्हे या वाग्रव्हे या नान्ति तः, ध्रत्याचिमिन्यः, यथा—(२५) विधीवो, (२८) बौधीलोः से, इक्षेत्रयोमेध्ये (२६) लोपीइस्थानाङोः, (२०) एवेइनियागे इत्येत्रयोः वाग्रव्हे या नान्द्रतिः। यच तु वाग्रव्हो व्यवस्थावाची, तच विभाषाद्रयमध्यविति नः इष्टत्वात् निव्यत्वम् भनिष्टताद्रनिव्यत्वं वीध्यम्—तेन (३०) ध्यायीविति, (२८) गार्वेश्वेतयोक्ष्ये, (६०) एङोइतः इत्यस्य नित्यत्वम्। (६६) से तु क ख प पी वैति, (०१) यवाचि इत्येत्योमेध्ये, (६०) शक्ति श्रविति, (६८) कृ ख प प्रशिमून्यावित्येतयोद्देयाविक्तस्यः, (६८) भतोऽद्वयः, (००) ध्रास्ति भागी दस्येतयोदयोनिक्यत्वम्।
 - ‡ भनियोगे भनियभे भनवधारणे इत्यर्थः। "एवे भानियोगे" इति वार्त्तिकस्। ६ भर्यो एव = भयेव। अध्य-एव गच्छ (२३) = भयोव गच्छ।
- क्षाची है। चीती चपरे चवर्णस्य लोपः स्वादासमाति । वाशव्यस्थे इत्यवस्थादाकि स्वात् संचार्यातिस्यम् चवर्णभीपः स्वात्,तन प्रोष्ठी वयः,प्रोष्ठी मस्यविभेषः । वार्तिकम् ।

॥ विक्व-घोष्ठः = विक्वोष्ठः, स्यूल-घोतुः = स्यूलीतः, (विश्वि) विक्वीष्ठः, स्यूलीतः। विक्वो दव घोष्ठौ यसः, स्यूलघासावीतुषिति समासवाकानः।

क से किं -- से दित कथनुक्तम्, घननासे--तव घोष्ठ. (२३) = तवीषः।

२८। बीसे ल्तो बिं।

्र (चीर्स०), तृ।१।, चटतः १।, ब्रिंश)।

त्रवर्णात् पर ऋतो त्रिमाप्नीति त्रीमे सित । क्ष श्रीतार्त्तः । ं त्रीमे किं —परप्रर्त्तः । कृ लन्तस्य नानुवृक्षिः । §

३०। क्टण प्र वसन वत्सर वत्सतर दश कम्बलस्यणः। (स्प-कम्बलस्य ६।, स्प. १।)।

एषामवर्णात् पर ऋणो विमाप्नोति। ऋणार्णं, प्रार्णं। ¶

३१। खाचयोरीरोहिन्यौ(ग्यौ)।

(ख-भचयो: ६॥, द्र-कहिन्यौ १॥) ।

^{*} पर्यविधान् विभन्नेविधिरिणाम् इति न्यायान् (२६) लीपीऽस्थीमाङोरित्यवर्णस्य विभिन्निं विधिरणसम्याद्यं प्रवर्णान् पर इति । बर्डिविधानदर्शनादेव सद्दानुवृत्तिः । तृतीयासमासे अवर्णान् परस्य पत्र्यविद्यस्य स्तशब्दस्यकारस्य पूर्व्यावर्णेन सद्द ब्रिडिः स्यान् (८)। पाणिनि ६।१। ८ सुत्रस्य वार्त्तिकमः ।

[†] शीत ऋत. – शीतार्चः । शीतेन ऋतः — पीडित इति वतीयातसुरुषसमासः । एवं सभा ऋतः – सभार्च रुव्योदः ।

[‡] परम ऋतः ≔ परमर्ताः । परमयाभौ ऋतश्रेति कर्म्मथारयसमासे ऋतस्य बद्धाभावेन (२३) गुणः (८) ।

भ स्रणापन्यनाथं म स्रणम् स्रणाणे, प्रक्रष्टस्यं प्राणे, वसनाथं स्रणं वसनाणे, वस्तरे स्र देयस्यं वस्तरायं, वस्तरायं स्रणं वस्तरायं, दस्त स्रणाः प्रयोद्गाणि सन्ति यस्ति यस्ता वा दशाणे दिसः दशाणे नदी, कस्त्रलायं स्रणं कस्त्रलाणे मा स्रणोऽस्त्रियां प्रयोद्गों देवे नीचे दुरात्मनीति पदगीविन्दः। एतदन्यन तु (२३) गुणः—यथा, प्रधम-स्रणः च प्रधमणः, उत्तम-स्रणः = उत्तमणः। "प्रवस्तरकस्वलव सनाणं दशाना स्रणे" १ति वार्तिकस्। "अने कालापानुसारिणो वस्तरश्रद्मिण पठिता वस्तरे देयस्यं वस्तरार्थिनस्यदा स्राणः। अपरे तु वस्तश्रद्भिण पठिता। तस्त्रव्ये भाष्यादिविद्यम्" १ति प्रीटमनोरमा।

चनयोरवर्णात् परावेती विमाप्ततः । * स्वैरम्, पची हिणी। ф

३२। प्रस्रोढ़ोग्यूहाः।

्र (प्रस्य ६।, कद-कदिःकहाः १॥)।

प्रसादणीत् परा एते विं यान्ति,। प्रीढ़ः, प्रीढ़ः, प्रीहः। क्ष

(वा ।१।, एव-एची १॥)।

प्रस्थावर्णात् परावेती जिं वा प्राप्ततः । प्रैषः प्रैषः, प्रेषः प्रेषः ।§

३८। मनीषा:। '(१॥)।

मनीषाद्या निपालकी । श

अ स्वाचयी: क्षमसाह—स्वय्य प्रकारात् ईरः, प्रचस्य प्रकारात् किनी च, तेन सङ विमान्नीति।, स्वे ईर प्रत्यस्य प्रकार उचारणार्थः. तंन रेफान ईर् प्रत्यस्य प्रकार उचारणार्थः. तंन रेफान ईर् प्रत्यस्य यष्ठणं, तेन ईर्-ध्रिणोः प्राप्तिरिति—यथा, स्वेरं. स्वेरी, स्वेरिणी । स्वेरा ग्रत्यत्र न स्थादनिभिधानात । मलादिरिहिते स्वेरं स्वच्हन्दमन्दर्गोस्त्रिय्वित श्रन्दास्यः । प्रचाषान् सृष्टिनीत वाक्वे "सज्ञायानेव" चर्चीहिणों (णलं)—परिमाणविश्रेषविश्रष्टा सेना । प्रचाषान् प्रत्यत प्रति कृते तु प्रचीहिणों (नी) स्थव भवति । प्रचेवत् वार्तिकम् ।

⁺ ख-ईरं = खैरम्। भच-जिहनी = भधौहिषौ।

[‡] प्र-जट्: = प्रीट्:, प्र-जिट: = प्रीट्:, प्र-जिट: = प्रीट्:। जिष्णाती: घर्ष्य्यम जड्यन्दः साध्यः, वडधातीः जुक्त-क्रि-प्रत्ययास्यां जट्. जिटः इति पदद्यं शिङ्गम् प्रीटी भार ईत्यव प्रपूर्व्यादा ङ्पूर्व्वादा वडधातीः क्रप्रत्यये ६पम्। पूर्व्ववत् वार्तिकम् काश्रिकावृत्ति-कलाप-सुपद्म-सविप्तसारमते (प्राचां मते भाष्येऽपि) वार्तिकस्चे जडशब्दस्स छक्किश्वी नास्ति, नव्यानां मते तुभाष्य तदुक्कैस्वी टक्सते।

[§] विकल्पेन इहिविधानात् पत्ते गुणो भवतीत्थवशीयते, इयभेव याशस्यश्र व्यवस्था। प्र-एव:चप्रैय:, प्र-एव:चप्रैय:। वा (८) प्रेव:, प्रेय:। दूत इत्यवं:। पृष्यंवत वीर्त्तकम्।

कृ यत् यत् खर्चकानृत्यमं तत् सब्बं निपातनात् सिज्ञनिति भाष्यम् । तस्य सिज्ञिः क्वित् वर्षागनेः, कवित् वर्षाविपय्येः, किवत् वर्धविकारैः, किवत् वर्णनामेः, किवित् वर्णनामेः, किवित् सात्रमातिमाने क्वित् वर्णनामेः, किवित् सात्रमातिमाने वर्णनिपय्ययम्, की चापती वर्णविकारनामो । धातीस्तर्योतिमयेन योगस्तदुत्यते प्रस्विमं निरक्तनिति पूर्वाचाय्योः । पाणिनि ६।१।८४ स्वस्य वार्तिकम् ।

प्रनीषा, चलीषा, लाङ्गलीषा, यक्तन्धः, कुलटा, सीमन्तः, पत-स्नलिः, सारङ्गः । *

३५ । यलायवायावाऽचीचः।

(यल-भय-भाय-भाव: १॥, अपि ६।, इत्त: ६। — यला ३।, वा) ₹

ह्यः स्थाने य्व्र्ल् श्रय् श्रव् श्राय् श्राव् एते श्रवि परे क्रमहत् स्यः पि त्रास्वकः, विष्णुगित्री, धात्रच्युती, लालतिः, इरये, ग्रम्भवे, नायकः, पावकः। ई

३६। वाव गोर्दान्ते।

(वा ।१।, अव ।१।, गी: ६।, दाले थैं।)।

^{*} मनस् ईपा = मनीपा — बुितः । इल-ईपा = हलीपा, लाइल-ईपा = लाइलीपा, विद्या = प्रत्या = लाइलीपा, विद्या = प्रत्या = सीमन्दः — सीमनः — सीमनः — सीमनः । पतन् पञ्चली = पतञ्चलीः — सुलिवेषेषः । सार-प्रदः — सारदः — सानकादः । पतन् पञ्चली चादिपदस्योपादानाभ्या चान्यपि चानिति वार्त्तिकम् । पत्र प्रवस्यो चन्तिति वार्तिकम् । पत्र प्रवस्यो चन्ति वार्तिकम् । पत्र प्रवस्योपादानाभ्या चान्यपि पदानि निपातनात् सिध्यन्ति, इत्यादि वहवचनानाः स्वस्य संस्वताः इति । सार्यः । तथाय — वहस्यतिः वाचस्यतिः, वनस्यतिः, वलाइकः सोधदम्, पास्यदं, तौम्तः, तस्यः । सस्यो, पर्वे , प्रायथं , प्रवीदरः, केशवः, पर्वे , प्रवादः , तिष्कं, (विस्वदः, सुवलाकः, पर्वोऽयम्, परस्यरं, परस्यरं, पिशाचः, कपित्यः, निष्कं, (विस्वादः । पाणिनः ६।३।१०६।

[†] इ. उ. च्ह ए भी ए. भी एतेषांवर्णानांस्थाने क्रामेण---

यृ व् रूल् भय् भव् भाय् भाव् एति क्षनाभ न्यं भवणे एचि भसनाम-ति भ परे। समान-दिक परेतु (२२) दीर्घएव, यथा— लच्छीयः, सामान्यविभेषयी-वैभ्ये विश्लेषविधिर्वलवान् दित न्यायात्। सूत्रेयल दित भकारान्तपाठः उद्यारणसीक-र्याषः (४)। पाणिनिः ६।१।७९-९८।

[‡] त्रि-प्रस्वकः = त्रास्वकः, त्रीथि प्रस्वकानि चर्च्छि यस्य । विणु-ईशी = विणुशि, धात-प्रच्युती - धातच्युती, त्र पाकृतिः - लाकृतिः, त्रकारश्चेव पाकृतिर्यस्य । इते ए = इरये, सभी ए = शभवे, नै-प्रकः = नायकः, पी-प्रकः = पावकः ।

गोरिचः स्थाने त्रवः स्थादा त्रचि परे दाक्ते। *

गवेगः, गवीगः । दान्ते किं, गवे। गवेन्द्र-गवाची नित्यम्।

३७। ऋयां योर्नुब्वा।

(श्रयां ६॥, यूी: ६॥, लुप् ।१।, वा ।१।)।

दान्ते खितानामयादीनां यवयोर्नुप् खाद्वा । क्ष हरएहि हरयेहि, मभददं मभविद, त्रियाएति त्रियायेति, विश्वाउलाः विश्वावुलाः । §

३८। एङोऽतः।

(एङ ॣ्ध्रः, श्रत: ६।)।

दान्ते स्थितादेङः परस्य त्रकारस्य लुप् स्थात्। इरेऽव, विष्णोऽव। ¶

[%] इच इत्यस्यानुवृक्तिः । अब इति पृथक् विधानानृगांग्रज्यस्य भोकारस्थाने अका-राना-भवादेशः स्थादा अचि परे पटाले । वृक्षौ गोरिचः ग्रहणात् चित्रा गौर्थस्य इत्यादौ (१२०) गवावादिरित्थादिना गौराकारस्थाने इत्य-छकारादेशे चित्रगु-भाषार्थः - चित्रगवाचार्थः इत्यादि सिडस् । गवीश इत्युदाहरणानन्तरस् अथां थेौरिति स्वणकरणात् नात्र बलीपः, केचित् समासं न स्थादित्याहः । पाणिनिः ६।१।१२२ ।

[†] गी-ईशः (२३) ⇔गवेशः, वा (३५) गवीशः । गी-ए (३५) – गवे । गी-इन्द्रः ⇔ गवेन्द्रः, गी-अवः ⇒गवाचः, उभयव नित्यमवादेशः । पाणिनः ६।१।१२३-१२४।

[‡] अयाम इति बहुव वन निर्देशी गणार्थः। पदानी स्थितानाम अय्, अव् आय्, आव्, इत्येषां य्वीर्लुप् स्थादा। अत्र वाश्रन्दस्य व्यवस्थया—किश्वतः स्थात्, किचित् वां स्थात्, किचित्रित्यभिति सृतम्। अभिधानादुदाहरणानि ज्ञीयानि । पाणिनिः पाश्ररः।

[§] इर्-एहि (२४) = इत्य-एहि (२०) = इत्एहि, सभी-इदं (३५) = सभव-इदं (३०) = सभाइदं, त्रिये-एति (३५) - त्रियाय-एति (३०) - त्रियाएति, विश्वो-छत्तः (३५) - विश्वाव-छत्तः (३०) - विश्वाचन्तः । वा (३५) इत्येहि, सभाविदं, त्रियायेति, विश्वावन्तः । (१५) सन्वि-स्वेश खुपक्षरणात् इत्एहि इत्यादी न सन्विः ।

[्]र शृचपदार्च यया— श्रेचनं (३५) च श्रयनं, भी-व्यनं (३५) च भवनम् । पाणितिः इं≀रीर०८ । ्र

३८। गोवी। (गी: ६∤, वा ∣१।)।

गोरति वा सन्धिः। * गवात्रं गोऽत्रं गो-त्रत्रमः। 🕆

४०। नाजो त्रान्तोऽनाङ् नि: सुञ्च।

(न ।१।, भच ।१।, भी-भना: १।, भनाङ् ।१।, नि: १।, मु: १।, च ।१।)।

अञमात्र श्रोकारान्तय' निराङ्वर्जः सन्धिं नाप्नीति, प्रुस । 🕸 अञ्चनन्त, दर्दछर, उउमेश, त्रहो-देशान, क्रण-एहि । ग्रनाङ किं--

> मर्खादायामभिविधौ क्रियायोगेषदर्धयोः। य त्राकारः स ङित् प्रोक्तो वाक्यस्मरणयोरङित्॥ \$

एतमातं कितं विद्यात् वाक्यसर्णधीर कित् ॥

अर्थवधात् विभक्तेर्विपरिणाम इति न्यायात् अतः इति षष्ठान्तपदं सप्तस्यन्तं भुलाः चनुवर्त्तते, इत्यत चाइ गीरतीति । प्रकरणवशात् सन्ति:। घत्र पूर्वस्तात् एउः इ.स.नवर्स्य एङ लस्य गीरिति वक्तव्यम्, तेन (चित्रगु-घग्रम्) वित्रग्वग्रमित्यत्र नास्य स्वस्य प्रसर:। पाणिनि: ६।१।१२२।

⁺ गी-अयं (३६) = गवायं, वा (३८) = गीऽयं (३९) = गी-अयम्।

[🕆] घचमात्राव्ययस्य, भी कारान्ताव्ययस्य, मृतस्य च, घन्यावयवस्य ब्रब्दानरस्याद्या-व्यवेन सङ्ग्तसिः । तेन चनत्त च, द्र्यान-चही इत्यादी सिनः स्यादेव । घी चल इति पृथकरचात् चच्पदेन तन्त्रात्रं प्रतीयते, चन्यया व्रजनदरल (५०४) इत्यादिवत् चन्ननसेव प्राप्तिः स्थात्। तेन च, इ, उ, ऋ, ऌ ए, ऐ, ची, ची, इत्थेक्तेक निपातः, एवसोकारानीऽपि निपात:। नजा निर्दिष्टमनिखमिति न्यायात भहीऽतिरस्यमिखादि-सिडि:। पाणिनि: १।१।१४ १५।

६ जिल्दन्वस्थयत्वस्य भाकारस्य भाज्यं भेदज्ञानं कथम् इस्यतं त्राष्ट—य प्राकारः— मर्थ्यादायां सीमायाम् (१), चभिविधी चभित्याप्ती (२), क्रियायीगे — क्रियावाचकपदः पूर्व्वतित्ते (३), ईषदर्थे प्रस्पार्थे (४), वर्तते, सं ङित् ग्रीकः, तस्य सन्धिरिति भावः । महाभाष्ये यथा—र्नुषदर्थे क्रियायोगे मर्व्यादाभिविधी च य:।

चालवीधादैकदेशादालोक्यापरतेहीरः। चा एवं तत्त्वमर्यादा, चा एवं तत् कृतं मया॥ *

8१ | ब्वद्गेडमीय | (बन्दे श, मनो ई जन्प न में ।।)। व्रे निष्यं तोडमी-प्रब्दो, दे निष्यं दें दृदेदन्तय सन्धिं नाप्नोति। प्रमी देशाः, हरी-एती, विष्णू-१भी, गङ्गे-इमे। व्यद्धे निम्— प्रमथ्यं, वध्वष्टेः। इ

8२। स्थोद्देती। (वि.भोत - स्थोत्। ११, वा ११, रती ११)। सी जात भोकारः सन्धिं वा नाप्रीति इती परे। §

[#] यथा, षा-चात्सवीधात् - चात्सवीधात् - चात्सज्ञानपर्यं तम् (१)। षा-पत्त-देशात् - ऐकदेशात् - एकदेशं करचरणादिकं व्याय्य(२)। षा-चालीति = चालीति - हष्ट इत्ययं: (३)। चा-चपरते: = चीपरते: - ईषद्विरक्षे: (४)। य चाकार: - वाकार्यं (१) पूर्ववाव्यायोत्तभवशी: (२) वक्ते, स चिल्तं, चत्रप्व तस्य सस्मिनं स्वादिवर्थं, यथा, चा एवं तस्त्वस्य बद्धाणी मर्यादा इति वाक्यं (१), मया तत् कृतम् चा एवम् इति खरणम् (२)।

[†] वहवचनिष्यतः चमीत्रव्दः, दिवचनिष्यतः ई कारासः ककारानः ए कारान्यः स्रस्थिं नाप्रीति । चच ईकारादेः सस्थिनिष्धात् तित्रमित्तकस्थापि सस्थिनिष्धी बीध्यः —तेन गग्ने-चच दक्षादौ नाकारकीयः । पाणिनिः १।१।११-१२ ।

[्]षमी-पर्यम् स्थयम्, पसी - रोगी। वध्या पर्यः (११८) - वध् पर्यः - वध्यथः, एवं नार्या-पर्यः - नार्य्यः रत्यादी ककार-ईकार्यः विवननिष्यव्रताभावात् सिन्धः स्थादिति । मञा निर्दिष्टमनिष्यमिति न्यायात् दिवचने पद्य एकारस्य सिन्धः स्थादिति, तेन प्रसुके-रह (१५,२०) प्रसुक रह प्रसुकिवहः प्रसुके-प्य (१८) - प्रसुके देव, एवं स्थाविद् दिवचनिष्यवस्थापि ईकारस्य दवे परेसिन्धः स्थादिति । यथा, स्था भाव्या-पती चैव दन्यतौ जन्यती तथा । रोदसी वाससी चैव दवे जायापती तथा । प्रसौरपीह प्रसुके पेचुपोप्रस्तान्यपीति स्थावादयः । प्रथम दविष्यः वाश्वस्स्य वाश्वस्त्यः वाश्वस्त्यः वाश्वस्त्यः वाश्वस्त्यः वाश्वस्त्यः । ईद्नीदीर्वयद्या प्रस्वावद्यावासित्यः वाश्वस्त्यः स्थावाद्यः । प्रथम दविष्यः वाश्वस्त्यः स्थावाद्यः । प्रथम दविष्यः वाश्वस्त्यः स्थावः स्थावः स्थावः । ईद्नीदीर्वयद्या प्रस्वावद्यावाद्यावाद्यावाद्याव्याव्यावः । प्रस्वावद्यावाद्यावाद्यावाद्यावाद्याव्याव्यावः ।

[§] सौ परे जात घोकारः छकारान्तग्रम्ट्स्य सम्बोधने एव सम्भवति, स घोकारः सन्धि वा नाप्रीति इति ग्रन्ट्परे । पाणिनिः ११९१६ ।

विचारे इति विचा इति विचाविति।

४३। उञ् गपान्विच व वा।

(उज् ।१।, ग्रपात् ४।, तु ।१।, प्रचि ७।, व ।१।, वा ।१।) ।

उज् सन्धं वा नाम्नोति इस्तौ प्ररे, गपात् परसु वो वा स्यादचि । † उ-इति, विति ।, किम्बुत्तं, किसु-उत्तम् । ‡

88। वेक् खश्चार्गेऽसे।

(वा ।१।, इक् ।१।, स्वः १।, च ।१।, भर्षे ७।, भरी ०।)।

इक् सिन्धं वा नाम्नोति, खय वा स्थादर्षे परे, नतु से, दान्ते। § भाक्षी-मन मार्क्षि-मन मार्क्षव। मर्पे किं—हथेर्मा। ¶

84 । मटक्यम् । (स्विं श, पक्।रा)।

^{*} विश्वी दति = विश्वी दति, वा (३५,३०) विश्व दति विश्वविति।

[†] स्रकारीऽस्य निज्वदस्ययत्तक्षापकः । पूर्श्वतीऽनुवर्षमानि वाशस्त्रेन, एस् सिकं वानाप्नोति इतौ परे, इत्येकोऽष्टः । यपप्रस्वाद्वारम् परमु व-कारावास्यादिव इत्य-परीऽष्टं । पाणिनिः १।१।१०, ८।३।३३।

[‡] विधिवलात् सवर्थे परेऽपि उकारस्य वलं (३५), न तु दौर्षः (१३)। उकारस्य स्थानिवर्त्तन चन्नद्वावेन वा दाले म (५३) इत्यनेन न मस्यानुस्नारः। विकल्पपंत्रं (४०) काको चन्त्र इत्यनेन सन्धिनिषेषः।

^{\$} सखुकामुत्या (१६) स्वात् दान्ते इत्यद्धातु इति:। इक् प्रत्यादार: सिर्धं वा नाप्नीति, क्रवीऽपि वा स्थात्, भसमाने वर्षे परे, पदान्ते, भसमासे । सिर्धानिषेधसम्बद्धी वाक्रन्द: पूर्वादतुवर्त्तत एव, इड पुनर्वायङ्खं क्रव्यसम्बन्धार्थम्, भन्यया सिर्धानिषेधसम्बद्धस्य वाक्रन्यस्य सिर्धानिषेधिनेव चिरतायंत्वे क्रव्यस्य नित्यतापति: स्थात् । भव वाक्रन्यस्य स्थवस्थावावित्यात् क्रिचिटनित्यसमानेऽपि स्थात्, तेन नदा-पन्न इति समासे नदी-पन्नः नदिस्त्यः नदासः इति । पाणिनः (११।१२०।

पृष्ठरि-पर्या (२५) = प्रयंशी । प्रस्नान-प्रत्युदाइरच-प्रापकात् प्रस्नानस्थापि पर्वे सम्बक्षाव इति स्वितं, तन वारि पत्र वास्यंत्र इत्यपि भविता ।

त्रक सन्धिं वा नाप्नोति ऋकि परे स्वय वा स्थात्। # ब्रह्मा ऋषिः, ब्रह्म-ऋषिः, ब्रह्मर्षिः ।

इति अच-सन्धि-पाद: ।

३य पादः—हस्-सन्धिः ।

8ई। सु सुभि: सुगात्।

(स्तु। ११, श्चुभि: ३॥, श्चु।२।, श्रशात् ५।)।

सकार तवगौँ प्रकारेण चवर्गेण वा योगे प्रकार चवर्गौ क्रमात् प्राप्नतः, नतु भात् परौ। * सचित्, प्राङ्गिः ज्ञयः। अप्रात् किं -- प्रयः। न

^{*} इह वादयमनुवर्त्तते। स्रमकौ प्रत्याहारौ । यत्र इख्यस्थावना नास्ति तत्र च वा सिबिरित -- तेन, दिध ऋषाति दथ्युक्तित इत्यादि । अव असमासे इति नानुवर्त्तते, तेन महांयामी ऋषियति समार्म, भहाऋषिः महऋषिः महार्षि वित कथिदाह । "समासेऽप्ययं प्रकृतिभावः" इति सिङ्घानकौमुदी। वस्ततस् चनित्यसमासे एवायं विधि:, तेन पराक्षितीत्यादी न स्थात । पाणिनि: ६।१।१२८।

^{*} युमिरिति बहुवचनं योगक्रमाभावसूचनार्थम् । ततीयया साहित्यस्पनात् योगो लभ्यते। योगव चव्यवहितपूर्व्वापरैकतरवर्तित्वम्। तालव्यवकार-चवर्गयीरकतरेष संद चय्यवधाने स्थितौ दन्यसकार-तवर्गाक्रमात् तालव्यशकार-चवर्गे प्राप्नुत: शकार-चवर्गयी भीव प्राप्त इत्यर्थ: - मकारचवर्गी स्थातामिति यावत् नतु ताल व्यमकारात परस्थितो । भन "शात् परस्य पुलं न स्थात्" प्रति सिद्धान्तकौमुदी । एकत्र इष्टः मास्त्राचींऽन्यवापि प्रयुक्त्यते बाधकां विनेति नियमात्, परमूचीका 'नच दान्तात टवर्गात् परी' इतिवत् भवापि 'नच दानात् चवर्गात् पराविति' बीध्यं, तेन भच् सन्धः, नञ्-समास., लाज धातुः इत्यादिशिष्ठाः। पाणिनिः पाष्ठाव । ।

[†] सत्-चित् च सचित्, शार्जिन्-जय च शार्जिञ्चय । प्रश्न-नः च प्रश्नः ।

८७। ष्ट्रीभः द्वष्यदान्तटोः।

-(षट्भि: ३⊪, ष्टु !२।, ऋषि ७।, **भटानाटी: ५**।) ।

सकार-तवर्गी षकारेण टवर्गेण वा योगे षकार टवर्गी क्रमात् प्राप्तः, न तुषकारे परे, न च दान्नात् टवर्गात् परो । * तहीका, चिक्रण्हीकसे। अपि किं—सत्षष्ठः। अदानाटीः वितं--षट-ते । ф

8८। षसां षस्विति षस्गर्यः। ण्ते निपात्यन्ते । **🕸**

8६। ले लस्तोः। (लेल, के रा, ती: ६।)।

ले परे तो लेकार: स्थात् । १ तज्ञयः, विदाँ ज्ञिख्ति । यली दिधारी निरनुनासिकः सानुनासिकः। जमीऽनुनासिकस्तेन तत्स्थाने सानुनासिकः॥ ¶

पूर्वतः स्तु दत्यस्यानुवितः । एभिरिति बहुवचनं पूर्ववत् । मूर्वन्यवकारटवर्गयो-रन्यतरेण सह प्रव्यवधाने स्थितौ दन्यसकारतवर्गी क्रमात् मुईन्यपकारटवर्गे। भवतः, न तु मूर्जन्यवकारे परे. न च पदालटवर्गात् परिकाती। घटत्-सन्त इत्यत्र नगटनङ (५०) इत्य-नेन टस्थाने तनकरणादेव, अनेन पुन: तस्थाने टकारी न स्थात्। पाणिनिः? प्याधाधर-४३५

⁺ तत टोका≔ तहीका, चिक्रन्-टौकसे च चिक्रस्टौकसे; हे चिक्रन् लंगच्छ-सीत्यर्थः, ढौक्रङ्गतौ इति कविकल्पद्रुमः ।

[‡] षष् नामे -- षसां, षष्प्रव्हाटामो नुमागमे (११०) निपातनात् षस्य णले षसा-मिति । यद तुगीयत्वात् नुभागमी न स्थात् तद न निपातनं तेन पतिष्वाभिस्येव । षड्धिका नर्वात: षस्पर्वति:। षस्पा नगरी षस्परी। नगरीति स्त्रीनिर्देशात् षड्-नगर्मित्यच न स्थात्। ''चनाम्नवितनगरीणामिति वाच्यम्'' इति वार्त्तिकम्।

[§] ती स्तवर्गस्य । पञ्च दाले स्थितयीसकारनकारयीकदाइरणवलात् दाले दति ●बीध्य, तेन सुबन्ल्गि (२४२) इत्यचन नस्य ख:। पाणिनि: ८।४।**६०** ।

[¶] विदाँ क्रिखतीत्वच भनुनासिकहेतुमाह यखी विवेति । भनुनासिकीऽदेवन्द्राक्ततिवर्षे

प्रा चोर्नु र्भस्यदान्ते।

(स्ती: ६॥, तु: १।, भामि ७।, पदासे ७।)।

श्रदानी स्थितयो भीनयो नुः स्थात् भसि परे। रंस्थते, वृंहि-तम् । 🎋

पूर्। अपे अम बो:। (अपे श, अम ।१।, नी: ६)। अदानी स्थितस्य नो जीपे परे जम स्थात । यान्तः, अङ्कितः । 🕆

पूर्। वा त्वरयपेऽरयम्। (वा ११), त ११), अरवपे २०, परवम् ११)।

दान्ते अदान्ते वा स्थितस्य नो रेफवर्ज यपे परे रेफवर्ज यम् वा

कदः, अपिच नामिकामनुषद्यीक्षत्य उचार्थते इसी इति व्यताच्या अनुस्वार अभे च वर्त्तते। नास्ति री यस्तिन भीऽरः यल इत्यस्य विश्रेषणम्,ततय रिभन्न यलप्रत्याहारी दिधा भवति — निर्तुनासिक: — पर्डचन्द्राक्ततिवर्णग्यः, सानुनासिक: — प्रर्डचन्द्राक्ततिवर्ष्णग्र्यं कथा जमः खभावादनुनाधिकः --नाधिकामन्लद्यौक्तत्य जवार्यमाणः तेन हेतुना तस्य स्थाने जायमानो यल: सानुनानिक: चर्डचन्द्राक्ततिवर्णपृर्व्वक एव स्थात, कारणगुणा: कार्य्य-गुणनारभन्ते इति न्यायादित्यर्थः। ण्वम् भनस्वारकातो धल् मानुनासिको भवति । विदाँ क्रियतीत्यच नस्थानकातत्वान् चकारस्य कर्दधन्द्र।क्रतिवर्णपूर्वकत्वम्, अर्थचन्द्राकृति-वर्षस्य भनुस्वारैवत् पूर्व्वेषेव सम्बन्धः । भर इति किम, भवावशीत्यादौ (२६१) वनी न-स्यानजातीऽपि र: निरनुनासिक एव । पाणिनि: १।१।८।

^{*} रंखते इति रमधाती: स्पर्ते विभक्ति:, पदमध्यगलात् मस्यादान्तलं, रम्-स्पर्ते == रंखते । इडिधातीः इटिचेन नुणि ताप्रस्यः, त्रतएव नस्यादान्तलं, हन्-डितं - इंडितं. क्षो भन्नस (२१) द्रत्यनेन इस्य भन्त्वन्। घटान्ते दति किं— राजन् भुङ्खः। भन्नीति किं-नयसे, रम्यते। पाणिनि: ८।३।२४।

[🕇] चदाने स्थितस्य मनुस्तारस्य प्रश्लेकवर्गाचरे परे तदर्गश्रीषाचरः स्थात् । 🕊 पूर्व्यः तीऽनुवर्त्तमानेऽपि नीरिति पुनगहण छामान्यानुस्वारपान्त्रप्रम्, पून्यया कीयलमकारनकार-भातानुखारप्राप्ती जञ्जन्यते (८२७) इत्याचिसिद्धः स्थात् । श्राम्-तः = (५०, ५१) श्रान्तः, • चन कितः च (५०,५१) चिक्रत । शस्याती अन्कधातीच कः । पाचिनि, पाश्राप्रदा

स्यात्। * यत्नोऽतुनासिकः। पं यय्यम्यते ययम्यते कः, हरि-भाज हरिंभज। कम्पते हृदति पूर्वेण नित्यम्। ऋरे किं— रंग्यते।

पूर्। दान्ते मोऽसमाजो इसे नु:। '

(दानी था, म: ६।, भरुधात्र: ६।, ४से था. तु: १।) ।

दान्ते स्थितस्य मस्य इसे परे नुः स्थात्, न तु सम्बाजः। भिवस्तौति। असम्बाजः किं—सम्बाङ्ति। श

पूछ। पुंस: सन् खप्यस्परेऽख्ये।

(पुंत: ६।, सन् ।१।, खिष ७।, चम्परे ७।, प्रस्त्रे ७।)।

अपृथक्षीमात् अदः लेडित नानुवक्ति, तेन दानी भदाका वायं विधि: । तथाक, दाली भदाका वा स्थान आप्तां अनुस्थारस्य यवले परे यवला वा स्था; दानी स्थातस्य कु वर्गाचरे परे तदगीकी वा स्थाटिल्यं: । दानी यवले परे यथा—लंग्यक्त लंगका, संस्कृत्यों मि मवणीमि, लंबुन्थः लंजुन्थः । भदाकी यवले परे यथा—वंग्यस्परी यंगस्पते, वंजस्पते लंबस्पते लंबस्पते लंबस्पते । रमधाताः ध्याकरेण लमधातुसिद्धि, रन्पात् सन्पात्नाः पाणिनः पारात्रिः । १४८।

[†] यलोऽतुनाधिक इति— अन जायमानी यलः भनुनाधिकः भनुनाधिकवानित्ययः, भश्चादिताद्यत्त्यः । यमोऽनुनाधिक इति तु लिपिक्रमाद्याटः, तथाते इश्मिन इत्यनापि भनुनाधिकपुन्नेक जमापभैः।

[‡] यसधाती यंडिं — यं थस्यते = यय्यस्यते, (वा) यंयस्यते !

^{\$} कन्-पते (५०.५१) = कस्पते। एवं भवनी, ऋजिश्वष्ट इत्यादि। सूत्र सनुस्नारस्य भदाने स्थितत्वान पुर्वमृत्रिणैव नित्यमादेश:।

[¶] शिवस्-स्तीति = शिवंसीति । सस्-राज्-इति चससाङिति, इतिश्रद्देन ससाज-श्रद्धी यसिद्धये इटसचैक् वर्जनिति वीध्यम् । इदिसु—वेनष्टं राजस्येन सस्कलस्थियस्य यः। शास्ति य्याजया राज्ञः स ससाङिल्यमशीकोः । तेन संशोधनं राजते इति संराट् चन्द्र इत्यच श्रनुस्तारः स्वाटेव । पाणिनिः पश्शरुश्युः।

पुंसो मस्य सन् स्थात्, ग्रम्परे खिप परे, नतु स्थे। क्ष पुंस्तीतिसः। ग्रम्परे किं—पुंचीरम्। ग्रस्थे किं— पुंस्थातः। प

५५। नोऽप्रशासप्रक्रमे।

(न: ६।, घप्रधास>६।, क्ते ७।)।

दान्ते स्थितस्थ नस्य सन् स्थात्, श्वम्परे छते परे, न तु प्रश्रामः । श्रं शार्ङ्गिन्छन्यि, चृत्रिंस्ताहि । श्रम्परे किं—सन्-सन्तः । श्वप्रशामः किं—प्रशान्तनोति । §

पूर्द। कांस्कान् नृं:पिवा।

. (कांस्कान् ।१।, नृं: ।१।, पि ७।, वा ।१।)।

कांस्कान् कान्कान्, नॄं:पाह्यिनॄन्पाहि । ¶्

अपम् परी यस्नात् मोऽम्परसिसन्, खपौत्यस्य विशेषणम् । पूर्वेन्नात् मकारः
 अपनुवर्णते । मनो न इत् तेन (१०) मस्याने भवति ; मकारे अकार उत्त्रारवार्षः ।
 पाविनिः ८।३।६,वार्त्तिक्ञः ।

[†] पुनायाकी कोकिलयेति विग्रहे (१८३) पुन्कोकिलः: =(६०) पुंस्कोकिलः, लुप्त-सकारस्यादिविधित्वात् (१५) सस्य विस्गोमावः । एवं पुंस्कृतिः, पुंस्पानं, पुंस्पुत्रः, पुंसातक इत्यादि । पुंसः स्वतास्पदीभृतं चीग्म् = पुंचीरम् । पुंभिः ख्वातः = पुंच्यातः ।

[‡] भ्रम्परे, दानी, सन्, इत्येतेषाम् भनुइतिः, सनीन इत् (१७) नस्यान्ते भवति ; सकारे भकार उद्यारणार्थः । अत्र सस्थिजतितरनकारी याद्यः, तेन किन्तव इत्यादौ न नस्य सन्। पाणिनिः ८।३।७।

[ु] ग्राङ्गिन्-किन्स = ग्राङ्गिन्-म-किस्सि (५०,४६) ग्राङ्गिन्किसः। चिकान्-चाहि च चिकान्-स-वाहि (६०) च चिकास्त्राहि । सार्वः खड़ादिनुष्टौ स्वादित्यमरः । प्रशाम्-तनोति (९०२) = प्रशास्त्रनोति ।

[¶] कान् कान् इति पददयस्य स्थाने कांस्कान् इति पदंनिपास्यते वा, प्रकारे परे तु

५७ । न गटन ङ ञ्चकन् ग्रायस् स ग्रसि वा।

(न खटन ङ: ६।, चकन् ।१।, स बस् स मसि ०।, वा ।१।)।

शन्ते स्थितस्य नस्य चन् शे, एस्य टन् श्रीस, टनयोस्तन् से, **त्य कन् ग्रसि, स्यादा । * , सञ्क्ष्युः सञ्च्यम्यः, सञ्**ष्यभः, ।गण्ट्षष्ठः सुगण्षष्ठः, षट्सन्तः ष्ट्मन्तः, सन्तः सन्सः, ाइ ्षष्ठः प्राङ्षष्ठः । 🕆 🕇

पूट। चपोऽबे जब्। (चप: ६।, अर्व ७।, जब्।१।)। ानी स्थितस्य चपस्य जब्स्यात् अवे परे। वागीयः, चिद्रूपः ।\$

पूर। जमे जम् वा। (जमे था, जम ।१।, वा।१।)।

[इति पदस्य स्थाने नुं: इति सानुस्वारिवसर्गान्तं निशत्यते वा इत्यर्थः । कान्-कान् कांस्कान्, (वा) कान्कान्। नृन्पाहि ⇒नृं:पाहि, (वा) नृन्पाहि । पाणिनिः 1 0515210215

^{*} टस नम्र टनं, नम्र गम्र टनम्र उम्मिति तस्य। चकात् न् चकन्, चक् प्रत्याहारः, ाच चन् टन् तन् कन् इति चलारि। दान्तं इत्यन्वक्ते । वा ग्रहणं परव निव्नचर्थम्। ादीनां न् इत्, तेन पर्ले भवन्ति (१७)। पाणिनि: ८।३।२८-३१।

[🕇] सन्-प्रमु: (५०.५०.५१,६१), वयी यवैकवर्गीया मध्यमत्तव लुखते इत्यनेम ोपि = सञ्क्रमु:। (पाणिनिमते सञ्च्छमुरित्यपि पदं स्थान)। (६१) पद्मे न गस्य सञ्ज्ञाः। अन अभावपत्ते (४६) सञ्ज्ञानुः। सुगण्-वष्ठः च सुगस्वष्ठः (वा) ण्वष्ठः। षट्-सन्तः = षट्तानः (११) षट्मनः। सन्-स. = सन्ताः (वा) सन्सः। ङ्षष्ठः = प्राङ्घष्ठः (वा) प्राङ्घष्ठः ।

[‡] दार्लं इत्यनुवर्त्तते । चप्र्याने जब् स्थात्, साम्यात् यथान्न संवा । वाक्ईशः वागीश:। चित्-इष. = चिद्रूप:। पाविनिः पाराहर।

दान्ते शितस्य चपस्य जमे परे जम् वा स्वात्। एतं सुकुन्दः एतद्मुकुन्दः । अ

६०। त्ये। (७) ।

त्ये में परे दान्ते स्थितस्य 'चपस्य अम् स्थावित्यम्। चिनायं, वाक्ययम्। पं

६१। शहोश्वपात् वांमि ऋक्षभौ।

(श्रहो: ६॥, चपान् ५, वा ।१।, श्रमि ०।, क्र-मभौ १॥)।

दान्ते स्थितात् चपात् परयोः य इकारयोः क्रमेणामि परे छ-भाभी वा स्तः । अ तिच्छिवः तच् ियवः, वाग्वरिः वाग्हरिः । श्रमि किं—वाक्षयोतित । §

अ चप इत्यन्यत्तेते । एतत्-मुक्तन्दः ः एतन्युकुन्दः,(वा) (ध्रष्) एतदसुकुन्दः । पाण्यिनिः ⊏। ४। ४।

[†] त्यः प्रत्ययः. त्ये ज ण न ङ द्रत्येतेषासभाषाटाह से इति । विजयद्वयस्त्यवर्षि-त्वादस्य नित्यत्वम् । वित-सर्यः = वित्ययं —(४८६) चिदात्मकम् । वाक्-सर्यः = वाद्ययं — वागात्मकास्त्रत्यदेः । "तत् प्रकृतवचने" इति पाणिनिस्त्रंण (५।४।२१) स्वार्षे चित्ययः सिति सिद्वसू । ''एकाचो नित्यम्'' इति भिज्ञान्तकौसटीसतेन विकागवयवयोग्ययोः सयटप्रत्ययेन, "तत् प्राचुर्येण प्रमृतमिति" गोथीचन्द्रव्यास्थानेन च वाद्ययमिति सिद्धम् । पाणिनः ८।४।४५ म्वस्य वार्तिकम् ।

[‡] शहीरित स्थानिनिर्देशात् चपो निर्वत्तिः, चतप्य पुनयपो ग्रहणम् । दाले स्थितात् चपात् परस्य नालञ्ज्यसारस्य स्थाने क्कारः स्थात् एवं ताद्यग्नपात् इकारस्य स्थान्, चप्रत्यादारे परे । अत जन्नरसास्य गान्नां, तेन चान् इस्य भ, टात् इस्य द, तात् इस्य घ, कात् इस्य घ, पान् इस्य भ । पाणिनिः ८।४।६२,६३,५५, वार्तिकञ्च ।

 $[\]S$ तन्-शिव: (६१, ४६) = तक्किव:, वा (४६) = तक्किव:। वाक् इन्ः (६१. ५८) = वाग्विः, वा (५८) = वाग्विः। वाक् द्वीततीलात तालव्यमकारात् पर्यस्थतः ककारस्य कन्नाभावान् न भस्र कः।

इं२। खासङोऽचि दिः।

(खात् प्रा, णडः: १।, श्रवि ७।, दि: १।)।

स्वात् परो दान्ते स्थितो गङो दिः स्थादि परे। अ सुगसीयः, सत्रचुतः, प्रत्यङ्ङाक्सा । 🕆

६३। क्रोऽचा। (कः री भव. था)।

ग्रच: परश्रुकारो दि: स्थात्। **क्ष**

ई । अप्रासी: खस्आवी अप्जवावन्ते च।

(भएभकी: ६॥, खस्मनी: ७॥, चएमैंबी १॥, अर्ल ७।, च।रा)।

भाष्भासयोः स्थाने खम्भावयोः परयोः क्रमात् चष्-जबौ स्तः, विराने च। श्रिवच्छाया, श्रच्छा। §

इति इस् सन्धिपादः।

^{*} बिरित (४८५) सुजलसञ्ययम् । अत (१८२) घर्याणी इति, (१८२) पिननान् घे इति, (६२२) सन्यङ्कां बिरित्यादिज्ञापकात् समासे पाङो दिने स्थादिति बीध्यं, तेन घनलः, सनलः, तिङ्लः, यङ्काः, उपादि, वनादिः, इत्याद्यः भिर्जाः। वस्तुतस् प्रापकजापित्विधर्गनत्यतात् कांचदिप स्थादेव, यथा, "सलिङ्गास्ते. सन्नादिक्तचिक्तचिस्सास्तेः" इत्यमरः। स्वादिति किं, प्राङ्चासे ⇒प्राङासी। दाले स्थित इति किम्, प्रनितीत्यादी न स्थात्। पाणिनिः ⊏।३।३२।

[†] सुगच र्ब्यः = सुगचीयः, सन् श्रच्युतः = सन्नच्युतः, प्रत्यङ्-पात्मा = प्रत्यङ्ङात्मा ।

[‡] भन, मा(ङ्), भारङ्)भिन्न दीर्घात् पदान्ताच विकल्पनिति वक्तव्यम् । वार्त्तिकमते इन्दिश्च विश्वजनादः परीऽपि विकल्पन, यया, विश्वजनच्छनं विश्वजनक्त्रमित्यादि । पाषिनि: ६।१।०१-०६ ।

[§] अप्तपः खासि चपादेशी आप्ती अपनि अवस्तया। विरामे तीतयीः स्वासामिन्यर्थः सम्प्रकोत्तितः॥ स्वष्टनाइ — वर्गोदिवतुष्टयस्य स्थाने तदर्गस्य प्रथमवर्षः स्थान् स्वसे पर,

8र्थ पाद:--वि-सन्धि: I

६५। वे: सोऽग्रसन्ते छते।

(वं: ६।, सः १।, भ-भसन्ते ७।, कर्त ७।) ।

वे: सँकार: स्यात् अ-ससन्ते छते परे। क्रणासिन्य:, इरि-ष्टीकते, विष्णुस्ताता। ससन्ते तु—क: सरः।

६६६ । सेतुका-ख-प-ंफेवा।

(में ७, तारा, क' खप फें । वा।रा)।

वैः सकारो वा स्थात् क-ख-प-फेषु परेषु, से सित । भास्करः भाःकरः, भास्वरः भाःखरः, भास्पतिः, भास्फेरः भाःफेरः । । ।

भन्ने परंतु तदर्गस्य तृतीयवर्णः स्यात्, विरामे तृतदर्णदयं स्यात् । विरामः परवर्णा-भावः । श्रसः स्थाने तृसास्यातुसारंणः, यथा (२१३) दृत्यमकारस्य दः । पाणिनिः दाक्षाप्रसुप्रप्रपृद् । "वाससाने" (८।४।५६) इति पाणिनिमृतेण विरामे परेविकत्यः ।

^{*} कृत — कृष्ठ य च ठत । म्रश्रमन्त इति, कृती विशेषणम् । क्रणः-चिन्त्यः (४६) = क्रणायिन्यः, । ६००:-टीकते ४८०) -- इरिटीकते — इरिगंष्कतीत्ययः । विणा.-चाता च विणास्त्रातः। कन्सरः – तकारस्य सकारान्तवात् न वः सः । पाणिनिः ⊏। ३।३×-३३।

[†] तुकारान् परच समामान् इतिनांकि। भवापि श्रग्रसन्त रिति विशेषणस्यानु इति:—
तिन च भर्य वाम उत्यादी न स्थान्। वाग्रव्हीऽत व्यवस्थावाची — तेन, कार काम कंस
कुम्भ कृशी (कुश्रा) कील क्षर्थ कृषीं कुम्भित कास्छ कृत. करोति क्रस्य काम्यक, पित पाव
पाठ पाश्रेषु—परिष् नित्यं स्थान् प्रयोगतांऽत्यवापि, यथा श्रयस्कारः, पयस्कुम्भ इत्यादि।
गी.कारः गी:काम इत्यादिवं न स्थान्। भामं करोनोति भासा खरसीच्याः, भासां
पितः, भासा फेदः प्रगालविश्रेष इति क्षमिण वाक्यम्। पाणिनिः पाः प्राविधिकः अद
(विश्रषतः प्रश्राह्म सुष्ठ स

६७। शसि शसां(बिकि.चा, बस्।१।)।

वै: यस् वास्यात् ग्रसि परे। इरिक्रीते इरि:ग्रेते. सन्तर्य-षट् सन्तःषट्, शिवस्रोत्यः शिवःसेव्यः ।*

६८। कख-पफयोर्मृन्यौ।

(कख-पफ्यो: ०॥, मृत्यी १॥)।

विर्मृन्यौ क्रमात् वा स्थातां कं ख-पफयोः परयोः । 🕆 हरि imes काम्यः हरि:काम्यः, मर्थimes खिनः मर्थःखिनः, क्षण्या $^{n_-}$ पाता क्रणः। पाता, भित n फ चिति भित्तः। फचिति।

६८। ऋतोऽइब्यः। (षतः ४।, षत्-इवि ७।, छः १।)। श्रकारात् परस्य वेक्कारः स्थात् श्रकारे हृत्वि च,परे। शिवोऽर्च:, शिवोवन्धः। क्ष

७०। त्र भो भगो त्रव्वोस्योऽने लुप्।

(भ भी भगी भघीभ्य: ५॥, भवे ७।, खुप ।१।)।

अ.च.चेषु परेषु विसर्गस्य क्रमेण अ.च.सावास्थुरित्यर्थः। पाणिनिः ⊏।३।३६। † मच्छ्कमुतगत्था पत्र प्रश्नसन्त इत्यनुवर्त्तते, तेन कः चीच कः साति इत्यादी न मुसी। व्याधनतोः परेऽपि न स इति वक्त यं, तेन कः स्थातः। पाणिनिः पा ११३०।

[‡] भत्र भश्रसना इत्यस्य भनुवित्तर्गीका भनिष्टलात्, तेन रामोऽत्रातीत्यादी स्रादेव । भिवीऽर्च इत्यादौ, प्रकृते: पूर्वपूर्वं स्यादन्तरङ्गतरं तथित न्यायेन विसर्गनातात् जकारतोऽन्तरङ्गस्य पूर्व्वाकारस्य सम्बन्धिनः सन्धेर्वलयत्तात् प्रथमतः न जकारस्य विकारः। (६८,२१,३८) - शिवीऽचं: । शिव:-वन्दा: (६८,२१) - शिवीवन्दा: । भव भकारादमुतादिति भमुते भतीते चवक्तव्यम् । तेन सुत्रीत भव, पय प्रक्रिदक्त इत्यादी न स्थात्। पाणिनिः ६।१।११३-११४।

त्रवर्णात् भो भगो त्रवास्थव परस्व बेर्झ्प् स्वात् चवे परे। बद्रा नमस्याः, भा हरे, भगा रच, त्रवी यज । *

९१ य वाचि । (य ।११, व ।११, व व ।१) । प्रवर्णात् भी भंगी अवीभ्यच परस्य वे यो वा स्याद्धि परे । शिवयुप: शिवच्यः, भीयच्युत भी अच्युत । पं

७२। रिचोऽने। (राहा, रवः था, वर्त वा)। इत्तः परस्य वे रेफः स्यादवे परे। इतिरयं, चतुर्भुजः । क्ष

७३ | रोंऽच: | (रः ६१, घषः ५१)। श्रवः परस्य रेफस्य वेरेफः स्यादवे परे। त्रातरव, धातर्थेच्छ। है

क षत्र भी: भगो: पदी:-पदानि भवत् भगवत् अघवत्श्रव्दानां सम्बेषिनसाधितानि (१२६), विकालकौसदी-गोथीचन्द्रसते सालाव्ययानि च बाध्यानि । भो: इरे— ई इरे. भगो:-रच-भगवन् रच, पदी:-यम--अघवन् (पापिन्) यज--पूजय । प्रकारात् पदि पदी-- शिव पागच्हति । पाणिनि: पाश्र, १२।

[†] भी मच्चृत इत्यादी (१५) लुपि न समीति न समि: । किस मजा निर्द्विष्टमनित्य-मिति न्यायान, सेव दाशरथी राम: सेव राजा गुधिष्ठर:. एवेष रथमावद्य मधुरां याति साधव द्रव्यादि सिक्ति: (पा. ६।१।१६४) । पाणिनि: ८।६११०,१८,२४ ।

[‡] प्रचः पति साष्टार्थम् । सामान्यविभेषन्यायसभ्याच्छाब्दोऽषः साष्टी भवति । इति:-चर्यः = प्रतिर्यः ; चलारी भुना यस्य स चतुःभुनः = चतुर्भृनः । पाणिनः व्यक्षिष्ठः, दार्शद्दं ।

[§] इसात् परस्य रेफजातविसर्गस्थासस्थवादेव सुतरासकृपाधी दच्तिकच्छे पुनरची-सहस्तम् । चातर् (१०२) चचातः-भव = चातरव, एवं धातः-गच्छ = घातर्गच्छ । पाविनिः ⊏। शर्भ, ⊏। शर्भ, ⊏। शर्भ ।

७४। खपिवा। (खप्ति का, वा ११)।

श्रपः परस्य रेफस्य वे रेफः स्याद्या खिप परे। गीर्पितः गीयितः गीःपितः। *

७५ । नाझो रकंत्रौ । (नाशा, पक्षः सा. रक्षेती था)। प्रक्री रेफस्य वे रेफी न'स्थात् रेफें के क्षीच परे। पं प्रहीराजः, ग्रहस्करः, ग्रहीभिः। इः

७६। इस्रेतत्तरोऽनञतः सेर्नेपः।

(इसि था, एतद-तद: ५१: चनअकः ५१, से: ६।, लीप: ११)।

नजक्वजादितदस्तद्य परस्य सेवें लीपः स्थात् इसि परे। एष-

[•] पूर्वतः चचीऽतृश्क्तः। मख्कामुतगला (६६) से तं काखपर्षे इत्यतः से इति चातुवर्णते। तेन इयं गीः पितरकी इत्यादी न स्वात्। एवं गिर्धुर् चक्ष्न् एषामेव विसर्गस्य पितास्ते एवं एवं प्राथी बीध्यं, तेन गीःपाठः चाशीःपितिरिलादी न स्थात्। क्वित् प्रयोगागुसारात् निल्यमपि, तेन चतुर्थभिति (४५५) स्वयमुदाहरिष्यति । भीर्(१०२) गीः-पितः = गीपंतिः, (६६,१११) = गीपतिः, वा गीःपितः। पाणिनः द्वारादि स्वे "चहरादीमां पत्यादित्र वा रेफः" इति वार्त्तिकम्। चव "गीपतिरिल्यस्याध्र" इति कमदीवरः । सिक्षान्तकीमुयाच "पर्च विसर्गीपक्षाभीयौ इत्युक्तलात् भीःपितः गीळपतिः इत्येव पदवयं स्थात्। सुरुषे तु गोष्यतिपदं हस्यते । कालके तु त्वास्ति । गीष्यतिर्थवणो गुवरिल्यमरः।

[†] चत्र रिफे इति रानि-इप-रचलर-मन्दानामेन, तेन चडा-रचली; चडा रवी, इत्यादी रिफ: स्थान । एव किपदेन प्राप्तकीपक्तरिय गड्यं, तेन दीर्घाडी निदास इत्यादी (१८८) इसान सिलोपेडिय रिफानिवेष: । केर्नुकित त तत्र रेफ: स्थादेव, तेन गताइ-वैक्तिलादी (१६८) सेर्नुकि रिफ: स्थादित । पाचिनि: पाराहेट, वार्तिकस्थ ।

[‡] कहन (२२०) = कहर्, (१०२) कह:-रावः (६८,२३) = कहीरावः । कहः-करः (६६) = कहस्तरः । कहः-निः (६८,२३) = कहीनिः ।

क्षणः, स-विष्णः। धनव्यकः विष्म्—+घष्ठः श्रिवः, >एवको इदः।

७७। द्रोद्धि र्घश्वानुः।

(ढ़ो: ६॥, ढ़ि ७५, घं: १।, च ।१।, (भन् ऋ) = भनु: ६।) ।

ठकारस्य ठकारे परे, रेफस्य रेफे परे, लोपः स्थात्, पूर्वस्य च ऋवर्जस्य र्धः। रूढ़ः, हरीरस्यः। अनुः किं—ढढ़ः। पे

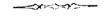
इति वि-संसि-पादः।

' इति सन्यध्यायः।

[#] न विद्येते नञ्जती यत्र सीऽनञ्जकसम्बात्। सदप्याचक-सः शब्दस्य इष-धातु-निष्यवस्य एव-शब्दस्य च वारणाय एतत्तदोर्य हण्यम्। एषको कद्रद्रति स्वनियमव्यतिकसी-दाइरणदर्श्वनात् एतत्तक्षां सद्ग नञ्जकोर्वकः। पाणिनिः ६ १११३२। सीपे सत्येव चित्पादः पूर्यते, तदा चित्र परिसर्थिनति, ७१ मृतस्य टीका द्रष्टव्या।

⁺ न स्रृष्ण तस्य भनुः। भन जीपविधिर्मेष्यतात् हृद्धस्यादी स्वकारस्य द्वीर्घाभावेऽपि हृद्धीपः। यन तु लीपो न भवति तत्र दीर्घोऽपि न स्वात् दीर्घविधिरातु-विक्रिकालात्। बद्दः - बदः। इतिः रस्यः (७२) = इदिर् रस्यः - इरीरस्यः। पाणिनिः ⊑ाश्रदः १४, ६।११११।

२य:। चननाध्याय:।



१म पाद:-संज्ञा।

७८। ले: --ंसि श्री जस, श्रम् श्री शस्, टा थ्याम् भिस्, डे थ्याम् थ्यस्, ङिस य्याम् थ्यस्, इन्स् श्रोस् श्राम्, डि श्रोस् सुप्।

(ले. प्रा. सि--सुप् ।१॥) ।

स्यादीन्येकविंगतिर्ने: पराणि प्रयुज्यन्ते। अ जगट ङ पाः सि ङस्योरिकारचेतः। पं

७६। चिग: प्री दी ची ची घी घी प्रयः।

(चिम्र: ११॥ भी-स्राः १॥)।

स्यादीनि चीणि नीणि कमात् प्री ही ची पी की प्री-संज्ञानि स्यु:। अ

[#] सिप्रस्तयः एकविंग्रतिर्विभक्तयः चिक्कात् रामादिप्रकृतिभ्यः परस्थिता एव प्रयुक्यन्ते विभक्तीनां न तुप्रयक् प्रयोगः, रामादिप्रकृतीनामपि केवलानां न प्रयोगः, नापदं श्रास्त्री प्रयुक्तीतिति न्यायात् । पाणिनिः धारार । सुस्थाने सिः, भीट् स्थाने भी— इत्येव भेदः ।

[†] विभक्तीनां ज म ट क पाः इतो भवित, सि कस्योरिकारस इत् भवतीयर्थः ;— जसी ज इत्, मसः म इत्, टा इत्यस ट इत्, के कसि कस् कि एवां क इत्, सुपः प इत्, सि कसि एतयोः इक्तृस्य इत् भवतीति साष्ट्रम् ।

[‡] सि, भी, जस्,—प्री; चस्, भी, ग्रन्,—दो; टा, भ्यान्, भिस्,—की; के, भ्यान्, भ्यस्,—ची; कसि, भ्यान्, भ्यस्,—पी; कस्, भीस्, भान्,—की; कि,

८०। सम्बुडी सिर्धिः।

(सम्बुडी का, सि: १।, भि: १।)।

सम्बोधने विहितः सिः धि संज्ञः स्वात्। *

द्र। समीजसं वि:।

(सि चम ची अस्। १॥, घि: १४)।

सि धम् भी जस् एते घि संज्ञाः खुः। 🌵

८२। ग्रि: स्तीवे। (वि: १०, कोवे अ)।

नपुंसके थिरेव घि-संग्नः स्थात्। इ

८३ 1. दान्तवत् सिभ । (दानवत् ।१।, सिम ७।) ।

भीम्, सुप्,—क्षी। प्रयमा दितीया छतीया चतुर्यां पश्चमी वस्त्री नाम् एक देशं यहीला नदादिलादीपि एताः संक्षाः क्षताः । (१२) स्वेण स्थादीनां (क्षि) विभक्ति-संक्षा क्षता, (पाणिकिः २।४।१०४)। (१३) स्वेण च प्रत्येकम् स्कव्यन-दिवयन-वह-वयनेषु एताः प्रयुज्यन्ते इति बीध्यम्, (पाणिनिः १।४।१०३)।

^{*}सम्बुडि:—सम्बोधनं, चेतनाचेतनशोराभिसुख्येऽभिधानं, तत्र विहितस्य से: भिसंबादत्यर्थः। पाणिनिः २।३।४६।

[†] भव प्यूमी चिरिति कते, सस्वीधने सिर्धसंज्ञाविधानकपविश्वेषेण प्रथमायाः चिसंज्ञाकपसामान्यविधिनां धितः स्थान्, तेन हे प्रयाः (१६०) इति पटं न सिध्यति । भौ इत्यस्य भम्त्रसीक्षंच्ये पाठात् भौकारकपस्य ग्रहणम्, भन्यया व्युश्कमनिर्देशी व्यर्थः स्थान् । पाणिनौ सुट्प्रवाहारस्थौकारेण न प्रथक् संज्ञा क्यता । (१।४।०) सुवस्य-धि-संज्ञादाः भयंस् भिन्न एव ।

[‡] नपुंसकी (१६२) नस्थानी: स्थाने जात: ब्रिटिन विसंक: स्थात्, नतु स्थादिरिवार्थः। तेन नारिकी इत्थादी नसम्मङ्गेति (१६४) न दीर्घः। पाकिनि: (७१।२०) सूर्व इष्टसम्।

सभयोः परयोदीन्तवत् कार्यं स्थात्। *

८१। भौ लिध्बोईसमसोरने च।

(भी ७. लिध्यो: ६॥, इममासी: ०॥, मन्ते ०।, चारा)।

भी परे यत कार्यं वकाते तक्षेत्रीं भी भी स्थात, श्रेन्ते च तयो: । क

८५ । इसोऽन्तः फः। (इसः ११, घनः ११, फः १)। इसी विरामस फ-संज्ञः स्थात्। ध

दई। सम्बे विश्व उभ उभय भवत् त्व**त्** त्वैक सम सिम नेमाः, अन्यान्यतरेतर इतर डतमा:, त्यद तद् यद् एतिददमदः किम् द्यसाद्

से भे च परे वस्तोऽदान्तस्यापि दान्तवत् कार्यं स्थात्, यथा, सृहिन्सु इत्यादौ हानवस्वात स्त्रीनंरित्यनेन (५०) न नत्यानुखार: । एवं पुश्चारं पंथ्यानित्यादी दान्तवस्वात द्यानी स(५३) इत्यनिन सध्यानुखारं,वा लरयपी ५२) इत्यनिन चनुखारस्थाने सकारी विति। भव सभौति स्वादरेव, तेन विदास इत्यादो भदानातात (४०)नस्वातुम्बारः, दश्च इत्यादी च नसानुस्तारः, चनुस्तारस्य च (५१) मकारः । चत्र दवत् सभौति नीक्वा दान्तवदिति क्यनेन, दानालेन विदितंयत् कार्थे तदेव स्थात् नत् विरामविद्यितिति, तेन लिटसु द्रवादौ (६४) अप्रमुमसीरित्यनेन विराममाश्रित्य न जब्। पाणिनि: १।४।१६-१७।

⁺ यत कार्यं भी पर बच्चते तत्, लिङ्गस्य इसे परे, घातीर्भंसे परे, एवम उभयोरिव विरामे परे स्थात । इस इह स्थादेरेव, तेन दिशि भवं दिस्समित्यादी प्रकाजित्यादिभि: (१५४) घडादि ने स्थात । पाणिनौ भि संज्ञान हस्यते ।

^{🛨 (}२०२) धीर्ष्मीन: ऋस्वीत्यत्र सवयो: पृथक्यक्षणस्त्ररशान् पत्र इस: स्यादेरीव, तेन हरः हरितियादी घीड़: फी (१५५) इति न स्थान । विरामसु स्थादेखादेख । भनी विरामः, परवर्षाभाव इति यावत्। पाणिनौ फ-संज्ञा न हक्यते।

युष्मदः, पूर्व परावर दिच्चे त्रापराधराक्तरखाः, चिः।

(सर्व-निना. १॥, षत्य-डतमा: १॥, त्यद-युषदः १॥, पूर्व-स्वा: १॥, सि: १।)।

दभेदेश्गणभेदार्थः। एते पृष्वित्रंगत् ग्रव्दाः सिसंज्ञाः स्युः। *
समोऽतुकी, व्यवस्थायां,पूर्व्वाचीऽत्रान्तरोऽपुरि।
विद्योगीपसंव्याने, स्वस्वज्ञातिधनाभिधः॥ पृ

८७। न गौग्वाख्याचनीसासे।

. (न ११), गौखाखप्राचचीसासे ७।)।

गीगले, संजायां, चे,'त्याः से असे च, ते स्त्रिसंजा न स्युः। *

[#] सम्बादिगणः -- मर्वे विश्व एम उमय भवत् तत् त एक सम सिम निम रित। भवादिगणः -- पर्वे भवतर रतर उतर उतर उतम रति। त्यदादिगणः -- त्यद तद यद एतद रदम परस् किम हि भक्षद युमद् रति। पूर्वे दिगणः -- पूर्वे पर भवर दिविण उत्तर पर पर भवर भवर स्वत् । एवां (१६५,१३३,११४ स्वेष्) विशेषकार्यार्थं गणभेदः। सम्बंषां बुडिस्थानां नाम -- सन्वेनाम, तदेकदेशग्रहणान सिदंन्यादिः। उभयशब्दस्य हिवचनं नासीति कैयटः, भसीति हरदतः। भवत् मन्ते गुमद्यः। तत् त्व रित ही भवायों। एकश्वत्रे यदा सङ्गावाची तदा एकवचनान्तएव, यदा सुख्यादिवाची तदा हिवचनवहुवचनान्ते। प्रा स्वत्रे सिमः एतो सन्वीयों, नेमः च्यायेः। नेम रत्यद्वे रित विद्वानकृतिदो। उतरान्तवः पि भ्यतरयहणम् भन्यतमस्य सिसंग्रानिपेधार्यम्। त्यदशस्य सद्येः। पाणिनिः ११११२०।

[†] भव सममभ्दः भतुत्वेऽथे सिसंजः, सनः सर्वसमानथोरित नेदिनी । पूर्वायः व्यवस्थायां सिसंजः. व्यवस्था कथिता को कैरिंग्रेशकालवाचिका । भनरः, भपुरि पुर्भिन्ने, विश्वेगे विहःस्थितपदार्थे वाचे, उपस्वाने परिधानवस्त्रे वाचे च सिसंजः । स्वश्रम्बन् चजातिधनाभिधः — ज्ञातिध धनच ज्ञातिधने, ते भभिदधाति स्वययतीति ताह्यः, न ज्ञातिधनाभिधोऽज्ञातिधनाभिधः सिसंजः, ज्ञातिधनभिन्ने भाव्यनि भाव्ययि च वाचे सिसंजः स्थादिव्यथः । स्वी ज्ञातावात्यनि स्वं विष्याक्षीके स्वोऽस्त्रियां धन द्रव्यमरः । पाषिनिः १।१।२४ १६, वार्त्तिस्य ।

[‡] गीय नप्रधानं तस्य भावी गीय्यम् । पः दत्रः । सः समासः । सम पसम् सासी

८८। चे जिस वा। (चे आ, जिस आ, वा।१।)।

चे ते सिसंज्ञा वा खुर्जिस परे। *

दर। पूर्वाद्यल्य प्रथम चरम तयायाह्य कतिपय नेमा:। (१॥)।

एते सप्तद्य यब्दाः सिसंजा मा स्युः जसि परे । 🌣

१०। तीयोक्टिति। (तीय: ११, किति ७।)।

तीयान्त: ग्रद्ध: स्त्रिसंत्त: स्याहा क्रिति परे । \$

११। पूर्वोऽन्यादुङ्। (पूर्वः १।, षन्यात् ५।, वङ्।१।)।

अन्यात् वर्णात् पूर्वी वर्णे उङ्संजः स्यात् । §

गाः सासी कीसासी ; गौख्य भाष्या च चय बौसासी चेति तिखन्। भगाधान्ये, गाव्यायां, इन्हसमामे, ढतीयासमामे, ढतीयासमासयीग्यवाको च, ते सर्व्वादयः स्तिसंज्ञाः गस्युरित्यर्थः। पाणिनिः १।१।२८-५१,३४।

चे डक्समासे। ते सर्वादय:। पाणिनि: १।१।३१.३२।

[†] पूर्व्वादयो नव, चल्प प्रथम चरम तय चय चर्त कतिपय नेम द्रवारी च सिसंजा: ग खु: निस्ति परें तथायी प्रलयी (४६०,४६१), तेन दितय वितय दय चय द्रवादि। गांचिनि: १।१।३३ ३४।

[‡] तीय: प्रष्यः (४५०), तेन हितीय-व्रतीयी गास्त्री। तीय इति तन्त्राचप्रस्ययान्तस्य ग्रह्मं, नतु (४८०) जातीयप्रस्ययान्तामपि। तीयान्तस्य प्रस्पादीनास्त्र गौणले न गौणाले न गौणाले त्राप्तिकार्यः । त्रीप्ति (८०) निवेधः, त्रीन प्रतिहितीयाय प्रनत्याः इत्येव स्थात्, एवमेव जीमराः । गोणिनिः १।१।३३ स्वस्य वार्तिकम् ।

[§] भन्ते भवः भन्यः। भिन्नविधित्वात भस्य निस्वतम्। पाविनिः १।१।६५।

६२। ग्रन्याजादिष्टिः। (भन्याजादिः १।, टिः १।)।

श्रन्थो यो ऽच्तदादिवर्षष्टि-संज्ञः स्यात्। अ

. १३ | लुकि न तम्न । (लुकि वा, मारा, तव वा)। लुक् इति लीपे क्षते यी लुप्तस्यास्मिन् परे यत् कार्य्यं तन स्थात्। पै

१८। खरादि-नि-चित्तंत्र व्यम्।

(खरादि नि-चित्रं १।, व्यम् १।)।

स्तरादिर्णणो-नि-यकारेतस्याय व्य-संज्ञाः स्युः । 🕸

* पत्यश्वासी प्रतित प्रत्याच्, प्रत्याच प्रादिश स्वत्वात पुंखस्। पादिश स्टेग् खचणया पत्त्याजादिवीध्यः। तिन प्रजनशब्दानां प्रत्याच् टिसंजः, इसन्तानान् पत्त्या जादिवपेष्टिसञ्चः स्यादित्यर्थः। हत्ती तदादिवयं द्रत्यत्र चकारः लिपिकरप्रसादपतितः पाणिनिः १।१।६४।

† लुघधाती: किपि लुक्। सञ्चेत्र लुप्करणेन दृष्टसिद्धिर्न भवति, यत:, पय इत्यत्र (१६८) स्यमोर्लुगिति सेर्लुपि, (१५) भादिविधित्वात् सस्य विसर्गातुपपितः भादिभिन्नत्वात् (१८५) भत्वसीरिति अकारदीर्घापित्तिय स्यात्। पाणिति: १।१।६३।

‡ स्वरादिर्गण:—स्वर्, अलर् प्रातर्, पुनर्, ज्येम्, नीचेस् प्रनेम्, विना, ऋरं युगपत्, अवांक्, आरात्, असम्, पृथक्, द्या, अस्, दिवा, नक्षम्, सायम्, विरस् चिरेस्, चिराय, चिराय, विरस्य, मनाक्, द्वत्, जोपम्, त्रणोम्, विष्म, समय निकाम, पैलरा, अलर्गणः सहसा, सपदि, स्वयम्, वया, अद्या, स्वति, सावाः वत्, तिरस्, आविम्, प्रादुस्, नाना, यम्, असम्, असम्, असि, जपायः, दोष् स्वा, सुधा, निव्या, सव्या, सव्या, सव्या, सव्या, सव्या, स्वत्, पुरा, नियी, नियस, प्रायस्, सुइस्, अभीकाः विनम्भ, सद्रा, अदिति, अञ्चसा, अव्या, साक्षम्, साम्, समम्, सह, सना, काम परम्, नमस्, धिक्, भृर्, सुवर्, स्थाने, वरम्, द्यादि आक्रतिगचीऽयम्। निर्मेष परम्, नमस्, धिक्, भृर्, सुवर्, स्थाने, वरम्, द्यादि आक्रतिगचीऽयम्। निर्मेष —(१६) चादिर्भणो गित्र, गिरिति (१०) गिर्म् जापितव्याः—चि (१४६) चत्रम् (४६६) चत्रमा (४६५) चत्रमा (४६६) चत्रमा (४६६) चत्रमा (४८६) चाच् (४२१) घाच् (४२१) घाच् (४१ वाच् (४०१) चाच्(४००) क्षाच् (११६५) चत्रम् (११६४) व्यास् (११६२) एते घोड्य सरादिपितानां वाचकालं, चादीनां द्योतकालम्, अतः स्वरादि-चायोः पृथक् यद्याम पाचितः १।१।३०।

८५। इसोऽनन्तर: ख:।

(इस: १।, भगन्तर: १।, स्थः १।)।

यचानमारिती हस: स्य-संत्र: स्यात् । क्ष

रई। यूत् स्त्रोव ही।

(यूत् ।१।, स्त्री ।१।, एव ।१।, दी ।१।) ?

ईटूरमो नित्यस्त्रीलिङ्गो दी-संज्ञः स्यात्। 🅆

१७। नास्तीयुव:। (न।१।, पस्नी।१।, रयुवः ६।)।

द्रयुवस्थानावीदूती दीसंज्ञी न स्तः, न तु स्त्री । 🕸

१८। वामि। (वा ११, श्रामि ७)।

इयुव ईट्रच दीसंज्ञो वा स्थादामि परे, न तु स्ती । §

११। स्त्री युच्च डिंग्त।

(स्त्री।१।, युत्।१।, च ।१।, जिस्ति ७।)।

शासि भन्तरं व्यवधानं यस्य सः भनन्तरः । अत्रचा भव्यविहती हस्वर्थः (स्यः) संयोगसंज्ञः स्वात् । पाणिनिः १।१।०।

[†] ईश्व जय यू, ताभ्यां त्यूत्। दी—नदी। स्त्री एवेति एवशस्टेन नित्यस्त्रीलिङ्गी नियम्पते। यशिक्षेये यदूरिय स्त्रीलिङ्गभव्दः तिस्त्रवर्थे तदूरिय यदि लिङ्गानरं न भन्नति तदा नित्यस्त्रीलिङ्गः। यथा, नदी गौरी दत्यादि। पाणिनिः १।४।३।

[‡] **दयुवस्थानी— द**युवप्राक्षियीम्पी नित्यस्त्रीलिङ्गी ईकाराकीकारान्ती नदीसंज्ञी न भवतः, स्त्रीग्रस्टक्षुनदीसजः्। पाणिनिः १।४।४ ।

शिल्यकोलिको प्रयुवस्थानो स्त्रोधन्दभिन्नो दूर्दनौ दीसंक्रो वा स्वाताम् भामि
 परि। पाणिनिः १।४।५।।

स्त्रीलिङ इटुरन्तो निश्चस्त्रीलिङ इयुव ईट्स् दीसंद्रः स्यादा क्टिति परे, न तुस्त्री। *

१००। अध्यच्ताच्येषु पि: । (प्रध्यव्ताच्येष् ११), वि: १।) ।

विवर्ज स्यादेरच् तसंज्ञावच्येकारावीपृ च एते पि संजाः स्यः। १

१०१। सङ्घ्यावत् डत्यतुबद्धगणा नेपि।

(संख्यावत् ।१।, डित भतु बहु गयाः १॥, न ।२।, द्रीप ०।) ।

डत्यतु बहु गणानां संख्यावत् कार्यं स्थात्, न त्वीपि । \$

द्रति संजापादः।

सामान्यस्त्रीलिङ्गी इस्तेवारानीकारानाग्रव्दी, चकारात् निलस्त्रीलिङ्गी इयुवस्त्रानी
 स्त्रीग्रव्हिन्दी च दोसंज्ञी वा स्वातां ङिति परे। पाणिनः ११४।६।

[†] न वि: मधि: ऋषेरच् मध्यच्, भच यय भच्यो, तस्य तिल्तस्य भच्यो ताच्ये, भच्यच ताच्यो च दंप् च तेषा समाहार: भव्यच्ताच्येप्। भिन्नविषयलादस्य नित्यलम्। पाणिनि: १।४।९८।

[‡] उति चतु प्रलयी, तेन तदन्तानां कति यति तति यावत् तावत् एतावत् कियत् इयत् भन्दानां, वहु मण भन्दयीय संख्यावाचकशन्दवत् कार्थ्यसात्, न तुईति विद्यते, यत्र ईत् कर्तव्यं तत्र न संख्यावदित्ययः । पाणिनिः १।१।२३,२५।

२य पाद:-- त्रजमा पुंलिङ अब्दः।

राम-स् इति स्थिते *--

१०२ | स्रो वि: फो । (सी: ६१, वि: १।, फी था) ।

सकार-रेफयो विं: स्यात् फेपरे । 🏱 रामः । श्री-जसीः सन्धिः । रामी रामाः । क्षः

१०३। खदीयां ध्यमग्रसादे लें।प:।

(ख-दीभ्यां ५॥, धि-त्रम्-मसादेः ६।, सीपः १।) ।

खात् दीसंज्ञकाच परस्य घेरम्यसादेव लोपः स्थात्। हे राम, रामं रामी। §

रामग्रव्हात् (७८) स् इति स्थिते खनणमाह ।

[†] दानादानसाधारणयी: सकार-रेफयी: विसर्गः स्वात्, स्वादीय-इसे विरामे स्व परे। दानस्य—विरामे राम रत्वादि, इसे पयीभ्यामित्वादि। प्रदानस्य — इसि परे गीतः पूत्त रत्वादि। पयस्वान् मास्वान् इत्वादी स्वादीयइसप्रत्वाभावात् न विसर्गः। पाथिवि: ८.३/१५, ८।२।६६।

[‡] भौ परे जिस परे च सन्धिभवतोत्सनेन प्रकरणान्तरेऽपि स्वातुवृत्तिर्भवितिति स्वितव्। राम-भौ = (२२) रामौ। राम-जस् (७८) = राम-भस् = (२२,१०२) रामाः।

[§] मन् च अस् च भनभसी तयोरादिः, धिय भन्मभगदिय समाहारे तस्य । भन्न दीयहणम् भन्मसीरादिकीपार्यमेव, हे लक्षित, हे वध इत्यादी (१५३) कस्ते क्रति क्रसा-देव धिलोपसिद्धः । भन्न धिदातोर्लोप इति यत्र क्रतं तत्, भन्नर कुलमित्यन (१६६) धेरिम क्रते तस्यापि भक्षारक्षीपार्यम् । हे सम्बोधने, राम-सि (८०,१०३) राम । राम-भन्न स्वानं सी विन्दुरवसाने वा' इति भौषादिकत्त्वम् । राम-भी (२३) = रामी । पाणिनि: ६।१।६८,१००।

१०४ । शस्नामि वः । (यम्नामि था, र्थः १।)। श्रमि नामि च परे खस्त्र घं: स्थात् । अ

१०५। पंसित शस्न।

-(पुंचि ७।, तु ।१।, श्रम् ।१।, न ।१।) ।

स्नात् परः यस् नस्यात् पुंकिङ्गे। रामान् । 🕆

१०६। टा भिस् डि इन्सि इन्सोसा-मिनैस-यात ख योसो ऽत:।

(टा - चीसाम ६॥, ईंन - चीस: १॥, चत: ५।) ।

अकारात् परेवामेवां स्थाने एते क्रमात् स्युः । 🕸

^{*} नामीति तुम्सम्बस्धिनकारेष यहिते पामि, तेन प्रानिनामित्यादौ न प्रसन्धः । पामो यह्यैनैवेष्टिसिदौ नामीति अतम् पागमादेशथीमंध्ये वस्तीयानागमी विविद्तित न्यायस्तीकारार्थं, तेन क्रीष्ट्रनामित्यच पादौ (११०) तृमि तनादेशी (१४०) न स्वान्, एवं प्रकृते रामाइ इत्यादौ दौषेस्य स्थानिवस्तेन क्रस्तपरत्वात् यथा श्रक्षी नकारिवधाभं तथा (११०) तुमागमी न स्थादिति स्पनार्थम्य । पाणिनः ६।१।१०२, ६।४।१।

[†] तु-यक्कं पुंचीत्यस्य परवानुविधितवारणार्थम् । पुंच्यक्रिकं व्यक्षिधानादिनिकपित-विश्रेषधम्प्रैवस्वं, न तु व्ववणादिभस्वं, दारादि-व्यवादिष्यव्यक्षिः, तथात्र प्रास्तः — श्रव्यक्षार-सिद्धार्थमुपायाः परिकाल्पताः, सर्व्यवसुगता धर्माः शास्त्रे पुंच्यादयस्वयः । ये तु योग्यादि-सम्बद्धाः प्राणिनातीयगीत्रराः, न तेऽन्युपायाः विश्यत्वि कलवादि-तटादिषु इति । राम-श्रम् — (१०४,१०५) रामान् । पाणिनः ६।११०३ ।

[‡] भकारात् परंघा टा, भिम्, के, किम्, कस्, भीम् एवां स्थाने क्रमेण— इन, ऐस्, भय, भात्, स्थ, न्योस् एते भवित्त । एस् भत्न क्रांबा ऐस् भात् कर्षां निर्करसैः निर्करसात् (११५) सिस्त्रप्यम् । पाणिनिः कार्धः,१२१ । ७।३।१०४ ।

१०७ । षु र्णेाऽदान्ते ना ऽव्कुपन्तारेऽप्यतहास्त-पक्षयुवाक्तः ससंप्र्यादे नैकाच्कोस्त वा । *

षु : ४।, णः २।, भदाने ७।, नः ६।, भवकपूनारे ७।, भिराश, भतदात् ४।, स्वाश, भपकपुवाइः ६।, समेप्सादेः ६।, नैकाचकोः ६।, तु ।२।, वा ।२।)। । भवकारात् रेफात् ऋवणीच परय भ्रदानी स्थितस्य नस्य सः स्थात्, श्रव-कावर्श-पवर्श-व्यवक्षानिऽपि । पं

यत्र दे न-स्ततोऽन्यत्र गतानु निमित्तात् परस्य, साहिष्टि-तेनेपा स्यादिना च सहितस्य, पक्षादिवर्जितस्य,स्यात्, तस्यैवे-काचः सक्षवर्गाद्यान्यस्य, वा स्यात् । रामेष । इ

^{*} व च र च ऋष तथात् षु :। भव् च कुष पुष तैरलरं व्यवधानं तथिन। तश्च तत् दक्षेति तद्दं, न तद्दम् = भतदं तथात्, भतद्द्यदेनाच लच्चया भतद्द्यिताः धकाररेफ-ऋवणं उच्चलें, भतप्वाह यथ टे नसतीऽन्यन गतादिति । पक्ष युवा च श्रद्ध पक्ष-युवाहानि, न विद्यले पक्षयुवाहानि यिक्षन् सः भपक्षयुवाहलस्य । दूप् च स्थादिष दूप्यादी, सात् दूप्यादी संप्थादी ताथां सह वर्णते थीऽसी समेप्यादिलस्य । एकः भच्यस्य स एकाच्, कः कवर्गवान्, एकाच कुष एकाच्कः — एकाच्कवर्गवक्त्रस्य ।

[†] अन् इ.इ. प्रयमनकारान्त:। ऋषिश्र-व्यादव्यवधानेऽपि, यथापुणां चतुर्णानृणां नृणानित्यादि ।

[‡] नकारवणदपूर्व्वतिपदिख्यतात् वकार-रेषः स्ववणांत् परस्य, समासीकरविडितथीरौप्याधीरेकतरेण युज्ञस्य, पक युवन् अडन् सम्बन्धि नकारभिज्ञस्य, नस्य णः स्थात्,
रस्येत—ताहमस्येव नकारस्य, एकाचम्रस्टसम्बन्धि कवर्गयुज्जमस्टसम्बन्धि भिज्ञस्य यो वा स्थात्, एतेन एकाचसम्बन्धिनः सक्तवर्गसम्बन्धिनय नकारस्य निस्यं षः स्थात्, तिङ्कास्य वा स्थादित्यर्थः । स्थादिना सहितः — स्थादिजातः स्थादियुक्तो वा। पकादिक्सयवापि निषेधः, एवस् मवक्षपूर्वतरेऽपौति स्थायवापि बीध्यस् । एकाचकी यंषा, ववड्यो, रस्यविणाः, शौकानिषी, शौकानेष । एकाचकुभिज्ञस्य यथा, इरिभाविषी दिशाविभी, शौभावेष शौभावेन ; दरिभाविषा, दरिभाविना । समासीकरविद्वितेपोग्रहणान् दरिभाविभी

इरिभाविनी इत्यादी न स्थात्। पकादेशु युरुपक्षेन, चारवृना, दीर्घाज्ञा इत्यादि। पाणिनिः ८।४।१,२,११-१३।

धातना सह प्रादे: समासे नेथं व्यवस्था, धातुपकरणे (५४८), क्रत्पकरणे च (८६८) तस्य प्रथक् गत्वविधानात्। एवं -- तुवी पूर्वेण सम्बदी मूनी तु परगामिणी। चलारी 'धोगवाहां ख्या फलकर्माखुची, नता !-- इति नियमेन एषा व्यवधानेऽपि चलं स्थात्, यथा बंदणम्, उर×कायेण, उर ०२ पेण इत्यादि । क्रुस्ति रझयतीत्यादी कासपरत्वात (५०) नस्वानुम्बारे, पुन: (५१) भनुस्वारस्य जकारे, सज्जदगती विप्रतिषेधी यदवाधितं तद्वाधितमेविति न्यायात् गलं न स्यात् । चित्तः तत्वः समर्थः दलादी त नकारे परं अनुस्ताराभावात पुर्वनकारस्य पत्ने, (४०) प्रभिरित्सनेन परनकारस्यापि चलं, किन्तु निर्भितः प्रसित्र इत्यादी । पूर्व्यपदस्थनिमिचलान् ससेपसादिभित्रलेन णालं न स्थात् ।

राम छा = (१०६, २३, १०७) रामेण ।

भव वाशन्दस्य व्यवस्थया, केषाञ्चित् णलविधिहेतौ सति भसति वा नित्यं चलं स्थात् (१), कीषाश्चित् वा स्थात् (२), कीषाश्चित् णलविधिहेताविप न स्थात् (३),

१। पूर्विपदस्थनिमित्तात् परस्य नो गः स्थात्, मंजायाम् अव्कपुन्तरेऽपि, यथा---सूर्पेणखा, द्रामः, खरणसः, वाशींणसः, खरणादः, नारायणः, परायणं, पारायणम्, चत्तराथ्यं, रामस्यणं, चान्द्रायणम्, अग्रयौ:, ग्रामणौ:, अत्तौहिणौ। संज्ञायां किं, ग्राप्तनस्तः, तासनस्तः । चवकपुन्तरे किं, चिलीचनः । पाणिनिः पाधा३ । वार्तिकाचा ।

रेफादियुक्त-वहनीय-वसुवाचक-मञ्दात वाहनमञ्दस निश्वं चलं स्थात, दर्भवाहण-मिल्यादि । भवकुपुलरेकिं, राजवाइनस् । पाणिनिः प∣४।पा

निचतुर्भ्यं वयसि हायनस्य। यथा, निहायणः, चतुर्हायसः। दयसीति किं-विद्यायना भाला, वैद्यायनं ग्टहम् । वयः प्राणिधर्म्यः ५ ति गीयीचन्द्रः ।

प्रपृथ्वीपरप्रस्वित्यः श्रक्रग्रव्स्य नित्यं गलंस्यात् । प्राक्षः इत्यादि । विरक्षः इत्यादौ तुन भवति । पाचिनिः ८।४।७।

प्र निर् दुर् परिस्थी नसः। यथा, प्रवस इत्यादि। "नसव", इति सुपन्ने, "प्रादौ नसः'' इति संचित्रसारे ।

अभ्येकोटरा सिप्रका नियका सारिका पुरगा अराम कार्य पीयूचा खदिर प्रनि-रनिरिचु प्रकेश्यो वनस्य नस्य निलां चलं स्थात्, यथा — चर्यवर्णं कीटरावणनित्यादि । एभ्यः किं, इन्द्रवनम्। पाणिनिः ८।४।४,५ ।

२। दिवान्धचनाचकात् दिवानीविधनाचकाच परस्थितस्य वनस्य नस्य चलं स्थादा, भन्कपुनारेऽपि, न तु दृरिकादेः परस्य। यथा, खीधवर्ण लीधवनं, मन्दारवर्ण नन्दारवनं,

१०८। श्रा त्ति-मभवि।

(च।१।, चा।१।, ति सभवि ७।)।

श्रकार आकारः स्थात् की में-भ-वेषु परेषु ।क

पूर्वंपदस्थित-निमित्तात् पानशब्दस्य भावकरणधीः प्रयुक्तस्य णत्वं वास्थात्। यथा,— शोरपाणं चौरपानमित्यादि। पाणिकिः ८।४।१०।

गिरिणदी खर्णदी चक्रणदी गिरिणितस्य चक्रणितस्य गिरिणस्य गिरिणद तृर्थमाथ । प्रोण चार्गथण अस्टानां गत्व दा स्यात् । पर्जे गिरिनदीत्यादि । ८ । ४ । १० स्वस्य । पित्तम् ।

३। तथद थप भ युक्तस्य नस्य गतं न स्थान, यथा, कल्ति ग्रंथनं इन्दः दस्यन्ति । प्राणिनिः, प्रशारह, इ.स. ।

ज्ञांपदालस्थलकारात परपदस्थनकारस्य कलं न स्थात्, यथा, इविधानन, जायुक्का-न इत्यादि। पाणिनिः ५॥॥॥॥

भौगिनी कामिनी भामिनी यामिनीनां गखंत्र स्थात्।

खभावती सूर्डन्यणवन्तः शब्दाः ---

वाची तूचीर वेची प्रशिव मिया खवणं कीण कल्याचा वाणाः, गौणी घीणो कणाण घृष विपणि पणं स्थाल पुरसं विघाणम्। नाणिकां शोच प्राची गुण गच गणिका थेण सिंहाच वीणा निज्ञांचो निक्रपेण कण किया विण्जः कद्वणं पाचि तूची॥ विष्णाकमिय चाणकमित्याद्याः स्थः अस्रावत इति।

* भन सकार-वकारी लाहिरेव, स्थादावसभावात्। एवं ध विभक्तेरादावयव-सकारे रे एवार्य विभि:, तेन रामम् इत्यादी न भाकारः। भत्यव भ 'ला सा' इत्यादि साधाय य केम्प्रोमंडित (११६) सवारे क्रवेडिंप, समेमीप्याक् (११०) इति भाकारिवधाने तम। भन सकारभवासकार उदारवार्थः। पाधिनी 'यक्ति' इति कथनात् वस्ति स्थातः भावता स्थादिभकारक्ष त्यादिसकारवकारवीर्मध्यपाते सर्थं सुधीभिर्वभावनीयम्। पाधिनिः शश्राहरू १९०१। रामाभ्यां रामैः, रामाय रामाभ्याम्। *

१०६। ब्वे संस्थः। (भवे भा, मिम भा, ए: १।)।

श्वकार एकारः स्थात् ते र्व्वे स-भयोः परयोः । 🕆 रामिभ्यः, रामात् रामाभ्यां रामिभ्यः, रामस्य रामयोः । 🌵

११०। नुमाम: खद्याप्सङ्घ्याष्णी:।

(तुम् ।१।, भाम: ६। स्वदाप् सङ्गार्णः प्रा)।

स्वात् द्या आपो रवनान्तसङ्घायात्र परस्याम आदी नुम् स्थात्। र्घ-णले । \$ रामाणाम् । रामे रामयोः । ¶

१११। क्विलात् क्वतोऽसात् सः षोऽदान्ते नुव्यन्तरेऽपि शास वस वस साढ़ाञ्च।

(जुन्दलात् पा, जात: २।, भमात् ।२।, सः २।, घः २।, भदान्ते ७।, जुन्दि-भन्तरे ७।, भिषारा, शास वस घस घादां ६॥, च ।२।)।

^{*} राम थ्याम् (१०८) = रामाथ्याम् । राम भिम् (१०६,२३) = रामै: । राम र्ङे (१०६,२२) = रामायः

[†] भर भकार: भनुनर्तते । भकारात परशीखादेर्बंडवचनीय-सभयीरसभवात् स्थादेरेव सभयोगंत्रणम् । पाणिनि: शिहार०३ ।

[‡] राम-ध्यम् (१०६,१०२) = रामिध्यः । राम-खिनि (१०६,२२) = रामात् । राम खन्म (१०६) = रामध्ये । राम-चौन् (१०६,१०२) = रामधीः ।

[§] रच घ च न च र्था, श्रद्धा घोसी र्था चिति श्रद्धार्था, स्वय दी च आप च सक्ष्यार्था च तत तथात । नुमः उमाधिती, उकारः प्राचीनानुवाद्यंः, मिद्दादी (१०) । धेन विश्वितन्तस्थिति न्यायादाइ रघनाना इति । रान्तवान्त्रनामा सुख्यानामेव यह्यं, तेन प्रियचत्रां प्रियचपामित्यादी भ स्थात् । धंश्र णालख ते भवत इति श्रेषः, एतत्क्यं (१०४,१००) स्वद्यस्य सारणावेम् । पाणिनिः ७।१।४४,४५, १।१।२४।

ष राम भाम (११०,१७, १०४, १००) ल रामाणाम् । राम ङि [(७८)क कत्](२१) = रामे । राम-भीम् (१०६,१०२) = रामयी: ।

कावर्गादिलाच परः क्रतः साहर्जो दमध्यगः सकारः प्रासादेखः षः स्थात्, तु-वि-व्यवधानिऽपि। अः एव प्रते । रामेषु। पे एवं सुकुन्दानन्दगीविन्दादयः । ३

- + एत पत्ने दति (१ ८,११२) म्चदय-प्रशीगप्रदर्शनार्थम् । राम-सुप् $[(%)^{-})^{-}$ प दत्] (१०८, १११) = राभेषु ।
 - ‡ विभेपविधानवहिर्भूताः यावलीऽकारान्तपृलिङ्गभव्दाः एवं जेयाः।

एतद्ग्रसीकानियमातिरिक्त-ष्वविधानानि ।--

त्रग्नी: स्तृत: त्रज्ञुली: सङ्ख्य, भीरी: स्थानस्य सस्य ष: समाने । यथ्या, व्यविष्ठुत्, वङ्गुलिवङ्गः, भीवष्ठानम् । पाणिनि: ८।३।८०-८२ ।

दीर्वालाद्यः सीमस्य सस्य व. समासे । यथा, श्रमोवीसी । पाणिनः पाश्वादर । ज्योतिरायुर्वाभ्यः सीमस्य समासे । यथा, ज्योतिष्टीमः, श्रायुष्टीमः, श्रियष्टीमः । पाणिनिः पाश्वादर-पश

fि-नदीभ्यां स्नाते: कौशले । यथा, निचा:, निचातः, नदीचा: । पाचिनि, দাং।দে

^{*} इस्तः प्रवाहारः (३) । तुष विश्व तृषो ताथ्यामन्तरं व्यवधानं सिखन्। तुरिष्ठ तुष्यमादी (१६१) इत्यादिना विद्विती तुष्वेत न त्वतुक्षारः, तेन इवेषि धन्षि इत्यादी पत्तं, न तु पृंस इत्यादिषु । सिर्पः यु इत्यादी भन्त क्वावादी रङो विस्ते (१८०) प्रथान पत्तं, न तृ रेफान, त्यातं भड़ मु इत्यादी पत्वापत्तिः । मादिति चनात्रत्वयः (४८८) यथा अग्निसात् हरिसादित्यादि । क्वतदित प्रत्यादेशायमानामं कतमसम्बन्धीत्यथः, तेन स्वाभाविक मकारवतां धानृनां सस्य घत्वं तृ स्थान, यथा सित्योयतं इत्यादि । भास वस्य घसान प्रविक्षत्रधातृनां पृथक्ष चन्यान् भवतोऽपि सकारः किलान परः षः स्थान, यथा शिष्टः उपितः जधन्यित्यादि । मादिनु सद्धानीः (१०२८) विण्यस्ययेत निष्यतस्य दकारान्तस्य यद्धान् विज्ञापेषा भान्ति, तेन न्राषाट् इत्यादी पत्तं, नतु न्रामाष्ट-मित्यादिषु । भव, स्वे भदान्ते इत्युक्ता वत्ती दमध्या इति व्याख्यानं, समासे दान्ति-स्थितस्यापि क्वित् दमध्यात्वेन पत्तं स्थादिति सूचनार्थं, तेन गौष्यतिः निक्तृष इत्यादि सिद्यम् । इत्य उदाहरणानि यथा, अग्नियं वायुय निव्यं गोष्यतिः निक्तृष इत्यादि निद्यम् वायुय निव्यं गोष्यते नीषु भय्ययषु व्यवव्यं वार्षु इत्या क्वित्यं निक्षे । क्वोः —वान् प्राङ्यः । पाणिनिः प्राः प्रिष्ठः ।

११२। से जम् हो इसि छीना-मि सी सात् सिनोऽतः।

(क्के: ५॥, जभा के उत्सिकी नां ६॥, इ. धी क्यात् किसनः १॥, चतः ५॥) ।

प्रादयमे स्थस्य। यथा, प्रष्ठः। पाणिनिः प्राक्षाध्यक्ष

वै: स्त्रणातेर्वं चासनयो: । यथा, विष्टर: । पाणिनि: पाशि है।

विजुपरिश्रमिस्यः स्थलस्य । स्रथा, विष्ठलं, कुष्ठलं, करिष्ठलं, श्रमिष्ठलम् । कपिष्ठलः (तष्ट्रामा स्टबिः) निपास्यते । पाणिनिः षक्ष १९१६६ ।

चम्ब गी भूमि दि विकाद मिश्र प्रि दियमि वहिंभी स्थस । यथा, चम्बलः, गीषः, भूमिष्ठः, दिष्ठः, विष्ठः, कृष्ठः, चक्रैष्ठः, मिश्रष्ठः, पृश्चिष्ठः, दिविष्ठः, चिष्ठः, विहंशः । एसः किं, भूसः। स्थस किं, गीस्थितः । परमेष्ठी सञ्चेष्ठः—निपाली, वाक्षितः प्रस्थः ।

द्रलात् सः पः संज्ञायानिकारिभाक्तुवा। यद्याः, सृषेणः, इश्विणः, वायुषेणः। नचनात्तुभरणिषेणः,भरणिनेनः। इलात् किं,विष्यवसेनः। एकारिकिं,विस्रोताः। संज्ञायां किं. पृष्यनैनः। पाणिनिः, घ्रास्टर्९००।

सुविनिदुंस्यः सममूल्योः । यथा, सुषमं, विषमं, निःषमं, दुःषमं, सुषृतिः, विषूतिः, निःष्तिः, दुःष्तिः, पाणिनिः ८,३।८८ ।

निर्द्विद्वित्पाद्यत्रा सः (नतु प्रत्ययसः) षः कस्वपक्षेत्र । यथा, नियनः, दुकारः, वहिकारः, भाविकारः, प्रादुक्ततं, चतुष्यभित्यदि । पाणिनिः निश्वशः।

निसम्तपतावनभ्यावनौ । यया, निष्टपति खणे परीचकः । ऋविनौ तु क्तिपति खणें खणेंकारः, पुनः पुनरिप्नं स्पर्धायतौथायः । पाणिनिः टाइ।१०२।

नि:सुदुर्भ्यः सामःसंघ सन्धिनां षः । यथा, नि:पामा, सुधामा, दु:पामा, निःषधः, नि:पन्धः, सुष्ठ, दुष्ठ् इत्यादि । पाणिनिः पःहार्धः ।

स्तिरवादः प्रयनिकट्याः । यथा, यष्टिमष्टभ्य प्रासि, तामाप्रित्य तिष्ठतीत्यर्थः ; प्रयक्त्या गीः निकटे निषदा प्रासि इत्ययः । प्रतिनः क्षत्रस्यः । पाणिकः प्राः । प्रतिकार्यः । परिस्थितः दःस्थितः , सस्यतः , सस्यतः , सम्परः इत्यादि । "दःस्यादेय" उति कमदीवरः ।

खभावती सूर्ञन्यपकारवन्तः ग्रन्दाः— मञ्जूषेषी प्रदीधी तय त्रष्ठम स्वषायाद राष्ट्रीष्ट्र कप्टं, बीप्पीपा स्नेषा भीषा विषय विष विषाणानि कुषाण्ड षण्डौ । कच्यापं माप भीषानिष सिष मिह्ना वेष पाषाण्य योवित्-प्रीयांमपानुषारीषर करुष प्रीयाम्बरीषाः क्रीयम् ॥ चकाराक्तात् स्तेः परेषामेषां स्थाने एते क्रामात् स्युः। # सर्च्ये सर्व्यक्षे सर्व्यक्षात् सर्व्यक्किन्। 🕆

१९३ | त्रात् सुमामः । (पार्य श्रामः हा) प्रवर्णानात् स्नेः परस्य श्राम श्रांदी सुम् स्थात् । एत्वषत् । क्ष सर्वेषाम् । श्रेषं रामवत् । § एवं विश्वादयोऽकारान्ताः । उभयव्दो द्वान्तः । उभौ उभौ उभाभ्याम् उभाभ्याम् उभयोः । ॥

पौगूषं विषुषा इत्योक चषकावीषन् प्रयत् कि लिखं, प्रत्यंषषु कवा कवाय कल्पं यूषं भिषक् सर्वयौ । पुषं पुकार वाषा श्रष्य ग्रुविसं दुव्यं तुक्कीविधे सुकांगीष्यद पौक्षे प्रवस्तित्यते तथा चाफरे॥

- अकारान सर्वनाम-शब्दात् परेशां जस् ङे ङसि ङीनां स्थाने झमात् इ. से स्थात् स्थिन् एते स्युः। भन, जमङिताम् इ.से स्थात् स्थान् इति ज्ञते, जित्सर्वाय इत्यन सर्वनामलाभावात् वसा स्थे न स्थात् तथा जितस्वंस्य इत्यनाथि ङमः स्थाने स्थादेशस्थाप्रसङ्गः स्थात, टाभिस् (१०६) इत्यनिनाणि न भवितुमहंति, ज्ञनेनैव विशेषेण निवेधात्। पाणिनिः शरारिष्ठ,१५,१९०।
- † सर्जे जस् (११२, २१) = सर्जे । सर्ज डि = सर्जे ग्री । सर्जे डि व सर्जे ग्रात् । सर्जे डि = सर्जे शिन् ।
- ‡ सिरिध्यत्वर्त्तते, चात् घवणांत् तेक मञ्जीवानित्यादि । सम उमाविती, क्षतारिष्ठकार्थः, निक्कादादौ । चामः स्थाने सम्विधानं विभक्तिसम्बन्धितार्थम् । चत-भाइ एतवले इति, एत्रच पत्रच ते । सुनः स्थादीयसकारतात् (१०८) ज्येन्स्येः स्थिने एकारः, पद्यात् पत्नं भविष्यतीत्थयः । स्थादिस्थाने सर्व्यावयवदिश्चे तु तिस्त्रम् सर्वे न एकारः, यथा परस्तादित्यादि । पश्चितिः शराप्रः।
- § सर्व्यं चान (११६. १७. १०८, १११) = सब्बेंबाम् । शेषम् ভक्तादन्यत् रामवतः गाञ्चमित्यर्थः, पुंत्रपुसक्तयीः श्रेषैमित्यमरः ।
 - ¶ उभग्रन्दो दाना इति सुख्याभिशायेगीत्रं, तेन अधिगतौ छभी येन स अध्यक्तः

जिस--नेने नेमाः। * शेषं सब्बेवत ।

१९४। पूर्वादेः सात्-सिनौ वा। (पूर्वादेः प्रा, सात-सिनौ १॥, बा।१।)।

ती। पूर्वसात् पूर्वात्, पूर्वसिन् पूर्वे। 🌣 शेषं नेमयत्। एवं परादयः।

समीऽतुखी इत्यायंतीः-

नमः समस्रात् पूर्वसा अन्तरसा अमेधसाम्। सुमेधसामन्त्रसौ सतां खसौ खयभ्वे ॥ 🌵

इत्यादि। उभग्रव्हादवयवार्थेऽयटपत्ययेन साधितात् उभयभव्दात् दिवचनं न प्रयुक्तके इति सम्प्रदाय: । एक लसङ्गावाचक। देकशब्दात् एक यचन सेव ।

[∌] नेन-जस् (८६, ११२, २३) ≔नेमे, वा (२२, १०२) नेमाः।

[🕂] तौ द्रति व्यक्ति:। पूर्विविदितौ (११२) स्थात् सिनौ पूर्वि। देवी स्थानाम्। अतएव জ্ঞ দি ক্যী: स्थाने, प्रतयिति वक्तव्यं, पूर्वायन्येति (८८) मूत्रेण जिन परेवासिमज्ञा-मक्तला, भव, पूर्व्वादेरि सात्-सिनी वा इति यद्ग कर्न तत्, पूर्व्वाभव्दात् जम: स्थान (५११) तसि कती, पुंत्रत सिदिति (३२०) प्वकावे, पूर्वतः, (वा सिसंजायां पर) पूर्व्चात: द्रति पददयसिद्धार्थम्। पूर्व्वेडसि चपूर्विकात्, वा (१०६, २२) पूर्वात्। पूर्व्यं कि च पूर्व्विक्तान्, वा (२३) पूर्व्ये । पाणिनिः शशार्दा

[🗜] सभीऽतुल्वे (८६) इत्यादेशदाइरणान्याइ नमः इति — खयम्भुवे बद्धाणे नमः, कौदृशाय, समस्मात् सकलात् पूर्व्वसौ पूर्वकालीनाय पूर्वकालवर्त्तिने इत्यर्थः, प्रव समग्रन्दस्य चतुल्य।र्थवेन पूर्व्यमन्दस्य च कालायंत्रया व्यवस्थावाचित्वन सिसंज्ञा। पुनः की दृशाय, भनेधनां निर्वेदीनाम् भन्तरस्ये विदिः स्थिताय, सुनेधमां सुवृद्धीनाम् भन्तरस्ये सदा संसर्गात परिधान क्लासकपाय, सतां साधनां स्वसी चाकीयाय; चन चन्तरगद्धरा विष्यीगवाचित्रेन उपसंच्यानवाचित्रेन च सिमंत्रा, खग्रेष्टस्य च जातिधनभित्रार्थत्रेन सिमंजा।

समायेष परायेषां सक्तयेऽधान्तराय च यदुष्वाय नमः स्वाय मन्नैर्जुष्टाय प्रार्क्षि ॥ % चित्रकीय सर्वाय साध्वन्यानां सिखदिषे॥ कालावराय कांलिम पूर्वीय जगती नमः॥ 🕆

जिसि-साध्वन्धे साध्वन्धाः। जिस-अस्पे अस्पाः। भेषं रामवत्। एवं प्रथमाद्यः। दितीयस्मे दितीयायः हितीयसात् हितीयात्, हितीयसान् हितीये। एवं खतीय:। निर्जर: । 🕸

^{*} प्रत्युदाइरणान्याइ समायति — ग्रार्क्तिणे विकावे सनः। कीडगाय एषु अस्तरस् भगाय तल्याय जगनायलाद्यियोः, अत्र समगब्दस्य तुल्यायेलीन न सिमंज्ञा। पुनः कीटगाय एवां जगतां मध्ये पराय श्रेष्ठाय नित्यतादित्यर्थः, वाच परग्राव्यस्य व्यवस्थावाचि-लाभावात ने सिसंज्ञा। किमर्थेनम इत्याह सुताये भी वाय. अर्थाल राय प्रयोजनाला-राय घर्मार्थकामार्थमित्यये. भव भन्तरमञ्जस्य विर्धीगादिभिन्नार्थलेन न सिर्मन्ना। पुन: भीडगाय यदम्बाय यद्नां भातये, स्वाय धनाय यद्नामिति समस्पदेन सम्बन्तः. समस्याममस्तेन नियाकाङ्चीण यङ्गितिरितिन्यायात, पत्र खशस्यकातिधनवाचित्वान् न सिमंजा। पुन. कोडगाय सही वीरें जुष्टाय सेविनाय इति पद्मपूरणार्थस्।

[🕇] न गौग्याव्येत्यस्य (८०) उटाहर्णान्याह प्रतिसर्व्वायिति. सर्व्वाय प्रिवाय नसः षत्र सर्व्यंग्रस्टस्य "सर्व्यः शिवा स्थागुरिति" सहस्रताममध्ये पाठेन संज्ञाताचित्वात् न सिनंजा। कीट्याय अतिमर्व्वाय सर्वमितिकानाय, अत गौणवास न सिमंजा। पुनः की हमाय साध्वन्यानां सिविधिषे, साधवय भन्यं च् साध्वन्यास्त्रेषां, सैवा च दिट च तमी, क्रमात् शाधूनां सख्ये, भगाधूना दिवे ग्राववे इत्यर्थः, अत्र साध्वन्धानानिति इत्समामिश्यतलात् न सिसंज्ञा. सेमासान्तविधिरनित्यलात् सिखिदिवे इत्यत्र (३२३) चैक्यादित्यनेन न भागत्ययः । पनः कौद्दशाय जगतः कालावराय कालेन कनिष्ठाय भाव काल।वरार्थति त्रतीयाततपुरुषममामस्थितत्वात् न सिसंज्ञाः। पुनः कीडग्राय जगतः कालिन पूर्वाय, भन हतीयातत्पुक्षसमासयीग्यवाकास्थितत्वात न सिमंजा ।

[া] साध्यस्य कित (८०) चे जिस देखनेन विकल्पेन सिमंजायां साध्यन्ये साध्वन्या: इति पददयम्। चली चल्पा: इति (८८) पृथ्वीदालीयनेन जसि परे वा सिनजा। एवं प्रथमे प्रथमीः, घरमे घरमाः, दितये दितयाः, चितये चितयाः, दये दयाः. विये वया:, पर्डी पर्डा., कतियये कतिपया:, नेसे नेसा.। साधकाव्ये तु द्वेषासिति

१९५। जरस जराचितु।

(जरम् ।१त, जरा ।१।, भवि ७।, तु ।१त) ।

जराग्रव्हो जरस् वा स्थादं वि परे। निर्जर्मी निर्जरमः, निर्जरसं निर्जरसी निर्जरसः, मिर्जरसा। केविदादाविनाताविच्छन्ति, निर्जरसिन, निर्जरमैः, निर्जरसे, निर्जरसः, निर्जरमादित्यादि। पद्येष्टसे च रामधत। *

११६ । पाद दन्त यूष निशा पृतना मासासन सानु नासिकोदक हृदयास्क् यक्त शक्त शौर्ष दोष: पहद यूषन्तिश् पृत्वासासन् सु नसुदन् हृदसन् यकन् शकन् शौर्षन् दोषण: शसादि-पौ।

(पाद - दीषः १॥, पद--दीषणः १॥, श्रमादि भी २।)।

म्रथेगी दृश्यते, तत सहाकि विश्वितत्वात् माध्यत्, दयसिष्यत्तीति किपि द्येष्णव्देत् या। कोमरास् उभगभव्दमि भयानं मत्वा उभये उभयरः इति वदन्ति । दितीय-के≔(६०, ११२) दितीयसै. वा सिम्झायां (१०६, २२) दितीयाय द्रत्यादि हतीयसच्दोऽस्येवम् । विकेर-सि (१०२) = निर्जरः । निर्मास्त जरा यस्येति बहुत्रीहिमसासः ।

^{पं पृतिके म्वकरणान विक्रतस्यापि जरायन्यस्य ग्रहणं, एकव्यविक्रतममन्यवत् भवतीति न्यायात् तेन जरा जर इत्युभयस्यापि जरस् वा स्यादिव परे। प्रकरणवलान् भवतीति न्यायात् तेन जरा जर इत्युभयस्यापि जरस् वा स्यादिव परे। प्रकरणवलान् भवीति स्यादिव, तेन निर्जरस्याचे निर्जराची इत्यादी न प्रसङ्गः। भव तुः ग्रन्थो व्यवस्थापकः, व्यवस्था च कीनिटादाविनाताविक्कत्तीति । विद्यक्षिषेश्यः स्यादन्तरकः विधिवंतीति न्यायादादी जरसादेग्रे भम भाविक्षीपः स्थी नकारस्य न स्थान्, एवं टा छे छनीनाम् इनायातीऽपि न स्यः । किश्व सर्व्यावयगित्रेगेन इत्यायत्यात् पानी स्थान् कीनित् पानिकामिति न स्थान् तेन निर्जरसमिति, पर्व पदां दतामित्यादशीऽपि । किवित् पाणिकताः सावकागविधिभः स्यादवती निरवकायक इति न्यायेन, जरसादियक्रमणान् भावी टा-ङस्थोः स्थाने इनातौ इक्तिता, तन्यते (टा. १०६) निर्जरिंगिनः (छन्ति, १०६) निर्जरसादिता । पर्वे जरसादियाभावपचे, इसे परिस्थाम् भिस् स्थम् सुप् एषु परिषु चित्रयेः । पाणिकाः ७ १११०१ ।}

एषां स्थाने एते क्रमात् स्तुर्वा यसादी पौच परे। क्ष पदः पदा पद्धार्मित्वादि । दतः दता दक्कामित्वादि ।

११७। सदानोऽल्लोपोऽम्बस्थात् पौ वा त्वीङ्गो:।

(सदा।१।, भन ६।, भत्- कीपः १।, भ-मृथ-स्थात् ५।, पौ थः, वा।१।, तु।१।, ई.ब्री. ७।)।

अनोऽकारस्य नित्यं सोपः स्थात् पी परे, ईड्योसु वा, न तु मस्यात् वस्याच परस्य । 🌵

[🚁] एतेषां स्थाने एते चादेगाः क्रमान् भवन्ति, यथा— पाट **निशा** पृत्ना मास যুৰৰ শিষ্ ঘূৰ मास् पद दत् न।सिका उदक इदय भस्र यज्ञत् স্ক্র यक न् ह३ **प** सन् **उद्**न श्र क न् षत्र असादिय इणेन पूर्विविभक्तिरिं। सात् कीवे चौकारस्य पिलेऽपितत्र न स्थात्। भव भासनग्रद्भाने चासन् इति पदं साधयता वोपदेवेन काश्रिकानतसेव भामाणि-कत्वेन रहीतनः; सिडालकौमुटीकारिय तु भास्त्रभन्दस्थाने भासन् इति वदता तकातं प्रामादिकामिति भिद्धान्तितम्। वाग्रब्दस्य व्यवस्थया कविद्वास्थात् (१), क चित्रियं (२), काचित्र स्थात् (३), प्रयोगत इति । यथा. (१) ग्रसादौ भिक्कल्पः स्वय-सुदाइतः, एवं सुदतौ सुदनी इत्यादी च । (२) केशार्थे शीर्थणः, पूरियतव्यार्थे उदकुमा इत्यादि । (३) पादप्रचालन जलार्थे पाद्यमित्यादि । पाणिनि: ६।१।६३ ।

[†] सदित पूर्व-वाधिकारिनष्ठस्वयं न । षण्या सदित सप्तस्य नं सुखाले गौषाले विस्तयं, तेन पूजितपूष्णः पौतयूषः इत्यादि विद्यम् । भव वस्ति म्वः (भवानः) मृत्यासी स्वेति म्वः (भवानः) मृत्यासी स्वेति म्वस्यः, न मृत्रसः षम्वस्यस्थान्, नवसंगान् यथा—कर्याषः यञ्चनः इत्यादि । ईद्योरिति ङि-साइष्यांत ई इति विभक्तिस्वस्थीयमेव याद्यम्, तेन षज्ञी षहनी इत्यादि ; ईपि तु नित्यं राज्ञी विद्यामीत्यादि । वार्त्तमः पौष्णः धार्त्तराजः एवाम् पनैनैव विश्वी (४३५) इन् वन् इति मृत्यमेवं जापयति—त्वितस्य षवि ये च न सर्वव पनिः क्षीपः, तेन राजन्यः मृद्वन्य इत्यादि सिद्यम् । पाषिनिः द्वि। १३४,१३६,१३० ।

यूषाः यूषा। #

११८। नो खुप् फेऽघौ।

(न: ६।, खुप् ।१।, फी ७), मधी ०)।

नस्य लुप्स्थात् त्रधी फेपरे, ं यूषभ्यामित्यादि । डो---यूचिष यूषि यूषे । मासः मासा माभ्यामित्यादि । क्ष पचे घीच रामवत् । पदादयः प्रथक्ष प्रव्येते । §

११८। सङ्ख्या-वि-सायादाङ्कोऽहन् ङौ।

(सङ्गा-वि-सायात् ५), वा ।१।, षङ्गः १।, षहन् ।१।, ङौ ७।)।

सङ्घा-वि-सायेभ्यः परस्याङ्ग इत्यस्य ऋहन् वा स्यात् ङो । ¶

स्यूष प्रस् (११६) = सूषन्- प्रस् (११७, १०७) = सूषाः । एवं सूष टा = सूषाः ।

[†] लिङ्गालस्थरः अक्षत-नकारस्य लुप् स्थात् स्थादीय-इसे विरामे चन तुधी। धिवर्जनादेव लिङ्गालनकारस्य प्राप्तः, तेन (इनधासी च्यां दिपि) चहन् रत्यादीन प्रसङ्गः। प्रश्नान् भवान् इत्यादी क्षतत्वात् न नस्य लोपः। पाणिनिः पारा०, ।

[‡] यूषः क्रिः (११६, ११७, १०७) = यूषि, वा यूषि, वा यूषि । मास-मस् = मासः । भास-टा = मासा । मास-स्याम् (११६, १०२, ७०) = मास्यां ।

६ एके -- केचित् पिछिताः चद्रप्रस्तयः प्रयक्ष्याः सन्तीति वदिना । एतत् वीपदेवस्थापि सतम्, चतएव कारके (१००१) चावसतात् स इत इति वितीयैकवचने स्वयस्वराष्ट्रतम् ।

ण सङ्गावाचकशब्द विशब्द सायशब्दैश्वः परस्य पण्ण स्वकारान्तशब्दस्य पण्डन् वा स्वात् की परे। वयोरकोर्भवः स्वकः, विगतम् पण्डः स्वकः, पण्णः सायः सायाः। सस्यकोराजः इति (३५३) पमस्यये, सर्वेकदेशः इति (३५४) प्रकादेशे एवामदन्तलम्। पाणिनिः ६।३।१६०।

हाक्रि दाइनि दाक्रे, व्यक्ति व्यक्ति व्यक्ते, सायाक्रि सायाहिन साधाक्रे । *

विष्वपाः विष्वपौ विष्वपाः, विश्वपां विष्वपौ । 🌵

१२०। घोरालोपोऽख्यदी।

(धी: ६, चा-कोप: १।, चिच ७।, चनी ७।)।

धीराकारस्य लोपः स्यात् अवावि परे।

विखपः, विम्बपा विम्बपाभ्यामित्यादि। एवं गङ्कभादयः । 🕸

भीः किं—हाहाः हाहा हाहाभ्यामित्यादि । §

श्रेषं विश्वपावत्।

हरि:।

१२१ | युद्धप्रा-मौ यू । (बह्माम् ४॥, कृते।१।, यू २॥)।

^{*} दाह्र जिल्हा हुन-इ (११०) = दाहि, वा दाहिन, वा दाहे इत्यादि।(इत्यदना:)

[†] विश्वंपाति रचति यः स विश्वपाः विश्वपाः । विश्वपाःसि (१०२) = विश्वपाः। विश्वपाःसी (२३) = विश्वपौ । विश्वपाःसम् (२२) = विश्वपासः।

[‡] भालतयत्रोभ्ताकारस्य लीपः स्थान् विभिन्न स्थादीयाचि परे । तिञ्जाच-यका-रयीः परयीः ययोलीप (२५८) इत्यनेन चाकारलीपस्थावश्यक्ते भारालीपः पौ इति वन्न कतं तन् गोनायः सायुः पायुरित्यादौ (४४०) चाकारस्थित्यर्थम् ४ विश्वपाशम् — विश्वपः इत्यादि । प्रकाधनतीति शक्कप्राः । एवं पुर्स्यं तायतं इति पुर्स्यताः, चान्यपाः स्रभंया इत्यादि । पाणिनिः ६।४।१४० ।

[§] इा इति कुत्सिनं अर्वे नहातीति घीषादिन-काप्रत्ययेन, उस्येचीति (६१०) माकारखीपे हाइ। इति भाकारस्य भावनयनताभावात् न भाकारखीप: । किप्पृत्यये छ भावनयनत्ते काकारखीप एव — हाइ: । हाइ। गन्यव्ये: । "भातीऽनाप इति बक्तव्यम्" इति वाक्तिबस्—भावन्तिभिन्नागामाकारखीप इत्यर्थः । भन "धातीः किं डाहान्" इति विद्यान्त्रवीसुदी । "इाइ। जु वा , हाइ। इाहः हाहान् वा" इति सीपग्ने । "हाइ: इति क्षमदीयर् । "भव्युत्पनीऽपि गन्यव्यवनाको हाहाभव्यं। किं काहान् हाई इत्यादि भवति" इति गोयीचन्दः । (क्ष्यादकाः) ।

इकारीकाराभ्यां पर त्री क्रमादिकारीकारी प्राप्नीति । इरी ।

१२२ । गुधिनस्डित्सु । (वः १।, घि नस् वित्त ०॥)।

इतुरोर्णुः स्वात् भी जिस ङिति.च परे। इरयः। १ त्यां से त्

१२३। टादसञ्चास्त्रियान्त ना।

(टा ।१। भदसः प्रा, भ ।१।, पिक्षणं ०।, तु ।१।, ना ।१।) ।

इदुद्वामदसय परष्टा ना स्थात्, न तु स्तियाम् । §

इञ्चल यू. प्रधान् तकारानुबन्धेन युती ताभ्यां। क्रमच दकारात् ची इ.
 एकारान् चीलः। इत्यो = (१२१,२२) हरी। पाव्यितः ६।१।१०२।

[†] भन, इट्डां विहितं एव धी परे बीध्यं, तेन हेनदि हं सुभु इत्यादी समूदीति (१५६) इस्ते पचात्न गुष:। ङिति च सावात् परे बीध्यं, भन्यया सत्ये ऽत्यक्ष या डितामिति (१५६) ऋमि क्रवेऽिष भनेन गुषापित्तः स्वात्। इरि-जस् च (१२२, ३५) इर्यः। पाणिनिः श्वार∘ ८, १०८, १११।

[‡] प्रत्यस्य जोपे सित प्रत्यस्य सवर्षं विक्रं स्वीक्रियते इत्वयं, येन केनापि क्रव्यंन प्रत्ययसीपे सत्प्रत्ययसम्बन्धि कार्यं स्वादिति यावन्। (पाणिनिः १।१।६२)। यथा, राजा इत्यादी (१४८) सेलीपे (१६४) दीर्घः। वाचामीक्रः वागीक्रः इत्यादी (११८) विभक्तिल्लि विभक्तालिविह्ता पदमंत्रा सिद्धा। हे हरे इत्यत्र चादी गुणे क्रिते, स्वानिविद्यतेष स्वापस्य विकार स्वानिवदादेश इति स्वायस्य व्यक्तिपारम् चनार्थः। हे—इरि सि (८०,१०३, १२२) = इरि। इरि-क्षम् (१०३,४०४) = इरीन्।

इरिणा हरिभ्यां हरिभिः, हरये हरिभ्यां हरिभ्यः। अ

१२४। इन्सेंडो लोप:।

(डस्य ६।, एडः: ५।, स्तोप: १।)।

एडः परस्य ङसिङसो ईस्य लोपः'स्यात् । वि इरेः इरिभ्यां इरिभ्यः । इरेः इर्थ्योः इरीणाम् । क्ष

१२५ । युद्धप्रां हो हो: । (युक्षप्रां प्राः, के: ६।, जी: १।)। इदुक्षप्रां परस्य केवीं: स्यात्, व इत् । §

१२६। टे-लेंग्पो डिति, विंग्रते-स्तेस्वङौ।

(टं: ६ा, खोप: १।, डिति था, बिंबते: ६।, ते: ६।, तु ।१।, पड़ी था) ।

बिति परे पूर्वस्य टेर्नोप: स्यात्, विंगते-स्तेस्वङो । श

^{क हिर-टा (११३, १००) = हिल्ला । हिर्द के (१२२, ३५) = हरते ।}

[†] डः परः आः डः तस्य इत्स्य, स च इत्सिङ्कोरिव सभवति, भत भाइ ङिसङ्की-र्ङस्थिति । एङ इति प्रकृतिविकृतेरिष, तेन गोः योरित्यादि । पाधिनिः ६।१।११० ।

[‡] इस्-ङिस (१२२, १२४, १०२) = इरै:। एवं उस् = इरै:।' इस् कीस् (34) = इस्टैं:। इस्-भाम् (११०, १०४, १००) = इरीवाम्।

[§] यद्यपि, युक्तां केरी इति इदुक्तां सक्त केरी विघाने क्षते परस्ते चकाविति वक्त स्थात्, तथापि खी-करणं परसूते स्थाद्यध्यायप्रकरणीय-डिति परे एव विभ्रते-की-खींपाय, तेन विश्रतिमाचिष्टे विभ्रतयित इत्यत्र (८५५) जिन्नत्यस्य (४६०) डिस्वेऽपि टेरेव खोप: नतु ते: । पाणिनि: ७।३।११८-११९८ । एतन्प्रते भीत् ।

ण जिति परे तत्पूर्वंशस्टस्य टेलें।प: स्वात्, विंग्यतिशस्टस्य तु ति-भागस्य लीप: स्वात्, चर्जी जिसम्बन्धिभिन्ने जिति परे, जिसम्बन्धि जिति परे तु विंग्यतिशब्दस्य टे-लेंग्प प्रतेस्वयं:। यथा, विंग्यते: पूर्ण: इस्वयें विंग्यतिश्रन्दात् (४५०) जटि क्रतें जिन्भागलीपे विंग्रे, जी तु विंग्यती। पाणिनि: ६।४।१४२,१४३।

इरी इर्था: इरिषु। अ एवं श्रीपत्यग्निरव्याद्य:। 🌣

१२७। संख्यृद्यां सेडीघे:।

(सल्राह्मां ५॥, से: ६।, डा ११।, अधे: ६।) ।

सिख-प्रव्हात् ऋकारान्ताच परस्य से डी स्थात्र तु घेः। सखाः प्रधेः किं, हे सखे। कः

१२८। घो ति: र (घो ठा, तिः १।) ।

सब्यु ऋकारस्य च तिः स्थात् श्रधी घी परे। § सखायी सखायः, सखायं सखायी सखीन्। ¶

१२८। संख्यष्टाङिता-माएउसुसौ।

(सख्रः ५।, टा-डिताम् ६॥, घा ए उस् उस् भौ।१॥)।

इरि-ङि (१२५, १२६) = इरौ । इरि-सृप् (१११) = इरिषु ।

[†] श्रीपृतिस अग्निस रिवस ते आदयी येकां ते। आदिपदात् विश्वेषितन-यावतीय-प्रिकः-ऋक्षेकारान्तश्रव्दाः एवनित्ययैः।

[‡] सखा च ऋच ताथ्यां, सख्याह्माम् । सखि-सि — सखि-छा [उ-इत] (१९६) - ः सखा । ई सखि-छि (थि) — (१०३,१२२) सखे । पाणिनी सखिपति मृद्धाधनम्बारः सस्यक् विभिन्न एव । अशाहर,८३, अराहरूप्र, दाराहरूर, अशाहरू

[¶] सखि ची = सखे ची (१५) = सखायी। एवं अर्थ् पम् ची परे। सखि-शम् (१०४,१०५) = सखीन्।

सख्युः परेषां टाङितां स्थाने त्राए उस् उस् ची एते क्रमात् स्युः।*

सख्या सख्ये सख्युः सख्ये । 🕆 भेषं हरिवत् ।

१३०। पत्युरसे। (गलुः ४।, भसे ७।)।

पतिग्रब्दात् परेवां टार्डितां स्थाने त्राए उस् उस् ग्री एते क्रमात् स्थुनेतु से। पत्था पत्थे पत्थुः पत्थः। ग्रसे किं, त्रीपतिना द्रत्यादि। ग्रेषं हरिवत्। ॥ क्रितिग्रब्दा ब्यान्तः। §

श्रा ए उसुधी दत्यच सूचलात् न सिलः। टा छे छस दुंस् हि स्थाने क्रमे भा ए उस् उस् भी भवित्। टादिस्थाने भा भा ए उस् उस् भी भवित्। टादिस्थाने भा भादि करणं ना भादिनिष्धार्थम्। किन्तु. क्रिविद्यवादिवष्येऽष्युक्तभौ-ऽिमनिविश्रते दित भाषा भातिदेशिकं कार्थमिनित्यिति न्यायात् सिखना वानरेन्द्रेण इत्यादि सिख्य। सख्याद्यामिति ची व्रिरिति सख्याद्याहितामिति एतेषु सिख्यभ्दस्य सुख्यस्थेव यहणम्। गीणस्थापि यहणमिति भाष्यकारः, तन्मते जितसखा, जितसखायौ, जितसखा इत्यादि, एवमतिश्रयितः सखा भतिसखा इत्यादि च। किञ्च, पृंकिङ्गे एव यहणं, स्त्रियान् नित्यभीवन्ततान् (२०४) सखी गौरीवन्, क्रीवे चास्य न प्रयोगः। पाणिनः ११४१०, ६१२१११२, ०१३११९ ।

[†] स्राख-टा = स्राख-चा (३५) = सस्ता। एवं के खिस खम् डिग्योगे।

[‡] भवापि पूर्वस्ववत् क्रमान्वयः, न्यायस्त्रीकारस्, तेन पतिना नीयमानायाः इति, नटे स्ते प्रविनिते क्षीवे च पतितं पतौ इति, स्रोतायाः पतये नमः इत्यादि च सिद्धं, कान्दसमिति केवित् । पति टा — पति भा (२५) — पत्या । एवं उटे उट सि उट्म डि परे। श्रीपति टा (१२३) — श्रीपति ता, श्रियाः पतिः श्रीपति दिति विग्रहः । श्रेषं पतिश्रस्ट-स्रोत्याः । पाणिनः ११४ । ।

कृतिग्रन्दः कियत्परिमितव।चकः, चत्रपव चनिश्चितवकृतार्थलेन वृहवचनान्तः
 पव भवति ।

१३१। डितसङ्ख्याच्यो चस्यसो र्जुक्।

(डिति सङ्ग्राष्ट्यः ५., जस्मभीः ६॥, लुक् ।१।)।

डत्यन्तात् प्रान्त नान्त सङ्घायाय परयो जस्यसी र्जुक् स्यात्। क कित कृति कितिभिः कितिभ्यः कितिभ्यः कितीनां कितिषु। एवं यति तिति ।

डित-व्य-णान्तसङ्गास्रद्-युष्द्र सहगास्त्रिषु ।† च्यादयः सङ्गागव्दाः ब्वान्ताः । क्ष

१३३ । चेरयङ् नामि । (वै: ६।, पयङ् ।१।, नामि ०।) ।

विगन्दस्य त्रयङ् स्थात् नामि परे, ङिलादन्यस्य स्थाने। §

अ च न च च, सक्या चासी चाचेति सक्याण, उतिय सक्याचा चिति तसात्। उति प्रत्याः, तेन उत्यनाः, कित वित्ततः कित विति इति चयः । एषां सुख्यानामित्र यहणं, तेन प्रियक्तयः भृतिषयः मतिपञ्चानः इत्यादौ न लुक् । लुक्करणात् कित इत्यादौ (१२२) सुधींत्यादिना न गृणः, पञ्च इत्यादो नान्ततात् (१६८) न दोषः, (८३) लुकि न तज्ञिति निविधात् । पाणिनिः १।१।२४ २५, ७।१।२२ ।

[†] प च म च षो, षो घनो यथाः सा ष्णाना, ष्णाना घासी सङ्घा चेति प्णान-सङ्घा, इतियु व्यच ष्णानमङ्घा च षस्मच युषाच ति । इतिप्रव्यान-भव्यय सङ्घा-वाचक वाननान यस्पर-युषार-श्रन्दाः विषु लिङ्केषु सहस्यास्त्व्या एव सविन इति नियमान एवा लिङ्किविदितविभवकाय्ये न भवती व्ययः। एवा सुख्याना भेव यहष्, युषार-स्वरोस्तु गौषली सुख्यली च । ष्यादयुषान्संख्यास्त्रिषु सुरुषाः इति सिडालको सुरी।

[‡] भादिशस्त्रस्य व्यवस्थायाचकावात् भष्टादमपर्थंना एव, कनविंग्रणादीनान्तु एक-वधनान्तलमेत्र, 'विंग्रलाद्याः सदैकाले सन्दोः सङ्घेश्यसङ्घ्यो'रित्यमरात्।

[§] निशस्त्रस्य सुखास्त्रेव यहणं, तेन माप्तचीणानित्यादी न स्थात्। परमास्र ते
विश्वयिति तेषां परमचयाणानित्यादी सुखात्वान् स्थादेव। नाम्ययङ्चेरिति तु युतिदुःखावह्रत्वाच्च क्रतं; क्राचित्र स्थादित्यर्थनिति केविन, तेन चौणानिव ससुद्राणानिति
सिद्धम्। पाणिनिः ९०१।५३।

भग्राणां निष्। अ दिश्रव्ही दान्तः । क

१३३ । त्यदां देर: तो । (त्यदां ६॥, टे. ६।, का १।, को ७) ।

त्यदादीनां टेरकार: स्यात् क्षी परे। अ

दी दी, दाभ्यां दाभ्यां दाभ्यां, देयो: 'दयो: । §

वातप्रमीः वातप्रम्यौ वातप्रस्यः। ग

१३४। यूतोऽम्भसो-र्कावदीधोः।

(यूत: ५, भन-भनी: ६॥, की १॥, भदीधी: ५।)।

क्षिवर्जादीदूदन्तात् परयोरम्यसीः स्थाने क्रमात् मनौ स्तः।

वि-चाम् (११०, १६२, १०४, १००) = नयागाम् । वि-क्षप् (१११) = विषु ।

[†] दिशच्दी सुखे। एव दिवधनानः, तैन प्रियदिः पुरुष इति । येषां शब्दानामा-क्रतिरत्ययात्वं ने जायते ते एवादी वक्तत्याः, खतएव दकारान्तश्रव्हानासुदाहंरणे भादी विशब्दसुक्ता पक्षात् दिशब्दः कथितः।

[‡] भनुकर्णशब्दस्य सिमं जाभाविन टेरलाभावि त्यदामिति पदं सिज्ञम् । बहुवधमं गणार्थम् । सिसंज्ञानामेव त्यदादीनां टेरकारः स्थात्, तेन भतितदः भतितदः, भितितदः, भितितदः कुलानि, इत्यादी गौष्णं न स्थात् ; युभद्धदीस् गौष्णंऽपि, एवं वियुष्पदस्पद्धां न तसीति वज्ञत्यम् ; तेन भितियुष्पान् भत्यसान् भितिलान् भितान् इत्यादि ; प्रसि तु वितः युष्पतः भवतः ततः मतः भितियुष्पतः इत्यादि । लिङ्गात् विभक्तेरावस्यकलेऽपि जियदणं साचात् को परं एव शेयं, तेन सः एवः इत्यादी इसाद्तरे भादी न सेलें। स्थां उङ्की इति यत्र कातं तत् प्रक्षियालाघवार्थमेवित । पाषिनिः ७।२।१०२ ।

[§] वि-श्री = व-श्री (२१) = वी। दिन्धाम् (१०८) = वाध्वाम् । वि श्रोस् (१०६) च्चित्री:। विति दृदसाः।

[¶] वार्तं भिमिनीते प्रमाति वेति वातप्रमी: भीणादिक: ई(कित्)प्रव्ययः । स्वाविश्रेष इस्पर्यः । वातप्रमी-भी (१५) = वातप्रसी । जस् (१५) = वातप्रस्यः । सम्बुद्धी स्वे वात-भिमीः । किवन्तवातप्रसीश्रव्यस्य तु भिमि श्रस्ति क्षी भ विश्रेषः — वातप्रस्यन्, वातप्रस्यः, धातप्रस्यः, धातप्रस्यः ।

वातप्रमीं वातप्रस्यो वातप्रमीन्, वातप्रस्या वातप्रमीभ्या-र्मित्यादि । एवम् चतिलच्यादयः । *
सधीः । वं

१३५ | घोरियुविच । (भोः क्षा, प्रय-खन् ११।, पवि व)।

धोरीदूतोः स्थाने क्रमादियुवी स्तोऽचि,परे। कः सुधियौ सुधियः द्रव्यादि। एवं सुश्रीयवक्रगादयः। १ प्रधीः। १

१३६। कव्याद्यनेकाचोऽस्यादद्दन्पुनर्वर्षा-काराद्यन्यभूसुधियोयुर्ौ।

(कवायनेकावः ६।, प्रकात ५।, पटन्—सविशोः ६॥, य्वौ १॥)।
कादिव्यदिरनेकाचय भीरीहृतीरस्त्रात् परयोः क्रामात् यवौ

मदीसंज्ञत-घात-भिन्नात् फ्रेट्र-लात् ग्रस्थात् परस्य चमस्याने म श्रस्त्याने न स्वात्।
 वातप्रसी-चम् = वातप्रमीस्। वातप्रसी-चौ (६५) = वातप्रयौ द्यादि। चितलक्ष्याःदयः
 इति चादिपदेन चिततली वहुप्रेयसी चितवध् चित्रम् इह प्रस्तयः। पाचिनिः
 ६।११००।१०६।

[🕇] सु श्रीभना घौर्यस्थिति सुधी: । ध्वैधाती: क्षिप्प्रत्यत्रे घी: (१०१०)।

[‡] विभक्तिं विपरिषमय ईट्रतीरनृक्षितः। घालवयवीभृतयोः ईट्रतीः स्थाने क्रमात् इयुवौ सः चिष परे। प्राथेष विच् किप्रत्ययान्त्रभ्रव्यानिव ईट्रतीर्थालवयवलं सभावित, तथाच — "विच् किवला हि धातुलं न त्यत्रन्ति कराचन। केचिन त्यत्रन्ति धातृलं सुधीनौति-प्रदर्भनादिति॥" चचीति स्थादरेव, किचिन् तहितस्थापि, तेन धाम स्वायभुवं ययुरिति सिडम्। विभेषविधिलात् (२२) सह चैं चे द्रत्यस्थापि वासकीऽयं तेन की सुधिय दल्येन। पाणिनिः ६।४।००।

९ सधी-ची = सिधियी क्लादि। यथलेगां यी: (१०३५), सह यीर्यस्य सः स्यीः यवेग क्रीचातीति यवक्री:। चादिशन्दात् ग्रंडधी नी सुभू कटमू स्वयभू प्रध्यथः।

न प्रक्रष्टा घीर्थस्य सः प्रधीः।

स्तः श्रवि परे, न तु हन्भू-पुनर्भू-वर्षाभू काराभूस्योऽन्यस्य भू-ग्रव्हस्य सुधियस । क

प्रध्यी प्रध्यः इत्यादि । एवं दीध्यादयः । 🌵

कव्याद्यनिकाचः किं, ग्रुडिधियो । श्रस्थात् किं, यविक्रियो । नीः नियो । इः

य्वी इति दिवचनात्तेन क्रमनिर्म्वा हाथे पूर्णतः यूतीरिति दिवचनात्तं भूला चनु-वर्तते। ततस—कारकादिरव्ययादेरनेकाच्य धातीरीदृतौ यद्यधंयोगात् परौ भवत-सदा तथीः क्षमात् य्वौ स्थातामचि परौ, हन्भ्वादिभिन्नभूष्टस्य मुधियय न स्थादि-स्थाः। इयुवीर्निवेषे (५५) यसायवायेत्यनेन सिद्धाविष यविधाने (२२) दीर्षवाध-प्रार्थे, तेन कौ प्रष्णि। चच हन्पुनवंषांकारादि-भूष्टस्य व विधाने तिह्नभूवजनस्य कष्टगस्यत्या स्पष्टाधेभेव तिह्नमूवर्जनं क्षतम्। चचापि चचीति स्थादेरिव, तेन प्रधीयर हत्यादी न प्रसन्तः। हन् इति दिंसाधेमव्ययं तसी भवतीबि हन्भः पन्नगवज्यीः, पुनर्भः स्थात् दिकद्यां, पुनर्गवायां वर्षाभः स्थितं किञ्चसुके सवे, कारमूनगङ्-स्थाने इति कीवः।

भव चार्य विशेष:—स्वाद्यात्वाः पूर्वं कारकाच्याभ्यां क्रतस्मासस्येव चातोगेह्नी-यंवौ सः न त स्वाद्यत्तस्य ममाने, तेन भयनं भौरिति क्रिपि, ईषत् भीर्येषां ने ईषि इयः, दुःस्थिता धौर्येषामिति दुर्धियः इत्यादि। तथाच वश्यकभिया पलायमानस्य भागी-विषमुखे विनिगत इति भाषम्। भव वश्यकस्य भौरिति (वश्यकस्यन्तिनौ भौः) कारकादिलाभावादिति केषित्। परन्तु सुष्टु धौः प्रक्रष्टा धौरिति निखस्तौत्वे सुधौपध्यौ पौलक्योवदिति (१५१) कथनात् स्वमते नेशं स्यवस्था। पाणिनः ६।॥८२०८५। गतिकारकपूर्वस्थैवेष्यते यणादेगः इति वार्तिकम्।

† दीधीर्कं चलुदेवने दीप्ती इति धाती: क्विषि दीधीविति कनेकाच्, पादि-पदात् भवणी सुती लूगी सुखी प्रधतयः।

‡ ग्रजा घोर्यस्य सः ग्रजंधीः । ग्रज्ञधी-भी (१३५) = ग्रज्ञधियो । एवं यवस्तियो, नियो ।

अ कच व्यच करी, ते पादी यस सक्यादिः, स प पनेकाच कव्यायनेकाच् तस्य। हन् च पुनर् च वर्षाच कारा च ता' पादधी येवां ते हन्पुनवैर्षाकारादयः, तैभ्योऽन्यः हन्पुनवैर्षाकाराद्यन्यः, सचासी भृषिति हन्पुनवैर्षाकाराद्यन्यः,, स च सुधीय ती हन्पुनवैर्षाकाराद्यन्यभूस्थियी, न ती षहन्पुनवैषीकार्य्वस्सुधियी तथीः।

१३७। न्यापदीस्यो छेराम्।

(भी चाप्-दीभ्य: ५॥, उः ६।, चाम् (१।) ।

नीग्रन्दादापो याय परस्य छे-राम् स्यात्। नियाम्। शेषं सुधीवृत्। अयणीः अयण्यौ। ङी-अयण्याम्। शेषं प्रधी-वत्। ॥

१३८ । त-तज-खादीयों ङोवो:।

(त-तज-खात् ५ा, ईग्र. ५।, ङ: १।, वा ११।, ङ: १।)।

तात् तस्त्रानजादणीत् खाच परादीकारजात् यकारात् परो ङिसङसोर्ङ उः स्नादाः। सत्यः सत्यः। लून्यः सून्यः। सुस्यः सस्यः। पे

यम् ईरिवत् साध्यः । 🕸

श्रमः श्रमः श्रमः, श्रमः श्रमः श्रमः, श्रमः, श्रमः श्रमः श्रमः, श्रमः श्रमः

अ अब भैवलनीप्रव्यस्य तत्त्वप्रव्यस्य च ग्रहणं, र्तनः नियाम् अग्रण्यां गामण्या-मित्यादि । त्रीते तु पत्तरङ्गलादादौ इस्ते गुनि चितिनित कुले, पुंतहावपचे चितिया-भिति । त्री डिं च को चाम् (१३५) ⇒ नियाम । घये नयतीति किपि घरणी: नायतः । चग्रणी-चौ, कारकादिलात् (१३६) ⇒ घमण्यौ इत्यादि । पाणिनिः ९।३।११६ ।

[†] तकारस्य स्थाने जातः तजः, तत्र तजस्य स्वयं तत्रजसं तथान्, देवारस्य स्थाने यः क्रेयक्तसान्। एतेन तकार तकारजातवर्ण-स्वकारेभ्यः परस्थितान् कव्याद्यनंकाच इत्यनेन जातयकारान् उत्ति उत्ति स्वार उः स्थाधा इत्यभः। सुतिनिष्कति सुतिभिवान् चरित वा इत्यादि व स्वे सुतीयतीति सुतीयधानोः किपि (००५,६४२) सृती अन्दः। एवं लूनिक्कतीति जूनीः, सुस्विनिक्कतीति सुवीरित्यादि। सुती-उत्ति (१३६,१३८) = मुत्युः, वा सुत्यः। एवं लून्युः, लूत्यः, सुख्युः सुख्य इत्यादि। पाविनिः ६।१।११२। इति ईदना ।

[ू] ५रिशब्द इकारस कार्यन् अत्र त उकारस्थिति विशेषः,साधनस्वाणि तुल्यानीति।

यभूनां, यभौ यभीः यभुषु । हि यभो । एवं विणाु-वायु-भान्वादयः ।

१३८। क्रोष्टोस्तृनसृत्वधौ घौ स्त्रियाञ्च।

(कोष्टो: ६।, तुन: ६।, त्रन ।१।, मधी ०।, घी ०।, स्त्रियां ०।, च ।१।)॥

क्रोष्ट्रगब्दस्य तुनः स्थाने त्वन् स्थात् अर्थी घी परे स्त्रियाञ्च । न इत्। *

(१२०) सच्युद्धप्रामिति । क्रीष्टा, हे क्रीष्टी । (१२८) घी विरिति, क्रीष्टारी क्रीष्टार: क्रीष्टारं, क्रीष्टारी क्रीष्टून्। १

१८० | बाच्यवा । (वारा, भविषा, भवीषा)। कोष्टोसुनस्तृत्वास्थात् अवावचिपरे। क्रोड्रा । क्र

^{*} कीम्प्नीति कुमधातीरी पारिकानुन्पत्यये कीष्ट इति लिइं (स्थालवाचकं), तस्क्ष्ण तुन: स्थाने तन् भादेश: स्थान । तन् इत्यस्य नकार: (१४३) घावस्तस्रत्य पीरिता सुणनिधेषकतया सायंकः, न तु निस्तादन्ते, तथा सति तुनी ग्रहणं निर्धकं स्थान । गौणस्थापि ग्रहणं तेन बहुकीष्टा देशः । स्त्रियास्त्रीत स्त्रीलिङ्गवित्तिं सति निक्तिः चान्तरस्य नापेचा, तेन कोष्ट्री बहुकोष्टी इत्यच्चिष (२५०) स्टदन्ततादौष् । स्त्रियां नियमिति कमदीसरः । क्रीवेतु सागमविधेवं अवस्थादौ तृष्यि बहुकोष्ट्रीन वनानि इत्यादि । पाणिनिः ०।१।८५ ।

⁺ कोष्टु-िंच कोष्टृडा (१२६) = कोष्टा। है कोष्टु-िंच (घि) (१०३,१२२) = कोष्टो। कोष्टु ग्रस् (१०४,१०५) = कोष्ट्रन्।

[‡] पूर्वस्वे चियक्षादेव भव विभिन्नपानी पुकर्षियहणं कदाचिदिप यस चित्रं सम्भवित तन्निवेधार्थम्, भत्तपव शम्बिभन्नौ न हन्, यतः क्षीवेशी (१६२) क्षते शसीः (५२) विवसभावान् । टाट्यंगीति पाणिनिकमदीभरप्रस्तयः । भव भयीति स्थादेरेन्, तेन कोह्रदिं (भाप्तस्ये) क्रोष्टबिनिति । क्षीष्टुटा = क्षीष्टु-भा (३५) == क्षीष्ट्रा । पाणिकिः शिर्दिशः ।

१८१। ऋतो डो डु:। (स्तः ४१, डः ११, डः ११)।

ऋकारात् परो ङसिङसी ङी डुः स्थात्, ड इत्। क्रीष्टुः क्रीष्टुः क्रीष्ट्रीः क्रीष्ट्रनाम्। *

१८२। णुडिंध्योः। (णः १।, कि-ध्योः ०॥)। ऋकारस्य णः स्थात् की धी च परे। , क्रीष्टरि के को द्रोः। पचे हसे च श्रमुवत्। क्ष

इह: इही हह: इत्यादि, वातप्रमीवत्। एवमतिचस्वादय: । सभू: सभवी सभुव: इत्यादि, सधीवत्। एवं कटपूर्वयभ्वादय: । सन्: सन्ती सन्तः इत्यादि, प्रधीवत्। एवं द्वस्युखनाव्यादयः। १ धाता, त्वनन्तकोष्ट्वत्। धी हे धातः। एवं नष्टृहोत्वपीवा-दयः। १ पिता, हे पितः।

क्षेत्रिष्टु-क्षिचि कीष्टु-क्षम् (१२६, १०२) चिक्षेत्रुः, एवं क्षम् परि । क्षोष्टु-क्षोस् (१४०,३५,१०२) चिक्षोद्धी: । क्षेत्रिकु-क्षाम् (११०,१०४) चिक्षायानाम् । क्षागमदिणयो- क्षेत्रे विद्यागागमो विधिरिति न्यायादादौ नुमागमे क्षच्परत्नाभावात् न तन् । पाणिनि: ६।१।१११ ।

[†] क्रीष्टु-िङ (१४०,१४२) = क्रीष्टिरिः पाणिनि: ७!३।११०।

[‡] पर्चे त्रणोऽभावपर्चे, इसे भिमादौ परे श्रमुशब्दवत्। इति छदन्ताः।

इड्डबस्टस्य समि यसि च (१३%) यूत इत्यनित इड्डंइड्ड् । सुमू सौ (१३%)
 च सुसुवौ इत्यादि । सुलू-भौ (१३६) = मुल्तौ इत्यादि । इन्डाइड्डबेबमाया गर्सकोन्छिदशौकसानित, खलपू स्थाइड्डब्र. (खलं चलरं पुनाति सार्जयित) इति चामरः ।
 कटपू पुंसि राचसे, विद्याधरे सहादेवे तथा स्थादसदेवने इति सेदिनो । इति कदलाः ।

ण भाव-िष (१२०,१२६) = धाता । निरवकाश्रतादादी सेको टिलोपय, स्रतप्व (१०२) गुणस्यामसङः। धौ के धातःसि (१०२,१४२,१०२) = धातः। धात्रशब्द-सास्यात् नशुद्दाः (६६०) तनना एवा तथाच —नप्ता च कोता गदितोऽय पीता, चताय

पिता माता नमान्दा ना सव्येष्ट्रसाहयातरः। जामाता दुहिता देवा न हनन्ता इमे दग्र॥ *

१८३ | घाजस्वसृत्योः । (घो ७), प सम्वयोः ६॥)। घी परे ऋकारस्य एः स्थात् नतु स्वसृत्योः । १ पितरी पितरः, पितरं पितरौ । शेषं धात्वत् । पवं जामात्वस्थात्रादयः ।

१८८। नुर्वा नामि म्न:।

(तु: ६।, वा ।१।, नामि ७।, र्घ: १।)।

रुगन्दस्य नामि परतो र्घः स्थात् वा। नॄणां रुणाम्। कं शिषं पित्वत्। §

नेष्टा तरन प्रशासा । शासाय श्रंसा च तनत्ततुस्याः, श्रष्टिति श्रन्दाः खलु इडिभानः ॥ एते श्रष्टश्रष्टाः पौचादिषु रूढाः, नम हु पूचर निश्प-शास शास शंस, एतेस्यो धातुस्यः त्वन्भत्ययेन स्वती निपातनाच सिद्धाः । एवं यावतीयत्वनत्ताः धात्यश्रन्दवत् ज्ञेयाः । पारियनिः ﴿।४।११ ।

मात्रभन्दी जननीवाचकः, परिमाणवाचकले त्वनन एव, तेन धान्यस्य मातारी प्रकृषी । सन्त्रीष्ट्रभन्दः रथवामपार्श्वस्थितवीरे छदः टवर्गहितीयवान् । यातृभन्दः स्वामिक्षातृक्ष्वीवाचकः, चन्यत्र तृनन्तः, तेन तीयस्य यातारी प्रकृषी । ननान्दृ सन्त्रेष्ट्र देवभन्दाः न तृनन्तवत् प्रतीयमानाः किन्तु तृनन्तलेन निपातनात् सिद्धाः । चत एते द्रम भन्दा वस्तुतः तृनन्ता भिष न तृनन्ताः, तृनन्तकार्यो (१२८) घौ विरित्यनेन विद्धं न भनने इत्ययंः, (१४३) घायस्य इत्यनेन गुणं लभने इति यावत् ।

[†] पाणिनिः ७।३।११०।

[‡] नामौति सुख्यगौषसाधारणार्यं, तेन पतिनृषाम् पतितृषानिति । दृषाम् --(११०,१०७) नृषां, वा वृषाम् । पाषिनिः ६।४।६ । द्रति ऋदनाः ।

इस्टलस्य, लटलस्य, लटलस्य, एटलस्य च क्यं वीपदेवेन विरलप्रचारतात्न
 पदिर्मितम् । सिद्धानस्कौस्यान्तुकृगस्त्व से इति भन्दवयस्य क्यं लिखितम्।

१८५ । चोरो घो । (भो: ६१, भो १११, घो ०)। श्रोकारस्य श्रोकारः स्थात् घो परे। गी: गावी गाव: । श्र

,११६ | या यमग्रसी: । (भारा, भन-भनी: ०,) ।

श्रोकारस्य श्राकारः स्थात् श्रमि श्रमि च परे। † गां मावी माः, गवा गीभ्याम् इत्यादि । (१२४) इन्स्बेडो लोग इति, मोः गोः । ॥

१८७। रे रा स्मि। (रे ।१।, रा ।१।, स्मि ।)।

रैप्रव्हो रा स्थात् से भे च परे । §

राः रायौ रायः, राभ्यामित्यादि । प

ग्ली: ग्लावी ग्लाव: इत्यादि ।

इति अजन्त पंचिक्व पाद:।

क पाणिनि: शशह ।

[†] अप्रचादी, भीकारस्य आस्थात् दिलीयाया आकारेपरेद्रतियन कर्ततत् स्प्रप्टार्थम्। पाणिकि: ६।१।८३।

[‡] इति भीदनाः।

श्रीणलेऽपि, तेन क्रीवेऽपि सुराभ्यां सुरास इति । (१६०) क्रीवे स्तः इति इस्बेऽपि
 एक्रदेशविक्रतसनस्यत् भवतीति न्वायात् रा अस्टेशः । पाणिनिः असिप् ।

ण इति ऐदलाः।

[॥] इति भौदनाः।

३य पाद:--- त्रजम्त स्त्रीलिङ्ग ग्रव्हः।

१४८। म्राबीव्भसात् सेर्लीप:।

(भाप-र्रप्-इसात् धा, से: हा, स्रीप: १)।

चाप देपो इसाच परस्य मेलींपः स्थात्। उमा। #

१८१ यौरापः । (ई ।१।, भी: १।, घापः ॥) । जापः पर चौरी स्थात् । उमे उमाः । क

१५० | घिटौस्ये: । (धिटा पोसि श, एः शं)। प्राप एः स्वात् धी टीसीय परतः । हे उमे । उमाम् उमासः । क्र

१५१ | डिन्तां यम् । (डिनां ६॥, वन ११) । भाषः परेषां डिनां यम् स्थात्, म इत् । छमायै छमास्याम् जमास्यः, जमायाः छमास्याम् जमास्यः, जमायाः जमयोः जमा-

^{*} भाप् च ईप् च इम् च तखात्, त्वलाददत्तलम्। (१८३) खामखोरादिखनेन इसात् सेलॉपि सिन्ने भव इसी यहणं सिलीपानन्तरं तत्पूर्वकार्व्यनिर्वाष्टार्थे, खाना-खारादिलनेन लुपि तु (१५) लुपि न सनीखनेन पूर्वकार्व्यनिर्वधापत्तिः खादिति। छ भिवं मीयते नपतीति माङ् लि अस्ट इति मा-धातीलंग्रव्य (८६०) छम इति सन्दात् स्वियाम् भाषि छमा इति इपम्। पाणिनिः १११६८।

[†] भौष्याने दीर्घ-ईकारकर्षं नरसी इति सिज्यर्थम् । चापी यहणान् ईप्-इसी-निवृत्तिः । उत्ता-भौ - जना-ई (२३) = उत्ते । उत्ता-नस् (२२) = उत्ताः । पाणिनिः शिश्यः ।

[‡] विभक्तिविपरिचार्नेन पाप इति षष्ठान्तमतुवर्त्तते । घौटीधीय इत्युक्षयीः विशेषणाय इत्तीपरच इति पदं(५११) तसन्तलेनीक्रम् । हे छमा-सि (धि) (१४८,१५०)

नाम्। (१३०) न्याप्दीभ्यो क्डेरामिति। उमायाम्, उमयोः ष्ठमासु। एवं दुर्गामायास्त्रिकादयः। #

१५२ । स्तः स्यम् स्वयः । (वः ४।, स्वम् ११), सः १।, व ११।)।

स्त्रेराथन्तात परेषां कितां स्यम प्यात्, पूर्वस्य च स्तः । 🕆 सर्वस्य सर्वस्याः सर्वस्याः सर्वस्याम् । श्रामि-सर्वासाम् । श्रीषम समावत्। एवं विश्वादय अर्बन्ताः । हः त्रपुरीत्यृत्ती:-श्रन्तरायै नगर्थे । § दितीयस्य दितीयाय, दितीयस्याः दितीयायाः, दितीयस्यां दितीयायाम्। प्रेषुमुमावत्। एवं हतीया। ¶

⁼ उसे । उसा-चम् (२२) = उसाम् । उसा-चौ (१४८,२३) = उसे । उसा-चम् (२२) = जना: । जना;टा (१५०,१५) = जनया । पाचिनिः शशार ०५-१०६ ।

चाप पति पञ्चस्यतिमान्वर्त्तनम्। चावलभव्दात् परेवां ङे-ङिनि कर-िक्त एवां स्थाने यम् स्थान्. मिस्वादादीः। यदति अवतारान्तः। क्रितियदति करणे (१०६) टाभिसिखादिना अयाचारेशापत्ति: स्यादिति। उमा-के = उमा-य-ए (२३) = उसायै । एवं ङसिङमी: जमा य-चस् (२२) - उमाया:। उमा-चीस् (१५०,३५) = उमगी: | उमा भाम (११०) = उमानाम् । उमा हिः (१३०, १५१, २२) = उमा-याम् । विशेषविधिवहिर्भताः दुर्गाम।या भन्विकादयः सर्व्वे भावन्तशब्दाः एवभित्यर्थः । पाचिनि: ७।३।११३।

[🕆] पावर्मसर्भनामग्रन्दात् परेवां कितां स्थाने स्थन स्थात, मिस्वादादी, स्थम: पूर्व-स्थितस्य दीर्घस्य क्रस्त्वयः। यदापि उध्यम् इति क्रते स्वयेति न वक्तस्यं स्थान्, तथापि असै इत्यादि साधने सकारपरताभावे (२०६) मध्य इत्यस्याप्रवृत्तिः स्थातः। पाणिनिः ७।३।११४। ‡ सर्वा-डि:= सर्व सा-ए (२३) = मर्वसी। मर्वा-डिस (२२) = सर्वसा:, एवं क्षस परे । सर्व्वा-डि (१३०) सर्व-स्थ-मान् (२२) = सर्वस्थान् । सर्व्वा-मान् (११३) 🖚 सर्व्यासाम् । एवं विश्वा, चादिपदेन यानतीयावलाः सर्व्यनामश्रस्टाय एवं जीयाः ।

 ⁽८६) समीऽत्लवे इत्यव पुरिमिन्ने यहियों ने आर्थे अन्तरभव्दस्य सिसंजाविधान।त— भक्तराये (वहिस्थिताये नगर्ये पर्ये जलर्भ) इत्यत्र न सिमंज्ञा, भत्रप्य समाभस्द्यत् ।

[¶] दितीया-के (८०) वा सिसंघायां—दितीयसे दितीयाये दत्यादि। पाणिन 0 21818 I

१५३। सुम्बूदी द्याजम्बार्थानां घी खः।

(सुभूदी: विश्वच् श्रम्बार्शां रा, धी ६।, खः १।)।

सुभ्वो या दाजग्वार्थांनाञ्च खः स्थात् धी परे। हे प्रम्म। शिषसुभावत्। एवमकात्तादयः।

द्वाच: निं, हे श्रम्बाले, हे श्रम्बिने । *

जरा । (११५) जरस् ∙जराचि तु। जरसौ । केचिदादा-वीलिमिच्छन्ति। जरसीजरे। 🕆 जरसः जराः इत्यादि। (११६) पाददन्तीत, नासिका एतेना नियानां नस-एत्-निय:। नसः नसा नीभ्यामित्यादि । एतः एता एद्भग्रामित्यादि ।

निम: निमा ।

१५४। श क्राज भाज यज वज स्ज स्ज स्ज वस्य भस्जां घड् भौ। (ग—सम्जां स्ण, पङ्।रा, भौ ण)।

शान्तानां क्वान्तानां राजादेख षङ्खात् भी परे । 🕸

^{*} डी चची येवां ते दाच:, बन्दा अनशी चर्ची येवां ते चन्दार्थाः, दानस्र ते चनार्थावित दाजनार्थाः, सुभ्य दी च दाजनार्थाच ते तेवाम्। वादिशाहचर्यात् सुभ-क्रमः स्त्रीसिक एव, पंति तु हे सुभूदेंबदत्त इति क्रमदीयरः । क्रीवे तु (१६७, १२१) हे मुश्री मुख इति । सुभूगव्दस्य नदीसंजनगब्दस्य विस्यर्युक्तमात्वाचकावस्य व वी परेख: स्थात्। साहवाचकल् मुख्यएव याद्य:, तेक हे गौरि, हे पत्ने रत्यादि। एवम् पका, प्रज्ञा, प्रादिशब्दान् पत्ता पप्पाप्रस्तयः । हे प्रक्षालासि (धि) (१४८, १५०) - भन्वाचे इत्यादि। पाणिनिः ७।३१०७। ई सुभूः इति धिद्धान्तकौसुदी कातत्त्राचा । हेसुस्इति सीपद्माजीनराचा

⁺ जरा-ची (१४६, ११५) = जरसी, वाजनाची (१४८,२३) = जरे।

[‡] प्रयुक्त च राज च दैल्यादि दर्वे तंथाम्। एवां दशाना वङ्क्षात् भौ (८४) परि --- (चङ्गप्रकर्णे इस्विरास्थीः, धातुप्रकर्णे कस्विरास्थीरित्यर्थः । पाणिनिः पाराह्य

१५५। जो ड: में। (क दा, क रा, क ना)।

षस्य ड: स्थात् फी परे। निड्म्याम् इत्यादि। पत्ते वी च उमावत्। #

गोपा, विष्वपावत्। 🕆

मतिर्देशियत्, स्त्रीलात् न ग्रम् न, न टा ना । मतीः मला । ‡

१५६। द्या जितासस् । (वाः ११, जिता ६॥, पन् ११) । द्याः परेषां जितासम् स्थातः, म इत् । मत्ये सतये, सत्याः सतेः, मत्यां सतौ । एवं श्रुति-स्मृति-बुद्यादयः । §

१५७। स्त्रियां निचतुरोस्तिस्चतस् ऋ वत् क्तौ। (स्त्रियां अ, निचतुरो: ६॥, तिस-चतस्र।१॥, ऋवत्।१॥, क्ती अ)।

भे इति (८५) सादीय-इन्ने विरासे च बीध्यम् । (६४) भागभासीरियनेन षस्थाने सास्यात् डे भववापि, निशास्थ-सुपि निट्मु इत्यादार्थनेतत् मुचक दणम् । निशास्थाम् (११६) = निश्-स्थाम् (१५६) = निश्-स्थाम् (१५६) = निश्-स्थाम् (१५६) = निश्-स्थाम् । निश्च चादिशस्य विकल्पपचे, घो परे च निशास्थः समाश्रव्यत् । पाणिनिः ८।४।५३।

[🕆] गांप्रथियों पातीति किपि (१०३२) गीपाश्रन्दः विश्वपाश्रन्दवत् । इत्यादनाः।

[‡] मतिर्बुंदिः, इरिज्ञव्दवत्, किन्तु स्त्रीचिद्रस्य विश्वेषविधिनिषेषौ भवत एव । (१०५, १९३) एतत् सूचकार्थदयं [अस्स्याने न, टास्याने ना च] न स्नादित्यवैः। नित्यम् (१०३, १०४) = मतीः। मतिन्टा (३५) = मत्या।

[§] जितां स्थाने विकानात् भम. विभिक्तसम्बन्धित्वम्, भतएव स्त्रियै सत्थादौ स्थादौ-याचि परें (१६५) भीरियुवचीति इथादेश: । मित-छे=(१८०, नदोसंभाया) मित-भ-ए (१६५, ११) = मत्थे । नदोसंभाया विकत्ये मित-ए (१२२, १५) = मतथे । मित-ङिसि (वा ङस्) = मित-भ-भम् (१५,१२,१०२) = मत्याः, वा नदोसंभायां (१२५,१२४,१०२) = मित-डि (११०, १५) = मत्यां, वा नदोसंभायां (१२५, १२५) = मती। यावतीयिक्तप्रत्ययात्याः (११४०) भिये च दकारानस्त्रीविक्रशब्दाः एवं भ्रेयाः । पाणिनिः शरारर, १।४।६।

विचत्रोः स्त्रीलिङ्गे क्रमात् तिस्चतस्त्री स्तः क्ती परे । ती च ऋवत्, तेन न एविर्घाः । तिस्नः तिस्नः तिस्नभिः तिस्म्थः तिस्म्यः तिस्रणां तिस्रषु । *

टेरले सत्याप्। है हे हाभ्यां हाभ्यां हाभ्यां हयी: व्यो: ्र्

गौरी गौर्यों गौर्यः, हे गौरि,,गौरीं गौर्यों गौरीः, गौर्या गौरीभ्यां गौरीभिः।

(१५६) द्याङितामम्। गौर्यै गौरीभ्यां गौरीभ्यः, गौर्याः

भव प्रकरणवलात् स्तियां प्राप्ती स्तियां मिति यहणं, यच विचत्रोनं स्तियां वित्तः ततः क्रतमासे स्तियां व्रणावित न न तिस्वतसी भवतः इत्यमिशायायं, तेन भियास्त्रयो यसाः सा भियिचिरिति मितवत्। प्राक् स्तियां वृणी पथात् क्रतसमासे सम्बेलिङ्ग-वर्णनेरित तथीः तिस्वतसी भवत एव, तेन प्रियासिसी यस्त्र सः (१२०) भियितसा, तथा क्रीवेऽि प्रियितस् जुलिनत्यादि, सिंहान्तकी मुद्यान्तु प्रियेचि प्रियतिस् इति पद्वयं खिखितम्। प्रियची वामिति कातन्त्रम् सीपद्याय, प्रियचयाचामिति तृ क्रमदौष्टः। "यामि अप्रयव्यापामिति विश्वयः" इति भद्दी वितः। विभिन्तक्षेत्र तृ न भ्यादेशः, तेन तिस्यिः कर्तं विक्रतम्। किष्ठ घावस्त्रस्त्र त्वविदित्तभिन्नी गृणः स्वादेव, तेन हे भियतिस्वर्धेवदन्त, (१४२) भियतिस्वि क्षवान। क्षित्रस्ते। नान्तवान् प्राप्तदेवितं। देवर्णे इति। नान्तवान् प्राप्तदेवितं। (१६४) न निवार्यः, तेन प्रियतिसृष्यि कुषानि। क्षित्रस्ते। प्रियतिस्वः स्वाच स्वाद्यात्तात् (१४१) दुरिन स्वादिति। तिस्व इत्यादी, दन्त्यादेशकरणात् न यत्वन्। पाधिनिः ०१९१८, १००। ६।४।४।।

^{*} तिस्वतस् रित समाहार: । स्त्रीलिकं वर्षिन: विश्वस्य तिस् स्थात्, चत्रशब्दस्य चतस्य स्थात् कौ परे । तौ चादेशौ दीर्धेश्वदन्ततुल्यौ, दीर्धंतुल्यकयनात् इस्वस्थानं नायमानाः एतियोः [(१४३) घावसस्त्वर्णोरिति तृषः, (१२८) घौ विरिति वृष्टिः,
(१०४) शम्नाभि र्घं रित दीर्धः] न स्यु, भन्यम् स्थादेव, तेन तिस्यण्मिति इस्वात् तृम् ।
(१०३) शमीऽकारलोपाभायम् — एथ विष्यं घष षष रित विग्रहे एविघोः रस्थनेन
भकारकार्थस्यापि निषेधात् त्रेय रित ।

^{† (}१२३) त्यदां टेर: जो इति टेरकार व इति भकारानात् (२४८) स्त्रियामतः इति भाग् भवति, ततः द्वा इति ग्रन्टस्य जमायन्दवत् रूपम्। दा-भी (१४८,२३) -- देः दा-भोस् (१५०,२५) -- दयोः । इति इट्लाः।

गीरीभ्यां गीरीभ्यः, गीर्य्याः गीर्थ्याः गीरीणां, गीर्थां गीर्थाः गीरीषु । एवं वाणी-काली-नद्यादयः । अ

सक्ती:। श्रनीवन्तत्वात् न सिस्तीप:। ग्रेवं गौरीवत्। एवं अप्वी-तन्त्यादयः। १० ,स्त्री, क्लेस्त्रि। ३३

१५८। स्ती सुर्धः। (मो सा, मूला, पा रा)। स्तीयव्दी सूयव्दव धुसंज्ञः स्थात्। (१३५) धीरियुवचि । स्तियी स्तियः।

१५८ | स्ती वाम् श्रासी: | (स्ती ।रा, वा रा, अन मसी: आ)। स्त्री श्रम् क्ती वा स्थात् अमि श्रसि च परे। श्र स्त्रीयव्दी ध्रमं क्ती वा स्थात् अमि श्रसि च परे। श्र स्त्रियं स्त्रीं स्त्रियी स्त्रियः स्त्रीः, स्त्रिया स्त्रीभ्यां स्त्रीभिः, स्त्रिये

[ः] गीरी-सि(१४८) = गीरी । गीरी-भी(१५) = गीर्यो द्रष्णादि । ई गीरी-सि (घि) (१६) यूत् स्थेवदीत नदीसंज्ञार्या (१४८,१६३) = गीरि । गीरी भन् (१०३) = गीरीन् । एवं ब्रस्तिकको गीरीः । भादिना विशेषित्रता यावतीया द्रैवन्तज्ञस्यः एवं जेयाः ।

[†] खफीरिति परंखन कथ्य स्वांत कातो: चौकारिक मौम्ययेन सिकं, नतीः धक्तम्। धतप्त (१४८)न सिकंपाः। एवं, धन तत्त द्य धातुम्यः घौकारिक दं प्रत्ययेन घनैः तत्ती. तरीरिति तत्त्वीसकारमध्यः, आदिपदेन घौ क्रौ घौ भी प्रभ्रतीमां क्षित्रलामामिप ग्रहणम्। तथाच — अत्री तलौ तरी खची श्री क्री घौ भ्यादि शब्दतः, धनौत्तता सिनं कोपी गोर्थ्य न क्रस्तता इति । जीभरासु प्रियपपीः वहुयजीरित्यु भयश्चाच पठिला।

[‡] स्त्री-सि(१४८) = स्त्री। हे स्त्री सि(धि)(१४८.[(८६) नदीसंशायां]१५६) = स्त्रि

[§] स्त्री भू शब्दयोरीटूतो-घांलवयवलाभावान्, (१३५) दयुवार्थे धसंज्ञाविधः नन् पाणिनि: (१४।०८)

ष स्त्रीयहणं स्निवस्थ्यंम् ।

स्तीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रीभ्यां स्त्रीभ्यः, स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणां, स्त्रियां स्त्रियोः स्त्रीषु । *

स्री: त्रियी त्रिय: । हे त्री: । डिल्यामि च भेद: । त्रिये त्रिये, त्रिया: त्रिय: त्रिय: त्रिय: त्रिय: त्रियं त्रि

सुष्यादयः पुंवत्। सुष्ठु धीः, प्रंकष्टा धीरिति नित्यस्तीत्वे सुधीप्रध्यौ त्रीलक्तीवता क्षः '

धेनुर्मतिवत् साध्यः। धेनुः धेनृ धेनवः द्रत्यादि। §

अ स्तीशस्दात् भिन शिख च खियं खियः इति, भनेन स्तेण धातुसंशायाम् भादी (१३४) इयादेशे पयादीवल्लाभावात् (१०१) भन्मभी रादिलापी न खात् ; धुसंज्ञानिकलपचे तु (१०१) स्त्रों स्त्रीरिति । भे उति इस् कि विभक्तितृ स्त्रिशे स्त्रियाः सिवाः स्त्रियाम् एतेषु (८८) स्त्रीयुष कि तील्यत्र स्त्रीशस्दवर्जनात् (८६) निल्यत्रदीसंशायाम् भादी (१५६) द्याकितामम्, (१३०) केराम च, प्रथात् इयादेशः । भागविभन्नौ स्त्रीणामिल्यत्त (८६) वामीति स्त्रे स्त्रीशस्दवर्जनात् (८६) निल्यनदीसंशायाम्, भागमविध्वेलवर्ष्वादादी (११०) तुम्, भतएव भच्परलाभावात् न इयादेशः । "स्त्रियमतिकालः भतिस्तः । ह भतिस्तं ।" इति सिञ्जालकौनुदी । पाणिनः ६।४।८० ।

⁺ ई श्रीरित (८०) नास्तीयुव इति नदीसंज्ञानिवेधात (१५२) न क्रस्तः । जिति भामि च भेदः स्वीवन्दात् विशेष इत्ययं , (८८) स्वीयुच जितीत (८८) वामीति मुचाभ्यां नदीसंज्ञाविकत्यनात् रूपस्यभिति यावत् । श्री-ज्ञे (८८, १५६, १२५. '२२) = श्रिये, वा (१३५) श्रियं । श्री भाम् (८८, १९०, १००) = श्रीषां, वा (१३५) श्रियाम् । श्री-ज्ञि (८८, १३०, १३५) = श्रियां, वा (१३५) श्रिया ।

[‡] सुभोभना धीर्यस्थाः यस्य वा इति बहुनोही सुधीभन्दस्य स्त्रीलिङ्गपुंलिङ्गयोरेक-रूपतया नित्यस्तीलाभावेन नदीसंज्ञाभावात् स्त्रीलिङ्गविदितकाय्याभावे पुंवदित्यर्थः. भादिभन्दात् सुर्यो-यवकी प्रध्यादयः। भोभना चासौ घीशेति सुधीः, प्रक्रष्टाचासौ धीर्षेति प्रधीरिति कसंधारयसमासे तु नित्यस्तीलान्नदीसंज्ञायां सुधी-प्रध्यी कमान शी-खचीवत्। सुधीथन्दः इयस्यानिलेन ङिति भामि च (१८, १८) वा नदीसंज्ञायां शी-पन्दवत्, प्रधीभन्दस्युनित्यस्त्रीलेन(१६) नित्यं नदीसज्ञायां सुचीभन्दस्त्यर्थः। इतीदस्ता.।

[§] इति खदनाः ।

वधू गौरीवत्। वधूः वध्वी वध्वः इत्यादि । एवं चमूतन्वादयः। क्ष्मूः श्रीवत्। स्यूः सुवी सुवः इत्यादि । सुन्यूः हे सुनु । पे पुनर्भूः सुन्वत्। क्ष सुन्यः पुंवत्। क्ष स्वस्यः सन्वत्। क्ष स्वसः पात्रवत्। क्ष स्वसः पात्रवत्। क्ष स्वी-गीवत्। ॥ सुराः पुंवत्। क्ष क्ष स्वतः । कष् स्वतः । वित्तः । वितः । वित्तः । वि

इति अजन स्तीलिङ पाद:।

तन्त्रस्टः (२०६) जवन्तपचे वधूवत्, चनूबन्तपचे धेनुविद्यर्थः ।

[†] भूषी (१५८, १३५) = भुवी फलादि। हे सुभूधि (१५३, १०३) = सुभु। सिन्नपातलचणी विधिरनिभित्तं तिह्वातस्थेति न्यायेन धिसन्निपातनिती कस्वविधि-धिस्तीपनिभित्तं न भवतीत्यतः सुभुग्ति पदं विसर्गानिभित्ति केचित्। हे सुभूग्ति तु पाणिनीयाः (१५३ सुत्रस्त टीका द्रष्टच्या)।

[‡] पुनर्भूषव्यस्य (१३६) कव्यादीति वकारप्राप्ताः सुन्यस्थेन सार्यन तुसर्वेक्षैः, तेनास्य नित्यस्त्रीतात् दीतंत्रायां सर्वेत्र वधूषस्यव्येतः। एवं टन्भूवर्षाम् काराभूषां कपस्।

[§] सुभूमन्दस्य नित्यस्त्रीताभावेन दौसंज्ञाभावादिवर्थः । इति कदन्ताः ।

[¶] घाटवदिति (१२८) बिडिप्राप्त्रा, पिटवदिति (१४३) गुणप्राप्त्रा, साम्यं, न तु सञ्जेषपै:, तेन मसि स्तम्: मात्रिति च । इति ऋट्ना:।

[∥] इति घोदनाः।

सुधीसभी रा: घनं यस्त्रा इति विग्रष्टे सुरैग्रव्ही रैग्रव्हवदिवर्थः। इति ऐदनाः।
 क्षेत्रकाः।

४ घे पादः --- प्रजन्त क्तीवलिक ग्रन्दः।

१६०। सीवात् खमोऽधमीऽतः।

(क्रीवात् ५।, सि चन: ६।, चधे: ६।, म: १।, चब: ५।)।

चकारान्तात् नपुंसकात् परस्याधेः सेरमच मः व्यात्। * जानं, हे जान ।

१६१ | स्तीवाद्यौ: । (श्रीवान ४।, ई ११।, भी: १)। स्तिवात् पर भीरी स्थात्। ज्ञाने। 🕆

१६२। जस्मसो: ग्रि:। (जस्मसो: ६०, ग्रि: १०)। क्रीवात् परस्य जसः ससय ग्रिः स्थात्, स्र इत्। क्रिः

१६३। नुखयमादौ असम्तरलादौ तुवा।

(तुण्।१।, भग्ननादी अ, भसन्तरलादी अ, तु।१।, वा।१।)।

^{# (}१०६) स्वदीभामित्यनेन घन त्रादिलीपे क्रते सिक्केऽपि घमः स्थाने मिथानं (१६८) स्थमीर्जुगित्यनेन स्वदीभामित्यस्य वाधितलात् लुगापितवार्यार्थम् । ज्ञानमित्यस्य मकारस्य विभक्तवायवयविभक्तलात् (१०८) चा क्रिमभवीत्यनेन न घाः। पाणिनिः ७।१।२४।

[†] चच पुन: क्रीवादित्युपादानं सामान्यार्थम्, तेन सर्वेकात् क्रीवात् चौकार ई स्वादित्यर्थ:। ज्ञान-चौ = ज्ञान-ई (२३) = ज्ञाने। पाणिनि: ७।१।१९।

[‡] शित्करणं विभेषज्ञापनार्थम्, इ.इति क्रते सप्तस्येकवचनभ्रमी जायते, (१८८)
मधौ सौ मौ र्घह्यादिषु विभेषकरणं कष्टकरञ्ज स्थात्। क्रति पञ्च मष्ट फलानि
इत्यादिषु (१३१) लिङ्गविङ्गिकार्यनिषेधात् न शि:। गौणे तु मतिकतौनि चतिपञ्चानि
स्वादी स्थादेव। पाणिनि: ७११२०।

क्रीवस्य भी परे तुष् स्वात्, ने तु यमादी, भासन्तरसयोरादी तु

१६८। नसवमहन्त्रोऽघो घीऽघो घी।

(नस् चप्-सद्भाः सः, चधोः सः, घधो शः, घषो शः, घो शः)।
नसन्तस्य आपो महतो नान्तस्य च धुवर्जस्य घः स्थात् अधो घो
परे। ज्ञानानि। दी प्रीवत्। अर्घं रामवत्। एवं वन-धन-फलादयः। पं

१६५। तोऽन्यादेमीऽनेकतरात्।

(तः १।, ऋन्यादेः ५।, मः ६।, भनेकतरात् ५।) ।

भन्यादेः परस्य स्थमोर्भस्य तः स्थात् न लेकतरात् परस्य ।

^{*} यह प्रवाहारः, यमखादिः यमादिः, न यमादि रयमादिस्ति वान् । कस् मने ययोसी भसनी, भसनी च ती रखी चेति भसन्तरखी तथीरादिस्ति वान् । तुणी ण इत् मने परः (१०) । उकारैत् चित्रार्थः, न तु [नृ] विन्दुमार्वाति वच्चिति (२४२) । तुणः प्रकृतिभाजितात् ज्ञानानि इत्यादी नान्ततात् (१६४) दीर्घः । चलारि, प्रशामि इत्यादी यमादी कर्ष्यलेन न नृण् । भव नृष्यमः इति यमन्तस्ते विषेषे कृते सभ् भव्यस्य जिति सम्भि जलानि इत्यादी यमन्ततात् नृणीऽप्रसङः स्थात् । पाणिनिः १।१।४२, ०।१।०२।

षन्यत् प्रन्ये सन्यानि । हे प्रन्य । धुनस्तदत् । प्रेर्ण संतत् । क एवसन्यतराद्यः । प्रनेकतरात् किम्—एकतरम् ।

१६६। जरातोऽम् वा । (वरातः ॥, वन् ।रा, वा ।रा)।

जराग्रन्दात् परस्य स्थमोर्भस्य त्रम् स्थात् वा । त्रजरसम् त्रजरम्, त्रजरसी त्रजरे, त्रजरांसि त्रजराणि । पुन-स्तदत् । शिषं पुंवत् । १

(११६) पाददन्तिति शीर्षहृदयोदकासनानां शीर्षनृहृदुद्-नासनः। शीर्षाण शीर्षा शीर्षभ्यामित्यादि। कि हृन्दि हृदा हृद्गामित्यादि। उदानि उद्गा उदभ्यामित्यादि। आसानि श्रासा शासभ्यामित्यादि। पत्ते शेर्षे द्वानवत्।

प्रकरणवलात् स्यमी: स्थाने जातस्य भकारस्य तकारी भवतीति, तेन पृंचिङ्के
 श्विम श्रन्यमिति । अन्यतमस्य अन्यादिलाभावात् अन्यसमितियेव । अन्य-सि (१६०, १६५) — अन्यत् । पाणिनि: ०।१।२५ । एकतरात प्रतिवेधी वक्कान्य सित वार्षिक ।

[†] क्रीवेऽिप जरायहणात् श्रन्दानरेण प्राप्तसमासात् जराशब्द।दिव्यर्थः । नार्सि जरा यस्य तत् भजरम् । अजर-सि (१६०, १६६, ११५) = भजरसम् । जरसादेशाभाव-पर्व (१०३) स्वदीस्यामित्यनेन भम भादिलीपे भजरम् । अमीऽभावपचि च भजरिति । अभ भमी नियत्वेऽपीएसित्री वायहणं व्यवस्थायं, व्यवस्था च — वितीवैकवभने भमि भन्तरङ्गलाद-वलवतीऽपि जरसादेशात् पृर्वम् भमः स्थाने (१६०) सकारः स्थान्, पयादनेन भमि भमः स्थितिरिति ; भन्यथा भादौ जरसादेशे (१६०) सकारः स्थान्, पयादनेन भमि भमः स्थितिरिति ; भन्यथा भादौ जरसादेशे (१६०) सकारः स्थान्।वित भमोन्तुनापितः स्थादिति । भजर-भौ (१६१, ११५) = भजरसी,पचे (२६) = भजरे । भजर-जन् (१६२,११५, १६२, १६४, ५०) = भजराति, पचे भवरायि । पाणिनिस्ते सित्रपातपरिभाषया न जरस्, भगरम् ; परलात् जरसि क्रते सित्रपातपरिभाषया न (भमें) लुक् भनरसम् ।

[‡] भीर्ब-सस् (१६२,११६,१६४,१००) = भीर्वाण । भीर्ब-टा (११६, ११०, १००) = भीर्था, भीर्ब-स्थान (११६,११८) = भीर्बस्या । इत्यदन्याः ।

्र १६७ । **क्रीव खः।** (क्रीव क, खः १)।

क्रीवि र्वस्य स्व: स्यात्। श्रीपं, श्रानवत्। अ

१६८। समोर्जुक्। (वि-धनी: ६॥, नुक् ११।)।

क्रीवात् परयोः स्त्रमोर्जुक् स्थात्। 🌵 वारि।

१६८। नुसिकोऽचनाम।

(नुष्।१।, इनु: ६।, घवि अ, घनामि ०।)।

इगन्तस्य क्रीवस्य नुण् स्थात् त्रचि परे, न त्वामि । वारिणी वारीणि । क्षः '

१७० । सुधि वा । (सः ११, घी २०, वा ११) : इगनास्य क्रीवस्य सुवीस्थात् धी परे । हे वारे हे वारि । §

अधिन विधित्तरमञ्जित न्यायात् क्रीविलिङ्गश्रन्दस्य चन्तदीर्घस्य इस्तः स्थात्, निमित्ता-न्तरायेचा नालीवर्थः । स्थियं पातीति शीषा, क्षीविलिङ्गवित्तितात् इस्ते शीपनिति । पालिनिः ११२।४० । इत्यादन्ताः ।

^{† (}१६०) चकारान्तकीवात् स्त्रमी सं-विधानन स्रत्र चकारान्तिभन्नात् क्रीवादिति कीध्यम्। सुक्करपीन (८१) सुकिन तत्रेति निर्वेधात् तस्त्रिन् परेतत् किस् इत्यादी न (१३१) टेरः। विरास्तिविक्तन्सु स्यादेव, यथा पयः इतिः इत्यादि। पाणिनिः ७।१।२६।

[‡] अब येन केनापि प्रकारेष इगलसापि ग्रहणं, तेन प्रयानी सुननी सुरिवी इसादि सिवन्। तथी पिष्कात् (१०) फल्याचः परः । स्थाने जातस्य प्रक्रतिभाजि-सात् वारीवि इत्यादी नालसात् (१६४) दीर्घः । फनामीति पाम्भिन्ने स्थादीये प्रचि परे इत्यवः, तेन वारीदिनित्यादी न स्थात् । वारि भी (१६१, १६८, १००) = वारिषी । वारि-जम् (१६२, १६८, १६४, १००) = वारीवि । पाणिनिः ०।१।०३।

हु है कारे इत्यादी स्थमीर्जुगित सेर्जुशि (८२) ज्ञांक न तनित निवेधान (१२२) स्थित स्थित स्थान के नापि इशन्तस्य स्थिति है प्रयो है प्रयु इत्यादि।

वारिणी वारीणि, वारिणा वारिणे वारिणः वारिणः वारिणोः वारीणाम् । *

वारिणि वारिणोः । इसे इरिवत्।

१७१। पुंबद्दार्थीतापुंस्कं टाद्यचि।

(पुंबत्। १।, वा। १।, भृषीं त्रापुस्तं १।, टार्याच ७।)।

इगन्तं स्नीवम् चर्षेन प्रोक्तं पुंवत् वा स्थात् टाद्यचि । चनादये चनादिने इत्यादि । प्रोषं वारिवत् । चर्थेन किं, पीलुने फलाव । पं

१७२। दध्यस्यिसक्ष्यच्लोऽनङ्।

(दिधि ऋस्थि-सक्थि-भक्षः ६।, भनङ् ।१।)।

एषामनङ् स्थात् टाद्यचि, श्रङावितौ ।

(११७) अनीऽक्षोपः। दभादभेदभः दभः दभोः दभादिभि दभनिदभोः। शेषं वारिवत्। एवम् अस्य सक्यि अस्ति। क्ष

वारि-भान् (११०,१०४, १००) = वारीणान्।

[†] पुनानित्र पुंतत्। चर्येन पकार्येन उक्त: पुनान् येन तत् चर्योक्त पुंक्तम् । तद्कतम् — एक एव हि यः श्रन्तः पुंक्ति क्षोते च वर्षते । एक नेत्रायेना व्याति उक्त पुंक्तः स उच्यते ॥ यथा, नालि चादिर्थस्य तन् चनादि कृतम् चादिर हितानित्यथः, एवं चनादिः पुरुषः चादिर हित द्रत्यथः, चतप्त चनादिश्रन्यः एक । एक । योजुने फलाय, पौजुश्रन्यः फलव। चिले क्षीत्र लिकः:, इच्या विले पृंतिकः: दति न एक । योजुने फलाय, पौजुश्रन्यः फलव। चिले क्षीत्र लिकः:, इच्या विले पृंतिकः: दति न एक । योज अधिकः प्रमादिशः । पुनद्वा विकारपत्र । पुनद्वा विकारपत्र । प्रापितः । पुनद्वा विकारपत्र । (१६८) = चनादिने । एवं करिये करिने द्रत्यादि । पाणितिः । ११०४ ।

[‡] दिध च ऋखि च सक्षि च सित् च समाहारी तस्य । (१०) कि खादन्यस्य स्थानी । गौषेऽप्ययमादेशः, तेन पोतदक्षा पुरुषेण, धनास्या शिवेन, पोतदर्भ स्ति गै इत्यादि । भव दःखादीनां बढ़ानामेव यहणं, तेन दधातीति (१११८) दिधः, शस्य दधमे दिधने शानाय इत्यव सनक्ष्न स्थान् । दिधि टा = दधन्-भा (११०) = दक्षा इत्यादि । दक्षा-मित्यव सनरङ्कादनक्ष्, न सामः स्थाने तुम् । पाणिनिः ०।१।०५ । इति इदनाः ।

सुधि सुधिनी सुधीनि । हे सुधे हे सुधि । दी प्रीवत्। सुधिया सुधिना दूलादि । एवं प्रध्यादयः । *

मधु मधुनी मधूनि। है मधी है मधु। ही प्रीवत्। मधुनु मधुभ्यामित्यादि। एवम् अम्बु-सान्वादयः। (११६) पाददन्तेति सुवा। स्तृनि सानृनि इत्यादि भेदः। १

घात्र धात्रणी धातृणिं। भी—चे धातः हे धातः ही धातः। ही धीवत्। धात्रा धात्रणा इत्यादिं। एवं ज्ञात्र-कार्त्रयः। ध

१९३। एची युत् खम्। (एकः १॥, अत्।१।, खंश)। १ प्रद्युनी प्रद्यूनि । इत्रियो हे प्रद्यु। ही प्रीवत्। प्रद्यवाः प्रद्युना इत्यादि। श स्ति सरिणी स्तरीणि। हे सरे हे सरि। सराया सरिणा सराभ्यामित्यादि। ॥ सनु सनुनी सनूनि। हे सनी हे सनु। सनावा सनुना इत्यादि। ३०००

रति क्षीवलिक पादः। द्रति ग्रजन्ताध्यायः /

[ः] सुग्रीभना धीर्यस्थिति सुधि कुलम् इत्यादीनामस्यकार्येन उक्तयुंस्कलम् । एवं प्रध्यादयः। इति ईटिनाः ।

[†] इति चदना:।

[‡] दधातौति धात कलम् अस्यायेकार्धेन चक्तपंस्तलम्। एवं जानातीति जात कुलम्, करोतीति कर्नृ कलित्यादि । सुधि, मध्, धात्र — श्रौ (१६१,१६८) — सुधीनी, मधुनी, धातृषी । सुधि, सध्, धातृ— जस (१६२,१६८) — सुधीनि, मधूनि, धातृषि । सन्दोधने (१७०) वा गुष: । टाप्रस्तिविभक्ती पुंवदाविकल्य:। इति सटल्लाः

^{ैं (}१६०) क्लोवे ख इत्यादिभि खं प्राप्तुक्त एको युद्देव (इत्, छन्) अवलीख्यैः एकारस्य क्रसः कारुआलेन साम्यात् चकार एव जायके, चतः एतत्स्वकरणम् । पाणिनिः १।१।४८।

[¶] प्रक्रष्टा चौ: खर्गीयसान् तत् प्रद्युपर्याम् । घस्य पुंवहृति गीशस्त्वत् । इति घीटना ∥ भोभभी ग: धनं यस्य तत् सुरि कुलम् । घस्य पुंवहावे रेशस्त्वत् । इति ऐटन्ताः । अक्ष भोभना नौर्यस्य तत् सुतु कलस् । घस्य पुंवहावे स्वीत्रस्त्वत् । इति घीटनाः ।

३य:। इसन्ताध्याय:।

१म पाद:-- इसन्त पुंलिङ ग्रब्दः।

१७४। दिस्ताजचादी दि:।

(विरता-मचारी १॥, वि: १।)।

क्ततिवयन्दो जचादिस दिसंजः स्थात्। अ

१७५। हो हो भौ। (इ: ६।, इ: १।, भौ ०।)।

इख ढः खात् भी परे। 🕆

(१४८) माबीब्मसात् सेर्लीप:।(६४) भप्भसीरिति चप्जबी वा। लिट् लिड् लिही लिहः, लिहं लिही लिहः, लिहा लिड्स्या-मित्यादि।

१७६ । दादेव: । (दादे: ६।, घ: १।)।

इकारादेईस्य घः स्थात् भी परे । क्ष

[#] पूर्वे प्रयोजनाभावादनुकां संज्ञानाङ विकक्षेति । वि: (४०५) छक्तं यस्य स विक्कः:, सच जवादिय मौ विक्कानवादी । जवादिय — जवतिय दरिद्राति-यकान्तिः श्रासिरिव च । दीधौ वेशे च नागर्ति-र्जवादिः सप्तधातुभिः ॥ विसंघाफलन्तु (१८१, २४३,५६३,६८०) एतेषु स्वेषु द्रष्टस्यम् । पाणिनिः ६।१।५,६ ।

[†] विजय धातीय इस ढ: स्वात भी पर इत्यवः । पाणिनिः पाश्वशः

[‡] द भादिर्वेख स दादिसस्य। दादिशित शब्दस्य धातीर्वा विश्वेषणं, वस्त्रैव शब्दस्य धातीर्वा भनस्थिती इकारः तस्त्रैव भादिस्थिती दकार इत्यभिप्रायः, तेन धुक् धुग्, धाक् धाग् इत्यादी स्यात्, दिधिलट् इत्यादी न कादिलवं: । पाणिनिः याश्वरः ।

१७७। सभान्तस्यादिजनां सभा: मे, घोस्तु सध्वेऽन्ते च।

(क्षमानस्य ६। प्रादिजवां ६॥ क्षभाः १॥ के २०, चीः ६। त । १। , सखे २०, प्रने २०, प्राते १। । सम्बन्धस्यादी स्थितानां जन्नानां स्मभाः स्युः के परे, घीसु सध्वे ग्रस्ते च ।

धुक् धुग् दुन्नो दुन्नः, दुन्नं दुन्नी दुन्नः, दुन्ना धुग्भ्यामित्यादि । क्ष

१७८ । मुहां चुङ्वाभौ।

(सुइं ६॥, घङ्।१।, वा।१।, भी ०।)।

मुहादीनां घड्वा स्थात् भी परे। सुक् सृग् सृट् सृड् सृही सृहः, सृहं सृही सृहः, सृहा सृग्भ्यां सृड्भ्यामित्यंदि।

एवं हुइ-खुइ-नग्र-सिइ: । १

^{*} भभः भने यस म भभानः तस भादी स्थिताः जवः तेषाम्। तदयमयः— यस भव्यस्य धातीर्वा भने भभः, तस्यैव भादिस्थितानां ज उदगव इत्येतेषां स्थाने भभेष्यः— — भ ढ घ घ भ इत्येते भवनि, भवस्यः— भ ढ घ घ भ इत्येते भवनि, भवस्यः— भ ढ घ घ भ इत्येते भवनि, भवस्यः— भ ढिभः इत्येते भविष्यः। भव विश्वेषः— भादी जव् भने भभ् मध्ये इत्यंद्यः एकस्यस्य च व्यवधानेऽपि भविष्यति न तु वहुस्यस्ययधाने, तेन गर्दभमाचष्टे इति जौ किपि गर्दभ् इत्यादौ न स्थात्। व्यध्यौ तार्इ इति धातोदं न्यवकारत्वात् स्थादिन जौभराः, तेन जभ्भष्यस्य जप्, जेह् अस्टस्य नेट् इति परं भविष्यति (सीचतमारे सुवन्तवादस्य १४६ सूचं द्रष्टव्यम्)। दुइ-िष (१४८, १०६, १००, ६४) — धक् धुगु इत्यादि। पाणिनः ८, २। ३०।

[†] सुहासिति बहबवनं गणार्थम् । गणय सुह दुह सुह नग्न सिह इति। दुहमन्दस्य सुहादिपाठवलात् पचे ही टी भावित्यनेन ढः, न तु दिर्द्धं गत्यनेन घः, तेन भुक् भुग् भुट् भुड् इति । सुह-सि (१४८, १७८, ६४) — सुक् सुग्। पचे (१७५, ६४) — सुट सुड्। पाणिनिः ८,२।३३,६३ ।

१७८। वाहो वौ पौ खतात्तु वा।

(वाइ: ६।, वा ११।, भी ११।, भी ७।, श्वेतात ५।, तु ११।, वा ११।) ।

वाहो वा-ग्रव्टस्य त्रीः स्थात् पी परे, खेतवाहसुवा। विश्वीहः विश्वीहा द्रत्यादि। ,श्रेषं विड्वत्। *

१८०। त्रनादू:। (प्रनात् ४१, कः ११)।

भानवर्णात् परी वाही वा कः स्थात् पौ परे। भूहः भूहा इत्थादि। पं

१८१। अनडुचतुरोऽणाणौ धिच्योः।

भन बुन्न सत्रस भी परे अण् घी परे आण् स्थात, ण इत्। अ

१८२। होन: सौ। (इ: ६।, न: १।, सौ ७।)।

धनडुही इस्य नः स्थात् सी परे। धनड्वान्। हे धनड्वन्।

बाह्र इति वड्डधाती: (१०२८) विग्राख्येन िश्डम्। श्री-करणेऽपि सिर्छ
भी-करणं इसात् परस्थापि प्राप्तार्थे, तेन वार्वाह् ग्रन्टस्य ग्रसादी वारीष्ट: इत्यादि । विश्व-वाड्-ग्रस्—विश्व-मीड्-ग्रस् (२३) == विश्वीष्ठ: इत्यादि । पाणिर्गिन: ६।४।१३२,६।१।८८ ।

[†] भ: भवर्णः, न भ: भनसमात् भनात् । याहग्नातीयस्य विश्वतिषेषी विधि-रित ताहग्नातीयस्येति न्यायात् भवर्णसमातीथीऽनेव याद्यः, न तु इस् । ततस्य— पृथ्वस्यम् भवर्णविषयं इस्विषयः, एतत् स्यम् दवर्णायः च्-विषयमिति । भ्याङ् अस् = भृ-कङ्शस् (२२) = भूदः । एवं शालिवाङ्-शस् (१८०, २५) = शाल्युहः इत्यादि । भकारानीपपद एव वाहः साधुरिति नौयटाद्यः, तेन तन्यते भ्याट् शालिवाट् इत्यादि पदानि भसाधूनि । पाणिनिः ६।४।१३२ ।

[‡] अनुवार: इति एकवचनं क्रमनिरासार्थम् । अयायौ धिष्योरित्युभयच दिव-चनान्तत्वात् क्रमोद्रक्येव । (१०) चिल्लाट्याच: परी भवत: । पाणिनि शारीहरू,८८ ।

भनडाही समदाहः। समसुद्दः समसुद्दाः। अ

१८३। सम्ध्यस्वस्वनडुक्तां दङ् फे।

(सस्-ध्वस्-वसु-भगडुहां ६॥, दङ् ।१।, फी ७।)।

एप दिङ् स्यात् फे परे, चंङाविती। अनडु इरामित्यादि। 🅆

१८४। खेतवाच्चयाजुक्षशासुपरोडाशां

डसङ् । (वितवाह—पुरीडार्गा ६॥, डम्ङ् ।१।)।

एषामन्त्रस्य इस्ङ्स्यात् फेपरे, डङाविती । 🕸

१८५। ऋत्वसोऽघोः सौ र्घाऽधौ।

(भतु-भस: ६, भभी: ६।, सी ७, र्घः १।, भभी ०।)।

श्रतनास्थासन्तस्य च र्घः स्थात् श्रधी सी परे, न तु घीः। स्वेतवाः। §

^{*} अभयोरनृहत्ताविष चतुरी इकाराभावात भनजुइ एवेश्वर्थ: । भनजुह्-सि (१४८, १८१) = भनजु-भा-छ(३५,१८२) - भनजुन्। धी भनजुन् दत्यादि । पाणिनि: ७।१।८२।

[†] सन्स ध्वनस धातुभ्यां किप्प्रव्यये सम् ध्वन् प्रव्याः, वस्पिति (१०८६)क्षमु-प्रस्ययान्तः विषस् प्रश्वतिः। (१७) दङी ङिच्चादन्यस्य स्थाने । भाष्मसीरिव्यनेन (६४) सस्य दे चिद्वेऽपि, स्त्रीर्विः भे (१०२) ध्वस्य यखवन्तन वाधितत्वादनेन दङ्विधानम् । सुवः ध्रत्यत्र सुपूर्वक वस धातोः क्रिपि वसुप्रव्यवान्तवाभावाद्ग दङ् । पाणिनि पाराधरः।

[‡] डिल्वादत्यस्य स्थाने, (१२६) डिल्वात् टिलापः, भम् इत्यस्य स्थितः । श्वितवाद् भवयान् उक्षयम् पुरांडाय् एतेस्या उस्विधानेन सिक्षावितः, एतेषां स्थाने उस्दुः कर्षां उस्दुः जिल्वा हितायां, तंन श्वेतवाद्वादीनामसन्तवात् भलसीऽधीरिति दीर्घः स्थान् । भलसाऽधीरित्य भसन्तविद्वस्थान् । भलसाऽधीरित्य भसन्तविद्वस्थान् दीर्घः । पाणिनिः इ।२।०१,०२।

१ चतुत्र सम् च तस्य । सतुत्रस्ययेन सत्भागानस्य (४४१,४४२) धालवयविभिन्नाम्-भागानस्य च (१४२,१४६,४६६,१०२२,१०८६,११०२) दीर्घः स्रात् धिभिन्ने सी परे

१८६। **डस्डो भो वा।** (डस्डः ६१, भी ०), ना ११)। इस्डो भी परे भी वा स्थात्। हे खेतवाः हे खेतवः। खेतवाही खेतवाहः खेतवाहः, खेतवाहं खेतवाही खेतीहः खेतवाहः, खेतवाहः, खेतवाहः खेतवाहः,

(१११) किलादिति षः । तुराषाट् तुराषाड् तुरासाही तुरासाहः, तुरासाहं तुरासाही तुरासाहः, तुरासाहा तुरा-षाड्भ्यामित्यादि । ११

चलारः चतुरः, ः चतुर्भिः चतुर्भ्यः चतुर्भ्यः । (११०) नुमाम-इति चतुर्णाम् ।

• १८० | रङो वि: सुपि | (रङ: ६।, वि: १।, सिव ७) । रङो वि: स्थात् सुपि परे, न लन्य-रेफस्य । चतुर्षु । §

इत्यर्थः । चलन्तस्य यथाः श्रीमान् मधवान् युग्नदर्थे भवान् इत्यादि । चलन्तस्य तिं, भवन् कुर्व्वन् इत्यादी (११००) श्रवन्तस्य न स्यात् । चधीः किं, सुवः इति । श्रेतवाङ्-िस (१४८,१८४,१८५,१९५) चश्रेतवाः (इन्द्रः) । पाणिनि: ६।४।१४ ।

^{*} (१८४) त्रितवाहित्यनेन क्रतष्ठस्खीऽकारस्य दीघं: स्वादा घी पर इत्ययं: । हित्रताइ-ित [घ]ः १८४) = त्रितदस् सनेन दीघं, (१०२) = त्रितवाः, वा त्रितवः । त्रितवाहः स्वाद् । त्रितवाहः स्वास् (१७८, २२) = त्रितीहः, वा त्रितवाहः द्रत्यादि । त्रितवाहः स्वास् (१८४; १०२, ६८) = त्रितवीध्याम् । पाणिनिः पाराह् ।

[†] तुरा वेगं सक्ते कर्ता (१०२८) तुरासाह् सि (१४८८, १७५, १११, ६४) च तुरान् षाट् तुराषाड् (इन्द्रः) क्यादि । "तुरं सक्ते क्यार्थे कन्तसि सक्तः क्रित (१।२।६३﴾ खि:। स्तोकेत साक्यतेः किए" कर्ति सिखानकौमुदी । क्रित ककारान्ताः।

[‡] चतुर्जस् (१८१,१५,१०२) = चलारः, शसि चतुरः ।

प्रियचलाः, हे प्रियचलः, प्रियचलारौ प्रियचलारः, प्रियचलारं प्रियचलारौ प्रियचतुरः, प्रियचतुरा प्रियचतुर्श्यामित्यादि । *

(१६४) नसब्मञ्चन इति घंत्ने, (११८) नो त्रुप्। राजा, हे राजन्, राजानी राजान:, राजानं राजानी। (११०) अनी-ऽक्लोप:। राज्ञ:, राज्ञां राजभ्यामित्यादि। ङौ—राजि राजनि। १

(११७) श्रम्वस्यादित्युक्तेः ब्रह्मणः यच्चनः इत्यादि । श्रेषं राजवत् ।

१८८। इनपूषार्थ्यमेनोऽधौ सौ शौ र्घः । (इन-इनः ६।, षधौ था, सौ था, भौ था, धैः १।)।

एषां र्घ: स्थात् अधी सी परे, शी च। वनहा, हे वंबहन्, वबहणी वबहणः, वबहणं वबहणी। \$

१८८। इनो ह्रो हो न णः।

(इन: ६१, इ: ६१, घ: ११, न १११, च: ११) ।

^{*} प्रियम्बता इति प्रियायबारी यस स: इति गौखी सर्वेलिङ्गभाजिलम्। प्रियमतुर्-सि (१४८, १८१, १०९) = प्रियम्बता: इत्यादि । इति क्लारान्ता:।

[†] राजा इत्यव भारी नस्य लुपि (१५) तदायविधिनिषेधात दीर्घो न स्यादत भाक्ष मसब्मक्षत्र इति र्धेलं नी लुप् इति । प्रकृते: पूर्वपूर्व्व स्यादन्तरङ्गतरं तथिति न्यायात् भन्तरङ्गतादादी भक्तार-दीर्घ इत्याभिप्राय: । सिलीपलु सर्व्वादावेव, सर्व्वविधिन्यी सीपविधिवेलवानिति न्यायादिति भाव: । राजन्-सि (१४८, पैले नी लुप्) = राजा।

[‡] इनधातिष्यत-इन् इत्यस्य, पूषन् भर्यमन् इति भन्द्दयस्य, इन्भागानास्य च दौर्यः साद्व्यथः। नान्तवान् (१६४) प्राप्तदीर्घसः नियमोऽयं, तेन एषां सौ भी च परे एव दोर्घो नान्यध्यन् धौ परे इति। सीइन् दौर्घाइन् भूत्याइन् इत्यादीनां इनधातुः। नियम्भवाभावान् नन्यमुद्धः इत्यनेनेव दीर्घः। इतं इतवान् इति इत्यदः। पाणिनि ६।४१२,९३।

ष्टनस्थाने जातस्य क्रस्य घः स्थात्, तस्य च नस्य यो न स्थात्। व्यच्छः व्यच्चा व्यच्चस्थामित्यादि। एवं पूषन् त्रय्येमन् यार्ष्किन् ययस्विन् प्रस्तयः। *

१८०। पूष्णो डिःर्डिवर्री।

(पूषा: ५१, डि: ११, डि: ११, वर ११।) ।

पूषि पूषि। पूषि। १ े]

१८१। मद्योनस्तुङ् जा तिप्योः।

(मघोन: ६।, तुङ् ।१!, वा ।१।, क्ति-प्यो: ७॥) । '

मघवन् ग्रब्स्य तुङ्वास्थात् ज्ञीपीच परं, उङ्गविती। 🕸

१८२। त्रिदचोऽद्वे नुंग् धौ।

(उ-म्र-इत्-षच: ६।, भद्दे: ६।, नुष् ।१।, घौ ७।) ।

षकारित ऋकारितीऽचय नुण् स्थात् घी परे, न तु है:। §

इन इति इनधातुसम्बन्धिनी ऋथेवेश्यः, तेन इाधातुनियके मिक्र पूर्विक्षः
 इत्यादी घादेशी न स्थात् । यत्निवेधसु सित सम्भवे । वच इन्- सस् (११७ = वच क्रः,
 भिनेन घो) = वच घः इत्यादि । पृत्रा अर्थमा च स्यः । पाथिनिः ७।२।५४, ८, ४।४।२२ ।

⁺ पृथन्मव्दात् परो ङि-र्खिः स्थादाः । डिक्लात् (१२६) टिलीपे पृषि, एतत् पदं पाचिनीयादिभिनं मन्यते ; सारस्रतानुसारेषात्र लिखितम् । पर्धे (११०) पनाऽस्तोपो वा इति पृष्णि पृषणि ।

[‡] तुक्तः जकारित् (१८२) तुगर्थे, जकारित् (१०) भान्यवर्ष-स्थाने जननार्थम्। भौपरि यथा, माघवतं माघवत्यं माघवती। मघवक्षकिरिति पदं (८३) लुक्ति न तवित्यच नजा निर्दिष्टमनित्यभिति न्यायात् सिज्ञमिति केषित्। मघशच्दात् यतुशत्ययेन सिज्ञीः भघवभक्रच्दोऽप्यन्ति, तुङ्करणन्तु प्राचौनानुवादार्थम्। भनुवत्ताविष वा-यस्णं परभ निवस्थयेन्। पाणिनिः ६।४।१२८।

इस स्थ ह, ह इत् यस स हित्, क्रिष्ठ भव तस । भच् इति किवन-गलयांचोः
 यह्षं, तेन वहवीऽचः (स्वराः) यिकान् स बहुच् इत्यादी न स्वात् । भच, 'भदेरिकि

१८३। सान्तसाराह्नुप् फे।

(स्थान्तस्य ६।, भरात् ५।, सुष् ।१।, फी ७।)।

ख्यान्तस्य तुप् स्थात् फे परे, न तु रात् परस्य । *
मघवुान् मघवा, हे मघवन्, मघवन्ती मघवानी, मघवन्तः
मघवानः, मघवन्तं मघवानं, मघवन्ती मघवानी । †

१८४। खयुवमद्योनामुर्वे।ऽते पौ।

(ख-युव-मधीनाम् ६॥, उः १।, कः ६।, अते ७।, पौ ७।)।

एषां वयण्टस्य ७: स्थात् पौ परे, न त ते । 🕸

निवेधीऽयं भत्रेत न चान्यत' इति विद्यानिवासः, तेन क्रापुप्रत्यये जयन्तान पेचिवान् इत्यादो स्थादेव । . विकीर्धन् इत्यादौ त सनन्तादौनां (६२१) पृथक् धातुमंत्राविधानात् डिकक्तनिवन्त्रनी तृष्निर्धि न स्थादिति । यङ्कुगलस्य त न पृथक् धातुमंत्रा क्रता (६२१ सुचस्य टीकार्था ज्यादिगणे यङ्कुगलस्य वर्ज्यनात्) । त्रतएव पापचित् स्वद्याहरता क्रमदौष्यरेण यन्तुगन्तात्र तुम इत्युक्तम् । तेन परिलेखिइदिस्येव । पाणिनिः ०।१।००।

- स्थय प्रतः स्थालक्तस्य । सिकातिभिन्नः संधोगालस्य लुप् स्थात् फे परे, पूर्ववर्ति-रेफसंयोगस्य न स्थात् । लुप्करणात् (१५) पाद्यविधिनं स्थात्, सम्यद्यायिविधित-कार्यत्तु स्थादेव तेन थिपच् श्रव्यस्य प्रतेन प्रत्यलुपि, (६४) भाप्भागीरित्यनेन चप् जब् कर्षे पिपक् थिपग् इति । परादिति किं—कर्क्, प्रभार्ट् इत्यादी न संयोगालस्यः सोपः । पाणिनिः ८।२।२३,२४ ।
- † मघवन्-सि (१८८,१८२,१८२,१८६,१८५) = मघवान् इन्द्र: । तुङो विकल्पपेषे (१६४,१९८) = मघवा । हे मघवन्-सि [थि] (१४८,१८१,१८२,१८३) = सघवन्, तुङो विकल्पपेषेऽिय सघवन् इति । सघवन्-सौ (१८१) = सघवनौ, तुङो विकल्पपेषे (१६४) = सघवानौ, इत्यादि ।
- ‡ जन् च युवन् च सववन् च ते तेवाम । सघीनामिति निर्देशात् नान्तपचि एवार्यं विधिः, तेन सघवतः इत्यादी न स्थान् । चते तिहित्सिक्षे पौ परे । तिहते तु श्रीवनं भौवनं साघवनमिति । गौणेऽस्ययं विधिः, तेन धतग्रनः वहुयूनः टटसघीनः इति । पाचिनिः द्षशरुरहः

मघवतः मघोनः, मघवता मघीना, भघवद्वां मघवश्या-मित्यादि। *

श्रुनः श्रुना। यूनः यूना द्रत्यादि।

१८५। ऋर्षणोऽनञस्तुङ त्येऽसौ तु।

(भर्व्यः ६।, भनञः ६।, तुङ् ।१।, खे ०।, भसौ ०।, तु ।१।)।

नज्वर्जस्यार्वणो नस्य तुङ् स्थात् श्रमौ त्ये परे। † श्रम्भाती श्रम्भातः, श्रम्भातम् श्रम्भातः, श्र

१८६। पथिमच्यृ मुचां थितो नम् ।

(पिंच-मिंच ऋभुवां ६॥, य-इतो: ६॥, नमी १॥, घी ७।)।

पिंवन् मिंवन् ऋभुत्तिन् एषां यस्य नम् स्यात् इकारस्य चाकारः घौ परे। §

मघवन् ग्रस् (१८१) = मघवत: । तुङी विकली—(१८४,२३) = मघीन: दूलादि ।

⁺ नास्ति मञ्यव सोऽनञ्तस्य । सिभिन्नेषु सर्व्येषु प्रव्येषु प्रवेषमुङ्स्यात् । एकारेत् (१६२) नृषर्थे, जिल्लादत्यन्य (१७) स्थाने । गौणेऽप्ययं विधिः, तेन प्रसर्व्वती इत्यादि । प्रव्यंतां कुलम् प्रव्यंत्कृतसम् इत्यादी (३१८) क्तिल्लायपि, नञा निर्दिष्टमनित्य-मिति न्यायात् (६३) लुकि न तविश्यनेन न निषेधः । प्रव्यंत इदम् पार्व्यंतम् इत्यादी प्रस्थे परे भवति । पाणिनिः ६।४।१२७ ।

[‡] पर्वन्-पी = पर्वत्-पी (१८२) - पर्वनी प्रवादि। पर्वाघीटनः। नज् पहितद्यायां निवर्जनात् नज्युत्तद्यायां सी परेस्थादिलायङ्गाइ पनर्वा इति, पनापि नस्यादिलाभिषायः।

[§] पत्थाय मत्याय चर्भचाय ते तेवाम् । य च इच थिती तथी: । नम् च घाय निर्मी। थस्थ नम् दति सभ्यवैत: पथिमधीरेव, इकारस्य चाकार इति सर्वेवामेव । (१७) मिस्तादादी । पाणिनी ०।१।८६ इति स्वेण इत: घन्; ०।१।८० स्वेण तु यस्य त्यादेश: चतीन चात्करणम् । संचित्तसारे प्रक्रियोनाघवात् चानिति कतम् ।

१६७। टेरा सौ। (टे: ६१, भा ११, सी का)।

पथादीनां टेरा स्थात् सी परे। पत्थाः पत्थानी पत्थानः, पत्थानं पत्थानी। *

१८८। लोपोऽच्यवी। (बीपः रा, पवि का, पवी का)।

पथादीनां टेर्लीपः स्थात् ग्रघाविच धरे।

पष्ठः पष्ठा पिथिस्यामित्यादि । एवं मन्याः, ऋभुत्ताः । 🕆 (१३१) डतिसङ्घाणा दति । पञ्च पञ्च पञ्चभिः पञ्चस्यः पञ्चस्यः ।

१८८। जो नामि घ:। (म: ६१, नामि ७४, घं: १०)। नान्तस्य नामि परे घं: स्थात्। पञ्चानां, पञ्चस्। क्ष

* मी परे पूर्वभृष्णे यथ निम इकारस्य च भाकारे पत्यान् इति स्थिते राजा इति वत् भादी सिलीपे (१४८) पत्यावलीपे (११८) पत्या इति निर्विसर्गमेव रूपं स्वान् एवं सस्वीधने नलीपाभावे हे पत्यान् इत्यनिष्टमपि स्थात्, भतः एतत्मृतकरणम्। इदानीन् भाटी टेराकारे इस्परत्वाभावात् सेर्ले।पाभावे सस्य विसर्गे पत्याः हे पत्या इति । गौग्येऽप्यथं विधिः, तेन चपत्याः इति । पथिन्-भौ (१८६) = पत्यानौ इत्यादि । पाणिनः ७।१।८५।

+ लोपोऽचीति स्नते पिषमण्यभुवामिति विशेषविधिना वाधितलाद्येरच एव प्राप्ती अधाविति पुनः कथनं याहग्नातीयस्थिति न्यायेन स्थादेरचएव प्राप्ताये, तेन पयोऽन प्रथम इत्यादी न प्रसङः। लोपः पो इति स्नतेऽपि स्थियां नानलादीपि भित्तमिथिन भ्रत्यभृचिषी इत्यादी टिलीपानिष्टापत्तिः स्थात्। स्नीव तु भित्तमयी भ्रत्यभृची कुर्व इत्यादी टिलीपः स्थादेव, जस्यमील भित्तम्यानि भृष्यभृचाणि कुलानि। सन्याः सन्यन स्थः, स्थादाः इन्दः। भद्दोजिदीजितन् — "स्वियाद्यान्तलच्च छीपि भलादिलीपः सुप्यी नगरी, भन्तभुची सेना" इति लिखितवान्। एवभेव कीमराः। पाणिनि श्राद्या

‡ तुम्सन्य सिन्नकारेण सहित भाम = नाम तिखान नामि, तेन यज्यनां दिखनाः इत्यादी न प्रसक्तः । प्रशानामिति भामी (११०) तुमागमे भन्तरक्षत्वादभेन दीवें (११८ नो सुप् फेडभाविति नस्य सुप् । मुख्ये एकायं विधिः, गौणले तु प्रियपश्रामिति पामिनिः ६।४।०।

२००। वाष्ट्रनो जसमसोडी:।

(वा ।१।, षष्टन: ५।, जस्मसी: ६॥, डी: १।) ।

भ्रष्टनः परयो र्जस्यसो डींः स्थात् वा, ड इत्। भ्रष्टी भ्रष्ट, भरी भ्रष्ट। *

२०१। ङा त्रौ वा। ' (ङारा, को अ, वारा)।

यष्टनो ङा स्थात् वा क्षी परे, ङ इत्। यष्टाभिः यष्टभिः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टाभ्यः यष्टभ्यः, यष्टानाम्, यष्टासु यष्टसु ।१

२०२। घोर्मेन: फस्व।

(धी: ६।, म: ६।, म: १।, फम्ब ७।)।

धीर्भस्य नः स्थात् फी मे वे च परे। प्रयान् प्रशामी प्रशामः, प्रशामं प्रशामो, प्रशान्ध्यामित्यादि । क्षः

^{*} सुख्ये एवाबं विधिः, तेन भियाष्टानः इत्यादी न स्थात् । डी इत्यस्य विकल्पपचे श्रष्ट इत्यत्र वलवन्वादादी (१३१) जस्मसीलेकि (८३) लुकि न तर्वति निवेधात् (२०१) न ङा। पालिनिः ७।१।२१।

[†] उड इत् (१७) भ्रत्यस्य स्थाने । भतृत्वत्ताविष वा-ग्रहणं परच नित्रस्थर्थम् । भ्रष्टाना-मिति भादौ (११०) तुनागमे पद्यात् भ्रनेन उडादेशः, विकल्पपचे (११०) तुमागमे, (१८८) दौर्षे, (११८) नकारलुप्, एकाक्रति पदद्यम् । परिषिनि: ७।२।८४ । इति नकारालाः ।

[‡] स्वादीय-इससीव असंज्ञकति वसयीरप्राप्ती पृथग्वचनम्। तत्रय भालवयवीसृत-मकारस्य फीपरेन स्वात्, तिङ्नाङ्गदन्त्रयो मंकारस्य च षमयी: परयी: न स्वाद्त्यर्थः। प्र-प्र-श्रमधाती: क्विपि (१०३८) प्रशास् शब्दः, प्रशाम्-सि (१४८) भनेन सस्य नः स्वश्रम् । प्रशास्त्रस्वात्, भनेन सस्य नः स्वर्णान्थां, (८१) दानावस्वात् न नस्य (५०) भनुस्वारः। वया स्थानिश्स्वात् नस्य नं लुप् (१९८)। वसथी: परयी: यथा, जङ्गान्य जङ्गन्यः, जगन्वान् इत्थादि। पाणिनि ८।२।६४।

२०३। इदमोऽयमियं पुंस्तियोः सौ।

(इदम: ६।, भयम्-४यम् ।१॥, पुंस्त्रियो: ०॥, सौ ०।) ।

दृष्मः पुंजिङ्ग-स्त्रीजिङ्गयोः क्रमेणायमियमौ स्तः सौ परे। चयम्। *

५०४। दीमोऽदसस्य तौ।

(द: ६।, म: १।, घदम:•६।, च ।१।, जी ७।)।

दंदमोऽदसय दस्य मः स्थात् क्री परें। इमी इमे, इमम् इमी दमान्। ११

२०५। टौसीदमोऽनकोऽनः।

(टा-श्रीसि ७।, इदम: ६।, भनक: ६।, भन: १।)।

भंनक प्रदमः टीसीः परयोरनः स्थात्। अनेन । #

२०६ । स्यः। (स्मिण, पः१)।

श्रनक द्रदम: श्र: स्थात् से भे च परे। §

अयिभयम् इति लुप्तप्रथमादिवचनानं पुंस्तियीरिखनेन यथासङ्कार्थम् । इदन्तु
सुख्यते एव, गौखे तु भनौदम् भनौदमौ इत्यादि । पाणिनि: ७।२।१०८,१११ ।

⁺ साकात क्री परे इत्यर्थः । अस्य पुत्रः — इटस्पृत्रः, असुष्य कन्या — अदःकन्ता, अभीक्षिः क्रतम् — अदःकृतम्, इत्यादी तीर्लुकि न दस्य मः । इदम्-भी (१३३, २०४, २३) ⇒ इसी । इदम्-जम् (१३३,२०४,११२,२३) — इसे इत्यादि । पाथितिः शरा१०६।

[‡] नासि चक्यस्य सीऽनक्तस्य । इदमी यहणम् चर्सी निवस्थयम् । इदम्-टा = चन-टा (१०६,२३) = चनेन । पाणिनि: ७।२।११२ (इद स्थाने चन्) ।

^{\$} स च भ च तिक्षान् म्मि । घनक इत्म इत्यनुवर्त्तते । विभक्तावयय-सभयीः परवीरित्वर्थः । तेभ चस्य सिद्धः इत्येनिद्धित्त्वादौ न प्रसङ्कः । यतु घनुक्कौ—इनकसौ धनंदिहि, चय चस्यौ भूमि देहि, इनकास्यो वेदीऽधीतः घय चास्यो बास्त्रमधीतम्, इति

(१०८) या तिसमभवि। याभ्याम्।

२०७। भिस भिसीऽदसञ्च।

्भिस्।१।, भिस् ६।, घटस: ५।, घ।१।)।

त्रनक इट्मोऽदसय परस्य भिसो भिसेव स्थात्, न त्वैस्। कः (१०८) व्यस्थेः । एभिः। (१३२) टेरत्वे, (२०४) दस्य मत्वे, (११२) ङे स्मै, पथात् (२०६) यः । यस्मै याभ्याम् एभ्यः, यसात् याभ्याम् एभ्यः, यस्य यनयोः एषाम्, विस्नान् यनयोः एषा

अनकः किम्—

२०८। त्यादिव्यासभोस्तिसिसे वीक् प्राक् टेर्व्यक दस्।

्लादि—सः हा, बाहा, पक्षहाहा, प्राक्षहाहा, देः धा, व्यक्षाहा, दः हा, चाहा)। त्याद्यन्तस्य व्यस्य स-भ-घोस्-वर्जन्यन्तः स्तेः स्रोष्ठ टेः पूर्व्वीऽक् स्यादा, व्यकस्य दय। ह

प्रयोग:— तत् नञा निर्दिष्टमनित्यमिति न्यायात् समाधानीयम् । भन्न मूने इदम् इत्यच "गातिपदिकागढणे लिङ्गविशिष्टस्यैत ग्रहणम्" इति न्यायात् भावस्थत्यभानेऽपि स्यादितिः वक्तव्यम् (इसन्तस्त्रीलिङ्गपादो द्रष्टव्यः) । पाणिनि ७।२।११३, १।१।२१।

अत्र अनक इति विशेषणम् अद्मीऽपि, अनग्याम् इदमदीयां परस्य भिसी भिन् एव स्थान् तद्वृषेणैव स्थितिरित्थर्थः। तेन अमुर्कोशित सिञ्जम्। नैसदस्यिति क्रति सिडेऽपि गौरवं कदाविदेस्पान्त्रयं, तेन इसैग्गेरित्यादि सिज्जम्। क्रमदीयरेख तुर्धइसै-विश्वकाति तु इदसर्येनशब्दस्य रूपम्थं इति लिखितम्। पाणिनिः शिशारश्।

[†] इदम-भाम् (१३३,२०४,११३,२०६,१०८,१११) = एवाम्।

[‡] ति पादिर्यस्य स त्यादिः। सच भच भीस् प ते सभीसः, न विद्यन्ति सभीसोः सच सा प्रस्तीस्, प्रस्तीस् किर्यसात् सीऽसभीस् किः, स पासी सिधित प्रस्तीस्किसिः। त्यादिय व्यचः प्रस्तासात्रसम् सिद्यात तस्य।

इमनेन इमनाभ्याम इमनेरित्यादि।

२०८। द्वीटौसीदैतयोरेनोऽनक्तौ।

(दी-टा भी वि ७।, इद-एतयी: ६॥, एन: १।, अनुक्री ७।) ।

इगंग्टीसीय परत इदमेतसीरिहैतयोरेनः स्वात् उक्तस्य पद्या-दुन्ती। 🕆

> इमं विदि हरेभेतां विद्ययैनं शिवार्चनम । इमाविमान् वित्त ग्रैवान् एनावेनांसु वैशावान् ॥ श्रनेन प्रजितः क्षणोऽयैनेन गिरियोऽर्चितः। अनुयो: केग्रव: खामी ग्रिव: खामी अधैनयो: ॥ 🕸

त्याद्यन्तस्य भवति पचतीत्यादे, व्यस्य प्रपरा धिक् इत्यादेः, स-भ-श्रीम् भिन्न विभन क्राम्त-सर्वनामग्रव्हेस्य केवलसर्व्वनामग्रव्हस्य च टे: (६२) पूर्वम् अक स्यात् वा, प्रकि स्रति भव्ययाना-कासः दश्च स्यादित्यर्थः।

यया--भवतिक भवतकः इत्यादि। प्रकापरका उचकै: धिकत् इत्यादि। सामि प्रसाव्ययस्य टे: पूर्श्वम् प्रक्नन स्कादिति वक्तत्व्यम् । पूर्श्वणक युगाककिकासिकादि । सभीम्-क्यन्तसेल् प्रस्ने पासाम् पाथ्याम् प्रनयीरिल्यादिषुन स्थात्, प्रसकौ युप्पकत् इत्यादिषु समग्रीरभावे स्यादेव । केवलसंल् सर्व्वकेण सर्व्वक दत्वादि । विभन्यत्पत्तेः पूर्व्वनिक क्कते पुनर्व्विभक्तानस्य पन्न स्थान्, तेन सर्व्वकी एक इत्यादयः प्रयोगान स्यः । पाणिनिः े ५०, १०। इ। प्र

इम्बीन इत्यादियु विभन्नगृत्पत्ती: प्राक् चिक क्रते (२०५, चन) (२०६, च) (२०७, क्रिस्) एते चादेशान स्युरिति ।

[🕆] दी चटा च भीस् च तस्त्रिन्। इतश्र एतश्र ती तथीरिदैतयी:। ऋतु पश्रात् **डिति: चन्त्रिपास्याम् । चन्**त्रिरिष्ट यसुद्दिस्य पूर्वसृत्रिः तसुद्दिस्य यदि पश्चादुर्तिः स्थादिति बोध्यं, तेन इसं भीजय, इसं प्रेरय, इत्यत्र एकस्य भीजनसपरस्य प्रेरणसती न स्थात्। इदैतयीरिति निर्देशात् मकारदकारौ हिला भवतीति, तेन क्रीके एनदिति (२४२) स्त्रसंवस्यति। एन इति प्रक्रत्यन्तरमप्यन्ति। पापिनिः २। ४।३४।

t है साधी, इसं जनं हरेर्भतां विखि जानी हि इति उत्तिः, मय, एनं (तसेव) शिया-र्श्वकं विद्यि इति प्रयादिति:। एवं सर्ववः। हे साधवः, इसी इसान् श्रेवान् विना, एनी

(१३३) त्यदां टेर: क्ती । क: की के इत्यादि। * (१९०९) भाभान्तस्येति बस्य भः। भृत् भुद् बुधी बुधः, बुधाः भुद्ग्गामित्यादि। †

२१०। युजिरोऽसे नुणु घौ।

(युजिर: ६।, असे ७।, तुण् ।१।, घो ७)।

युजिरो युज्यब्दस्य नुण् स्यात् घी परे, नतु से । 🕸

२११। चुङ् क्राङ्युङ् सग् दिगस्ग्रित्विक् दधक् दक् स्पृक् सगुष्णिहां कुङ्भौ।

(चुङ्--उष्णिहां ६॥, कुङ् ।१।, भौ ७।)।

पवर्गान्तानामञ्चादीनाञ्च कुङ्स्यात् भौ परे। 🖇 .

एनान् वैष्णवान् वित्त, यूरिमिति शेष.। अन इसी इसान् इत्युभयी विशेषणं शैवान् इति, तथा एनी एनान् इत्युभयी विशेषणं वेणवानिति उत्तवता भावार्थेण नागालिङ्गानां नानावचनात्तानां विशेषणायाम् एकं विशेषणं परसीय लिङ्ग सक्ष्यास्त्र मनतीति स्चितम्। भनेन क्रणः पूजितः, भय एनेन (तेनैव) गिरिशोऽचितः। भन्यीः स्वामी क्रियः, भय एनेर्योः स्वामी क्रियः, भय एनेर्योः स्वामी श्रियः इत्ययः। भन्न कितीयायाः एक इत्युष्ठ वचनेषु टा-भोस्-विभक्षयेष ययाकमसुद्यक्रतिति।

- * ता: इति किम् िंग, लीपस्तराटेशयोम् स्वराटेशविधिवैतीति न्यायात् भादौ (१३३) टेरले, से विंसर्गः। किम्-जस् (१३३, ११२, २३) \Rightarrow के इत्यादि । इति मकारानाः।
- † बुध्यते रति बुधधानी: किपि, बुध्-मि (१४८,१००,६४) = भुन् भुद् रत्यादि । रति धकारान्ताः।
- ‡ युजिर प्रति कथनात् "युजिर् योगे" प्रति घातोः क्रियनस्य युज्यस्स्सेत्यर्थः, निषु युज् समाधादित्यस्य । पाणिनिः ७।१।७१ ।
- § तुष अन्य्व कृन्य्कथनज्य सज्ब दिश्य अस्ज्य ऋतिज्य दध्य हम्य सम्बद्धाय उण्णिह्य ते तिथाम् । तुष्यर्गे, सच धालवयवरव बीध्यः, तेन बह्वय् यहने अद्भादो न स्थात्। युन्न् ६ति युज्यान्स्य (२१०) तृषि कृते इत्यन्। अन्यः

(५०) स्रोर्नुर्भरयदानी । (५१) अपे अम् नीः । (१८३) स्वान्त-स्यारात् तुप्फी। युङ् युक्ती युक्तः, युक्तं युक्ती युकाः, युजा युगभ्यामित्यादि । #

भ्रमे कि — मुयुक् मुयुजी मुयुज: इत्यादि । युजिर: किं — युक् समाधिमान्। अन्च क्रुन्च युजामेव प्राक् कुङ् प्रथक्-यहणात्, तेन खन् खर्ज्जी खज्जः इत्यादि । 🕆

(१५४) प्रक्राजिति षङ्। (१५५) षोड़: फे़ । राट्राड्राजी राज:। एवं विभाट् देवेट् परिव्राट् विश्वस्ट् परिस्ट् । 🕸

क्रमुच युन्ज एषां चवर्गान्तलेनैव प्राप्ती प्रथक्य हणं नियमार्थं, नियमय एषां वयाणासेव (१८३) संयोगान्तर्लाषात् पूर्वं कुङ् स्थात, प्रन्यपा सथक चवर्गान्तानान्तु भादी सयोगानन्प्। • सन् असन् च्हिन् एयां चवर्गान्तिऽति, (१५४) शक्टुर्नेति षड्-बाधनार्थे ग्रहणम्। अर्द्धे सिल्लातीनि क्रिमि लिण्डि, अन्य (१७८) महादिविहितघडी विकालपर्च (१७५) भीढीभावित्यस्य वाधनार्थं ग्रहणम्। कङ इति कः केवर्गः, रू इत्। चवर्गसध्ये क्वतारस्य (१५४) ॥कृतिति वाधितत्वेन, घालवयव जकारासमावेन च च ज भ इस्वेषांच्यानेक्रमेण कागघडस्वेतं स्थ्रिययं:। जवर्गसाटचर्यात अर्व्यवामिष अपव गरहीत शब्दानां का गघ एषा मेकात स एवं स्थान. पश्चान भाषभा सी स्थिनेन यथा थी ग्यं कारी स्थाताभित्ययः । रूज भुज धातुःथां क्षप्रत्ये रुग्णः भृगः इत्यादी चलग्ङ्रलाहादी घनेन जस्य गकारे प्रधात् तकारस्य नकारः । गमानन्द-काशीक्षगैत् ऋत्र कङ्क्रला, कग्रगः सुग्रादिसाधनाय मूत्रान्तर कन्पयतः । भी परे इति चवर्गान्तार्थभेव तेन चवर्गान्तधातूनाः मिपि स्थात्, भन्ययां क्वेबलशस्टानासेव ग्रहणात् इसे विरामे चंस्ययं.। विश्वस्तरु अन्दरा सिद्धालकौमुदीमते विश्वस्टट् इति, क्रमदीश्वरमते तु विश्वस्क्राति ६पम्। पाणिनि: श्रापट, पारा३०.६२।

^{*} युज-सि (१४८,२१०,२११ ५०,५१,१८३) - युङ्। युज्-श्री (२१०,५०,५१) = युद्धी। इत्यादि।

[†] खिजि पात्रुल्ये इति खन्ज घाती: विच्पल्ये, खन्ज-सि (१४८,१६३) 🕳 खन्।

[‡] राजने दति राजधातोः क्विपि राट् राड् । एवं क्षिमाजते दति विभाट् । देवात् बनतीति देवेन शब्द:। परिव्रज्ञतीति, विश्वं स्रज्ञितीति, परिस्रज्ञतीति—परिव्राट् भिष्ठः, विश्वस्टट् (षा विश्वस्क्) विधिः, परिवट् मार्जकः ।

२१२ । विक्वराजोऽदा । (विवराजः ६), भत्।स, भा।स)।

विखराजीऽकारस्य ग्रा स्थात् भौ परे। विखाराट् विखाराड विखराजी विखराजः। क्ष

२१३। खादे: सो लीपं: कोऽष्रदृन्यरच्च: [(खादे: दा, मः दा, लापं: रा, कः दा, षषदयरचः दा)।

स्थादी स्थितस्य सस्य लोपः स्थात् भी परे, कस्य च — न तु षड़ाभ्यामन्यस्य स्थाने जांतस्य रचया भ

भट्र भड़ । (६४) भपभासी रिति सस्य दः, (४६) सुधुभिष्याः दिति, भज्जी भज्जः इत्यादि। जर्क् जर्ग् जर्जी जर्जः इत्यादि। ऋत्विक् ऋत्विग् ऋत्विजी ऋत्विजः इत्यादि। अवयाः हे अवयाः हे अवयः अवयाजी अवयाजः, अवयोभ्यामित्यादि । \$

विश्वराज्यव्यस्य विश्वस्थैव श्रकारः सभावित श्रतस्येव शालं, तेनास्य घात्रवासभावात् भा द्रत्यस्यान्वनाविष तदनःपाति-फंपरे एव वीध्यस् । विश्वराज्-सि (१४८,१५५,१६५,२९२) चिश्वराष्ट्रविश्वाराष्ट्। पाणिनि. ६।३।१२८ ।

[†] स्यः मयोगः, स्वस्यादिः स्यादिनस्य । षय दय षढी तास्यामन्य षढन्यः, ततः (४३३) इत्मर्थे भाग्नस्ये षढन्यः षढन्यनात इत्यर्थः । रच इति उपचारात् रचधातु-सन्यसीलयः, षढ्नय रच च इति ममाहारे षढ्न्यरच, न षढ्न्यरच षषढ्न्यरच तस्य, कः इल्थ्स विशेषणम् । संयोगादेः सस्य लीपः स्यात्, एवं षढ्नातभिन्नककारं रचधातुककारच वर्षयिना भन्य ककारस्य लीपः स्यात्, ततस्य नात्ककारमध्ये षढनातककारस्य रचभिन्नधात्-ककारस्य च (संयोगादिःस्थितस्य) लीपः स्थात् भी परे इत्यर्थः । तेन, विविद् लिखिट पाषीत् इत्यादौ स्थात्, नत् पिपक् गोरक् इत्यादौ । कस्नाता इत्यादौ संयोगस्यादान्तलान स्थात् । पाणिनिः प्राराहे ।

[्] सस्ज-धातीः क्रिपि, (६६१) स्मज-सि (१४८,२१२,१४४,१४४,६४) = स्ट स्ड । जनभातीः क्रिपि, जर्ज्-सि (१४८,२११,६४) = जर्क् जर्म् । स्ती यनतीति स्ततु-यनभातीः क्रिपि स्विक प्रोहितः । भवयनतीति निपातनात् विधि भवयाज्-सि (१४८,१८४,१०२) = भवयाः । सन्तिधने (१८६) = भवयाः भवयः । भवयाज्-भाम् (१८४,१०२,६६,२३) = भवयोभ्याम् । इति जन्नारान्ताः ।

२१४। त्यदां तदोः सः सौ।

(त्यदां ६॥, तदो: ६॥, सः १।, सी ७।)।

त्यदादीनां तदयो: स: स्यात् सी परे। स्यः त्यौ त्ये इत्यादि सर्व्यवत्। एवं तद्। एष: एती एते इत्यादि। * (२०८) दीटौसीदैतयोरेनीऽनृताविति प्रयोगसु इदम्वत्। पे

२१५ 1 युप्तदसादो-स्वाहा युवावी युयवयी त्वसादी तथ्यमद्यो तवममी सि-द्व-जस्-क्व-ङे-ङससु । (युष्पद पक्षदी: ६॥, ल-परो १॥, युव-पावी १॥, यूव वयी १॥, लद-मदी १॥, तथ्य-मस्ती १॥, तव-ममी १॥, वि-द-जम्क ङं-ङम्स ०॥)।

भनयोः क्रमादेते घादेशाः एषु परेषु क्रमात् स्यः । 🕸

२१६। इन्धोर्म: । (ई थो: ६॥, म: १।)।

त्यदामिति वहवचनं गणायं त्यदादीनामिथ्यः। सौ परे त्यदादीनां (१३३)
 टेन्कारे प्रश्निष्टी यौ तकारदकारौ तथीः स्थानि सः स्थादि थयः। तिन त्यदः तर-एतदां तकारस्य प्रदसी दकारस्थिति यावत्। प्रविस्तं क्षानां त्यदादीनां यहणात् प्रतित्यदादीनां न स्थात्। पाणिनिः ७२।१०६।

[†] इदम्बदिति — एतं विद्धि हरेभेतां विद्यायेनं शिवार्चनिस्यादि ।

[†] त्य घड्य लाडी इत्यादि इन्हः। 4िय इच नम्च कच छेय रूम्च ते तेष्। इंडियचनं, क्राभ एक यचनम्। सुख्यत्वे गीषाले चायं विधिः, यद्या त्यम् घडम्, घतितम् घत्यस्म्।

क्टिस परे डियचने नासि परे ङे परे क्रमय-——भीपरे एकवचने युषाद: स्थाने तय युव यू य **75**5 तुभ्य वय सम चसद:स्थाने चड श्राव 귀구 महा यापिनि: ७।२।८४,८२,८५,८७,८५,८६ ।

युष्मदस्मद्भगां परस्य के दलस्य घेष मः स्थात्। लं अहं। 🦠

२१७। सममोध्वाङ् । (स-म-अस्-भीर ०॥, आङ् ।१)।

युष्पदस्मदीराङ् स्थात् से भे श्रमि श्रीकारे च परे। युवां श्रावां, यूयं वयं, त्वां मां, युवां श्रावां। 🕆

२१८। शस्-थ्येस्-ङसि-ध्यस्-ङस्-सामां न-डभ्यम्-त-त-डाकमः। (शस्-मामां ६॥, न--श्राकमः १॥)।

युषादसाङ्गां परेषामिषां स्थाने न डभ्यम् तै-त ड-श्राकम् एते क्रमात्स्यः, डद्गत्। युषान् श्रसान् । क्ष

 ^{*} एतटादिध चत्र्ध स्त्रेष विधानं सुख्यगौग्यमाधारणम् अाचार्यसम्बतम् । युष्पद्,
 श्रस्यद-सि (२१५,२१६) ⇔ लं श्रहः । पाणिनिः ०।१।२८ ।

[†] चाडो उत्दर्भन्यवर्णस्थाने । भे परे चाङ्करणं भिस्स्थाने ऐस्वारणार्थम् । भे भे माचादेव. तेन लं युग्नत् इत्यादौ न चाङ् । युग्नरः, चम्नदःची (२१५.२१०,२१६) च्युवां, चावां ।युग्नदः,चम्मदःचम् (२१५.२१०,२१६) ≕ लां मा ।पाणिनिः ०।२।८८ ।

[‡] स्वसम्बन्धि-सकारेष सदित भाग् च साम्, भ्रम् च स्थान् च द्रशादिइन्दे तेषाम् । न च उत्थ्यम् च क्यादिइन्दे ते । अत्र नकारे तकारदेये च भ्रकार उत्तारणार्थः। (१६१) उतिव्याचान्तेत्यादिना लिङ्गिविहत-कार्य्यनिषेषात् (१०५) पृति तुभ्रम् न इत्यस्य भ्रप्तातौ विधु लिङ्गेषुः भ्रमे न विधानम् । स्थमे स्थम् न क्षता उध्यम्करणम् (२१७) भाङ्निवारणार्थम् । उत्सी उक्तरणं (१०६) स्थवारणार्थम् । भागः सुम् (११३) स्थ्ये एव भवति, भव् च साम भाकम्विधानात् गौष्णे भागः (२१८) एङ् एव ।

२१८। एङ् टाङ्ग्रामि । (एड्।११, टा-ङि भामि का)।

युषादस्रादोरेङ स्थात् टार्ड्याः परयोरामि च, ङ इत्। 🏶 त्वया नया युवाभ्यां त्रावाभ्यां युपाभिः त्राक्षाभिः, तभ्यं मह्यं युवाभ्यां ग्रावाभ्यां युषास्यं अक्षास्यं, लत् मत् युवास्यां त्रावाभ्यां युषात् अस्मत्, तव मम युवयोः आवर्याः युषाकां ऋसाकां। 🕆

श्रतित्वयां श्रतिमयां श्रतियुवयां श्रत्यावयां श्रतियुषयां ऋत्यसायां । 🎉

(२१५) क्त-द्वयार्थस्यापि ग्रहणात्। एवं सर्व्वतः। §

⁻ ण्डीड इत् अल्यस्य स्थाने । सुध्यत्वं (२१८) साम भाकस्विधानात् अत श्राभीति गौगार्थभव । पाणिनि, शराब्हा

[†] युपाट, असाट्-टा (२१४, १३३, २१८, ३५) - ल्या, मया । युपाद, असाद भ्याम् (२१५.२१०) युवाध्या, आकास्यां। युषाद असाद् भिसः २१७) = युषाभिः, असाभिः । युषाद, असाद है (२१५,२१६) चतुर्थ, मर्छ। युपाद, असाद् ४ ध्यस् (२१८,१२६) = १ प्रस्यं, अक्षस्यं । युवाद्, अक्षद-ङानि (२१५.२१८) = लत्, सत् । युवाद, अक्षद्-५ भ्यम (१३३,२१८) = गुमत असात । गुमर्, असार-डम् (२१५. २१८ १२६) = तव, भम । युभद, असाद-आंस् (२४४,१०६,१०२) = युवर्यो., भावधी: । युभद, असाद् भाम् (१३३, ११३, २१८) — गुमाल, श्रकालां ।

[🛊] लामतिकालानामिति वाक्यं ऋतियुष्पदशब्दस्य श्राम्विभक्तौ, व्यासवाक्यालगैत-लामिति एकवचनस्य अर्थे ग्रहीला (२१५) खंद श्राटेशे. (१३३,२१६,३५) श्रतिलया-मिति, एवं मामितिकान्तानाम श्रतिमयां। ययामितिकान्तानामिति वाक्ये युवामिति द्विवचनस्य चर्य रहतेला युवभादेश ऋतियुवया, एवम् भावामितिकान्तानाम् अव्यावयां। युपान् अतिकान्तःनामिति वाक्ये बहुले आर्दशःभावात् अतियुपादशब्दस्य श्राम्विभक्तौ (१३३,२१८,३५) श्रतियुषया, एवम् श्रत्यकायामिति ।

[🖇] भितिलयामित्यादो वहवचने लटाद्यादेशाः कप्रमित्याशङ्गाह कदयोरिति। ततयायमर्थ.---य्यद्धादी भेष्यत्वे गीणते च, (११५) । सि-जम्-डे-डमा स्वरूपण ग्रहकात् तेष परीष ला चाह युग यय तुभ्य मद्या तव मम एते चादेणा:स्युरिव। सिजमादेरत्यत्र मुखदमादीभुष्यत्व एकवचन परे लनादी, दिवचने परे युवाबी, बहुवचने

त्विय मिय युवयोः त्रावयोः युषासु त्रसासु । *

२२०। दीचीषीणां केंद्रेंचें स्ते-मे वां-नौ वस-नसौ वाऽपादवाकादा-वचवाहाहेवाहगृहश्यधें स्वा-मा त्वमा।

(दो-ची-घोँगा ६॥, कै. ३॥ दें: ३॥, वंते. '३॥, ति मी ११॥, वां-नी १८॥, वम् नमी १॥, वा ११, अपादवाक्यादी ७।, अचिता ह अहं एवं अहग्हर्स्थें: ३॥, त्वा मा ११॥, तु ११।, अमा ३।)।

षरे स्वरूपेणावस्थानम्। गौण्लं तु परविभक्तिमनाडत्य क्वेवलयुपाटसाटारेक्रलं लकाटौ, जिल्ल युवाबी, बहुर्त्व स्वरूपेणावस्थानमिति चटाहुँ गणं स्था - लामितिकान्त: लामतिकान्ती लामतिकान्ता: इत्यादि वाकाप - ऋतिल ऋतिलां ऋतिययं, ऋतिलां अतिलां अतिलान, अस्तिलया अतिलाभ्या अतिलाभिः, अतिलभ्यं अतिलाभ्या अतिलभ्यं, श्रतिलात श्रतिलाभ्या श्रतिलात, श्रतितव श्रतिलायी: श्रतिलायां, श्रीतलायां श्रतिलायां: चितित्वास् । युगमितिकान्त. युयामितिकान्तौ युवामितिकान्ताः इत्याद्दि वार्क्यप्र—चितित्वं अपतियुवां अपतिययं, अपतियुवां अपतियुवा अपतियुवान्, अपतियुवया अपतियुवास्या अपत युवाभि: अतिवृश्यं भिनियुवास्यां भिनियुवस्यं, अतियुवत अतियुवास्यां अतियुवत. भिनिव श्रतियुवधी: श्रतियुवशा, श्रतियुवधि श्रतियुवधा: श्रतियुवास् । यमानतिकान्तौ युमानतिकान्ताः इत्यादि वार्क्यय्-मित्वं भातय्या ऋतिययं, भतियमः अतियुक्तां अतियुक्तान्, आत्रयुक्तया अतियुक्तास्यां अतियुक्तास्यः, अतितुक्यं अतियुक्तास्य श्रतियुपार्थं, श्रतियुपात श्रतियुपार्था श्रतियुपान्, श्रतिकाव श्रतियुपार्था श्रातयुपार चितियद्यायि चितियुक्तियी: चितियुक्तासु। एवं मानतिकाला द्रवादि∢ चावार्मातकाल द्यादि । प्रसानतिकाल. इत्यादि । प्रयादि प्रशास प्रशोग: । लया कर्त लत्कतम्, सः धनं सहनम, त्वासिक्कति त्वद्यति, त्वामाचर्ष्टत्वद्यति, त्वदीषदृनं त्वत्कत्यं इत्याद विभक्तिलिक अपि एकवचनस्य अर्थे ग्रहीत्वा त्वनाद्रादेश स्याद्व ।

डिबचनस्यार्थं क्राचिदादेणान स्यृतिति बक्तव्य च्यथा, युवयीरयं युक्तदीयं, युवयीर्थः पुक्रद्वनम्, चावयीर्यकः चक्तद्युकः: चावास्यां क्रातं चक्तत्वम् । युवासिच्छति युवासि वाचरति वा युक्तय्यति, युवासाचक्टे युक्तयति, इत्यादाविष दिवचनार्थं चादेशीन स्थात् ,

क युवाद, वातादिङ (२१५, १३३, २१८, ३५) क लिय, मिया युवाद, वालाद्मिर (२१७) च युवास, वातासाम । जात "िक किवनयोय लिमाद्यक्षमादी" इत्यादिमि कमदो वास्त्रमें विचिक्त कर्ता यूवादिक दिवादिक स्थानि तेन प्रदर्भितानि । यथा, युवादिक स्थानि कातल्यम्), युवासि युवासि कातल्यम्), युवासि युवासि (युवासिति कातल्यम्), युवासु ।

युष्पदसादोः दीचीषीणां कैः सिहतयो स्ते-मे, है वीं-नी, व्वे वीस्-नसी, क्रमादा स्थाताम्, श्रमा-युक्तयोसु त्वा-मा, न तु पादस्य वाक्यस्य चादी स्थितयोः, न चवाद्यै-रदर्भनार्थदृश्यर्थ- भ्रमिश्च योगे। *

दामोदरस्वावत मापि मित्र, ददात ते मेऽपि मुदं मुक्कन्दः। निहन्त ते विष्णुरघानि मेऽपि, रचत्वसी वामांपि नी मुरारिः॥ ददातु वां नावपि प्रमी कृष्णः, करोत् वां श्रीदियतो दयां नी।

७ पादय बाक्य य पादवाकी, तथीगादि: पादवाक्यादि:, न पादवाक्यादि रपाद-वाक्यादिक्षियन्। पाद: पद्यचनुभांगैक्षभागः, "पादमञ्देनात ऋक्पादः झीकपादय रुद्यते" इति पाणिनिटीका। वाक्य परस्परमाकाङ्चपदससृहः। "साख्यातं साव्ययं सकारकं सविभेषणं वाक्यसिहाभिनेतम्, न तु लौकिकपदमहातः सम्बन्धार्थो वाक्य सिति" इति कमदीखरः। ﴿ हक् दर्भनम्, न हक् अडक्, हमिर्दर्भनमधी येषां ते हम्यथीः, बहाम बद्धने हम्यथीः प्रहमहम्यथीः; च च वा च इ च घह च एव च षह्महम्ययांच ते चवाहाहैवाहमृहम्यथीः, प्यान् मञ्गीगे तैः।

हितीया चतुर्थी पत्नीनाम एक वचने सह युष्यदस्य दो सि में, हिवचने सह वा नी, बहुवचने सह वस्नमी, प्रमा सहितयो जुला-मा, क्रमात् वा स्थाताम्। प्रमा सहितयो जुला-मा, क्रमात् वा स्थाताम्। प्रमा सहितयो जुला-मा इति विशेषाभिधानि चतुर्थी षष्ठारेक वचने न ते जे, हितीयेक वचने न ता ना इति निष्कर्षः। पादस्य वाकास्य वा पादौ स्थितयोः युष्यदस्य देशि चादेशा न स्थः। च वा ह पह एव इति पश्चिमस्य येथीं गेऽिए एते चादेशा न स्थः। प्रच इ पह स्थाने हा इ इति व्याच्यानम्युक्तं पाणिनि स्वव्यवर्धान्य न स्थः। प्रच स्थानि स्वयं व्याप्य समायात् दर्शनार्था ये धातवर्त्तं यदि धातृनामने कार्यत्यात् दर्शनामि च व्याप्य समायात् दर्शनार्था ये धातवर्त्तं यदि धातृनामने कार्यत्य दर्शनिम च व्याप्य स्थान स्था

पुणात वो नोऽपि इरिर्धनं वो ददात नी. इन्बग्रभानि वी नः ॥ * त्रपादवाक्यादी किं---युषानवत्वविरतं क्षणोऽस्नान् पातु गङ्गरः । 🕆

अ-चादियोगेंं किं_— तुभ्यं महाञ्च द्यात् स्वं गोविन्दो महामेव ग्रम्। श्रीकराही मामपेच्य त्वा-मालोकयति पूजकम्॥ §

 हे सिच, टामीदर: यौक्रण: ला (ला) सा (सी) श्रपि अवत रचत । सक्तन्दः ते (तभ्य) में (मह्म) ऋषि मृदं इषें ददातु । विणः ते (त्व) में (मम) अपि अघानि पापानि निहन्त् । अभौ सरारि: वां (युवां) नौ (भावाः) अपि रचत् । क्रणः वां (युवाध्यां) नी (ऋवाभ्यां) ऋषि भक्ता सुखं ददातु । ऋौद्यितः ऋोपितः वां (युवर्धाः) नी (त्रावधी:) दथां करोतु। हरि: वः (युषान्) न: (प्रकान्) प्रापि पुणातु । (यथभ्य) न: (श्रमाभ्यं) धर्न इदात् । व. (यथाकां) न: (श्रमाकां) श्रम्भानि इन्त् ।

दीचोषीणांमत्यस्य एतानि ययाक्रमसुदाहरणानि ।

† प्रत्यदाहरणनु —

क्रणाः ऋषिरतं निरन्तरं युषान् भवत्, इत्यव युषान् इति पाटादिस्थितत्वातः न व इति भादेश:। श्रमान् गङ्गरः पातु इति वाक्यादिस्थितलात् न न द्ति भादेश:।

🛊 थीगे इति क्रयनात् साचाद्यीगेऽथं निर्षधः, परम्पद्वासम्बन्धे तुत्रादेशः स्थादेवः यथा इरी इरिश्व मे खासो । इति निज्ञान्तकौसदो । यत चादिभि न युषादमादीयौंगः भवितुभर्यान्तरस्य, तचापि लाद्यः स्यः। इति क्रमदीश्वरः।

§ गीविन्द: तथ्यं मद्याच स्व धनं दयात, शंकल्याणं मद्यमेव दयादिति श्रेष:। भव तुथ्यभिति पादादिस्थितलात्. महाविति महामैविति च चादियौगात् न मादेश:। अब युष्पद्खाइप्रामेव चादियोगे निषेध:, तेन रामी धनमेव द्यात ते इत्यादी स्यादेव। शीकारुः मामपेद्यास्यक्षात्वां पूत्रकम् त्रालोकयति विचारशतीसर्थः, अत्र द्विधातुः क्षोकभातुम दर्भनार्योऽपि इह पुनत्यागार्थी विचारार्थय प्रयुक्तः, ऋतीऽदर्भनार्थ-टम्यर्थधातुयीगे न भादेश इति।—ते ने इत्यादिकम् भ्रव्ययनप्यक्ति, तेन श्रीक्ते सास्तानित्यादि प्रयोग:। प्रथमात्रतीययोरप्यादेशा इति वामन:, तेन "गेये कीन विभीतौ बां," वां युवाभिति प्रयमायृज्ञस्यादेश:। एव "कारितास्ते यतोऽतस्तां," अव ते ल्या इति हतीयाय्क्रस्थादेश इति ।

२२१ | सदानुको ऽसादिप्रयाः । (मटा ।१।, अनुको २०, प्रमादिष्रयाः ५०)।

अनयोरेते अन्वाटेशे नित्यं स्यः, न तु सपूर्व्वात् प्रान्तात् परयोः। ृ यूयं वयं विनीतास्तत् ग्नातु वी नी महेश्वरः।

यूयं वयं हितास्तेन सां आसान् पातु स वः श्रिवः ॥

२२२ । नाविशेष्यान्याद्यामन्त्रात्।

(न । १।, अविक्रीभ्यान्याद्यामन्त्रप्रात् ५।) ।

विशेष्यपूर्वमनामन्त्रापूर्वेच हिला अन्यमादामन्त्राहिते श्रादेशा न स्यः। 🏰

शक्षीऽसान् रत्त, लत्नीश मेव्य नीऽवाव सर्व्व नः । 🕸

[🌣] अपन पथादताम अनुतां तिसान । अप्रतिना पूर्णस्थपदान्तरेण सह वर्त्तरे या सा सादि, सादिशासी भी चीति सादिशी, पशान्न नशींग तस्या.। अन्वादिश सकस्य पथादक्ती युगादसादी: स्थाने पते अर्थादण। निर्थ स्थ् किल् पूर्लस्थितपदालर्ग सहितात प्रथमान्तपदात परथी थ्रीयद्भादी रन्जावांप पते आदेशा नित्यं न स्थः, पूर्वम्बिणैन विभाषया स्युल्लियी. । यूय वया विनीता. इति उक्ति: तत्तसमात् महे-अदर: वी युपान् नोऽकान पातृ र्इत पथादक्तौ निल्यमादेश:। सपूर्व्वीत् प्रयमान्तान्, युगंबर्गहिता, तेन म जिन: ऋकान् पातु, म वी युमान् पातु इति श्रेष:। अप्र विकल्पेन। देश:। पाणिनि. ८।१।२६।

⁺ विश्रयञ्च अन्यच ते विश्रयान्ये, अन्यदिति आमन्त्राभिन्नपदमित्यये:। तं आदी यस्य तत् विशेषान्यादि, तच तत् त्रामलाञ्चीत विशेषान्यायामलां, पद्मात् नत्रयीर्ग तस्मात । ऋामन्त्रां सस्वाचनविहित-प्रथमान्तपदम् । विशेष्यामन्त्रापूर्वे यदासन्त्रां भानन्त्राभिन्नपदपूर्वच यदाभन्ताम् एतद्भयभिन्नादामन्त्रात् परयो येघादघादीरेते त्रादिशान स्य:, ततथ पूर्वपद ग्हितान् विशेषणपूर्वाच भामन्द्रशात् परयो न[‡]स्युरिति निष्कर्ष:। पाणिनि: ८।१।०२,०३।

[‡] अस्मोऽसान् रक्ष इःत उदाहृय, प्रत्युदाहरित हे ससीध सेव्य नीऽकान् चव, हे सर्व नीऽक्यान् अव, लक्षीशेति निशेष्यपूर्वात् सेव्य दूर्यामनदागत् परत्या

सुपात् सुपादी सुपादः, सुपादं सुपादी। *

२२३। पात् पत् पौ । (पात् ।रा, पत् ।रा, पौ छा)।

पादः पत् स्थात् पौ परे। सुपदः सुपदा सुपाइरामित्यादि। वि (२११) चुिङ्गित कुङ्। (५०) नस्य नः। (५१) नोर्ङः। (१८३) स्थान्तस्य लुप्। प्राङ्गाञ्चो प्राञ्चः, प्राञ्चं प्राञ्चौ। एवं क्रञ्जतिय्येञ्चोदञ्चादयः। ॥

२२४। अचोऽह्वोपो ध्या

(अव: ६), अलोप: १।, घं: १।, च ११।)।

धर्चोऽकारस्य लोपः स्यात् पौ परे, पूर्वस्य च र्घः।

प्रतीचः प्रतीचा प्रत्यग्भ्यामित्यादि । §

निषेधी नाभृत्, एवम् ऋव इत्यनासन्त्रपूर्श्वात् भव्वे इत्यासन्त्रग्रत् प्रस्तया निषेधी नाभूदिति।

- असमिनी पादी यस्थित निग्रंड (३४०) पादस्थाने पादः आदेश:। सुपात् सुपाइ इति च सिज्ञानकी सुदी।
- † (६४७) पादस्थाने भादिष्टपाइशब्दस्य पट्स्यात् पौ परे इत्यर्थः । स्त्रियां सुपदी, विपदीत्यादि । क्रीवे विपदी वसुनी दांत । योगविभागात् दिपदा इत्यपि । पाणिनिः ६।४।१३० । इति दक्षागानाः ।
- ‡ अन्तु गतिपूजनयी क्लिय किपि (५६८) पूजायंत्राज्ञ जीपाभावे प्रान्त् इति । सिङ्म् ; गत्ययं स्रात्न ने पि प्रात् इति । सिङ्म् ; गत्ययं स्रात् ने ने पे प्रात् इति । सिङ्म् ; गत्ययं स्रात् ने किपि किती प्राङ्घा प्राच्चा प्र
- 💲 भच्डति गत्यर्थान्चधातीः क्रियि ग्रहणम्। धंयेति सम्प्रवपरो विधिः, तेन स्वभावदीर्थादियि भक्षीयः स्थात्, यथा नदीचः गोचः इत्यादि। गोच इत्यत्र पूर्वे

२२५ । तिर्थ्यगमुम्यगदम्यगुद्वां तिरञ्चामुमुद्देचादमुद्देचोदीच:।

(तिथ्यंक — उद्वां ६॥, तिर्य — उदीच: १॥) ।

एकामेते क्रामात् स्यु: पौत्परेत

तिरयः तिरया तिथीग्भ्यामिलादि ।

असुसुद्देचः असुसुदेचा असुसुयग्भग्नामित्वादि । एवमदसुयङ् । उदीचः उदीचा उद्ग्भ्यामित्वादि । शेषं पूर्ववत् । *

(१५४) मक्राजिति चस्य वले, तिविभित्तस्य मस्य सले, : (२१३) स्थादे: सो लोप:। सुबट् सुबब् सुबबी सुबब: इत्यादि।पै

(१६४) नसब्महन इति घी: । (१८३) स्थालस्य लीप: । महान् महीत्ती महात्तः, महात्तं महात्ती महतः, महता महन्नामित्यादि ।

क्रस्साभावात्र दीर्घः, भन्नोपस्य विशेषात (३१) गीर्बेशस्य च न विषयः। दिवं भचतीति दिवच्शब्दस्य शनि भनेन भनोपे (२४०) वस्य उत्ते, भनेन दीर्घे द्यूव इत्यादि । भव भन्नोपो र्घयति क्रतेऽपौष्टिक्दौ भचो यक्षणं पूर्व्वे पदान्तरस्थिते-रावश्यकत्वं ज्ञापयित, तेन क्रिवलस्य भवः—भवः, भवा इत्यादो न प्रसक्यः । प्रति भचतोति प्रस्यव् इति लिङ्गम् । पाणिनिः ६।४।१३६, ६।३।१३६ ।

• तिर्यंच भ्रमम्यच् घटम् १च् उत्च् द्रत्येषां स्थाने ति श्य भ्रमुमुईच भटमुईच छडीच् इत्येते बादंगाः क्रमात् स्यः। असुमुईच भटमुईच इति सन्यभावनिद्देशात् न सित्यः। तिरः अञ्चतीति तिर्थेङ्। असुमचतीति भमुसुयङ्, भटमुयङ्। उत् भचतीति उदङ्। सञ्चेच भन्चधातीः क्रिप्। श्रेषं पूळ्वेवत् प्रान्च-श्रन्दविद्य्येः। पाणिनिः ६।४।१३८, ६।३।८४, ८।२।८०।

† सब्द्र इति, त्रस्य थ केटे इति त्रस्य धात्र्रेन्यमध्यः, प्यात् चकारयोगात् (४६) तालव्यसध्यः। नकारजावनुस्वारपञ्चमी किलिधात्पः। सकारजः ग्रकारय षाद्द्यगेन्तवर्गजः॥ सत्रयतीति किपि (६६१) सब्धः इति रूपं, सृब्धः सि (१४८, १५४, वस्थाने व, ततः निमित्तस्यापायं नैनिन्तिस्याप्यपायं इति नायात् ग्रस्थाने स, ततः ररह, १५५, ६४) - सुब्ध् सुब्धः। इति चकारानाः।। भवन् भवन्ती भवन्तः, भवन्तं भवन्ती भवतः, भवता भवद्गा-मिलादि। शेषं महदत।

(१८५) ग्रलसोऽधोरिति—श्रीमान्, ग्रेषं भवदत्, एवं यगस-दादयः। *

२२६। भगवद्ववद्भवतां भगोऽवोभो वा (भगवत्-म्रघवत्-भवतां ६॥, भगी-मघी-भो ।१॥, वा ।१।, घौ ७।) । एषामिते क्रमात् स्युर्वा धौ परे। है भगीः है भगवन्, हे अघीः हे अधवन्, हे भी: हे भवन्। शेषं श्रीमदत्। 🅆 (१८२) श्रद्वेदित्युक्ते-ने नुण्—ददत् ददती ददत: इत्यादि । एवं जचत-जाग्रदादय: । 🕸

महानिति, महत्क पूजे दति धातीरीपादिकोऽनुपत्ययः। (१६४) नसब्सहन्न इत्थव सहती ग्रहणात् स्थादिपञ्चके दीर्घः। भवनिति सृघातीः **श्रष्टप्रत्यये भवत इति रूपं, फा**दित्त्वात् (१८२) ब्रिटच इति नुण्, (१८३) स्थानस्य सर्वनासस् भवत् अव्हस्य भाधाती डंवत्प्रत्ययेन रूपम्, तत्र सि-विभन्नी श्रक्षन्तलेन (१८५) दीर्घ:। श्रीर्वियतेऽस्य श्रीमान्, एवं यश्री वियतेऽस्य यश्रस्तानित्याद्यः।

[†] भगवद्यवतीर्वतन्त्री: भवत्र उयतन्त्य ग्रहणम्। भगवद्यवद्भवती वत उस् इति क्षते उसन्तत्वात् रङ्भवितुमर्दति, तथा स्ति विसर्गस्य रेफजातत्वात् भी:पते इत्यादी (०४) स्वर्शिवत्यस्य विषयः स्थात्। एषां टेडीम् प्रस्थकरणन्तु स्पष्टार्थम्। हे भगी: इत्यादी हसात् सिंचीपस्य प्राथमिकलेऽपि सर्व्वावयवादेशस्य वलवन्त्वात् प्रागेवा-र्देशे इस्परत्वाभावान् सिर्खापाभावे विसर्गः। श्रेषं त्रोसददिति—(१६५) चलसी-Sघोरित्यनेन दीर्घी भनिष्यतीत्यर्थ:। निदात्तकौसुदीसते भगोस् प्रघोस् भीस् एते सकाराला निपाता:। इत्तिकार-भाष्यक्रन्यते तुभी: शब्द एवाव्ययम्।

[‡] ददहिति दाधाती: भ्रत्यस्ययेन रूपं, दिस्ततवात्न नुण्। एवं जचत् जागत् भासत् चकासत् विभ्यन् जङत् प्रस्तयः। पाणिनिः ७।१।०८,६।१।६ । इति तकारान्ताः।

(१५४) म्रक्राजिति षङ्—विट् विड् विमी विमः, विमं विमी विमः, विमा विड्भ्यामित्यादि।

(१९८) मुहां घङ्द्रति—नक् नग् नट् नड् नभी नगः, नग्रं नभी नगः, नमा नम्भां नृड्भ्यामित्यादि ।

(१८४) खेतवाहिति डस्ङ्—पुरोडाः, हे पुरोडाः हे पुरोडः, पुरोडामौ पुरोडामः, पुरोडोभ्यामिल्यादि ।

(२११) चुङिति कुङ्—स्टक् स्टग् स्टगी स्टगः, स्टगा स्टग्या-मित्यादि। *

दधक् दधग् दधषी दधषः, दधग्भ्यामित्यादि । षट् षड्, षड्भिः षड्भ्यः षसां षट्सु । 🕆

२२७। सषेसुस्सजुषङ्गां रङ् फेऽचः।

(सष इस् उस् सजुष् भक्तां ६॥, रङ्।१।, फी ७।, भव: ६।)।

सस्य स्थाने जातस्य षस्य दसुसः सजुषोऽक्रय रङ् स्थात् फी परे, नतु चान्तस्य । क्ष

^{*} विश्व नम्र सृष्य धाती: किपि क्रमेण विश्व नम् सृश्यन्दा:। पाणिनिः पाराह्व, ११२। ५०२८) पुरः अयं दाखतेऽसी पुरोजाः इविः, दाशधातीः विश्वपत्ययेन निपातनात् सिदः। सन्वीधने (१८६) उस्को धौ विति विकल्पः। पाणिनिः ११२। १०। इति श्रकारान्ताः।

[†] धृष्धाती: क्रिपि निपातनात् दधृष्यब्दः सिद्धः। षसामिति (४८) निपातनात् सिद्धम्।

[‡] दन्यसस्य स्थाने जाती सूर्जन्यः सवः, सवय दृस्च छस्च सजुव्च प्रहन् च तेवास्। विपठिष् चिकीर्ष् बुभूषांदीनां किपः प्राक्षते सस्थाने जात-वः। (१०३२) इसुसी दन्यान्ती, यथा पिछ गत्यां (पिस गती प्रति सिहानकोसुदी) सुपीः,

२२८ । र्व्यनचतयीको धोघी ऽकुर्कुरोऽखे:।

(विं ७), अनचत्राय ७।, इक: ६।, घी: ६।, घी: १।, अकुरकर: ६।, अखे: ६।) । धीरिको र्घ: स्यात वि रेफे च, न त क़्ररकुरी:, न च खे:, नाचि तये च। 🎄

पिपठी: पिपठिषी पिपठिष:, पिपठीस्थीं पिपठी:ष । चिकीर्षादयः । 🎌

तुस ध्वाने (तुस खण्डने इति सिद्धान्तकौसुदी) सुतू:, एवम् इति: धनुरित्यादि। सज्वी सूईन्यानलादप्राप्ती पृथगुतिः, जुषी प्रीतिसेवनयीः, जीवणं नुट्, सह जुषा वर्तत या सा सज:। चानस्य तु, लिझी अ ल स्वादे लिलिचतीति किपि लिलिट, भाव (१७५) इस्य ढले (६०२) षढ़ी: का: से द्रति ढस्य कले, (१११) कि लादिल्यनेन सन: सस्य पतिऽपि चानालात न रङ । पिपठीमाव:, आशीर्वाद:, भहनिंशम् इत्यादी विभक्तेर्लिक विरामे रङ स्थादेव । पाणिनिः पारा६६,६८ (कः) ।

🤋 र चव चर्वतस्मिन् विं, रेफसाइ चर्यात् वकारोऽत्र दल्यः तेन उव्जतीत्यत्र न दीर्घ:। तसाद्वित:, तथासी य चेति तय, श्रम तथ च अच्तयी, न विदीते अच्तयी यस्नात सीऽनचतय तिस्निन्, अनच्तथीति विंदलस्य विशेषणम्। कुर्च कुर्च कुर्कुर, न कुर्कुर भक्ष्र्र तस्य । (५३८) न खिरिख नस्य । धातुसन्वसीयस्य क्रक्र-भिन्नस्य इकी घं: भ्यात्, नालि श्रच तयस यस्यात ताडभेरेफी तकारे च परे, न'तु खेरित्यर्थ:। अपन सूत्रे विंदति अपदी रंफस्य पश्चात् वकारस्य ग्रहणम्, बन्तीत् वि रेफी इति वैपरीत्यं ऋनचतयीत्यनेन क्रमान्वयनिगसार्थम्। उदाइरणम् यथा, रेफी परं--गी: घ: पिपठी स्थि। वकारे परे--दी व्यति सोव्यती खादि। अन च्तयौति नि - गिरी दिवी पुर्यः दिव्यमिलादि । तयसाहचर्यादव प्रच प्रत्यस्थैव, तेन गीरर्थ: माशीरारमः: इत्यादी दीर्घ: स्यादेव । घी: कि —हिव: धनुरित्यादि । अकुरकरः किं — कुर्यात् कुर्योदित्यादि । अस्तिः किं — रीधाती. ठी-विभक्ती रिथीं, ब्रीडधातीः वित्रीड, व्येधाती: मंविव्यतु: इत्वादि । चनेन दीर्घे क्वतिऽपि (५५८) समस्वयहर्घेत्वनेन पुनर्फ़ खेनैबेष्टसिद्धी चाद कथं खियर्जनमिति चेत् -- ऋस्य विशेषविधिलात् भभस्य धिल्यनेनः पुनक्रीखासमावात्। पाणिनिः नाराण्य-ण्ट, वार्त्तिनदयच ।

† पठधाती: सनि पिपठित्र इति धातीः क्रिपि (৩০५) इसाल्लीप इति ऋकारलीपे षिपठिष् इतिः लिङ्गम्। पिपठिष्-सिः (१४८,२२०,२२८,१०२) ≕िपपठीः।

हो: दोषी दोष:। (११६) पाददन्तित दोषन् वा। दोणाः दोष:, दोणा दोषा दोषभ्यां दोभ्यामित्यादि।

(२१३) स्थादेः सी लोपः। विविट् विविड् विविज्ञौ विविज्ञः, विविड्भ्यामित्यादि। , ,

पिपक् पिपग् पिपची पिपचः, पिपग्भ्यामित्यादि। एवं गोरक्दिधचादयः। *

सुपी: सुपिसी सुपिसः, सुपीभ्यीं सुपी:षु । एवं सुतू: । विद्वान्, हे विद्वन्, विद्वांसी विद्वांसः, विद्वांसं विद्वांसी । १

२२८। वसो वः सेमणुर्मतुष्योः।

(वसी' ६।, व: १।, सेन् ।१।, अपि ।१।, उ: १।, मतुष्यी: ৩॥)।

वसो विग्रब्दं इम्सिइतोऽपि उ: स्थात् मतौ पौ च परे। विदुष: विदुषा।(१८३)स्त्रसंघ्वस्वस्विति दङ्विदद्भग्रामित्यादि।

चिकोर्घारति, एवनिति रङ्गाप्तायेँ, न तु सर्वेरुपमायायेँ, तेन विकीर्घं शब्दस्य सुपि, षस्य रङि, (१८३) स्थानस्थारादित्यत्र स्थानस्थित भिन्नपदज्ञापकात् रादिष रङो लोपे. (१८०) रङो वि: सुपीति नियमात् रेफस्य विसर्गाभावे (१११) किलादिति पत्ने चिकौर्धुद्रति पदम् । एवं बुवूर्ष् प्रस्ति शब्दस्थापि ।

^{*} दीरिति दभेडों सिरित्यौ णादिक मुत्रेण दीप् इति निक्षं वाहवाचक स्। दीप्-ग्रम् (११६,११७,१११,१०२) च दीणः। विविद् इति विश्रधातोः सनि क्विपि च विविद् इति विश्रधातोः सनि क्विपि च विविद् इति विश्रधातोः सनि क्विपि च विविद् विविद् । पचधातो सिनि क्विपि च पिपच् ग्रव्ध्यः चकारजात-ककारस्य (२१३) खीपाभावं, (१८३) स्थानस्य वृिषि पिपक् पिपग् इति । गां रचनौति गोरच् श्रव्यस्य (२१३) रचवर्जनात् ककारः खोपाभावः। दहधातोः सनि क्विपि च दिधक दिधग् इत्यादि । इति पकारानाः।

[†] सुपौरिति सुत्रिति च सुपूर्वकात् पिसधानोः तुसधानीय किपि, इसन्तवाः चसन्तवाञ्च रङ्। विद्यानिति विद्यानोः ग्रहप्रवये (११०३) ग्रतः कस्वादेशे, विद्यस्-सि (१४८,१८२,१८४,१८३) = विद्यान्। पाणिनिः ६।४।१२१, वार्सिकच।

पेचिवान पेचिवांसी पेचिवांसः, पेचिवांसं पेचिवांसी पेचुषः, पेच्या पेचिवद्वरामित्यादि । जगन्वान जगन्वांसी जगन्वांस:, जगलां मं जगलां सी। वस्रोले तिविभित्तस्य नस्य मले—*

२३०। इनगमजनखनद्यसामुङलोपोऽङेऽच्यणौ ।

(इन गम जन-खन घसां ६॥, उङ्-सोप: १।, घङे ७।, घि ७।, घर्षी ७।) ।

एषामुङ्जीप: स्यादणाविध, न तु ङे।

जग्मुष: जग्मुषा जगन्वद्वामित्यादि । एवं जग्मिवान् । 🕆 (१६४) अधीरित्युत्ती:, सुहिन् सुहिंसी सुहिस:, सुहिन्भ्याम्। ध्वत् ध्वसौ ध्वसः, ध्वद्भाम्। एवं स्नत्।

उक्षयमा:, हे उक्षयमा: हे उक्षय:, उक्षयमासी उक्षयास:, चक्षयोभ्यामितग्रादि । 🕸

स्पृचे वद्गति अदलग्रहणात् अकारसिहतसीत उ:, इस्मिछितोऽपीति सिति समावे। वस्वन्तात् (४४२) मतो: प्रमङ्गाभावेऽपि, मतौ परे वसीवेस्य उविधानं भाषयति "वस्वनात् (४४१) मत्रेय भविष्यतीति", विद्यम्बदात् मतौ विदुमान्। पेचिवान् इति पचधाती: वसु: पेचिवस्-सि (१४८,१६२,१६४,१८३) -- पेचिवान्। पेचिवस् भी (१६२ १६४,५०) = पेचिवांसी। गमधातीः कसी, वकारे परे (२०२) मस्य नकारे लगन्वस् इति लिङ्गम्। वस्रीले इति—श्रसि परे लगन्वस्थव्दस्य वस्य जले, सएव वकारी निमत्तं यस स तिमित्तनादृशस्य नस्य, निमित्तसाभावे नैमित्तिन-खाष्यभाव इति न्यायात्, मले, नगमृष् इति स्थिते इत्यर्थः। पाणिनिः ''वसीः सम्प्रसारणम्'' इति (६।४।१३१)। अत अन्तरकोऽपि इड़ागम: सम्प्रसारणविषये न मधर्तते, ''त्रकतव्यहाः पाणिनीयाः'' इति परिभाषया ।

⁺ यिमान् परे गुणी निविद्यसाद्यं चिच परे (५६५) ङ भिन्ने, एतेवां पञ्चानां धात्नां चडीऽकारस्य लीपः स्थादित्यर्थः, भयमच् भाष्यातक्रतोरेव सभवति । अक्रीप इति कते सिक्षेऽपि चक्रालीपकरणं (१११८) दियादुङ्लीपिन इति स्वे एवां प्राप्त्रायम्। जगम्-उष् इति गम् इथस्य चनिन उङ्लीपे नम्मुष इति। गमधातीः कसी (१०८८) निसवान् प्रति च। पाणिनि: ६।४।८८।

^{🙏 (}१६४) नम्बन्धन इत्यन धात्वयनवर्जनात्, सु दिनसीति किपि सुहिन्स्

२३१ | पुंसोऽसुङ झौ | (पुंस: ६।, असङ् ११^{।, घी २०)}।

पुंसोऽसुङ् स्थात् घी परे, उङाविती । पुमान् पुमांसी पुमांसः, पुम्भ्यां पुंभ्यामित्यादि । *

२३२। से डींगनसपुरुदंगोऽने इसोऽधे:।

(सी: ६।, जा ११।, जशनस-पुरुदेशम-अनेहस: ५।, अधी: ६।)।

एभ्यः परस्य सेडीस्थात्, नतुधेः। उगना। १

२३३ । भेर्डडनी वोशनस: । (वे: ६१, ड-डनी १॥, वा १११, उमनस: ५१) ।

उगन्मः परस्य धे डी-डनी वा स्तः, ड इत । ही उपन ही चयनन् हे उपनः, उपनसी उपनीभ्याम् । 🕸

इत्यस न दीर्घः, (१८२) स्थान्तस्य लुप् सुद्दिन् इति । व्यन्स घातीः किपि, व्यस्-सि (१८३) ध्वत् इति । उक्षानि मामाद्गानि शंसतीति (१०२६) विशि निपातनात्, जन्यग्रास्-सि (१४८,१८५,१०२) = जन्यग्रा: । ८।२।६० पाणिनिम्त्रं चकारादुन्यग्रा: ।

असङ उदिलात (१६२) न्ण, डिलादन्यस्य स्थाने । पुम्स-मि, असङ् = पुनम् चि (१४८,१६२,१६४,१६३) - पुनान् । पुनम्-स्थाम् (१८३,५३,५२) = पुन्स्यां, वापुंभ्यां। पाणिनिः ७।१।८८।

[🕂] उग्रना दैत्यगुरुः। पुरुदंशा इन्द्रः, भयं शब्दः उकारवद्रेपत्वान्। भनेहा काल:। अपनेन सेर्डाक्षते (१२६) टेर्लीप इति टिलीप:। पाणिनि: ०।१।८४।

[‡] ख-डनी र्ड इत्, च चन् स्थिति:। छक्षनसः सम्बोधने कपचयम्--- चदन्तं नानां सान्तच । सान्तपचे (१८५) धिवर्जनात्र दौर्घ:। "वभे: कनिछ:' द्रश्लीणादिकस्चेण सम्प्रसारणाज्ञ उश्रमस्-धि (२३३,१२६) = उश्रन इत्यादि। ''अस्य सम्बुती वानङ् नजीपय वा वाच्यः" इति वार्तिकम्। काशिकावृत्तीच "सम्बोधने तूमनसस्त्रहर्ष सान्तं तथा नान्तमयाष्यदन्तम्'' इत्युक्तम् ।

अनेष्ठा, हे अनेष्ठः, अनेष्ठसी अनेष्ठसः, एवं पुरुदंशा । विधाः, हे विधः, विधसी विधसः इत्यादि । (१८५) अधोरित्यृतोः, सुवः सुवसी । *

२३४ । ऋदस: सरो: । (भदनः धा, मेः ६।, भोः १।) । भदसः परस्य से-रो: स्थात्। ऋसी । १

२३५ । मात् खर्घावुऊ । (मात् प्रा, खर्घी रा, ज-कारा)। चरसो मात् परौ खर्घावुटूतावाप्रुतः । असू । क्ष

^{*} भनेडम्-िस (२३२,१२६) च अनेडा कालः, ''निज इन एइ घ'' इति श्रीणादिकस्त्रेण श्रसिः। ''विधाजी वेध च" इत्यीणादिकस्त्रेण श्रसिः, यद्दा विधधातीः श्रम्पत्यये वेधस्-िस (१४८,१८५,१०२) च वेधाः विधाता। सुपूर्व्यक-वस्रधातीः क्रिप्-प्रत्यये सुवस् इत्यत्र श्रकारस्य धालवययत्वात् (१८५) न दीर्घः।

[†] अव, पूर्वतः वाश्रव्दः केवलं व्यवस्थावाची भूला भनुवनंते। व्यवस्था च—
भक्युक्ताददसः से-रीर्व्वा, भनकमु नियमिति ; तेन असकी असुकः पुमान, असकी
असुका स्त्री। असुकः असुका इत्याकाराणि पदानि त्याणिनीयानि "सी भौत्वप्रतिष्धः सक्तम्कादा वक्तव्यः सादृत्वश्व" इति वार्त्तिकात् ; "असुक इत्यागमिकम्" इति कम-दीयरः । सुपद्मे तु "असको असुकी वा, असुकयेखेके" इति । क्रीवे तु सेर्लुकि क्रते, (८३) लुकि न तविति निषेधात् (२१४) त्यदां तदीरित्यस्य (२०४) दोनीऽदसयेत्यस्य च अपाप्ती भदकः कुलमिति । भदम्-सि (२३४,१३३,२१४) = असी । पाणिनिः शरारे००, वार्त्तिकश्च।

[‡] अदस्यव्हस्य मकारात् परस्थितस्य क्रसस्यरस्य स्थाने उ, दीर्घस्यरस्य स्थाने क भवत इत्यर्थः। मान् किं, असुष्य शिष्यः अदःशिष्यः, असुष्य स्त्री अदःस्त्री इत्यादी विभिक्तिस्त्रित (१०४) दस्य मकाराभावे नपरत्वाभावात् न उ। अत्र उ-यहणेनेव उत्वर्धगाती उ क इत्युभवग्रहणं प्रत्ययादेशयोः इद्रहितेनाका सवर्णो न एक्सते (७) इति ज्ञापनार्थम्। अदस्-भी (१३३,२०४,९१,२३५) = असू। पाणिनिः ८।२।८०।

२३६१ •एरी क्वे। (ए: ११, ई ।११, क्वे ७।)।

भदसो मात् परो व्वे निष्यत्न एकार ई स्थात्। भ्रमी। श्रमुं भमू भमून्। (१२३) टादसयास्त्रियान्तु ना। अमुना भमूस्यां श्रमीभिः, भमुषी श्रमूस्यां श्रमीस्यः, भ्रमुषात् श्रमूस्यां श्रमीस्यः, अमुष्य श्रमुयोः श्रमीषां, श्रमुषिन् श्रमुयोः श्रमीषु । *

> " इति इसन्त पुंलिङ पाद:।

२य पादः -- हसन्त स्तीलिङ गव्दः।

२३७ । नहो धङ् भौ। (नहः ६।, घङ् ११।, भौ ०)। नहो हस्य धङ् स्यात् भौ परे। जपानत् जपानद् जपानही जपानहः, जपानद्वाां। ११ (२११) चुङिति कुङ्। जिश्वक् जिश्वहो, जिश्वग्रस्यामित्यादि।

क पूर्वती सादित्यनुवर्तते। बहुवधनस्यानजात एकार दे स्वादित्यनेन भमू स्त्रियी, भमू फल इत्यादी न स्वात् । भदम् जम् (१३३,२०४,११२,२३,२३६) = भमी । भदम् भम् (१०६,२०४,१०४,२३६) = भमी । भदम् भम् (१०६,२०४,१०४,२३६) = भम् मा भम् याम् (१०८,२३६,१०२) = भमी भिः । भम् भ्याम् (१०८,२३६,१०२) = भमी भिः । भम् भौ इत्यादी (१३३,२०४,११२,२३५,१११) एवं पदि धिद्धिः । उत्म भी स्थाने (१०६) स्व योम् भवतः, भाम्स्याने (११३) साम् भवति । पाणिनिः पाराप्ति । इति सकारान्ताः।

[†] डिलादन्यस्य स्थाने, भाती व्याख्यायां इत्य घङ् इत्युक्तम् । भौ (८४) इति कथनात् लिङ्स्य धातीय यहणाम् । उपानद्यतिऽनयेति किपि उपानत्, पादुर्केल्यैः । धोनुभनात्सीत् भनद्व इत्यादि । पाणिनिः ८।२।३४।

[‡] जर्दे सिद्यतौति (उद्धिक किप्) उपिक्, इन्दीविशेषः वेदे शसिदः।

२३८। दिव ऋौङ् सौ। (दिवः ६।, भौङ् ।१।, सो २०)। दिव भौङ् स्थात् सौ परे। द्यौ: दिवौ दिव:। #

२३८ । वास्याङ् । (वा ११), पिन ७), पाइ ।१।)। दिव प्राङ् स्थात् वा श्रमि परे। यां दिवं दिवी दिवः, दिवा। १

२४० | उह्रस्युङ् । (वहिंव का, वह ।१।)। दिव वह्रस्यात् ववर्षे इसि च परे । युभ्यां । क्ष गी: गिरी गिर: । एवं पू: । §

श्रीति सरादेशलादादी वस्य त्रीकार चिविसर्गः। गौगले वायं विधिः,
 तेन त्रतिबीरिलिपि। बौ: सर्गः, त्राकाशच। "बौ: सर्गसुरवर्त्ननीः" इति विश्वः।
 पाणिनिः ७।१।८४।

[†] अधमपि सुख्यते गौषते च, दिव्यव्हस्य चिम यां दिवं, चितिदव्यव्हस्य चित्यां चितिदवं गत्व योगव्हस्य यामिति, दिव्यव्हस्य दिविमिति उभयपदिनि दौ वास्याज्ञित व्यवेमिति चेन्न, (१४६) आ चम्यकीरित्य सुख्यसैव यहचेन चित्या-मिस्यस्यानुपपत्ते:। पाथिनीयाः (पाणिनिपद्मनाभक्तमहौत्रदादयः) दिव्यव्हात् यामिति पदं न मन्यते। कातन्ते तु "वास्या" इति सुवेष पद्वयं स्यादेव।

[‡] भात विति नानुवर्त्तते भिनष्टलात्। इत्क्या हि व्यवहितमप्यनुवर्त्तते भव्यव-हितमपि नानुवर्त्तते इति तान्तिकाः। स्थादिमध्ये सभाभ्यां विना भन्यहसीऽसभावात् सभि इति न क्रला इसि-यहणं सामान्यहस्पात्राये, तेन दिवः पतिः युपतिरित्यादि । भन्न दिवो वकारः दान्ते स्थितो वक्तव्यः, तेन दिविमक्किति दिव्यति, दिवि भवो दिव्य-इत्यादौ न स्थात् । (१६८) स्यमोर्ल्किपि भवतौति च वक्तव्यं, तेन सुद्युक्लिमियादि । पाणिनिः ६।१११६१ । इति वकारान्ताः।

[§] गिरतौति गृथातीः किपि, गिर्-िस (१४८,२२८,१०२) = गीः, वाकाम । गिरौ इत्यादिष रेफस अच्परलात् न दीर्घः।

(१५०) स्त्रियां चिचतुर इति चतसः। चतसः चतसः चतसः। चतस्थ्यः चतस्थ्यः चतस्यां चतस्यः। *

(१३३,२४८) टेरले सत्याप्। का के का: इत्यादि, सर्जा-वत्। एवं यद्। প

(२०१) इदमोऽयमितीयं। इयं इमे इमाः, इमां इमे इमाः, अनया श्राभ्यां श्राभिः, श्रस्ये श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्राभ्यां श्राभ्यः, श्रस्याः श्रनयोः श्रासां, श्रस्यां श्रनयोः श्रास । क्ष

स्रक् स्रजी स्रजः, स्रग्भ्यां। §

(१३३,२४८) टेरले श्राप्। स्था त्ये त्याः इत्यादि सर्वी-वत्। एवं तद् एतद्। ¶

वाक् वाची वाचः, वाग्भ्यां।

श्रप्राब्दो ब्वान्तः । (१६४)नसब्मइन्नद्रति र्घः । श्रापः,ग्रपः ।**

२८१। स्यपो दङ्। (मि ७, मप: ६१, दङ्।११)।

अपो दङ्स्यात् भि परे । अद्भिः, अद्भगः अद्भगः, अपां असु। 🕆 🕆

चतुरशब्दः स्त्रीलिङ्गविशब्दवत्। इति रकारान्ताः।

[†] किम्-सि (१३३ २४६ १४८) = का इत्यादि।

 $[\]ddagger$ इदन-घी (१३३,२०४,२४८,१४८,२३) = इसे । इसा-टा (२०५.१५०,३५) = अन्या। इसा-सां (२०६) = घायां, इत्यादि सर्व्यावत् साध्यम् । इति सकारान्ताः ।

१ स्रज्ञाते इति स्रज्ञधातीः किपि, सज्सि (२११,१४८) = सक्माला। इति जकारानाः।

[¶] त्यदः सि = त्या सि (२१४) = स्था। इति दकारान्ताः।

[∥] जचातेऽसाविति वचभातोः क्रिपि, वाच्सि (२११ १४८) = वाक् वाक्यम् । इति चकारानाः।

^{*} व्यान्त इति भव्दभिक्षभावादुक्तम्। आपी कलानीत्यर्थः।

^{† ।} चन याशब्दस्य नानव्रतिः । चन प्रकरणवलात् भ इति स्यादेरैव, तेन चन्धस्य-मित्यादौ न प्रसङ्कः । गौ.णेऽस्ययं, तेन स्वद्गामित्यादि । पाणिनिः ७।४।४८ । इति पकारान्ताः ।

दिन् दिशौ दिगः, दिग्धामित्यादि । एवं दृक् । * विट् विषौ विषः, विड्ध्यामित्यादि । † सजूः सजुषौ सजुषः, सजूर्थां सजूःषु । एवं श्रागीः । इ

(२३४) घट्सः सेरीः। जसी घुम् घम्ः, घम् घम् घम् घम्ः, घम्या घम्भ्यां घम्भिः, घमुष्ये चम्भ्यां चम्भ्यः, घमुषाः घम्भ्यां घम्भ्यः, चमुषाः चमुयोः चमुषां, चमुषां चमुयोः घमुषु। §

इति इस्न स्त्रीलिङ्ग पाद:।

३य पाद:—इसन्त क्षीवलिङ्ग ग्रब्द:।

(१६८) स्वमोर्जुगिति। (१८२) स्वम् ध्वम् विस्ति दङ्। स्वनदुत् स्वनदुद्दो। (१८१) ग्रनदुद्वत्ररोऽणाणाविति। स्वन दुर्गेष्टि। पुनस्तदत्। ग्रेषं पुवत्। ग

चलारि। ब्रह्म

^{*} इति शकार।नः: ।

[🕆] दिश्ह्य लिष्धातुभ्य: किपि दिक् हक् लिट्डित पदानि ।

[‡] नुषधातो. क्विपि जुट् प्रीति', सह जुषा वर्तते इति सजुष्-सिः १४८, २२८, १०३) — सजूः। पा-कास धाती क्विपि भागीपिति. इसन्तत्वात् रङ्, विकी च वैधा स्त्री लागीहितायं साहिद द्वर्यारित्यसः सिंहेन दन्यान्तसध्य पठित लात्। इति वकारान्ताः ।

[§] असी असू असू इत्यादिषु भदम् शब्दस्य सि-भादि-विभक्तिष् — (१३३,२४८,२१४, २३४,२०४,१४८,१६०,१५२,१३०,११३,२३५) इत्यादोनि स्वाणि यद्यायथं प्रवर्त्तन्ते ! इति सकारान्ताः ।

ण शोभनी रनद्वान् यिधान् गोष्ठे तत् खनडुत्। खनडुह्-श्री (१६१) = खनडुही। खनडुह्-जम् (१६२,१६६,१८१,६५,५७) = खनडुहि। इति इकारान्ताः।

[🎚] चतुर्जम् (१६२,१८४,३४) -- चलारि । इति रकाराना ।

२४२। स्तीवे नो लुब्बा घौ।

(क्रीवे अ, न: ६।, लुप्।१।, वा।१।, घो अ)।

नपुंसके नस्य लुप् स्थात् वा धी परे। हे ब्रह्म हे ब्रह्मन्, ब्रह्मणी ब्रह्माणि। श्रहः श्रद्धी श्रहनी श्रहानि, श्रहीस्थां। *

किं के कानि। इदं इमे इमानि। पं

असक् असजी अस्चित्, असानि अस्चित्, असा अस्जा असभ्यां असम्भामित्यादि । 🌣 जर्क जर्जी जन्जिं जर्जि ।

सुवल् सुवली सुवन्िला सुविला। (१६३) नुस्पयमेत्यत्र भसन्तरलयोराही तुवा नुण्। उकारितो नुर्विन्दुमात्रस्य नास्था। §

^{*} (११८) नी सुप्फिं प्रधाविति धी निवेधादप्राप्ते विभाषेयम् । सुप्करण।त् तदा दिविधे निवेधे हे धनि इत्यादी (१००) सधीं विति ग्रणो न स्थात्। ''सम्बुदी नपुंसकानः न वा वास्यः'' इति वार्तिकम् । भड्न-सि (१४८,२२०.१०२) = भ्रष्ठः। भड्न-भी (१६१ ११०) = भ्रष्ठो, वा भ्रष्ठभी। भ्रष्ठन्-सम्भ्रम् (१६२,१६४) = भ्रष्ठानि । भ्रष्ठन् स्थाम् (२२०,१०२,६८) = भ्रष्ठीस्थां। इति नकारान्ताः।

⁺ किस्-िस (१६८) - किस् । किस्-िसे (१३३,१६१,२३) = की । किस्-िस (१३३,१६१,१६३,१६३) = कानि । इट्स्थन्द: किस्-श्रन्दवत, (२०४) दी स द्रिश्चिश्च: । इति सकारान्ताः ।

[‡] षस्रज्-सि (१६८,२११) = षस्रक् [रक्षम् । षस्रज्-सम् (११६,१६२,१६४) = षस्रानि, यमादी निषेधात् (१६३) न नुष् । वा प्रसनादेशे प्रस्ज्-सम् (१६२,१६१ ५०,५१) = प्रस्का । प्रसा (११०) । प्रसम्यां (११८) ।

[§] जर्जधातीः सु-वल्नधातीय किपि जर्ज-सुवल्ग ग्रन्दी । जर्ज सि (१६८,१११ - जर्क । जर्ज त्री (१६१) - जर्जी । कर्ज त्रम् (१६२,१६३) - जन्जिं, वा जर्जि इति जकारानाः । सुवल्ग-सि (१६८,१८३) - सुवल् । यंग्रयते इत्यादी (८१०) जम जपत्रभेत्यादिना यथा तुरित्यनुद्धारागमः भियते, (१६३) तृष्यमेत्यत्र न तथा, प्राप्त सित्राते तु नंकारः न तु विन्दुमात्रस्य जनुस्तारस्य संज्ञययः । जनुस्वारागमधन्दि स्वारणाय इदमुक्तम् । इति गकारानाः ।

त्यत् त्ये त्यानि । एवं यत् तत् एतत् । (२०८) अनूत्ती तु एनत् । गवाक् गोची गवाचि । तिथ्येक् तिरची तिथ्येचि । एवं परे । यक्तत् यक्तती यक्तित्, यक्तानि यक्तित्, यक्तभ्यां यक्तद्भाः - मित्यादि । एवं प्रकत् । ददत् ददती । अ

२४३। हे: शतनुंग् शौ।

(हे: ५१, शतु: ६१, तुस्। ११, भी अ)।

है: परस्य गतुर्नुण् स्यात् वा भी परे।
इदन्ति इदति। एवं यचत्-जाग्रदादयः। तुदत्। १

२८४ | त्रादीपो: | (भात शा, ई.ईपी: १॥)। प्रवर्णात् परस्य प्रतिर्वेण् स्थादा ईकारे ईपि च परे ।, तुदन्ती तुदती तुदन्ति । भात् भान्ती भाती भान्ति । इष्टिच्या

[«] एनदिति (१६८) भनी खुकि कते, (८३) खुकि न तर्वति निवेधेऽपि (२०८) प्रदेतयोरेनादेशिक्षानसाफत्व्यार्थम् एतभागस्य एनादेशः स्वादेव, (१३३) टिरलाभावे दकारस्थितिः । (''एनदिति नपुंसकेकश्चने'' प्रति वार्त्तिकम्) । प्रति दकारान्ताः । गामस्रतीति किपि गवाक् । गवाच्-भौ (१६१,२२४) = गोची । सिदानकौस्याम् भव्यक्षतिः । तिपूजनार्थभेदेन विविधानि पदानि प्रदर्शितानि, यथा — गवाक् गवाग्, गोभक् गोभग्, गोक् गोग्; गवाङ् गोभङ् गोङ्; गोची, गवास्रौ गोभधी गोधीः ; गवाि गोभिस्र गोभि

^{† (}१८२) ब्रिट्च इति वेनिभेधादप्राप्ते विभाषेयम् । दहत्-जस् (१६२,२४२) == ददन्ति, वा ददति । तुद्धातोः सतरि तुदत् । पाणिनः ०।१।७८ ।

[‡] ईप: प्रथम्य इषात् ई इति (१६१) कीवादी इत्यनेन मादिएस ईकारस यह छं,

२८५ । अप्यनी नित्यं। (भप्यनः ४।, निर्वं १) । भपी यनस्य परस्य मतुर्नित्यं नुण् स्थात् ई ईपीः परयोः । पचन्ती पचन्ति । दीव्यत् दीव्यन्ती दीव्यन्ति । *

स्वप् स्वपी । (१६४) नसब्महनोऽधो र्घः । स्वाम्पि, स्वपा । (२४१) भ्यपो दङ् । स्वडिः । गं

(२२७) सपेति रङ्। धनुः धनुषी धनूंषि। एवं इिवः। पयः पयसी पयांसि, पयसा पयोभ्यां। ऋदः ऋमू ऋमूनि। दी प्रीवत्।
#

ुद्रति इसन्त क्षीवलिङ्गपादः।

तेन तुरत इदं दुदतीय निष्यादी न प्रस्तः । श्री विभन्नी तृदनी तृदती इति श्रनेन वा तृष् । जिस् पूर्श्वेष (१६३) निष्यम् । भाषाती. श्रवप्रथयं भात् । एवं या, वा, स्ना, श्रा, द्रा, पा, रा, ला. ख्या, मा, प्रा, धातभ्यः श्रवप्रथयं ६ पम् । क्राविराकाण्लोपेऽपि स्थानि च्लात् क्रीणनी क्षीणती क्रायति । लुनतीस्थन तृ प्रथमनाकारल्कि कर्ते तृम् न भवति इति गीथीचन्द्रः । श्रव स्वत्ययस्थापि वा नृण् वक्तर्यं, तेन यास्यनी यास्यती भविष्यनी भविष्यती इत्यादि । पाणिनिः ९।१। ८०।

धातोविंडितात् पपः यमय परस्य वर्धः, गच्छनो गमयनी पुत्रकास्यनी जानोधनी इत्यादयः। मालिशाचरनी मालानी, वौणेवाचरनी वीणानी इत्यपि दुर्गासंदः। विच्छथातीः (६३०) विच्छानृतिपणो वाय इति आयपचे ग्रापि विच्छायनी इति नित्यं, विक्तापचे तुद्दिलात् मे (२४४) विच्छनी विच्छतो इति । कृष्यंनीति धातृपागमणे, तइइतानस्यातिनित गोयीचन्द्रः। पाणिनिः ०।१।८९ इति तकागनाः।

[†] श्रीभना चापीयत्र सरसि तत्स्वप्, (४०४) नार्चीयां स्वतिरित्यादिना समा-सालनिवेषः। स्वप्-जम् (१६२,१६३ १६४,५०,५१) = स्वाम्पि । इति पकाशन्ताः।

[‡] भनभातोकम् भनु:। इभातोरिम् इति:। पय इति (१६८०) सेर्जुकि. (८१) सुकि न तत्रेति निवेधात् (१८५०) कदौर्धः। एवम् भदः इत्यवापि (२१४) दः सी न स्थात्। अनुविभक्तौ च (२०४) दो मी न स्थात्। अनुविभक्तौ च (२०४) दो मी न स्थात्। इति सकारान्ताः।

४र्थः पादः—-म्रव्यय-ग्रब्दः ।

२४६ । व्यास्त्रक्तः । (व्यात् ४।, लक् ।१।, की: ६।)।

व्यात् परस्याः तीर्जुक् स्थात्। स्वः प्रातः, चवा चा है उचैः उचकैः धिक धिकत्, प्रपरा, इरिव्रत कला। *

२४७। उदः सः खास्तकोः।

(उद: ५३, सः ६३, स्थाम्तमी: ६॥)।

उदः परवीरनयीः सस्य लुक् स्थात्। ज्यानं उत्तमाः। १

अध्ययानां लिङ्गकार्याभावात् पृलिङ।दियादेष्वतृक्वा पृथगुपन्यामः क्षतः । तथाच — सद्दर्भाविष लिङ्गेष सब्बासुच विभक्तिषु, वचनेषुच सब्बेषु यद्ग व्यक्ति तदव्यय- मिति प्राचः । अलिङानामव्ययानां विशेषण्यात् नपृषक्तिकोने सामान्यवाद्यपुंसक- मिति नचनात् यथा शीभनं प्राविगिति । पाणिनिः २।४।८२ ।

विभक्ते लंक करणान विभक्तिनिमित्तक काये न स्थात्, तेन यः नम इत्यादी से लंकि (१८५) भल की ऽधीरित दीर्घां न स्थात्। विसां स्तृ विराममाधिय स्थादेव । एवं, खल नतु इत्यादी (१२२) ग्राधिं असियादिमा ग्रणी न स्थात् । भव्ययान विभक्त्यपत्तिः प्रयोजनन्तु पदलं, तेन छद्गक्ति जन्मज्ञतीत्यादी तकारस्य १६८,५१ दकार-नकारी स्थाताम । एवं, विभक्तिलुखि विभक्त्ययं विद्यमानलान स्वगंक्कित स्वः पततीत्यादी स्वगंस्य कार्मतादि प्रतीतिः स्थादेव । गौग्ये तु न विभक्तिलीएः, तंन प्राप्तं स्वः यैसी प्राप्तस्यः इति । अव (८४) संज्ञाम् चीक-चन्विधाव्ययानां क्रमेणीदाइग्णं दर्शयति स्वः इत्यादि । छच्चतैः धिकत् (२०८) टेः पूर्वे अक् त्यकस्य दय । हरिरिव हरिवन, चृत्यत्ययान्तः । क्रधातोः क्वाच् क्रला इति । भव पाणिनिना "तिहतस्य सर्व्वविभिक्तः" (१।१।६८) इति स्वेण तस्यमासान्तपदानामपि भव्ययत्वं स्वीक्रतम् ।

† पाणिनिः प्ाध ६१। भन कः स्थाता कः सम्भः इत्यादी विधर्भस्य वा लीपी वक्तव्यः। यथा कस्थाता कसम्भ इत्यादिः "खस्था भविन मिय जीवित घार्णराष्ट्राः" इति विणीसंद्वारे। "खर्परे श्रदि वा विधर्मसीपी वक्तव्यः" इति वार्तिकम् ; "वा श्रदि खर्परे" इति पद्मनाभः ; "कादियुक्ते श्रवसे लुग्वा" इति क्रमदीश्वरः ; "श्रवसेष्य-घोषपरेषु विसर्ज्ञानीयस्य" इति श्रीपतिदक्तस्य ।

२८८ । वातोऽवाष्यो:।

(वा ।१।, भतः ६।, भवाष्यीः ६॥)।

त्रवाप्योरकारस्य तुक् स्थात् वा । वगाद्यः त्रवगाद्यः, पिधानं त्रपिधानम् । * . ,

र्वत व्यपादः।

द्रति इसन्ताध्यायः।

^{*} भवायो विकल्पन भकारकी पद्ध इह सामान्यती विधानं, केचित्तु वतरित वतीर्णं वतंसः वगाइः, विनञ्जति पिनदः पिदधाति पिधानं केवलमेतानि पदानि विकल्पे भवन्तीति वदन्ति । भव भपेक्पसंग्रीत ग्रहणम् । "विष्ट भागुरिरक्षीपमवाय्योकप् सर्गयोः" इति भागुरिमतम् ; "भपेरक्षुग्धादौ वा'' इति कमदौत्ररः ; "भवस्यायक्षुव कविदिति वक्तव्यम्" इति गोधी चन्द्रः ; "धाञनद्यथोरपेकपसर्गस्यादैः", "भवस्य तंसे' इति भ भौपतिदत्तः ।

प्रचलिताव्ययग्रद्संग्रहः।

			. 0
	শ্ব	, प्रतरा	ব্যতিরেকে। মধ্যে।
4	অভাব, ভেদ, অপ্রাশস্ত্য,	श्रनरेष	বিনা। মধ্যে।
	ঈষৎ, সাদৃশ্য, বিরোধ*।	षम्यत्	অম্বপ্রকাব।
श्रकसात्	অকারণ, ইঠাৎ। ''	भन्यतरेद्युस्	হুয়ের এক দিনে।
भगत स्	প্রথমে। সমুখে।	पन्यतस्	অগ্যত্র। অন্য হইতে।
भ धीस्	সম্বোধন—পাপিন্।	भन्यच	অন্ত স্থানে। বিনা।
भङ्ग	সম্বোধন। পুনঃ।	श्रन्धंया	স্বন্ধকার।
चिरात्	শীগ্র।	षग्यदा	অন্য সময়ে।
श्रच्छ	আভিমুখ্য।	अभातरेद्युम्, प	विद्युम्, षधरेद्युम्,
श्रज्ञसा	শীঘ্র। যথার্থ।	चपरिद्युस्	অग्र দিনে।
श्रदृष्ट	উচ্চ শব্দ।	त्रपि	সমূচ্চয়। প্রশ্ন। সন্তা-
भ तस्	অন্তএব।		वना। निका। सङ्घा।
भ्रति	প্রকর্ষ। লঙ্ঘন।	च भितम्	সর্বব দিকে। উভয়
त्रतीव	অতিশয়, অধিক।	1	দিকে। অভিমুখে।
भ व	वरे, वरे शान।		সাকলা'। শীঘুতা।
चय, अथो	जन्सुन्। अक्षा म ळ न।	चभी चणम्	পুনঃ পুনঃ।
,	আরম্ভা সাকলা।	त्रमा	সহিত। সমীপ।
भयकिम्	আর কি, ইা।	असुव	পরলোকে।
भडा अडा	সত্য, যথার্থ।	श्रमि	সম্বোধন। প্রশ্ন। অনুনয়।
भवा भवा	আজি, একণে।	भ श्चे	ওহো, শ্বরণ। সম্বোধন।
	धरं ग नीटा।	चरे, चरेरे	সম্বোধন।
	सात नीरह।	त्रव्यक्ति,त्रर्श्वाच	পূৰ্বেৰ, পশ্চাং। বক্ৰ।
भधु न ।	हेमानीः ।	चलम्	ব্যৰ্থ। সমৰ্থ।ভূষণ।
			•পর্য্যাপ্তি। বারণ i
	পশ্চাং। সাদৃশ্য।	भ वस्थम्	নিশ্চয়।
	অনন্তর।	श्रवाक	দক্ষিণ দিক্,দেশ,কাল।
षनतस् यक्तर	(শरिष, न्।नकस्त्र।	असकत्। ***	श्रुनः श्रुनः।
प न्तर्	মধ্যে,শেষে। অন্তঃকরণ।	1	a in a live

অথের মধ্যে যে হলে বিশেষ্য বিশেষণাদি শব্দ ব্যবহৃত হইল, সেই সেই পলে ভ্রাচক ব্রিভে ছইবে।

श्रमम्	অদর্শন, নাশ।	उत्तरतमः, उत्तर	ान, उत्तरिष উত্তবে।
प्र स्ति	থাকা।	उत्त रेयुस्	পর দিনে।
श्रस्	অস্যাপূর্বক স্বীকার।	उद्	উত্তর দিক্,দেশ,কাল
3	অভুত,আহা।থেদ,উহু।	उपनीषम्, उपयोषम् अभिन्तः।	
श्रहे	मस्याधन ।	उ पांग्र	निर्जन ।
त्रहो	আ*চৰ্য্য।	उभ यतस्	উভয় দিকে।
अही वत	করুণা, আহা।	उभयसुम्, उ भर	ग्रेषुस् উভয় দিনে।
प ङ्गाय	শীঘ।	जम्	ক্রোধ। প্রতিজ্ঞা।
সা		उररी, उरी, डब री श्वीकांत्र।	
भा	শ্মরণ, ও-ও।	उषा	নিশা-শেষ।
पा ङ्	मीमा। वाशि। क्रेपंटा	•	জ
अ ।म्	স্বীকার।	ज	ছঃখ।
षा :	বিরক্তি,কোপ। পীড়া।	जम्	গর্ব। ক্রোধ। প্রশ্ন।
त्रारात्	দূর। সমীপ ।	जररी, जरी, व	দ্বংী স্বীকার। বিস্তার
चाविस्	প্রাকাশ্য।	栽	
षाही, पाहीरि	बत् मत्नह। श्रन्नः।		ৰ হ বিনা।
1	T	ऋते	14411
	~		
q	~ থেদ। কোপ।	1	ए
द्र इतरेद्युम्	্থেদ। কোপ। অন্ত দিনে।	ए	ए স্মরণ। সম্বোধন।
	থেদ। কোপ।	ए एकडा	•
इतरेवुस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা।	ए	স্থারণ। সহাধিন। এক সময়ে। একংগা।
दतरेयुम् दति	্থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেতু।	ए एकडा	স্মরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অবধারণ।
इतरेखुम् इति इति	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার।	ए एक ा एतर्हि	স্মরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অক্ধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি।
इतरें युम् इति इति इति इ इत्यम्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এম্পোন	ए एकटा एतर्हि एव एवम्	স্মরণ। সম্বোধন। এক সমস্মে। এক্ষণে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेयुम् इति इति इ इत्यम् इदानीम् इय	থেদ। কোপ। অভ দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ।বাক্যালফার। থেদ। বিশ্বয়।	ए एकटा एतर्हि एव एवम्	স্মরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক্ষণে। অক্ধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি।
इतरेयुम् इति इति इ इत्यम् इदानीम् इय	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এম্পোন	ए एकटा एतर्हि एव एवम्	স্মরণ। সম্বোধন। এক সমস্মে। এক্ষণে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेयुम् इति इति इ इत्यम् इदानीम् इय	থেদ। কোপ। অভ দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ।বাক্যালফার। থেদ। বিশ্বয়।	ए एकडा एतर्डि एव एवभ्	স্মরণ। সম্বোধন। এক সময়ে। এক সময়ে। এক্ষণে। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेगुम् इति इति इ इत्यम् इदानीम् इप इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ। বাক্যালক্ষার। ধেদ। বিশ্বয়।	ए एकटा एतर्हि एव एवम् ऐ ऐ	স্মরণ। সংখ্যধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একংণ। অবধারণ। এইপ্রকার । সম্ভি। সাদৃশ্য। অবধারণ। ই স্মরণ। সংখ্যধন। বর্ত্তমান বৎসর।
इतरेगुम् इति इति इ इत्यम् इदानीम् इप इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই। শেষ। এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। একণে। সদৃশ। বাক্যালফার। থেদ। বিশ্বয়। ই অন্ত।	ए एकटा एतर्हि एव एवम् ऐ ऐ	স্মরণ। সংখ্যধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একংণ। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेगुम् इति इति इ द्वम् इदानीम् इस इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ। এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। একপো। সদৃশ। বাক্যালফার। থেদ। বিশ্বয়। ই অন্ত।	ए एकटा एतर्हि एव एवम् ऐ ऐप्रथमस् क्रो	স্মরণ। সংখ্যধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একংণ। অবধারণ। এইপ্রকার। স্মতি। সাদৃশ্য। অবধারণ।
इतरेगुम् इति इति इ देखम् इदानीम् इष इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই। শেষ। এইছেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফগে। সদৃশ। বাক্যালস্কার। থেদ। বিশ্বর। ব্যর। ব্যর। বিতর্ক। পাদপূরণ।	ए एकडा एतर्डि एव एवम् ऐ ऐथमस् भो भोम्	স্মরণ। সংখ্যাধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একপোন। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ। থ স্মরণ। সংখ্যাধন। বর্ত্তমান বৎসর। বিধ্যাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ।
इतरेगुम् इति इति इ देखम् इदानीम् इष इस्	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই।শেষ।এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ। বাক্যালঙ্কার। থেদ। বিস্ময়। ই অন্ত। বিতর্ক। পাদপূরণ। ক্রোধোক্তি।	ए एकटा एतर्हि एव एवम् ऐ ऐप्रथमस् क्रो	স্মরণ। সংখ্যাধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একপোন। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ। থ স্মরণ। সংখ্যাধন। বর্ত্তমান বৎসর। বিধ্যাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ।
इतरैयुम् इति इति इत्यम् इयानीम् इय इस् चेषत् उचकौस्, अशैस् उत	থেদ। কোপ। অন্ত দিনে। এই। শেষ। এইহেত্। পরম্পরা। এইপ্রকার। এফণে। সদৃশ। বাক্যালফার। থেদ। বিশ্বয়। বিভক ৷ পাদপূরণ। কোধোক্তি। উচ্চ ৷ অধিক।	ए एकडा एतर्डि एव एवम् ऐ ऐथमस् भो भोम्	স্মরণ। সংখ্যাধন। এক সময়ে। এক সময়ে। একপোন। অবধারণ। এইপ্রকার। স্থাতি। সাদৃশ্য। অবধারণ। থ স্মরণ। সংখ্যাধন। বর্ত্তমান বৎসর। বিধ্যাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ। প্রণাধন। স্মরণ।

	क	चतुर्द्वी	চারিপ্রকার। চারিবার।
कवित्	প্রশ্ন। ইচ্ছাপ্রকাশ।	चिरम्, चिरेग	ा, चिराय, चिरराचाय,
क पी	তৃপ্তার্থ।		चिरस, विरे हित्रकान,
कति	কত, কিয়ৎ।		বহুকাল।
कथम्	কিরূপে।	चेत्	यनि ।
	दाचन, कदाचित्, कर् ड ि,		ज
कार्हि	ৰণ্কখন, কবে।	नातु	কদাচিৎ, কখন।
कम्	জাশ। মস্তক ।	जोषम् -	नीत्रव! ऋ थ।
कामम्	যথেষ্ট। অকামান্ত্ৰাতি।		₹
कारिका	মৰ্য্যাদা। যত্ন। পীড়া।		**
बिक् च	কিছু, আরো।	भटिति	শীघ।
	ষিংকি অল, কিয়িদংশ। '		त
किन्तु	পরন্ত ।	तत्	তন্নিমিত্ত, তবে।
कि ष्ठु	সংশয়।	ततस्	, তদনস্তর। তরিমিত্ত।
किस्	কুৎদিত। প্রশ্ন। বিতর্ক।	तव	তথায়।
किसुत	অতিশয়। বিকিন্ন।	तथा	সেইপ্রকার। সাদৃশ্য।
किसु, किं	ৰেন্ৰিতক, সভাবনা।	तदा, तदानी	দ তৎকালে, তথন।
किंवा	অথবা।	तावन्	পবিমাণ। সাকলা।
किल	নিশ্চয়। অলীক। সম্ভাবনা।		পর্য্যস্ত। অবধারণ।
	প্রসিদ্ধি। ঐতিহ।		বাক্যালস্কার।
	অনুনয়। হেতু।	तिरस्	বক্র। অপ্রকাশ।
\$	কুংসিত। পাপ [`] । ঈষং।		অন্তর্গান।
कुतस् किरः	হতু। কোথাহইতে। কোথায়	तिर्थक्	বক্র। পার্শ্ব।
कुच	কোথায়।	đ	কিন্ত। নিশ্চয়। ভেদ।
জুचবিন্	কোন স্থলে।		পাদপূবণ।
के शाके शि	চুলাচ্লা		া দ মৌনী, স্থির।
क	কৈ থিয়ে।	नेधा, नैधम्	তিনপ্রকার।
, काचन, काचि	ৰন্ কোথাও।		द
	ख	दिविषतस्, द	विषात, दविषेत जिति
खबु	নিশ্চয়। বাক্যালস্কার।	`	मि टक ।
	নিষেধ। প্রশ্ন। অন্ধনয়।	दखादिख	वार्धावार्ष्ठि ।
	च	दिवा	फि र्न ।
₹	সমূচ্চয়।সমাহার। অস্বাচয়।	दिष्या	ভাগ্যক্রমে। হর্ষ।
	ইতরেতর। পাদপূরণ।	दुष्ठु	कू, निन्निछ।

दीषा	রজনী।	परमम्	সন্মতি।
द्राक्	भीघ।	परवस्,पर:वस्	্ আগামি তৃতীয় দিনে।
दिधा, देधा	দ্বিবার। হুই প্রকা র।	पराक्	বক্ৰ, কুটিল।
	ষ	पराहि	পূর্ববিতর বংসর।
धिक	নিনা। নির্ভ ্ সন।	परितम्	চারি দিকে।
1441		पदन्	পূৰ্ব্ব বৎসর।
	म ं	परैद्यवि, परिद्यु	র্পরদিনে।
न, नञ्	ना, निरवध ।	पञ्चात्	পরে। পশ্চিমে।
नक्तम्	রাত্রি।	पुमशुनर्	বারংবার ।
ननु	প্রশ্ন। অনুজ্ঞা। অনুনয়।	पुनप्	অপ্রথম,ভূয়ঃ। ভেদ।
	আমন্ত্রণ। অবধারণ।	पुरतस्	मन्त्र्रथ ।
	বিরোধোক্তি।	पुरंस्, पुरस्तात्	
नसस्	নমস্বাব, প্রণাম।	,	সন্মুখে। অতীত কালে।
नवतिधा	নব্বুইপ্রকার।	पुरा	চিরাতীত। ভবিষ্যৎ।
न वति शस्	নকৰুইবার।		निकर्छ।
नवधाः	নয়প্ৰকার। নয়বার।	पूर्वेष	পূর্ব্ব দিকে। পূর্ব্বে।
नवश्रम्	' नय नयुजै । '	पू र्वेद्युस्	পূর্ব্ব দিনে।
नहिं, ना	ंनिरवध ।	पृथक्	ভিন্ন। नीष्ठ।
नाना	বহুবিধ। উভয়। বিনা।	पृष्ठतस्	পশ্চাৎভাগে।
नाम	'সম্ভাবনা। প্রসিদ্ধি।	प्रकास म्	যথেষ্ট। স্বেচ্ছাক্রমে।
	ক্রোধ। স্বীকার।	प्रगे	প্রাতঃকালে।
_	निका।	प्रति	প্রতিনিধি। প্রত্যেক।
नास <u>्ति</u>	নাই, নহে ।	प्रत्यक्	পশ্চিম দিক্, দেশ,
निकषा 💮	নিকটে।	,	কাল। পশ্চাৎ।
वितराम् -	অব্খ। অত্যন্ত।	प्रत्य इ.म्	প্রতিদিন।
नि स्यदा	नर्सना ।	प्रत्युत	বৈপরীত্য।
	स্কুড, অর।	प्रसम्ब	হঠাৎ। বলপূৰ্ব্বক।
T	প্রশ্ন বিকল্প।	प्राक्	পূর্ব দিক্, দেশ,কাল।
नूनम्	নিশ্চয়। বিতর্ক।	प्रातर्	প্ৰভাত।
भी	निरयस, ना।	पादुस्	প্রাকাশ্য। নাম।
ৰ ভূ	নীচ, স্থগা।	प्राध्यस्	আ'মুক্ল্য।
	प	प्रायशस्	বাহল্যরূপে।
पञ्चधा	পাঁচপ্রকার। পাঁচবাব।	प्राय स ्	বাহল্য।
परस्	কেবল। অনপ্তর।	प्राक्ते	প্রভাতে।

प्रेत्य	পরলোকে।	यया	যেপ্রকার। সতা।
फ			অনতিক্রম। সাদৃশ্য।
" फट्	মস্ত্রাংশবিশেষ। অনু-	यद्यातयम्, यद्य	ायथम्, यथाईम्, यथावत्,
415	কার শক।	यथास्वम्	যথাযোগ্য, যথার্থ।
	4.14	यथामिति	শক্ত্যস্পারে।
व		, यथं फ़ितन्	ইচ্ছানুকপ।
बलव त्	অতিশয়।	यदा	যথন। যেহেতু।
महग्रस ्	ৰাহুল্যরূপে।	यदि'	সন্তাবনা। পক্ষান্তরে।
स	•	यावत्	পরিমাণ। সাকল্য।
*			পর্য্যন্ত । অবধারণ।
भगीस ्	সংখাধনভগবন্।	युग्प द	এককালে।
भूय स ्	ৰাহুল্য। বারংবার।	₹	
भूरि **	<u>বহু।</u>	रहम्	् निर्ज्दा ।
भूरिश्रम् स्टेशम्	ৰহুবার। সংক্রিয়া	160	, । नजारम ।
^{જુગ} મ્ મી, મીમ્	অতিশয়। বহুবাব।	व	
मा, माष्	সম্বোধন—ভবন্।	ध	मांृभा ।,
म		वत्	मृह्रभ । ∙
मंत्रु	শীঘ। অতিশয়।	वत	থেদ। হর্ষাবিশায়।
म ल्	भनीय।		অনুকম্পা। আমন্ত্র।
मनस ्	তৃপ্তার্থ।	वरम्	উৎকৃষ্ট।
मनाक्	ঈষৎ। আস্তে আস্তে।	वषट्, बौषट्	হবিদীন-মন্ত্র।
मन	মমতা, মারা।	वहिस्	বাহির ।
मा, माधा	निन्ता । नित्यक्ष, ना ।	वा	বিকল্প। বিতর্ক।
निष्यम्	পরস্পর। নির্জনে।		সমূচ্চয়। উপমা।
मिष्या, सुधा	র্থা। নিফল।		বাক্যপূরণ।
मुष्टामुष्टि, मुष्टीम्	ছি কীলাকীলি।	विधिवत्	यथाविषि ।
सङ्ख्	বারংবার।	विना	ব্যতিরেকে।
स्वा	মিথ্যা ৷	विश्वक्,विश्वक	সন্ধতা। সর্ধব্যাপী।
य		ब था	নিরর্থক। অবিধি।
यम् -	যেহেতু। যেমন।	वै	পাদপূরণ।
	যাহাতে।	য	
યત પ્	যেহেতু। যথন।	•	
`	८यमन ।	श्र ैस _्	ক্রমশঃ, অরে অরে।
यव	যেখানে।	भ श्वत्	নিরপ্তর। সহিত।

श्चान्तम्	নিবৃত্ত, বারিত ।	4 8€	অতিশয় সুনা র।
य त्	শ্ৰদ্ধা।	स्थाने	উচিত।
य स ्	আগামি দিনে।	स्म	অতীত। পাদপূরণ।
•	स	खतम्	নিজ হইতে ।
संवत्	বৎসর। বিক্রমাবদ।	खधा	পিতৃদান-মন্ত্রবিশেষ।
सक्तन्	একবার। সহিত।	खयम्	निष्क ।
सना	সহিত। '	खर	স্বর্গ। প্রলোক।
सदा, सना	नर्सन। ,	खसि	শুভ। আশীর্কাদ।
सवस्	তৎক্ষণে, তথনি।	c	পুণ্য।
सपदि	শীঘ্ৰ, তৎক্ষণে।	खाहा	হবিদান-মন্ত্রবিশেষ।
समन्ततस्, स	मनात् प्रकल पिटक।	खित्	প্রশ্ন। বিতর্ক, সংশয়।
समम्	সহিত। যুগপং।'	• `	
समया	সমীপে। মধ্যে।	9	₹
समुपयोषम्	ভাগ্যবশুতঃ। হর্ষ।		
सम्प्रति	এক্ষণে।	ह •	সম্বোধন। পাদপূরণ।
सम्यक्	সতা। স্থলর। সমুদয়।	हंडी	मत्याधन ।
सर्वतम् ।	• সকল দিকে।	इ ञ्जे	ভৃত্যার প্রতি সম্বোধন।
सर्वव	িসকল স্থানে।	इ रહे	নীচার প্রতি সম্বোধন।
सर्वया	সকলপ্রকারে।	इन	থেদ। হৰ্ষ। অনুকম্পা।
सर्वदा	• সকল সময়ে।		বাক্যারস্থ ।
सहसा	হঠাৎ, অতর্কিত ।	इला	স্থীব প্রতি সম্বোধন।
साकम	সহিত ।	हा	বিষাদ। শোক। পীড়া।
साचान्	প্রতাক। তুগা।	हि	হেতু। অবধারণ।
साचि	বক্র, ন ত।		পাদপূরণ।
सामि	অর্দ্ন। নিন্দিত।	हिरक्	ভিন্ন। মধ্যে। নিকটে।
साम्प्रतम्	সম্প্রতি। উচিত।	हिहि, ही ही	আহলাদ। হাস্য।
सायम	সন্ধ্যাকাল।	ही	বিশ্বয়।
सार्डम	সহিত।	इन, इन	স্বীকার। পরিপ্রশ্ন।
उ.च.् सुचिग् म्	ৰহুক'ল।		বিতক ।
सुतराम्	অত্যন্ত। অবশ্য।	हे, हेहे, है, ह	া সম্বোধন।
Anvid	অগত্যা।	च्च स्	গত দিনে।
	1110711	`	

प्र-परादयी विश्वतिक्षसर्गाचाव्ययशब्दाः ।—१०म-सूत्रं द्रष्टव्यम् । एतक्रिता चित्र अव्ययशब्दाः वहतः सन्ति ।

४ष:। खाद्यन्ताध्याय:।

१म पादः-स्त्रीतः।

२८१। स्तियामत त्राप्।

(स्तियाम् ७।, चतः ५।, चाप्।१।)।

स्त्रीलिक्ने खितादकारान्तादाप् स्थात्। मेथा, सर्वा। अ

२५०। इसादा। (इसात्रा, वा ११)।

स्त्रियां इसन्तादाप् स्थाहा। वाचा वाक्, दिया दिक्। 1

^{*} लिङ्गसाधनयोग्यानिप भावादीन् काठिन्यभयात् स्त्रीलङ्गपादे नीक्वा पृथक् वदित स्त्रियामित्यादि । लिङ्गामां स्त्रीतिविवचायां स्यायुग्पत्तेः प्रागेव यथासभावमाबादयः स्थः, त्यदादेनु स्यायुग्पत्तेः पश्चात् (१३३) टेर्त्ते श्वदत्तावादाप् स्यादिति, भातप्व त्यदादे-ष्टेर्त्ते सत्याप् (१५०,२४०) इति स्त्रयमुक्तम् । भावीपीः पकारम् (१४८) भावीव्-भसादित्यादिषु गीपा-श्रीपा-श्रभतीनामप्राप्तये विश्रेषणार्थः । जपसु पकारः (४६३) स्पकत्ये चंबूप् इत्यादौ इस्तादेः प्राप्तये विश्रेषणार्थः । मेधा मेधधातोः (११५४) भप्रत्यये, मेध इति नित्यस्त्रीलिङ्गादाप् । पाचिकस्त्रीलिङ्गन्तु—सर्वा । पाणिनिः ४।१।४ । स्ट्रा भामकत्रपूर्वा इति वार्त्तिकम् ।

[†] मिष्टप्रयोगातुसारेणैव स्थादा न तु सर्व्वसात् इसनादिति। यथा— चुधा वाचा दिया कुधा विपामा च साजा कना। गिरोणिडा देविवया, पचे चुध्-वाग्-दिगादयः॥ (भागुरिमतम्)। "गिरादेवां" इति प्रमासः। "छिण्डादेरिक्षेके" इति कमदीश्वरः। एवं वाम्रक्तस्य व्यवस्थ्या, दिपात् चिपात् चतुष्पादित्यादौ न स्थात्, दिपदा चिपदा चतुष्पाद स्वत् इत्यादौ तु स्थात् (पाणिनि: ४।१।८)। स्वि किं, दिपदो स्त्री।

२५१। मनो डाप्। (मनः ५1, डाप्।१1)।

स्त्रियां मनन्तात् डाप् खादा। सीमे सीमानी, पामे पामानी।

२५२। हेऽन:। (हे ७।, अनः ५।)।

स्त्रियां हे स्थितादनन्तात् डाप् स्थादा। बहुयज्वे बहुयज्वानी। 🕆

२५३ । द्रेप् चाम्वस्थात् (दिप्।रा, च।रा, भनवस्थात् प्रा)।

मस्यवस्थान्यपरानन्तात् हे स्थितात् स्तियामीप् डाप् च स्थादा। षदुराज्ञी बहुराजी वहुराजानी । इ

मन्भागान्तात् डाप् वा स्थात्, डपावितो । सीमें इति सिधातीः, इमिन, पामें इति पाधातीं मैनि, सीमन् पामन् इति लिङ्गम्, आस्यां डापि श्रीविभक्ती सीमें पामें इति । पर्व सीमानी पामानी । सीममीमें स्तियाम्भे, पामपामा विचर्षिका (रीग-विश्वषः) इत्यमरः । सिविभक्ती विकल्यपचे रूपमान्यात् नीदाह्वतम् । एवं द्दातीति सामा, अवापि दामें दानानी इति । अपिच सुधर्में सुधर्माणी, वहुपिटमें वहुपिटमानी । 'मन इति नेदं प्रत्ययद्य कं किन्तु वर्षयहरू, क्षेत् अतिमहिमानी अतिमिन्ने'' इति गोथीचन्द्रः । पाणिनः ४।१११ — १३ ।

[†] समंयोग-वसंयोग-परिश्वताननादेवायं विधि:, तदन्यत्र परस्वेश वाधितत्वात् । बद्धवो यज्ञानी यथीः समयोक्षे सभे इति विग्रद्दे चहुयज्ञे, पर्चे (१६४) बहुयज्ञानी । एवं बहुबह्माणी, सुधर्मो सुधर्माणी इत्यादि । पाणिनि: ४।१।१२ ।

[‡] मच वच व्य स्व तत् स्व वेति स्वसः, न स्वसः चस्यसमातः। मव इत्यनेन मवान उचिते। व्याख्याया मस्यवस्थान्यपरान्नाहिति, मस्य वस्य तो ताभ्यामन्यः सस्यवस्थान्यः, तद्यात् परीऽन् मस्यवस्थान्यपरान्, सीऽने यस्य तस्यादिति विषदः। मसंयोग-वसंयोगभिन्नवर्णात् परी योऽन् कैंदनादीप् चकारात् डाप् च स्थादा। वहुराद्यौ इति वहं वहुराजन्यन्दात् चनेन देपि (११०,४६) वहुराजी-सन्दात् चो। पत्तं डापि (१२६) वहुराजा-सन्दात् चो (१४८,२३) = वहुराजी। समयोग्यातिय नानस्थितिः। एवं डष्टपूषीग्रा डष्टपूषी डष्टपूषाणी, सुदास्यौ सुदामे सुदामानौ स्त्रियौ इत्यादि। (२०६) न मन्संस्थित्यन देप् नविषस्त वहुनीहरस्यन चेतः। तत्र वहुयुवा पूः डष्टमचवा स्त्री इत्युभयन देप् नस्यात् डाप् तु स्थादिवित चक्रस्यम्। पाणिनः ४।११२८, ६।४।१३०।

२५८। काष्यनाशीरकेऽदिदयत्ततिचिपादेः।

(कापि ७, भनाभीरके ७, भन्।१।, प्रत्।१।, भयत्विपादे: ६।)।

श्रामीरर्थानवर्जे कापि परे चकार इकारः स्थात्, न तु बत्-तत-चिपारे: ।

सर्व्विकाकारिका। ग्रागीरकेतुजीवका। यदादेसु यका सका, चिपक्का धुवका चटका। *

२५५। देवसूतपुचछन्दारखन्नाजभस्ताधुत्य-(देश--धुत्यक्यी: ६॥, वा ।१।) । क्यो वी।

दादे र्घुत्यवर्जयोः कययोश्वाकार दकारः स्थादा काणि।

^{*} कयुक्त चाप काप तिस्मिन्। चाशिषि चकः चाशीरकः, नास्ति चाजीरको यत्र मीऽनाशीरकसासिन् कापीत्यस्य विशेषणम् । याद्यग्जातीयस्य विश्रतिषेधी विधिरपि ताहगुनातीयस्थेति न्यायात् भाशीरकवर्जनात् कतककारस्य ग्रहणं न तु प्रकृते:, तेन तक-धाती: (१९३) पवादिलादिन तका, शक्षाती: शका दूखादी न इकार: स्रात्। मधेय-मित्यचतुमानिका इति चादिश्वात् क्रतककार एव । (मामकनग्कथी दपसंख्यानमिति यार्तिकम् ।) सर्व्विकीति सर्वा इत्यस्य (२०८) टी: पूर्वे अक्ष् च सर्वका इति कापि परे सर्वस्य पकार इकार:। कारिकेति करीति या इति वाक्ये क्रधाती: (८८०) सकप्रत्यये चापि कारका इति कापि चकार इकार:। जीवकेति जीवतादिति वार्क्ये (१००६) अर्थिषि चकः, पश्चात् स्त्रियां कीवका इति, आर्थीरर्थिभिन्ने जीविका इत्येव । यका मका इति या सा इति पददयस्य (२०८) टी: पूर्वे अनि इत्पम्। "चिपका धुक्काचैक करका धारकंष्टका । एड्काचटकाद्यास पितृणामष्टका भवैत् । उपयकाधित्यका च तारका भटगंशयो । वर्णका वस्त्रभंदे स्थान श्कृती वात् ्रष्टकेति द्रष्ठाती:, ऋटर्कति अग्रधातीरौगादिकसक: ''द्रष्टशिश्यां तकन्''। चष्टका-तारका-वर्षकानाम् अन्यस्मिन्नर्थे पर्षिकत्यादयः। चष्टिका खारी । वर्णिका नटाटौनाम् । दीपद्गायाम् वर्त्तिक्षेत्रेव । पाणिनि: ७।३।४४,४५, वार्त्तिकानि घ। ''स चाप्सप: परी यदिन भवति'' इति किं, ''बहुपरिवाजका नगरी'' इत्यत्र ''बहवः परित्रामका ऋस्यामिति विग्रद्य सुबन्ताद्यं टाप्'' इति पाणिनिटौका ।

दिने दके, चटकिका चटकका, श्राधिका श्राधिका । ध्रत्ययोस्य—नायिका क्षत्यिका। *

२५६। वाचापोऽनुत्तपुंस्त्रस्य।

(वा ।१।, चात् ।१।, च ।१।, चापः ६।, चतुक्तपुंस्कस्य ६।)।

श्रापः स्थाने जातोऽकार द्रदीच स्थादा कापि न तूत्रपुंस्कस्य। गङ्गिका गङ्गाका गङ्गका। उत्तपुंस्कस्य तु श्रुस्त्रिका। १

इति दिश्व्दस्य टेरलं रूपम् । एष इति एतदः सौ रूपम् । त्यइति नच प्रत्ययस्य संज्ञा किना (५२५) त्यंत्रयनेन क्रतस्य त्यप्रत्ययस्य ग्रहणभा पथ त्यस धत्यौ, न धत्यौ षध्यौ। कच यच का ऋष्ययो:काषध्यका। इ.४ एष४। सृतय पुत्रय विन्दार४ स्त्र ज्ञाय अजय भस्ता च एपां भसाहार: हैपमृतपृत्र बन्दारस्त्र जाजभस्तं, तच अधुत्यका च तौ तथी: । द्वादीनां नवानां प्रकारस्य प्रकारः स्थादा कापि, घातोः ककारयकारौ दिला त्यस्वरूपस्य चयकारं हिला अन्योयो ककान्यकारी तयारकारस्य च इकारः स्थादा कापीलार्थ:। दिक़ी दकी इति दिशब्दात् श्री कर्ते (१३३) टेग्ले, (२०८) टे: पूर्वे पिक, (२४८) चापि इका इति स्थिते अनेन वा अकारस्य इ:। एवं एषिका एषका, स्तिका मृतका, पुनिका पुनका, बन्दारिका ब्रन्दारका द्रत्यादि । भस्त्रिका भस्त्रकेति, भस्ता चर्माप्रसीविका इत्यमर:। भस्ता एव (४३३) स्वार्थे ककारे, (४३०) इस्ते, भस्त्रका इति स्थिते चनेन वा इकारः । भस्त इत्यकारान्त इति वार्धिकम् । एप्रांगौगर्लऽपि बहुन्दिका बहुखका इत्यादि। चटिककीति चटधातीरीणादिकांऽकः, ततः चटकामञ्दात (४३३) खार्चे जाकारादि। आर्थिकीति ऋधाता: (६०१) व्यक्ति भार्याग्रव्हात् खार्ये जाका-रादि। उभयत्त वा अकारस्य इ: । नाथिकीति नीधाती: (१९०) सानप्रस्थि न।यक-शब्दात भाष, धातुसम्बन्धियकारलादस्याप्राप्ती पूर्व्वण नित्यम इकार:। धाती: कका-रस्य यथा— चक्रधानी: एकप्रत्ययं चाक्रिकत्यादि पूर्व्वेण नित्यम्। क्रात्यकंति का भवा पति वाक्ये (५२५) क्राचा, तत. स्वार्धे (४३३) काकारे कालाका पति स्थिते पूर्वेण मिला-मिकार:। एवं तचिवका दाचिणात्यिका भमात्यिका प्रत्यादि। व्यव्यक्षपनिषेधात् भारुश्यिकाभारुत्यका इति । पाणिनि: ७।३।४६,४७, वार्त्तिकचा

[†] अ.क. एमान् र्यन्यत् उक्तपृंस्तं, न उक्तपृंस्तः मनुक्तपृंस्तं (लिङ्गं) तस्य। भाषः स्थान् (४३०) केऽकः स्व इत्यमिन जाती यीऽकारसास्य स्थाने इत्तार भाकारय स्थात् वाकापि, पचऽकार्यस्थातः, न तु उक्तपृंस्त्रशब्दस्य। गङ्गाएव इति वाक्ये (४३३,४३०)

२५७। द्विन्नञ्चाचनदादेरीए।

(ष्-ट्-ज-स-इत् न् ऋ ऋञ् वाष्ट्र नदादे: ५१, ईप् ११) ।

षकारित-ष्टकारित उकारित च्हकारितो नान्ता-दृदन्ता-दृञ्ची वाङी नदादेश ईप स्थान स्तियाम । *•

२५८। ययोलीपोऽयुक्तौ पौ।

(ययो: ६॥, लीप: १।, अ-सु-त्तौ ७।, पौ ७।)।

गङ्गका इति स्थिते घनेन अकारस्य इकारः घाकारय, पचे घकारस्थितिः। एवं दुर्गिका दुर्गका इयादि । यभिकेति पूर्विष नित्यसिक/रः। यभः पुमान् इति च भवतीत्ययसुक्तपुंस्कः ग्रदः। पाणिनिः ७.३,४८,४८।

* ष च ट च च स स्थ हर. ते इती येषां ते हित:, तेच नव स्थ प्रञ्च च बाह् च नदादिश्चेति तकात्। नकार-स्वतारयोः केवलयोरमभवात् तदन्तयार्थहणम्। ध्वन् स स्वस् इत्यादौ धातां ककारितस् नाव ग्रहणं ''धातो क्षितः प्रतिषेधः'' इति वार्त्तिकात्। प्रज्ञ पकारेत्-टकारेत्-नदादीनां सुख्यानामेव ग्रहणं, तेन बहुवैणवा, बहुम्पणा, बहुनदा इत्यादौ न स्थात्। प्रत्यां गोणानामित, तेन श्रतिविद्षौ, श्रतिपचन्ती, श्रतिदिखनी, श्रतिकाती, प्रतिपतिचो, प्रतिकाती, प्रतिपतिचाल्यहो इत्यादि स्थादेव। नदादिय (गौरादिगित प्राणिनः)—

नदी मद यर योरी गीर चल भप प्रवाः। दर कन्टर तकारा-सक्षः कथ-काकिणौ। वदरामलकौ स्द-इरोतक-विभीतकाः। गवी देवां धातकय मातामह-पितामहौ। द्रीयः स्यूणाढ़कौ पाव-कीवातक-पुटामटः। [अयः स्यूण दति पाणिनः, चायस्यूण इति कमदीयरः।] कवाउमावटो नाटो नटो भीट-पटौ यतः। वराटः प्रज्ञुलः मूचः भ्रची मख्डल-कुष्डलौ। स्वीहिताष्डाऽय कुमाख मठ पुष्कल पिप्पलाः। [स्वीहाख इति पाणिनः।]

कदल: कन्दल: पिण्ड-काकली ग्रह्मकी हपः।

दवर्णावर्णयोलीप: स्थात् श्रयावती पी परे। घ--वैषावी वराकी। *

२५१ काङ्यची चानात्यपत्यव्यायस्य । (का-छा-चो ०), च ।११, अनाति ०।, पपत्यव्यास्य ६१)।

अपत्यार्थ-णास्य लीप: स्यात् ऋयावती पी परे, का-छा-ची च, गार्गी। 🕆 नत्वाकारे।

> षनजुत् सूर्यं-कोली च पिणक्षातस-वेतसाः। मालतः ग्रम-सूर्वीच विल्व मख्डप कंकयाः । मडुली मह-मण्डी च सुषद: पृथिव: पृथु: । च्छ्यो मनुष्यी मतस्य सुक्तयी गव्यी हयः। महत् बहत् तरः ऋषः एतदाचा नदादयः ।'प्रः। (एतिइक्षा छानेकेऽपि मौरादौ पठिता: पुन:।)

पुचग्रब्दोऽपि नदादाविति क्रमदीश्वरः । पाणिनिः ४।१।५,६,१५,४१,६१,"ऋचियोपः संख्यान"मिति वार्त्तिकञ्च।

मच ८३ संख्यको नदादिः पठितः, संचिप्तसारे तु ११० संख्यकः। पाणिनीयो भौरादिस् १५० संख्यकः।

- इस भय ली थी, तथी: ययी: । युस किय युक्ती, न विद्येते युक्ती यच पौ सी-ऽयुक्तिस्तिसन्। अत्र अत्र इ.स. इ.ति समासे एलें।प इ.ति क्रते एकारलीपभनी जायते त्रत: ययोरिति । (४००) प्रेष्ठ: श्रेष्ठ इत्यादी प्रय इत्यादादेशस्य चकारान्तनिहेंगान् न श्रकारलीप:। पारस्त्रीर्णय इत्यत्र तु (४१६) दिपदविद्विविधानात् न र्द्रकारलीप:। अधुक्तौ किं ऊर्णायु: रामेण इत्यादि। घ--इति षकारेत्प्रव्यस्य उदाहरणज्ञापकम्। वैचावी, विणादेवता यस्याः इत्यर्थे विणाशब्दात् (४३३) विकारमञ्जेति चाप्रत्यये वैचाव-श्रव्दादीप्। वराकी - बधातीः (११११) भिन्नजल्पेति याकप्रत्यये वराकश्रव्दादीप्। पाणिनि: ६।४।१४८।
- † काथ डाय चिथेति काङाचितिकान्। न चात् चनात् तिकान्। चपली गार चपत्यच्यातस्य। चकारात् युतिवर्जे पो च। गार्गो इति गर्गस्य स्व्यपस्यम् इति चप-व्यार्थे (४१५) भी करो, गार्यभन्दात् (१५०) वकारेच्यादीपि, अर्गन पी परे चारलीप:।

२६०। सूर्यागस्यस्य तिष्यपुष्यस्य वण्यमतस्य-स्येयेपो भव्णे ईपि यः।

(स्थांगस्वसः ६।, तिष्युष्यसः ६।, श्वामस्यसः ६।, ईविपोः ०॥, भर्षे ०, ईपि ०।, यः ६।)ः।

एषां यस्य लोपः स्यात् ईयेपोः पर्योः, नचत्रणो ईपि च ।

सौरी त्रागस्ती चातुरी । क्ष

ट—नयी भूषणी। उ—विदुषी श्रीमती भवती। (२४५) श्रप्यनो नित्यम्, ऋ—पचन्ती । (२४४) श्रादीपीः, तुदन्ती तुदती, भान्ती भाती। न—दण्डिनी श्रव्यंती राज्ञी श्रनी, मघवती मघोनी। ऋ—कर्नी क्रोष्ट्री। श्रन्च-प्रतीची प्रत्यञ्ची, तिर्यो तिर्थेञ्ची, श्रमुमुद्रेची श्रदमुद्रेची, उदीची।, वाइ—भारौडी, खेतौही खेतवाही, श्राव्यूही। नदी मसीं गौरी। १

को — गार्ग्यीमक्कित (८४३) गार्गीयति । छो — गार्ग्य इवापरति (८४८) गार्गायते । चौ — चगार्ग्यो गार्ग्यो भनति (४८५) गार्गीभवति । विभक्तौ — गार्गे इत्यादि । चाकारे त गार्ग्याययः । चपत्य कार्यति किं, सुभगस्य भावः सौभाग्यं, सौभाग्यमिक्किति (८४३) सौभाग्यीयति । पाणिनः ६ । ४ । १५० — १५२ ।

^{*} म्र्यांगस्ययो रोये द्रंपि च परे, तिष्यपुष्ययो नैजना यैनिहिते णो परे, णा मन्ययो । ौपि परे यस लोप: सादिल्यं:। णा इति चपला थे भिन्नस्य यहणं, पूर्व्वमृत्ते तस्य यहणात्। सौरीति मूर्यस्य भिल्ल्यं (४३३) णो सौर्यं इति स्थिते (२५०) वित्तादीपि चनेन यलोप:। एवं चानसी। चानुरीति चनुरस्य भावः इत्ययें (४३३) णो चानुर्ये इति स्थिते (२५०) द्रंपि चनेन यलोप:, एवन् भौचिती मैनी सामगी। पाणिनि: ६।४।१४८, वार्तिकायस्य ।

[†] ट इति टकारेन् जदाक्रियते इत्यर्थः। चयी घयाणां पूरणीलर्थे (४६१) जि-मन्दान् चयट्। सूचतेऽनर्थति सूघधातीः करणवाचे (११३४) चनट्, टिच्लादीप्।

गाच खसादनो रङीप वा तु है।

(णच्खसात् प्रा, वन: प्रा, रङ् ।१।, र्द्रप् ।१।, वा ।१।, तु ।१।, हे ०।)।

णादचः खसाच विह्नितात् वन देप स्थात्, वनी रङ् च स्तियां, हेत्वा!

श्रवावरी धीवरी हरिदृष्त्रशी, बहुधीवरी बहुधीवा । *

छ इति उकारित छदाक्रियते इत्यर्थ:। विदुषीति विद्धाती: शतः, (११०३) शतः स्थाने क्षमः, विद्यसभव्दात् उदित्त्वादीपि, (२२१) वस्थाने उ:। श्रीमतीति श्रीरस्यस्या इति वाक्ये (४४१) श्रीभव्दात् नेतः, उदित्वादीप् । भवतीति भाषातीरीणादिकी डवतः,भवत् भ्रब्दादीप । फ्राइति ऋकारित छदाहरणम् । पचन्तीति पचधाती: (११००) भ्रतः। तुद्धातोः भाधातोय ग्रत्यप्रस्ये विकल्पेन नृष्। न दृति नाल्तस्यस्यंः। दण्डिनीति दण्डोऽल्यस्या इति वाक्यं (४४४) इन्, प्रर्वतौति पर्व्वन्थव्दात् नान्तलादीपि (१८५) तुङ्। राजन्शव्दाटीपि (११०,४६) राजीति। ग्रनीति यन्मव्दादीपि (१८४) बस्य छ:। सद्यवभग्रव्दादोपि (१८१) तृडो विकल्पः, विकल्पपचे (१८४) वस्य छ:। ऋ इति ऋदलस्थेत्यथं:। कर्नीति करोतियामादति क्रधातीः (१.१०) तन्, तती क्टदन्तलादीप। क्रीष्ट्रीति क्रीष्ट्रभव्दस्य स्त्रियां (१३६) तुन: स्थाने तन, तत: ईप। अन्च इति अन्चधाती: किवन्तस्थेत्यर्थ. । प्रतिपूर्व्वकात् अन्चधाती: (१०३२) किपि (५६७) नलोप, प्रत्यच्ग्रव्दात् र्द्गीय (२२४) प्रतीची । पूजार्थे (५६८) नलीपासावी प्रत्यचग्रन्दादीपि प्रत्यची। तिर्य्यचग्रन्दादीपि (२२५) तिरयी। तिर्ययचग्रन्दादीपि तिर्याची । असुमुयच अटमुयच उटच शब्देश दूपि (२२५) असुमुर्देची अटमुर्देची छदौधी। वाह इति विणन-वहधातीरित्यर्थः। **भारं** वहतीति (१०२८) विण्-प्रत्यये भारवाहमञ्दादीपि (१९८) वा स्थाने भौ। श्वेतवाहमञ्दादीपि, वा भौ। शालिवाइश्रव्दादीपि(१८०)वा-स्थाने ऊ:। नदादेश्दाइरणमाइ नदी, सस्राश्रव्दादीपि, (२६०) भनेन यलीप:। (२६३) जातेरत इत्यच यकारीङवर्जनादप्राप्ती नदादिलादीप्। गौरप्रव्हादीपि गौरीति।

अ गानात पजनात खमनाच घाती: पर: (१०३२) वामुसिसियनेन विहिती यो वन्प्रत्ययक्तमात् ईप्सान् स्त्रियाम्, ईपि सति वनी रङ्चस्थान्, बहुनीकी त २ उडीपी वास इत्यर्थ:। अपवावशीति अधिधाती: (१०३२) वनिषि, (१०३१) णकारस्य भाकारे(३५) भीकारस्य अविभवावन् इति स्थिते भनेन द्रेप्रङ्च। भीवरीति

२६२। सञ्चोध:संख्यादिदामवयोऽर्घन्नायनाह्वे।

(स् ।१।, नः १।, च ।१।, कधम्-मङ्गादि-दाम वयोऽर्यं हायनात् ५।, हे ७।) ।

जधसः सङ्गापूर्वात् दान्नी वयोऽर्ध-हायनाच ईप् स्थात् हे, सस्य च नः स्थात्। पीनीभ्री हिदान्नी दिहायनी।

२६३। जातरतो ऽस्ती-युङ्-सत्काग्डप्राक्-प्रान्तग्रतैकादिपुष्प-संभक्ताजिनैकग्रणिपग्डादिफल-नादिमुलात्। (जाते: ४१, प्रतः ४१, प्रस्ती- स्लात् ४१)।

धाधातोः (१०३२) क्वांनिप (६१२) जी, धीवन् इत्यसात् ईप्रङ्च, एवं विभाव-रीत्यादि। हारहयरीति इरिंपग्रति या इति वाक्ये हिन्द्यधातोः क्वांगेष हरिहयन्, विनिषी वक्षारस्य दन्यत्वेन सम्परत्वासावात् (१५४) मण्ड्। तस्त्रादीप्रङ्च। वहधीवरीति वहवी धीवानः (केवनाः) यस्यां मयानिति वहब्रोही ईप्रङ्च, ईपी-ऽप्राप्तिपचे रङीऽप्यसावः, एक्योगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तः सह वा निवृत्तिरिति त्यायात्। पचे—बहुधीवन्-सि (१४८,१६४,११८) वहुधीवा। णच्यसात् किंथच्या। पाणिनः ४।१।०, वार्षिकद्यञ्च।

• वयः त्रषां यस्य स वयोऽषंः सवाभी हायनप्रति वयाऽष्येहायनः, हास च वयीऽष्येहायनम्न तौ, सङ्गा भार्दिययांभी सङ्गादी, ता च तौ हासवयोऽयंहायनौ चिति
सङ्गादिहासवयोऽयंहायनौ, जधम च सङ्गादिहासवयोऽयंहायनौ चिति तसात्। जधमः
सङ्गाप्वेदासः सङ्गाप्वेवयाऽयंहायनाच स्त्रियामीप्, बहुवाहौ सस्य नः स्यादिति
सभवाद्धस एव। हे इत्यस्य पुनक्पादानं परसूच निश्चययंन्। पौनीभ्राति पौनम् जधा
यस्याः सा गौः, पौनीधस्थव्हादीष् सस्य च नः। इ हासनौ (रज्ज्षौ) यस्याः सा
विहास्ती गौः। भसङ्गादेसु सहाभे सहामानौ इति (२५३) पूर्वेष वा स्यात्।
दौ हायनौ वया यस्याः सा विहायनौ, विवर्भ गौः। भरङ्गादेसु गतस्याना ।
वयोऽयः तिं, विहायना भाषा। वयसु प्राणिनौ गतपरसायः। हे इति तिं - जभीऽतिकात्ता भत्युषाः। पाणिनः ५।४।१३१, ४।१।२५ —२०। अव "संख्याव्ययादर्डीप्"
इति प।णिनिस्वेष कथस्थव्दोऽपि संख्यादि व्यादिष गरद्यते, तेन हृ।भी, भ्रत्थूभा,
दिविधोभी इति। भत्यत्व वीपदेवन सामान्यत एव कथस्थव्दः प्रथमं प्रयुक्तः।

जातिवाचिनीऽकारान्तात् स्तियामीप् स्यात् न तु स्तीयुङादेः।
मृगी हंसी भीतपाकी। स्तीयुङादेसु—मिचका वैध्या सत्युष्पा
संफला अमूला। जातेः किं—मन्दा। *

श्राक्ततिग्रहणा जातिर्लिङ्गानाञ्चन सर्वभाक्। सक्तदाख्यातिनर्गाह्यागीत्रञ्च चरणैः सह॥ १०

स्ती निलस्त्रीलिङ:। य उङ्यस्य स युङ्। सच का ख्रच प्राक्च प्रान्यः शसच एक शते भादयी यस्य तत् सत्का गड़िपाक प्रान्त शतैकादि, तच तत् पुण्यचेति तत्। सम्च भस्ताच त्रजिनञ्च एकथ ग्रसथ पिन्छर्यते चादयी यस्य तत् संभस्ताजिनैकग्रय-पिण्डादि, तच तत् फलचेति तत् । नञ्चादिर्यस्य तत् नादि नादि च तत् मूल-र्चिति नादिमुलम्। ततः स्त्रो च युङ् च सत्काख्याकप्रान्तप्रतैकादिपुषयः संभस्नाजिनैक-ग्रणपिण्डादिफल्ञ नादिसूलचेति । पथात नञ्चनासे भस्त्रीयुङ्सतकाण्डपाक्पानः श्रतैकादिपुषसंभस्ताजिनैकश्रणपिष्डादिफलनादिमूलं तथात्। सगनातिः स्त्री सगी, इसजाति: स्वौ इंसी । शौते पानी यस्या: सा भोतपानी, श्रीवधिविभेषः । नाति-वाचिनी सुख्यादेव दूप , तेन वहस्था भूमि: श्रवाह्मणा पुरीत्यादी न स्थात्। श्रीतपाकी-त्यादिष्तु गौणदशायामेव नातित्वम्, अतीऽत नातेम् व्यत्मेव। नित्यस्तीलिङ्गानु भविका बलाका इत्यादि । युङ्कु वैद्या चित्रया । ऋष्यस्यगवयादीनां युङ्खादशाधी गदादौ पाठादीप्। प्रयात्तु सत्पुष्पा काण्डपुष्पा दशादि। एभ्यः किं, शङ्कपुषी चौरपुषी। अजातीलुबहृपृषा लता। फलान् संफला भस्ताफला, भस्त्र इत्यकारालीsfप वार्चिके, तेन भक्तप्रला। एवं विफला श्वेतप्रला। एथ्यः किं, रक्तप्रली। **भ**जाती सुबहफला। नादिमूलानु असूला। नञ्**पूर्ञनिषेधात् शतसू** बीत्यादि सकति। षजातील् टढ्मूला। मन्दा इति मन्दगुषयुकास्त्रो जातिलाभावात्र ईप्। पाणिनिः ४।१।६३,६४, वार्त्तिकदयस्य। अपन सूर्व कलापसुपद्मसतानुभारेण प्राक्षुणा इत्थेव धतं बीपदेवेन ; वार्त्तिके तु भामान्यत: अच् (अन्च इति क्रमदीयरः) इत्युक्तम् ; चन्तर्व प्राकृपृषा प्रत्यकृपृषा इति भट्टीजिदीचितः, ऋवाक्पृषा इत्यपि कमदीचरः। संभस्त्रेत्यच च एक्कब्द: घधिक इव प्रतीयते ''संभस्त्राजिनशयादिग्छेभ्य: फलान् प्रतिषेधी वक्तव्यः" इति वार्तिके श्रदृष्टलात्, सुपद्मे संचिप्तसारे कातन्त्रपरिशिष्टे प **घ**नुक्लेखात ।

[†] चय जातिवाचकशब्दज्ञापनार्थे जातिलचणमाइ पाक्तिवाइणेत्यादि — पाकियते व्यव्यतं चनयेति पाक्तितित्वयवसंस्थानं, पाक्तत्या ग्रहणं जानं यस्याः सा पाक्तिवाइणा जातिः, जातिराक्तिवग्रहणा पाक्तिव्यक्त्राः भवतीत्वयं:। अथ्या

गार्गी कठी कीयमी। *

क्तिति वहणं करणभाशान्यसिकत्वाक्षास्य स्त्रीलिङ्गलन', 'कात्रतिर्यहणं यस्याः मा प्राकृतिबहुता संस्थानव्यकेति यावतं द्रांत गीथीचन्द्रः, 'पनुगतसंस्थानव्यक्रेत्यवंः' इति विज्ञान भीमदो । तेन मनुष्यगीखगर्भमादीनाम भाजत्या व्यच्यमाना मनष्यत-गोलस्यलक्षंसल। दि जीति:। एवं लचणे सति. ब्राह्मणचित्रयेगस्यग्रहाणां प्रवक भाकतेरभावात ब्राह्मण्यादे जीतिल नाथातिभिति लचणान्तरमाह लिङ्गानामिति. याच लिहानं न सर्वभाक — सर्वाणि लिङ्गानि न भजति. साच जाति (त्यथं:। तेन बाह्यणादीनां हिलिङ्गमात्रभानित्वेन बाह्मणवादिनांतिरिति। एवस मति इंस इष्टवतीऽपि अज्ञातइंसस्य जनस्य तटाक्रथा इंसल व्यक्तितं न अकाते अती इंग्रह्म न नातित्वमिति प्रथमलुचग्रीषः, एवं दवदत्तादि-संज्ञाष्ट्रस्थापि सर्व-लिडाभाजित्वेन जातित्वापत्तेर्दितीयल्चणदीष्य, दृति दीष्ट्रयमपावर्त्तं ह्योर्लचणयी-विशेषणमाइ सक्रदिति । सक्रदेववाएम आख्यातेन छपदेशेन निर्योक्षा निश्येन यहीत् शक्या जातिरित्यर्थ.। तेन प्राक ईंडभी इंस इत्युपदेशं, पश्चात इसं हटवतसदाक्रत्या इंसं व्यक्षितं भक्तत एवेति प्रथमल जगस्य न दोष:, एवं देवदत्ता हिसंग्रामन्दस्य एक-व्यक्तावपर्दशे व्यक्तयन्तरे ज्ञानाभावात न जातिलमिति दितीयल्चणस्यापि न दीषः। ''एतेन जातिरेक्त लंगित्यत्वं प्रत्येकं परिसमाधिय स्वरूपं दर्शितवान'' इति गोधीचन्द्रः। एवं सुचगुर्वेशिप सति. गार्ग्यादीनां कठादीनाञ्च चाक्रतिव्यङ्गालाभावात् सर्व्यालङ्ग भाजित्साच न जातित्वसायातसतः पारिभाषिकं जातिल्याणमाइ गोवश्चेति प्रव-पौचादिकमपत्थं गीमं. चरणं वेदैकदेश: एतद्भयच जातिरित्यर्थः। ''ऋपत्यप्रत्ययानः भारवाध्येतवाची च शब्दी जातिकार्ये सभत इत्यर्थः'' इति सिद्धानकीमदी। भव नातेर्भवणानराणि प्रदर्श्वने — "भमर्वनिद्रत्वे सति एकस्यां व्यक्तौ कयनाद्यकानारे कथनं विनापि सगदा जाति:" इति सिद्धान्तको मदी। "था द्रव्यस्थीनपत्तः बन्पयते नाभे च नम्यति यगपदम्पै: सम्बन्धते न सर्व्वालिङ्गं भजते बह्रनर्थातुपैति सा जाति-र्शिधीयते। यद्क्तं, प्रादर्भाविवनामास्यां सत्त्वस्य युगपटगुणै:। श्रसर्व्वलिङ्गां बह्नर्था तां जाति कवयी विदु: ॥ एतिकान दर्भने युवलकुमारलब्बलादीनामजातिलम्' इति क्रसटीश्वर ।

 गर्मस्यापत्यं स्ती इति वाक्यं (४१५) श्वापत्यये गार्ग्यश्रक्टादनेन द्विप (२६०) यलीप:। युङ्खादीप निषेधेऽपि विश्रेषती विधानात् गार्ग्यादीनां न निषेध:। विस्वात् पुर्वेष (२५०) ईपसमावनायामपि गाम्यादीनां नातिसंज्ञाफलन्तु - गागीं भार्था यसासी गागींभार्थ इत्यादी (३२८) पंवडावनिवेध: । गागीं चासी भार्या चेति कर्माधारथे गार्ग्यभार्था इत्यादी तु (३५०) प्वद्वाव:, गामीलम् इत्यादी पुन: (३५०) पुंबद्वाव-गिषेषया कठशाखाध्ययनकत्तां कठ: तस्य स्त्रियाम् भनेन र्रूप, एवं कौयुमीत्यादि ।

२६४। गुणाद्वीतोऽखन्खोङ:।

(गुणात् ५।, वा ।१।, उत: ५।, घ-त्वक-स्योजः ५।)।

गुणवाचकादुकारान्तात् स्त्रियामीप् स्थादाः, न तु खराः स्थोङय।

सदी सदः। खकस्योङस्तु खकः पाण्डः। गुणात् किम्—

सत्त्वे निविमतेऽपैति पृथम्जातिषु दृश्यते।

श्राधेयसाक्रियाजस सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥

धेन:। *

* स्य: संयांग छक् यस स स्थे क्ं. खक्ष से खे क्ं चित खक्सीक्, न खक्सीक् प्रखक्सीक तस्तात । गुणवाभकादिति गुणं वक्षीत कर्त्तरि णकः । प्रभेदीपचारात् गृणविधिष्टद्रव्यवाचकादुकारानादित्यर्थः । भाईवगुणविधिष्टा स्त्री स्ट्डी,वा स्ट्डा एवं पद्वी पट्ठा, लच्ची लच्चा, गुव्वी गृकरियादि । खक्शव्यस्य ग्रक्षगुणवाचकलात् प्राप्ती निषेधः । "खकः पतिवरा कन्या" इति भद्दीजिदीचितः । "खकः तीत्र्यः" इति गोयीचन्द्रः । 'गुणकाइ —

सत्ते इति । यः मत्त्वे द्रव्ये निविभते तदाययति, अपैति तसादपगक्ततीलर्थः । यथा म्यामता भासादिभले निविधते पद्मात् पक्षदभागं तसादपेति । एवं पृथगजातिपु द्रज्यान्तरेषु दृष्यते त्रासादिवत कदः ल्यादिषु दृष्यते, संगुणः स्यादित्यर्थः। "पृथगः लातिष दृश्यते नानाजातिष्यक्लोकाते इत्ययं: ।---तथाहि ग्यामता आसे त्यो गर्वि च दृश्यते, एतेन जातेर्गणत्वं निरस्त, अतः सत्ता द्रव्ये गुणे कार्मणि च वर्त्तते नासी नातिईव्यादपैति नन्मनः प्रमुखा विनाभपर्यातमाधारद्रव्यापरित्यागात् न च नाति:।--नहि गोलमञ्जातौ दृष्यते नाष्यञ्चलं गीजाती।'' इति गोयीचन्द्रः। एवं मति गमनाहिकर्मणी गुणलापत्तिः द्रव्ये प्रविश्वनिर्गमधीगात् द्रव्यान्तरेषु च दर्शनात, चतन्त्राह त्राधियद्येति, यः भाषियः उटत्पादाः, भक्तियाज्ञांन क्रियाजन्यसः, ऋनित्यो नित्यसः भव-तीत्वर्थः, पक्षघटादिरक्षतागुण उत्पादाः श्राकाशादिमहत्त्वादिगुणी नित्य इति, कति-पये गुणा अनित्याः कतिपये च नित्या इति तानपर्य्यम् । कर्माणस् मर्व्ववैदानित्यलामिति वित्रासः। "खलादनीयी नित्यस" इति तृतीयपादस्य पाठान्तरं विक्त कमदीसरः। एवर्श्वत् तर्हि द्रव्यमपि गुर्गाऽलु—अवयवि द्रव्यं हि चारभकावयवे निविधते अवयवविनाशात्तचादपैति च, द्रव्यानरेषु च एवं हज्यते, द्रव्याणि च कतिचिदनिव्यानि नित्यानि च कतिचित् सन्ति, भात उक्तम् असस्वयक्तिति, स्रुसंप्रक्रतिः खरूपं यस्य स सच्चप्रकृति , न सच्चप्रकृतिर्भच्चप्रकृति: द्रच्यभिन्न इत्यर्थः । धेनुरिति गुणन्वणायोगात् न र्प। एतरगुणलवणकारिका तृ सिङालकौसुयां न दृश्यते, भाष्यकृता एतस्था ष्रव्याख्यानात्। पाणिनिः शश्यक्ष, वात्तिंत्रञ्च।

२६५। पाच्छोणादिखाङ्गेतोऽक्तवी।

(पाइ -- खाङ्गेत: ५१, भक्ते: ५१, वा ११)।

यादः भोणादेः खाङ्गादिकारान्ताच स्त्रियामीप स्यादा न त क्रेः। विपदी विषात, शोणी शोणा चण्डी चण्डा, विस्तीष्ठी विस्बोधा । 🚜

खाङ्गात् किम—

खाङ्गं स्थादद्रवं मूर्त्तं प्राणिस्थमविकार्जम। दृष्टं तत्रातत्स्यमपि तंदत्तादृशि च स्थितम ॥ 🕆

पाद च शीगादिय खाङ्गघ इच तमात्। न ति: पितालया:। (३४०) सङ्गा-सूपमानाटित्यनेनादिष्टात् पाद-श्रथ्दात शीषादेः स्वाङ्गवाचकात् श्रव्दात् क्रिभिन्नेकारान्ताच स्त्रियामोप स्थादा इत्यर्थः । भाषादियः — भाषाः क्षपण-कल्याणौ पुराणः कमलस्त्रथाः। विकारीदारचण्डास साधारणविभक्षरी । सहायारालभर्काः विद्यालाखासया परे इति । भव श्रीणादिगणीन दकारान्तंन च पाणिनीशी बह्वादि: (४।१।४४) खच्यते, परन्तु तव सहायसाधारणगद्धी न दृश्यते, भाक्रतिगणाऽयमिति लिखनात् तु भवश्येव । कटि-शोषिप्रस्तिस्वाङ्गानामिकारान्तवेन प्राप्तः सखनखादीनाच स्त्रीलाभावात् स्वाङ्गासह गौणभविति, तेन विस्तीक्षी टोर्घनखीत्यादि। श्रतएव पाणिनी उपसर्जनादिति (४।१।५४), मंचित्रमारे च अप्रधानार्थादिति, सुमग्री अप्रधानादिति, कातन्त्रपरिणिष्टे च बह्बी ही दति लिखनम । चिपदीति चयः पादाः यस्याः दति बहुबीही (३४०) पादस्य पाद-चार्दशे चिपादशब्दादनेन ईपि, (२२३) पाद: पदादेश:। चिपदी भङाधारपात्री। पत्ते त्रिपात। श्रीणवर्णास्त्री श्रीणी, वाशीणा। चल्डी अरल्डा द्रति भोगादिलात् वार्द्रप, मल्यन्तकीपना स्त्रीलर्थः। विक्वे इव क्रोष्ठौ यस्याः द्रति विस्वीष्ठी विस्वीष्ठास्त्री, स्वाङ्गवाधकलात् वा द्वेष, अत्र स्वाङ्गादुपसर्जनाददन्तादिति मिडानकौ सुदी लिखनात शोभना शिखा सुश्रिखा इत्यत्र न ईप्। पाणिनि: ४ १ ८, ४३,४५,५४, ''क्रांदिकारादितानः'' इति वार्त्तिकञ्चा

[†] खाङ्गलचणनाइ—स्वाङ्गं स्थादिति। भद्रवं द्रविभन्नं, मूर्त्तं साकारं (वाठिन्या-दिस्पर्भविभेषी मूर्त्तिरिति गीयौचन्द्रः), प्राणिस्थं प्राणिनि स्थितं (सुखनासिकाभ्यां त्री वायः निष्कामति संप्राणः साऽस्थाकौति प्राचीतव यत् तिष्ठति तत् प्राणिस्थामिति सी की चन्द्रः), भविकारजं घातुवैषस्य।दिरूपविकारात् न जातम् — एवभूतं यहल् तत्

बहुखेदा द्रवलात्। सुज्ञाना अमूर्त्तलात्। सुमुखा याचा अप्राणिस्थलात्। सुभोमा विकारजलात्। अ सुनेशी सुनेशा रथा, अप्राणिखस्यापि प्राणिनि दृष्टलात्। सुम्तनी सुम्तना प्रतिमा, प्राणिवत् प्राणिसदृशे खितलात् 🕆 राजी राजि:, क्रेसु बुद्धिः मृति:। 🅸

खाङ्गं स्थादिलार्थः। यथा विन्नोष्ठी विन्नोष्ठा। दितीयलचणमाइ दृष्टं तचातत्स्य-मपीति -तत्र प्राणिनि दृष्टम् चनलरम् अतत्र्ष्यम् अप्राणिश्यमपि चद्रवसूर्त्ताविकारजं यदल् तदपि स्वाइं स्वादिलर्थः। यथा सुकेशी सुकेशा रथा। ततीयं लचकमा ह— तदत्ताटशि च श्चितमिलि — तदत् प्राणिस्थनत्, ताटशि प्राचित्लये स्थितच अप्रव-सूर्तीविकारजं यत् तचापि खाङ्गं स्थादिव्यथं। यथा सुसनी सुनना प्रतिमा। जन-कारिकाया: पाठान्तरमपि दृश्यते यथा सिद्धान्तकौमृद्याम्—"ऋदवं सूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकार्जम्। अततस्यंतच दृष्टचतेन चेत्तत्तथायुतम्॥'' "तस्य चेत्तत् तया युतम्' इति क्रमदीश्वरः।

- * अद्रवाद्पिद-व्यावित्ताह—वहव: स्वेदा (घमाः) यस्या: सा वहस्रेदा, स्वेदस्थ द्रवलात् न स्वाङ्गलमित्यर्थः । सुषु ज्ञानं यस्याः सा सुज्ञाना, ज्ञानस्य असूर्त्तलात । सुष्ठ मुखं यस्या: सा सुमुखा भाला, अत्र भालामुखस्य अप्राणिनि स्थितलात्। सुष्ठ शीफ: (शीथ:) यस्या: सा सुश्रीफा, श्रीफस्य विकारजलात, न स्वाङ्गलिमित सर्वेजान्वय ।
- † सुन्न केशीयस्थाः सासुकेशीसुकेशा ग्यादित दितीयलच्च वीदाइरचन्। सुनु सनौ यस्याः सा सुननौ सुसना प्रतिमा इति वृतीयस्वणीदाइरणम् ।
- ‡ राजी राजिरिति राजधातो: इप्रत्यय:, एवं गीयी श्रमी मणी वनी श्रेणी रजनी मावनीत्यादि, पचे गीणिरित्यादयः। यी: यी, लच्ची: लच्ची इति दुर्घटरचितक्रमही-श्वरी। निषेधी यञ्जातीयसा विधिरपि तज्जातीयस्थिति न्यायात्, क्रिवर्जनात् क्रदिः कारादेवायं विभि:, तेन सुगन्धि: युवजानिरित्यादौ न स्थात्। उपसचिषात् कारिः (११५८), चकरिण: (११६०) श्रभीवनिरित्यादौ न स्थात्।

खाङ्गवाचके विशेष:---

बष्टचां स्वाङानां मध्ये नासिकीदराभ्यामेव ईप्वा स्थात्। तुङ्गनासिकी तुङ्ग-बासिका, जीगोदरी जीगोदरा। त्राध्यां किं, प्रयुज्ञघना, चारवदना, दीर्घलीचना इत्यादि। पाणिनिः ४।१।५५।

संबीगीङ्खाङ्गानां मध्ये जङ्गीष्ठकुरुक्षचंयङ्गाङ्गदलगात्राक्तपुर्केभ्य एव द्रेष् वा

२६६ | धात् क्रीतात् । (धान् प्र., क्रीतात् पा) । धनेन क्रीयते सा—धनक्रीती । क्र

२६७। त्तादत्ये। (कात् पा. भन्ये ७)।

धादिलोव। अभीण लिप्यते सा—अभी लिप्ती। १

२६८। खाङ्गाडे। ^{(खाङान् प्रा, ई ठा)।}

स्वाङ्गात् परो हे स्थितो यः कास्त्रस्नांदीप् स्थात्। ग्रङ्गभित्री । \$

स्थात्। दीर्घनङ्गी दीर्घनङ्गा इत्थादि। एभ्यः किं, सुनेचा सुगुल्का इत्यादि। पाणिनिः शृश्यूष्र, वार्तिकानि च।

प्रोही क्यलास्त्री निर्श्य संज्ञायाम । प्रोही श्रफ्री, क्रगलास्त्री श्रोधिविश्रेष:।

भ्ररक वर विष मणिभ्य: पुच्छात् निल्यम् । भ्रग्पुच्छौल्यादि । वार्त्तिकम् ।

उपमानपूर्वात् पुच्छपचाभ्यां नित्यम् । अपुच्छी काकपची इत्यादिः । उपमानात् किं सितपचा इंसीत्यादि । वार्त्तिकम् ।

क्षीड ख़र वाल भ्रम गृद भीष घोषा गल भग यौवादे ने ईप्। पाषिनि: ४।१।५६। सह विद्यमान नञ: परात खाङ्गात् न ईप्। सक्षेभा इत्यादि। पाषिनि: ४।१।५०। नख-मुखाभ्यां संज्ञायां न ईप्। एपंणस्वा कालमुखा। पाषिनि: ४।१।५८। मन्वार्षे पाद इत्यस्नात् न ईप्। चतुष्पादा ऋक्। पाणिनि: ४।१।६।

- क्ष कारणपूर्व्वात् क्षीतादीप् स्थान स्त्रियाम् । स्थायुनपत्तेः प्रागेव समासे एतदि-धानं, ऋती धनेन क्षीयते स्प्रदृति वाक्यम् । धनेन क्षौता धनकौता इत्यत्र न स्थात् । धान् किं, राज्ञा क्षीयते स्प्रराजकौता इति । पाणिनिः ४।२।५०।
- † करणपूर्व्वात् क्रान्तादीप् स्थात् स्त्रियां करणस्य चन्यत्वे सति । दृङ्गिय स्थायु-त्यत्ते: प्राक् समासः, चत भाड चर्लेण लिय्यत् स्रंति वाक्यम् । चल्ले किं, जलपूर्णा घटी, चन्दमानुलिप्ता चक्रनेत्यादि । पार्चिनि: ४।२।५११
- ‡ पृथग्यीगात धादिति अस्ये इति च नातुवर्त्तते, जेवलं क्रादिशतुवर्त्तते । स्वाकः-वायकश्रस्टात् परो वहुनोहिसमासे स्थितो यः क्रान्तश्रस्तस्यादीप् स्यात् । श्रद्धो (खलाटास्थि) भिन्नीयया इति श्रद्धभिन्नी । श्रद्धो निधौ सक्षाटास्थृीत्यमरः । हे इति

२६८। वाच्छनाजाते:।

(वा । १।, भक्छन्नान् ५।, जाते: ५।)।

श्राच्छादनजातिवर्ज्ञात् जातिवाचिनः परात् हे स्थितात् क्वादीप्स्यादा।

इत्तुभचिती इत्तुभचिता। कृतात्तुवस्त्रच्छता। अ

२७०। पत्रामपालकान्तात्।

(पत्नाम् अं, श्रपालकानात् ५।)।

पुंवाचकादपालकान्तादीय् स्थात् भार्य्यायाम् । गोपी । पालकान्तात्तु गोपालिका । पं

कि पादपतिता । उपमगंत्रावधानेऽपि कविन स्थान, यथा चौष्ठविज्ञती । अत्र (पाणिनि: ६।२।१९००) क्षत्रमितजात्मि।पर्यस्थों न स्थादिति, यथा दन्तजाता, माम-जाता. सम्बजाता, दःखजाता, वहकता, अकता, सकता, कृष्डमिता, कृष्डमित्यद्वा इत्यादि । विवाह पाणिगृहोतो यथा सा पाणिग्दहीती पत्री, धन्यत्र पाणिग्दहीता इति च वक्तव्यम् । पाणिनि: ४।१।६२, नानिकदथस्त्र ।

कह्नं वस्त्रमाति, नालि कन्नं यत्र मीऽक्तन्नस्त्रमात्। इत्तर्भनितो यया सा इत्तरभाविती इत्तरमातिते। एवं इक्तहृष्टी इक्तहृष्टा इत्यादि । वस्त्र कन्नं परिहितं यया सा वस्त्रक्तन्ना, एवं वसनप्राप्ता इत्यादी न स्थात्, र्तन इक्तन्ना इत्यादि । पाणिनिः ४।१।५३, वार्तिकस्, ६।२।१०० च ।

[†] पानकोऽली यस्य स पानकालः, पद्याव्रज्योगे तसातः। पानकालवर्णनात् प्रकारालादेवायं विधिरिति । किञ्च पानकप्रदर्णनेवेटसिद्धौ भनग्रणं—पानकपर्यंनस्य ज्येष्ठादिगणस्य (कातलपरिभिष्टीश्चित्वितस्य) प्राप्तायं । तेन, ज्येष्ठ किनष्ठ मध्यमानम नेपालक पद्मपालक वर्जात् प्वाचकाटकारालाहीप् स्थात् पत्नोवाच्ये इत्ययं: । प्रवाचकाटिति किंदिवदत्ता । गोपस्य पत्नौ—गोपौ, एव पितामधौ सातामधौत्यादि । गोपालकस्य पत्नौ—गोपालिका (२४८,२५४), एवं ज्येष्ठा किनष्ठा मध्यना जनम्य पद्मपालिका । गोपौत्यादिय जातिवादीि सिन्ने इह उदाहरणं निविद्यानामि प्राप्तायं, तेन चित्रस्य पत्नौ चित्रस्य पत्नौ वैद्यस्य स्वी विद्यस्य स्वि विद्यस्य स्वी विद्यस्य स्य

२७१ । ब्रह्मरद्रभवसर्वेच्छ्डेन्द्रवरुणादानङ् च।

(बह्म--विष्णात् प्रा, भानङ ।१।, भारा)।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्थात्, तेषामानङ् च । ब्रह्माणी सद्राणी । *

२७२। मातुलोपाध्यायच्चियाचार्य्यसूर्यो-र्यादा। (मान्न- प्रयोत् प्रा, वी ११)।

मातुलानी मातुली। ऋन्धे लीपमिप विकल्पयन्ति, तदा मातुलेत्यादि। तद्वाग्रब्दोग्व्यवस्थाप्यः। श्राचार्य्यानी, श्रव न णलं। पे

२७३ । द्रषाकप्यग्नि मनु पूतक्रतु कुसित कुसिदादेङ् च। (अपाकपि – कुचिदात् प्रा, ऐङ्.।रा, च।रा)।

^{*} ब्रह्मा च क्ट्रय भवश्व सर्व्य सङ्घ इन्द्रय वक्षण्य तस्मात्। प्रधानस्य ईप्-प्रत्ययस्थानुरीधात् पञ्चस्यन्तत्वम् । पानडी डिल्लादन्त्यस्य स्थाने । ब्रह्मणः पत्नी ब्रह्माणी, एवं कट्राणी भवानीत्यादि । प्रव वार्षिकसते ब्रह्माणमानयतीति ब्रह्माणी, नतु ब्रह्म-भ्रन्दादानङ् । एवं प्रकाणी शिवानीत्यादि । पाणिनः ४।१।४८ ।

[†] मातृतस्य उपाध्यायय चित्रय त्राचार्यय स्थित प्रथं त्र त्राचार् । ईप् त्रान द्र् इत्युभयीर तृत्तिः । एथाः पत्रामीप् स्थात् तेशमान ङ्च वा स्थादित्यर्थे । मातृत्तस्य पत्री मातृत्वानी मातृत्वी, त्राच्यां मत् ईपोऽपि विकल्यः, तेन मातृत्वाद्यपि । स्वभतं त् वाश्वस्य व्यवस्थया ज्ञियम्, त्राभिधानां नेयमितानि पदानि भविष्यनीति भावः, रुषा— उपाध्यायात् पत्रामान द्वा स्थात्, तेन उपाध्यायानी उपाध्यायी । स्थं चित्रयास्या पत्रीत्वाच्यास्यां चित्रयी, जातौ स्थांणी प्रथी, चित्रयाणी चित्रया । त्राचार्यात् पत्राम् भाषायानी, स्वयं व्याच्याद्वते भाषाय्यो । स्थनामकस्य कस्यचित् पत्री स्थी (२६०), देवतायान् स्थी । महाश्रद्धात् पत्राां जातौ च ईवेव—महाश्रद्धी (वार्त्तिक्रम्)। भाषार्थानीत्यच रेपात् णत्रसभावनायानपि वाश्वस्यवस्थया न णव्यमिति । (४।१।४८) पाणिनस्वस्य वार्त्तिकानि ।

एभ्यः पत्न्यामीप् स्यात् तेषामैङ्च। द्वषाकापायी अग्नायी मनायी। **

२७४। नारी सखी यवानी यवनानी हिमान्यरण्यानी मनावी पतिवत्नप्रन्तव्वती पत्नी भाजी गोणी नागी स्थली क्षणी काली क्षणी कामुकी घटी कवरी नील्यशिष्वप्र:। (नारी--पविषयः रण)।

एते निपात्यन्ते । 🌣

नरजातिस्तियां नारी, वयस्यायां सस्वी सता।
यवनानी लिपेसेंटे, यवानी गहिते यवे।
हिसानी हिससंहत्यास, अरुग्यानी सहावने।
सनावी च कनी: पत्री, पतिवत्री सभर्गुका।
भक्तित्री च गिर्भग्यां, पत्री पाणिग्रहीतिका।
भागी कित्रान् व्यञ्जने च, गोणी भाग्यादिपात्रके।
नागी स्त्रियां स्थात् स्थूलायां, कालायाद्याहिद्दिनिनी:।
स्थली भक्तिमा भूमि:, कुष्डी पात्रविश्वेषके।
काली च क्रणवर्षायां, कुशी लीहिक्कारकं।
कामुकी सरमायत्ता, घटी चुद्रघटी सता।
कान्यी किश्रवित्यासे, नीकी प्राणिनि चीषधी।
पश्चित्री शिष्यरिकायां स्त्रियासेव निपातनम्।
भव नारीति नशस्द त् नरशस्दाच द्रीप निपात्रम्। सखीति इदन्तलात् (२६५) विकल्पे

^{*} हवाकि पश्चिम मन्य पूनकत्य किसित्य किसित्य (किसिट इति पाणिनी, किशीद इति संजिप्तसारे, किसिट्यव्हां क्रव्यमध्यो न तृ दीर्धमध्य इति सिंदानकी मुद्याम्) तसात् । प्रजापि प्रधानस्य ईपीऽनुगोषात् प्रस्थनत्वम् । उत्तरच वाग्रहणेन सध्य-तिलादस्य निव्यवम् । ऐङ् इत्यस्य श्विचादन्यस्य स्थाने । हवाकपेः पत्री हषाकपायो, हर्विण् व्याकपी इत्यमगः । पूनकत्रिन्दः । पाणिनिः ४।१।३६ — ३८ । 'मनोरी वा'' (४।१।३८) इति सृचेण मनावी मन्य । परसृचे मनावीति पदं प्रदत्तम् ।

[†] निपाती द्वार्थविशेषे भवतीत्वत ---

२७५। पद्धती शक्ती युवत्यमद्वाही ख्रेन्येनी हिरणी भरिणी रोहिणी लोहिन्यसिक्री पिलक्रियो वा। (पद्धती-पिलक्राः १॥, वा ११।)।

पचे — पदितः यतिः यूनी अनिड्की खेता एता हरिता भरिता रोहिता लोहिता असिता पिलता / असिक्री अवदा, पिलक्री वडा । *

भूषि प्राप्ते, निलाधों निपातः । यवननातिस्त्रीत्थयं यवनी । मनीः प्रवील्ययं मनायील्याप पूर्वेण (२०३)। पितवतील्य पितिविवाहकर्तां, तेन पितमती मेना । भन्यत्विवकायां प्रायमो लिङ्गसाभान्यादीप्, तेन मठी पटी इन्नी वंशी खणालील्यादि, भन्यी इन्नः
हत्तक इत्यादो न स्थात् । भव वक्तस्य — (पाणिनिः ४।१।३५) एकः पितस्या इत्ययं
एकपत्नी. समानः पितग्साः सपत्नी, एवं अपनी बीरपत्नी भादपत्नी भद्रपत्नी पृष्ठपत्नी
पिष्ठपत्नीति नित्यम् ; "विभाषा सपूर्यस्य" (पाणिनिः ४।१।३४) दित स्वंण त्
विकत्यः, यथा, इन्नपतिः इन्नपतीः रहपतिः रहपत्नी, वयनपतिः ववनपतिः ववनपतिः ततपुरुषे वहनीही च । एवं जानपदी । "सञ्चायां वा" इति वार्त्तिकेन नीली नीला ।
पाणिनः ४।१।३२,१३,१२,१८,६८ । "घटकृष्ठात् पाने" इति कातन्तपरिश्रष्टे
भौपतिहतः । सुपन्ने घटोमच्या गौरादी पितः । "रृनरयोवृत्तिय" इति मार्जुरवादिसण्याठस्चम् (पाणिनः ४।१।३०३)।

% पद्यती इत्यादयी निपायले वा। पादस्य इति: पद्यती, अवस्थाती: कि: अकी अस्त्रभेद:. (बर्ल त अक्तिरेव), कांनत्वेन (२६५) अप्राभी द्वेपी विभाषा। युवन्धस्यात् तिम्ययं क्रावा वा निपायते—युवती युवतिरिति च। अनुइस्थ्यात् (२५७) द्वेपि, आण्या निपायते । श्वेत एत इरित भरित रीहित लीहित अस्थ्यी वर्णवाचकेश्वः वा द्वेप तकारस्य निकाय निपायते, नचने भिग्यी रीहिणीति नित्यम्। असित-अस्याद्वस्या पिलतथन्दात् वस्याम द्वेप् तकारस्य क्रम निपायते। पचे—पद्वतिश्रम्भा (२६५)द्वेप्निथेध:। यूनी अनुडी (२५०)द्वेप्। पाणिनि: वश्वास्थी हर्ष, ४५००, व। त्तिस्था। "युवतीति तु यौते: अवन्तात छौपि बीध्यम्" दति सिद्धानकी स्वरी।

चत्र वक्तव्यम् — ईत्ररशब्दादीष् वा, ईत्ररी ईत्ररा। "व्यवस्थावाविलात् ईत्ररा ईत्ररीति चौषादिकां वरट" इति सुपद्मे ।

केवल (केरल प्रति पद्मनाभक्षमदीखरी, केरली ज्योतिर्विशेषस्य नामेति गीयीकन्द्रः)

२७६। न मन्संस्याखसमादेः।

(न ।१।, मन् सङ्गा-खस्ट-चनादे: ५१)।

एभ्य ईप्न स्थात्। सीमा, पञ्च, स्वसा माता, त्रजा बाला। (१०१) नेपीत्युक्ते:--यावती बृह्वी। *

सुमङ्गल मामक (सामकी देवताविधेषः) भागधेय भेषन सुमान (सुमानी कृन्दोिशीषः) पाप चार्यक्रत दीर्घितिह चपर (अवर इति क्रम्डीयरः) रेचक देवक केकय भिच्नका-देरीपृनास्त्रि। क्षेवलीत्यादि । नास्त्रीति किं कीवला दृत्यादि । पाणिनि: ४।१।३०।

घोड़।दि(मजादिरिति पाणिनिः)भिन्नादवार्डको ययसि वर्त्तनानात् मञ्दादीप् स्थानम्व्ये । कुनारी किशोरी कन्भी तक्षीलादि । गीर्ग्ये तु—वहक्कारा पुरी । वाईको वयसि-स्थिवरा हला। भीडादेसु-भोडा बाला बत्सा कत्या रत्यादि भाक्ति-गणः । चयाणां फलानां समाहारः चिफला, अच स्त्रोत्वं आप च निपात्यते । पाणिनिः ४।१४,२०। ''अजादिलात् चिफला'' दित सि**खान्तकौसु**दी।

 खसा च अगय खसजी, तौ आदी गयोसी खसजादी, सन्च सङ्गाच स्वसजादी चेर्त, तस्रात्। मन्प्रययानात् सङ्गावाचकात् स्वसादः प्रजादेश र्दूप्न स्यादित्यर्थः । सीमन्गन्दात् (२५१) डापीऽपाप्तिपची नान्ततात प्राप्तस्य (२५०) ईपी निषेध:। एवस् भितिपटिमा इत्यादि। भव सन ईपवर्जनं नाकतात् प्राप्तस्य (२५०) ईप एवं निषेधार्थ, तेन लब्बसीस्त्री लब्बसीसे लब्बसीसानी इत्यादिए (२५३)ईप चान्यस्यादित्यनेन द्रेप स्थादेव। सङ्गावाचकानां मध्ये एकदिवड् बह्ननामीपीऽसमावः, तिस्चतसी' खसादिपाठादेव र्पेपनिषेध:, ततम पत्रादाष्टादशपर्यन्तानां मुख्यत्वे (१३१) विष लिक्केषु समलविधानेनैव लिक्ककार्यानिवेधे सिर्छ, भव सङ्गार्कनं नान्तसङ्घाभ्यो गीयत्वे र्प्नविधार्थे, तेन प्रियपचा द्रीपदी रखादी. घपचा रखादी च (२५३) ईप चान्वस्यादिस्कन ईप्न स्थात्, एवम् चितिपद्या स्वीत्यादी (२५०) दिवृद्या-ष्टित्य नेन ईप्न स्थात्। किञ्चात्र नजीऽल्पार्थत्वात् विंगतिषध्यादेः (२६५)पा च्छीपादी स्पनेन र्द्रप वास्थादेव। पञ्च इत्युदाइरणं लिपिकरप्रमादः। पञ्चिति छदाइरणात् नाल-सङ्घाया एव द्रैप्निवेध दति केचित्। सामान्यती निवेधात् एकस्य पत्नी एका इत्यादी र्रुप् न सादित्यपरे। ससादिश—सस् माह याह दुहिह ननान्द तिस चतस्र कति यति तति, इति द्रा। माता चन जननी, याता खानिभाटपंती, तेन धान्यस्य मात्री, तीर्थस्य यात्री इत्यादी ईप् स्थादेव । तिसः चतसः इत्येतयी: सङ्गावाध-कलाबिषेचे पत्र गौणले ग्रहणं, तेन प्रियतिसा प्रियचतसा इत्यादि । कतियतिततीनां मुख्यते (१६१) जिङ्गकार्य्यनिवंघात गौणले प्रियकतिरित्यादी दूप् न स्यात् । अज्ञादिय

२७७। उतोऽयुङ्रक्वाहे न्रप्राणिजाते रूप्।

(उत. ५।, भ्रयुङ्रज्ज्वादे: ५।, नृशासिजाते: ५।, ऊप् ।१।) ।

स्तियासुकारान्तात् तृजातिरप्राणिजातिय जए स्थात् न तुयुङी रज्ज्वादेशः। कुरूः कर्जन्यूः।, प्राणिजातेसु, धेनुः। युङ्-' रज्जादेसु, श्रध्वर्युः, रज्जुः इनुः। *,

२७८। वामलंचणग्रफसहसहितसंहितोप-सानाटूरोः। (वाम सचण-मफ् सइ-सड्डित-सहित-उपमानात् ४।, करी: ४।)।

वामोरू: रस्रोरू: । १

बर्मक पिपोलिकादिः । भयमजादिः पाणिनीयाद्वियते, सत्र परस्तादयी न दृग्यन्ते एवं स्वाङ्ग जातिभ्यां पराः लतमित जातप्रतिपद्माय, कं मलता इस्तमिता इत्यादि । (१०१) वंपीत्युक्तीरिति दूरि कर्त्तस्ये उवतुवहगणानां सक्ष्यावद्वावनिषेधात यावतीत्यत्र उदिस्वात् बह्वीत्यत्र (२६१) मुणवाचकादोप्। पाणिनिः '४।१।४,१४,११। (२५७) ईप। पाणिनीय खसादिगणे कति यति ततीनो निवेशी न द्रायते।

* य उड्यस्य स युड्, रजुरादिर्यस्य स रज्जादिः, युड् च रज्जादिय तत् युड् रज्जाहि, नामि युङ्रज्जादि यसांसा चयुङ्रज्जादिसस्याः। नाच प्रशासीच तत् न्प्राचि, तच तत् नाति चति नृप्राचित्रातिनास्याः । मनुष्यनातेः प्रप्राचित्रातय उका-रान्तान् भव्दात् स्त्रियामूण् स्थात्, न तुयकारीडी रज्ज्वादेयः । नृजाते:---कुर्कारति, कुतग्रस्ट कुददेशस्थाननुष्यनातिवाची, एवं कादः । प्रप्राणिनाते: — कर्नसृरिति कर्जस्युः शब्द: बद्रीजातिवाची, एवं भलाव्:। धंतुरिति वृभिन्नप्राणिजातिलात् न जप्, एवं ककताकु: भातु:। "नतु सृतन्मनुपालयानुगाली वरतनु सप्रवदन्ति कुकुटा इत्यव दोर्घालसृतनुग्रव्हन समासः" इति क्रमदीयरः। प्रध्नर्थिरित चरणलेन जातिलात् प्राप्ती युङ्लाझिषेध: अध्वर्ध्वाझिणी। रज्जादिश-रज्जु: ४तः कडु: प्रियङ्: स्नायुरि-त्य।दि। पाणिनिः ४।१।८६, वार्षिकश्च।

† वासय खचणरा श्रमय सहय सहितय संहितय उपमानस्र तसात्। वासादिभ्यः षड्था. उपमानवाचका अपपीय ऊर्कणब्दसम्बादूप् स्थात् स्त्रियाम् । वानी सुन्दरी ऊर्क यस्काः सावामीकः । एवः लक्षणास्टात् (४४६) अर्धकादिकात् श्रप्रथयेन लक्षणी

२७६। तन्वादेवी। (तनादः ४, ना ११।)।

तनूः तनुः, चञ्चः चञ्चः । *

इति स्त्रीत्यपादः।

२य पादः -- कारकम् (क)।

२८०। त्यर्थसम्बद्धातार्थे प्री।

(ल्यर्थ सम्बुडि जकार्थे ०।, प्री ।१।)।

लेरवें सम्बोधने त्येकतार्थे के सति च प्री स्थात्।

क्षण: यी: ज्ञानं। हे विश्लो। 🕆

सुल चणानिती जक यसाः सा लचणोकः ; अफो सुरौ दव संशिष्टी खक यसाः सा अफोकः ; सकेते देति सकौ खक यसाः सा सकोकः, विल चणोकसहिता वा ; दितेन सहिती कक यसाः सा सहितोकः , (३८८) संदित अच्दस्य विकली सहितौ संदितौ संदितौ कि यसाः सा सहितोकः ; जपमानाः न्, रक्षे दव जक यसाः सा रक्षोकः , एवं करभोकः । एभ्यः कि, इनोकः पौनोकरिलादि । पाणिनः ४।१।६८,०० ; सहितसकाभ्याविति वत्तवस्मिति वार्षिकस्य ।

अति तहरादिर्थस्य तस्त्रात्। तन्तादेवां कप्स्रादिस्पर्थः। तन्तादिर्थशः— तन्यचु-क्रमींकः कङ्गपङ्गप्रियङ्गवः। गस्तुः कुङ्दिति श्रीक्तासन्तात्री सरयुस्तया॥ तनुश्रन्दात् गौस्येऽपि वरतन्ः स्तृतनृदित्यादि। भव—वाङ्गनः कद्वकसस्थल्यो नित्यसूप्स्यात् संज्ञायामिति वक्तव्यम्, भद्रवाङ्गदित्यादि (पाणिनिः ४।१।६०,०२)। अत्रयस्य पत्नी सर्वृदिति निपाल्यम् "अग्ररस्थोकार।कारलीपय" इति वार्भिक्सम्।

[†] स्थादिभिलिङ्गानां रूपाणि निरुष्य स्थादीनामर्थान् विरुपयित खार्येखादि।— चिलिङ्गं, जेरथीं खार्थः, सम्बुद्धिः सम्बोधनं, उक्तोऽधीं यस्य नत् उक्तार्थं कारकं — खार्यक्ष सम्बद्धिय उक्तार्थेख एतेषां समाद्यारसच्चिन्।

चर्चीर्राभधेय:--तथाच 'बर्न्दभोन्नार्थम।चेन यहसु प्रतिपादाते, तस मन्दस्य तहसु

सर्वोऽची जीवनः पाता दानीयः प्रभवी लयः । *

जायतामर्थसं ज्ञेयति' प्राञ्चः । एवञ्चः, "श्वस्मात् ग्रब्दादयमर्थो वीडव्यः" इती यरिक्छाशिक्त-रिभिषा, तया, प्रतिपादाः स्वभिष्ठेय इति । शक्तिज्ञानश्च व्याकः गादिभ्या भवति, वया — श्वक्रियत् व्याकः गोपमान-कांषाप्रवाक्यात् व्यवहारत्यः । सान्निध्यतः निष्ठपदस्य वद्धाः वाक्यस्य श्रेषात् निवतिवदिन्ति ॥ ल्ययंश्च पञ्चषा विष्णु वा, तदकं — स्वार्थो द्रव्यञ्च लिङ्गञ्च सङ्गा कम्यादिर्वेव च. सभी पञ्चैव लिङ्गार्थास्त्रयः क्षेषाश्चिरविमा इति । स्वार्थो विश्रेषणं, द्रव्यं विश्रेषो, लिङ्गं पुंस्वादि, संक्ष्या एकत्वादि, कम्बादिद्विदिति ।

लिङ्गस्य चर्चे, मन्त्रोधने, प्रत्यये: किष्यतार्थे कार्यके च सित, प्रथमा स्वादित्ययं: ।
किञ्च यदा लिङ्गायां निरिक्तकसांद्ययां न विवच्यते वहैं ने लिङ्गात् प्रयमा स्वात्, अन्यथाः कृष्यं स्वरामीत्यात्यावि प्रयमापत्ते: । लिङ्गायं स्वर्णे एकत्वित्ववहृत्वेषु क्रमादेकवचनहिवचनवहृत्वचनि प्रयोज्यानि (१३) । यथा—घटः घटौ घटाः । एकौ हौ वह्वइत्यादिषु सङ्गा एव लिङ्गायं:, विभिक्तिप्रयोगस्तु— "नापदं शास्त्रे प्रयुचीत्र' इति नियमात्
पदलार्थं, कर्मालादिप्रतीत्ययं । भत्यव प्रक्रयथान्तितस्वाश्रवीधकत्वं प्रत्ययानामिति
प्राचः । पुंस्तादिक्रमिप लिङ्गायं इति ज्ञापयद्वाह क्रमः थीः ज्ञानमिति । पाचिनिः
राष्ट्राधह, ४०।

निह क्रियारहित वाक्यमसीति न्यायात् स्वकंत्रेन क्रियाच्याहारेण जक्तायंतात् प्रयमापानी क्रयं ल्यायंग्रहणमिति ? जन्मते, यत्र ससमापकिकियापटं कर्षादिपद्युक्तं तन्त्रेन क्रियाच्याहारः, यत्र सुक्तेनली रुद्रशब्दः प्रयुक्ताते तन्न तत्र्यायावस्री नास्तीति । एवम् एकादिशब्दः यदा संख्येयवाची तटा घटादिना समानाधिकरणः स्थात्, तत्र लिङार्षे प्रयमा—यया, एका घटः, प्रशो जीठिरिवाटि ।

षाभिसुष्यविधानं सम्बुद्धिः । इच. लते, इत्यादावचेतनेषु तृपघारः । "सम्बोधनघः प्रवर्त्तनाविषयवीधनादिफलकासिसुख्यः" इति सिञ्जानकौसुदौटीका । "सिञ्जस्याभिस् सुखौभावभावं सम्बोधनं विदुः । प्राप्तासिसुख्यः पुरुषः क्षियासु विविधुच्यते ॥" इति इरिकारिका ।

• चलार्थे जदाइरित सर्वे इत्यादि। मर्के: शिव:— भर्कः, कीवनः, पाता, दानीयः, प्रभवः, लयसः। भर्कादेशिक्ति कसीण व्यण् अत्र सर्वे इति कर्मं जलाम्। कीव्यतेऽनिति जीवनः कर्मं चनट्, भन्न सर्वे इति कर्ममुल्ताम्। पातीति पाता कर्मित् दन्, भन्न सर्वे इति कर्ममुल्ताम्। पातीति पाता कर्मित् दन्, भन्न सर्वे इति क्लां चलः। दीयतेऽसी इति दानीयः, (८६५) लडीः क्लां इत्यनेन सम्प्रदाने भनीयः, भन्न सर्वे इति सम्प्रदानस्ताम्। प्रभवत्यसादिति प्रभवः भपादाने भन्न, भन्न सर्वे इत्यपादानस्ताम्। सीयतेऽसितिति स्यः भिक्तरके भन्, भन्न सर्वे इत्यपिकरणानुताम्। त्यैकतार्थे के इति वहुवचनिष्टंगात् भन्येकतार्थे प्रभानन्तु प्रायेण तिक्तन्तित्तस्तारं ''

२८१। कर्माक्रियाविशेषणाभिनिविशाधि-शीङ् स्थासन्वध्यपावस-डं ढं द्वी। (कर्म-डं श. वं श. की श)। कार्यो क्रियाविशेषणम् श्रभि-नि-विशादेर्डश्च ढसंग्नं स्थात्, तत्र च दी। क

''स्थिभिद्धि प्रयमा" "तिङ्गमानाधिकरणे प्रयमा" दित वार्गिकद्ये च । तिङ्ग यथा—रामी वनं ययौ, स्व कर्मा उक्तः, रामिण रावणी नन्ने, स्व कर्मा उक्तम् । कता तु — धव्यौऽर्घ द्यादि स्वयमुदाक्षतम् । तिद्धिते यथा—वाचा कृतं थिकम्, स्व कर्मा उक्तं, तके वेत्यधीते वा ताकिकः, स्व कर्मा उक्तः । ममामैः यथा—स्वाध्दे वानरी यं स स्व इदान्ति इदः, किता पूना येन स कित्रक्ताः। सदः, कृता पूना येन स कत्तपृत्री भक्तः, दत्ता भूभिर्यस्य स दत्तम्भिर्विषः, निर्गताः पविषो यसात् स निर्गतपचौ इदः, सह तारा यखिन् तत् स्तारमाकामम् — एप् क्रभेण कर्मा करण कर्मृ सम्प्रदानापादानाधिकरण।नि उक्तानि । स्वय्येनायुक्तार्थे प्रयमा — यथा विषवविद्धिय सर्वद्र स्व इं स्वयं क्त्रमुमाम्यतम् । 'कृत्या दिति' 'कृष्णित मङ्गलं नाम' द्वादायितिश्वस्य वर्णमावाभिष्यकृत्वेन न विभक्तृत्यतिः द्वति वर्मकृत्यति वर्मकार्यकारित वर्माः पीतमस्वरं यस्यासौ पीतास्वरी हरिरित्यूदी सम्बस्नायुक्तार्थे प्रयमित वर्म्रव्यम् । पीतमस्वरं यस्यासौ पीतास्वरी हरिरित्यूदी सम्बस्नायुक्तार्थे प्रयमित वर्मव्यम् ।

* कियाया विशेषणं कियाविशेषणम्। चर्भिनिः चिभिनः, चिभिनेविशः चिभिनः, ग्रीकिः च्यास पामच ग्रीड्स्थास, पर्धः ग्रीङ्स्थास प्रधिग्रीङ्स्थासः चनुष प्रधिष्य चप्य पाङ्च ते चन्त्रप्रयाः, तथा वनः चन्यप्रयावसः, ततः चिभिनिविश्य चिश्रीहस्थासः च चन्त्रप्रयावसः तेषां डंपयात्—कर्षः च कियाविशेषणञ्च चिभिनिवार्यः चिश्रीवास्थाः च चन्त्रप्रयावसञ्च तेषां डंपयात्—कर्षः च कियावाः कर्षाणः, कियाया विश्रीवणस्य, चिभिनिवार्यः धिकरणस्य च, कर्षासंचा स्यात्, तेषु च दितीया स्यादित्यर्थः। कियावादिवयर्थः। कियावादिवयरेः प्रकृतिकर्मार्थः च, कर्षासंचा स्यात्, तेषु च दितीया स्यादित्यर्थः। कियावादिवयरेः प्रकृतिकर्मार्थः च, कर्षासंचा स्यात्, तेषु च दितीया स्यादित्यर्थः। कियाविशेषणे तु कंवलं दितीयाया एकवचनं स्यात् कियावा लिङ्सस्य्याविनिम्नेकत्वातः।

क्रियते यत् तत् कम्मं, करोते निंखिल क्रियायाचकतात् कर्मुव्यापारैर्यत् साध्यते तत् कम्मं इति यावत्। ''कर्मुरीसिततमं कम्मं'' इति पाणिनः (१।४।४९)। क्रियाव्यायं क्रम्मेति पद्मनाभः। कर्मृस्मसृद्धिं कम्मेति क्रमदीव्यरः। यत् क्रियते तत् कम्मेति सर्वे-बम्मोबार्यः। तम्म कम्मं विविधं – निर्वेच्ये विकार्यं प्राप्यचिति। निर्वेच्यते उत्पाद्यते अत्तत् निर्वेच्ये, यथा घटं करोति, पुत्रं प्रस्थवे इत्यादि। विक्रियते विद्यानानं वस्तु

रामं नमित सानन्दं धर्मानिभिनिविष्य सन्। * श्रीषीऽधिशेतेऽहिमधिष्ठितोऽस्थिमध्यास्य घोषं मध्रामनुष्य।

भवस्थानर नीयते यत् तत् विकार्थे, तदिप विविधं प्रक्रते बच्चेदकं प्रक्रते गृंधानराधाय-भच्च, यथा काष्ठं दहति, सबणं कृष्डलं करोति रैंथादि । निर्व्वचेविकायां स्थानगत्। प्राप्दं, यथा गामं गच्चतीत्यादि । तद्भचं । कं हिरिणा -- यदसञ्चायते सद्दा जन्मना यत् प्रकायते. तिव्वच्चे, विकार्यच कम्मे देधा व्यवस्थितम । प्रक्रव्यच्चेदसभूतं किचित् का छादिभध्यवत्, किचित् गृणानरीत्पत्या सुवर्णादिविकारवत् । कियाक्रतिर्व्याणां विद्वियं न विद्यते, दर्शनारतुमानाद्दा तैत् प्राप्यमिष्ठ क्षय्यते । परे त भनौसितमिष प्रतिकृत्वमनुकृत्वच कमान्तर वदन्ति, यथा भोदनं बुभुच्विषं भच्यतीत्यादि । स्वमते प्राप्यान्तर्यतमेव तत् ।

किया धालयंसस्य विशेषणं कियाविशेषणम् । तच्च ससामाधिकरणसेवः असमानाधिः करणविश्रेषणे (२८८) तृतीयाविधानान् । क्रियाविश्रेषणस्य कार्कलं केसिटेवमङ्गीक्रियते यथा "सद पचतीत क्रियाविशेषणत्वात दितीयान्तम । धातुपान्तभावनां प्रति हि फुलांशः कमीं भूत: । तथःच फलसामः नाधिकर्णये डितीया." "कियायाः क्रांचमकर्माल विवचायां तिर्वापणत्वात हितीया" इति मनारमा। "दितीयिति तियातिश्रीषणादिति भावः" इति अन्दरसम् । "सामान्ये नपंसक्ताति — अने नैय क्रियाविशेषणानां नपंसकत्वे सिद्धे 'क्रियाविभ्रेषणानां क्रीवत्वं द्वितीयान्तत्वच्च' इति न । पूर्व्वधातूपान्तभावनां प्रति फर्ला-भस कर्मतया तत ममानाधिक रणे क्रियाविशेषणे दितीयान्त लम्यापि निही:, तस्य क्रिया-जनकत्वमपि सञ्चानहारा बोध्यम्'' इति शब्देन्द्शेखर्य। अनदीश्वरेण च "बपृथगरूप-कियाया विभेषणस्य कर्माल क्षीवलखं 'इति मूर्च क्षतम्। चतः पृथग्रूपिकयाविभेषणस्य कर्मां वादिकंन स्थान, तेन साध: पाक: साधू पाकौ इत्यादि, क़दिभिहिती भावी द्रव्यवत् प्रकाशते इति न्यायेन द्रव्यत्वातिदेशोन् पाकस्य प्रथग्रुकपत्वम्। विभेषणस्य कर्मालेऽपि भक्तर्मक्षातृशामकर्म्मकलमेव, कर्भानिवस्तवकार्यं, किमपि न सादिति यावत्। कर्ममञ्जापलन्तु साकं विभेतीति सीकभी शब्दस्य (१३६) कव्यादाने-काच इत्यनेन कारकादिलात यकारप्राप्तिरित्यादि। पाणिनि: २।३।२,१।४।४६ — ४८, वार्त्तिकञ्च।

 रामं नमतीत्यादि । सन् साधुः धम्मांन् प्राभिनिविश्वः सानन्दं यथा स्थान्तथा रामं नमतीत्यन्त्यः । रामस् इति नमनित्याव्याय्यं कर्षः । सानन्दिनिति कियाविशेषणं, प्रानन्देन सद्व वर्णते यत् तत्, प्रानन्दसद्विताभिन्नी नमस्कार इत्थयेः । धम्मांनिति प्राभिनिविश्वधातीर्धकरणे कर्षात्म ।

यो दारकामध्युषिती विकुष्टः सुपावसचावसतात् स द्वतः॥ *

२८२। देशाध्वकालभावं वाहै:।

(देश-चश्चन् काल-भाव १।, वा ।१।, चटै: ३॥)।

भद्रैर्धुभियोगि एते ढसंज्ञा'वा स्युः।

नदीर्वनेषु चांषित्वा क्रोगार्तस्थेष्व इनिशि। चंक्रमित्वा प्रियानीतिं रामी रचोवधे स्थितः ॥ १

^{*} स्रीय इति । यः शीयः सम्मिधिष्ठितः सन् सिहमिथियते, घोषमध्यास्य सणुरा-स्वयः । सिहमिति पिथमीङः, सिर्धानित पिथितिष्ठतः, घोषमिति सध्यानः, स्वयः। सिर्मित पिथमीङः, सिर्धानित पिथिमीङः, सिर्मित पिथितिष्ठतः, घोषमिति सध्यानः, स्वयः। सिर्मित सन्वसतः, दारकामिति सिध्यभतः, विक्ष्णंभिति उपवसतः, इत् इति स्वयः स्वातः, सिर्मित स्वयः स्वय

[†] देशस घथा च कालस भावस तैयां समादारकत्। नालि ढं लग्गं येयां ते चढ़ाः तै: । देशः प्रथमेन ने देशः नदीवनपर्वतादिः । घथा घथपरिमाणं क्षीशमलादिः । यथा— किर्जुक्ते वितसी च नल्लः किष्कुचतुः अतम् । चतुर्हसी धनुसस्य सदस्यं क्षीश्रः चछते । क्षीश्रदयन् गव्यृतिसदृदयं योजनं विदुरिति । कालः चयदस्य मुहर्सप्रदर्शितप्रधमास्य त्यादस्य मुहर्सप्रदर्शितप्रधमास्य त्यादस्य मुहर्सप्रदर्शितप्रधमास्य त्यादस्य में भावा चावव्य । अन्धं कथात्योगं देशादीमां कर्यं सेशा वा स्यादिव्य सेशादीमां कर्यं सेशा वा स्यादिव्य सेशादीमां कर्यं ने वा स्थादिव्य सेशादीमां कर्यं ने वा स्थादिव्य सेशादीमां केते कर्यं विधाद चा सेता वा दिवय सेशादी केति वा स्थाद में निर्धि रावौ क्षीश्राम् कीश्रयरिस्तान् प्रयः नन्त्य में निर्धि रावौ क्षीश्राम् कीश्रयरिस्तान् प्रयः नन्त्य में निर्धि द्वा चित्रप्रदेश से निर्धि रावौ क्षीश्राम् कीश्रयरिस्तान् प्रयः नन्त्य में निर्धि द्वा चित्रप्रदेश से निर्धि द्वा स्थादि स्थायाः सीताया चान्यमं रचीवये चित्रप्रदेश स्थाने । चेनसिल्या वर्षे क्षित्योगे नदीदिति कर्यंतं, पचे वनेषु दित (३०१) सप्तमी । चेनसिल्या वर्षे क्षित्या दित यक्षित्रस्य विद्योगात् कीश्रामिति

२८३। सदाध्वादि व्याप्ती सर्वै: सिंहे तु घं।

(सदा ११), प्रवादि ११), बाही था, सर्वैं २॥, सिंहे था, तु ११।, धं १।) । सर्वें पुंभियों गे श्रस्तन्तसंयोगे श्रध्वादयो नित्यं उसंग्राः खुः, श्रर्थ-सिंही तु धसंग्राः ।

> स्त्यैः क्षणोऽन्वितः क्रीयं मासी गुरुष्टहे स्थितः। गुरूपदेयं निस्तो माभ्यामध्यैष्ट वाद्मयम्॥ *

२८४। घोऽञौ,ञ: ग्रन्दाग्रनगितन्तार्थाढ़-ग्रन्तहग्रयो-रखादनीक्रन्दायग्रन्दायन्त्रादासूतववहा-

भाइरिति च कसीतं. पचे भलेलिति निधीति च स्नुप्ती। स्थित इति स्थाधातुयोगे भियानीतिमिति कर्मातं, पचे रचीवधे दृति सप्तभी। पाणिनि: २।३।५, वार्त्तिकच ; "देशकालाध्वगन्त्र्या. कर्म्यसद्ता द्यक्तमंत्र्याम्'' इति कारिका च । भव वक्तव्यम्— "भक्तमंत्रकातृप्रयोगेऽक्रियान्तरान्तभीवे देशभावास्याच्ये" इति क्रमदीयरस्पम्। तेन क्रियान्तगन्तभीवे — सास भास्यते इत्यादि, भिस्त्यार्थसर्थे: ७

* सदा निव्यम् । व्याप्तिः साकाल्वेनाप्तिसस्यसः चिक्छिद इति यावत् । भत्तव् "कालाध्यस्यामिवक्छिदे" इति क्रमदीयरमूजम्, "कालाध्यस्यामितसंयीने" इति पदानाममूज्ञ । सर्वेः सक्तर्यकैरकर्षकैय धातुप्तियोंने क्रियाविक्छिदाभावे गय्यमाने भध्यकालाधाः निव्यं कत्र्यसंज्ञाः स्युः, भयंसिडी प्रयोजनसिद्धौ (भपवने इति पाणितिः ; भपवनेः फलप्राप्तिरिति सिज्ञानकीसुदी, फलप्राप्तौ क्रियापरिसमाप्तिरवर्ग इति पद्मनाभः) सत्यां तु करणसंज्ञाः स्युरित्ययः । सत्यौरित्यादि—क्रमः क्रीः व्याप्य सत्यैदः चितः भन्तनः सन्, मासौ व्याप्य ग्रव्यदे स्थितः सन्, गृष्ठपदेशं व्याप्य निस्तः भवनासकः सन्, मासौ व्याप्य वाद्ययं सक्तमं श्राह्मन् भध्येष्ट भवीतवान् इत्यन्तयः । भव चिततः इति सक्ष्यंक्षप्तियोगे क्रीशे भन्नगमकियापिक्छदाभावात् कर्यन्तम् । एवं स्थित इत्यस्य योगे मासौ इति, निस्त इत्यस्य योगे गृष्ठपदेशमिति च कर्यन्तम् । पर्वस्थित इत्यस्य योगे मासौसिति भध्ययगक्रवद्यागकप्रयोजनस्य सिक्तने करणतम् । भवैभिद्यस्य जङ्गेन मासौ यत्यीऽपीत इत्यन किमपि न ज्ञातिमत्ययः । पाषितिः रे। स्थः इत्यस्य वोभे इति वार्तिकस्य ।

हिंसाभची हृक्षमाभिवादिदृश्स्तु वा । (वः १।, वजी ७), जे: ६।, मब्द--मी: ६।,मखाद--भच: ६।,इन्क माभिवादि हम: ६।, तु।१। वा।१।)। प्रजान्तानां प्रव्हार्धांदीनां यो घः स व्याकानां टंस्थात. न त खाटारे:. प्रारेस वा। *

* শ্বন্ধীলন पानस्ता রাদেন। শ্বর্থ শ্বন্ধ বাব বাব শব্বোগ্নসায়ে ते कर्षा शेषां ते अध्दाशमगतिज्ञार्थाः । मासि ढंकर्भा येथां ते चढाः । प्रव्दाप्रन-गतिकाथीय चढाच यह यह यह अध्य अर्थित तेवा स माहारसस्य । मृत: सारिय: गवादि-नियना च घः कत्ती यस स मुन्दाः. न स्त्रचीऽस्त्रचः, स वासी वहंस्ति क्रस्तक्ष्यहः। न हिंसा बहिंसा, बहिंसायां भव: बहिंसाभव । खाट्य नीय कल्ट्य प्रयव शब्दायथ हास भदय भन्तव वहस महिंसाभचय तेषां समाहारः, प्यानञ्योगे श्रखादनीकन्दायभव्हायहादामृतघवडाहिंसाभचसस्य । अभेर्वादिः अभिवादिः अभि-वादिय दश्य 'श्रीमवादिदशी, में भावानेपदे श्रीमवादिदशी सामिवादिदशी। इस क्षय काभिवाटिटशौँ चेति समाहारी तस्य ।

श्रव्हार्थाः उद्यारणार्थाः, श्रव्हकर्मांका घातव इति यावत् । अश्रनार्थाः भचणार्थाः । गत्यर्थाः गमनार्थाः प्रवेशारीक्षणतरणप्रापणार्था व्यपि । वार्थाः वानार्थाः । वाराः सत्तादार्थाः । भजान्तकाले श्रव्हार्थाटीना धातुनां यः कर्त्ता, स तेषा आग्नकाले कर्मा स्वात्, खादादेर्भ स्वात्, ज्ञादेस् वा स्वादित्ययं: । , अत्र हश्यधाली ज्ञानायं तेऽपि पुन-र्गं इचं क्रिबिट्यार्थक लेऽपि सादिति द्वापनार्थम् । खाद घर भव — एपानमनार्थलात्, नी त्रय वह-एवां गत्यथंलात. ऋत्द हा (ह्न) - एतयी: मञ्दार्थलात प्राप्ती निर्वध:। श्रव्हाव प्रति नामधातुः, प्रब्हं करीतीत्यर्थे (८५१) छिद्धः, प्रस्य अव्दार्थल। दक्षपंकत्वादा माप्ती निषेष: । अप्रस्तियाच्याध्यतेनैव चजानकर्त्तः कर्याते सिन्नेऽपि एतत् सूर्वं नियमा-र्थम, भन्ने मान स्थादिसर्थः । अपत्र च अन्दार्थादौनान एक वारञान्तानोव यक्ष्णं, तेन पिता पुत्रेण शिष्यं वेटं पाठयति इत्यादी पुत्रादीनां न कर्मालन । अत्र अकर्माकधातीः (२८२) देशाहे; कर्मालेऽपि. (२८१) एवनश्विशीकाहेरधिकरणस्य कर्मालेऽपि, अन्नान-काकीनकर्भरिप कर्यांतं छादिति वक्तव्यन्, चतएव (८३२) चनलेव गीपी रजनि-सभागरीति स्वयं वस्त्वति । निमर्गपारीणमसौ भवन्तमध्यामयन्नासनमेकसिन्दः रिन सिट्टि:। एवं मक्सीक्षातनामक्सीक्षे सित भन्नामक्ती: क्सीखं स्नात, यथा क्रव्राइते पौड़ितो भवति ग्रूर: ग्रचमाधातयति । प्रशिचान्यवापि कम्प्रत्वं भवति, यथा फर्ल व्याजितै: व्यैदिति रघः। पाणिनि: (। अधूर, ५३, वार्त्तिकानि च।

गयमध्याययद् गोपान् याज्ञिकाक्रमभोजयत्।
स्वधामागमयच्छचून् भक्तांस्तत्त्वमबोधयत् ॥
धन्धमस्थापयद् विश्वावद्गित्वाहयद् विधिम्।
देत्यानद्श्ययच्छिकिं वेश्वमत्रावयच गाः ॥ ॥
स्वादादेश्व—रचांस्यखादयदनाययदूर्ष्टलोकः
माक्रन्यत् कप्रिभिराययदाश्व रामः।
शब्दाययन् रिपुमजूहवदादयच
शैलानवाहयदभचयदिष्टंभन्यम् ॥ पं

* क्रमेण उदाइरणं दर्शयति — विणु: गोपान गेरं (गानं) अध्यापयत, अघोङ्कः अध्ययने रत्यसान् जि:, अञ्चलकानीमकतृं णां गोपानां कर्मातम्, एवं धक्तंत्र । विणु: गोपान् याजिकातम् अभीजयत्, मुन धी वाणे मने जि: । विणु: शबून् स्वधामं वैकुग्रहम् भगमयत्, इत्वैति श्रेषः, श्री गम् छ गत्यां जि: । विणु: भक्तान् तत्त्वं यायाध्ये अवीधयत्, वृध्यी ङ अवगमने जि: । विणु: धर्मामस्यापयत्, जिः सा स्थाने जि: । विणु: वैधान् भवादयत्, यद्व ज गादाने जि: । विणु: दैत्यान् भक्तिम् भदर्शयत्, इश्चिगे प्रेश्चे जि: । विणु: या: वेणुमसावयत्, सु स्वयणे जि: । (एतेषां अञ्चलावस्था क्रमेण प्रदर्शते — गोपा गेयम् अध्येयत्, गोपा याजिकातममुख्यत्, प्रववः स्वधाम अग-अक्तम्, भक्तासत्त्वम्यस्यत्, प्रवतः स्वधाम अग-अक्तम्, भक्तासत्त्वमवुध्यन्, पर्भाऽतिष्ठत्, विधिवेदानग्रह्मात्, देत्याः प्रक्तिमप्रसन्, गावो वेणुमग्रखन्।)

[†] खादादेवदाइरणं—राजः कपिकः रखांस प्रसादयत्, खाद मन्ये जि., भव भक्तान्ताःखीनकार्णां कपोशां जानावस्थायां कम्मेकामाव अनुक्रकार्णुवात्(रूट्ट, हतीया, एवं सब्बंच। रामः कपिकः रखांसि कर्षुक्षेकम् भनाययत् भे ज पापणे जिः। रामः कपिकः रखांसि काक्रव्यत् भाज्ञयदित्ययः, भाज्य्यंककः कदि तुरीदेने भाज्ञाने जि.। रामः कपिकः रखांसि काम्म बीम्रम् भाययत् प्रापयदित्ययः। भय ङ्गतौ जिः। रामः काविकः रखांसि भन्दायथन् सन् रिपुम् भन्दाययति क्रव्यायातिः जौ महप्रस्थः। भज्ञक्षदिति के सर्वायां जिः। रामः कपिकः रिपुम् भादयम्, भद खी भन्दे जिः। रामः कपिकः स्वायाः। भज्ञक्षदिति के सर्वायां निकान् भवाद्यत् विकाः। रामः कपिकः स्वयाः कर्मस्य जिः। रामः कपिकः स्वयाः कर्मस्य (प्रतिवामकान्तावस्या क्रमेस्य अवस्य विकाः। रामः कपिकः

सारविव हिंसार्घयोसु-

वाहानवाहयत् पार्थमरींबाभचयद्वरिः । *

इर्रिस् — ग्रैसान हारयत् कीयान् ऋ चैर्नृ चानजीहरत्। कपीनकारयत् चेतुं वानरैरपि राघवः॥ स्नाभिवादयते, इहान् जानकीं सम्मणेन च। सीतां रामेण चासानमदर्भयत सम्मणः॥ 🌵

२८५। याच् आर्थ दृष्ट चि प्रच्छ रुष् ब्रू शास जिनी वहः।

यथा—कपयः रचांसि चासादन्, कपयः रचांनि कर्वं नोकमनयन्, कपयः रचांनि चाक्रतन्, कपयः रचांनि चायन्, कपयः अन्दायमानाः रिप्रम् चाह्रन्, कपयः श्रेनान् चवन्, कपयः श्रेनान् चवन्, कपयः श्रेनान्

[#] स्तववर हिं शार्वभचयो बदाइ रणं — इति: वाडान घोटकान पार्थमर्ज्यनम् चवाइ-यत् मारियर्भूता इत्थयं:, इति: वाडान् चरीन् जमचयत् चित्रच चवाडयित्यच सारियक मृक्ततात्, चभचयित्यच च हिंसायेतात् चञानका खीनक र्वेषां वाडानां कर्मातम्। (वाडा: पार्थमवडन्, वाडा चरीनभचन् इत्यञान्तावस्या।)

⁺ इदिवराष्ट्रस्यम्—रावदः कोशान् वानरान् शैलानृहारयत्, पचे — ऋचैर्मक्रुकैः वनानजीहरत्। राघदः कपौन् सेतुमकारयत्,पचे — वानरेरिप सेतुमकारयदिति शिषः। राघदो नागकी व्रहानिवादयतं स्व, पचे — लक्षणे न स्व व्रवानिवादयते स्वेति शिषः। राघदो नागकी व्रहानिवादयते स्वेति शिषः, सिवादयते द्रित सिप्पूर्वेते वर्षातुः जानो नमस्तारि वर्षते, पुनः कौ नते, (६७१) पूर्व्ववेलीपि, (८१८) फलवत् कर्षयां सानेपद्यते । स्कवार-जी नते सिवादिधातीः नंससारार्थकतात् शिष्यो मुक्तमिवादयतीलादौ (२०१) निव्यनेव कर्ष्यतम् । स्वापः सीताम् पालानम् सद्ययत, पचे — रामेष च, पालानमद्वयतित श्रेषः। पदव्यवेतित, पालानकालीन-कर्षयो स्वप्यस्य जानकालीनकर्षृत्वात् (८८८) वेदे द्रश्याकानेपदम्। पिता पुषं चन्द्रं दर्भयतीलादौ प्रजानकालीनकार्षः। पुष्य निव्यनेव कर्ष्यत्वम् । (क्षेशः। श्रेलानहरन्, स्वयाः व्यान् पदानुः, कपयः चित्रस्ववेत्, वानरा प्रित्, जानको व्रवान् निम्वादयति स्व, स्वयास्य, सोता स्वप्यस्यस्य, राम्य स्वप्यस्यस्यस्यान्यस्था।

ह्र दिग्छ ग्रन्त सम्य मुष् पचाद्या भवी दिदाः॥ *

(याच्ञार्थ-वष्टः १॥, ह-पचाद्याः १॥, धवः १॥, हिद्राः १॥)।

तमधेयेऽहं मीचं, यो मोपैर्डुन्धमदुख गाः।
फलान्यवाचिनीदृ वृचान्, वार्ताः पप्रच्छ वल्लवान्॥
रेरोध गोलुलं गोपीरअवीच मनोहरम्।
गोपालानन्वपात् केलींस्त्रचाज्यं जिगाय तान्॥
वृन्दावनमनेषीद् गा-स्तंच्छिश्चनवहद् व्रजम्।
जहारारण्यमाभीरी-देंत्यान् प्राणानदण्डयत्॥
जगान्च यज्यनो भोज्य-मकर्षत् पूतनां बलम्।
ममत्यास्तमस्त्रीधं मुमोष दितिजांच तत्।
योऽसी पचित लोकानां पुष्पपापं सुखासुखम्॥ १

^{*} याच्या चर्चा येषां ते याच्यायाः याच चर्य नाय स्ति व प्रश्तयः । पद्मान् दक्षे व द्वयंन्तस् एकं पदं, श्लोकार्विदासायं पृथक्पदकरणम्। पच चायो येषां ते पचायाः, पद्मात् इत्य दिख्यः द्रत्यादि दन्दः। दे दे येषां ते दिदाः। एते धातवः स्वभावात् दिक्सं का भवनौत्ययंः। कत्तः क्रियाच्याय्यतात् सुख्यस् कर्मत्वं चिद्धम्, चनेन तु गौषस्य कर्मत्वं विधीयते। साचात् क्रियाच्याय्यत्वं सुख्यत्वं, परन्पर्या क्रियान्यय्वतं गौषत्विति। पाणिनौये वार्त्तिक प्रतस्य दुद्दादिगचस्य सध्य यद्द्धातीः पाठासावात् "चित्रयक्षं कनको धनुसत्" द्रत्यादिकमसाध् द्रति चनुन्यास्वाभटी (क्रमदौषदः)। पाणिनः १।४।५१।

[†] तसर्थये इत्यादि। चहं तंत्रीक्षणां मीचम् चर्यये याचे, यः गीपैः सह गाः दुन्धम् चदुन्ध। यो वचान् फलानि चवाचिनीत्। यो वद्यवान् वार्ताः पप्रच्य, गोपान् वक्तानं तिज्ञासितवानित्ययः। यो गोकुलं गोपौः वरीष्ठ, गोपीरन्तः स्थापयन् गोकुलमाव्योदित्ययः। यो गोपौः मनोहरं (वच इति श्रेषः) चनवीय। यो गोपालान् भेलीन् चन्वयात् शिकितवान्। यस्य केलिविवये तान् गोपालान् चन्यां केतुमञ्जयं निगाय। यो बन्दावनं गा चनेषीन् प्राप्यामासः। यस्चित्रवान् ग

२८६। विक्समयानिकषा हान्तरान्तरे गौ-नातियेनतेना स्थुभयपरिसर्वतो विनर्ते ऽभिपरिप्रत्य -नूपद्यपर्यधो ऽधिभि:। (विक्-पविभि: २॥)। एभियोंगे दी स्थात।

वीपेत्यकाविन्नेऽभिस्तेषु भागे परिप्रती । श्रनुस्तेषु सहार्थे च हीनेऽनूपी मताविष्ठ ॥ *

गीवत्सान् ज्ञनम् भवस्त् नीतवान् । यः भाभी रीररणं अस्तर निनाय । यो देवान् प्राचान् भद्रख्यत्, प्राचान् स्टिला भ्रमासंत्ययः । वी यञ्चनी भोज्यं अस्तात् । यः प्रता वलस् भक्षेत्, पूतनां विक्रष्य वल स्टिलीतवानित्ययं । यीऽभी धिन् भस्तं सस्त्य, ससुद्रसुत्यस्य भस्ततसुत्यापितवानित्ययं । यस्त् भस्तं दितिनान् सुसीव खिष्डत-वान् । योऽभी कथा लीकानां पुर्णपापं सुखासुखं प्रचति—पुर्णं सुखं, पापम् भस्तं, प्रवित परिचान्यतो स्थं: ।

श्रव पचाया इत्यादि-पहंत गुरु शिष्यं यामं प्रष्ठिपोतीत्यादि। ब्रू इत्यनित बुवर्ष-यादणं, तेन गढ कथ मन्स प्रस्तीनां संग्रहः। व्यक्तीनां काशित, स्वर्णे कृष्यकं करोतीत्यादी प्रकृतिविक्ततिभाविन एकनेव कर्मा, तेन व्यक्तीनौका कियि इत्याव द्यारिव एकत्वान न गौषसुख्यायव द्वारः, किन्तु प्रकृतिः सङ्गानुसारियैव कियाप्रयोगः, यदुक्तं— प्रकृतिविक्ततेवापि यचीकालं द्योरिप। वाचकः प्रकृतः सङ्गां रुष्काति विक्रतिने तु इति। पचादिस—पच वच वप वद चल पत नद भव चर गाइ देव सद चप स्व संघ इत्यादि भाकातिगणः।

अ भिश्व जभयस परिय सर्वय तेथ्यसम् । उपरिक्ष भध्य भिथ्य ते, हयस ते उपर्यंधीऽध्ययंति ते उपर्यंपरि भधाऽधः भध्यि इति हिक्ताः, पसात् इतः । हुग्यरीति तिं, गख्यसंपरि विस्तेटन इत्यादी वृष्ठी खादेव, मृत् दित्या । धिक्— निर्भ्यानित्योदित्यमरः । सन्या— भनिक्षः स्थायं रित्यमरः । निक्षा— भनिक्षः इत्यमरः । भन्तरेषः तिवा, स्वते— वर्जने इत्यमरः । एन—(५१६)वैनीऽपीत्यनेन विद्वित एनप्रख्यानः । भितः— भितः स्वतः भवायः, प्रकर्षे सङ्कर्नेऽध्यतीत्यमरः । येनतेनी— याहक्ताहगर्या । भितः — सनीपोभयतः श्रीष्ठासकत्यानिसुखे इत्यमरः । उत्यतः— उभयदिशीः । परितः, स्वतः — सन्ताद्यंम्, समस्तस् परितः स्वतः स्थारः । उपयतः — उभयदिशीः । परितः,

अत्र भभिपरिमत्त्रनूपानामधेनिमेषएव यहचमित्याह वीसेति । इह हितीधानिकाने,

धिग्लोकभी खराभक्षं, समया माधवं रमा।
निका गिरियं गौरी, हा लोकं के यव दिषम्॥
कृष्णोऽन्तरा ब्रह्मयभू, नान्तरेणाच्यृतं सुखम्।
दिच्छेन हरि कद्रो, गौविन्दमित नेखरः॥
येनेयं हरिरीयसं तेने यमभितोऽर्च्चेकाः।
रामकृष्णावुभयतो गोपेशं, परितः परे॥
प्रमथाः सब्वैतः सब्वें, यभी ने यार्चेनं विना।
सृक्तिने त्तेंऽच्युतोपास्ति, सूतं भूतमभि प्रभुः॥
भक्तो विभुमभि, प्राज्ञो गोविन्दमभि तिष्ठति।
हरिं पर्यभवक्षच्यी हरं प्रति हलाहलम्॥
विष्णुमन्वर्चे ते भर्यः, यक्षाद्य छपाच्युतम्।
लोकानुपर्य्युपर्योस्तेऽधोऽध्ये च माधवः॥ *

भिः: वीभीत्यभाविक मतः, परिप्रती तेष वीभीत्यभाविक प्रभागे च मतौ, भनः तेषु वीभीत्यभाविक भागेष् सहार्थे च मतः, चनूपौ होने मतावित्यन्वयः । द्रव्यनुणिक याभि-युगपत् व्याप्तुमिन्दा वीभा । कस्यचित् प्रकारकापित्तिरत्यभावः । चिक्रं लच्चम्, भन्यत् न्यप्रम् । चभ्यादिरिह भनुपस्र्वप्य । चिक्षप्रश्रंतिभियोगे दितीया स्थादिति स्वार्थः, योगस्तिह भयेनैन, न तु श्रन्देव । पाणिविः १।४।८६ — ८०,८०,११,८५,२।३।८,भाष्यच । चपान्वप्याङ्वसः (१।४।४८) इति पाणिवित्त्यास्थाचनारं धिक्सनयेत्यादियोगादुपपद-विभक्तिमाइ भदीनिदीचितः ।

^{*} पूंचरामकं लीकं धिक् स निन्ध इत्ययं: । रमा लच्छी: माधवं समया, माधवस्य सभीपे । की वर्ताहमं लीकं हा, स विषादाहं: शोकाहें। वा । हा राम ! हा तात ! इत्यादी हा-अब्दस्य वक्षु शोकाटि-च्यक्ककलात रामादी न हितीया, सम्बीधने प्रथमेव । कच्छा नक्षप्रभू पन्नरा, नक्षप्रभू में स्थे । घच्युतं तक्षम् पन्नरेख विना सुखं न भवतीति श्रेष: । बद्दी हिर्दे दिविधेन, हेर्यदेविधे स्थित: । गीविन्दम् पति ईयरी न, गीविन्दस्य पतिक्रमिता ईयरी नस्वीक्षयं: । हरिरीशं येव ईक्षसं हरिंतन, हरिरीशस्य साहशः ईशो हरेलाह्य-

२८७। दिवो घं वा। (हिन: ६१, घं ११, वा।११)। दिवो घं ढं स्थाहा। श्रचै-रचान् वा दीव्यतीय:। *

२८८। साधनकृतिविशेषसभेदकं धं कर्ता वस्ती। (साधन-भेदकं १४, धं १४, कर्ता १४, घः १४, चो ११)।

नेत्रै: पुर्खेन मुषाभि नीमा दृष्ट: ग्रिवो जनै: । 🕆

इत्यर्थः, इरीशी चिभन्नाविति यावत्। चर्चकाः ईशमिनतः समीपे। रामक्रणी गोपेशं नन्दम् उभयतः, गोपेशस्य उभयाः पार्यथो ; परे चर्च गोपवालकाः गोपेशं परितः. गोपेशस्य समन्तात्। प्रमधाः शिवगणाः सन्वे श्चितं सन्वेतः, शिवस्य सन्वोत्त दिन्ना । प्रमधाः शिवगणाः सन्वे श्चितं सन्वेतः, शिवस्य सन्वोत्त दिन्ना । प्रमुरीचरः सृतं स्वतम् चिम, सन्वेशािषानं चलीत्यथः। प्रमुरीचरः सृतं सृतम् चिम, सन्वेशािषानं चलीत्यथः, चन्नवेशायां दिल्लम् । भक्तः निसुन् चिम, इत्यक्षावापतः, विसुविषये भक्तिभावापत्र इत्यर्थः। प्राचः गोविन्दम् चिम, चिमल्वीकृत्य तिष्ठतोल्यथः, चन विद्यार्थः। सन्धीः इरि परि चमतत्, सन्धिः स्विते लच्चीः इरिभागिऽभवदिल्ययः। इत्याद्धः। सन्द्रीः विद्याः चच्चतम् चम, विद्याः सन्वितः सन्दर्धः। भगः श्चितः विद्याः चन्नति स्वयः। भगः श्वितः विद्याः चन्नति सम्वतः स्वतः समीपे देवाः चच्चतम् चप, चच्चतान् चीना इत्यर्थः। माधवः स्वितान् उपरि समीपे पासे रत्यतः समीपे पासे रत्यरं, चन मामीपे दिल्लम्। उपर्युपरिबृद्धीनां चरतीयरवृत्ययः स्वाच उपरिवृत्तीनां विश्वश्वोनाम् उपरीत्यर्थः, तिन न दि-उपरि-योगः। चन व्याक्षार्ये यावत्यन्यस्थीतं वितीया वक्षः। इत्यां यावदर्थ्यानोत्यादि ।

- श्रुक्ती ड्रायेस्य दिवधाती: करणं कर्मासंत्रं स्थादा। भाष वामञ्जी स्थवस्थावाची, बेन दीव्यते: करणं नित्यं कर्मामंत्रं स्थात, दितीया तुवा स्थादित्यर्थ:। भातएव दिवः सदैव सकर्माकतात् भाषा दीव्यन्तं इति कर्माण प्रत्ययः, भाषाणां दीवता इति (३०५) क्रयोगे कर्माण पश्रीत्यादि। पाणिनि: १।४।४३।
- + साध्यते कर्म नियायतेऽनेनेति साधनं करणम्। तथाच कियायां साध्यायां बद्धनां कारणमां सध्ये यद वसु प्रव्यवधाननं कियानिपत्तिकारणं विविधितं तदेव साधनं भवति, प्रतण्य "साधकतमं करणन्" इति पाणिनि: (१।४।४२)। तथाप → कारणाव्यवधाने तुक्षियानिपत्तिकारणन्। यदै विविधतं तेषु करणंतत् प्रकौर्तित-

२८१ सङ्वारणसमोनार्धार्थिवनापृथङ्-नानादी:। (सङ्कानार्थः २॥)।

एभियोगि ची स्थात्।

सहियाचीं उच्यतो. भेदेनालं: तेन समोऽस्ति कः । विकारे रिहतः यभुः, सतामर्थः थिवार्चया ॥ स्रीनेंग्रेन विना, यभुः ष्टथक् विखेन, तत् पुनः । न नाना यभुना, रामात् वर्षणाधोचजोऽवरः ॥ ॥

मिति । यहा "कियायाः परिनिथितिय्देशापाराटनन्तरम् । विवचते यहा तत्र करणलं तदा स्मृतम् ॥ वन्तुतसदिन्द्देश्य न हि वसु व्यवस्थितम् । स्थाल्या पच्यत हत्येषा विवचा द्वयते यतः ॥ इति इरिकारिका । कार्यन मनसा वाचा हत्यादी—वहनामपि 'करणलम् । फलभाधनयीग्यः पदार्थो हेतः. यथा—विद्यया यशः, धनेन कुश्लेमित्यादि । फर्चथौनं साधनं, यदधौना कर्तुः प्रवृत्तः स हेतुरिति साधनहेलांभेदः । "ह्व्यादि-साधारणं निर्वापारसाधारणञ्च हेतृत्वम्, करणलन्तु कियामात्रविषयं व्यापारित्यतस्य' इति सिद्धान्तकीसुदौ । विश्रेष्यतेऽनेनिति विश्रेषणं, जटामिन्तापस हत्यादि । भेदयति सामान्यावगमे इतिरस्थो व्यवच्छितित यत् तत् भेदकं व्यवच्छिदकं, नामा श्रिष इत्यादि । विश्रेषण विद्यमानं, भेदकन्त्विवयमानित्यनयोभेदः । प्रकृत्या पटः, जात्या बाह्यणः, जनमा पन्थः, स्वभावेनोदारः, सुल्लेन याति, साक्तल्वेनादन्ते, प्रार्थेण वैच्यतः, दशाहेन पर्ध्यतः चल्या काणः इत्यादी पट्टिभग्नादीनां प्रकृत्यादिः साधनत्वविवचया करणे त्रतेयित दर्गसिनः । प्रकृत्यादिश्य उपसंख्यानमिति वार्त्तिका । यः करोति स कत्तां, कत्याययः कत्ते इति तार्किकाः । "स्वतन्तः कत्ती' इति पाणिनिः (१।४।५४) । "कियासख्यप्रयोजकी कत्त्वीं कत्तां इति कमदीय्वरः ।

साधन इंतृ विशेष प्रभेदकम् इति समा हारदन्दः । धं करणं, घः कर्ता । साधनादीनि ध-संज्ञानि स्युः, कर्ता घमंज्ञः स्थात्, उत्तभयव च स्थादित्यणः । अवैदिति । नेवैः करणैः, पुर्ण्यन हेतुना, भूषाभिर्विशिष्टः, नासा भेदकीन, शिवः, अभैः कर्त्तृभि-दंष्टः इस्यन्वत्रः । पाणिनिः २।३।१८,२१,२३ ।

 चर्यः प्रयोजनम्, सद्य च वारणख समय जन्य चर्यय ते चर्याः प्रभिषेयाः वैदां ते सद्दवारणसमीनार्यार्थाः । नाना चार्या येषां ते नानायाः । ततः, सद्दवारण-समीनार्यार्थाय विनाच प्रयक्ष च नानायाय ते तैः । एभियोगे त्यतीया स्वादित्यर्थः ।

२८०। कालभाडडे वा।

(कालभात् प्रः, उं ।, वा ।१।)।

कालवाचिनो नचवात डे त्री स्थादा।

रोहिखामभवत् कणो रोहिखासीच चिक्डका। *

२८१। मानाद्वीपुसायां छे।

(मानात् प्रा, वीप्तायां ७।, दि ७।)।

यतं यतं पयोऽपीप्यत् वकान् विशाः प्रतेन गाः ।

अप अर्थेनेव योगे, न तु अल्टेन, तेन सह। गत: पिचा इत्यादी व्यवधानेऽपि स्थात : एवं सहार्थ। दिसिर्गस्यमाने रिप स्वात । सहेत्यादि — अच्यतः ई्रा शिवेन सह अर्चः र्दुशित र्दश्यातीः किपि र्दशयन्दः, एवं साकं साहै समामियादिभिः। अधातेश्यीः भेदेन भनं भेदी व्यर्थ इत्यर्थ:, एव साम्रा सा इत्यादिभिर्वारणार्थ:। तेन अच्छतेन समः कीऽस्ति. एवं समान तत्त्व इत्यादिभिः, इवशब्दस्य तु साहक्रययोतकत्वेन वाचक-लाभावात् तेन योगे न स्थात्; एवं तुलीपमाप्रब्द्यीगेऽपि न स्थात्, यथा क्रणस्य तुला नास्ति इत्यादि । अत्रत्र समार्थैः षष्ठापीति (३०२) सूचे बच्चति । अस्पर्विकारे: कामजीघादिभिः रहितः चीन इत्यर्थः, एक्सल्याटिभिः। सतां साधनां शिवार्मया भयं: प्रयोजनम् । ई्रोन विना यी: चिवर्गसन्पत्ति-र्नस्यादिन्ययं:। प्रकार्वियेन पृथका, विश्वस्य नश्वरत्वादिनार्थः। तत् विश्वं पुनः प्राभुना न नाना न भिन्नं, विश्वस्य प्राभुमय-त्वात्। पृथगिवनानानाभिस्तृतीया विशीया पश्चभी चेति पाणिनिः (२।३।३२)। अव यस्ये पृथे छनानाभन्दास्यान्त हतीयेव । अन्यार्थेन तु पश्चमी । आद्यभन्दात्— भधी तत्रः क्तरण: रामात् वर्लदेवात वर्षेण अवर: कनिष्ठ इत्यर्थ: अव अवरणश्रदेयोगे वर्षेणीत हतीया। एवं मासीन पूर्वः, अस्त्रेण कलहः, गुड़ेन सिय इत्वादि। अत्र प्रसिती-ल्मकाभ्यां योगे त्तीयासप्तम्यौ स्थातानिति (पाणिनि:२३।४४) वक्तव्यमः। पाणिनि: र। ३।१८, ३२.०२, वार्सिक ञ्च।

नचवावका श्रित्यादयः ग्रन्दाः, चन्द्रपत्नीष् तक्तत्रचविश्विष्ठकालेषु च वर्तनी।
भव च,काले वर्त्तमानादिश्वन्यादिशब्दादिधिकरणे छतीया वा स्थादित्यर्थः। क्रम्यः रीहिस्यां
रीहिकीनचवयुक्तकाले सभवन अन्तर्भार, चिक्डिका च रीहिस्या ताद्ये काले साधी-दवतीयां। भव रीहिस्यामिति स्थिकरणे रीहिस्या इति छतीया वा। एवं प्रये पुर्येषावा गर्क्कदित्यादि। काले किं, रीहिस्यां प्रौतिश्वन्द्रस्य। पाणिनिः राश्ध्या दिल्लेषेन क्रीणाति, पश्चनेन क्रीणाति, दिल्लोणं पश्चनं।

२८२। संज्ञोऽस्मृतौ। (संग्र: ६१, पस्नृतौ ७१)।

स्मरणादन्यस्मित्रधे वर्त्तमानस्य संपूर्वस्य जानाते हे वी स्थादा। संजानीस्य स्ब-मीया च संजानीहि ततः शिवम्। 🕆

२८३। संदानो भेऽधर्मो नित्यम्।

(संदान: ६। भे ७।, ष्यधर्में ७।, निखं १।) ।

संपूर्वदानसम्बन्धिनि अधर्मो भेत्री स्यातित्यम्। संयच्छतेसागोप्येष्टं त्रीयः संयच्छति त्रियै। ः

^{*} ढे कसंपि प्रयुज्यकानात् मानवायकात्. कसंयो विशेषणीभृतादिति यावत्, वीसायां वाच्यायां हतीया वा स्यादिव्यथं:। मानम् द्यत्तापरिक्षेदकं, तेनात परिमाणवाचकस्य मञ्जावाचकस्य च ग्रहणमिति । विणः प्रतं प्रतं वत्सान् प्योऽपीष्यत्, प्रतेन
गाथ पयोऽपीष्यदिति प्रेपः। स्रव धतं धतमिति कसंपि शतेन दति हतीया वा। प्रतं
प्रतमिति पन्तवीसायां दिलं, प्रतेन दति हतीयया वीसाया उक्तवान् न दिलम्।
(ग्रतं ध्रतं वत्साः गावय पयः चपुः इति स्रवान्तवाकां, वत्सान् इति ना इति च सव्यान्तकः कृतं कसंप्रतम्।) विद्रोणेन कीषाति दिह्रोणं काणाति, विद्रोणपरिमितं द्रव्यं क्रीणातीत्यथः। पश्चर्कन कीणाति पञ्चकं काणाति, पञ्च पञ्च प्यन् कीणातीव्यथः। दिद्रोणेनित
पञ्चकेनिति च सम्धणि हतीया वा। दौ दौ द्रोणो परिमाणमस्य दति समासन,
पञ्च पञ्च परिमाणमस्य द्रत्ये विह्नित-तित्तिप्रयथेन च उक्तवात् न दिलम्। स्रव
"गस्यम।नापि किया विभक्तौ प्रयोजिका दति, प्रतेन धतेन वत्सान् पाथयति पयः,
प्रतेन परिष्क्रियोवर्थः।'' दति सिद्धान्तकौसुदौ । "दिद्रोणेन धान्यं कोणातीति"
प्रक्रवादिश्य उपसंख्यानमित्रस्यस्थीदाहरचिनिति सवैव ।

[†] समी जा: संज्ञानस्य, न स्कृतिरस्कृतिस्याम्। हे माधी लं स्वमात्मानम् ईशा शिवेन च संज्ञानीष्य सम्यक् ज्ञानीहि, (प्रध्य) संप्रतेरस्कृतौ इत्यात्मनेपदम्! चन ईशा इति कसंगि वतीया, स्वमिति विकल्पप्यः। स्कृतौ तु — ततस्वदनकरं थिवं सन्नानीहि स्वर इत्लर्थः। पाणिनि: २,३।२२।

[‡] संपूर्वस्य दा-न 'दाने' इत्यस्य प्रयोगे अधर्मे धर्माविक्डं भे सम्प्रदाने नित्यं इतीया स्मादित्यक्षे:। श्रीमः श्रीपति गोष्या पर्शस्त्रस्य सूष्टं वाञ्कितं संयक्षते स्म. इत्त-

२८४। यसौ दित्सासूयाक्रोधेर्व्याच्ही इ-**खाङ्ग**ञ्चाचस्पहिशप्राघीचाप्रतियुप्रत्यनुगृघार्य्यर्था मं ची तादण्यें च।

(यसी ४।, दिल्ला -- धार्थीयां: १॥, भं १।, ची ११।, तादर्धे ०।, च ११।)। यसी दातुमिच्छा, प्रस्थादयः स्थादेरर्घय यसी, तद भ संतं स्थात, तत्र ची, तादर्थे च 🕸

वान ! चत्र गीव्या इति चवर्म्मसम्प्रदाने स्तीया । (८०८) दान: सा चेम्रार्थे इत्यात्मने-पटम । अधि में किं - श्रीशः श्रियै निजपत्नी संयच्छति इष्टमिति श्रेषः । "अश्रिष्टव्यवद्वारे दाणः प्रयोगे चतुर्थार्थे हतीया" इति वार्त्तिकम ।

* भागितिस्यां युः भागितियुः, प्रत्यनुस्यां गृः प्रत्यनुगृः, स्थाय क्रुस सावस स्ट्रिस भप च राध च ई च च भाषतियुष प्रत्यनुगृष धारिय ते, तेवामर्थाः स्थाङ्गद्याघस्य दिश्रपाधी-चाप्रतित्रप्रवातुगृधार्थयाः। ततः, दित्सा च भन्या च क्षीधय ईष्णी च विचय द्रीहय स्थाङ्गञ्जाघसुहिश्यपाधीचाप्रतियुवस्थनुग्रधार्थयांय ते। दानस्य पार्वसम्प्रदानम्। "कर्माणा यमभिष्रति स सम्प्रदानम्" इति पाणिनिः १।४।३२। "जियया यसभिष्रिति सोऽपि सम्प्रदानम्'' इति वार्त्तिकम्। "प्रदानाभिसम्बय्यमानं सम्प्रदानम्" इति पद्मनाभः ।

दात्मिका दिला, काशीस्थविषाय गां ददातीत्यादि सिडार्थम् इक्छापयं नगहणम्। दाननु खस्रत्यंसाननर परस्त्वीत्पचनुकूनव्यापारः, वतएव रनकस्य वस्तं ददाती स्थादी न सन्प्रदानलम्। श्रवि भयं ददातीत्यादिप्रयोगस्तृपचारात्। एवच "ददात्यर्थस्य गौणलेऽपि सम्प्रदानं भवत्येव, खिष्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटं ददातीति भाष्यप्रयी-गात''। सिखान्तकौसुदीटीका। मममग्राद्याचे दानमित्यादिषु तु निवचावशान् न सम्प्रदानम्। विविधं हि सम्प्रदानम् — "प्रनिराकरणान् कर्मुख्यागाङ्गकर्भणे सितम्। ग्रेरचानुमतिभ्याञ्च लभते सम्प्रदानताम् ॥'' **रति इ**रिकारिका। तच घनिराक्षर्त्त सम्प्रदानं यथा, देवाय वस्त्रं ददाति ; प्रेरकं सम्प्रदानं यथा, याचकाय धनं ददाति ; भनुमन्त सम्प्रदानं यथा, गुरवे गांददाति । भन्या गुणेषु दीषारीपः, क्रीधिश्वत्तविकारः विशेष:, ईर्ष्या अवमा विधिरनुराग:, द्रीहीऽनिष्टाचरणमः। अस्यायर्थाना धात्ना कत्तंये प्रति चत्त्यादिकं तत् सम्प्रदानमिति। "कृषद्रदीरपस्टयी: कर्म्यं रित पाणिनिस्त्रेण (१।४।३८) देवदर्श चंक्रुध्यति राजाननभिदुस्ततौत्यत्र कर्स्यणि वितीयैनः ददातु सङ्गाः स सुखं हरिः, स्नरात् गोपीगणीऽस्यति कुप्यतीर्थति । स्न रोचते दुद्यति तिष्ठते ह्नृते-ऽस्नाविष्ट यस्ने स्पृह्यत्ययत च ॥ *

गर्गी राध्यति रामाय क्वच्लाय सोचते वृज्ञे। श्रभाश्यमं पर्यालोचयदित्यर्थः ।

न तु चतुर्थी। स्थाधावयं रह स्थिया स्वाधित्याप्रापनेच्छा, एवं क्र-साघ अप-धातृनां यथाक्रमं क्रवन साघन-अपनै: स्वाधिप्रायक्षापनेच्छा अर्थः। भत्यप्रव "साघिर्यं ज्ञीप्मा" इति कमदोश्वरः। "साघृहुङ्खाशपां प्रयोगे यत् प्रपितृनिक्छा तत् सम्प्रदानं स्थान्" इति गीथीनन्दः। स्थादीनां प्रयोगे यं प्रति स्वाधिप्रायक्षापनेच्छा तत् सम्प्रदानं स्थान्" इति गीथीनन्दः। स्थादीनां प्रयोगे यं प्रति स्वाधिप्रायक्षापनेच्छा तत् सम्प्रदानमित्यः। स्विष्ठिष्ठाते कार्याव सम्प्रदानम्। राध इति देवौदिकस्य स्वादेश यहणं, राध ईत इति वगीरन ग्रभागमप्रयानीचनं तत् सम्प्रदानमिति। भाषितपूर्वप्रयाति क्षाति पूर्वप्रयाति क्षात् ति प्रयात् सम्प्रदानम्। प्रत्यत् पृत्वप्रयाति (नत् गिरतेः) पूर्ववक्तः प्रोत्भावनमयः, तत्र पृत्वप्रयाति सम्प्रदानम्। प्रत्यत् पृत्वप्रयाति तत् गर्वप्रयानम् । प्रत्यत् पृत्वप्रयाति स्वादि पार्यप्रयानां यो निषयः स सम्प्रदानमं गः स्थात्, तन च चतुर्थी स्वादित्यर्थः। ताद्यये इति—स चासौ भ्रथेयित तद्यः तस्य भावस्वादय्यं, एवच तस्याये निवित्यदर्थः, तदर्थ एव ताद्य्ये, तत्य, ताद्यंच ताद्यंच रक्षक्रंभि ताद्यं तस्यन् प्रयोगनं तस्यात्, यस्य निवित्तस्यादि चतुर्थीत्यः। यथा— जानाय पाठः, समक्षाय धूम इत्यादि। पार्णिनः २।३।१२,१।४।३२—४१, वात्तिक्षच।

विभीषणायाश्चयाव राज्यं प्रत्यश्र्णोद्ययः। प्रतिज्ञातवानित्यर्थः।

रामः प्रत्यग्रणात्तस्मै नत्मणोऽन्वग्रणात् कपिः । रामं वदन्तं प्रोत्साह्यामास द्रत्यर्थः।

मर्जी धारयते सर्व्यं सङ्गास्तं भज स्ताये । *

२८५। श्रुतार्थ वषड्ढित सुख खाहा खधा

खिस्त नमोभि:। (श्कार्थ-नमीभि: ३॥)।

एभियोगि ची स्थात।

869

दैलेभ्योऽलं हरि:, पूणे वषट, सङ्गो हितं सुखम्। स्वाहामनये, स्वधा पित्रे, स्वस्ति धात्रे, नमः सते ॥ 🅆

^{*} गर्गी मुर्नि: व्रजे गीठे रासाय वर्लद्वाय राध्यति चा, क्रणाय ई.चते चा, गासच्य क्रमणस्य च मुभागभं पर्याली वयदि थर्यः (पर्याली चयदिति, भिक्तिती वा चुगदय द्रति ज्ञापकात् लोच् जीचे इति भौवाटिकात् स्वार्थे अः)। रामः विभीषणाय राज्यम् भाग्याव यशय प्रत्यस्थीत् दातं प्रतिज्ञातवीनित्यर्थः। लच्चणलचीरामाय प्रत्यस्थान, कपि: सुर्योवः (तस्मै रामाय) भन्वस्थान्, विभीपणात्र राज्यं यशय दास्थासीति व्दर्ता रामं साधवादैः प्रोत्साहयामासैत्वर्थः । सर्त्वः भिव[ः] सङ्गी भक्तेश्यः सम्बे (वाज्यिःतं) धारयते, द्याल्त्या शिवस्य चधमर्णलेन निर्देशः, धारयते इति पासवत्कर्त्तरि (८१६) भासानेपटम्। हे साधो मुक्ताये मुक्ताये तं सर्वं भन, भव मुक्ताये इति ताटर्थे चतुर्थी। यच निमित्तस्य कर्म्यक। रक्षेण सह थीगो वर्त्तते तत्र (३११) सप्तस्येत्, यथा वस्त्रेषु रजक सवधीदिति। अत्रत् सर्वेष सह स्तीर्नयीगः।

[🕇] मक्तः मर्थो येवां ते म्रलार्थाः मल्यकप्रभुसमर्थपर्थातप्रस्तयः, ते च वषट् च हितस सुखञ्च खाहा च ख्रधा च ख्रस्ति च नमय तै:। भन्न हित सुख इत्यनंन हितार्थ-सुखार्थथीय इषम् । वषट् स्वाइः स्वधा स्वस्ति नमः इत्येतेषां त्यागार्थानां मन्त्रार्थानः स ग्रहणम्। भव "प्रयंशब्देन प्रयोजनार्यानां ग्रहणम्; हिरुप्रब्देन कल्यापपर्याय-पठितानां भद्रश्रीभनशिवादीनां चाधुमध्तीनाथ ग्रहणम् ; सुख्यव्हेन सुत्रीत्यादीनां

२८€ं। हेनाशिषि वा।

(ढेन २।, [भयवा दे ७।, न ।२।], भागिषि ७।, वा ।१।)।

सङ्गः सतां वा शं भूयात्। *

२८७। परिक्रियो घेवा।

(परिक्रिय: ६, र्घ ०।, वा ।१।)।

भक्त्ये सुतिः परिक्रीता सङ्गिविणो क्षारिभिः। प

ग्रहणम्'' इति भरतः। नारायणं नमस्त्रत्य द्रव्याँटी छपपदिविभक्तीः कारकविभिक्तिर्गरी-यसीति (वलीथसीति वा) न्यायात् कर्मावम्। पाणिनिः राशिर्द, वार्त्तिकचः।

दैशेश्व इति — इर्दिलंश्यांऽल समयं । पूर्ण म्याय वषट, पूर्ण यहातव्यं तत् वषट् इत्यचार्यं दातव्यक्तित्यं : । सद्वाः माध्य्यो हितं सम्बन्ध भवतोति श्रवः । अग्नयं स्वाहा, पित्रे स्वधा, धात्रे स्वस्ति, मते विषात्रं नमः, अग्न्यादिश्या यत् दातव्य तत् क्रमेण स्वाहा इत्यादि उचार्यं दातव्यक्तित्ययं:। भत्र भन्नार्यहितस्वये यांगे षष्ठापीति । १०९१ वक्तव्यम् , "भन्नार्थे: षष्ठापीव्यतः" इति क्रमदीश्वरः । तेन प्रसुर्वुभूषभुवनवयस्य, नाप्रीयौ-दस्य क्रयनेत्यादि साधु ।

- ट-शर्व्दन कर्म किया घोचाते, टशब्दस्य कियावाचकलं घे चादिटे का: (१०८२) इत्यच मादिटे मादिकियायानित्यर्थेन स्वय बच्यति । तत्य प्रयुक्तमानेन कियावाचका-पदेन योग माणिवि (इष्टाणांविष्करणे) गस्यमानाया चत्याँ वा स्यादित्यर्थः । अथवा माणिवि गस्यमानायां चत्याँ वा स्थादित्यर्थः । अथवा माणिवि गस्यमानायां चत्याँ वा स्थात् न तुट कर्माण प्रयुक्तमाने इत्ययः । कर्माण तु क्षां प्रश्चमाने इत्ययः । कर्माण तु क्षां प्रश्चमाने इत्ययः । कर्माण तु क्षां प्रश्चमाने इत्ययं । कर्माण तु स्थादी न स्थात् । माणिवि क्षां त्रिष्म क्षां प्रश्चिम स्थादि । सहाः सत्यां वा इति पचि षष्ठीविधानात् षष्टायं एवायं विधि-रिति, तेन यामे क्षां स्थादित्यादो न स्थात् । भव स्वस्विवजंत्रभाषायुष्यप्रयोजन-मद्रभद्रहितसुख्यप्यश्योभनार्थेरव योग ज्ञयम् । पाणिनिः र।३।०१।
- † परिपूर्वस्य क्रीणातीः प्रयोगे थे करणे चतुर्यो स्थाद्या इत्ययेः । भक्त्यै इति सिक्षः साधिक्षः विकास सिक्षः स्वाधान् भक्त्यै मुक्तिः परिक्रीता, परिक्षः श्रव्यक्षः स्वादिवेणा, मुक्तिः परिक्रीतिति श्रेषः । उदाहरणस्ववेन विकल्पो दर्शितः । एवं द्रोणाय द्राणेन वा परिक्रीती व्रवलः । परैः किं, शर्तन क्रीताऽत्यः । वेतने एवायं विधिरिति कमदीत्रयः । "चतुर्यो च परिक्रीजी वेतनादौ करणें" इति तत् सूत्रम् । व्यतीया सिक्षेत्, चतुर्येश्ये विधानिति गीयीचन्द्रः । व्यवस्थायं परस्वे वाश्रन्दे देशकः वक्तये वादयमध्यः तित्वेनास्य निव्यत्वप्राप्ते, विकल्पार्थं वाग्रद्यक्षम् । पाथिनिः १।४।४४ ।

२८८। गत्यर्थमन्यढे चेष्टावच्चेऽनध्वाकाक-भ्रकगुगालनावन्त्रे वा।

(गत्यर्थमन्यते ७।, चेष्टावद्ये ७।, घनध्या—भन्ने ७।, वा ।१।) ।

गत्यर्धमन्यत्यो दें क्रमान्मार्गकाकादिवर्जे चेष्टावज्ञयोसी स्याहा।

न लाय व्रजिति श्रीयो व्रजं वृजिति केयवः ।

न ला त्रणाय मन्धेऽहंन ला मन्धे त्रणं खल ॥

चेष्टावज्ञे किं—मनसा दारकामिति; लां मन्धेऽहं जनाईनम्।
श्रश्चादी तु-—गच्छत्यनन्तः पत्थानं, न ला काकंस मन्धते। *

गतिर्धीयस्य म गत्यं:, सच सन्यस्तत् तस्य ढंतिसन्। चेष्टाच अवज्ञाच सत्तस्मिन्। न अध्या भनध्याः काकथ श्रुकथ श्रुगालय नीय अवस्य तनः, न तन् अकाकः-श्कग्रगालनावत्, भन्ध्वाच भकाकग्रकग्रगालनावत्रघ दर्याः समाद्यारमस्मिन । यथा-क्रमर्शनार्थं नञ्डययीगः । चेष्टा कायक्ततस्यापारः, अवज्ञा अपक्षष्टतेन आनम्। तत्र - गत्र्यथातीरध्ववर्त्तित कर्माण चेष्टायां गम्यमानायां, मन्यते. काकादिवर्जिते कर्स्माण अन्तराया गस्यमानायां, चतुर्थीवा स्यादित्यर्थः। मन्य इत्यत्र स्थना निर्हेशात् मन भववं भिने प्रति तनादिपितिती न रुद्धते; यथान लां त्रणं मन्वे। भतः त्वणाय न गणयतीत्यादि चमाधु । बजायिति---यौधः बजाय बजिति, कीभवः बजे व्रजति, पाद वारेणा गच्छतोत्यर्थ:। हे स्वल ऋ इंत्वालां हणाय न मन्ये, त्वालां हणं न मन्ये, त्रणाद्व्यपत्तरं मन्य दूल्ययः। मनधातीर्येन कर्मणा घवजा गम्यते तचैव चतर्थी वा स्थात, चतएव त्वा इत्यत्र न चतुर्थी; इदमेव अमदीयरेण "युपादादरन भिधानाम स्यात" इति सूर्वेण स्पष्टीकतम्। मनसा दारकामेतीत्यच चेष्टाभावात्, लां मन्बेऽइं लनाईनिस्तियात च भवज्ञाभावात न चतुर्यो । भननाः पत्यानं गच्छतीत्यत्र भध्वतम् न-त्वात्, स त्वात्वां काकं न सन्धर्त इत्यव काककर्मक लाग्न न चत्थीं। एवं ग्रकादि-कर्माग्यपिन चतुर्थीस्यात् । केविल गुर्कत्यम ग्रुक य दति वा पठन्ति । एवं, तादर्थे चतुर्धीसिज्ञावपि, गामाय सङ्गच्छतीत्यादिषु (८७५) समी गमच्छित्यादिमा पढलादात्मने-पदप्राप्तिनिरासार्थनिदनियाहः। पाणिनिः २।३।१२,१०; वार्त्तिस्ताः।

२८८। यतीऽपायभी जुगुपापराजयप्रमादा-दानभू चाणविरामान्तर्षिवारणं जंपी।

(यतः ५।, भपाय-वारणं १।, मं १।, पौ ।१।) ।

यत एते तत् जसंद्रं स्थात्, तत्र पी। *

विभीषणः पदाद्वष्टो, भातुभीतो, जुगुपितः। पापान्, पराजितो दुःखा-दप्रमत्तो विधेः, सतः॥ यात्तविद्यो, सुनेर्जातो, स्वातुष्त्वातो निजै-भवान्। विरतोऽन्तर्ज्ञितो दुष्टान्, योकान् रामेण वारितः॥ १

[•] घपायस भीस जुगुसा च पराजयस प्रमादस पादानस मूस पायस विरामस प्रमादिस वारणसित समाहार: । एते यसात् भवित्त तदपादानसं स्थात्, तत्र पसमी स्थादिस्तयं: । प्रपायस्त्र ने, भीभंगं, जुगुसा निन्दया मनीनिवृत्तिः, पराजयः सीदुनमक्या निवृत्तिः, प्रमादः श्रास्त्र विदिनक्यां करणम्, प्रादानं यहणं, भूरत्पतिः प्रादुर्भावस् , वाणं रचणं, विरामी विरितः, प्रनात्रं रत्या । प्रपिवतिक्रयसित विधापादानिम्यते ॥" विविध्य कि विश्वद्यात्तविषयं तथा । प्रपिवतिक्रयसित विधापादानिम्यते ॥" इति हरिकारिका । "भूवमपायेऽपादानम्" इति पाणिनः ११८१२ । तत्र पस्मी २११२२ । भीः वाणम् ११८१२५ । पराजयः ११८१२६ । वारणम् ११८१२० । प्रनादिः ११८१२ । मृः ११८१२० । प्रवादानम् ११८१२ । एवं पठनं, प्रवर्णं, ज्ञानमध्ययन-मित्यादिः, पत्र वपयोगे इति कयनात् नटस्य गायां प्रणीति, न तु नटात् ; प्रतप्त "गुगुस्ते प्रति वर्षाम् स्वीर्तं । जुगुसा, प्रमादः, विरामस—वार्तिकस् ।

[†] विभीषण इत्यादि—विभीषणः पदात् स्थानात् अष्टचिततः, भातः रावणात् भीतः, पापात् जुगुस्तिः पापं निन्दन् तस्मात् निवच इत्ययः, दःखात् पराजितः दःखं सोटुमयक्या निवचः, विभेः मास्त्रविद्वितकर्ष्यंणः चप्रमत्तः चिनवचः, सतः पिष्ठतात् चात्तविद्यः चाना गर्डोता विद्या येन ताह्यः, सुनैविद्ययवसी जातः जत्यतः, भात् राव-णात् (वधोयतात्) निजैराक्षीरैस्त्राती रिवतः, भवात् संसारव्यापारात् विरतो निवचः, दणात् (रावणात्) चन्तर्वते जुक्वायितः, रामेण श्रोकात् वारितः लामणं लद्दराजं करिवासीत्यादि प्रयवचनसुक्ता श्रोकात् निवारित इत्यपः। एवं यवस्रो गां वारयित, कृपाद्सं वारयतीत्यादि।

३००। श्वन्यारम्यार्थारात्विहिर्वनर्तेप्रति-पर्यापाङ्दिक्राग्दैहें तुयवर्षे च।

(भन्य-मन्दै: ३॥, हेतुयवर्थे ७।, च ।१।)।

एभियोगि हेती यबन्तस्यार्थे च पी स्थात्। *

श्राङ् व्याप्तिसीकी-स्वागिऽन्यी, प्रतिदाननिधी प्रति । पं नेतरो विणुरीयानात्, भवात् प्रस्ति सीऽर्च्यते । सोऽस्मदारात् विष्क्ष्वत्, प्रां विना नार्थी व्यवहिते ॥ भक्तेः प्रत्यस्तं यस्थोः, प्रद्युक्तः केयवात् प्रति । पर्य्यनन्तात् त्रयस्तापाः, श्रास्त्योः सेव्यतां हरिः ॥ ब्रह्मास्त्यासकलात्, पूर्वः क्षणाद्रामोऽवरो गदः। श्रानुन्दादीखरः शैलादासनादीचतेऽलकाम् ॥

ग्रैसमारु श्रासने उपविश्वेत्यर्थः । 🕸

भ प्रमुख चारस्यय प्रस्तारस्यो, तौ पर्थो येवां ते प्रस्तारस्यार्थाः । दिशि वर्त्तमानाः प्रव्दाः दिक् प्रव्दाः, प्रस्तारस्यायां य पाराञ्च विदय विना च स्तते च प्रति च परि च पप च पाङ् च दिक प्रव्दाय ते तैः । यप् प्रति क्षाच्छाने यवादेशः, तस्य केवलस्यासम्यवात् तत्तस्य ग्रह्मम्, तस्यार्थी यवर्षः, हेत्य यवर्षयिति हेत्यवर्षे तस्यिन् । दिक ग्रन्दा प्रति दिन्देशकालवाचकानां निर्देशः, ते च पूर्वपरादयः प्रागुदक् प्रस्तगादयः । किञ्चाव दिन्देशकालानां चयावानेव ये वाचकासिवानेव यहणं, तेन कालनाववाचकस्य मासादेनं प्रसन्तः । प्रसार्थे रार्थार्थेरागदायौरष्टिभः दिन्याचक प्रदेष योगे, हेतौ प्रयुज्यमानात् किञ्चात्, यवस्तस्यार्थे गस्यमाने च, पञ्चमी स्यादिस्थंः ।

[†] प्रति परि चप चाङ् चतुर्णामधिविभेषेव यहणसिस्याह चाङ् व्याप्तीत्यादि— चच चाङ् व्याप्तिचीनोरयंगीवंत्तते, व्याप्तिरिभिविधः, चौमा चवधः । प्रति प्रतिदान-निषो वत्तते, दानच निधिचिति चमाहारे दाननिधिः, स्वतान् पुंच्तं, प्रतेदानिधिः प्रतिदाननिधिन्तिस्यन्, प्रतिदाने प्रतिनिधौ चेत्यर्थः । प्रतिदानं विनिमयः, प्रतिनिधि-स्त्यः । चनौ पर्यंपौ त्यागे वर्जने वर्चेते । पाणिनः १।४। प्रदूप्ट, ८२ ।

[‡] नेतर इति—विण्: ईशानात् शिवात् न इतरः न भिन्नः, न भीच इति केथित। ंस् विण्: भवात् प्रस्ति जन्मन चारस्य चर्चते। प्रातःकालं समारस्य इत्यादिकन्तु, उप-

३०१। वारादधै:। (बा ।१।, बारादवै: २॥)।

दूरान्तिकार्धैः पीस्यादा।

रामाद्रद्रस्य यो दूरं पापाइ:खस्य सीऽन्तिकम्। #

३०२। समाधैनार्थस्त्रसाद्वितसुखैर्निर्द्वारे सम्बन्धे दे च षी।

(समार्थ—सुद्धै: २॥, निडांरे अ, सम्बन्धे अ, दे अ, च ११।, घो ११।)। एभियोंगे एषु च घी स्थात्।,

पद्विभक्तोः कारकविभक्तिगैरीयसौति न्यायात कर्म्याण क्रितीया। सः विख्युः ऋस्रातः भारात भाषाकं निकटे इत्यर्थ: ; लत् विहः तव विहिरित्यर्थः । हषात् धर्मात विना ऋते च ग्रं सुखन अर्थय न भवतोत्पर्थः । विना ऋते इति द्वाभ्यां यंगि (२८६) दितीया च, विना प्रच्देन यीगे (२८८) सतीया च भवतीति बाध्यम्। प्रभी: भक्ते: प्रैति प्रतिदानम् अन्तरं सीच, यः श्रमी भित्तां करोति श्रमुक्तस्य सुतित ददातीलार्थः । प्रयुक्तः कामदेवः कंग्रवात् प्रति ¦क्यवस्य तुल्य इत्यर्थः । चयक्तापाः चाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिक-संज्ञकाः भागनात् परि भागनेन वर्जिता इत्यर्थः । एवं भाषानैनात् चयसापा इत्यपि। भा सत्यीः सत्यपर्यनं इरिः धेव्यतान्। भा सक्तलात् सक्तलं जगत् व्याप्य बद्धापरसियर: ऋसि । रासी बलराम: क्रमात् पूर्वः पूर्वकालीन: ज्येष्ठ: इत्यर्थः। गदी !गदनामको बालक: कचात् भवर: पश्चिमकालीन; कनिष्ठ: इत्यर्थ:। ईश्वर: शिव: भानन्दात् हेती. ग्रैलात् ग्रैलम। यश्च आसन। त् आसने उपविद्या अलकां कुवेर-पुरीम ईचते प्रस्तति ; भन भारुक्कति यननस्यार्थे शैलादिति कर्माण पश्वमी, उपविद्यंति यवलस्यार्थे पासनादिति पधिकरणे पश्चनौ । कर्माधिकरणाभ्यामन्यम यवर्षे पश्चमी न स्थादिति प्राप्तः । पाणिनिः राशारः ,११,२५,२८,३२ ; वार्त्तिकाः । भव वक्तव्यम् "करणे च सीकाल्यक्तच्छ्कतिययसामुक्तविषयस" (पाणिनि: २।३।३३) इति सूत्रेण "सीकान्यक्रमुदन्वता" इत्यादी पञ्चमी ढतीया च। एवमेव "सीकादि-र्धर्भवाचिन: करणात्'' इति क्रमदीवरः।

* भारात् इत्यव्ययस्य भाषं इत भाषों येषां ते भारादर्शकी: । भारात् दूरसभी-पयोरित्यसरः, भत भाइ दूरितिकार्थेरिति । यः रामात् बद्धस्य च दूर रामस्य बद्धस्य च दूरे तिष्ठतीति शेषः, स पापात् दुःखस्य च मिलकं पापस्य दुःखस्य च मिलके तिष्ठती-सर्थः । भाव दूरं भित्तकस्य सप्तस्यये वितीया । पाणिनिः राहा १४ । यः सर्वस्य समी यस दिचिपेनीत्तरा स्थितः। उपर्येष: पूर्वितय पयात्, यस्याखिलं हितम्। मुखञ्च, तस्य देवानां वर्यस्य, पदयीर्भेजे ॥ *

३०३ | ज्ञोऽज्ञाने धे । (जः ६१, अज्ञाने ७), धे ७।)। ।

शक्तीर्मीकुन्दे जानीते भक्त्या जानाति शङ्करम्।

समोऽणी येषां ते समार्थाः, समानसमतुल्यसहमादयः। समार्थाय एनय भाष रिय प्रम् च तस् चतान् च हितञ्च सुखचतानि तै:। एन चारि प्रस्तस्तात् षडेते तिज्ञताः, तेवाच मेथलानामसभावात् शदन्तानां ग्रहणम्। एन इति (५१६) वैनीऽपीत्वनेन, चा इति (५२०) दिविणीत्तरादाष्टीत्वनेन, रि इति (५२४) निपातनात्, अस इति (५२२) अतएव अस, तम् इति (५११) तम क्रीरित्यनेन, तात् इति (५१८) दिकशब्दादित्यनेन। जातिगुणिकियाणासुत्कविणापकर्षेण वा सजातीयात पृथक्करणं निर्द्धार: । सम्बन्धय प्रवयवावयविभाव-जन्यजनकलादि-रनेकविध: । समार्थै:, एनादि-षटर्ताल्याने कितसुखाभ्याच योगे, निर्जारणे, सन्दर्भ, कर्माण च, षष्ठी स्यादिस्थं:। हिष्ठी यद्यपि सम्बद्धः षष्ठात्यतिन् भंदकादिति जीयम् । यः सर्वस्थेत्यादि - तस्य पदयी-र्भजे इत्यन्वयः, यः सब्बेख नगतः समल्ल्यः, यत्र सब्बेख दिविषेन स्थितः, स्थित इति वर्तमाने कः, दिविषे तिष्ठतीत्यर्थः ; एवं उत्तरा उत्तरस्यां दिशि, उपरि जर्बभागे, भधः निसदेशे, पूर्वत: पूर्वकाले, पयादतरकालेच, सर्वस इत्यनेन स्थित इत्यनेन च सर्वेतालय:। यस प्रवितं जगत हितं मित्रं, सुखं सुखजनकच, तस देवानां वर्धस श्रेष्ठस्य दृश्वरस्य पदयीर्भजे श्रष्टमिति ग्रेष:। सन यथात्रमं लचणगङ्गमी गीध्य:। सामान्यतः कर्माण विदितापि षष्ठी धातुविभेषाणामिति बीध्यम्, भन्यया सर्व्य ुकर्माण प्रष्ठापत्ते:। तथाच, ''मधीगर्थद्येशां कर्माण'' (पा २।३।५२), "क्रजः प्रतियवे" (पा: २:३:५३), "दनार्थाना भाववचनानामच्चरे:" (पा. २।३।५४), "चिश्रिष नाय:" (पा. २।३।५५), "नाचिनिप्रइचनाटकायिवणं हिंसायाम्" (पा. २।३।५६), ''व्यवद्वपणी: समयेयां:'' (पा. २।३।५०), "दिवस्तदर्थस्य'' (पा. २।३।५८), इत्यादि। सतएव कमदीश्वर:— "कर्मादिविष्येऽव्यविविधित कर्मादौ सन्वस्वविवधायां षक्षेत्रव''-- इति म्चम् । ''नाषाणानश्रीयादिति भाष्यम् । न च विद्यति कस्यविदिति भिष्टः। सा लच्ची बप कुरुते यथा परेषानिति किरातः। नारायणस्यानुकरीतोत्यादि।" मुले पद्यीभीने इत्यादी तु विंकल्पः । पाणिनिः २।३।३०,३१,४१,५०,७२ ।

[†] फ्रानाट्यक्रिप्रधें वर्तनानस्य जानाते धें करणे पष्ठीस्थादिस्थः;। पाचिनिः **दाइ।**५१ ।

यमुना साधनेन सुकुन्दे प्रवर्त्तते इत्यर्थः, प्रवृत्त्यर्थेय जानातिः। *

३०४। सप्त्रमणीनां वा। (तृष्टाणीनां ६॥, वा।१।)।

युङ्गारस्य हरिस्तृप्तः, पूर्णः यान्तेन यङ्गरः। 🕆

३०५ । दवे द्यात्यव्यक्तुक्तत्तवतुखलध्तोच्छ-चानवसुग्रीलाध्वत्नभध्यणीधेणिनि । (टिचे ०), किति ०), भ-व्य कि चक तकत खन्यं त चत् मृत् भान वसु भीनार्थतृत् भव्य-स्वपायं-विकि ०)। व्यादिवर्जे क्वति प्रयुज्यमाने दे चे च बी स्यात् । \$

असभीरिति। यभी: प्रभुना सुकुन्दे विष्यौ नानीते प्रवक्तंते भक्त कि भेष:, प्रभी तुष्टे सित सुकुन्दे प्रवित्तभवतीति प्रभी. साधनत्वन । धातूनासनेकाष्ट्रंताल् ज्ञाधातुरच प्रवक्त्यं:। (८८०) घटादित्यात्मनेपदम्। ष्रज्ञाने किं, भक्त्या ग्रह्कर नानाति, खरेष पुत्रं नानातीत्यादीन करणे घष्टौ।

⁺ तृतिरथीं येथां ते तृत्रार्थाः तेषां, तृत्रार्थंधात्नां करणे षष्ठीं स्थादा इत्यर्थः। इतिः स्वारस्य तृतः स्वकारेण सन्तृष्ट इत्यर्थः, तृतः इति कर्मितः क्षः। पचे महरः मान्तेन मान्त्या पूर्णः, पूरधातोः कर्मितः क्षः पृतिरिह भाष्यायनम् भतएव तृतिविभेषः। (नाग्रिस्टप्यिति काष्ठानां नापगानां मदीदिषः। नान्तकः सब्बंभुतानां न पंसां वामस्थीचना॥) "करणे पूनृतार्थयोः" इति कातन्त्वपरिश्रिष्टम्। "तृत्रार्थस्य च" इति कातन्त्वपरिश्रिष्टम्। "तृत्रार्थस्य च" इति कानस्थीयरः।

^{देख घश्व दर्व तिथान्। वं — शतुम् काव् चणम्। खलः सर्वदेव सर्घो यस्य स खल्यः, (११६१) ईवह् सीरित्यनेन खल्, (११६२) भातीऽन दत्यनेन सनः दित दर्य खल्यः। उत् उत्तारान्तप्रत्ययः — णुक् द्रण् सु क्रृ मालु भाव द्रवृद्यादि। सतृ दत्यनेन ज्ञान कान स्वमान दत्यनेन ज्ञान कान स्वमान दत्येषा ग्रहणम्। श्रीलमर्घो यस्य स भीलायः, स चासौ तृन् चेति भौलायं तृन् स सम्याभिष्यस्य स भव्याप्रतिदेयत्या ग्रहीतं, भव्याच स्वय्य भव्यों, ते प्रयो यस्य स भव्याप्रतिदेयत्या ग्रहीतं, भव्याच स्वय्य भव्यों, ते प्रयो यस्य स भव्याप्रतिदेयत्या ग्रहीतं, भव्याच स्वय्य भव्यों, ते प्रयो यस्य स भव्याप्रतिद्यत्या ग्रहीतं, भव्याच स्वय्य क्षिय ज्ञान क्ष्य क्षाव्य स्वय्य स्वय्य क्षय स्वय्य स्वयः स्वय्य स्वयः स्य}

जगतां कारकः क्षणः कितिमुरिरिपोरियम्।

व्यादी तु— सृष्टा दिधं प्रावकमेतदर्घकान्

जन्नीतवन्तं, यितिभः सुदर्धनम्।

ज्ञातं, इरिं, जिण्णुरघानि संसुवन्

सुदं द्धानीऽर्धितमीयिवान् न कः॥

प्रदाता हृत् कदागामी द्यी मोचसणं प्रिवः। *

क्तति प्रयुक्त्यमाने भन्ते कर्याणि कर्त्तरे च षष्ठी भ्यात् न तु उत्ते, उत्ते तु (२८०) प्रयमा स्वादेव । पाणिनि: २।३।६५,४१,००, वार्तिकञ्च।

🤹 क्रचः जगतां कारकः, करोतीति क्रधातोः (೭೭०) तृन्-पकौ चे पति यकः, प्रस्थ कर्माण जगतामिति पष्ठी । इयं जगदित्वर्थः (विधियप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गता) सुरिर्गोः क्रति:, क्रियते या सा इति (११४०) कर्माण क्रि:, क्रते लर्थ:, अस्य कर्त्तरि सुरिपी-रिति षष्टी। व्यादीनासदाहरणानि सहेत्यादि -- एतत् जगत् सहा निर्माय दिधं धारयनं शावकं हिंससञ्च, अर्चेकान् छन्नीतवन्तम् ऊर्दे प्रापितयन्तं, यतिभियौगिभिः सुदर्भनम भनायासहस्थमानं जातन्त्र, इरिं संस्तवन, भवानि पापानि निष्णः, सुदं दधान: को लन: प्रथितं वाञ्कितं न ईियवान् न प्राप्तवान् प्रिप तु सर्वेषव ईियवानि-त्यर्थ:। भन (११६६) स्टहा रत्यव्ययस्य कर्माण एतत् नगदित्यन न षष्ठी, एवं क्रचं द्रष्टं याति, क्षणां स्वारं स्वारं नमति। (१११६) दिधं प्रति किप्रत्ययालस्य कर्म जगत् भव न घष्टी। (१९१०) प्राक्कमित्यस्य कर्मा जगत्, भव न घष्टी। (१०५०) छन्नीसवन्तनित्यस्य कर्माणि पर्माकानित्यच न षष्ठी। (१९६३) सुदर्भनिन्यस्य, (१०५०) ज्ञातिमत्यस्य च कर्त्तरि यतिभिरित्यन न षष्ठी। (११०७) जिणारित्यस्य कर्माण षघानीस्यत्र न षष्ठी। एवं दु:खं महिन्तुः, धनं ग्रह्मालः, चन्द्रं हिंहत्तिस्यादि। (११००) संस्वन् इत्यस्य कर्माण इतिमित्यच न पत्री। (१०८६,११००) दधान इत्यस्य कार्मीय सुदिमित्यच न वही, एवं इरिं स्रोध्यमाण इति । (१०८६) द्रीयवान दृश्यस कर्माण प्रधितमित्वच न षष्ठी। प्रांकत्याणं दाता कत्याणदानग्रीतः, भीचं चरणं दायी भृष्वददयस्यदेयसोचं दायौ शिवः कदा इत् इदयम् भागासी भागमिष्यतीसर्थः। भव भीलार्थे हनलस्य द।ता इत्यस्य भिर्मात कार्माणि न पष्ठी, दायी इत्यस्य ऋणार्थे जिनलस्य भीविभिति कर्माण न वही, भव्यार्थणिननस्य त्रागामीत्यस्य हदिति कर्माण न वही।

दिकसंग्रान्त इयोरिव कर्माणीः घष्ठो, विष्णोर्मोत्तस्य यावको भक्त इत्यादि । केचित्त् गौषकसंग्रेव, यथा विष्णेर्मीचं याचको भक्त इत्यादि । जौनरासुकर्त्तरि क्रति दिक

३०**६। कामुकसङ्**डार्थक्तेन। (कामक सत्डार्थ क्षेत्र श)।

कामुक्त प्रवेशन वर्त्तमान डयोर्विहितन क्रेन च योगे टे चे च की स्थात्।

यो लक्षााः कामुको जातः सतां तस्येदमासितम्। %

३०७। त्यभावतास्यणनसङ्घे व वा।

(ल्य-सदे ७।, घे ०।, वा ११।)।

च्चे भावार्थ-के स्त्रीविहितं म्रंणकच्च हिला भ्रन्यत्र सड़े घेषी स्थादा।

लया मम च क्राणोऽर्चः स्नातं ह्यत्र, स यस्य तु। स्टे: क्राति-र्हृति-र्येन, चिकीर्षा यस्य मेदिका ॥ †

सं णां सुख्ये एव पक्षीं वदन्ति, यथा गां दुन्धस्य दोन्धा नीप इत्यादि, भव क्रमदीयर-स्वस्— 'कर्म्मद्यं दुष्ठादीनासनुक्तं स्थात क्रता यदि । कथितव.समावष्टे पक्षीं प्रधानकर्माण ॥'' भव वक्तव्यं — क्रविद्व्ययादिकत्रयोगेऽपि प्रयोगानुसारेण कर्नृकर्मणोः षष्ठी स्थादिति । परस्वे द्रष्टव्ये ।

[•] पूर्वम् वे खक्तकतिः दे चे च पष्टौ निषेधान् प्रतिप्रस्वनाष्ट परस्वदयेन । सन् वर्त्तमानकावः, उस् प्रिक्षितरणं, संख उद्य सख्दे, ते प्रयों यस्य स सख्दाणंः, स चासौ त्रियति सख्दार्थतः, कासुकाय सख्दार्थताय तत्तेन । यः शौकणः लच्माः कासुकः लच्मीं कामयते, यः सतां ज्ञातः सिक्षज्ञायते, तस्य दृदम् पासितं तेनाच चपविष्टम् । पत्र कासुक द्रित कमधातोः (१११०) कर्त्तरि जुकः, प्रस्य कर्माण लच्माः दित षष्टो । प्रात द्रिति (१०८५) वर्त्तमाने त्रः, प्रस्य कर्त्तरि स्वामिति षष्टी । प्रासिति निति (१०८४) प्रविवरणे तः, प्रस्य कर्त्तरि वष्टी । दृह सख्दत्तेन दृष्टनेनेविष्टसिद्धौ प्रयंगव्दयदृणं ज्ञापयति शौखितादवेर्त्तमाने ज्ञानस्थापि (१०८५) कर्त्तर पृष्टी न स्थान्, तेन शौखतोऽयमनेन, रिचितोऽयमनेन दृष्टादि । एतदेव क्रमदौष्टरेण ''क्षविक्र स्थान्' द्रित सूर्व प्रकटौक्तसम् । पाणिनिः २। ११६९,६८, वार्त्तकस्य ।

[†] त्व्यस्तव्यादिः, भावि त्रः भावतः। भय पक्षयं भणकी, स्वियामणकी त्व्यणकी मृतिद्येते त्व्यणकी यम भोऽत्व्यणकः। देन सङ्ग्वन्ते थोऽसी सदः, भ्रत्यणकयासी सद्भिति भ्रत्यणकसदः। त्वयं भावत्रयं भृत्यणकसद्भिति तक्षिन्। त्वे प्रयुक्तमाने

३०८ । खामीखराधिपतिदायादसाचिप्रतिमू-प्रसृतक्वयजायुक्तनिपुणसाधुसुजर्धेर्नादरे प्री च।

(खानि — सुनर्थे: ३॥, नादरे ७।, प्री ।१।, च ।१।)।

भावार्थ-के प्रयक्तमाने स्ती-विहिती घ-चकी हिला घर्याचान स्तीविहिते समर्थके कृति प्रयुक्तामाने चकर्त्तरिषष्ठी स्थादा इत्थर्थः । लयेत्यादि । हे साधी इत्युद्धां, लया मम च स काचीऽर्चः, चर्चभातीः कार्माणि वाचा (१०१) प्राण, कार्नरि लगेति स्तीया, पचे ममेति षष्टी । इि यसात भव तीर्थे लया सम अ सातं, साधाती भावे ता:, लया सम च दतीया-षष्ट्री । यस्य क्रणस्य स्ट्रें: कृति: कर्णं, येन स्ट्रें: इति: इर्णं, कृति: इतिय क्रह्मात्भ्यां भावे (११४०) क्रिः, पस्य कर्त्तरि यस्येति षष्ठी, पत्ते येनेति हतीया। छभयत्र सृष्टेरिति कर्माण (३०५) पत्री । एवै (११४८) हानि: सुखानां दरिद्रस्य दरिदेश, (११५०) परिचर्या गुरी: शिष्यस्य शिष्येण, (११५८) वर्णना विश्वी: अक्तस्य भक्तंन इत्थादि। सद इति किं. साधीर्वजितियादी कर्त्तरि पर्वेण (३०५) नित्यं घष्टी। चस्यणक इति किं. यस्य क्षचास्य सृष्टेशिकीर्षाकत्ति च्छा, भेदिकाच भेदनं नाग्र इति चिक्रीचेति सननत्रभातीः (११५३) स्त्रीविहितः पप्रत्ययः। (८८०) स्त्रीविक्तितो चकप्रययः। उभयत यस्येति कत्तं रि (३०५) नित्यं षष्ठी। एवं (११५५) इ.च्छा सुक्रीसपिखन:, (११५६) कथा क्रणस्य भक्तानानित्यादि। पाणिनि: २।३।७१, वातिनद्वाचा। भन मस्त्राणकसटे इत्यस्य व्याव्यानारे क्रते (स्त्री विहिती प-पकौ हिला प्रत्यिक्षित स्त्रीविहिते प्रस्त्रीविहिते वा सक्तर्भको कृति प्रथन्यमाने) 'भेषे विभाषा'' इति वार्त्तिकातुसारेण ग्रव्हानामतुगासनमाचार्थेण पाचार्थस्य वा इति बिध्यति ।

कर्माण कर्त्तरि च षष्ठीविधाने वक्तव्यसेतत् —

भक्को विहित-क्रिक्षित् भीगे पत्ने नियस्यते (कर्मणीति ग्रेपः)।
एकदा तूभयप्राप्तौ कर्माण्येत्र न कर्नार (पाणितिः राहा६६)।
तन्यादीनां प्रयोगे तु द्योरिव हि नेष्यतं॥
कर्मुविभाषया केषित् (पाणितिः राहा०१) कर्मणीऽपि तथेष्यते।
प्रधाने नियसा पत्नी गुणे तुभयया भवेत्॥

यथा वेदस्य पाठम्कानेण, यामस्य गमनं पार्श्वन इत्यादि। कर्माणोऽध्याहारेऽपि न कर्त्तरि, यथा भीजनमनेन इत्यादि। तव्यादी तुयाचितव्यः क्रणो भी वंभक्तीन (भक्तस्य वा) इत्यादि दिकर्माकस्याते तुयन क्रता देकर्माणो चनुक्ते तत्र दयोरिप घष्टो, केचित् सुख्ये पन, केचित्र गीणे एन, चतः प्रयोगानुमारेथेन क्रिंगमिति निकार्यः।

कां दिशंवान गल्तव्यं, सभांवान प्रवेष्टव्यं, इत्यादी कर्म्मणि विद्यमानेऽपि भावे अन्यत्ययः स्वादिति भाष्यादीनांमतम् ।

खामी मुकुन्दः सर्वेषां, साची सर्वेषधीचजः। निष्यक्रस्तिरगुर्गीष्योऽपखे मात्रहत्यजम्॥ *

ः ३०८। कालभावाधारं डं प्ती।

, (काल-भाव ऋाधारं १।, खं १।, प्री ।१।)।

एते डसंचाः खुः, तत्र प्ती । 🌵

सचोऽयौ वार:, सचोऽर्थ दन चर्यो यस्य स सुन्तर्थ: । वाराधेनैदेष्टसिद्धौ सुन्तर्थ-ग्रहणं सुज्ञयंत्रत्ययान्तानां प्राप्तार्यम् । त्रत्यया वारादिमञ्दैरिप वशीसप्तस्यापत्ते: । सूज्यं-प्रत्ययम चक्रतम् सुच (४८४,४८५) इति इयम्। ''धाच्प्रत्ययीऽपि क्रत्यसर्थं." इति गोयी-वन्द्रः । स्वामी च ईमार्य चिष्पतिय दायादय साजी च प्रतिभूष प्रमूत्य कुण्यस्य चाय-क्रम निपुणय साध्य सुजयंत्र ते तै:। न पादरी नाहरसस्मिन खान्यादिभिरिकादशिक्षः मन्दै: चक्रलस्-सुजनाभ्याच योगे, षष्ठी-सप्तस्यौ स्थातां, चनादरे गस्यमाने च षष्ठी-सप्तस्यौ स्रातामित्यर्थः। सुकुन्दः सर्वेषां स्त्रामी, सर्वेषिति च। प्रधीयजः (प्रधीगतम षच जिमित्रिय जन्यं चानं यद्यात् सः) सर्वेषु साची, सर्वेषामिति च। एवं क्राचः सर्वेषां सब्बेषु च ईश्वर:, सब्बेषां सर्वेषु च भिषपति:। खानीश्वराधिपतीनामेकार्थलेऽपि र्यगग इचात् तत्पर्यायभूत शब्दान्तरेण योगेन स्थात्, तेन क्रचाः सर्वेवां पतिरित्यादी सम्बन्धे षष्ठेत्रव, न तु सप्तमी । एवं, क्रचाः यादवेषु यादवानां वा दायादः चातिरित्ययः । चैत्रो भैत्रे भैत्रस्थ वाप्रतिभू लंग्नक इत्थर्थः । क्रणायादवेयादवस्य वाप्रमृतः ज्ञात इत्यर्थ:। कुण्यलायुक्ताभ्यां योगं तत्परले एव, (चासेवायामिति पाणिनि:, तात्पर्यो इति महंजिदीवित-क्रमदीयरौ) यथा छात्र: पाठे पाठस्य वा कुमल: त्रायुक्तो वा तत्पर इत्यर्थः । अन्यत्र कलासुकुमलः सुमिचित इत्यर्थः, रघे आयुक्तः बहु इत्यर्थः, इत्यादिष् षप्तस्येव । एवं निपुणसाधुभ्यां प्रश्नंसायानेव । चत्र ''चप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यस्'' -- तेन साधुनिंपुणी वा मातरं प्रति, परि, अनुवा। सुनर्थें: कालाधिकरणादेव. (भतएव ''क्रल सर्थैं: कालाद धिकरणात्'' इति क्रमदीश्वरमूत्रम्) । यथा ---गोप्यः, अपन्ये ब्दिति, मातुः बदलाय, बदन् पपणं बदतौं मातरञ्च अनाहलेति श्रेषः, निश्चि विः ^{कक्र: चि:} विवारानियथै:, भाजं क्राचं ऋगु: प्रापु:। विरिति (४८५) सुच्**प्रत्ययः।** षगुरिति इनधाती: আ অन् (६८२,६৩५)। एवं दिने दिनस्य वा पश्चक्रतः पठती-खादि। कालाधिकरणात् किं, ग्रष्टे दिर्भुङ्क्षे। पाणिनिः २।३।३८—४०,४३, भाष्यचा

[†] कालय भावय पाधारय तेवां सनाहार;। उन् प्रधिकरणं, ती सप्तनी। काल:

सामीप्यास्त्रेषिवषयेर्थ्याधारसतुर्व्विधः। रेमे प्ररिट्गोविन्हो गोपीभिक्तिते विधी। कालिन्द्यां, कानने, केली कुग्रलः, सकले स्थितः॥ *

३१०। ऋधिकेशायीपाधिस्यास्।

(अधिक-ई्रा-अर्थ-उप-अधिभ्यां ३॥)।

मधिकार्थेनोपेन स्वास्यर्थेनाधिना च योगे प्ती स्यात्। गुणा उप परार्डे,स्युर्विणोरिध हरी सुराः। †

चणदण्डमुहर्तादि:। भाशी धालर्थः, यस क्रियाननरं क्रियानरं लत्त्यते स इह भावः। "तहैपरीये च" इति वार्त्तं कम्। पाणिनिः २।३।० ३६,२०।

- भाजियते पदार्थीऽसिन् इति भाषारः, (भाजियनंऽसिन् कियाः इति भाषारः इति कार्शिका)। यदुकं—कन् कसंव्यविद्यासमाचान् धारयन् कियास्। उपकुर्वत् कियासिही भारतेऽधिकरणं स्नृतस्। इति इति इति हितारिका। स तु चतुर्व्विषः, यथा—साभीयिति। सभीपस्य भावः साभीय्यम्, भाग्नेष एकत्रेशसस्यमः, विषयः प्रतिपाद्यादिः, स्याप्तिः सम्बद्धान् सम्बद्धान् स्वापादिः स्वापादेः स्वापादे स्वापा
- † चिक्तच द्रैयय ती चर्यां यथी: ती चिक्तियायीं, उपय चिच्त ती उपाधी, चिक्तियायीं च ती उपाधी चिति ताथाम्। खाव्यधेंभेत्राव्य उभयायंत्वं खखामित्रसम्भ्यः उभयावित्तं ताथाम्। खाव्यधेंभेत्राव्य उभयायंत्वं खखामित्रसम्भयः उभयतिहत्नान्,—तयाच चिक्ता यंगे यस्य परिवारस्त्रसात् यस्य खामी तथाव सम्मी स्थादित्यथं: बुषा दति विची गुंषा: पराई उप स्थः पराई दिक्ता च सहग्रा दृष्यथं:। पराई वरसस्वाः,—तयाचीत्रम्, एकं दश धत्वैव सहस्रमगुतं तथा। लच्च निगुतस्वैव कीटिरब्बंदमेव च ॥ हन्दः खर्ळ्यां निख्यं य श्रष्टपत्ती च सागरः। चन्यं मध्यं पराईच दशवद्या यथोत्तरमिति॥ सुरा देवाः इरी चित्र इरेः परिवारा दृष्यथंः, एवम् चित्र सुरेषु हरिदियपि, हरिः सुराणां खानीत्यथः। पाविनः श्वाः ।

३९१। ढेनार्थात। (डेन रा, पर्यात् शा)।

टैन योगे निमित्तात् प्ती स्थात्। वस्त्रेषु रजनामवधीत् कृष्णः। *

३१२। तोना दे। (क्रीना श, डे ण)।

क्ताहि चितेन इना योगे है भी स्थात्। वैदेऽधीती। १

३१३। निर्दारेऽधिकेन क्रियान्त:काला-ध्वनोश्व पी च। (निर्दार ७), पिकेन २।, क्रियान कालाधनी: ७॥, पारा, पी ११।, पारा)।

येष्ठं क्षपालुष्वकारिः क्ट्रैकाद्यकेऽधिकम्।
मूर्च्यष्टकात्, भिवंध्यायन्, भुष्तीया दाष्ट्रिवा नग्रहात्॥
भूस्थो योजनलदीऽकं पश्चीक्षचदयात् विधुम्। क्ष

अ पर्यो निभित्तम् । कियाया निमित्तं यदि कर्मणा संयुक्तं स्थात् तदा तस्यात् निमित्तात् मप्तमी स्थादित्ययः । अवधादिति कियाया निमित्तस्य वस्त्रस्य इननिक्या-कर्मणा रजकीन सह संयोगात् वस्त्रेषु इति सप्तमी । एवं चर्मणि हीपिनं इति, दत्त्यी हित्तं कुञ्चरम् । केश्रिषु चनरीं हित्तं, सीम्ब पुष्यक्रकी इतः ॥ इति महानाटके । (सीमा अष्यक्रकीयः, पुष्यक्रको गत्मस्याः) । कोश्रिये हीपिनं इत्ति इत्यादी कर्मणा संयोगाभावात् न सप्तमी । सुक्ताफलाय करिणिनित्यादी तु, ताद्र्य्यं चतुर्यी (२८४) । "निमित्तात् कर्म्ययोगे" इति वात्तिकम् ।

[†] क्वादिन केन तेन केना। अधीतीति अधीतमध्ययनम् अस्यासीति अधीती, अस्य योगे वेदे इति कस्येषि सप्तमी। एव क्वती युतो अञ्चमतेषु घौमानिति भटिः। क्वाद्यब-इतिन इना योगं एवायं विधिः, तेन क्वतञ्च तत् पूर्वचिति क्वतपूर्व्वे तदस्यासीति क्वत-पूर्वी, कटं क्वतपूर्वी, वेदमधीतपृत्वीं इत्यादौ न स्यात्। किञ्च सुर्ख्ये कस्यस्थेवायं विधिः, तेन मासमधीतीत्यादौ न स्थात्। "कस्येन् विषयस्य कस्यस्थ्यपसंख्यानम्" इति वार्श्विम्म ।

[‡] क्रिययोरतः क्रियात्तः (मध्यं), कालय पध्या च तौ कालाध्वानी, क्रियात्तय तौ कालाध्वानी चेवि तयोः। जातिगुणिक्रयाणासुट्कर्षणपक्षरेण वा समातीयात् प्रथक

३१८। सीमान्तमार्गात् प्री चान्ते।

(सीमान्तर-मार्गात् ५।, प्री ।१।, च ।१।, चनी ७।)।

सोमनायाच्छतं क्रीयाः क्षणः क्रीयेषु चायते। गङायमनयोगाध्ये कति कोषास जाह्नवी॥ *

करणं निर्जार:। काल: चणदरूसहर्त्तप्रहत्तिः। पश्चपरिमाणं नलक्षीशादि: निर्दार गम्यमाने. एवम अधिकाम व्हेन योगे, तथा क्रियावयमध्यवर्त्तिन काले अध्वनि व पश्चमी-सप्तस्यौ स्थाताभित्यर्थ:। छटाहरणं--क्रपालष अर्कादय प्रेष्ठं. कट्रैकादशर्व मुर्चाटकाच मधिकं मिवंध्यायन दाहि वाहाका सुद्धीयाः, हे साधी पति भेषः। प्रः मिर्झारे क्रपालम् प्रकांदिय इति सप्तमी-पञ्चस्यौ, (३०२) मधी च भविता। काका≀ को किल: क्षणा: इत्यादि निर्दारणे पचस्येव, नतु पष्ठी-सप्तस्यौ इति वत्रव्यम्। कट्रैका दशकी सुर्खाष्टकाच इति अधिकशब्दिन योगे सप्तमी-पद्यस्यो. दाहि चाहादा इति ध्यान क्तिया भोच्चनिक्तयथीर्भध्यवर्त्तिनः कालात् सप्तभी-पद्यस्यौ । जनः भूस्यः सन् थोजनलः चर्कपक्षित, चचदयात् विधुंपश्चिटिति, चच भूस्थितिकिया दर्भनक्रिययोर्भध्यवर्त्ति श्रुध्वनि योजनसर्वे सवदयादिति च सप्तभी पञ्चग्यो । (एक। दशानां समूद: एका दशः बद्राणामे कादमकं बद्रैकादमकं तिखन् । अष्टानां समुद्दीऽष्टकं मूत्तीनामष्टकं मुर्ख्यप्टः तस्मात् । दयीरक्रीर्भवः काल इति तिद्वितार्थेदिगी दाकः, ततः सप्तभी विभक्ती (११८ हाकि । त्रयाणामक्रांक्माहार: त्राइक्तकात् । भुवितिष्ठतीति भृस्य:।) पाणिनि २।३।७,२।३।४१,४२ ।

 श्रीसीरतः, स चाशी मार्गश्रेति श्रीमान्तर्मार्गस्तवात्। मार्गे।ऽध्वपरिमा क्षीश्रशीजनादि:। सीमादयमध्यवर्त्तिमार्गपरिमाणवाचकात ग्रन्दात भन्ते गस्यमा प्रथमा चकारात सप्तभी च स्यादिल्थः। चन्तगस्यमानाभावेत केवलं प्रथमा स्वारि स्पर्यं वक्तस्य:। सीमनायात् ग्रतं क्रीगाः क्रणः, ग्रतक्रोग्रान्ते वर्त्तते इत्थर्यः ; ए अप्यति क्रीशिषुच, अप्यत-क्रीशानीच वर्षते इत्थर्यः। अव सीमनायक्षणायीः सीमं र्भध्यवर्षिमार्गात् मतं क्रीमाः इत्यक्षात् भन्ते गस्यमाने प्रथमा, भयुते क्रीमेषु च इत्यक्षा सप्तभी च। श्रतनिति अयुते इति च बहुवचनविशेषणेऽपि श्रभिधान।देकलं, विं त्याद्या: सदैकलं सर्व्वा: सङ्घायसङ्घायीरित्यभरात्। भन्ते किं---गङ्गायसुमशीर्भ लाइनी कृति क्षीया:, कृति क्षीयान् व्याप्य तिष्ठती क्ष्ये:, पत्र केवलं प्रथमा। दितं यार्थाकरणे अत्र (२८३) दितीया भवितुमहिति। डिनाखयमारभ्य आ ससुद्रात् गङ्ग यव च देश्रे लहुमुनिना पौतोज्भिता तत भारभ्य भा समुद्रात् ल।क्रवीति गङ्गाः नामान्त म्। जाक्रव्या मध्यदेशे यसुना मिलितेति । वार्त्तिनं भाष्यदा

अब. २पा. ३१५ ३१६ सू.

३१५। त्रादयोऽर्घार्धेनतोः सेस्त सर्वाः।

(भी मादय: १॥, मर्थार्थेकतं: ५।, स्वी: ५।, तु ।१।, सर्व्वा: १॥)।

श्रर्थार्थिनैकाते लें स्यादयः स्यः, स्नेसु सर्वाः।

भुक्त्वार्थेनार्थस्य मुक्तेः किं, कार्य्यं नार्चतेऽच्तः। *

३१६ । संजाः कं। (संबाः १॥, कं १।)।

ढ ध घ भ ज ड़ा: कसंज्ञा: स्यु:। १

इति कपाद!।

^{*} जी चादिर्यासां ता:, चयां निमित्तं, स एव चयां इभिधेयी यस सीऽर्यार्थः, एका (प्रभिन्ना) तिर्यसात् स एकति:, प्रयोधैन सद एकति: प्रयोधैकितिससमात्। निमित्तार्थलिङ्गस्य विभेषणात् लिङ्गात् त्तौयादयः पश्च विभक्तयः स्युः, ताहशात् सर्जनासन् सर्जा: प्रथमादय: स्परिलर्थ:। भुत्या पर्धेन मुर्तेरर्थस्य प्रचातीऽर्चते पूज्यते, किंकार्यं न फर्चते भिपितु सर्वसै कार्याय, जनैरिति भेष:। अपन निमित्ता-र्थस्य पर्थश्रव्दस्य विशेषणात् भुक्या इति तृतीया, मुक्तेरिति षष्ठी, रवं मुक्तिये पर्याय, मुर्ताः र्घात, मुत्तौ ऋषें इत्यपि । किंकार्थ्यमित्यच कार्य्यमित्यस्य निमित्तार्थस्य विभिष्णान् किमिलक्यात सर्वनामः: प्रथमा, एवं दिशीयादिकमपि । एवं हेतुकारणनिमित्तादिग्रन्द-विश्रेषणाद्य-तयाच ऋत्यस्य ईतीर्वेड डातुमिक्कविति रघुः। भाष्यम्।

[🕇] चिचन पादेयायासंज्ञाउकासाक मंज्ञा स्थान । ता:संज्ञा:— दध घ भ **ल** ड़ा दूति । कर्म्मकरणकर्नुमम्प्रदानापादानाधिकरणानाभेकतमं कारकमिति यावत् । करोति कर्नुत।दिव्यपदेशानिति कारकमिति भाष्यम्। ''क्रिय।निमित्तं कारकम्' इति दुर्गसिंड: पद्मनाभयः। क्रियान्वियत्वं कारकलमित्यपिकियित्। चैत्रस्य धन-नित्यादी धनादिक भेव पाकाद्वितं स्थान् न तुगच्छतीत्यादिकं, तेन सम्बन्धस्य क्रिया-निमित्तलाभायात्र कारकलम्, एवं खिङ्कार्थसम्बोधनयोरिप। ग्रहे प्रविश्रतीत्यादौ ग्रहादेः कर्म्यतया दितीयाप्राप्ती प्रिचिकरणविवचया सप्तमी, विवचावमाद्धि कारकाणि भवनीति न्यायात्। एवं महाकविषयोगादयी विववया समाधानीयाः, स्थितेगंतिसिनानीयेति न्यायात्। तेन स्वेच्चया यामे गच्चकीत्यादिप्रयोगीन कर्त्तव्य इति साम्प्रदायिकाः। उभयोधुंगपत् प्राप्तौतु — कर्त्ताकस्माधिक रणं करणं सम्प्रदानकम्, घपादानञ्च सन्देहे 🗣 रंपूर्वेष वाध्यते इति वचनात् व्यःस्था। यथा,पश्चमनी घावतीत्यादि । एवं क्रम-

दीक्षरोऽपि—प्रपारान सम्प्रदान करणाधारकर्म्यणाम् । कत्तुंवान्यीन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्त्तते ॥ इति ।

भाव वक्तव्यानि सूवाणि लिख्यन्ते —

- १। ''नात्याख्यायाभेक धिन् वहुवचन नचतरस्याम्" (पाणिति: १।२।५०)। नातिप्रतिपादन पक्तीऽपि नातिरुपीऽपीं वहुवदा स्थात्। यथा ब्राह्मण: पूच्यः, ब्राह्मण: पूच्यः। भच भानंख्याप्रयोगे इति वक्तव्यन्। यथा पद्मनाभः— "नार्खे वैकिस्मिन् वहुवचनमसंख्याप्रयोगें (कारकप्रकरणे ३० स्वम्)। क्रमदीयरीऽप्येवम् ''नालुक्तावसंख्याविश्रष्टसैकले'' (कारकप्रकारे धर्म् स्वम्)।
- २। ''चसादी द्योघ'' (पाणिनि. १।२।५८)। चसाद एक ले दिले च वह वदा स्थात्। यथा घढं वनीनि, चावां वृतः द्रत्यादी दयं दृतः। चित्रिष्ठ चादिति वाच्यन्। स्था पन्नन। अः—''चक्षदो दयोषः विज्ञेष चात्'' (कारक प्रकर्णे ६८ स्वन्)। एवं क्रमदी चरः यथा—''चक्षदोऽ विज्ञेष चर्षे दिले च'' (कारक पादे ४८ स्वन्)। यथा कविरहम्।
- ३। ''युम्पदी गुक्तिभेषणस्य'' (संजितसारे कारकपादे ५० सूत्रम्)। "युम्पदी भौरवे'' (सुपद्मे कारकप्रकरणे ३८ सूत्रम्)। यथा त्वं से गुक्:, यूयं से गुग्द:। एवसेव स्वयादित्य:, यथा, "युम्पदि गुरावेकेषाम्'' इति।
- ४। "भागांत्र चा गीरवे" (सिविष्ठसारे कारकपादे ५१ सूत्रम्)। यया जीवत्सु तालपादेषः।
- पू । "िंग्रत्यादेश्नावन्ती बहुत्वेऽप्येकवचनम्'' (संचिप्तमारे कारकपादे ४४ सूत्रम्)। एवं सुपर्ग्नऽपि "विंग्रत्यादेरंकत्वमनावन्ती'' (कारकप्रकरणे ३६ सूत्रम्)। यथा विंग्रति: पुरुषा:। भावन्ती तुद्दे विंग्रती नशाणाम्।
- ६। "दारादिनित्यम्" (सपग्ने कारकप्रकरणे ४२ सूत्रम्)। "मापी दारा वर्षाः सिकता लखीकस प्रत्यादर बहुत्वेऽपि बहुत्व वनम्" (संचिप्तसारे कारकपादि ४५ सूत्रम्)। "मंसि ग्रष्टाय" "सुभनीऽभारीय खजादेवां" (पूर्वोक्ति ४६, ४० सूत्रे)।
- ७। "फल्गुनी-प्रीष्ठपदानाञ्चनवर्ने" (पाणिनि: १।२।६०)। पूर्वक्षलगुन्य इत्यक् दिले बहुलम्। तिष्यपुनर्वम् इत्यक्षतु बहुले दिलम् (पाणिनि: १।२।६३)।

श्य पाद:-समास: (सं)।

३१७ | देकां सोऽन्वये | (दैकां १८, मः १८, पनवे ९०)। ह्योर्बह्रनां वा दानामेकां स-संज्ञं स्थात्। तम्रान्वये सित कार्यम्। यथा—वन्यौ चरणौ कष्णस्य द्रस्यर्थे, कष्णचरणौ वन्यौ दिति स्थात्, नतु कष्णवन्यौ चरणाविति। अ

३१८। भिन्तान्येकाधेद्यादिसङ्घाव्यादीनां च-ह्र-य-प्र-ग-वाः। (भिन्न-वादीनां ६॥, घ-नाः १॥)। भिन्नार्थानां दानां सःसमंत्रः, श्रन्यार्थीनां दानां हसंत्रः,

किश्य यत्र प्रतिथोगिपद-कारकपद-भिन्नपदापेचा वर्तते तत्र समाभी न स्थात्.
यथा— ऋडस्य राजी मातङ्गाः इत्यत्र ऋडस्य राजमातङ्गा इति न स्थात्। यत्र च
प्रतिथोगिपदकारकपद्योरपेचा वर्तते तत्र स्थादेव, यथाः— रामस्य नाममिक्सा, कृष्यमाण्यतमनाः, वाणेन निज्ञङ्कट्य इत्यादिः स्थादेव। तथाच — प्रतिथोगिपटादन्वत्
यदन्यन् कारकादपि, इत्तिश्रस्टैकदेशस्य मस्यभन्नेन नेष्यते इति, सापैचलेऽपि गमकलात्
समास इति, समस्यासमत्तेन नित्यापेचेषा सङ्गतिरिति च प्राधः। एवश्व नित्योऽनित्यो

[ः] स्वादीनामयं नृ निरूप स्वायनानामेकपदीकरणार्थमाइ -- दैक्यमिति । दश्व दश्व ते दें, दश्व दश्व दश्व तानि दानि, दे च दानि च तानि दानि, दानामेकां दैकाम्, ऐकाम् एकामः । दं पदं, तश्व स्वायनमेन । तथाच -- ''नामां ममासी युकार्यः तत्स्या लीपा विभक्तयः'' इति सर्व्ववधा । नामां स्वायन्तिङ्गानामित्यथः। ''ममथं पदिविधः'' इति पाणिनि (२।१।१)। ''समर्थानां समामः'' इति पद्मनामः। ''समासीऽनेक पदस्येकपदन्ता'' इति कमदीयरवितः। प्रथमतीत्यादी समामन् (५४८) व्यस्य ग्यन्तारिव्यादिविध्यन्तरात भवति । इयोः पदयोः वङ्गां वा पदानाम् ऐकाम् एक-पदीकरणं ससंग्रं स्वादिव्ययः। सः समासः। तच ऐकाम् चन्ये सित कर्मव्यमिति । चन्यः समिप्रतस्यतः, स च कचिन विश्रेषद्येष्ण, कचिन् विश्रेषण्यपेण, इत्वे तु सर्व्या विश्रेषण्यां साहित्यद्ये। कृष्यस्य। कृष्यस्यां इत्य भवयवावयविभावः सम्बन्धः। कृष्यस्य इत्यस्य वन्यो इत्यनेन सम्बन्धः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य स्वयः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यस्य स्वयः। विश्रेषण्य विश्रेषण्य वन्यौ इत्यस्य स्वयः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यस्य स्वयः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यस्य स्वयः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यथां स्वयः। कृष्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्यस्य वन्यौ इत्ययं। इत्यथां भवित, तदा कर्मृत्वसस्यस्य कृष्यवन्यौ इति स्वासः। इत्ययं विविद्यायः

एकार्थानां दानां यसंज्ञः, ह्यादिक्त्यन्तपूर्वदानां वसंज्ञः, सङ्गा-पूर्वदानां गसंज्ञः, व्यपूर्वदानां वसंज्ञः, स्थात्। *

विकत्यस समास: कर्मुरिष्क्येति । समासः चतुर्विधः — ''पूर्व्यप्टार्थप्रधानीऽत्ययीभावः, उत्तरपदार्थप्रधानततपुरुषः, ष्वत्यपदार्थप्रधाने वन्तः। इति प्राचां प्रवादः। '' ''तत्पुरुषविश्रेषः कर्म्यधारः, तिहिशेषो हिगुः। ष्रनेकपदलं इन्दवहुतीस्त्रोरंव, तत्पुरुषस्य काचिदेव।'' इति सिज्ञान्तकौसुदी। हरिषातु ''सपां स्पा तिङा नामा धातृनाय तिङां तिङा। सुवन्तेनेति विद्याः समासः पड्विधो बुधैः॥" इति सृवे पड्विधोव समासः पड्विधो

* भिन्नय चन्यय एक चते, ते भयां येषां तानि भिन्नान्यैकार्यानि । दी (दितीया)
भादियों सांता द्वादयः, तासाञ्च कीवलाना ससभात् तदन्ता एव यञ्चन्ते । द्वादयभ्य सक्षाच व्यञ्च द्वादिसङ्काव्यानि, तानि भादयो येषां तानि । भिन्नान्यैकार्यानि च द्वादिसङ्गाव्यादीनि चतेषाम् । भयः इयययष्य य

सित-मज्ञानां समसङ्गालात् यथाभक्षं दर्भथित भिन्नार्थानां मित्यादि । भिन्नार्थानां पृथकपृथगिभिषेयानां पदाना समासः असंज्ञः स्थात । जो उत्तः । इरिइरावित्यादी अभेदः शिवरामयीरित्यादिवचनात् वन्तुतः पृद्यियोग्भेदिऽपि, भेदिविवचया उत्तः । अत्यव विनायके िञ्चराज्ञदेनात्रगणाधिपा इत्यादिशयोगः । पदार्थतावच्छेदकभेदादित्यकं । पदजन्यभितपित्तिविषयभेदादिति च किवित् । एवमेव गीयीचन्दः—''भव्दप्रतिपाद्य-सम्बन्धने एव परस्परापेचा यद्यीतव्या'' इति । किञ्च इत्तः सर्व्यपदार्थप्रधानीऽपि परपदस्येव लिक्षं भजतोति यथा—घटय फलञ्च घटफल, फलञ्च घटय फल्जवटी, स्त्री च प्रती च स्त्रीपुत्रा इत्यादि । सिङ्गानकौमुद्यां ''सभुञ्चयानावयेतरितरयोगसमा-इत्यास्थाः'' इति चक्षारार्थां दर्भितः । ''परस्परिनरपेचस्यानेकस्य एकसिम्बन्यः समुद्यसः, अन्यतरस्थान्वज्ञिकत्वःचयः, मिलितानामन्त्यः इतरेतरयोगः, समुद्दः समाद्यः।'' पाणिनिः रारार्थः ।

ष्मन्यार्थानां समस्यमानपदात् भिद्रायानां पदानां समासः इसंजः, हो वहुवी हिः। स तु सब्बेपदायाप्रधानः। स च दिविधः—तदगुणसंविज्ञानोऽतदगुणसंविज्ञानयः। यत्र समस्यमानपदायः समासवाच्यं वर्णते स तदगुणसंविज्ञानः, यथा विलोधनः शिवः। तदन्योऽतदगुणसंविज्ञानः, यथा इतकंसः कृषः। श्रस्यापरी भेदी यथा—समानाधिकरणो भिद्राधिकरणस्य; पीतास्वर दत्यादौ सामानाधिकरणस्य, श्रस्नपाणितिस्यादौ भिद्राधिकरणत्वम्। पाणिनिः २ । २। २। २५, २४।

एकार्थानां समानाधिकरणानां विशेष्य-विशेषण-भावापत्रानामिति यावत् परानां समासः यसंज्ञः, यः कर्म्मभारयः। पाणिनिः १।२।४२।

३१६। तोलुंक् त्ये च। (की: ६१, लुक्।११, की का, च।१।)।

से स्थितायाः त्रीर्लुक् स्थात्, त्ये च परे। *

हितीयादिविभक्त्यन्तपदपूर्वकाणां पदानां असमासः वसंज्ञः, वस्तत्पुरुषः, स चीत्तर-पदप्रधानः । पाणिनिः २।१।२२ ।

सङ्गापूर्वपदानां तस्यार्थे प्रत्यादि वच्चमाणनियमात् तिवितार्थे समाहारे उत्तरपदे परे च सङ्गावावकपदपूर्वकाणां पदान'। समासी गसंज्ञः, गी हिगुः। तिहितार्थे उत्तरपदे परे च हिगुक्सयपदार्थप्रधानः, समाहारहिगुक्तरपदप्रधानः। पाणिनिः राशप्रः।

व्यपूर्वदानां — व: कशामीधित्यादि नियमान् कारकाद्ययें भव्ययपदपूर्वकाषां पदानां समासी वसंज्ञः, वीऽव्यथीमावः, सच पूर्वपद्मधानः। पाणिनिः रार्।५,६।

भाव कातस्त्रीक्षं कृन्दीय इंसमास विवरणं प्रदर्श्यते —

पर तुल्वाधिकर के विज्ञेयः कर्मधारयः।
संख्यापूर्वे विग्रिति ज्ञेयः, तत्पुक्षवाव्यभी॥
विभक्तयो विग्रिति ज्ञेयः त्त्रपुक्षवाव्यभी॥
समस्यते समासी विज्ञेयसत्पुक्षः स च॥
स्थातां यदि परे वे तु यदि वा स्पृष्टक्ष्यि।
तान्यन्यस्य पदस्यार्थे बहुतीहः — विदिक् तया॥
क्षः. ससुष्यो नान्योर्वेह्रनां वापि यो भवेत्।
प्रस्तां वत्रप्रस्ते यद्यार्थितं वयोः॥
पूर्वं वाच्यं भवेदयस्य सीऽस्ययोभाव दृष्यते।
स नपुंसकालक्षं स्थात् वन्वेकलं तथा विगीः॥

सर्वं समासेषु स्थितायाः खादेः क्रेष्क् खात्, सर्वं प्रत्येषु परेषु च खादेषुंक् खादिलावं:। समासे यथा — इरिइगै, पौतान्तरः, परमात्मा, क्रणाशितः, पचगुः, सप्रकृष्णम्। प्रत्यये थथा — श्रीमान्, पुनकाम्यति, वाचिकं, चिनयं, माथुरः, हेनः, ग्राम्यम्, इत्यादौ प्रथमादेषुंक्। किच तनत्यः साव्वं निकः द्रत्यादौ नादेग्रस्य जीपाभावनु स्थादि प्रकर्णं हिता तिव्रतप्रकरणे चादेशिवधानसामर्थात्। स्थादिरिति क्रिं, पचिततरा-मिलादौ तिवादेनं लीपः। सुक्क्ररणेन, लालीपे त्यस्यमिति न्यायात् प्राप्तस्यं विभक्तिनिमक्तं कार्यं (१२) सुकि न तनिति निविधान स्थादिति, तेन कस्य पुनः किपुनः द्रत्यादौ (१३१) टेरकारी न स्थात्, धातारं गतः धाटगत द्रत्यादौ (१२८) न विद्वः, यज्या चासो विप्रस्ति यञ्चविष्र द्रत्यादौ (१३४) न दौर्षः। विराने परे विहितन्तु स्थादेन, तेन ब्रह्माचुतेश द्रत्यादौ (११८) नस्य सुप्, पयीविकार द्रत्यादौ (१०१) सस्य विसर्गः। क्रिस्त लया क्रतं लन्कतिल्यादौ (११५) एकलेखँ वदादेशः स्थादेन, क्रश्यो-

इन्ह-समासः (च)।

इतरेतरयोगे च समाष्टारे च ची दिधा।

हरिस हरस हरिहरी। ब्रह्मा च अच्युतस ईश्रस ब्रह्मा-च्युतेशाः।क

३२०। पुंवत् स्ते:। (पृंवत् ।१।, सी: ६।)।

से स्थितायाः स्नेः पुंवत् स्थात्, त्ये चपरे। पूर्व्वपश्चिमे। 🕆

र्थंस्यापि यहणाहित्युक्ते:। युवावादेशीतृ दिवचने परे एव स्थातां, नतु दिलेऽथेँ इति वक्तस्यम्, तेन युवाभ्यां क्रतं (१८० प्रफंद्रख्यं) युग्मत्कतमित्यादि । पाणिनिः २।४।७१ ।

* ची इन्हः इतरेतरयोगे च समादारे च सवन् विधा सवित । इतरेतरयोगोऽतयय-प्रधानः, तेन चवयवक्तते वित्ववहुत्वे स्वतः । समादारः संहतिप्रधानः, तेन संहते-रेकतादेकवचनेनेव इति सेदः । इरिय इत्य इति वाक्ये सि-इयस्य लृकि हरिहर इति ससुद्यस्य लिङ्गसंज्ञायाम् अवयवद्यघिटितत्वात् विवचनम् । राजद्खिनावित्यादौ तु पूर्वपदस्य विभक्तेन्ति (११८) विरामे परे विदितनकारलोपः स्यात्, परपदस्य विभक्तिकोपेऽपि पुनिलेङ्गसंज्ञायां विभक्तात्वप्ती विरामविद्यतं नकारलोपादिकं न स्यादेव । ब्रह्माच्यतेया इत्यत्र अवयवचय्यटितत्वात् वहुवचनम् । एवं घटौ च घटौ च घटाः, अव चवयवचतुष्टयघटितत्वात् वहुवचनम् । समस्वपदिलङ्गन्तु परपदस्य यत् तदेव भवतौति ।

+ पुनानिव पुंवत, त्ये च इति चनुवर्तते । किच त्याच्देनाच विभक्तिभिन्नप्रत्ययो गाद्यः, किन् विभक्तिस्वार्त्ययो ति ति प्रत्ये ति ते प्रंवत् स्थादेव, यथा सर्वसां सर्वतः इत्यादि । सर्वसासि सर्व्याये च पर सर्व्यनासः पृवद्वावः स्थादित्ययः । भव समासगतपूर्व्यवरसेव सः पृवत् स्थात न तु परपदस्य, भतपव पिद्यना च पृष्टां च पिद्यमापूर्व्यवरसेव सः पृवत् स्थात न तु परपदस्य, भतपव पिद्यना च पृष्टां च पिद्यमापूर्व्यवरसेव स्था पृष्टां इति परपदस्य से न पृवद्वावः । न च, (८०) न गौष्याच्येत्यनेन सिसंज्ञानिवेशात् पूर्व्यप्यिने इत्यच्च कथं पृवद्वावः इति वाच्यं, न गौष्याच्येत्यनेन स्वचनासे कते पव सिसंज्ञा निष्याये स्थाने सेति स्थानेन पृवद्वावः । विधीयते, इत्यविरोधात् । सर्व्या पिया यस्य स सर्व्यविष्यः इत्यादौ भनेन पृवद्वावः । (२२८) पूर्षोभियेत्यनेन तु (१२०) पुवत् स्वाक्तेत्यादिना विह्वतसेव पृवद्वावस्य निषेधः। पव सर्व्यानां पितः सर्व्यवतास्यतीत्यादि । प्रत्यवे यथा—सर्व्यानिच्यति सर्व्यवतास्यतीत्यादि । प्रत्यवीनाची हत्तिनाची हत्तिनाची प्रवावः । इति भाष्यम् ।

३२१। ऋतो ङा तत्पुने सगीनविद्ये चे।

(ऋतः ६।, ङा ।१।, तत्पुत्रे ७।, सगोत्रविद्ये ७।, चे ७।)।

चे खितंस ऋदलस्य ङा स्थात् ऋदन्ते पुत्रे च परं संगीतिविद्ये। मातापितरी पितापुत्री, होतापोतारी । *

३२२। चगैक्यवं स्तीवं। (चगैकावं ११, क्रीवं १)।

चस्यैकां गस्यैकां वस क्लीवं स्यात्। १

३२३ । चैक्याचुटंगहोऽ: । चेक्यात् ४१, वदवहः ४१, प. ११)। पवर्गान्ताइषहान्तात् चैक्यात् ग्रः स्थात् ।

^{*} सच पुत्रयः ततपुत्रं तिसन् । तत्र श्वरं नेड पूर्वस्थित-स्टर् न एशेखिते । गोत्र ख विद्या च ते, समाने गोत्र विद्ये यस तत् सगीत्र विद्यं तिसन् । इन्हसमासंस्थपूर्व्वर्ति-स्टर्न शब्दस्य ङा स्थात् सटन्ते पुत्रे च परे. पूर्वित्तरपद्योः समानिशेवत्वे समान-विद्यत्वे च सतीस्थैः । मातापितरौ पितापुत्री इत्युभयत्र समानगोत्रतम्, इति पोतारौ इत्यत्र समानिद्यत्वम् । स्टर्ने किं — पितृपिताम ही । सगीत्र विद्यं कि — जामाद्यपुत्री दाद्यभीकारौ इत्यादि । स्व पुत्र प्रद्याप्र प्रद्याप्र च समानिद्यत्वे न भवित, दृष्टितासानौ इत्यादि । पूर्व्वपदस्य ममानगीत्रत्वे परपदस्य च समानिद्यत्वे न भवित, श्या पिट होतारौ । किञ्चान दिपददन्ते एव छा भवित, तेन होता च पोता च यष्टा च ते होत्योद्ययप्टार इत्यत्र न स्थात् । दिपटवाक्ये तु स्थादेव, तेन होतापीतारौ च यष्टोद्यातारौ च ते इंतिपितायष्टाद्यातार इति । होतापीतारौ च यष्टा चेति वाक्ये तु होतापीतायष्टार इति । सन् मातापितरौ इत्युदाहरता प्रायेष दन्ते स्वीलिङ्गस्थैव पूर्व्यस्तिरिति स्वितम् (पाणिनिः १।२१०) । "मातरितरात्र सुटीच्याम्" (६।३।२१) इति पाणिनिस्तेष मातापितरौ इत्यस्य हपानरम् । पाणिनिः ६।३।२५ ।

[†] चय गय तौ तयं। रेकां, चशैकाच वयः तत्। ऐकां समाद्यारः। प्रस्यथीभावस्य क्षौवलफलन्तु उपसंज्ञं उपलच्छि द्रस्यादौ (१६०) इस्तः। गुरूपज्ञं व्यच्छायं य्यःसभं उपसभंदासीसभंस्त्रीसभंगोत्रालं(पाणिनिः २।४।२१—२५) द्रस्यादिक निप क्षौविक्डं भवस्येविति वक्तस्यम्। पाणिनिः २।४।१,२,१०,१८।

वाक् च लक् च हयोः समाष्टारः वाक्लचं, श्रीसनं, श्रमी-दृशदं, वाक्लिषं, पीठच्छत्रीपानसं। *

३२४ । जर्बष्ठीवं पदष्ठीवं धेन्वनडुक्ती ग्रक्तो-राज: स्त्रीपंसी वाङ्मनसे क्टक्सामे दारगवं ग्रिचिम्ववं इत्यादय: साध्या: ।

(कर्ल्वष्ठीवं १।, पदष्ठीवं १।, घेन्वनलुकी १॥, घकीराचः १।, स्त्रीपुंधी १॥, वाङ्-मनसे १॥, च्यक्साने १॥, दारगवं १।, त्राचिशुवं १।, इत्यादयः १॥, साध्याः १॥)। †

द्रति चः।

चत्र समाद्वार विषयकाणि कितिचित् पाणिनिस्त्राणि लिख्यले — "इन्द्रय प्राथि-तृष्यंसेनाङ्कानाम्" (२।४।२), यथा पाणिपादं सुखनासिकं, माईजिक्तपाणिकम्, रिध-कावारोद्रम्। "नातिरप्राणिनान्" (२।४।६), यथा धानामकुलि। "विभिष्टलिङ्की

अ पुत्र दस मूईन्य पत्र ह चिति चुन्नपह तस्यात्। समाहारहन्द स्थितात् पवर्गान्त-दान्त पान्त-हान्तात् पः स्थादित्यर्थः। (५२०) पादित्त इत्यनेन एतदः सप्रत्यशदीनां तिहत्तवात्, (४३१) न दं तसावित्यनेन दान्तविविधं वाक्तवसित्यादौ विगाममात्रिय (१११) कुङ्गिद्वं न स्थात्। एवच समामपादोक्तप्रत्यया प्रन्त्यपदादेव स्पृतिि, तेन तक्तपुत्रं सिखपुत्रः इत्यादौ पूर्वपदात् न कथित प्रत्ययः। चे किं, पञ्चानां वाचां समा-हारः पचवाक् इति हिगौ न स्थात्। ऐकामिति किं, पाइट्यरदो इति इतरेतरे न स्थात्, समाहारे तु प्राइट्यरदमिति स्थादेव। पाणिनिः प्राधारुद्।

[†] कव्वंष्ठीवित्वादयः साध्याः निपाला इत्ययः। जह च प्रष्ठीवनी च जव्वंष्ठीवं, पादी च ष्रष्ठीवनी च पद्ष्ठीवं, उभयच प्रत्ययः, पादस्य पद्रियः । धेतृष पनदृश्चं धंन्तनहुदी, एतदादिस्योऽपि प्रत्ययः। यहस्य रानिय प्रष्ठीरानः, समाहारेऽपि प्रत्याः। यहस्य रानिय प्रशोदाः, समाहारेऽपि प्रत्याः। सह्यापूर्वंते तु त्तीवतं यथा निरावित्यादि । स्त्री च पुमांष स्त्रीपंसी। वाक् च मनय वाद्यानि । स्त्रत्य च साम च स्वत्यानि । दाराय गावय दारगवं। पित्या च सुवी च प्रतिक्ष्यं। इत्यादयः इति प्रादिशन्देन षट्समासेषु प्रतृक्तानि उच्यन्ते। तन समासान्तरे-ऽतुक्तं तत्रैव वक्तव्यं, हर्षे प्रतृक्तानि तृ प्रव च च्यते । नक्तिन्दं राविन्दिवं पहर्दिवं स्वग्यज्ञवं ; प्रयोगोनेसी स्थापन्दमसे मिनावक्षी ; द्रत्यादिकः प्रयोगानुसारेष इतरेतरयोगः समाहारस् प्रयः । पाणिनिः प्राश्च ।

बहुवीकि-समासः (ह)।

पीतमम्बरं यस्थासी पीताम्बरी इति:। नीलमुज्ज्वलं वपुर्यस्थासी नीलोज्ज्वलवपु: क्षणाः।*

नदीदेश्रीऽयामाः'' (२।४।०), यथा गङ्गाश्रीषं, कुरुक्तस्येयम् । "चुद्रकत्तवः'' (२।४।०), यथा दंशमश्रकम् । भानक्तात चुद्रकत्तवः । "येषाञ्च विरीधः श्राञ्चतिकः" (२।४।६), यथा ग्रायतिकः" (२।४।६), यथा ग्रायत्तं, दासीदामं, पुत्र-यथा, गीन्यामम् । "ग्रायत्रभस्तीनि च'' (२।४।११), यथा ग्रायत्तं, दासीदामं, पुत्र-पौषं, स्त्रीकृमारं मृत्रपुरीष, मांस्त्रशीवितिमित्यादि । "विभाषा व्यवस्थत्यभाग्यञ्चन-पग्रशक्त्यञ्चवङ्शपृञ्जीपराधं निराणाम्", (२।१।१२), यथा प्रचन्ययीधं प्रचन्ययीधाः, द्रव-पृष्यतं क्रप्रवताः, कृश्वकार्यं कृश्वकाशाः, दिष्वृतं टिष्वृते, गीमहिषं गीमहिषाः, तित्तिदिकपिञ्चलं तित्तिदिकपिञ्चलाः, भश्यवङ्वम् भश्यवङ्वौ (२।४।२०), इत्यादि ।

 मौतास्वर इत्यत्र समस्यमानाभ्यां 'पौतं' 'चम्बरं' इति पदाभ्याम चन्चो हर्षिध्यते. एवं त्रिपदवहत्री ही नीक्षीज्यलयपुरित्यच समस्यमानेभ्यो नीलं' 'छ ज्ञ्चलं' 'वपुः' इति पदेभ्योऽन्य: क्राणी ब्प्यते। एवं चतुपद्वह्नवीहिरपि यथा चारूटा बहुनी वानरा यं स चाकदवल बहवानरो वन इत्यादि । प्रायम: समानाधिकरणानां पदानां भन्यायंत्वे बहुबीहि: स्थादिति बीध्यम् । (३३३) सद्य मात्रा वर्गते ये।ऽसी समाहकः इति उदाहरता ग्रस्थकारेण त कदाचित भिन्नाधिकरणानां पदानासीय वहत्रीहि: स्थादिति मूचितम, ऋतएव धर्मो बित्तयस्थासौ धर्मबित्तिरित्यादि। (सिज्जान्तकौसुद्यान्तु 'ंव्यधिकरण।नामपिन पत्रभिभेकसस्य"। एवभेव गोयीचन्द्र:।) घषिच पौतास्वर् इ. थटाइरता विशेषणाविशेष्ययी: समासे विशेषणानेव पृथ्वे स्थादिति सूचितं, तेन पीता-स्वर इत्यत्र **भस्व**रपीत इति नस्थान । (२६८०) ग्रज्ञभिक्रीत्यादि उदाहरता क्वचित् क्तान्तिविश्रीवर्णं परमपि स्थादिति सूचितं, तेन अग्राग्राहितः आहिताग्रिः (पाणिनिः २।२।३०) इत्यादि । वस्तः पूर्वपदीत्तरपदव्यवस्था प्रशीगानुसारेण क्षेया । दितीया-दिविभक्त्यक्तान्यपदार्थे। बहुर्जाहिरिति भाषार्थ्योर्भन्थते यथा—भाष्ट्वी वाननी यंस भाष्ट्रवानरी त्रच:। जित: काभी येन स जितका सक्तपस्ती । उपनीतं भीजनं यसी स उपनीतभी जभीऽतिथि:। निर्गती जनी यस्नात स निर्गतजभी देश:। पीतास्वर इति षष्ठान्तान्य ग्रहार्थः । चिथितो विद्वशी यिधान स चिथितविद्वशी वृत्व इत्थादि । "प्रथमार्थे तुन, यथा इन्टे देवे गतः'' इति सिद्धान्तकौ सुदो । स्वनते तुप्रयमान्तान्यपदार्थौऽपि, यथा समाहक दलाहि।

(१००) षु गाँऽदान्ते न इति हरिभाविणी हरिभाविनी, श्रीभाविण श्रीभाविन। रम्यविणा श्रीकामेण। रम्यपक्षेत रम्ययूना रम्याङ्गा। *

इर्पू। नजोऽनौ वाज्यस्रोः।

(नज: ६।, अनौ १॥, वा ।१।, अच्छसो: ०॥)।

नजोऽचि परे अन् इसे च अ: स्थात् से वा। नास्यन्तो यस्यासी अनन्तः नान्तः। अच्यतः नच्यतः। १

^{*} इरिं भावियनुं शौलमस्याः इति मुक् ग्रुडिचित्तयं विस्थान् (१८२) पिनि कते, (६४१) अर्जेष, (२५०) नात्तवादीपि, समासंत्रिविहितन चेपा सहितस्य नस्य (१००) वा पलम्। श्वन, (२६६) धात् कौतादिति ज्ञापकात् स्याद्य्यमेः प्रायि कारकाषां समामः, तथाच कति कारकोपपदानां क्रिः समासवचनं प्राक् सुनुत्यति साध्यम्। श्वियां भावी यस्याभौ श्वीभावः तेन श्रीभावेष श्रीभावेन, श्वन समासंत्रात्ति साध्यम्। श्वियां भावी यस्याभौ श्वीभावः तेन श्रीभावेष श्रीभावेन, श्वन समासंत्रात्ति साध्यम्। श्वियां भावी यस्याभौ श्वीभावः तेन श्रीभावेष श्रीभावेन, श्वन समासंत्रात्त्वात् विकलःः। रस्यो विः पचौ यच तेन रस्यविषा, श्वियां कामी यस्य तेन
श्रीकामेषः ज्ञमयत्र एकाच्कवर्गयुक्तमस्य स्थान्, रस्यं श्वन्यं किन रस्याक्षन, रस्यो युवा यस्तिन् तेन रस्ययुना, रस्यं श्वन्यं किन रस्याक्षा, एतंषु
पक्षयुवाहवर्जनात् न गलम् ।

[†] पन् च प्रथ पनी। प्रक्च इम् च प्रमुक्त निर्धाः । समासे स्थितस्य ननः स्थानं प्रचि परे पन् इसं च पः स्थान् वा। नासि पन इति पनी नामः । नासि प्रकृतं नामो यस्य स प्रचृतः नच्यतः। च्यतिमितं च्यानीर्भावे कः। च्यतिथातीः कर्मार (१८६) कप्रस्थवे चुनी नयर इति केचित्, तन्त्रसे न च्युनीऽच्यतः च्यानिमः इत्यर्थः। तथाच---तस्यादः सम्भावयं तदन्यस्य तदन्यस्य।

भगाभस्यं विरोधिय मञर्थाः षट् प्रकीतिताः ॥ दति प्राघः I

चटाइरणं यथा— न बाह्यणीऽबाह्यणः ब्राह्मणसद्य इत्ययं:। पापस्याभावीऽपापन्। न चटीऽघटः घटभित्र इत्ययं:। चनुदरी चलीदरीत्थयं:। चनेशी चप्रश्रसकेशीत्यंः। चसुरः सुरविशोधीत्ययं:। पाणिनि: ६।३।३१,७४।

चत्र वाग्रस्टस्य स्यवस्थावाचित्वात् नाकादिवु चारेमो न स्थान् यद्या---

३२६ । महत्तेका ये जातीयद्वासकरविशिष्टे तुती च । (महत् १६), व ११, पा ११, एकावें २०, जातीय—विशिष्टे २०, तु ११, तो ११, पा ११)।

महतस्त त्रास्थात् एकार्थे, जातीयादी तुती च। महाबल: । अ

३२७ । पुंवत् स्त्युक्तपुंस्कः स्त्रियां ङःत्रमानितत्वशसन्ततरादौ चारूप्य । (पृथत् ।१।, स्त्रो।१।, एकपुम्कः
१।, स्त्रियां २।, इ.स. नरादौ २।, च १९।, प्रस्यं २।)।

नाकी नवेदा नक्षणय मकी नासत्य नचत्र नपाच नभाट्।

नपुंसकं वै नमुचिनस्य नार्द्यभितेषु वदिन धीरा:॥ इति पाणिनिः ६।६।७५। एषामयाः—न प्रकं (दुःखं) प्रसिद्धिति नाकः। न वेतीति नवेदाः प्रमुन्प्रत्यः यानः। न कुलमस्येति नकुतः। न कामगीति नकः, क्रमेर्णः। न सत्यः प्रसत्यः, न प्रसत्यः नासत्यः। न चरतोति नवनम्, चौयतेः चरतेवां चनिर्मितं निपातः। न पातीति नपात् प्रत्ययानः। न साजते इति नसाट् क्विवनः। न स्त्री पुमान् नपुंसकं, स्त्रीपुंस्थोः पुंसकभावी निपातनात्। न सुचतीति नसुचिः। न खमाकाथ-मस्येति नसुम्।

श्रे एकीऽथा यस म एकार्यसिखन् । जातीयय घासय करय विशिष्ट्य ममाहारे तिखान् । महन्गव्दस्य तकारस्य चाकारः स्थान् एकार्यं विशिष्ट्य ममाहारे परे न महन्गव्दस्य स्त्रीलिक्षं) तौकारस्य चाकारः स्थाद्त्थ्यः । जातीय रित (४८०) प्रव्यः, घास कर विशिष्ट इति शद्धाः । सहन् वल यस्यासौ सहाकालः । एवं महती कोर्सिण्याभौ महाकीर्तः । विशेष्यश्चरपत्वं कस्पेथारयेऽपि सम्प्रवि । तन महांचासौ दैन्येति महादेवः, महती चासौ कौर्सिविति — महाकौर्तिरिति । एकार्य किं, महाय पिखत्य सहत्याखती, महतः पुत्रः महत्यादी न स्थान् । जातीयादी न महती महत्या वा घासी महाघास. । महतो महत्या वा घासी महाघास. । महतो महत्या वा करी महावत्रः । महतो महत्या वा विशिष्टः महाविशिष्टः । चस्तो महत्या वा करी महावत्रः । महतो महत्या वा विशिष्टः महाविशिष्टः । चस्तो महत्या वा स्थान् मृतः महङ्ग्राबन्दः, चमहतो महत्या वा स्त्रा महङ्ग्रा माझणी, इत्यादावभूततक्षवि न स्थादित वक्षव्यन् । पाणिनिः ६ १३।४६, वार्त्तिक्यः ।

उन्न पंस्तः स्त्री लिक्षः पंवत् स्वात् एकार्ये स्त्री लिक्के, उत्रादी च. न तुरुषो। *

३२८ । नोप्ताककोङ्पूरग्याख्यायुम्ततिका-रार्षणित्तं जातिखाङ्गेपं लमानिनि।

(न।१, जप्—वित्तं १।, नातिस्वाङ्गेप्।१।, तु।१।, भमानिनि ७।)।

^{*} पुनानित पंगत्। उत्तः पुनान् येन म उत्तपुंस्तः, एक किन्नवीयः स्त्रीपुंसयोर्वत्तंते स उक्तपृंस्त इति यावन् "भाषितः पुनान् यृन समानायामाक्रताविकस्थिन् प्रवृति-निनित्तं भाषितपृंस्तः ग्रन्दः। तदेतदेव कयं भवति। भाषितः पुमान् यिकात्रर्थे प्रवृत्तिनिभित्ते स भाषितपृंस्त्रग्रन्देन।च्यते । तस्य प्रतिपादको यः श्रन्दः सीऽपि भाषित-पुंखाः ।" इति काशिका। ग्रम् घने यस्य संग्रसनः, तर घादिर्थस्य संतरादिः, -ग्रमुन्तथामौ तरादियेति ग्रमुन्ततरादि.। ङाय मानिन् च तस लघ ग्रमुन्ततरादिस तन् तक्षिन्। नकष्याऽकष्यत्तकिन्। एकार्ये इत्यनुक्तते । चक्र[्]सकः स्त्रोलिङगस्दः षंत्रत् स्थात् विभेष्यस्ती निङ्गभन्दे परं, ङगाटीच पर. न त्रुष्ये इत्ययं। यथा— सन्दरी भार्यायस स मुन्दरभार्यः, एवं मुन्दरी चानौ भार्या चिति मुन्दरभार्या। इत्रादौ तु सुन्दरीवाचरति (८४८) सुन्दरायते । श्वात्मानं सुन्दरीं सन्यते या सा (८८३) सुन्दर-मानिनी। सुन्दर्या भाव: (४३८) सुन्दरता सुन्दरतम् । शसन्ततरादिन् (४६२ –४८३)— तरस्तमस इत्यस चतरां चतमां तथा। इष्टेयम् इसन्कल्पौ दंग्शी देशीय इत्यपि। वहु. पाग्रस्ी कथ्यसमस् चैत तरादय इति॥ यथा –(४६२) द्रयमनशीरतिप्रधेन शुक्षा ग्रुमतरा, इयनासामितिश्येन ग्रुमा ग्रुमतना । (४६४) चितिश्येन ग्रुमा ग्रुमद्रपा। (४६५) चनयोरतिर्श्यन का किल्तराम्, चासानति श्रयेन का किल्तसाम् । (४६६) चति-ছে।। কুমুন ग्रुमा ग्रुभक्त या ग्रुभदे या ग्रुभदेशीया। (४००८) ईषटूना ग्रुमा वङ्ग्रुमा। पत्र वही: परस्थित्यमभावात् न पुंन्द्वावः । वहीय समन्ततगदावुपन्यामसुवस्यमाणतिश्वतप्रकरणे द्मसन्तर।दिविधायकस्ववर्गमध्यपातानुरोधात् । (४०८) कुक्तिसता **ग्रक्षा ग्रक्षपाश्चा**। (४८०) सूतपूर्व्या ग्रभा ग्रभवरी। (४८१) ग्रभाया सृतपूर्वीगी: ग्रभारुप्य:, भव रूप्यवर्जनात् न पुंवत्। (४८२) वहीर्देडि वहुणी देहि दृति। उन्नपुंकाः किं, गङ्गा-भार्यः । तस्याः, ततः तस्यां, तत्र, तदा, ति इत्यादौ तु (३२०) पुंवत् स्नेरिति पुंतत् । इतिनीनां नडः: इालि वं, भग्नायी देवता भस्य भाग्नेयः, कुक्कृत्या भस्यं कृत्कृतास्यं, सन्याः चौरं सगचीरं, सन्याः पदं सगपदं, काक्याः ग्रावकः काकग्रावकः इत्यादी प पुंबद्वावी वक्तव्य:। पाणिनि: ६।३।३४,३४,३६,४२, वार्त्तिकानि च।

जबन्तं, तस्त्राकस्य वा क्षेन ककारोक्ड्, पूरणीत्यान्तं, संज्ञाभूतम्, इम्-उम्-रक्तार्थ-विकारार्थ-वर्जे णित्तान्तच, पुंवत्र स्थात्, जाति-स्वाङ्गविद्यितंबन्तन्तु मानिन्वर्जे। *

३२१। पूरणी प्रिया मनोत्ता सभगा दुर्भगा चान्ता कान्ता वामना वामा चपला बाला समा सचिवा तनया दुहिलंखा कल्याणी भक्तौ।

(पूरची---भक्ती ७।)। '.

एषु परेषु पुंवत्र स्थात्। 🅆

[•] तथ पक्य ताकी, तथी: कः ताककः, स छङ् यस स ताककी छ । इस छ य यू ताथां स युन, (४१०) (सकारस्य प्रत्येक सम्बन्धि इस् छ मृ इत्यूषः), रक्तथ विकार्य तौ रक्तिविकारौ, तौ भयों येषां ते रक्तिविकारायोः, युम च रक्तिविकारायों से ते न विदासे तं यत्र की उप्रस्तविकारायेः, सूर्वत्य च इत् यस्य स वित्, विधासौ तथिति विक्तः, भयुक्तविकारायेथासौ वित्तयेति भयुस्तविकारायेथिकः। प्रसात् कप् च ताकको छ च पूर्वो च भाष्या च भयुस्तविकारायेथिकः स समाझारे तत्। जातिय स्वाक्तस्य जातिन्वाक्ते, ताथ्याभी प जातिन्वाक्तेप्। न मानिन् भमानिन् तिकान्। जवन्तं पदं, तिक्तिस्य केन भक्तप्रत्यस्य वा केन ककारी छ पदं, वितीयादि-पूर्वोग्रस्थानं पदं, दक्ताभद्रादि संभावपं पदं, इन-छन्-रक्तायं-विकारार्य वर्जन्यकारेन् तिकात्रत्रस्थानं पदच पुंतक स्थान्। जातिविक्तिवन्तं स्वाक्तविकारार्य वर्जन्यकारेन् तिकात्रत्रस्थानं पदच पुंतक स्थान्। जातिविक्तिवन्तं स्वाक्तविकितिवन्तस्य मानिन्वक्ते स्वर्दे परे पुंतक स्थादिस्ययः। पाणिनः इ।३।३०—४१।

[†] पूर्वो चेत्रादि इन तिसान्। पूर्वोति पूर्वोत्रत्यानः स्त्रीखिक्षक्रद्धः दितीयादिः। भित्रक्रद्धात्र तक्ष्यंविदितिक्षप्रत्यान्तो भव्यमानद्रव्यवाचौ बोध्यव्यः, भावसाविति तु पृंवत् सादेव । एषु चटादशसु परंसु पृंवत् न स्वादित्वयः । चत्र केचित् चानातनयबौः स्वाने चमातवस्त्री, स्वा इत्यच स्वसा इति, वाला इत्यच क्षमला इति च भाषः, वाला-वाना-श्रन्दो च नाषः । नेघद्ते इटभित्तभवाना इति, रघौ च इदभित्तिरिति व्यष्ठि इति, भाषिविद्यत्तान् । 'स्त्रीत्वविववायान्तु हदाभित्तः' इति सिद्यानक्षीमुदी । मस्त्रतन्या इति तु प्रवृतं तनयया यसा इति स्विक्षक्षीक्षः। पाणिनिः दाश्वेशः

३३०। गवाबादे: खोऽन्ते गौखंऽनीयस:।

(गवाबादी: ६।, स्तः १।, चन्ते ७।, गौर्ग्ये ७।, चनीयसः ५।)।

म्रानी स्थितस्य गोः श्राप ईप जपस स्वः स्थात् श्रप्रधानले सति, नलीयसः।

भीतगु: ध्वस्तमाय: कालतनु: । ईयससु बहुप्रेयसी । *

जबादेसु (३२८)—वामोक्त्रायाः रसिकामार्थः पाचिका-भार्थः षष्ठीजायः दत्ताजायः मैथिलीमार्थः । ब्राह्मणीमार्थः सुकेशीमार्थः । श्रमानिनि कि —ब्राह्मणमानिनी । युमादेसु वैयाकरणभार्थः सौवश्वभार्थः काषायकस्यः हैमसुद्रिकः । १

^{*} चाप्चार्टियस्य स चावारिः, शीय चावारिचतत्तस्य । गुगस्य भावी गीसर्य तिस्मिन्। न ई.यस् चनीयस् तस्मात्। ईयमः परस्य ईपः स्त्री न स्यादिश्यणः, एव निवेधः बहुत्री हावेव, (ई.यसी बहुत्री हेर्नेति वाच्यमिति वार्त्तिकम्) तेन प्रेयसीमितिकाल: ऋति-प्रयक्ति: खल इत्यादि । पर्छ पिप्पल्या: अद्वेषिप्पली, इवं पर्धलारी पर्छनगरी इत्यादे-इंस्तिविधी वक्त्य:। अत्र भावादिस्तीयानां ग्रहणात् न स्त्रीलिङ्गश्रन्दमात्रस इस्तः. तिन पतिलच्ची:, पतिचौरित्यादि। पुंबद्वावस्य विधिनिषेधौ निरुष्य उदाइरित शीतगरित्यादि। शीता शीतला गी: किरची यस्त्रासी शीतगुचन्द्रः, ध्वसा साया यस्य स भ्वसमायः, उभयव पूर्वस प्वद्वावः, पग्य इस्तः । ईवनं यहवीही (२३२) कप्रस्थिन वाधितत्वाज्ञीदाञ्चतम्। काली तनूर्यसासी कालतनुः, पूर्वस्य पुंतत्, परस्य प्रस्तः। एवस चन्धवापि गौषते पञ्चगुः चतिमावः चितिस्त्रिनियादि । बह्यः प्रेयसो यस्य स बह्मियसी कृषाः, पूर्वस्य प्वद्वावः, परस्य ईयसी वर्जनात् न इसः, (१४८) ईपः सेलीपः ध्यादेव । समासान्तविधेरनित्यत्वादव न (३३२) कप्रत्ययः, (श्वव पाणिनिस्वं यद्या "ई्यस्य" ५।४।१५६)। **भ**न क्रस्वनिधेधान् सुप्रेयसी कृलसित्यन (१६०)क्रीवेस्तः इक्षमेनापि इस्दीन स्थादिति । एवं प्रथीनानुमारेषान्यपापि । घप पुंबद्वावप्रकरणी विपदवहुती ही मतभेदी दृश्यते, यथा, चित्रानरती गुः, नरती चित्रागुर्वा; एवं दीर्घा-तम्बीजङ:, तन्बीदीर्घाजङ: प्रति केचित्। पपरेतु चित्राजरदृगुरिति वदस्ति ; चित्रा-जरलीं गावी यस्त्रेति दक्ष्याभेंऽपि चित्राजरदगुरिति भाष्यम् । कम्प्रेधारयपूर्व्वपदेतु इसोरपि प्रति, यदा जरवित्रतुः। पाणितिः १।२।४८, वार्त्तिकसः।

[†] वाली सुन्दरी जह यक्याः सा वालीकः (२०८), वालीकः भार्या यस्य सः। दक्षं वेत्तीति रसिका (४२८), रसिका भार्या यस्य सः। पत्रतीति (८८०) पाचिका,

पूरखादी तु (३२८)--

३३१। हे पूरणीप्रमाणीभ्याम:।

(हे ७।, पूरवी-प्रमायीभ्यां ५॥, च: ११)।

त्राभ्याम् त्रः स्यात् है।

(२५८) ययोलोंपोऽयुक्ती पी। कल्यागीपश्वमा रात्रयः, कल्यागीप्रियः। मुख्यात्र पूरणी पाद्या, तेन-पं

पाचिका भार्या यस्य सः। षक्षां पूरणी (४५६) वडी, घडी नावा यस्य सः। दत्ता (इति संघा) नाया यस्य सः। मिथिलायां भना नैथिली (४२८), नैथिली भार्या यस्य सः। एतु पूर्व्यपदानामूबन्तादीना पुंवहार्बानविदः। बाह्यणी (२६०) भार्या यस्य सः ब्राह्मणीभार्यः, सुकेशी (२६५) भार्या यस्य सः सुकेशीभार्यः, सुकेशी (२६५) भार्या यस्य सः सुकेशीभार्यः, स्वभयः नाति-स्वादः-विद्वितेवन्तं न पुंवत्। भावानं बाह्यणी मन्यते या सा ब्राह्मणमानिनी, मनपातीः (८८३,२५०) थिन्, ईप्च। भत्न मानिनि परं पुंवहातः। व्याक्तरणं तेति भधीते वा या सा (४२८,४१०) वैयाकरणी, सा भार्था यस्य सः। सुनन्दरः भन्नी यस्य सः स्वन्नयः, स्वन्नश्चेयं (४३०,४१०) सौवन्नो, सा भार्या यस्य सः। कषार्येण रक्ता काषायी (४२८), काषायी कन्या यस्य सः। इस्नी विकारः (४२०) हैमी, सा सुद्रिका यस्य सः। एतेषु इस्-उस्-रक्त विकारार्थ-वर्जनाव् पुंवहावः। सम्बन्न पर-पदानां इस्तः। (६१३।४३) पाणिनित्वेण क्राह्मणिकन्या, बाह्मणिवृता, बाह्मणिकतः इस्वादी डीवनस्यानेकाची इस्तः इति वक्तव्यम्।

पूरत्यादौ परे (३२८) उदाहरिष्यन् मूत्रमाह ।

† पूरणी दितीयादि:। प्रमीयितेऽनया दित प्रमाणी। पूरणी च प्रमाणी च ताभ्याम्। पूरणीवाचकात् प्रमाणीशस्दाक्ष मः स्थात् वहुनीही दल्यं। पद्यान्तां पूरणी पद्यमी (४५१)। कल्याणी प्रमक्ता पद्यमी दावियांम् दाविषु ता राजयः कल्याणीपद्यमाः, भाज पद्यमीशर्व्द परे (१२८) पुंवद्वावी नाभृत्, पद्यभीशस्दादन्न भाग्यये ययोलींप दित देंपी लोपे, (२४८) भाष्। कल्याणी प्रिया यस्य स कल्याणी-प्रियः, (१२८,११०)। एवं कल्याणीमनीजः दल्यादि। सुख्यावित भाज पूरणी-परे पुंवद्वाविनिषेधे पूरणीपरात् भाग्नयये च जमयज सुख्या पूरणी याःच्या। सुख्यत्वद्व समासवाच्यानाससाधारणधन्नांदत्वम्। कल्याणीपद्यमा द्व्या समासवाच्यानां राभीणां

३३२। द्यृत: म:। (दी-सत: ४।, क: १।)।

दीसंज्ञ का हदन्ता च का: स्थात् है। का स्थायपञ्चमीकाः पचः। राजिः पूरणी वाच्या चेति पूर्वेच सुख्यलम्। स्त्रीप्रमाणः। *

३३३। सहः सो वा। (स्टः ६), वः ११, वा।१।।

सष्ट्य हे सः स्यादा।

सह मात्रा वर्त्तते योऽसी समात्रकः सहमात्रकः । 1

३३८। सक्ष्यंत्र्णः पः खाङ्गे।

(सक्ष्यच्याः ५।, षः १।, खाङ्गे ०।)।

माभ्यां हे ष: स्यात् खाङ्गे। दीर्घसक्यः, पुण्डरीकवदिचिणी

योऽसाधारणधर्मः: रानिलंतचतासु रानिषु पश्चस्यां रानाविष वर्तते, भारी सुख्यलम् । तैन दति, परस्तीदाइरणे कल्याणपञ्चमीकः पत्तः दत्यत्र न पुंवद्वावनिषेघः, नापि चाप्रत्ययः, द्रस्यनेन सम्बन्धः । पाणिनिः ५।४।११६ ।

^{*} दो च सः स दृत् तथात् । (१६) नदीसं तका श्रद्धात् स्टल्ल श्रद्धा व हुनो हो क-प्रत्ययः स्पादित्ययः । इति तृपक्ष च यमाच म्, भन्येभीऽपि च रः प्रधितभ्यः श्रद्धियो व हुनो हो प्रयोगानुसारेण कप्रत्ययो वक्तत्यः (पाणिनः ५।४।१,४,१,४।४।१५४)। कल्याणी प्रचनी स्विन् पचे सः कल्याणपच मोकः पचः, भव समास्वाच्यस्य मसाधारणपन्यः पचलं, तत्तु पच्यां रौनो न वर्षते, भतो सुख्यलाभावात् न पुंवद्वावनिषेषः (१२६), नापि भग्रत्यः (२२१)। कल्याणीत्यच (१२०) पुंवद्वावे, पच्यनीत्यक्यात् नदीस भकादनेन कप्रत्यः। राविः पूरणी वाच्या चिति पूर्वेच कल्याणीय मारावयः इत्यमीदा पर्ये राविः समासवाच्येत्यः, पूरणीवाच्या पच्यनीवाच्या चेत्रयः, भतः पच्यनीश्रन्यस्य सुख्यलमिति। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः, स्त्रीश्रन्यस्य मनुक्रपंस्रतात् न (१२०) पुंवद्वावः, प्रमाणीशन्दात् (१११) भग्रत्ययः। पाणिनः १।४।११५१।

[†] समायक इति (६६२) कः, घनेन वा सङ्ख्याने सः । केचित्तु मात्रा सहितः समायक इति वाक्यं क्रला व्रतीयातत्पुरुषं वदन्ति । एथं सङ्ग समानम् छदरं यस्य सः सोदरः सर्पादर इत्यादि । हे किं, सङ्कला, सङ्गुष्या । साग्निः साङ्गम् साय्यस्यं सपलाग्रं सपित्राचम् इत्यादि निस्यं वक्तस्यमिति । पाचिनिः द्ष्पि २ ∤

यस्यासी पुण्डरीकाचः। स्नाङ्गे किं, दीर्घसक्षि मकटं। अ

३३५ । दाक्रायङ्गले: । (दार्वाय ७), पशुले: ४।)। पञ्चाङ्गलं दाक् । १

३३६ । **दिनेर्मुद्ध**ः ।' (विवे: ४।, स्वृं: ४।) । :

३३७। नोर्लेगितो तेऽच्छे।

(न्वी: ६॥, खोपौतौ १॥, ते ७।, प्रची ७।)।

नस्य लोपः स्थात् उवर्षस्य क्षोत् स्यादंचि ये च ते। हिमूर्ब: । §

अ सक्षि च घवि च तत् सक्ष्यि ति स्वात्। स्वस्य घात्रानः घन्नं स्वान्नं ति स्वान्। स्वान्नं ति स्वान्नं ति स्वान्नं ति स्वान्नं (२६५)। स्वाज्ञवाचिभ्यामाभ्यामित्वर्यः। प-प्रत्ययस्य व दत् (२५०) ई वर्षः, घकारस्थितः। दीघें सक्ष्यिनी (ऊक) यस्य सः दीघं सक्षयः। प्रश्वरीकविदिति, प्रश्वरीकं सिताम्भीजं तन्त्वे च च कं सम्भवित, मती खच्चया तत्त्त्त्वं घषंः, घतपत वाक्ये पुष्परीकविद्युकं, एवं व्याप्त्रया (३५८) इति स्वयं वस्यिति। उभय्यव उदाइरणे घनेन प्रत्यये, (२५८) इकारस्वीपः। विस्वात् स्वियां दीघं सक्ष्यो, सर्तानाचौ। दीघं सक्ष्यो, सर्तानाचौ। दीघं सक्ष्यो, सर्तानाचौ। दीघं सक्ष्या स्वतः प्रत्ये प्रत्याचिति । पाथिनिः ५।४।४१३।११३। इति भवः। एवं स्यूलाविति चः। इति भवः परमाचित् परमाचित् । पाथिनिः ५।४।४१३।११३।

[†] षजुलिशस्त्रात् यः स्थात् हे, दाक्षि वास्य । दाक कार्छ। पश्च प्रजुलयो यत्र तत् पश्चाङ्गुलं दाक् प्रजुलिसहमाश्यवं धान्यानां वित्तेपणकाष्ठतुस्पतं' दात् गोधीचन्द्रः । स्त्रियान् वित्तादीपि पश्चाङ्गुली सित्ता । दाव्य किं, पश्चाङ्गुलिहंताः । एवं पश्चाङ्गुला शिक्षा, इत्यत्र (३६०) सङ्गाव्यादिति प्रायये, स्त्रियान् पाष् । पाणिनिः ५।४।११४।

[‡] विश्व निश्व तत् तकात्। विनिध्यां परात् मूर्जुः वः स्थात् हे। पाणिनिः प्राशरिष्

[§] न च उच नृतथो:। लीपच भीत् च लीपौती। भच्च यथ पर्धातकान्, ते इत्यस्य विशेषणम्। दो मूर्दानी यस्य सः हिमूर्दः, (३३६) पप्रत्यये, भनेन नलीपे, (२५८) भलीपः। एवं चयो मूर्दानी यस्य स निसूर्दः। स्त्रियां विमूर्ती निमूर्त्ती राचसी। हिमेः किं, वहुमूर्दा। (४३१) न दंतसः।वित्यनेन दालत्वनिषेषात् (१०८) नो लुप्फेऽधावित्यस्याप्राप्ती नलीपार्थनिदम्। भीत् यथा—वाइविः, वासस्य द्वादि। कि वित्न सात्यया—स्त्रायमुकं धान। पाणिनिः ६।४।१४५,१४६।

३३८। सङ्ग्राया डोऽवहो:।

(सङ्गाया: ५।, ७: १।, भवकी: ५।)।

बहुवर्जायाः सङ्घाया डः स्थात् ही पञ्च षट् परिमाणं येषां ते पञ्चनाः, उपगताः द्य्य्येषां ते उपद्याः । बहोस्तु उप-बहवः । अ

३३६। नाभेनीनि। (नाभे: ४।, नाबि ७।)।

पद्मनाभः । 🕆

३४०। लोमोऽन्तर्विचर्या।

(लोस: प्रा, चनार्वहिर्भां प्र॥)।

श्रन्तर्लीम: वहिलीम: । ‡

[•] नालि वहुर्यंत्र सा भवहुत्तस्याः । वहुयन्दस्य (१०१) सङ्गावित्यानेन सङ्गालातिदिगात् भाभी निषेधः । पश्चपाः इति उपत्ययं (१२६) टिलीपः । एवं दिवाः
चतुःपश्चाः इत्यादि । उपगता विंग्रतिर्यस्य स उपितंत्रः, (१२६) उपत्यये विंग्रतेनेलीपः, (२५८) ययीलीप इत्यकारलीपः । उपगता वहती येषां ते उपवहृतः । एवत्
उपगणाः । वहुवर्जनात् सङ्गोयह निसङ्गाया एव यहणं, तेन भटाभिः सह वस्तंते
या सा साष्टा पश्चामत् इत्यत्व सङ्गावितात् न स्यात् । भतप्र पाणिभी संस्थेये
इत्युक्तस्। श्रीभनं प्रातयंस्य तत् सुपातसित्यत्व "भव्ययादिरिति वक्तव्यम्" इति वार्तिकात्
उपत्ययी वक्तव्यः । पाणिनः ५।४।७३ । भन्न "उप्तमकरणे संख्यायास्तपुत्रस्थीपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकस्वात् निर्गतानि जिंग्रती निस्तिगानि वर्षाण, निर्गतस्तिगती
उङ्गलिस्यः निस्त्रिंगः खड्नाः इत्यपि वक्तव्यम् ।

[†] नाभे: परी ड: स्रात् ह संज्ञायाम्। पर्जा नाभी यस्य, पद्मवत् नाभियंस्य इति वा, पद्मनाभी विष्यः। एवं वज्ञनाभः। ज्ञणी नाभी यस्य स ज्ञणीनाभः, ज्ञणीनाभिरित्व स्रव्य ज्ञानास्य ज्ञानात् कस्यः। नामि विं, गभोरनाभिः। परिनद्धनाभिरिति तु समासान्तविधेरनिस्यलात् पर्मज्ञालादाः। "प्रज्ञ प्रस्यलवपूर्व्वात् सान्तां स्थः" (पाणिनिः ५।४।७५) इति स्वे 'प्रजिति योगविभागाद्यज्ञापि, पद्मनाभः' इति सिज्ञानकीसुदी। क्रविद्याचापीति कमदीवरस्वम्, "एतदुपलज्ञणम्, पद्मनाभिरिष् भवति' इति गोगीचन्दः।

[‡] पृष्यग्यीगात् नास्त्रीति नानुवर्त्तते। चन्तर्विक्यांपरात् कीस्री डः स्टात्

३४१। नञ्दुःसोः सक्ष्मो वा।

(नञ्दु:सी: ४।, सक्यू: ४।, वा ।१।)।

म्रसक्यः चसक्यः। 🕸

३४२ । त्रम् प्रजायाः । (धन्।१), प्रजायाः ५)।

श्रप्रजाः सुप्रजाः । 🕆

३४३। मन्दाल्यांच तु मेधाया:।

(मन्दान्यात् ५।, च ।१।, तु ।१।, मेघायाः ५।)।

श्रमधाः सुमेधाः मन्दमेधाः । ह

है। भन्नर्गतानि लीमानि यस्य सः भन्नर्लोमः, एव विद्विं।मः । भन्नर्ले मा नासिका इति क्रमदीयरः । भाग्यां किं, दोर्घलीमा । पाणिनिः ५।४०१९७ ।

अ नञ्च दुय मुश्रेति तक्षात्। एभ्यः परात् सक्षो डः स्थादा है। मास्ति सक्षि यस्य भीऽसक्षः भसक्षिः। एवं दः भक्षः दुः धक्षिः, सुसक्षः सुसक्षिः। भव भस्ताद्धं एव यद्यं, स्वाङ्गेत् (१२४) पूर्वेणैव घः। (भव सक्षि बन्द्स्याने ब्राजितिति कंषित् पठित्त इति भद्दी जितः। अभदी यर्सु स्क्रिरिति पृथक् पदं स्वीकुरते)। जयदिव्यदिमतनवलास्वे व वापदिवन विख्तित्। पाणिनिः ५।४।१२१।

† नज्-दःसभ्यः परस्याः प्रजाया भस् स्थान् कि। विति नानुवर्णते पाणिनिस्वे नित्यसिति कथनात्। नास्ति प्रजा यक्ष्याभी भप्रजाः, भसि क्रते, (१५८) ययोर्लीप इत्याकारचीपे, (१८५) भत्वसीऽभीरिति दीर्घः। एवं दुण्पुणाः, सुप्रजाः। ४६ नञादेर-व्यवक्रितोत्तरत्वसपेचितं, तेन सुगुणिप्रज इत्थादी म स्थान्। पाणिनिः ५।४।१२२।

‡ मन्दय चलाय तखात्। मन्दालाभ्यां चकारात् नज्दुःसभ्य परस्या भेधायः अस् स्यात् है। नास्ति मेधा यस्य सः चनेधाः, सुन्दरी मेधा यस्य सः सुनेधाः, मन्दा मेधा यस्य सः सुनेधाः। एवं दुर्भोधाः। चनेन चस्. (२५८) चालीपः, (१८५) दीर्षः। इष्टापि नजादिरव्यविद्यतीत्तरस्तमपित्तितं, तेन मन्दवहर्भधः इत्यादौ न स्थात्। लन्तवात् मन्दादौनां परच नातृशक्तिः। "नित्यमिष् प्रमानेधयोः" (५।४।१९२) इति पाणिनिस्चे 'नित्यग्रहणं क्राचिद्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेधाः' इति वद्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेधाः' इति वद्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेधाः' इति वद्यवापि विधानार्थम्, चन्द्यमेधाः' इति वद्यवापि विधानार्थम् चत्रवा "च्यानेति वद्यवाणे दर्शितः, यथा "यावि-यस्येवं ते राजन् मन्दवस्थान्यभेधसः। चन्द्रवस्थान् सृत्वनेधाः स्वापदिर्थने॥"

३८८ । धक्कीदन् । (धर्मात् प्रा, चन् ११) ।

सुधमा । *

३४५। नञ्सुनिव्युपाचतुरोऽः।

(नञ्-्ति वि उपात् ५।, चतुर: ५।, म: १।) ।

एभ्यसतुरः चः स्थात् हे । चनतुरः सुनतुरः । 🅆

३४६ । भान्तेतः । (भात् ४।, नेतः ४।) ।

नचत्रात् नेत्रयञ्दात् मः स्थात् हे । सगनेत्रा रात्रिः । 🕸

‡ नचवात् नचववाचकादित्यर्थः परात् नेटशब्दादः स्रोत् हे। स्नाः स्यामिरी नचवं नेता प्रापको यस्याः सा राविः स्यानेवा, च-प्रत्यथे (१४८) जाप्। एवं प्रसानेवा

[†] नक्ष सुध विध विध उपयेति तकात्। एथ्यः परात् चतुर्वव्यात् पः स्थात् हे। म सन्ति चलारि यसासी भचतुरः, सुष्ठु चलारि यसासी मुचतुरः। एवं चौषि चलारि वा परिनाणं येवां ते विचत्राः। विज्ञतास्वारां यस्य स विचत्रः। उपमतास्वारी यस्याः सा उपचतुरा। पाषिनिः ५।४।००। "कुापाध्यासुपसंस्थानम्" इति वार्तिकस्थ।

३४७ । सङ्घरासूपमानात् पात् पादोऽ हस्यादे:।

(सङ्ग्रा मु जपमानात ४।, पात् ११), पादः १।, श्रष्टस्यादेः ५।) ।

एभ्यः पादस्य पात् स्थात् हे, न तु हस्यादेः। दिपात् सुपात् व्याघ्रपात्। हस्यादेलु हस्तिपादः। *

३४८। कुसादेरीप। (क्षभादे: प्रा, ईपि श)।.

कुक्थादेः परस्य पादस्य पात् स्यात् हे ईपि परे।
(२२३) पात् पत् पौ। कुक्थपदी सतपदी। ईपि किं,
कुक्थपादः। प

इमनेवा इत्यादि । यिक्यन् भववे उदिते गाविः प्रवक्तते तत् तस्या नेत । "नेतुर्नेश्वव उपसंख्यानन्" इति वार्त्तिकम् ।

मह्या च मुत्र उपमानस्य तस्यात्। न इस्यादि रहस्यादिसस्यात्। एथाः परस्य भकारान्त-पाद-भन्दस्य पाद स्थात् ही, न तु इस्यादेः परस्य । उपमानतया प्राप्ती इस्यादेः निष्ठेषः । दौ पादौ यस्य स दिपात् । श्रीमनौ पादौ यस्य स सुपात् । स्थाप्रस्थेव पादौ यस्य स ख्याप्तपात् । इस्तिन इन पादौ यस्य स इस्तिपादः । इस्यादि-र्थया—इमी कटोलः कच्छीलो गच्छोलो गणिका सहान् । दासौ कुग्र्ल इत्यष्टौ इस्यादौ परिकौर्त्तिताः ॥ कटोलयख्डालः, गच्छीलो धान्यादाधारिवभिषः, डील इति भाषा । पाणिनिमते — कृद्दाल भन्न भन्न गच्छ कपीत — एतेऽपि इस्यादिगणपिताः । भन्न गृटादपीति वक्तव्यं, तन गृटपात् सर्थः । पाणिनिः प्राधार्श्वर, १४० ।

[े] भव भूँपीति विषयसप्तभी, द्रीप कर्त्तव्यं द्रत्यथं:। कथाविव पादी यस्याः सा कथापदी, भनेन पादस्य पादः. (२६५) द्रीप्, (२२३) पदादेशः। कथादिर्धया—कथाष्टमालाः भनेन पादस्य पादः. (२६५) द्रीप्, (२२३) पदादेशः। कथादिर्धया—कथाष्टमालाः भन्तन्वगोधाः विष्णः भितिद्रीण-कृषौ च कथाः। निराद्रम्चीशकदिकदास्यो विः स्करी वै कलसीऽपि विति ॥ "कथाष्टमालशतस्तिन्तकथाकृषिपितिकलसाः। विनिर्द्धसक्तम्चीश्वकरदास्यकद्रीणगोधायाः" दितः गोयीचन्द्रः। भव भादंशस्दस्याने भद्धभव्यः विष्णुश्रन्दस्थाने स्विगव्यय पठितः, सक्तत्वस्यः दत्यादिश्व। भयं गणी-विश्वतिसंख्यकः, पाषिनीये गणपाठे तु द्वाविश्वत्यं संख्यकः। पूर्वम्वेषैव पाद-भादेशिको नियमार्थाऽयं, तेन द्रेपीऽभावपद्ये न पाद-भादेशः। पाषिनिः ५।४।४।११८।

३४८। व्यतीहारे चिः पूर्वे दें।ऽनचा वा।

(स्वतीहार का, चि: १।, पूर्जं: १।, घं: १।, धनवि ७।, आ।१।, वा ।१।)।

व्यतीहारे यो हस्तकात् चिः स्थात्, पूर्वस्य च र्घः स्थात्, श्रा वा नलचि ।

केशेषु केशेषु रहीला यत् युदं प्रहत्तं—केशाकेशि।
देख्डैय देख्डैय प्रहत्य यत् युदं प्रहत्तं—देख्डादिण्ड।
मुष्टामुष्टि मुष्टीमुष्टि, बाहाबाहिव बाह्नबाहिव। अपि तु,
अस्यसि।

द्रति हः।

^{*} परस्परमेकजातीयिकयाकरणं व्यतीहारः, तच यो बहुवीहिस्त्यरपदात् चिः स्थात्, चकारित् अव्यथार्थं (८४), इकारिस्यितिः । चौ क्रते पूर्व्यपस्य आकारः, पर्वे दीर्घयं, चिंच परेतु न आकारः, नापि दीर्घं इत्यथंः । क्षेशाक्तिय द्खादिखः छभयच पूर्व्यपदस्याकारः, परपदात् चिः, (२५८) अकारलीपः, (२४६) क्रीलंक् । एथं सृष्टिभिर्मृष्टिभः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तं सुष्टासृष्टि सृष्टीसृष्टिः वाहभिर्माह्मिः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तं वाहावाहित वाह्मवाहित्, छभयच पूर्व्यपदस्याकारः, पचे दीर्घः, परपदात् चिः, वाह्मवाहित वाह्मवाहित, छभयच पूर्व्यपदस्याकारः, पचे दीर्घः, परपदात् चिः, वाह्मवाहित वाह्मवाहित वाह्मवाहित, छभयच पूर्व्यपदस्य क्षेतारः, (३५) श्रीकारस्य भव् । चिन्धिः चिन्धिः प्रहत्य यद युद्धं प्रवत्तत् । छदाहरणज्ञापकात्, तच गर्धाता तेन प्रहत्य युद्धं व्यतौद्दि । इक्तवेवायं विधिरिति, तेन कायच कायच गरहीता दिष्टं च यथे च स्थिता दत्यादी न स्थात् । चतपव "तच तेनेदिमिति सद्धे" इति पाणिनिस्चम् (२।२।२०) । ''कर्म्यवाहितारे युद्धप्वायं समासः । तचापि सप्रयत्तस्य यद्धविवये ; त्वतीयानस्य प्रहर्णाववये । सद्धे किं, इत्येष सुपर्वेषदं युद्धं प्रवत्तन्।' इति टीका । पाणिनिः ५।॥।१२०, ६।११२०।

कर्मधारय-समासः (य)।

परमयासावाला चेति -- परमाला । संयासी चित्रासा-वानन्दयेति -- सित्रदानन्दः । अ

३५०। कोङादिः पुंवत् यजातीयदेशीये तत्वे त्वजात्याच्यः।

(को झादि ११, पंवत् ११), य नातीय देशीये अ, तले अ, तु ११।, पनात्याख्यः १।)।
को ङ्पूरण्यादिः पुंवत् स्थात् यादी, तलयोस् जातिसंज्ञावर्जाः।
पाचकस्ती पञ्चमभार्य्याः। पं

मयूरव्यंवकायाः, (पाणिनिः २।१।०२) माकपार्थिवायाय (माक्यपार्थिवानो विश्वये उत्तरपदस्त्रीपसंख्यानमिति वार्त्तिकम्) निपायने। व्यंस्थिति इत्तयतीति व्यक्ति प्रमुद्धानि वार्त्तिकम्। निपायने। व्यंस्थिति इत्तयतीति व्यक्ति प्रमुद्धानि व्यंसक्षिति मयूर्यंसकः। एवं उद्धर उत्तयत् प्रसा कियायां सा उदरीत्स्त्रना, उत्तरविधमा, उत्पतिनपता, भश्चीतिवता रत्यादि। माकः प्रकिः वत्सरी वा प्रियो यस्य सः माकप्रियः, माकप्रियः पार्थिवः माकपार्थिवः, निपातनात् मध्यपदलीपः। एवं स्त्रीक्ष्मंनामा स्थातिः स्थितः स्थादि। प्रविः मिक्सामा सक्षीयत् सेवनक्षीयत्, सुख्युक्ता नासिका सुख्वनासिका रत्यादि। नयूरव्यंसकादिः माकपार्थिवादिय माक्रितगणः, प्रयोगात्रसारिण वोद्धवः, तेन मन्यो राजा राजान्तरम्, प्रकिश्वनः, भक्तिभयः, उद्यावचं, विश्वन विन्याविक्तिस्यादि मयूर्व्यसकादम्भतिम्।

† क उक् यस्य स कोङ्, कोङ् चार्दियस स कोङादिः। यस जातीयक देशीयस तत्तिकान्। तस लस्य तत्वं तिकान्। जातिस चास्या च जावास्यो, न विस्ते

^{*} उत्तरपदिवगु-इन्द-वमुनीहि-वनं पदवष्टले समासी नासीति दुर्गसिष्ठ-क्रमदी-त्रानी । तन्त्रतमस्त्रीकृत्रनं विभिः पटैरिप सम्प्रेशग्यसाष्ट्र सिद्धानन्द रित्। भानन्द-यतीति भानन्दः र्हात विशेष्यं पदं, त्रयाणां विशेषणत्ते समासानुपपनेः । कुलकुन्तः पटुविस्पष्टः रूलादावुभयस्य विशेषणतेऽपि विशेषपिश्रिषणभावस्य सामचारत्वात् एकस्य विशेष्यत्वं कन्त्याते । विशेषणस्य तु पूर्वस्थितिरिव्, तेन ब्राह्मणदीर्घः एवं न स्थात्। कडारादिश्रन्दासु वा पूर्व्यं प्रयोज्याः, (पाणिनिः २।२।३८) तेन कड़ारजैमिनिः जैमिनि-कडारः रूलादि । कड़ारादिश्रेषा—कड़ार जठर गडुल काण्यां खेड़ खन्नः कुन्छ स्वस्ति गौर इन्द्र भिन्नुक पिक्न पिक्न तन विधर सठर वर्ष्यर रहित ।

३५१। दित्रप्रष्टाधिका दात्रयोऽष्टा-स्तिद्शा-द्येऽन्यषटके त्वनशीतौ वा।

(दिचाप्राधिका: १॥, दाचयीऽष्टाः १॥, चिद्यायी ७), भन्यषट्को ७।, तु ।१।, भनभौतौ ७।, वा ।१।)।

एषामेते क्रमात् स्युः दशादिनिके,चलारिंग्रदादिषट्के त्रशीति-वर्जे तुवा।

हाधिका दग्र हाद्य, चयोद्य, अष्टाद्य। हाचलारिंगत् हिचलारिंगत्। श्वनमीती किं हामीति: ।

जालाख्ये यत्र क्षोडा हो भीऽजालाख्यः। (३२०) पृंवत् स्तुक्तपृंक्तेथनेन जकपृंकत्य कोडाहेः पृंवहावप्रसक्ती, (३२८) नीप्राककोडित्यनेन निर्धेषे, कर्म्यघारयाही पुनरनेन विधिः क्रियते, तेनायमणेः—तिहतस्य क्षकस्य वा केन कक्षाप्राद्याही पुनरनेन विधिः क्रियते, तेनायमणेः—तिहतस्य क्षकस्य वा केन कक्षाप्राद्याह-विहितवन्त्र पृदं यहः उक्तपृंक्तं भवति, तदा एकार्थे स्त्रीलिङ्गे परे कम्यघारयाही पृवत् स्यात्, जातीय-देशीय-प्रत्यये चपरे पृवत् स्यात्, तत्वथीः पर्यान् जातिमं जावजे चक्रपृंक्तः कीडाहिः पृवत् स्थादित्ययः। नातीयप्रत्ययं पृवहावप्रसङ्गाभविऽपि क्षमेन विशेषविधानम्। यया—रिवता चासी भायां चित्र प्रस्तिभाव्यां, पाचिका चाभी स्त्री चिति पाचकस्त्री, पञ्जमी वासी भायां चित्र पञ्चसभाव्यां। एवं दक्तभाव्यां, मेथिनभाव्यां, वाक्षणभाव्यां, सक्षेप्रभाव्यां, विशेषविधानम्। एवं दक्तभाव्यां, मेथिनभाव्यां, वाक्षणभाव्यां, सक्षेप्रभाव्यां, विशेष्यभाव्यां, वाक्षणभाव्यां, सक्षेप्रभाव्यां, विशेष्यभाव्यां, विशेष्यभाव्यां, विष्याचक्तातीयाः (४००) रिक्तदेशीयाः, (४६०) रिक्तवाः रिक्तिकाः भावां द्रत्यादि । क्षात्याद्यादि । क्षात्याद्यादि । क्षात्याद्याद्याः भावः यक्षत्याच्यादि । किचिनु कीडादिरित्यनेन येषां पृवहावो निषद्यसे रह्याते, तेन (३२०) पूरक्षीप्रियेत्यादी निषयेऽपि कम्प्रधारये पृवहाव द्रत्याः, यथा—कल्लाक्षयस्यभी महाष्टभी महानवसी कल्लाक्षप्रिया द्रत्यादि ।

कोङादिः (३२८) नीमाककोङ् इत्यादिस्त् ये पांत्रताः, पूरम्यादिः (३२८) पूरणी-प्रियेत्यादिस्ते थे पांत्रताः, ते प्वत् स्युः ये नातीयदेशीथे च परे, तः ते परे ग् ज्ञातिवाचकस्य मजावाचकस्य च न स्थादित्ययः इति रामतर्कवागीशः। पाणिनिः हाराप्तरु । "त्वतलीगुंणवचनस्य" इति वात्तिकस्।

हो च चयय षष्ट च ते दिनाष्ट, दिनाष्टिन: सहिता अधिका: दिनाष्टाधिका:,
 शाक्षपार्णिवादित्वान भहितपदस्य क्षीप:, दन्दान परस्याधिकश्रन्दस्य प्रत्येकीन सम्बन्धात्

३५२। वैकोनस्वैकाटुकान्त्री सङ्घरायां।

(वा ।१।, एकीनस्य ६।, एकाइ-एकाझी १॥, सङ्घायां ७।) ।

एकाइविंग्रतिः एकाव्ववंग्रतिः एकानविंग्रतिः। *

३५३। सख्यहोराज्ञः षः षगे च।

(सन्ति-त्रहन्-राज्ञ: ४।, ष: १।, ष-गे ०।, च ।१।)।

एभ्यः षः स्थात् ये षे गे च। प्रियसखः परमाहः महाराजः। १

द्राधिक-वाधिक भटाधिका दृश्यं ♦ दाथ वैषय भटाय दावयीऽष्टाः, दृश् भादी

येपी ते दृशादाः, व्याणां दृशादाानां समाधारः विद्रशादा तस्मिन् । षणा समुद्दः

षट्कं. यन्ष्यस्य तत् षट्कस्थिति तिस्मिन् । न अभीतिरनभीतिकस्याम् । विद्रशादाश्रदेन

दृश्-विंभति-विंभत्-श्रव्दानामेव यहणम्, भन्यथा भन्यषट्के भभीतिवर्जनमनथंकं स्थात् ।

तेन द्राधिकवाधिकाष्टाधिकानां स्थाने कमात् दा व्यम् अष्टा दृश्येतं आदिशा भविन्

दृश्यक्टं विंभतिभन्दे विंभत्भव्दे च परं, प्रकरणात् कस्मंधार्थः; चलारिभत् पत्राभत्

पष्टि सप्ति नवतीति पश्चस् परंष् वा स्युत्रिस्थः। द्राधिकास्य ते दृश् चिति द्राद्रश् वाधिकास्य ते दृश् चिति त्यांदृश् भष्टाधिकास्य ते दृश् चिति भष्टादृश्, भक्षार्थवादिलात्

अधिकास्य ते दृश् चिति त्यांदृश् भष्टाधिकास्य ते दृश् चिति भष्टादृश्, भक्षार्थवादिलात्

अधिकास्य ते दृश् चिति त्यांदृश् भष्टाधिकास्य ते दृश् चिति भष्टादृश्, भक्षार्थात्। एवं द्राविंभतिः वर्धाविंभतिः अष्टाविभितः, द्राविंभतः, द्राविवादिमात्

पदं द्रापश्चामत् दिपश्चाणत्, द्राष्टिः द्रिष्टिः, द्रामप्तिः दिसप्ततः, द्रावितः प्रष्टाभितः। द्रावितादः प्रथातिः वर्धातिः। प्रथातिः प्रथातिः प्रथातिः। स्रथातिः। प्रथातिः। द्राधिकादः। पाणिनिः ६।३।४०,४८,४८। प्राक् शतादक्रव्यमिति

वातिकञः।

्र एकीनस्य स्थाने एकाइ-एकाद्री स्थातां सङ्गायाचके परे थे। एकीना चाभी विंग्रतिस्ति एकाइविंग्रतिरित्यादि। वाग्रन्टस्य व्यवस्थ्या सङ्गा इन्न विंग्रत्थादिरेव, तेन एकीनाच ते दश चेति एकीनद्य इत्थेव। 'यद्यपि संख्यायामिति सामान्येनीकं तथापि विंग्रति विंग्रत् चलारिंग्रत् पञ्चाग्रत् षष्टि सप्ति च्रशीति नवति प्रत सङ्खा-दावेव परेऽनाझावादेशी सन्तः, नलन्यस्थिन संख्याग्रन्टे परेऽनिभ्धानात्" इति गोगीचन्द्रः। थे किं, एकीना विंग्रतिर्थेव स. एकीनविंग्रतिरिति। पाणिनिः ६।३।०६।

† सस्ताच भ्रह्य राजाचेति तस्तात्। प्रियशासी सस्ताचेति प्रियसस्यः, भर्नन सः (२५८) इतारलोपः। स्त्रियां क्लिस्ति (२५०) प्रियसस्ती। परमञ्चतत् भ्रह्येति

३५४। सर्वेकरेगसङ्घरातसङ्घराव्यान्तेकान्ते-कोऽक्कोऽक्कः।

(सर्च-व्यात् ४। न ।१।, एकात् ४।, न ।१।, ऐकी ७।, भन्न: ६।, भन्न: १।) ।

एभ्यः परस्य अहन् इत्यस्य स्थाते अज्ञः स्थात् यादौ नलेकात् न चैको । *

३५५। प्राग्वत नो गोऽतोऽक्लस्य।

(प्राग्वत् ।१।, न. ६।, यः १।, श्रतः ५।, श्रहस्य ६।) ।

सर्वोह्नः पूर्वोह्नः। एकात्तुं एकार्दैः।

খন इति किं, विभिरहोभिर्जातः ব্যক্ল:। প

परमाहः, पप्रवीये, (२२०) नलीपे, (२५८) अकारलीपः, भहानानां पुस्तमिभधानात्। महांयाशौ राजा चिति महाराजः, (२२६) महतस्य भाकारः, षप्रवये, नःलीपे, भकारलीपः। स्त्रियां महाराजः, ''महाराजः तु प्रायो नामयहणे स्त्रीलिङ्ख्यापि यहणित्यस्य प्रायिकलात्" इति कमदीश्वरः। "महती चासौ राजाः चिति'' इति गोयीचन्दः। ''लिङ्विशिष्टपरिभाषया भित्यलात्रेह मद्राणां राजाः मद्राजाः' इति भद्रीजिदोचितः। एवं क्रणस्य सखाकणस्यः, चयाणां सखीनां समाहारिक्षस्यं। यादौ किं, क्रणः सखा यस्य सक्ष्यस्यिः, क्रणसखा इति तु भाष्यकारः (१२६ स्वटीका दृष्ट्या)। भत्रव ''वायुः सखा यस्य स्वायुसखा'' इति गोयोचन्दः। पाणिनः ५।।। १।।।

* सर्व्य एकरेगय सङ्गातय सङ्गाच व्यच समाहारे तस्त्रात्, न एको मैक-स्त्रस्थात्, न ऐको नैको तस्त्रिन्। चङ्ग एकैकभागे वर्षमान: पूर्व्वादिरेकदेश:। एथ्यः परस्य चहन्ग्रव्यस्य चङ्ग इत्यकारान्न चारेग्र: स्थात्, नतु एकात्, न च समाहारे दिगी। पाचिनि: ५।४।८८८।

+ प्रावित्य नेन (१००) षु : चन्कुपूनरिंपीति च प्राप्तं, तथाच — वकार-रेफसवयं-युक्तात् परन्तात् परस्य चक्र दशकारान्तस्य भी यः स्थात् चन्कु-पु-धन्तरिप्रावियः। सर्वेच तत् घडचेति सर्वोद्यः, पूर्वेच तत् घडचेति चूर्वोद्यः। एवं
प्राव्यः चपराद्यः द्रत्यादि (१५१,१५४,१६५)। एकच्य तद्दचेति एकाष्टः (१५१,
११०,२५८)। प्राक्र इति तद्वितायेदिगुः, प्रत्युदाष्टर्षायेनिक्वीक्रम्। चक्रस्तिक्कारान्य

३५६। कौटग्रामात् तच्णः।

(कीट-बामात् ५।, तथ्य ५।)।

कौटतचः, (ग्रामतचः)। *

३५७। जातमहर्ष्टेडादुच्णः।

(जात-महत्-बहात् ५), उत्रा. ५।)।

जातीचः, महोचः, वृदोचः । १

३५८। शुनोऽत्यप्राग्थुपमानात्।

(ग्रन: ४।, पति-प्रप्राख्यपनानात् ५।)।

अते: प्राणिवर्जादुपमानाच श्रनः षः स्थात् यादौ । त्राकर्षे दव स्वा त्राकर्षस्वः। प्राणिनस्तु,व्याघदव स्वा व्याघस्वाः‡

इति किं, दीवाणि भड़ानि यस्यां सा दीर्घाक्री शरत्। प्राग्वदिति किं, सङ्गाताइः व्यक्तः। पूर्वव नेके इति किं, दयीरक्रीः समाचारः द्राहः। एतेषां पुस्तमभिधानात्। पुण्याहमिति, तुनपुंसकं "भपयपुण्याहे नपुंसके'' इति जिङ्गानुशासन विश्व स्वात्। एवं सुदिनाइमिति। "पुण्यासुदिनाभ्यां क्षीवं" इति क्षमदीश्वरस्वस्। पाणिनः पाधाः।

* भाश्यां परात् तचन्त्रव्यात् षः स्थात् यादौ । कृष्यां भवः कौटः कौट्यासी तचा चिति कौटतचः , ''स्वतल्लकर्मको नो न कस्यचित् प्रतिवज्ञः' इति गोथीचन्द्रः । यासस्य तचा ग्रामतचः ''बङ्गा साधाग्ण इत्यर्थः'' इति गोथीचन्द्रः कौट्यामात किं राजतचा । पाणिनिः प्राधास्य ।

† एभ्यः परात् उचन्॥ब्दात् षः स्थात् यादी । जातयासी उचा चेति जालीच एवं सष्टीचः, बक्कोचः । यादी किं, सष्टान् उचा यस्य स सहीचा थियः । पाणिनि ५।४।००।

‡ न प्राणी भ्रप्राणी, भ्रप्राणी चासी उपमानचित भ्रप्राण्युमानं, भ्रतिय भ्रप्राण्युपमानचित त्रियातः। भ्राक्षयंति त्रियातः। भ्राक्षयंत्रमानचित्र त्रियातः। भ्राक्षयं अस्टिन सम्राण्युपमानात् प्रात् भ्रम्भ्रद्धात यः। भ्रतेम्, श्रानमतिकान्तः भ्रतिश्वः वराष्टः, भ्रतिश्वः वराष्टः, भ्रतिश्वः वराष्ट्रम् स्वाप्या व्याम्रतृत्यः उप्यते, व्याम्यासी श्रा चेति व्याम्रशा, भ्राण्युपमानात् न षः। पाणिनः ५। ४।८८,८०।

३५८। पूर्वीत्तरस्रगाच्चानतेः सक्षः।

(पूर्व-उत्तर-स्गात् ५।, च ।१।, भनते: ५।, सक्षु: ५।) ।

एभ्यः पूर्व्वोत्ताच त्रतिवर्ज्ञात् सक्यः षः स्यात् यादौ। पूर्व्वसक्यं। *

् ३६०। देशात् ब्रह्मणः कुमहद्भगान्तु वा।

(देशात् ५।, ब्रह्मणः ५।, कु-मस्क्रां ५॥, तु ।१।, वा ।१।) ।

कुलितो ब्रह्माकुब्रह्मः कुब्रह्मा। 🕆

३६१। सरोऽनोऽयोऽस्मनः संच्याचात्योः।

(सरम् अनम् अयम् अस्मनः प्रः, मधा-जात्यो. ०॥)।

महानसं उपानसं लोहितायसं पिण्डाश्मः श्रमृताश्मः । ईः

[ः] प्रवंश उत्तरथ सगय तमात्। नामि भतियेत मोऽनितसमात्। पूर्वी-त्तरसंगिथः अप्राण्युपमानाच सक्ष्य वः स्थात् यादौ । पूर्वेच तत् सक्ष्य चिति पूर्वे-सक्ष्य । एवम् उत्तरसक्ष्यं । पूर्वीत्तरभन्दौ अवयववाविमौ । सगय सक्ष्य सगसक्ष्यं । फलकमित्र मक्ष्य फलकसक्ष्यं, भिलाभक्षं । प्राण्युपमानात्त् व्याघसक्ष्य । भतेसु सक्ष्य चितकान्त. चितसक्षिः । पाणिनि ५ । ४। १८८ ।

⁺ देशवाचकात् परात् बद्धाणः सः स्थात् यादौ, कुमहक्कां परात्तुवा । भवित्तप् बद्धा ऋपित्वद्धाः, सुराष्ट्रवृद्धाः । देशात् किं, देववृद्धाः नारदः । सहायामौ बद्धाः चिति सहाबद्धाः सहाबद्धाः । वृद्धन्यव्दाऽच वृद्धायावाची । पाणिनिः ५।४।१०४,१०५।

[‡] सरम् च अनम् च अयम् च अयम् च प्रसम् चंति तसात्। सभा च जातिय समानाती तयीः। संज्ञालचणमाइ गोथीचन्दः "थो योगवित्तिमितरचापहाय विशेषे वर्ततं स एव संज्ञाल्यां लसते।" जातिलचणन् पूज्यभेगीकां स्त्रीत्ये २६६ मुचे। एथाः षः स्यात् यादौ संभायां जातौ च । जालस्य मरः जालसरमं संज्ञा। जलसरमिति त भट्टीजिट्टीचितः। चन्द्रसरो दैतवनभरः चच्चीटमरः इत्यादौ तु न भवित। मण्डूकसरसं ज्ञातिः। सहस्र तत् पन्यति सहानमं सज्ञा। उपगतमनः उपानमं जातिः। स्त्रिक्तयः लीहितायमं संज्ञा। जालसयः कालायमं जातिः। पिष्डुद्व अस्त्राः लीहितसयः लीहितायमं संज्ञा। कालसयः कालायमं जातिः। पिष्डुद्व अस्त्राः पिष्डास्यः संज्ञा। अस्त्रतं अस्त्राः अस्तास्यः चातिः। संज्ञानात्योः कां, दीर्घसरः इट्रानः क्रस्त्याः सम्राग्रमा। पाथिनिः ५।॥८४।

३६२। सर्वेकदेशसङ्घ्यातपुख्यवषदिविद्राचेः।

(सर्व-दीर्घात् ५।, रावे: ५।)।

राचेरेकैकरेशे वर्त्तमानः पूर्व्वादिरेकरेशः।

पूर्वरातः अपररातः। *

. ३६३। गोरतार्धे। (गी: ५१, अतार्थे ०।)।

गीयव्दात् ष: स्थात् यादी,'न तु तार्थे । परमंगवः । 🙌

३६४। नाबोऽङ्गीत् ग्रेच।

(नावः प्रः, चर्जात् प्रा, गे छा, च ।१।)।

अर्डात परात् नीमन्दात् षः स्यात्, अतार्धे गे च । अर्डनावं । क्ष

३६५। खार्था वा। (खार्था: ४।, वा ११)।

अर्डखारं अर्डखारी। §

द्रति य:।

^{*} सर्व्य एकदेशय सङ्गातय पुष्यच वर्षाय दीर्घय तथात्। एथाः परस्याः रावेः घः स्थात् यादौ । सर्व्या चासौ राविधेति सर्व्वरावः । रावानानां पुस्तमिधानात्। पूर्व्या चासौ राविधेति पूर्व्वरावः रावेः पूर्व्वभाग इत्यर्थः, एवमपररावः, मध्यरावः, सङ्गातरावः, पुष्यरावः, वर्षाणां राविः वर्षारावः, दौर्घरावः । पाणिनिः ५।४।८०।

[†] परमधासी गौबेति परमगवः। एवं पुनांषासी गौबेति पुंगवः। राज्ञी गौः राजगवः। चयाणां गवांसनाइ।रः जिगवं, षयां गवांसनाइ।रः षङ्गवं। पञ्च गावो धनमस्य पञ्चगवधनः। चतार्थे किं, पञ्चभिगींभिः क्रोतः पञ्चगः। पाण्यिनिः ५।४।८२।

[‡] अब स्वे परच च यादेरतुइत्ताविष चिभिधानात् चर्छात् परात् नौशब्दात् ये एव सः स्नात्, पुन. गे च इति स्वथनात् नौशब्दात् घः स्नात् चतार्थे गे च इत्यपरोऽधीं वोद्यत्यः। चतप्य पाणिनौ स्वदयम्। चर्दच तत् नौथिति चर्दनावं स्नौबस्तमिधानात्। चर्दात् किं, दौधेवौः। एवं चिनावं दिनावधनः। तार्थेत्, पचिभिः नौभिः कौतः पचनौः। पाणिनिः ५।॥।८८.१००।

तत्पुरुष-समासः (ष) ।

क्षणामायितः क्षणायितः। * .

३६६। व्यं पूर्वं। (वंश, पूर्वंश)।

परं व्यं पूर्वं स्थात् से सति।

* वितीयादिविभन्नयलपदपूर्वकाणां समासत्तपुष्य इत्युक्तं (३१८), कमेणीदा इरित क्रणमात्रित इति । एवं कियाविशेषण दितीयालादिरिप यदा — नित्यभीकः, मन्दगामी, मासं व्याप्य स्थितः मासस्थितः इत्यादि । पाणिनिमते तु कियाविशेषणस्थले सुप्सुपेति समासः, क्रियाविशेषणस्य कारकतिनानद्वीकारात् ।

नञ् इत्यययस्य स्यायनेन सइ समासी नञ्तत्पुक्षः (पाणिनिः २।२।६), स च प्रथमान्त्रदपूर्वक एव । यथा न वाद्ययः महाद्ययः । नञ्च दिविधः पर्यद्रासः प्रसञ्चप्रतिविधयः । तथा च — प्रधानतं विधेयं च प्रतिविधः प्रधानता । पर्यद्रासः स विभेयो यवीत्तरपदेन नञ् ॥ प्रप्रधानतं विधेयं च प्रतिविधः प्रधानता । प्रसञ्चप्रतिविधः । कियय सह यत्र नञ् ॥ प्रप्रधानतं विधेयं च प्रतिविधः प्रधानता । प्रसञ्चप्रतिविधः । कियय सह यत्र नञ् ॥ प्रधानतं विधेयं च प्रतिविधः प्रधानतं । प्रस्तिविधः प्रधानतं प्रतिविधः स्थानतं । कियति न कुर्व्याच इत्यादौ विध्यं च तात्रप्रधानातं विधेरप्रधानतं समासः । कियति न कुर्व्याच इत्यादौ विध्यं च तात्रप्रधानातं स्थायनेन सह सप्रचलानात् , प्रतर्व प्रस्तविधः नञः कियया सह सम्बन्धात् स्यायनेन सह सप्रचल्यानात् न समास इति । "प्रयंस तुत्त्यस्वानां सेन्यविवेऽप्यस्त्रमम् " इत्यादौ केयिन समास इत्यते । प्रधस्तु नञ्चः वड् विधः — तत्साहस्यमभावयः तद्व्यतः तद्व्यतः । प्रपामक्वं विशोधय नञ्चाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ यथा — चवाद्ययः, प्रपापं, प्रघटः, चतुद्री कन्या, प्रकीयी, प्रसुरः इत्यादि । प्रच वक्तव्यं स्वादौ नञ्चत्रपुद्ध एव ।

एवञ्च कु-प्रादिभि: सङ स्वायन्तस्य नित्यसमायः स्वात् (पाणिनिः २।२।१८, 'प्रादयः गताद्यये प्रथमया', इति वार्तिकञ्च)। नित्यसमासे स्वपदिवयक्षी नासि, पदान्तरेस भर्यकयनम्। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः, क्रेयत् कलं कावलं, प्रकृष्टी गतः प्रगतः, दुष्टी जनः दुर्जनः, ग्रीभनी जनः सुकृतः इत्यादिः विष्यप्रयोगानुसारेस नित्यसमासी विद्यः। राजानमतिकान्ता त्रतिराजी, त्रतिष्वी, त्रत्यक्रः, त्रतिस्तिः।

३६७। सङ्घ्याव्याद्राच्यङ्गलिभ्यामः।

(सङ्गा-व्यात् ५।, राचि-पङ्गुलिभ्यां ५॥, त्रः १।)।

सङ्गाया व्याच पराभ्यां रात्राङ्गुलिभ्याः मः स्थात् यादी, न तुः तार्थे । त्रतिरात्रः त्रत्यङ्गुलः । 🅆

हरिणा नाती हरिनातः । विणावे दत्तं विणादत्तं । प्रच्युतात् जातं प्रच्युतजातं । क्षणस्य सखा क्षणसखः, महाघासः, गामतत्तः, सगसक्षं, जालसरसं, मण्डूकसरसं, राजगवः, वर्षारातः । ॥

⁽५४८ सूर्व ट्रष्टव्यम्)। स्थाद्युत्पत्तेः प्रागिष कदलेन सङ् उपपदस्य नित्यं समासः, यथा — कृष्यं करोति इति कृष्यकारः, श्रतिग्रहः, धनकौतौत्यादि ।

^{*} समासान्तप्रवयागामेव निमित्तीभृतस्य यादेः इड पूर्वनिपाते चतुक्षिनंति, तेन समासमानिऽत्य विधानात् उपक्षणम् इत्यव्ययीभावेऽपि पूर्वानपातः । चितिनात् । चतिनाति (१५२) व-प्रवये, (११०,१५८) नकार-चकार-खीपे, (१५०) विस्तादीप् । यानमतिकान्ता चित्री (१५८) व प्रवयः, येषं पूर्ववत् । चहर्रतकान्तः प्रवयः, (१५१) वः, (१५४) चक्रादेशः । स्त्रियमितकान्तः चितिस्तः, परपदार्थस्याप्रधानात् (११०) कस्तः, एवम् चित्रमायः, चित्रवामीदः । राज्यमतिकान्ता चितराजीश्वदाहरता चित्रविधान्तस्य समास इति मृचितं (चत्रादयः कान्ताययं दितीयया इति वार्त्तिकाम्), तेन वेनासुद्गतः उद्देषः, ज्यामधिद् चित्रयं, सुस्तमभिगतः चिभस्रसः — इत्यादि विध्या । चन्न प्रयोगानुसारेण चत्र्यथिनस्यापि पूर्वनिपाती वक्रयः, यथा— वनस्याग्रे चर्यवनं, रावीषां गणः गणरावं, दन्तानां राजा राजदन्तः द्व्यादि । पारिणनः २।११० ।

⁺ सङ्गा च व्यच सङ्गाव्यं तकात्. एकवचनं यथासङ्गः निरासार्थे। चन मण्डूकमुताधिकारात् यादेरतृत्रणिः। राजिमतिकानोऽतिसत्रः, चङ्गुलिमतिकानोऽत्यङ्गुलः,
चभयन चनेन चम्यये (२५८) इकारलीपः। एवं तिस्त्रणां राचौकां समाद्वारः
विरातं, द्यीरङ्गुल्कोः समाद्वारः दाङ्गुलं। तार्थे किं, द चङ्गुली पस्मित्यमस्य दाङ्गुलि
(चैनं)। दाङ्गुलं चेनं, दाङ्गुला सूमिरित्यादि तु यवोदरपरिमाणार्थकाङ्गुलयस्देन
समास्ति विद्यं, तयाच—चङ्गुलम् यवो मतः इत्यमरमाला। पाणिनः ५।४।८६,८०।

[‡] हतीया-तत्पुरुषमांच--इतिणा नात इति। एवं खड्गक्तिः, रथवज्याः,

३६८। मुख्याचीरसः। (स्व्याव-उत्तः ४।)। मुख्यार्था-दुरस्थन्दात् ग्रः स्थात् यादी। त्रकोरसं, मुख्योऽख इत्यर्थः।

पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः, त्रवृत्तिषु ब्रह्मा त्रवन्तिब्रह्मः । *
इति षः ।

मासपूर्वः, मासोनः, वर्षावरः, गुड़मित्र इत्यादि । दक्षा मित्रित-पीदनः दध्योदनः, गुड़ेन मिश्रिता घाना: गुड़धाना:, इन्तिना युक्ती रैंघ: इन्तिरघ:, एवं अश्वरघ: इत्यादी श्राकपार्थिवादिलात् मध्यपदलीपः । चतुर्थीमाइ--विचावे दत्तमिति । एवं गोभ्यो दितः गोहित:, यूपाय दाह यूपदाह, कुछलाम सुवर्ण कुछलसुवर्ण, दृश्यादि । श्रव वक्तव्यं — केषाश्चित्राते प्रकृतिविकृतिभावस्थले एव चतुर्धीतत्पुरुषः, अन्यव तु षष्ठीसमासः। यया चन्नस्य घास: चन्नघास:, नतु चन्नाय घास:। एवं रूथनस्थाली इत्यादि। पञ्चमीमाइ — चच्यतात् जातमिति । एवं व्यावभीतः धर्मामीतः, चत्रपतितः, चर्जुन-पराजितः, सर्परचितः, घटभिन्न इत्यादि । षष्ठीमाइ—क्रणस्य मखा क्रणसखः (३५३), महतो देशस्य सहस्या भूस्या वा घासः सहाघामः (३२६), सहतः तकारस्य तीकारस्य वा भाकार:। यामस्य तचा यामतवः (३५६) घ-प्रत्ययः। स्गस्य सर्काय स्गस्क सं (३५८)। जालस्य सर: मख्डूकस्य सर:, जालसरस मख्डूकसरसं (३६१)। राजी गी: राजगव: (३६२)। वर्षाणां रावि: वर्षागव: (३६२)। एवं मासस्य जात: मानजात इत्यादि । घत्र वक्तव्यम्—''क्रदीगा वष्ठौ समस्यते इति वाच्यम्'', ''प्रति-पदिविधानाषष्ठीन समस्यते इति वाच्यम्"— इति वार्त्तिकद्वयम् । यथा इभानी वस्रनः इभावयन: ; सिंपेषी ज्ञानम्, मातुः स्वरणम्, पधीदकस्य छपस्करणम्, भौरस्य वना, सर्पिकी नाधनम्, चौरखोज्जासनम्, शतस्य पणनित्यादि ।

• मुख्यांऽघी यस्य तत् मुख्याये, मुख्यायेच तत् उरवित तद्यात्। भवस्य उरः प्रधानं भस्योरसं। उरस्यस्टी इत्यवाचकः, भवतु सवस्याया प्रधानायेः। ''भवानासुर इतः इति भद्दोनिदीचितः। मुख्यायोदिति किं, इतस्य उरः इत्योरः इद्धस्य वच इत्ययः। सप्तमीतत्पुद्धसाइ—पुद्योत्तमः। भव उदाहरणज्ञापकात् पुद्यायासुत्तम इति न वशीसमासः ''न निद्योर्षे" (पाणिनिः १।२।१०) इति मूत्रेण निवेधात्। भवनितृद्ध इत्यव (१६०) षप्रत्ययः। पाणिनिः ५।४।८१।

भन वक्तव्यं, विलेशवादिविभक्तेरसुक् वने चरादेसु वा, यथा—विलेशवः, खलेशवः, छरिमसोमा, कछिकासः। वने घरः वनघरः, खेचरः खचरः, लिचसारः लक्षारः, सरिम सरीमित्यादि। एवं परसीपदम्, भारतनेपदम्, सम्बेरमः, कर्णेनपः, प्रस्ति इस्।दौ नित्यम्। मातुः त्रसा मातुः खसा मातुः खसा मातुः त्रसा पितुः स्वा पितुः स्व पि

दिगु-समासः (ग)।

तस्यार्थे—विषये, वाच्ये श्रपत्यार्थेणिकादिकं प्रोज्भ्याजादेः, समाद्वारे, गस्त्रिधोत्तरदे परे । पञ्चभिगोभिः क्रीतः पञ्चगः । *

३६८। गैक्यादतोऽपात्रादेरीप्।

(गैक्यात् ५।, भतः ५।, चर्पात्रादेः ५।, ईप् ।१।)।

गैक्यादकारान्तादीप् स्थात्, न तु पात्रादेः। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी।

[•] गो हिनु:— तस्र तिहतस्य भयें, समाकारे, एक्तपदे परे च भवन विधा भवित। तिहतायेंऽपि हिधा भवित, यथा — तिहतप्रयमाचस्य चयें विषये द्रत्येकः, धपत्यार्थ- खिकादिकं प्रोजभग यक्का धनादेक्तितस्य भयें वाच्ये द्रत्यपरः । खिकादिकं निति थिरेव खिक इति इत्तरेशियात् स्वायें कः, खिप्रधितकं नित्यथः । यव तस्यायेविषये समासः किवते तव तिहतप्रयमेवर्षः पृत्यविस्थागं समासे कते ततः प्रयमेत्पत्ती रह्यादः, यथा द्रयोगीवीरपत्यमिय्य प्राप्तव्यस्य खप्रत्यस्य छत्पत्तेः पृत्वविस्थायां द्रयोः मानोः एतयोरिकपदीभावे हिमाद्यपदात् (४१५) खप्रत्यये कते, (४१६) हि द्रत्यस अदी, (४२५) छुर् कते हैमातुरः इति पदं। एवं पञ्चानं नापितानामपत्यं पाञ्चनापितिरित्यादि। वाच्ये यथा—पञ्चभिगीभः क्रीतः पञ्चगः स्त्य कर्माणि वाच्ये कर्या-कारकात् (४२६) द्रवे कादित्यादिना प्राप्तव्यस्यस्य धर्ये वाच्ये, समासनैव तिहतस्य छक्तायेते, छक्तार्थनानप्रयोगः इति न्यायात् तिहतप्रत्यस्य प्रतृत्पत्तौ, (११०) गवावादिरिति इत्तः। खकादिरिति किं—वयोर्भुत्रीभंवः हिमूईन्यः, इत्यादौ तिहतप्रत्यात् पूर्वे समासे, हिमूईन्यःद्रत् (४६१) खानस्यः, चत्र विषये एव विद्राप्त्यात् पूर्वे समासे, हिमूईन्यः स्तान्वित्रकः। सन्तर्यदे परे यथा पञ्चगवधनः। पाणितः २।१।५१।

पात्रादेलु, दिपात्रं त्रिपात्रं, त्रिभुवनं, चतुर्युगं । *

३७० | वानाप: | (वा ११, वन वापः ४१)। अनन्तादापस ईप् स्थात्वा। पञ्चकक्षी पञ्चकक्षी, त्रिखडी त्रिखडें। ने

३७१। तार्थे मानरत् कार्यहात्तचे । व (तार्थे अ, मानात् था, कार्यात् था, व ।रा, प्रसंवे अ)।

त्राङ्की, तिकाण्डी रर्जुः। दीने तु, विकाण्डा भूमि:। 🕸

३७२ । पुरुषाद्वा । (प्रवात् ४१, वा ११)।

^{*&#}x27;गस्य ऐकां गैकां (समाहारिहगुः) तक्षात्। पात्रमादिर्धस्य स पात्रादिः, न पात्रादिरपाश्रादिः तस्त्रात्। समाहार-िहगुनां (६२२) क्षीवतिऽपि ईपी विधानात् नित्यस्त्रीलं स्थितं। हयोः पात्रयोः समाहारः हिपात्रं। पादिना विग्रुणं चतुर्गण चतुः सतं चतुर्यण चतुर्मुलं पञ्चनायं पञ्चनायं हिस्तारं हिचन्द्रम् इत्यादि प्रयोगतो श्वेषं। चत इति किं, वयाणां नगतां समाहारः निजगत् इत्यादि । पाणिनिः ४।१।२१, २।४।१७, "पात्रादिस्यः प्रतिवेषः" इति वात्तिकस्त्र।

[†] वाश्च्दोऽत समुख्यार्थः, तथाच — भननात् भावनास गेक्यात् ईप् स्थात्, समुद्धयेन (१६०) सङ्ग्राव्यादित्यतः मञ्जूकात्या भन्द्वत्य भव स्थादित्ययः। समुद्धयाक्षयं नोत्तरत्र इति न्यायात् परत्र भग्रत्यस्य नानुकत्तिरिति। पश्चानां कर्म्यणां समाहारः, भनेन द्वेपि (१३०) न-लोपे, (१५८) भकार-लोपे, पश्चकक्यौं। पने भनेनेव समुद्य-लब्बोऽग्रत्ययः, (१२२) क्षीवत्यं। एवं नित्वी नित्तं दत्यादि। "वावनः", "अनो नलीपय वाच स्त्रियान्" इति वार्त्तिकदयम्।

[‡] तिश्वतार्थिक्षिौ परिमाणवाचकात् ई.प् स्थान्, काल्डग्रन्दानु चेविभिन्ने वार्थे इ.स्रायं:|वय: फाड़का: परिमाणमस्या: द्वाड़कौ धान्यसंक्रति:|एवं दौ द्वीणौ परिमाण-मस्या: विद्वोणौत्यादि । वय: काल्डा: (त्रला:) परिमाणमस्या: द्विकाल्डी रज्जुः। चेवे तु निकाल्डा भूमि: वेवैकदेग:। पाणिनि. ४।१।२२.२३।

हिपक्षी हिपक्षा। विसखं विगवं विनावं, विखारं विखारि, a18:1 %

३७३। दिवेर्बाञ्जलेरः।

(विचे: प्रा. वा ।१। अञ्चले: प्रा. मः १।) ।

दाञ्जलं दाञ्जलि, दाङ्गलं, तिरावं। 🌵 पञ्च गावी धनं यस्यासी पञ्चगवधनः हिनावधनः हिखारधनः हाइहिषय:। क्ष

दिति सः।

^{*} परिमाणवाचकात् पुरुषणब्दादीप स्थात् वा तज्जितार्थे दिगी। बीपुरुषौ परि-माणमध्याः हिपुरुषी हिपुरुषा भित्तिः। विधाषां सखीनां समाहारः विसर्वं (३५३)। भयाचां गवां समाधार: निगवं (३६३)। तिस्रचां नावां समाधार: निनावं (३६४)। तिस्यां खारीयां समादारः विखारं (३६५), पर्व विखारि (१६०)। वर्षायामञ्जा समाहार: नाह: (३५३), चिभिधानात पंस्तं। (३५४) सर्वेतिहेशित्य समाहारवर्जनात् न प्रकादेश:। परिमास्तिने तुदास्या पुरुषाभ्यां कीता दिपुरुषा द्रत्येव। पाणिनिः 818188 1

[†] डिजिभ्यां परादञ्जले: भ्रः स्थात वा तिखितार्थे दिगी। डांवञ्जली परिमाणमस्य दास्रलं नलं. पचे प्रत्ययाभावे जलविशेषणतात् स्तीवताः एवं पाञ्चल बास्रलि। त्रिलोचनस्त तिखतार्थभित्रे दिगौ दिनिभ्यामञ्चलीर प्रत्ययं विद्धाति, तन्त्रते दयोरञ्जल्योः समाहार: बाञ्चलं बाञ्चलि. एवं बावञ्चली प्रियो यस्य स बाञ्चलप्रिय: बाञ्चलिप्रिय: इति समाधारीत्तरपटपरशीसटा छर्गा। तिहतार्थे त दास्यामञ्जलिस्यां कीत: दाञ्चलि-रिति। चतप्व 'चतिब्रतलकौर्धव' इति भद्दीजिदीचित:। दर्यारङ्खी: समाइर: दाङ्कलं, तिस्रकां रात्रौका समाहार: विरावं, छभयन (१६०) सङ्गाव्यादिति चनव्यः। पाणिनि: ५।४।१०२. "संख्यापृष्वं रात्र क्रीवम" इति वार्त्तिकश्च ।

[‡] उत्तरपदे परे चदाइरति-पश्चगवधनः, बत्र धने चत्तरपदे परे दिगी, (१६१) पप्रवय:, हे नावी धनमस्य हिनावधन: (१६४) प्रवस्य: । हे खार्थी धनमस्य हिखार-धन: हिस्तारीधन: (३६५) विकल्पेन च:। हं चहनी प्रिये यस्त्रासी हाक्रप्रिय:, (३५३।३५४) भः, भक्रादेशस्।

म्रव्यवीभाव-समासः (व)।

वः कसामीप्यसादृश्य-साकत्यानुक्रमिष्ठिषु । वीपापर्थ्यन्तयोग्यत्व-पश्चादर्थानितिक्रमे । ग्रब्द्रपादुर्भावाभाव-यौगपदीष्वनेकथा ॥ *

३७४। वात् क्तोर्माऽतीऽप्याः।

(बात् प्रा, त्री: ६१, म: ११, षत: प्रा, षवा: ६१) ।

अकारान्तात् वात् परस्यः क्तेभैः स्थात्, नतु प्याः । पं कृष्णमधिकत्य प्रवृत्ता कथा, अधिकृष्णम् । अप्याः किं, कृष्णस्य समीपात् गतः, उपकृष्णात् गतः । कृ

३७५ । चीप्त्रोवी । (वी-प्राी: ६॥, वा ।१।)।

उपक्त पांउपक्त पोन कार्यः। उपक्त पांउपकृषी स्थित:। §

व: अययोभाव: — कं कारकं, साभीयं, साहस्यं, माकल्यं नि भेषलं, अनुक्रमः, ऋडि: सम्बद्धिः, वीष्णा युगपत् व्यापुनिष्का, पर्यन्तः भेषभीमा, योग्यलं, प्रयाद्धः, अनितक्तमः, शब्दपादुभावः अन्दोलितः, अभावः, यौगपदाम् एककाललं – एषु चनुर्देणस् अर्थेष भवति. प्रयोगानुसारादनेकथा च भवतील्यंथः। स च अव्ययभन्दानां स्थायनेः सह निल्यसमासः स्थादिति । पाणिनिः २।१।६ ।

[†] प्रकारान्तशब्दस्य प्रव्यवीभावसमासे कते, (११९) क्रेलुंक् व्ये चेव्यमेन क्रेलुंकि, पुनर्लिङ्गसंज्ञायाम्, उत्यदामानविभक्षीनां स्थाने मः स्थान्, नत् पश्चस्याः स्थाने दल्लयेः।

[‡] क्रणमिक्तित्विति ययिप क इति सामान्यनीक्षं, तथापि दितीयासनस्यीरथेपव श्रीयः । सत्र क्षणमिति कर्षार्थे पिश्वम्देन (१६६) व्यं पूर्व्वमिति पर्धः पूर्व्वनिपातः, (१९८) क्षणमिति दितीयाया लुकि, पिक्षण इत्यस्य पुनलिङ्गसंज्ञायां जातस्य नेः स्थाने पनेन म् एवं सर्व्यम । सनस्ययं तुस्त्रीव्यक्षित्व प्रवत्ता या कथा सा पिछि इत्यादि । उपकृष्णदिति प्रयाः इत्यस्य उदाइरणेनेव सामीध्यीदाइरणं दिशितं । एवं कुष्णस्य समीपम् उपकृष्णन् दत्वादि, पत्र उपग्रन्दस्य सामीध्यमथेः । पाविनः २।॥ १९। १ पकारानाद्व्यग्रीभावात् परयोः तृतीया सप्तस्यी में। वा स्थात् । क्षण्यस्य समीपन

३७६। जुक् परात्। (जुक् ११), परात् ४।)।

षकारान्तादन्यस्मात् वात् परस्याः त्तेर्नुक स्थात् । *

३७७। सहः सोऽकाले।

(सह: ६।, स: १।, भकाले ७।)।

सहस्य सः स्थात्, न तुकाले। इरेः सदृशं सहरि। काले तु, सहपूर्व्वाह्नं। 🅆 '

खणेन सह सकलमत्ति सढणं। ज्येष्ठमनुक्रस्य अनुज्येष्ठं। मद्राणां सम्रद्धिः सुमद्रं। विष्णुं विष्णुं प्रति प्रतिविष्णु। अग्नि-यन्यपर्थन्तमधीते साग्नि। रूपस्य योग्यं अनुरूपं। श्रिवस्य पद्यात् अनुशिवं। श्रिक्तमनित्कस्य यथाशक्ति। हरेः शब्दः प्रादुर्भूतः इतिहरि। पापस्याभावः अपापं। चक्रेण युगपडेहि सचक्रं। यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः यावच्छ्लोकं। हः

कार्यं (श्रेय इति श्रेपः) इत्ययं उपक्षणां उपक्षणीन । सप्तम्यान्, क्रणस्य मभीपे स्थितः, साधुरिति श्रेषः, उपक्षणां उपक्षणो इति । एवं उपगङ्गं उपगर्ङन (२२२,१६०) इत्यादि । पाणिनिः २।४।८४ ।

श्रवतारान्ताद्यस्मात् इनन्तात् इसन्ताच कीः सर्व्वासां विभक्तीनः मित्यर्थः नित्यं लुकस्थात्। पाणिनिः २।४।८२।

[े] भ अयथीभावे पूर्व्ववर्त्तनः सडशन्दस्य सः स्थात्, म तु कालवाचिगन्दे परे इत्यर्थः । सहरि इत्यव सडशन्दस्य सादृश्यं भर्यः, इकारानात् र्क्तर्ष्कः सहपूर्वोक्तमित्यव कालवाचि-पूर्वोक्तं परे सहस्य न सः, पूर्वाक्तस्य सदयमित्यर्थः । पाणिनिः ६।३।८१ ।

[‡] साकल्यादी क्रमेणोदाइरित — त्यंष्ण सङ सकलमत्ति त्यमिप न त्यनतीलयंः सत्यं भव सहग्रन्थ्य साकल्यम् भर्यः। ज्येष्ठ-मनुकाय ज्येष्ठस्य द्दीनो भृता गच्छतील्यंः भनुज्येष्ठं, भव दीनार्थेन भनुना योगे (२८६) ज्येष्ठमिति दितीया, भनु-भन्द्रस्य भनुक्तमीऽयं:। मद्राणां मद्रदेशानां सस्तिः समद्रं वर्भते द्रत्यं, एवं सभिचं वर्षते, भव सुश्रन्थः। विण् विण् प्रतीति (२८६) दितीया, प्रतिविण् द्रत्यं समस्तिन वीपाया उक्ततात् न दितं। एवं परिविण् चनुविण् द्रत्याद्। साप्ति द्राप्ति द्रत्यं समस्तिन वीपाया उक्ततात् न दितं। एवं परिविण् चनुविण् द्रत्याद्। साप्ति द्राप्ति द्रत्यं प्रतीति (१८६) दितीया प्रतिविण्

३७८। शरद्विपाड्यस्रेतोमनोविडुपान-द्धिमविद्विद्विचडुह्म्स्चित्र्यंत्तरोऽ:।

(श्ररद-विषाग-भग्रस-[? भनस्]-चेतम्-मनस् विश्-उपानह्-हिसवन्-विद्-दिव्-भानकुक्-दिश्-चतुर्-यद-तदः ५।, भः १।)।

एभ्यः यः स्थात् वे। उपग्ररहं। *

३७८। जराया जरंस च।

(मराया: ६।, मरम् ।१।, च ।१।)।

उपजरसं। 🕆

इस्थरं:। योग्यलार्थं चनुक्षं ददातीत्यादि। चनुक्षिवितित पचाद्यें, भक्ताः चनुक्षिवं तिन्नतीत्यंथं:। एवं चनुष्यं पादाताः इत्यादि। यद्याभिक्त इति चनितक्षमार्थं ददातीत्यंथः। एवं चनुष्यं पादाताः इत्यादि। यद्याभिक्त इति चनितक्षमार्थं ददातीत्यंथः। एवं यथावन्नं धारयतीत्यादि। चनित्रं तिक्रत्यं लोके प्रकाशित इत्यंः। चपापित्यं चन्नवंदि। चकेष युगपत् चेहि—हि विषी चकेष सह युगपदिककाले गदां धारय इत्यंः, सहस्य सः। चनेकधा इत्यस्य एकसुदाहरणमाह—यावच्छीकं चचुतप्रणासाः द्योकानाम् इयन्या प्रणामानां इयना चच्चित्रिताः इत्यंः। एवं यावद्भीकनपावं ब्राह्मणान् विकत्यस्य इत्यदि। ये ये यथाभूताः यथातयं, ये ये यथाभूताः यथाययं। तिष्ठन्ति चहित चायान्ति गावो यक्षित् काले, यथाक्रमं तिष्ठद्गु वहद्गु चायतीगवम्—इत्यादयो ज्ञेषाः (पाणिनः २।१।१०)।

- भरच विपाट्च भयय वितय मनस विट्च उपानच हिमवांस विद्च यौस आनड्वांस दिक्च चत्य यस तच तत् तक्षात्। भरदः समीपं उपभरदं, एवं उपविपासं, उपायम, उपचतमं, उपमनमं, उपविद्यं, उपोपामइं, उपहिमवतं, उपविद्यं, उपतिदं प्रत्यन्तुइं, प्रतिदिशं ('चतुर्द्धिमान्यसाध' इति कमदौसरः), उपचतुरं, उपयदं, उपतदं प्रति। पाणिनिः ५।४।१००। भच पाणिनिम्चे 'भरत्प्रस्तिन्यः' इत्युक्तगणे भयम् इति स्थाने भ्नस् इति पठितम्, हिस्क् सद हम् त्यद् कियत् एतानि चातिरिक्तानि हस्यने। कमदौसरोऽपि भनस् इत्येव स्टित्, न त्यस् इत्यनुष्येथम्।
- † व्यरायाः षः स्थात् वे, तस्थिन् जरसादेशयः। जरायाः सभीपन् खपजरसं। याणिनिः ५।८।१००। श्ररत्मस्रतिसणानार्थनं स्वभेतत्।

३८०। सरजसोपशुने। (सरजस^{.खपश्ने १॥)}

निपात्ये। *

३८१। सम्परःप्रत्यनुखोऽन्णः।

(सम्-परम्-प्रति-चनुभ्यः ५॥, बद्याः ५।) ।

समर्च । 🅆

३८२। ऋन:। (भन: ५१)।

अनन्तात् भः स्यात् वे। अध्यासं। 🕸

३८३। स्तीवादा। (कीवान् प्रा, वा ।१।)।

उपचर्मा उपचर्मा । §

^{*} रजसा सह समलमत्ति सरजसं, निपातनात् मः। ग्रनः समीपं उपग्रनं निपात-नात् वृत्रमञ्ज्या वस्य उ', भग्रथययः। "मरजसं पद्ममित्यसाधुः दिति क्रमहीवरः, सरजः पद्ममित्यव साधु। भत्रपव "सरजस्तामवनेरपां निपातः" दिति किराते चिन्यम्। पाणिनिः ५।४।००।

[†] सम्च परय प्रतिय भन्न स्रोधः। एथः परात् भणः भः स्थात् वे। भणोः समीपं समयं, भणोः परः परोत् परभन्दात् निपातनात् भस्-क्रते परस् इत्यव्ययं। "प्रतिपरसमनुभोऽष्यः" इति त्वे भण्णः परिमिति विग्रं निपातनात् परस् भौकारा-देशः इति भद्दीजिदौतितः। क्रमदीयरस् "परेः परस् भ" इति मृतं विन्यस्य परि-भ्रव्यत् परस्विते वदति। भणोरिभसुखं प्रत्यत्तं भन्त्वश्च। एषु भिन्यस्टात् भ्रव्यये (२५८) इकारलीपः। प्रत्यवः परीचः इति तु इन्द्रियवाचिन। भकारान्तेन भन्यस्टिन, भण्णाषां प्रति प्रत्यनः, भन्नाणां परः परीचः इति तु इन्द्रियवाचिन। भकारान्तेन भन्नसन्दिन, भण्णाणां प्रति प्रत्यनः, भन्नाणां परः परीचः इति वष्ठीसमासे (२६६) व्यं पूर्विनिति पूर्विनिपातः। भण्या भर्भभादितादन् इति भद्दीजदीवितः। पाषिनिः प्राधारु००। सरत्प्रस्तिनणान्तर्गतं सुत्रभेतत्।

[‡] पृथक् योगात् समादेनांतुइतिः । चालानमधिक्तत्य चध्यालां (३३०,२५८) । एवम् चिधराजम् चिषपूर्णमित्यादि । 'चनव्ययोभावेतु परमाला' इति क्षमदीचरः । पाणिनिः ५।४।१०८ ।

[§] क्लीविलिङादनन्तात् मः स्वतदा म्रव्ययोभावे । चर्म्यः समीपं उपम्यं उपमम् । एवम् महरहः प्रति प्रव्यहं प्रत्यहः इत्यादि । पाणिनः प्राधा१०६।

३८४ । अप्नदीपौर्णमाखाग्रहायणीगिरेर्वा।

(भाष-गिरी: ५।, वा ।१।)।

उपसमिधं उपसमित्, उपनदं उपनदि । *

द्रित वः।

षट् समसाः।

३८५ । पष्यप्पुर: से । (पियन् अप-पुर: ५।, से छा) ।

एभ्य: ग्रः स्थात् से सित । सिखपयी,रम्यपयो देगः, महापयः, दिचणापयः, चतुष्पयं, उपपयं, विमलापं सरः, विणापुरं। पं

३८६। द्वान्तर्गेर्वोऽपोऽनात्।

(डि-चलर्-गे: ५।, ई ।१।, अ: १।, अप: ६।, भनात् ५।)।

एभ्योऽनवर्णान्तेभ्योऽपोऽकार ई: स्थात्।

^{*} भप् प्रत्याहारभदनात्, नदी-पौर्णमाधी-षाग्रहायणी-फिरिन्थ्य पः स्वात् वे वा। श्रव वा-ग्रहणं परच निवस्ययंम्। सिनिधः समीपं उपसमिधं उपसमित्, एवं उपतिहितं उपतिहित्। नयाः समीप उपनदं उपनदि। एवं उपपौर्णमास उपपौर्णमास । उपनिदं उपनिदि। ष्रत्याभावपचे दीर्यानानां क्रीवे स्वः (१६०); पाणिनिः ५।४।११०—११२।

[†] पत्थाय भाषय पूत्र तत् तत्थात् । से इति सर्व्यसमासमामार्थं। षट्स्राइरति—
सखा च पत्थाय तौ (चः) । रखः पत्थाः यच सः (इः) । महांबासौ पत्थायिति (यः) ।
दिवापसां दिणि दिविषे देशे वा पत्थाः (षः), दिवाणा इति तु (५२०) समस्याः स्थाने
आ, तिव्वतिकेसलात् (३१६) न भाकारलीपः। एवं चन्तरापयः। चतुणां पयां समाहारः
(गः) । पयः सभीपे (वः) । एषु पथिन्मव्दस्य भप्रत्यये (३२०) न-लोपे, (२५८) इकार-लीपः। विमला भाषो यिखन् तत् । विभाः पूः विभापुरसिति भिभाषानात् क्रोवलं ।
ययपि अदनपुरसन्दीऽष्यस्ति तथापि पुर्मञ्देन।निष्वारणावंसिदं। पाणिनिः ५।४।०४।
'पयः संख्याध्ययादः'' इति वार्त्तिक्ष ।

हीपं श्रन्तरीपं समीपं। श्रनात् किं, प्रापं। श्र ३८७। समापानूपौ। (समाप-पन्पोशा)।

निपात्वौ । समापो देवयजनं, अनूपो देशः । 🕆

३८८। सम् तुम् मन:-कामे ऽवश्यम् त्ये ऽन्यत्नोपं सम-मांसौ तु हित-तते पाक-पचने वा।

(सम् ।१।, तुम् ।१।, मन:-कार्मे था, श्रवश्यम् ।१।, ल्येथा, श्रन्यकीपं२।, सम्-मांसी १॥, तु।१।, दितततेथा, पाक-पचने था, वा।१।)।

सम् तुम् च मनः-कामयोः, श्रवश्यम् त्ये, श्रन्यत्वोपं याति ; सम् हित-ततयोः, मांसः पाक-पचनयोर्वा।

समनाः सकामः, रन्तुमनाः रन्तुकामः, श्रवश्यसेव्यः, सहितः संहितः, सततः सन्ततः, मास्याकः मांसपाकः, मास्यचनं मांसपचनं । क्ष

अ ही च अलय गिय तत् तक्षात्। न अ: भनक्षक्षात्। हिमन्दात् अलर्भन्दात् अवर्णालक्षित्र गिय अप्रन्दस्य अकार दे: स्यात् इत्यर्थः। हिमेदि शोगापी यव तत् (''हिमैता आपोऽस्थित्रिति हीपः" इति क्रमदीयरः; हीपमिति भद्योजिदीचितः), भन्तर्गता आपी यव, सस्यक् आपी यव इति वाक्यानि। एवं अतीपं प्रतीपं इत्यादि। प्रगता आपी यव तत् प्रापं। पाणिनिः ६। १।८०। ''ई त्वमनवर्णादिति वक्तव्यम्" इति वार्तिकस्य।

[†] समीचीनाः (समा इति भशे जिदी बितः) आपो यत्र स समापः देवयजनं (यत्रः)। (''समापं नाम देवयजनम्'' द्विति तु क्रमदीश्वरः ।) अनुगता आपी यत्र सः अनूपः देशः। एतथोरेवार्थयो निपातनं, अन्यत्र समीपं अन्वोपिमिति। पाणिनिः इति हा ''समाप ईत्वप्रतिषेषः" इति वार्षिकञ्च।

[‡] सम्तुम् इति पदभेदः मनः-कानाभ्यां यद्यासङ्ग्रानिरासार्थः । मनय कामय तिक्षान् । सम् च मांस्य तौ, दितचाततचा तिक्षान्, पाकय पचनचा तिक्षान् । सम् सनः-कामथोः, तुम् सनः-कामथोः, घवग्रसम् लये भन्यजीपं याति से सति । सम्

३८८। धुरोऽनच्चाः।

(धरः ५।, घनचस्य ६।, घः १।)।

राजधुरा। अचस्य तु अचधूः। *

その | 電司: |・(型句: 以) !

ऋचः परः श्रः स्थात् से। ऋर्षते । 🌵

३८१। नञ्बहोर्माणवक-चरणे।

(नञ्-वही: ५।, माणयुक-घरणे ७।)।

भट्नो माणवनः, बहुनः चरणः। श्रन्थत्र श्रटक् साम, बहुक् सूत्रां। భ

हित-तत्यी: मांसः पाक-पचनयी: घन्याचीपं याति वा से सतीलयं:। स्यक् मनी यस्य, सम्यक् कामी यस्य, इति वाक्यं। तुम् इति (११६४) चतुम्। रन्तु मनी यस्य, रन्तुं कामी यस्य, इति वाक्यं। तुम् इति (१९६४) चतुम्। रन्तु मनी यस्य, रन्तुं कामी यस्य। व्यक्तव्यादि: (६८६)। धवस्य निव्यः अवस्यसेच्यः, एवं धवस्यकरणीय इत्यादि। सम्यक् हितं यस्य, सम्यक् ततं यस्य। मांसस्य पाकः, मांसस्य पचनं। सब्वं घन्यलीपः। अवस्यत्वाचः, धवस्याजीकरणीय इत्यादि। "समी हित-तत्यीर्ग खीपः।" "संतुमुनीः कामी खीपो वज्जव्यः।" "मन्सि च वक्षव्यम्।" "धवस्यमः क्रव्यं खीपौ वज्जव्यः।" एतानि वार्षिकानि। काशिकान्नतिष्य यथा—"लुम्पे-दवस्यमः क्रव्यं लीपौ वज्जव्यः।" एतानि वार्षिकानि। काशिकान्नतिष्य यथा—"लुम्पे-दवस्यमः क्रव्यं लीम् काममनसोरिपः, सभी वा हिततत्योभीं सस्य पिष्टं पुड् खजीः॥"

- अधूमारः । धरः भः स्थात् समासे, नतु भवसम्बन्धित्याः । भवी रयचक्षं । राज्ञीधः राजधरा, एवं महाधरा दलादि स्त्रीलादाप् (२५०) । भवस्य धः भवधूरिलव न भप्रत्ययः । पाणिनिः ५।४।०४।
- † भाईच तत् सक् चेति, समीऽहीमिति वा भाईचे, (ऋउँची वा पाणिनि: २।४।३१) ; एवं सप्त ऋची यिकान् स सप्तभी नन्तः । पाणिनि: ४।४।७४।

‡ नञ्च व इष तत् तस्यात्, पुंस्तं भौतात्। माणवकाय चरणय तस्यान्। नञ्-वहुभ्या परस्थाः च्रचः चः स्थात् कमात् माणवक-चरणयोवांच्ययोः। नास्ति चरक् यस्य मोऽन्दची माणवकः श्रियः। वहाः चरची यत्र स बहुचः चरणः वेदैकदेशः। न चरक् चरुक्। सान, बहुक् इति पूर्ववत्, स्कां, साम स्काञ्च वेदाशविशेषी। पाणिनिः प्राष्ठा ७४ — काशिकाः ''भरुषी माणवके जयी बहुच्यरणास्थायाम्।''

३८२। प्रत्यन्ववात् सामलोनः।

(प्रति-भनु-भवात् ५।, साम-लोम: ५।) ।

प्रतिसामं प्रतिलोमं। *

३६३ | ऋच्णोऽचत्नुषि । (प्रकाः ५।, पवनुषि ०।)।

गवामचीव गवाचः। चत्तुषि तु, विप्राचि। पं

३८४। ब्रह्महस्तिराजपण्यात् वर्चसः।

(बह्म-पर्ण्यात [? पल्छात्] ५।, वर्चनः ५।) ।

ब्रह्मवर्चसं हस्तिवर्चसं राजवर्चसं पख्यवर्चसं । 🕸

३८५। समवान्धात् तमस:।

् (सम्-अव-अन्धात् ५।, तससः ५।) ।

सन्तमसं । 🖇

अप्रतिश्व चनुत्र चन्य तस्मात्। एथ्यः पराभ्यां सामन् लीमन् इत्येताथ्यां चः स्थात् सं सति। साम साम प्रति, लीम लीम प्रति, वीम्नायां वः। एवं चनुलीमं चनुसामं। पाणिनिः प्राधाव्यः।

[†] न चतुः श्ववज्ञतिमन्। श्वविशब्दान् श्वः स्थान् समाने, श्रवचुित्र वाचे । गराची वातायनं। विश्वस्य श्वि। विशालाचः पद्माचः इति बहुबौदौ चचिनिद्धे वाच्ये श्वः। लवणाचं प्रकराचं गराच इति कमदीश्वरः चटाइरति। पाणिनिः ५।४।०६। श्रवः "श्रपास्यद्वः।दिति वक्तस्यम्" इति वार्त्तिकम् भट्टीजदीचितेन न स्ट्हीतम्।

[‡] ब्रह्माच इसी च राजाच पण्यच तक्षात्। एथः परात् वर्छसः इः स्थात् में । तेजःपुरीषयीर्वर्छ इत्यातः । ब्रह्मणी वर्छः, इनिनी वर्छः, राजी वर्छः, पण्यच तत् वर्षयित वाक्यानि । अत्र वार्त्तिते संविष्ठसारि च पण्यस्याने पल्य इति पाठी दृष्यते । गोथीचन्द्रश्च "थच पलालरञ्चा ब्रीहि वेष्टियता स्थापयन्ति तत् किल पल्यमुच्यते इति सातुपारायण्यम्" इति वद्ति । पाणिनि. ५१४।०८ । "पल्यराजभ्यार्खति वक्तव्यम्" इति वार्तिकस्य ।

९ एभ्यः परात् तमसः पः स्थात् से । सन्ततं िस्तीर्धं तमः सन्तमसः। पवचीर्धाः तमः पवतमसं, प्रस्थयतीति पचाहितात् प्रन्, प्रस्थं तमः प्रस्थतमसं। पाणिनः ५।४।७६ ।

३८६। स्त्रीवसीयस-खः श्रेयस-निः श्रेयसं।

(श्वीवसीयस-- नि.श्रेयसं १।)।

एते निपात्याः। *

३८७। तप्तान्वराद्रहसः।

(तप्त-भनु-भवात् ५।, रहस: ५।)।

तप्तरहसं। 🌵

३६८। प्रत्युरसानुगवे। (भल्यस अनुगवे १॥)।

एते निपात्ये । 🕸

३८६। गेरध्वनः। (गेः प्रा, अध्वनः प्रा)।

प्राध्वी रथः। §

[#] भाष्यानासनेकार्थत्वात् (श्व:भाष्ट्रः भाषीर्यातिकः) श्व: भोभनं वसीय: यभं (वसमत-द्रेयस) (वसभन्द प्रश्नमावाची) श्वीवभीयमं कल्याणं, श्व: श्राभनं त्रेथ: श्वःश्रीयसं फल्याणं, निर्निधितं श्रेयो निःश्यमं निर्व्वाणं। भाव वसीय इत्यव भावसीय इति कीवास्तिस्। पाणिनिः ५।४।००,५०।

[†] एथ्यः परान् रहनः त्रः स्थान् से । तप-धातीः कर्नर क्रः तमः, तमञ्च तन् रह-येति, ऋकव्यं यत् भवेन् वाक्यं तन् तप्तरहम विदुः ; श्रष्टवा ''परंणानधिगस्यं हि यद्शी वक्रितप्तयन् । तमञ्च तद्रहयेति तत्तप्तरहस विदुः ॥'' इति । रहोरहः ऋतुरहसं, श्रवगतं रहः श्रवरहसं । पाणिनिः ५।४।८९।

[‡] उरिक्त प्रतिवर्त्तते प्रस्पुरसं, अधिकरणार्थे अस्ययोभानः । गवां अनु भागतं अनुगवं सकटं। अन्यत्र प्रतिगतसुरः प्रस्पुरः, गवां पद्मात् अनुगु इति । पाणिनिः ५।४।⊏२,⊏३।

[§] गैं: परात् चध्यन: च: स्थात से । प्रगतः चध्यानं, प्रगतोऽध्या शेन इति वा, प्राप्य. रष: । प्रवंप्रत्यध्यं शकटं। गै: किं, उत्तमाध्या । पाणिनिः ५।४।८५।

४००। पागडूरक्षष्टात् भूम:।

(पाल्ड उदक-सष्टात् प्रा, सूमे: प्रा)।

पाण्ड्भूमो देश:। *

४०१। सङ्ख्याया नदीगोदावरीभ्याञ्च।

(सङ्गायाः ५।, नदी-गीदावरीभ्यां ५॥, च ।१।) ।

पचनदं, सप्तगोदावरं, हिभूमं: प्रासाद: । 🕆

४०२। निस: ग्रातो ड:। (निम: प्रा, शत: प्रा, ड: १।)।

निस्तिंगः, नियत्वारिंगः । 🕸

४०३। सूत्सुरभिपूतेर्गन्धादिवीतूपमानात्।

(स. उत् सरमि-पूते: प्रा, गत्वात् प्रा, दः श, वा ।श, तु ।श, उपनानःत् प्रा) ।

सुगन्धः, पद्मगन्धः पद्मगन्धः। §

अ उदक् इति उत्पूर्वात् श्रध्यातोः कर्त्ति किप्, कष्ट इति क्षाप्यातोः कः। एथाः परात् भूमेः श्रः स्थात् मे। पाग्डुभूमिर्यक्षित् स पाग्डुभूमां देशः। उदीची घरगता भूमिर्यक्षित् स उदग्भूमो देशः, पुंवज्ञाबादुदक्षितः। श्रव उदक्ष्याने उदक्षिति भाष्यकारः। कष्टा भूमिर्यक्षित् स क्षष्टभूमां देशः। कष्ट्याने कषा इति किष्ति। पाणिनाये ५।४।४५ मुवे क्षणोदकपाग्डुमंत्या पूर्वाया भूमेरिजयते "इति इष्टिः।

[†] सङ्गायाः पराभ्यां नदौ-गोदावरीभ्यां भूनेथ प. स्थान् से। पञ्चानां नदीनां समाहारः, सभानां गीदावरीणा समाहारः, दे भूभी यत्र सः दित वास्थानि। पन्न नदौथन्देन (८६) स्वीक्तपारिभाषिकानदौसंज्ञको न बाध्यते, नापि च स्वद्ययहणं किन्न नदौपर्यायवचनम्; पतः समावः दिशाम् सम्बद्धियाम् प्रवासम् प्रवासम्य स्वासम् प्रवासम् प्रवा

[‡] निसः परात् शत् इत्यन्तात डः स्थात् से। निर्गता विशत् यस्य स् निस्त्रियः, एवं नियलारियः निष्पद्यात्रः । ''निर्गतानि विश्वती निस्त्रियानि वर्षाणि चेवस्य । निर्गत-स्त्रियतीऽङ्गुलिस्या निस्त्रियः खड्गः।'' इति भद्दानिदीनितः । निसः किं, दुस्त्रियत् इत्यादि । ''डच्पकर्ण संख्यायासत्पुरुषस्थोपसंख्यानं निस्त्रियाययंस्'' इति वार्त्तिकम्।

^{\$} स्य उच सुरिभिष पृतिष तसात्। एथः परात् गलात् इः स्थान् से, उपमान

४०४। नाचीयां खते: सख्यादेर:।

(न ।१।, श्रवीयां ७।, स-भते: ५।, सख्यादि: ५।, भ: १।) ।

खितिभ्यां परात् सख्यादेरी न स्यात् पूजायां। शोभनी राजा सुराजा, श्रितिग्रयेन राजा श्रितिराजा। अर्चीयां किं, गामितकान्तः श्रितिगवः। *

४०५ । किम: चोपे। (किम: ५।, चेपे ७।)। किराजा। प

8०६ । नजोऽह्रवे। (नजः ४।, प इन्वे ७।)। नजः परात् सख्यादेरो न स्थात्, न तु इन्वयोः।

वाचकात् परामु वा इत्ययः । शोभनो गसी यस्य स सुगसिः, एवं उद्गसिः सुरिभगसिः पूतिगसिः। पद्मसिव गसी यस्य सः पद्मगसिः पद्मगसः । पत्र समवायस्वसिव वर्त्तमानात् गसीत् इः स्थादिति मग्मदायः, तेन सुगसी वायुरिति, वस्तः शिष्टप्रयागान्मारेणैव । किञ्च गुणवादिनी गस्मादेव इः, तेन शोभनानि गस्द्रयाणि यस्यां सा सुगसा विपणिरिति । पाणिनिः स्थार्थस्त्र, १६० । "गस्यस्त्रं तदंकान्तग्रहण्य" इति वर्षिकम् । तद्ययं "तद्वयव इयाविभागेन खत्यमाणी यो गुणक्षद्वाचौ गस्त्रद्वी गरुक्षते, न तु द्रय्यवाचौ ।"

- * सूत्र पतिय तथान् खते: । प्रांसायें वर्त्तमानाथां सु-पतिथां परात्, (१५१) सम्बद्धीराज्ञ इत्यारथ (१८८) गेरध्वन इत्यतिषु विधीरप्रथा विहितः स न खादिव्यदः । सराजा चितराजा चभयच प्रधंसायों खती। चतपव "सुराज्ञ देशे राजन्नान्" इत्यमरिख्यम् । एवम् चित्रप्रथेन या चित्रया, सुगौः सुराजिः सुपत्याः इत्यादि । चित्रया इत्यादि । चित्रया इत्यादि । चित्रया चत्रया द्वारि । परमराजः चन्त्रमराजः इत्यादी च्विथेरिष खत्यभावात् भवव्यव । पाणिनः ५।४।६८ ।
- † निन्दायां वर्त्तमानान् किमः परात् सख्यादिरोः न स्थात् । कुत्थितो राजा किराजा, यो न रचित प्रजाः । एवं किंगौः, यो न वक्षति भारम् । निन्दायां किं, केषां राजा किंराजः, कियां थौः किंगवः क्रवादि । "स किंस्स्यासास्त्र न प्रास्ति योऽभिपम्" कित कियति । पाणिनिः ५।४।७०, २।१।६४ ।

त्रसंखा। इन्वेतु—त्रनपंसः, त्रध्रं। %

8001 पथो वा। (पथः प्रा, कारा)।

ग्रपयं ग्रपत्याः । इ-वे तु—শ্रपयो देगः, ग्रपयं । †

४०८। कत कच्चिरथवदे।

(कत्।१।, कः।१।, भच्-वि-रध-वदे ०।)

को: स्थाने कत् स्थात् से अजादी परे। कदवं कचयः। 🕸

४०६। काची। (कारा, अर्च ण)।

कार्च । §

इय वय इवं, न इवं प्रध्वं तिखान् । इत्य-भिन्न-समासं नञः परात्ं सख्यादेरी
न स्थात् । अस्सखा दति नञ् तत्पुरुषः । न सन्ति चापी यत्र तत् घनपं सरः, चत्र(३८५)
भ-प्रत्ययः । धरीऽभावः अधरं, अत्रापि (३८८) घ-प्रत्ययः । पाणिनिः ५,१४।०१ ।

[†] इनिः सिम्न-समासी नजः परात् पद्यः चः स्यादा । न पत्याः इति तन्पुरुषे चपद्यं जपत्याः । नाल्ति पत्या यक्षिन् इन्ति चपद्यो देशः, पद्योऽभावः इति चपद्यं, चभयव (३८५) निव्यम् च-प्रव्ययः । पाणिनिः ५१४।७२ः।

[‡] भव्य तथय पर्य तथित्। अन कु इति ग्रन्ट: कुत्सितवाची, तेन की: (पृषिव्याः) उद्यित: कृत्यितः इत्यादी न स्थात्। कृत्सितमनं कदनं, एवं कदाकारः कदीयधन्। कुत्सिताम्कयः कस्यः, एवं कद्रदः। अस्य सृत्रस्य कर्मधारय एवासिधानात् कृत्सितोः द्यो यस्थेत्यादी नःस्यात्, यतः पाणिनम्चे "तत्पुक्षे" इत्युक्तम्। भव वक्तव्यम् "व्यो च नाती" इति (पाणिनिः ६।३।१०३) स्पेण कनृष-मिति। पाणिनिः ६।३।१०२,१०२। "कन्नावे वाद्यपसंख्यानम्" इति वासिक्षा

[§] अन्तर्श्वरेपसे भी: का स्थान से। कृत्कितमचं (इन्द्रियं) कार्च। अन्न इति सानास्थतीः यहचान् कृत्किते अन्तिचीः यस्य स काची विष्ठ: इत्यत्र अन्तिश्वरात् (३२४) व कतेऽपि स्थान। ''अन्यस्ट्रेश तत्पक्षः, अपिशन्ट्रेण बहुत्रीडिवीं' इति सर्टीजिन् दीनितः। पाणिनि: ६१९१८४।

8१ ८ । पथिपुरुषे वा। (पि^{श पुरुषे था, वा ।१।)} ।

कापयः कुपयः, कापुरुषः कुपुरुषः। *

४११ । कोरीषदर्थे। (को: ६।, दंषदण ०।)।

द्रेषज्जलं काजलं। 🕆

४१२। कत्कवौ चाम्नुप्रणो।

(कत्कवी १॥, च ।१।, अग्नि-उणी ७।)।

कदिग्नः कवाग्निः काग्निः, कदुर्णं कवीणां कीणां । 🖇

[•] की: का स्यात् वा पथि-पुरुष्ये: पर्योः। कुत्मितः प्रसाः, कृत्मितः पुरुषः, इति वाक्यद्वं। अव द्रष्टव्यम्— 'का पथ्यवयं।.'' इति पाणिनिम्ने (६।३।००४) पथिन् श्रव्यात् नित्यं कापथः इति पदमः प्रथात् "पथि च च्हन्दिषः" इति मृदं (६।३।०००) वेदे कवपथः कापथः इति पदमः प्रथात् "पथि च च्हन्दिषः" इति मृदं (६।३।०००) वेदे कवपथः कापथः इत्यापः दर्धातमः। वंपदेवेन तु लौकिकालौकिकमतं लौकिकलेन प्रयुक्तमः। विचार्यःचात्यत्— कापथः इत्यापः पृत्वं वार्णिकमतेनासङ्गतं, "पथः संस्थाव्ययदः" इत्याप्त कापथः इत्याप्त स्थः संस्थाव्ययदः" इत्याप्त कापथः। कृपथिनित्यस्य । प्रत्यः कापथः। कृपथिनित्यस्य। '' इति । ''पथिश्रव्यन् समामे नित्यं कारिः। पथिश्रव्यन्तमानार्थेन पथ्रभ्वेनापि क्षीवत्यामावः" इति पाठो द्रस्यते ; शिव-रामग्रम्मेणा शोधितायान्त तस्या कापथम् इति पाठः। वीधिकद्वप्रकटीकतं सप्टक्षे पाथिनीयं च कापथः इति पुंलिङ्गमेवास्ति । सुपद्ये तु समासप्रकरणस्य ''पथः संस्थान्ययात् क्षीवे' इति द्रष्ट मृदे कापथः। इत्युक्तम् इति स्वीकविरोधः। शिवीकम्वटीकायान् ''वार्षिकभाष्ययानं मतमेतत्, 'श्रदन्यचे तु कुपथः' इति खिख्तम्। पाणिनिः ६।३।१०६।

[†] ईपटर्थं वर्त्तमानस्य की: का स्थात् मे। कीर्यहर्णपथिपुरुषयोरनतुवर्त्तनार्थम्। प्रयोगानुसारेण यखिन् किसिविप परे इत्यर्थः। एवं ईषट्तं कात्रसित्यादि । भारती च ''देवाकानिनि काथार्दं — काकारे भभरे'' इत्यादि । पाणिनिः ६।३।१०५ ।

[‡] द्रैषदर्थं की: स्थाने कत्-कवी, चकारात् का च स्थात् पश्चि-उपायी: परयीः । द्रैषद्ग्निः, द्रैयद्रफामिति वागादयं। पाणिनिः ६।३।१००।

४१३। ज्योति र्जनपद रात्रि नाभि बन्धु गन्ध पिग्छ लोहित कुच्चि वेगी ब्रह्मचारि तीर्थ्य पत्नी पच्चे समान: स:।

(च्योति:-पचे ०।, समानः १।, सः १।)।

समानं ज्योतिर्यसासी-सज्योतिः। #

४१४। इत्प नाम गील स्थान वर्ण वयो वचन धर्मा जातीयी दर्थे वा।

(६प-उदर्थे १।, वा ।१।)।

सरूपः समानरूपः। 🕆

द्रति स-पादः।

 एष चतृदृग्म, परेष समान: स: स्थात से सति। एवं सजनपद:, जनपदपर्याय-ग्रहणात समानी देश: सदेश: । सराजि: सनाभि: सबस्य: सगस्य: सिपण्ड: अलीहित: सक्ति: सवैणीक:। ब्रह्मचार्यादिसम्बन्धेन समानगब्द: एकार्थएव व तु तुल्यार्थ:. समानं एकं ब्रह्म वेदं चरतौति वार्क्य (१९३) ग्रहादिलात् गिनि, ब्रह्मचारिन् शब्दे परे समान: स:, एक ब्रह्मवताचारा नियः सब्ब्रह्मचारिण इत्यमरः। समाने एक स्थिन तीथें गरी वसतीति (४२६) शाप्रत्यये तीर्थ्यंश्रव्हे परे समान: स: ; नियंकारपर्च (पाप्रत्यये) समानं तीर्यं यस्य इति बहुबीहि:। तीर्थ-स्विज्यन्त गुरी इति, सतीर्थायेक-ग्रव इति चामर:। पाणिनी संचित्रसारे च सबकार तीर्ध्यस्ट एव दस्तते । समान-एक: पतिरस्था इति वाकी निपातनात पत्यः पतादेशे ईपि भमानस्य मः सपत्री (पाणिनि: ४।१।३५)। एवं समानः पचः (सहायः) सपचः। पाणिनि: ६।३,८५,८६,८०। एषु सूत्रेषु परसूत्रे च गन्ध पिरुङ लीडित कुचि वेशी पत्नी पच शब्दान टग्यन्ते "वामनस् पुनः पचधर्माजातीयान्यपि पठति'' इति क्रमदीयरः । सेतुभव्दोऽपि संचिप्तसारे दृश्यते । † एषु दशसु परेष समान: स: स्यात् वा । समानं दपं यस्याभी सदप: । समानभिकं नाम यस्य स सनामा। एवं सगीव: सस्थान: सवर्ण: सवया: सवचन: सधमा (২৪৪)। समानस्य प्रकार: इति (৪८०) सनातीय:। समाने एकस्मिन् उदरे भवतीति (४२८) उदरशब्दात् शाप्रवये सीदर्थः। सीदर-सहीदरशब्दी त उदरेण सह वर्त्तते योऽसौ द्रति (३३३) सूर्वण सिद्धौ। एपु विकल्पपचे समानस्थिति:। पाणिनिः ६।३,८५,८८। उदये वर्जीयला सब्दै पाणिनिमते नित्यम्, चान्द्रमते तु विकल्पः।

४र्थ पाद:--तिबत: (त) I

४१५। बाह्वाद्यतोऽत्रप्राबादेर्गर्गादेर्न डादे: पित्रष्टव्यसादे रेवत्यादे: श्रेषिश्वादे: व्या-व्याय-व्याप्र-व्यायन-गौय-व्याक-व्या अपत्ये।

(बाह्यादात: ५१, भवर्गवादे: ५१, भर्गादे: ५१, नड़ाटे: ५१, पिढव्यसादे: ५१, रैक्सादे: ५१, भेषभिवादे: ५१, चि—चा: १॥, अपन्ये ७५)।

एभ्यः परा एते क्रमात् स्वृरपत्यार्थे । *

४१६ । णित्ते त्रिराद्य**त्तः सुभग-सुपञ्चा**ला-द्योस्तु द्वयन्त्रयदानां ।

(णित्ते ०), ति: ११, भागवत. ६१, सभग-सपभालायी: ६॥, तु १११, धान्यदानां६॥)। अ**चां मध्ये श्रायचो त्रिः स्थात्, णिति ते परे, सभगादेलु** इयोर्दयोः, सुपञ्चालादेलु श्रन्यस्य दस्य । अ

(३३०) न्वोलीपौतौ तेऽचे। बाहोरपत्यं बाहितः, उप-विन्दोरपत्यं श्रीपविन्दविः, उडुलोम्बोऽपत्यं श्रीडुलोमिः, श्रीम-श्रमीचोऽपत्यं श्राम्बिशसिः। क्षणस्थापत्यं काणिः। प

४१७। योर्यम् रान्तेऽखङ्ग व्यङ्ग व्यव-हार व्यायाम खागत खध्वर गानः।

(यो: ६॥, युम् ।१॥, दान्ते ७।, प्रखङ्ग - पनः ६।)। .

^{*} मूडंन्य थ इत् यस्य स णित्, विद्यासी तथित णित्तः तिकिन्। षादियासी षच् चिति षाद्यच् तस्य। सुभगय सुपञ्चालय सुभगसपञ्चाली, तौ षादी थयीसी सुभगसपञ्चालादी तथीः। हे च ष्रत्यथ हान्यानि, हान्यानि च तानि टानि चेति हान्य- दानि तेषां। पूळं (६) षच एव इडिस्थानिलेन निर्देशिऽपि षच षची ग्रहणं परम्वे षाद्यची हिनुहत्त्वये। सामान्यतः सळेवां श्रन्दानां षचां मध्यं षाद्यची इडि:, मुभगगदे- हेयी: पद्योगाद्यची इडि:, मुपञ्चालादेनु केवनम् श्रन्यपद्याद्यची इडि: स्यात्, विति तिहति परे इत्ययं:। पाणिनि: शरा११९, ४।११६६।

[†] बाह्यादीनाह — बाहुनामकस्य कस्यविटपत्यं इत्यर्थे, बाहीरिति पदात् ण्यः, ष दत्, इकारस्थितः, (३१६,३३०,३५) बाहिति इति भागस्य पुनर्लिङसंज्ञायां स्यायुत्-पत्तः, एवं सन्वेव । यया विभन्न्या वाकां तिहमक्त्रन्तात् प्रत्ययः। एवम् श्रीपिवन्दितः। भौडुलोमिरित्यव ण्यिपत्यये, (३३०,२५८) नलीपः भकारलीपय। एवम् श्रीप्रिश्तिः। काण्यिरिति (२५८) भकारलीपः। बाह्यादिस्नु—बाह् उपवाह् उपिवन् उडुलीमन् श्रीग्रम्मंन् कृष्य युधिष्ठिर अर्जुन श्रास्त्र गर्यस्य राम सत्यक प्रस्तिः।

त्राद्यत्तः स्थाने जातयीदीन्ते स्थितयीर्ययोः स्थाने क्रामादि-मुमीस्तो णितिते परे, नतु सङ्गादेः। *

४१८। द्वार खर ख: खस्ति खादुच्दु व्यन्त्रस ख: खन् स्फांजत ख खाध्याय खग्रामै-कत्यग्रोधानां खापदन्यङ्कोस्तु वा नित्विति खादे:।

द्वार—न्यग्रीधानां ६॥, यापद-न्यङी: ६।, तुः१।, वाः।१।, नः।१।, तुः।१।, इ.ति ७।, यादे: ६।)।

द्वाराटेरदितीयस्य न्यग्रोधस्य च यूर्वेषुम् स्यात्, स्वापदन्यङ्गोस्तु वा, न तु खाटेरिकारादो ते। १

^{*} यच वच यौ तयो: । इय उप यू ताभ्यां स्युम् इति लृतप्रथमा दिवचनं यथाक्रमार्थं। स्वङ्गय व्यङ्गय व्यङ्ग व्यवहार्य व्यायासय स्वागतय स्वध्वर्य सन् च तत्,
प्रयात्रञ्जयोगे तस्य । स्वङ्गार्थः भन्न सन्दाः, सन् इति (११४१) क्रत्पत्यथः, तेन तदसस्य ग्रह्मान् । आय्य इति स्विते इति च सन्वर्तेते । इसुमीर्मस्वादादौ । शिति ते
पर स्वादौ इसुमि क्रते प्यात् इदिः । पाणिनिः ७।६१६,०,५,६। स्व द्रष्टव्यम्—
पाणिनिये स्वागतादिगणे व्यायामसन्दी नाम्ति, स्वपतिसन्दिनु दृष्टते ।

⁺ एकीऽदिनीययासी न्ययोधयेति एकन्ययोधः। एकीति किं, न्ययोधस्ते भवाः न्यायोधस्ताः भाजयः इति भदानिदीचितः। न्यायोधस्तिकिति (४३२) मृतं स्वयं वस्यति। दारच स्वरय स्वरिति रेफान्तमन्ययच स्वसीत्यव्ययच स्वाद्वरुद्य व्यक्तस्य अस्तु दित सान्तमन्ययच्या च स्काकृतय स्वयं स्वाध्यायय स्वयामय एकन्ययोधय ते त्वां। आपद्य न्यदुर्धति तस्य। या भादिर्थस्य स्वाध्यायय स्वयामय एकन्ययोधय ते त्वां। आपद्य न्यदुर्धति तस्य। या भादिर्थस्य स्वाद्यास्य । दारादर्थन्वयोरित्तां भाद्यच स्थाने भनातनाच पूर्व्यापातौ वचनिनदं। दारादर्थन्वयोरित्तां स्यातां णिति तद्विते परं त्यापद्यक्तीम् वा, अन्यस्तीनां (वार्त्तिकीत —अदंपु-अगण्ययोष) इकागदौ तद्विते परं तृ न स्यादित्ययः। भव स्वः भव्यायः स्वाध्यायः इति व्यत्पतिः, न न (स) शोभनः भाष्यायः स्वाध्याय इति काणिका। स्वाद्वरुद्दित पदं केषाचित् नते पृथक् पदद्यम्। स्याभभ्यस्य द्वारादिगणं न दृश्यते। पाणिनि. ७११४,५,८।

वैयखि: सीवधि:। सङ्गादेस साङ्गि: व्याङ्गि: व्याङ्गि:। *

४१८। व्यासादेईक् वर्णौ।

(व्यासारे: ६।, ज्या ११, ची ७।)।

वैयासिकः सीधातिकः। १

श्रात्रेयः शौभ्रेयः । गाङ्गेयः माहेयः यौवतेयः । क्ष

४२०। च्योर्नोपोऽकद्रुपाग्ड्रोरेये।

(भो: ६।, सोप: १।, भकटु-पाख्वी: ६॥, एवे ७।) ।

चादाचः स्थाने जातयोः किं, दिधिषयः चत्री वस्य स दध्ययः, मधिपयोऽत्रो वस्य स मध्ययः, तस्य तस्य चपस्यं दध्यतिः मध्यतिः इत्यादौ इस् उस् न स्थात्। दाले स्थितयोः किं, दधातोः यह यत् इति बच्दः, यतः इदं यातमिति, एवं दयो-वर्षयोभवं दिवाधिकं इत्यादौ इस् उस् व स्थात्।

खङ्गादेनु भीभनं भङ्गं यस्य स खङ्गः खङ्गस्यापत्यं खाङ्गः, विगतं भङ्गं यस्य सः ध्यङ्गः व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गः, व्यङ्स्यापत्यं व्याङ्गः इत्यादौ यवयोर्दान्तवादायनः स्थाने जातत्वाद्य प्राप्तौ निवेधः । यनन्तस्य तु व्यावक्रीभौ, व्यय-कुत्रभातोः (११४१) यन्पत्यये, व्यवक्रीभ-भव्दात स्वायं भो ईपि सिङ्गम । पास्तिः शहादः ।

† व्यासादिशन्दस्य स्थाने कन् सात् विषम्यये परे, किन्तादन्यस्य स्थाने। भन्-स्थिति:। व्यासस्यापयां नैयासिकः, व्यासमन्दात् व्यः यकारस्य (४१७) रम्, (४१६) रकारस्य विदिश्कारः, भनेन कन् । एवं मुधातुरपत्यं सीधातिकः, सुधादमन्दात् व्यिः, भायभी वृद्धिः, स्टस्थाने कक्। व्यासादिस् — व्यास वद्द् निषाद च्याल वित्र सुधाद प्रस्तिः। पाविनिः ४।१।८०, वार्त्तिक्य ।

‡ चत्रादीनाइ—चत्रिपत्यं, ग्रभस्यापयं। चावादीन् चाइ गङ्गाया चपत्यं, मच्चाचपत्यं, युवत्याचपत्यं, सन्तेत्र खेयप्रत्यथे यद्यायीग्य (२५८) इत्ययांवर्णये विशिष्टः। चत्रादिलु—चति ग्रभ पूक् स्वकस्डु पास्डुकदू ब्रद्धा कुमारिका रोक्षिणे विमाट विधवाचन्त्रिका क्रिकाणी गोधा ग्रक नटी प्रस्तिः। पाणिनिः धारार२२।

^{*} पूर्वस्त्रीदाइरचमाइ—विगतीऽत्री यस सः व्यत्रः तस्यापत्यं वैवित्रः, घटनतात् चित्रत्यये यकारस्य इति क्षते तसीय विद्यः। एवं क्षीभगीऽत्री यस सः सत्रः तस्यापत्यं सीवित्रः. वकारस्य उति तसीव छितः।

जवर्णस्य एये परे लोपः स्थात् नत्वनयोः। कामण्डलेयः।
तयोन् काद्रवेयः पाण्डवेयः। *

४२१। कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी रजकी बजीवदी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्य-नुस्च्यन्दृष्ट कुलटाभ्य द्नेयः।

(कल्याची---कुलटाभ्य: ५॥, इनेय: १। ।

सीभागिनेयः दीर्भागिनेयः। १

8२२। चुद्रागोधायों वैरारौ_।

(चुद्रा-गोधाभ्य: ५॥, वा ११।, एरारौ १॥)।

नाटेरः नाटेयः, गौधेरः गौधारः गौधेयः । #

[ः] कमण्डलोः कमण्डला वा त्रपत्यं कामण्डलेयः, परिय पनि उवर्णलोपः। कद्रा त्रपत्यं, पाखीरपत्यं — उभयत जवर्णलोपाभाषे, (३३०) उवर्णस्य प्रोकारः, (३५) त्रीस्थाने त्रव्। कमस्डलुः चतुषाज्ञातिविशेषः। पाणिनिः शशारे३५; ६।४।१४०।

[†] सर्थयमात् विभक्षं विपरिणामः इति न्यायात् एथे इति सप्तस्यन्त पदं पष्ठानं भूता यनुवर्षते । कल्याणीति नयीदमस्य परस्य णियस्य स्थाने इनेयः स्थात्, स्थानिन्त्रात् वृद्धः, स्त्रियामीप् च । कृत्यः इष्ट कुलस्यक्ता सती भिन्नुकी, भस्तीवाचि तु (४२२) परस्वमाप्तिः । कल्यास्या भपत्यं काल्याणिनेयः, स्त्रियां काल्याणिनेयः, स्म्रमाया भपत्यं सीभागिनेयः, उभगाया भपत्यं दीभागिनेयः, उभग्यत्र (४१६) स्म्रमादित्राद्धभयपद्वत्तिः । एवं परस्तिया भपत्यं पारस्त्रेणेयः इत्यन्त (२५८) ईवर्णः लोपप्रस्ताविष, स्म्रमादियान्यायात् (२५८) ईवर्णः लोपप्रस्ताविष, स्म्रमादिय-स्म्रमा दुर्भगा सृष्ट स्त्रमुश्चित्र भवतः सन्त्री, प्यात् तस्येव वृद्धः । स्म्रमादिय-स्म्रमा दुर्भगा सृष्ट स्त्रमुश्चित्र भवत्रमित भन्नित्वत्यः कृत्रपञ्चाल उद्वत्रगुड इल्लोक परस्त्रीक स्त्र्यस्य स्त्रीव्या स्थानमर्त्व चत्रियीन परस्त्री राजपुष्य भविभूत पथिदेव चतुर्विद्या स्त्रिमस्त् चित्रवत्य सुद्धानगर कृत्वजङ्गल विश्वयेनु भवत्रीय स्त्रादी द्वादिः । प्रवाद्य भवीने भन्नेत्रयं भवेनक स्त्रुयल स्त्रिपण स्रयादाय इत्यादी विक्रन्यः । यथा, अभीनं भागीचमित्यादि । पाणिनिः शाः १२२६, १२०। भव पाणिनीये कल्याग्यादिगणे रजननीयस्त्याने जरतीयस्यी द्याति ।

[‡] चुद्राय गोधा च ताभ्य: ; (पाणिको ''गोधाया दृक्'' इति एकदचनिनहें गात् ''चुद्राश्यो वा'' इति वष्ट्रवचननिहें गाव)। एरच चारच एरारी। चुद्रा: कुलश्रील हीनाः

गार्ग्यः वात्यः जामदग्न्यः पाराग्रर्थः । *

४२३ । स्रोदौतीऽज्वत् तद्य-स्यङ्याः ।

(भोत्-भौतः ५।, भचवत् ।१।, तकदय का-छाः १॥)।

भीदीद्वां पर-स्तसंत्रः कत्संत्रकस्यः काङ्गी च अञ्चत स्नात्। ए बाभ्रयः। ह

नाडायनः गार्ग्यायणः दाचायणी । पेतृष्यस्रीयः मातृष्यस्रीयः । रैवतिकः श्राष्ट्रपालिकः । यादवः श्राङ्गिरसः । §

भक्तकीनाय। "का: चुट्रा नाम ? भनियत ऐस्का भक्तकीना वा" इति भाष्यम्। "व्यङ्गादः भीलाभ्याञ्चः" इति कमटीश्वरः । गोधाशब्दः ग्रमादिगणान्तर्गतः । अत्र वाशब्दस्य व्यक्ष्याव। चिलात चुद्राभ्य: परस्य णोयस्य एर: स्यादा, गोधाया: परस्य णोयस्य एरारी स्थातां वा इत्यर्थः। कुलभीलहीना यथा-नन्धा पपत्यं नाटेरः, पर्व नाटेवः। एवं कुलटाया अपत्यं कौलटेर: कौलटेय:। सतीवाची तु पूर्वमुवादिनेये कौलटिनेय इति। एवं दास्या चपत्यं दासेर; दासेय: इत्यादि। चक्क हीना यथा--- काषाया: भापत्यं कार्णरः कार्णय इत्यादि । गीधाया भापत्यंगीवेरः गीधारः गीधेय इत्यादि । पाविनि. ४।१।१२८,१३०,१३१।

- गर्गादीनाइ—गर्गस्थापत्थंः वत्रास्थापत्थं, जमदग्रेग्पत्थं, पराग्रस्थापत्थं, मर्व्वव गर्गादिलात पाप्रत्यये, चाराचो हजी, (२५०) यथासम्पर्यासम्बर्णावणं योर्लीयः। स्त्रियां (२५८) यलीपे गार्गीत्य।दि। गर्गादिय-गर्गः वत्स अजः अगस्ति पुकस्ति चमम रेभ भग्नियेश शह शक धनम्रय लोहित बस मण्ड सन्तु बतग्ड कग्ब. यजनन्क श्रीण्डल चयक सुद्गल कमदग्नि पराश्वर उल्कादण्ड प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।१०५।
- † भीच-भीम तसात्। अन्य इव भज्वत्। तथा क्रम ती, तथोर्थ: तक्षदयः, तकद्यय काय उपायाते। पाणितिः ६।१।७८,८०।
- ‡ बसीरपत्यं वासव्यः, भव बस्थ्रब्दात् भी कर्तः, (३३०) एकारस्य श्रीकारे, भनेन यस्य भज्यक्षात्रे, (३५) ऋषिकारस्य भव्। (पाणिनिः ४।१।१०६)। एवं नावासार्य्य नाव्यं, (४२८) पाप्रथये, भनेन भच्तृत्व्यते, भौस्याने भाव्। स्रतीयकारे, सन्धं भाव्यक्तियादि । गामिक्किति गव्यति, नाविमिक्किति नाव्यति (८४३) स्थमल्ये प्रज्वतः । गौरियाचरति गन्यते, नीरियाचरति नाव्यते, अभयत्र (८४८) डाप्रत्यये, अञ्चत्।
- § नडादि-चतुष्टयसाह -- नडस्थापत्यं नण्डायनः, बाग्येस्थापत्यं गार्ग्यायणः, दच स्थापत्वं स्त्री दाचायणी, सर्वेत्र नड़ादिलात् शायन:। नड़ादिशः (पाणिनिः

४२४। मन्वर्जान्वर्षीाच्चसेनोऽनोऽध्वासनो-ऽपत्यञ्गोऽविकारव्याभावकर्षय ईने न न-स्रोपः।

(सन्दर्भोत्त्वसीत् स्थेन: ६।, जन: ६।, जनासन: ६।, जपसाची २०।, जित्रारणाः-सावकसीये ७।, देने ७।, न ।१।, न-चीप: १।)। #

मन्वर्जस्थानी वसंणः उत्तरः स्थात् परस्थेनस अपत्यार्थः ची, अनी विकारार्थवर्जे स्थे भावकसंगर्थवर्जे ये च, अध्यास्मनीरीने, न लोपी न स्थात्।

याज्वनः भाद्रवर्माणः श्रीत्रणः चाक्रिणः । क

धाराहर, १००,१०१) नज् नर बीप काम्य दिखन् इसिन् बदर षण्यत दल्खा प्रश्निः। पिटलसुरपत्यं पैतृलसीयः, सातृष्वसुरपत्यं सातृष्वसीयः, उभयत्र पिटलसादिलात् षीयः। (पाणिनिः धारारचर, १३४)। देवत्या ष्पत्यं देवतिकः, प्रश्नपालस्यापत्यस् षाण्यपालिकः, उभयत्र देवत्यादिलात् शिकः। एवं डारपालिक इत्यादि। देवत्यादिस्य—देवती षण्यपाली मणिपाली वारपाली वक्षम्य वक्षयाहः कर्णयाहः दख्ययाहः सारवाह प्रश्निः। यदोरपत्यं यादवः, प्रजिप्सीऽपत्यं षाजिरसः, एवं रघोरपत्यं राववः इत्यादिषु प्रेयलात् षाः। (पाणिनिः धाराटर) सूचे प्रेषः — षपत्यादिचनुर्यक्षेन्ताद्यीऽयः। षण्यादिष्याद्यास्त्रश्रीऽयः। षण्यादिष्याद्वास्त्रावास्त्रीविः। प्राववः सत्यादिः। षण्याद्वास्त्रावास्त्रीविः इत्यादेः।

अ मनं वर्णयतीत मन्वर्णः (१००२), मन्वर्णधासी चन् चिति मन्वर्णान् । स्थः संयोगः, स्थादिन् स्थेन् । मन्वर्णान् च वर्णः च उचा च स्थेन् च मन्वर्णान् में। जस्येन् तस्य । प्रत्या च पात्मा च तस्य । पात्ये चः प्रत्याचलित् । न विकारोऽिवतारः, चिकारे चः पविकारचः, भावक कर्मा च भावक मोची न भावक मीची च भावक मीचीः च भावक मीचित्र च भावक मीचित्र च भावक मीचित्र च भावक मीचित्र च भावक मीचीः च भावक मीचित्र च भ

[†] भव (४३३) विकारायेवर्ज-णे परे सब्बेंपा-मनलानां न-खोपनिषेधे, भपत्यार्थ-णे परे सनलस्य न-खोपनिषेधे, भपत्यार्थ-णे परे सन्तन्य न-खोपनिषेधः। सनलस्य तु न-खोपः खादेव, भपत्यार्थभित्रणे परे तु सनलस्य तु न-खोपनिषेधः। सनल्तवजनात् वर्ष्यणोऽपि न-खोपप्राप्तो तस्य न-खोपनिषेधार्थे पुनवंद्यंणोऽपि न-खोपप्राप्तो तस्य न-खोपनिषेधार्थे पुनवंद्यंणोऽपि न-खोपप्राप्तो तस्य न-खोपनिषेधार्थे पुनवंद्यंणोऽपि न-खोपप्राप्तो तस्य न-खोपनिषेधारं, भन्यार्थे तु न-खोपः स्थान्यं एव न-खोपनिषेधः, भन्यार्थे तु न-खोपः स्थादेवेति । यज्यनोऽपयं याज्यनः, भद्रवद्यंणोऽपयं भाद्रवर्ष्यंणः, स्थायः

श्रैवः वाश्रिष्ठः। *

४२५। सङ्घ्यासंभद्रात्मातुर्ङ्ग् व्यो।

(सङ्ग्रा-सं भद्रात् ५।, मातुः ६।, खुर् ।१।, परि)।

द्वैमातुरः । 🕆

४२६ । नन् पुंस्तियो: । (नन् १२१, पुंक्तियो: ६॥)।

पौस्रः स्त्रेणः । 🕸

विक्वात् चाः, चनिन न-लीपनिषेधः । मननस्य तु सुमान्नोऽपत्यं भौसानः इत्यादि । प्रत्याचे इति किं, चर्माणा परिवतो रथः चाम्म्ययः । उत्लोऽपत्यं चौत्यः (४३५) उद्विताः, पत्यत्यं धीत्यः (४३५) उद्विताः, पत्यत्यं धीत्यः (४३५) उद्विताः, प्रत्यार्थभित्रचे तु उत्त्या इदं चौतं चर्मा । चित्रणोऽपत्यं चाक्रियः, एवं क्राक्षिनः शिक्षिनः इत्यादि संयोगाः दिनी न-लोपनिषेधः । चनेक्रणोऽपत्यं ब्राह्मयः, ब्रह्मच्याति ब्राह्मयः । साम्च इदं सामनित्यादि । तिर्धं कथं ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मयः, ब्रह्मच्यः दं ब्राह्मं सर इत्यादिशयोगः । उत्यत्ते—"ब्राह्मोऽनातौ" (६।४१०१) इति पाणिनि-१वेष निपातः । "योगविभागोऽच कर्त्तव्यः । ब्रह्मचितः निपायते, चनपत्येऽिषा । ब्रह्मचितः । त्रह्मणोऽपत्यं । व्यत्ये विद्याः । व्यत्ये विद्याः । चपत्ये विद्याः । चपत्ये विद्याः । व्यत्ये विद्याः । व्यत्ये विद्याः । व्यत्यत्ये विद्याः । व्यत्ये विद्याः । व्यत्याः । व्यत्ये विद्याः । व्यत्ये विद्याः । विद्यत्याः । व्यत्यत्यः । विद्यत्याः विद्यत्याः । व्यत्यत्याः । विद्यत्याः । विद्यत्यः । विद्यत्याः । विद्यत्याः । विद्यत्याः । विद्यत्याः । विद्यत्या

- श्रियादीनाइ । श्रियस्थापत्यं सेव:, विश्वस्थापत्यं वाश्रिष्ठ: श्रियादिस् श्रिकः
 श्रिकः गीतम सनुविश्रयण स्थलः कञ्जत्स्य द्याकः कुद्रप्था सूमि सपत्री कर्यनाभा ।स्रितः । पाणिनः ४।१।११२ ।
- ा सक्षाच सम् च भद्रय तकात्। सक्षावाचकात् सभी भद्राच माटण्ड्स छुक् यात् च्छ परे, कि खादत्यस्य स्थाने। वयोगांचीरपत्यः देमातुरः, चन तद्वितार्थे विषये देगी, शेषलात् च्छे कते एकपदीभावात् दे-रिकारस्य (४६६) ब्रजिः। एवं तिस्यणः गत्यामपत्यः नैमातुरः. षचां मातृषामपत्यां षाच्यातुरः। संमातुरपत्यं सांमातुरः, विभद्रमातुरः। पाचिनिः ४।१।१११५।
- ‡ पुम्स-स्त्री-शब्दयी: नन् स्थान् ची, निक्तादत्ते, भदलनकारस्थिति:। पुंचीऽपत्थं ों छः, स्त्रिया भन्त्यं स्त्रैणः, चीननि चक्तते (२५०) भकारसीमः। एवं इदमास्रशे

४२७। कुञ्जादेणीयन्योऽस्त्रीःवेऽपत्ये।

(क जादे: ५।, चायन्यः १।, चस्तीःवे ७।, चपत्ये ७।)।

कुञ्जादेरपत्यार्थे णायन्यः स्थात्, नतु स्त्रियां नच व्वे । कोञ्जायन्यः ब्राप्तायन्यः । स्त्रीव्वे तु कोञ्जायनी कोञ्जायनाः ।*

़ ४२८ । गर्भयस्कविदादि-स्टग्वचि-कुत्सा-ङ्गिरो-वशिष्ठ-गोतम-क्रढांत् लुक् व्वेऽस्त्रियां ।

(गर्ग - रुट्रात् ५।, लुक् ।१।, ब्वे ०।, श्रस्तियां ७।)।

देशतुत्वाख्यः चित्रयोः रुडः। एभ्यः परेषामुकानां त्यानां व्वे विचितानां लुक् स्थात् नतु स्त्रियां। पे

गर्गाः वत्नाः, यस्ताः लह्याः, विदाः उर्व्याः, श्वगवः यत्रयः कुत्नाः यङ्गिरसः विष्ठाः गीतमाः, यङ्गाः वङ्गाः कलिङ्गाः। स्त्रियांन्तु भागेव्यः। । ध

चित्रतेऽपि यथा—पुंस दरं पैंसं, स्त्रीयां समूहः स्त्रेषं, स्त्रीदंक्ता प्रस्य सीयः। पाचिनिः ४।१।८०।

कस्ती च क्वच स्त्रीव्यं, नस्त्रीव्यं पस्तीव्यं तस्मन्। णायनीन णायनी वाप्यते। कुचस्यापत्यं, वृक्षस्यापत्यं, णिस्तान् पाद्यं गे इति:। कुचस्यापत्यं स्त्री, कुचस्यापत्य।नि प्रमांतः, इत्युभयच नड़ादिलान् णायन एव। कुचादिन् ,—कुच्च बक्ष श्रद्ध लोगभय ग्रभ विपाग् प्रस्ति:। पाणिनि: ४।१।८८६; ५।३।११३।

⁺ गर्गेश्व यस्त्रश्व विदय ते चादयी येथां ते गर्गयस्तिवदादयः, चादिण्ट्य प्रत्येकेन सम्बन्धात् गर्गादि-यस्त्रादि विदादय इत्यंदः। तं च स्रग्य चित्रश्व चित्रश्व चित्रश्व चित्रश्व विश्व गीतस्य ६८ य तसात्। देशेन तृत्या चार्या यस्य मः देशतु त्याच्यः, यथा वडी देशविश्वः, वङ्गं पातौति (४२६) च्यात्यं वड्डाराजा इत्यादि। ''जनपदवचन-चित्रश्वः" इति पाचिनिः। जक्तानां त्यानामिति चपत्यार्थेश्वयानामित्यर्थः। जुक्-कर्णात् (८३) व्यक्षोपं त्यानचणमिति न्याथेन वडा।दिनं स्थात्।

[‡] गर्भस्थापत्थानि कत्सस्थापत्थानि, उभयत्र गर्गोदिलात् चास्य लुक्। यस्कस्थाप-स्थानि सद्यस्थापत्थानि यस्कादिलात्, विदस्थापत्थानि उर्जस्थापत्थानि विदादिलात्,

४२८ | दघे कात् च्णीककण्णीनेयाञ्चानितञ्च।

(ट-वे ७।, कात् प्रा, णीक कण् पीन-द्रया: १॥, घाशा, घिनतः १॥, घाशा) ।

कात् परा एते पूर्वे च सेतोऽनितश्व स्थुः ढे घे च वाची। *

तर्कों वित्ति अधीते वा तार्किकः; पदकः, क्रमकः; वैया-करणः; वाचा कृतं वाचिकं; पाणिनीयं; यक्त्या युध्यतेऽसी भाक्तीकः, याष्टीकः; तिथेण धृक्ता राचिः तैषी, पौषी; चलाय साधुः चित्रयः; यज्ञाय द्वितं यज्ञियं; मथुराया आगतः

एवं संगीरपत्यानि एतेष णस लुक्। यस्तादिर्यंणा — यस्त पुष्तरस्ट वर्षक मन्यक लक्ष (लुज्ञ वा) रघीमुख कीष्ट्रपाट प्रस्ति:। विदादिय — विद् पुत्र उर्वे कम्यप क्षिक भरहान उपम्यु प्रापत्तस्य प्रश्वत् रवत्तर विद्वानर प्रस्ति:। व्यविष्य प्रत्यानि व्यव क्ष्यप क्षिक भरहान उपमयु प्रापत्तस्य प्रश्वति:। व्यविष्य प्रस्ति:। व्यविष्य प्रत्यानि विद्वान प्रस्ति:। व्यविष्य प्रत्यानि विद्वान प्रति विद्वान विद

^{*} टख वय टवं तिक्यन्। खीकय कण्च खीनय इयय ते। नास्ति इत् येषां ते पनितः। खीनेयायिति चकारेण पूर्व्वोक्ताः िषाप्रस्तयः प्रत्ययाः समुधीयन्ते। पनितः येति चकारेण स्तिः इति विशेषणान्तरं समुधीयते। तत्य — इह चतारः पूर्व्वोकाष सप्त इति एकादश प्रत्ययाः सर्वकारकेथः कमाणि कर्तर च वाची स्यः, तेच प्रयोगान्तुसारेण कचित् इद्दिताः स्युरित्यथः। इत्-रहिता इति कथनात् (४१६) चिति ते परे हिर्दं भविष्यतीति। प्रयेविशेष प्रत्ययिश्येषन् प्रसिधानान्ते प्रयदिति।

माधुरः ; इह भवं ऐहिकां ; कादाचित्नां ; ग्रामीणः, ग्राम्यः ; मूर्जन्यः ; नादेयः ; ग्राचीयः ; नागरः ; श्रयाः । *

४३०। व्यटेलीपोऽनाराच्छावतोऽच्येऽयौ।

(य टें: ६।, खोप: १।, बनारातृ-मधत: ६।, भच्-यं ७।, भयी ७।)।

क तर्कम वेत्ति अभीते वा प्रत्येषे एव तर्कम प्रत्यक्षात कर्मकारकात कर्मरि वाची शिंकः । (पाणिनि: ४।२।६५) । एवं --- पदं थेति पधीते वा पदकः, क्रमं वेति पधीते वा क्रमक:, अभयत अनित कण । (पाणिनि: धारा ६१) । व्याकरण वित्ति अधीते वा वैयाकरण:, व्याकरणप्रश्रदात् श्राप्तव्यये (४१०) यस्थाने इ.म., तस्य हिंडि:। (पाणिनि: ৪। २।४८)। बाचा तर्तवाचिकमं, अत्र वाची इत्यस्मात करणकारकात कर्मण वाची चिषकः, (४३१) न टंतसावित्यनेन दान्तत्वनिषेधान् (२११) विरामाभावे कुङादिनं क्यात । (पाणिनि: प्राक्षात्र । पाणिनिना प्रीक्षं पाणिनीयम्, अत्र पाणिनिना इति कर्त्तकारकात कर्म्यावि बाची चीय:। (पाणिनि: ४।३।१०१)। एवं प्रव्यंवर्म्मणा प्रोक्तं श्रार्व्वविभिन्निमित्यादि । श्राप्तीक रत्यत्र करणकारकात् कर्भरि वाच्चे चौक:: यध्या युध्यते वर्धी याष्टीकः। (पाविनि. ४।४।५२)। पाविनिमते तु शक्ताः प्रहरणमस्य, यष्टि: प्रषरणमस्य इत्याकारं वाकाम । तिष्येण नववेण युक्ता रावि: तैषी. एवं पृथ्येण नतत्रेण युत्ता रात्रिः पौषी, उभयत्र तिथीण पृथीण इति कर्नकारकात् कर्मणि वाची च्ची अपते ब्रुडी, (२६०) यकारलीपे, (२५०) विस्तादीप्। (पाणिनि: ४।२।३)। चसिय:, यित्रयम इत्यभयन ताद्यों हितग्रब्द्यीगे च चतुर्य्यनादकारकादिप इयप्रव्ययः, सूने कार-कादिति तुप्रधानेन व्यपदेशा भवन्तोति न्यायादुर्ता। (३०८) स्वामीयराधिपतीत्यभेन सम्बन्धविवनायानेव षष्ठीसप्तमीविधानात्, चत्राय साधुरित्यत्र निमित्तार्थे चतुर्थी। (पाणिनि: ४।१।१३८--- भन सूत्रे नातौ घः न तु साध्वर्षे । पाणिनि: ५।१।५) । साय्र द्रति मधराधाः दति द्रपादः।नकारकात् कत्तंरि वाची षाः। (पाणिनिः ४। १। ०४)। इ.इ. इ.ति ऋधिकरणात् कर्लरि वाच्यं णिको ऐडिकां, एवं कदाचित् भव कादाचित्कां, भात्रकणः (पाणिनि: ४।३।५३)। ग्रामे भव: ग्रामीणः, भात्र गीनः, एवं ग्राम्य इत्यत्र च्याः । (पाणिनिः ४।२।८४ ; ४।३।२५)। मुर्द्धनि भवी मूर्कचः, अपत्र चीत्र कर्ते (४२४) न-लोपनिषेध:। (पाणिनि: ४।३।५५)। नद्यां भवी नादेशः, भव खेयः, (पाणिनि. ४।२।६७)। श्रालायां भवः श्रालीयः श्रम श्रीयः। (पाधिनि: ४।२।११४)। नगरे भवी नागर:, चन चा: (पाणिनि: ४।२।१२८)। चर्च भव: चग्र:, चन चार:, (पाणिनि: ৪।৪।११६) । एतेषु उदाइरणेषु (२५८) यथासम्बन् इतर्णावर्णलोप: प्रस्पगः स सेतीऽनितस क्रीया:। एवं प्रथीगानुसारेण कारकात् कर्याण कर्त्तर चवाची प्रस्थया-भवनीति ।

पौन:पुनिक:, वाह्य: वाहीक:। #

४३१। न दं तसौ लस्त्रधें च।

(न।१।, दंश, तसी १॥, तु।१।, भल्य थें ०।, च।१।)।

चय।विच ये चते पूर्वे दसंद्रां∙न स्थात् तान्त-सान्ती तु श्रस्त्रवें च।

श्रारातीयः शाखतिकः। १ १

* व्यस टि: व्यटिसस्य। भाराच शयम तत्, न तत् भनाराच्छयत् तस्य। भच यस भच्चं तिसन्। नासि युर्यस्मिन् भैयुत्तसिन्। भारात-शयत्-विजंतस्य भव्यस्य टेर्लोप: स्थात् प्रकरणवलात् तिस्तिसंज्ञके भिच युभिन्ने ये च पर इत्ययं:। पुनःपुनभैवः इति वाक्ये (४२८) चिक्के. (४१६) इडी, भनेन टिलीपे पौनःपुनिकः। विह-भैवः इति बाक्ये च्या चिक्कं च इडी, टिलीपे वाचाः वाहीक इति। एवं सायंपातभैवः सायं-प्रातिक इत्यादि। भयौ किं, अंयुः भहंयुः। भारात्श्रयतोकदाहर्षं परस्ते दिशितस्। भव भारात्-शयत्-वर्जनदिव भव्ययप्राप्ती पुनर्व्ययहणं कविद्व्ययस्य टिलीपाभावज्ञाप-नायं, तेन सुष्ठुभावः सोष्ठवं, अं विद्यतेऽस्य श्रंयः, एवं क्यंय इति। ''भव्ययानां भनावे टिलीपः। भनित्योऽयम''। इति सिद्धानकौस्दी।

† तथ सथ तसी। चिस्त चर्थी यस तिखान्। तिखादि ईंटे पूर्व सेति न्याया-दाइ - पूर्व दसंजंन स्वादिति। पचेऽयौ इत्यनुवर्णते। (३१८) प्रत्यवे परे ती-र्विक लप्तविभित्तिमात्रिय पद्वे भनेन निषिध्यते। चारातीय इति भारात् भव इति वाकी (४२६) ईये, भनेन पदलनिवेधात्न (५८) चपीऽवै अग्र। एवं शयत् भव इति षाकी चिकी भाषातिक इति। ये परे यथा—त्वच इदं लाचं, दिश्रि भवं दिग्रामिलादौ धनेन दानत्वाभावात (२११) विरामे परेन कुङादिः । एवं धानडस्रं मधुलिस्रं गीदस्रं भौपानहिमियादी क्रमेख न, दङ्ढ च घङ (१८३,१०५,१०६,२३०)। तान सानौ यथा- तड़िती भाव: ताड़ित्यं, अस्ययें तड़िलान इत्यादी न (५८) तस्य द। एवं ग्यमी विकार: पायस्यं घतादि, पायसं परमान्नं, भस्यर्थे पयस्वान् पयस्वी तेजस्वी म्लादी घटान्तलात्, स्थादीयसम्परताभावादिति केचित्, न सस्य (१०२) विसर्गः। मधी किं, अंयु: चइंयु: चत्र दानत्वात् (५३) मस्यानुस्वारः। चर्च किं, वासर्य दिसाचम् इत्यादौ दानालात् (६४) विरामविद्यितं कार्य्यं खादेव । किञ्च नत्रा निर्द्दिष्ट-निवासित न्यायात् भवदीयमिलादौ दाल्लात् (५८) जब, भय दलादौ (५३) तस्यानुस्तार:। पाणिनि: १।४।१८,१६। "बब्ययतीर्षयीत्तरपदीदीच्यग्रामकोपध-वेधेवैद्धाच्छी विप्रतियेधेन'' इति वार्त्तिकस्र ।

४३२। ऋक्वीऽक्वोऽनीने।

(बज्र: ६।, बज्र: १।, बनीने ७।)।

त्राक्तिकं। ईनेतु दाहीनः। श सुपाञ्चालकः अर्थपाञ्चालकः। १

दीवारिक: सीवरं सीवं सीवस्तिक: सीवादुग्रदवं वैयल्कसं भीवं भीवनं स्फैयकतं सीवं सीवाध्यायिकं सीवग्रामिकं नैय-ग्रीधं। एकेति किं, स्थाग्रीधमूलिकं। भीवापदं खापदं, नैयङ्गवं न्याङ्गवं। खागंणिकं। ध

^{*} न ईनोऽनीनसिक्षिन्। यहन् शब्दस्य यक्तः स्थात् यचिये च तिहते, न त ईने प्रयो च । त्वन्ततात् प्रस्तये इत्याय मानृवित्तः । प्रक्ति भवं पाक्तिकं (४२८) चिक्ते, प्रनेन प्रकादेशे, (४१६) वृद्धिः। ईने तु, द्वयोरक्रोभंवः इति तिह्तितार्थविषयदिगौ (४२८) ईने क्रते, प्रकादेशनिषेधात् (३३०,२५८) द्वाहीनः। पाचिनिः ५।१।०८, ८६, ८०: ६।४।१४५ ।

^{+ (}४१६) सुपञ्चालादीनुदाइरित—सुपञ्चाले (देगे) भवः, ऋतैपञ्चाले भवः, छभयव (४२८) कण्, परपदस्य इतिः । सुपञ्चालादिन् —सुपञ्चाल सञ्चपञ्चाल ऋतेपञ्चाल पूर्वपञ्चाल दिविणपञ्चाल छत्ररपञ्चाल गृहलचु पितृपितासह बातिपत्त वातग्रेम एकपुष्य पूर्वपृष्ठ पूर्वज्ञायन भगरहायन हिसंबत्तर हिवर्ष विसप्ति हिनिष्क हिस्वर्ण भोष्ठपद भद्रपद हत्वादि । भव द्रष्ट्यम् —पाणिनेः ७१११० — १८ स्वाणि छत्तरपद- इत्रायंकानि ; ७२११६ — २१ स्वाणि सभयपद्वत्रायंकानि । त्रष प्रथमोत्तानि स्वाणि वीपदेवमते सुपञ्चालादिगणघटकानि ; भेषोत्तानि तृ तन्त्रते सुभगादिगणप्रयोज्ञकानि (४१६ सृतं द्रष्ट्यम्)।

^{‡ (}४१८) द्वारादी इटाइरित — दारे नियुक्त: दीवारिक:, (४२८) चिक्त:, वस उम्, तस उम्, तस उम्, तस उम्, तस उद्यात स्वाद्य व स्थान, तेन दारि नियुक्त: द्वारिक दित। (पाचिनि: ४।४।६८)। स्वरे भवं सौबर, स्वरमधिकत्य क्रतीययः सौबर: दित वा, चा:, उम्, तस विद्यः। (पाचिनि: ४।३।८०)। एवं सर्व्यम। सः (स्वों) भवं, सौवं, चाच स्वर्थस्थात् चाः, (४३०) टेखोंप:। (पाचिनि: ४।३।२५,५३) स्वसोति विक्त सौवित्विक:, स्वत्वि यथा स्थामया विक्त, वस्यित द्वित वा—चिक्ते,

४३३। विकारसङ्घभावेदंक्तिस्वार्घादौ_।

(विकार-सार्थादी श)।

एखर्षेषु चते त्याः स्युः।

हेकी विकार: हैम: त्राप्य: त्राक्तिय:, भित्ताणां समूह: भैतं न्नाइतंगाणिकां राजकां, गुरोभीव: गौरवं यीवनं साम्य वैरूप्यं राज्यं सीहाई, विणोरिदं वैज्ञावं ब्वदीयं माघवनं गीवनं। क्ष

टेलींप:। खाद सदना कर्त. खादसदैनि संकर्तना. (भक्तं) सीवादसदनं। व्यक्त भी-ऽव्यत्पन्न: व्यल्कासे भवं वैयल्कास। केचित्त व्यल्कासभव्दं दारादी न पठिना ते पुन:, विगतीऽर्क: व्यर्क: तं स्थित व्यर्कस:, किपिलिकादिलात रस्य लं तत्र भव: वैयल्क्स इति श्राद्यच: स्थानजातलात् (४१०) यस इस् तस्य बहिरिति वदन्ति। य: (परदिने) भवं शौवं, को टेलेंगि:। शौविभिक्तलमिति भट्टिकाव्ये—्य: परदिनं तेकते गच्छतोत श्वस्तिक: (११६) कामत्यय: श्वस्तिक एव श्रीविक्तिकसस्य भाव इति व्याख्या. भत्र श्वसम्रव्हस्य वस्य उस । मृति भवं भौवनं, (४२४) भविकादणं परे न-लोपनिषेधः। (१८४) स्ययनम्पनामिति तडितपरे वर्जनात न वस्य छः। स्प्राकते भवं स्फैयक्ततं, स्पाः खादिरः खड़गः, तेन क्रतमिति त्तीयातसपुरुषः। स्वे (धने चाला (न वा) भवंसीवं। स्वाध्याये वेदे भवंसीवाध्यायिकं वेदाध्ययनं। स्वयासंभवं सौवगानिका । खा गहणेनैवेष्टिसिखी खाध्याय खगामयो ग्रंहणं चन्यमञ्जादिस्थितस्वमन्द्रस्य निवेधार्थे, तेन खग्रन्दस्यद स्वाग्रन्द्रं, स्वीदरं पूर्वतीति स्वीदरिक इत्यादि। नागंधे भवं नैपयोधं, न्यपोधी वटहच:। एकंकि किं,न्यगोधमुले भवं न्यागोधमुलिकन। चापदे भवं शौवापदं चापदं, न्यङ्गी (स्रो) भवं नैयङ्गवं न्याङ्गवं, उभयव विकल्पेन दस्य उम्। ग्रनां गणः अरगणः अरगणे भवं अरागिक कां, (पाणिनौतु अरगणेन घरतीति यागणिक: यमणिक इति ४।४।११) भन (४१८) यादेखिकारादी तिस्ति परे निवंधात न वस्य उम । इकार कि, सरंष्ट्रायां भव: शौवादष्ट: इत्यादी उम स्यादेव। अव (३४) मनीवादिलात् (पाचिनि: ७।३।६—"पदालस्यान्यतरस्थाम'') भकारदीर्घ. ।

* खस पातानीऽर्थः प्रभिषेयः खार्थः, खार्थं त्रादिर्थस म खार्थादः। निकास्य सङ्घ भावय इदम् प हितस खार्थादिश समाद्रारं तिकान्। प्रकृतेरवस्थान्तर विकारः, (पाणिनिः ४।२।२४), सङ्घः समूहः, (पाणिनिः ४।२।२०), भावोऽसाधारणवर्षः, (शब्दप्रवृत्तिनित्तं भावः, प्रकृतिन्यवो धेप्रकारो भाव इति वा) (पाणिनिः ५।२।११६), इदिनिति सम्बन्धोपलव्यक्षं, (पाणिनिः ४।२।४)

838 | ऋद्रो ये। (सत्।रा, र: रा, वे का)।

पित्रंग्र। *

४३५ । इन्षन्धृतराज्ञामुङ्लोप: **ष्णे ।**

(इन्-वन्-धतराज्ञां ६॥, उङ्लोप: १।, क्रे ।)।

वार्त्तन्नं पौषां धार्त्तराज्ञं। एषां किं, सामनं। 🅆

खार्थः प्रक्रतार्थ।नितिरिक्तः ("खार्थं 'उपसंख्यानम्'' इति वार्त्तिकम्)। एषु प्रार्थेषु ते पूर्वोक्ता: (४१५) पि क्येय च्या च्यायन पीय चिक चा, (४२६) चीक कप् यीन इय, एते एकादश प्रत्ययाः सेतः भनितम् स्युरित्यर्थः । भनापि यस्मान् भन्दात् यस्मित्रर्थेयः प्रत्ययः सेत् चनित्, वा स्थात्, एतत् सर्व्ये प्रयोगातुसारेणेव जीयं। चादिपदेन "सास्य दंवता'' (पा. ४।२।२४), "तदस्य पर्याम्" (पा. ४।४)५१), "क्रिल्पम्" (पा. ४।४।५५), "प्रहरणम्" (पा. ४।४।५०), "शीलम्" (पा. ४।४।६१), "तत्र नियुत्तः'' (पा. ४।४।६८), "तस्येश्वरः" (पा. ५।१।४२) द्रव्यादयी वहवीऽर्घा बीध्याः। हैम इति चनेन खप्रस्पये, (४१६) हिंदि: (३३७,२५८) नस्य चकारस्य च लीप:। एवं चपां विकार: भाष्य: चत्र चारः । चग्ने विकार: चाग्नेयः, चत्र चोयः । भिचाचां समुद्रः भैचं (पाणिनि: ४।२।३८), फक्रां समूह: चाक्रं, (वार्त्तिकम्), पत्र खे (४३२) घक्रादेश:। गणिकानां समृह: गाणिकां, चन चाः। राज्ञां समृह: राजकं, चन कणः। यूनां भाव: यीवनं, (४२४) ऋविकार-च्ये परे न-सीपाभाव:, (१८४) सञ्जितवर्जनात् न वस्य **उ:। (पाणिनि: ५।१:१३०)। समस्य भाव: साम्यं, विष्ठ**पस्य भावी वैष्ट्यं, उभयव च्या:। (पुरीहितादिगचान्तर्गतस्य) राज्ञी आवः (पाचिनिमते भावः कम्प्रवा) राज्यं (सप्ताङ्गवचनं), काप्रवर्ष्य, (१२७, २५८) नस सकारस च लीप:। सुहदी भावः सीहाई चा:, (४१६) सुभगादित्वात् समयपदश्वः। वैचाविमत्यत्र ची, (११०) चवर्णस चीकारे, (३५) **घव्। तव इदं लदोगं, घत्र पीयः,** (२१५) लदार्दगः। मघवत दूर माघवनं, (१८१) तुङ्पची माघवतं, ग्रन दरं शीवनं, छभयव भी, (१८४) न वस्य उ:, (४२४) चविकारची न सीपनिषेधसः।

- च्यतारो र: स्थात तिखत-यकारे परे । पितृरिदं पित्रंग, (४३३) भनित् च्याः ।
 (पितृरागत इति तु पाणिनि: ४।३।०८) । ये िकं, पैतृकं, सेत् क्या।
- † इन् च घन् च धतराजन् च तेषां। षन् इति घन् भागान्तः, तेन उचन्-पूषन-प्रश्रतीनां यहणं। (११०) सदानोऽस्नोप इत्यनेनैव चस्नोपे सिद्धे इदंनियसार्थे, तेन

४३६ । युषादसार्त्वनारां युषाकासाक-तवकममकाः व्यागीने।

(युषाद---मदा ६॥, युक्ताक-- ममका: १॥, पापीने अ)।

यौषाकं यौषाकीणं, त्रास्माकं त्रास्माकीनं, तावकं तावकीनं मामकं मामकीनं। *

सूर्याय हितं सौरीयं त्रागरतीयं त्रात्मनीनं। चोर एव चौरः त्रैलोकां रामकः। १

भी परे एवामेव जङ्लीप: स्थान नान्यस्य इत्यर्थः। इनक्त इदं इति वाकी (४२३) भी कते हन इत्यस्य जङ्लीपे, (१८८) क्रस्प्राने घः. (४१६) क्यायची हडिः, वार्त्तघः। एवं पूर्ण इदं पीणां, धतराक इदं धार्तराक्षां। उक्तानु क्रपत्यार्थे भी, भीका इति (४२४) पूर्वसुदाइतम्। एवां किं, सास्त्र इदं सामनं, धन पूर्वेणापि (११७), जङ्लीपो न स्यात्। सर्वेन क्षितकार-भी न लीपाभावः (४२४)। पाणिनिः ६।४।१३५।

युपाद अस्माद लाद सद् एषां स्थानि क्रमात् युपाक भाषाक तवक समक एते
 आदियाः स्यु णो गोने च परे । युपाकितिदं इति वाको णो गौने च केलंकि युपाकित्ये इति वाको गो गोने च केलंकि युपाकित्ये इति वाको णो गोने च युपाद एक लात् (२१५) लदादेशे, भानेन तवकादेशे इतो तावकं तावकीनं, एवं मामकं मामकीनं। स्तियां मामकी (क्रन्दिन), मानिका (क्षोकी)। पाणिकिः अशि १,२,६।

^{† (}४३३) दितार्थे जदाहरति सौरीयमियादि । स्ट्यंय दलकात् यथि विभिन्नलोपे, (२६०) यखीपः । एवं भागसीयं । भाक्षने दितं भाक्षनीनं, भव योने (४२४)
न-लोपनिवेधः । (पाणिनः ५१९१८; ६१४९१६८) । स्वार्थे जदाहरति, भीर दित ।
एवं विलोजी एव वैलोकाः भव योग इडी (२५८) ईकारलीपः । स्वार्थप्रत्ययानाः
पूर्व्यालङ्गा एवेति नियमेऽपि भस्य क्षीवलमभिषानात्; भतएवानां कचित् सार्थिकाः
प्रत्यया जिङ्गवचनान्वतिवर्षन्ते । राम एव रामकः, भव कण् । कप्रत्ययोऽन्यार्थेऽपि
भवति, यथा—भजाने जुन्सिते चैव संज्ञायाननुकम्पने । तद्युक्तनीतावस्यत्वे वाच्छे
प्रस्ते च कः स्तृतः ॥ इति प्राञ्चः । तद्युक्तनीतौ भनुकम्पायुक्तनीतावित्ययः । पाणिनः
भजाति । (५१३।०३), ''जुल्लिते'' (७४), ''संज्ञायां कन्'' (०५), ''भनुकम्पायाम्'
(०६), ''नौतौ च तद्युक्तात्'' (००), ''भली वे'' (८५) ।

४३७। केऽक: स्वो हे त वा।

(को ७।, भक: ६।, स्तः १।, हे ७।, तु।१।, वा।१।)।

कन्यका, सुकन्यकः सुकन्याकः । *

श्रिवी देवता यस्यासी ग्रैवः, ग्राह्मेयः। 🌣

8३८। लतौ भावे। (त-तौ १॥, भावे ७)।

साधुलं जड़ता, पाचकलं, बाह्मणीलं । 🅸

अन्नः प्रत्याइरास्य स्वः स्यात् किया परे, बहुती ही तुवा। कत्या एव कत्यका, भव भिनित्किया कते, भनेन इस्ते, स्वार्थप्रत्यान्तान्तिक्षण एवेति (२४८) भाग्। एवं स्वयान्तिक्ता रासोक्का, सेनानिका इत्यादि। श्रीभना कत्या यस्यिति बहुती ही सुकत्यकः सुकत्याक, भव वा इस्तः। भक्त इति किं, नीरेव नौका इत्यादि। पाणिनिः ७।४।१६,१४,१॥।

इसे परेऽपि कचिन् इस्ती वक्तत्रः यथा—कालिदासः, वेदेश्विन् , केतिकिदन्तुरितं, नाडिनचत्रनित्यादयः प्रयोगानुसारात् ।

- † (४३३) ऋादिपदस्य उदाहरणमाह भैव:, ऋत णः। (पाणिनि: ४।२।२४)। एवं म्राक्तिदेवता यस्यामी भाक्तेय:, भव भेयः। एवं माक्तः वैष्णवः गाणपत्य द्रसादि। प्रयोगानुमारेण ऋयंविभेषे तिज्ञिपत्यया भविष्यनौत्यादिपदेन मृचितमिति।
- ‡ स्यायतात् ल त रित हयं स्थात् भावेऽयं। भिभधानात् लालस्य क्रीवलं, ताल-स्य च स्त्रीलं स्थात्। भावसु प्रवितिनिधितं, येन धर्मोण भयं गौरिति प्रतीतिः स्र धर्मो गौगस्य भाव रूल्यथः। साध्याः भावः साधलं, जङ्गया भावः जङता, उभयव (२२०) पुंवहावः। पाचिकाया भावः पाचकलं, भव (२२८) पुंवहावनिविधेऽपि, (२५०) विभिष्विधानात् पुंवहावः। एवं षष्ठा भावः पष्ठलं, मैथिल्या भावः मेथिल्लिमित्यादि । साह्यस्या भावः बाह्यस्यीलं (२५०) भजात्यात्यः इत्युक्तः न पुंवहावः, एवं दत्ताल-मित्यादि । त्व त रूल्यभयस्य भावविहित-स्थादि । स्य त रूल्यभयस्य भावविहित-स्थादि । स्थानान्यविभिष्यभावाभावात् वाध्यवाधकलाभावे जङ्गस्य भावः जङ्गं जङ्गता जाउं, गुरीभावः गुक्लं गुक्ता गौरविम्लादि स्थादेव । भव वक्तव्यम्—"देवात् तल्" (५।४।२०) इति पाचिनिः मृवण देव एव देवता रित स्वार्थे तल्पस्ययः। पाचिनिः ५।१११८।

४३८। **जीकोऽर्घात् सः ष-स्ति।**

(लि-इक: प्रा, च-घांत प्रा, स: ६।, ष: १।, ति ७।)।

म्रार्चात् लीकः सः षः स्थात् ति ति । यज्ञ द्वं, र्घात् गीस्त्वं। *

880। चत् सास्ये। (वृत्।रा, मासे०)। वर्, , ज्याने क्षाने क

88१ | मतुरस्टार्धे | (मतः ११, श्रास-श्रेष्ण)। श्रीरस्ति यस्यासी श्रीमान्, विदुषान् दीषान् । क्ष

अ धिरिक् लीक् तथान् । नासि घें। यत्र मीऽर्धसम्मान् । दीर्घतर्गात् निङ्गस्य दकः परस्य सस्य षः स्थान् निञ्जत-तकारि परे। यलुषी भावः यलुष्टं, एवं इतिष्टं। गिरी भावः गीस्तं, एवं घूस्तं, श्रात्र (२२८) दीर्घं, रीफ्स्य (१०२) विसर्गे, (६५) विभगस्य सकारे, घत्यप्राप्तौ दीर्घपरत्वाद्विषेषः । लीकः किं, वसुत्तरां। पाणिनिः ८।३।२०१।

[†] समस्य भाव: सास्यं तिस्मन् । स्थाद्यन्तात् चुन् स्थात् उपमानेऽथें। चकारीऽ-व्ययार्थः (८४)। क्राणा दव क्राणावत् शिवी भातीति शेवः, एवं क्राणानिव क्राणावत् शिवं मन्ये इति शेवः। एवं सर्व्यविभक्त्यन्तात् चुत्पत्यये क्रीलंकः। उपमानं कियाविशेषणीय-भेवः, तेन पुत्रेण तुल्यः स्थूल इत्यादौ कियाभिन्नसास्य न स्थात्। पाणिनिः प्राशाश्यः, ११६,११९। एषु म्वेषु द्वितीयाद्वतीयावडीसप्तमीविभक्त्यन्तादेव वितः स्थादियुक्तम्।

[‡] भित भयां यस्य यिकन् वा सः भस्त्यभी विद्यमानसम्बन्धसिन्। प्रथमान-पदात्, भित भस्य भिक्षन् वा इत्ययें, (भस्य भिक्षित्रिति पाणिनिस्ते धतलात्), मतुः स्वात्, एकार इत् (१८२) तृष्यंः, (१८५) दीर्घार्यः, स्त्रियां (२५७) ईवर्षयः । तेन श्रीमान् श्रीमती। एवं श्रीरिक्षा यिक्षितिति वाक्येऽपि श्रीमान्। विदान् भित्ति यस्य यिक्षन् वा इति वाक्ये विदुधान्, भन (२२८) मतौ परे वसीर्वनारस्य एकार-विधानसामस्योदित, (४४२) भकारीङ्खेन प्राप्तयं वतुं वाचित्वा, मतुः स्वात् । ततस्य वस्य एखे, (४२१) न दं तसाक्षित्रभेन दान्तलिविधात् विरामाभावे, (१८२) दक्षीऽपात्री, (१११) वर्ले। एवं दोरिक्षा यस्य सदाभान्। भन य्वादिसंतुर्वक्तव्यः, यवादिस्—यव किमं सूमि क्रमि द्वादा इतित् कक्षत् गरुत् प्रश्रातः। पाणितिः धाराध्यः, ८५॥।

४४२। मो**ङ्म-भ्र**पात् वतु:।

(म्-म-चङ्-म्-म-भाषात् ५।, वतुः १।) ।

मकारो ङोऽवर्षों ङो मकारान्ता दवर्षान्तात्, भाषान्ताच, वतुः स्यादस्ययें । स्वस्त्रीवान्, यूयस्वान् भास्तान्, किंवान्, ज्ञान-वान् विद्यावान्, विद्युत्वान् । *

४४३। सङ्मेघास्मःयात् विन् वा।

(स्रज्-भेधा-भ्रम्-मायात् ५।, विन्।१।, वा ।१।)।

स्रग्वी मेधावी तेजस्वी मायावी। पचे स्रग्वान् इत्यादि। १

"न कर्म्यारयान्यत्वीं यो बहुनी हिश्वेद वेप्रतिपत्तिकरः" इति प्राञ्चः, तेन, भीभना बुद्धिति कर्म्यघारये सुबुद्धिरन्यस्थिति सुबुद्धिमान् जन इति न स्थान, भाभना बुद्धि- वंस्थासी सुबुद्धिति बहुनी हिण्ये तद्येप्रतिपादनात्। मत्वादीनां स्थानमाङ दुर्ग- सिंहः, सूम-निन्दा-प्रश्नंसासु नित्ययोगे इतिश्रायने । संसर्गे इतिविचायामभी मत्वादयो सताः॥ यथा — भूषि गीमान् । निन्दःयां पाषी । प्रश्नंसायां कपवान् । निन्दःयां पोषी । प्रश्नंसायां कपवान् । निन्दःयां पोषी । स्वस्तां दण्यी पाषाः ।

* मच घर मी, मी उडी यथोली मोडी, मोडी च मच घर भाग् धित तसात । भाग् प्रत्याद्वार: । सम्भीरस्थस्य, यथोऽस्थस्य, भा घरसस्य, किम् घरसस्य, कानमस्यस्य, विद्या घरसस्य, विद्युत् घरसस्य, सर्वेद घिसान् वा, इति कमिण वाकानि । यथस्यान् भास्तान् विद्युतान् एतेषु (४३१) हानात्वनिष्धात् न सस्य विसर्गः, न च (५८) तस्याने द । पदमाधनन्तु पूर्वेदन् । पाणिनि. ८।२।८,१० ।

कसुर-वेतस नड़ादीनाम् चकारखोषी निषात्यः, तेन कुसुदान् वेतस्वान् नड्डान् इस्यादि । (पाणिनिः प्राराद्य । एतन्त्रते सतुष्) । राजन्वान् इस्यचन-खोपाभावो निषात्यः । (पाणिनिः पाराश्क्ष) । उदन्वातुदंधौ मर्थे निषात्यः । (पाणिनिः पाराश्क्ष) । चित्रत्यकौवत्-चर्याखदादयम् निषात्याः (पाणिनिः पाराश्र्र) ।

† सक् च मेधा च चन् च नाया चिति समाहार तक्यात्। एथ्योऽस्वर्थे विन् वा स्थात्। पचे पूर्वेण वतः। सक् चस्त्यस्य सन्ती, अव दान्ततिनिधेधाभावात् विरामे परे (२११) कुङ्, ततः (१८८) तीर्घः, (१९८) न लृप्। एवं मेधा चस्त्यस्येत्यदि। चामयोऽस्वस्य चामयावीति निपातनात् चकारस्य चाकारः। पाणिनिः ५।२१२१। "चामयस्थापसंख्यानं दीर्षेष्" इति वार्तिकच्य।

८८४। नैकाजादिन् वा।

(नैकाजात् प्रा, इन् । १।, वा । १।)।

यनेकाचीऽवर्णान्तादिन् वा स्याद्त्यर्थे। ज्ञानी ग्रिखी। *

४४५ । शं-कंभ्यां य-यु-त-तु-ति-व-भा: ।

(ग्रं-कं स्या ५॥, य--- भाः १॥)।

ग्रंथः ग्रंयुः गन्तः ग्रन्तुः ग्रन्तिः ग्रंवः ग्रंभः । 🅆

88ई। गी त्या मेधा इन्त काग्छ द्युवल बिल पर्व चुड़ा फोन लोम पाम प्रच्या मधु केश रजः फलोणी शृङ्ग निद्राशी वातादे— मिन् सेरोरेर मोलेभ तलेल शान गार व वलेन यारका लंकिन् वा।

(गी -वातादी: प्रा, मिन्-किन् ११1, वा ११1) ।

[%] न एकी नैक:, नैकीऽच्यस्य स नैकाच्, नैकाचासी भवेति नैकाज: तस्मात्। प्रानम् प्रस्यस्य ज्ञानी, शिखा प्रस्यस्य शिखी, एवं माखी दस्ती दस्त्रीदः। पर्वे प्रानवानित्यादि। नैकाच: किं, संधनम् प्रस्यस्तिन स्त्री, परन्तु स्रवान्, स्वाभीति स्यं वस्त्रीत। पाचिनि: प्राराहर्प्र। "दिनिठनीरिकाचरात् प्रतिवेषः" दिति वार्त्तिकः।

[†] अम् कम् इति मानाव्ययाथाम् एते सप्त प्रवयाः खुः चस्वये । श्रं कत्याः खं वियतेऽस्य श्रंयः, भव टिलीपाभाववीत्रं (४३०) द्रष्टव्यम् । एवं (४३१) नजा निर्दृष्टमिनलिनिति न्यायात् दान्तलिनिषेधाभावे (५०) मस्यानुस्वारः । एवं श्र्युरिलादि ।
कं वारिणि च सूर्वनीत्यमरः । पाणिनिः प्राराहरू । भव द्रष्टव्यम् — वीधलिङ्गप्रकाशिते चष्टके पाणिनीये शिवरामप्रकाशितायाच वैयाकरणि ज्ञान्तकौ सुद्यां वप्रवयी वर्म्यलेन खिखितः, तारानाथरुकं वाचस्यतिप्रकाशितायान् निष्ठान्तकौ सुद्याम् चन्तः स्थलेनिति प्रभेदः । "यो वः प्रवयस्य स्वानः" इति नियमान् भनः स्थप्य भवितुमर्हात ।

एभ्य एते क्रमात् स्युः अस्त्रवर्धे वा। गोमी। *

४४७। नाम्त्रस्यर्षेऽचो र्घः ।

(नास्ति ७।, बस्यये ७।, बन: ६।, र्घ: १।) । †

स्वामी, त्रणसः, मिधरः' रिषयः, दल्तुरः, काण्डीरः अण्डीरः, युमः दुमः, बलूनः वातूनः, बिसः तुन्दिभः, पर्वतः मक्तः, चूड़ानः मांसनः, फेनिनः पिच्छिनः, लोमणः रोमणः, पामनः अङ्गना, प्राज्ञः यातः, मधुरः कुच्चरः, केणवः मानवः, रजस्वना कषीवनः, फिनिनः विर्धिणः, जणीयुः असंयः, यङ्गारकः हन्दारकः, निद्रानुः, द्यानुः, श्रर्थसः वैजयन्तः, वातकी स्रतिसारकी। इ

[⇒] कामीयधा-—

कारुड यु वल वलि पर्व चुडा फीन दन उर् ई र म जल इभ केश रजस फल कर्षा निद्रा पर्श्वस वात प्रश्रुष्ट वस 57 य भारत बातादेरिलादिपदं सर्वेत्र योज्यं। भव यद्यपि सामान्येनोक्षं तथापि भर्धविश्रेषे ज्ञातन्य:। गावी विद्यन्तेऽस्य गीमी, पर्व गीमान्। पाणिनिः ५।२।११४ ; ४।२।८० ; "मेधारणा-भ्यानिरन्निरची वज्ञाची'' दति वार्त्तिकान ; प्राराश्०६ ; १११ ; १०८ ; "बलाचील:" इति वार्त्तिकम्; प्राराश्वरः; "पर्व्यमब्ह्यां तप्" इति वार्त्तिकम्; प्राराट६; हर ; १००; १०९; १०७; १०८; ११२; ''प्रसवर्काम्यामिनच्'' इति वार्त्तिकम्; प्राशश्यक्ष, "प्रज्ञवन्दाध्यामारकन्" दति वार्त्तिकम्; निद्रालु: द्याल्रिति निपूर्वद्राधातोः दयधातीय चालुच्प्रत्ययेन सिश्चं (पा. शरारभ्रः) न तु तश्चितप्रत्ययेन ; प्रारा१२० ; १२८ ।

[🕂] चची दीर्घः स्वात् ऋस्यर्थप्रत्ययेषु, नास्त्रि वाच्ये । पाणिनिः ६।३।१२०।

[‡] स्त्रीऽस्थास्त्रीति स्वमस्त्रीति वास्त्र इत्यस्त्रात् सिन्, घनेन दीर्घः, स्वामी ईत्ररः। त्यस्यस्य त्यसः, एवं नेधा घरणस्य नेधिरः इत्यादि वाक्यं। यवास्त्रभवं (२५०) इत्यावर्षकीपः। सर्व्यंत्र घक्षिधानान् स्त्रीपृंतिङ्ग-स्थवस्या।

88८। वाग्मि वाचाट वाचाला:।

(वाग्मि - वाचाला: १॥)।

वाचीऽस्यर्थे एते निपात्यन्ते। *

88र। जन-खलाहि-गो-रथ-वातात् तेन्-चकडोलं सङ्घे।

(जन--- वातात् ॥।, त-इन्-च-कडा-जलं १।, सद्दे ৩।)। 📩

जनता बन्धुता, खिलनी इलिनी, गीता, रथकद्या,वात् हाः । १

एतिह्वत्तीन — चूड़ादिलान् — ('सिमादिस्यय'' इति तुपाणिनि: ५।२।८०) मांमलः भंगलः पांग्रलः स्वामलः पिङ्गलः कपिलः कष्टूनः पृथुलः पण्यलः मञ्जलः सद्दतः चटुलः पेग्रलः ग्रकलः तृन्दिलः श्रीलः कुग्रलः घारालः भौतलः प्रप्तलः श्रिम्नलः। रोमादिलान् — कपिगः कर्कगः गिरिशः। पामादिलान् — वामनः दृष्णः लच्यणः। प्रजादिलान् — वार्षः पार्करः सैकतः वैद्यः वाभवः। मध्वादिलान् — पैषिरः जषरः पुष्करः सुखरः खरः नखरः पाष्टुरः बन्धुरः कुन्नरः। किशादिलान् — विषवः राजीवः गाष्डीवः प्रप्यवः सिपवः हिरग्यवः। रजन्नादिलान् — दलावलः श्रिखावलः पर्वदः जर्जस्वलः मालवलः प्रववलः उत्साहवलः। फलादिलान् — मौलनः। जर्णादिलान् — गर्भदः। निद्रादिलान् — तन्द्रालः लच्चालुः श्राहालुः क्रपालुः हृदयालुः, श्रीतालुः लच्चालः इसिलः — इत्यादीनि प्रथीगानुसारान् भ्रीयानि।

* वाच्याच्ह्यस्य स्थाने एते निपात्यन्ते भ्रस्ययें। निपाती द्यार्थिनभेषे इति वास्मीति प्रभंभायां, वाचाटवाचास्तो निन्हायां, बहुसाषित्वादस्ययं इति। ''यो हि सस्यग्वहः भाषते से वास्मी''। यो तुकृतिसतं वहु भाषते तो वाचाटवाचानी। श्रतएव पाणिनी (५।२।१२४,१२५) स्वहयं, परस्वे च ''कृतिसत इति वक्तव्यम्'' इति वार्त्तिकम्।

† जनस खलस तो आही यस स जनखलादि:, सच गौस रयस वातस तत्तसात्। तस इन्च चस कहास जलस तत्। समूहार्यं जनदिनाः खलादिरिन् गोमन्दात् वः रयात् कदाः वातादृलः स्वादित्यधः। जनानां समूहः जनता, एवं वन्तुता गजता। स्वानां समूहः खिलनी, एवं इलिनी विधिनी पिन्नते कुसुदिनी। जनादिः खलादिस प्रयोगतो क्रेयः। गवां समूहः गोवा, रथानां समूहः रथकदा, वातानां समूहः वात्नः। जलप्रस्वानस्य पृंस्तम् प्रयोगतो क्रेयः। गवां समूहः गोवा, रथानां समूहः रथकदा, वातानां समूहः ११२१४३, भ०,५१; 'वातात् समूहे च' इति 'खलादिस्यः इतिः'' इति च वार्त्विम्। अन्त रथकद्या इत्यपि पाठानारं द्वायते।

८५०। सङ्ख्याया डट् पूरणे।

(सङ्गाया: ५।, उट् ।१।, पूर्ण ०।) ।

एकादयानां पूरणः एकादयः। 🕸

४५१। नोऽसङ्ख्यादेर्मट्।

(न: ५१, भसङ्गादे: ५१, मट् ।१।) ।

त्रसङ्गादेनीन्तसङ्गाया मट् स्थात् पूर्णे । पञ्चमः । 🍄

८५२। तमट् षष्ट्यादेः । (तमट् ११।, पत्यादेः ४।) ।

असङ्गादेः षष्टादेः पूर्णे तमट् स्थात् ।

षष्टितमः सप्ततितमः। सङ्घादेसु एकषष्टः। ३६

8पूर्। शतादि-मास-संवत्सरात्। (*)।

एभ्यस्तमट् स्थात् पूर्णे। यततमः एकयततमः, मासतमः

संवसरतम: | §

[•] सङ्गावाचकिस्यो उट् स्थात पूर्ण । उटावितौ स्वकारस्थितः, डिच्चात् (१२६) टिलीपः, टिच्चात् (२५०) देप् । पूर्यंते सम्पद्यते भनेनेति पूरणः करणेऽनट् । दशपर्यंत्तानां विर्शापप्रस्थितः वाधितलात् तान् विहाय उदाहरति, एकादशानां पूरणः एकादशः दिति, एकादशः प्रवः, दशपुत्रेभ्यः पर-दृत्यं एवं दादश्र द्रस्थादि । स्त्रियाम् एकादशो द्रस्थादि । पाणिनः प्राराधानः ।

⁺ सङ्कार आदिर्यस्य स सङ्गादिः, न सङ्गादिरसङ्गादिसस्यान, न इत्यस्य विश्रेषणं। पञ्चाना पूरणः पञ्चमः (११८) नस्य लुप्। टिच्चान् (२५०) पञ्चमीत्यादि। एवं सप्तमः अष्टमः नवमः दशमः। असङ्गादेः किं एकादशः द्वादश द्रत्यादि। एवां सुख्यानानित्र ग्रस्णं, तेन अतिपञ्चानाः पूरण द्वादौ न स्थान्। पाणिनिः ५।२।४८।

[‡] परिरादिर्थस म प्रधादिलसात्। षष्ट. पूरणः, सप्ततेः पूरणः। एवं जनपष्टि-तमः, त्रभौतितम इत्यादि। एकषष्ट इति (४५०) उट्। पाणिनिः ५।२।५८।

848 | विंशत्यादेवी । (विंशत्यादेः ४), वा ११) ।

विंगतितमः विंगः, त्रिंगत्तमः त्रिंगः। %

८५५। चतु:-षड्-डित-कितपयात् घट्।

(चतु:-कितपयात् भी, बट् ।१।)।

चतुर्घः षष्ठः कतियः कतिपययः । 🅆

८५६। बद्ध-गण-पूग-सङ्घातोस्तिषट् तलोपश्च।

(बहु-मती: ४।, तिबट्।१।, तसीप: १।, च ।१।)।

बहुतियः यावतियः। 🕸

नानुक्तंते, तेन सङ्गादिश्योऽसङ्गादिश्यो वा एश्यः इत्ययः । शतस्य पूरणः, एकश्रतस्य बूरणः, नासस्य पूरणः, संवत्सरस्य पूरणः । एवं एकनासतमः एकवत्सरतम द्रवादि । पाणिनिः प्राराष्ट्रकः

- * विंगतिरादिर्धस म तसात । चादिपदेन नवतिपर्थनं व्यवस्थीयते । सङ्गादे-रसङ्गादेवां विंग्रत्यादं नमट् स्थादा पूरणे । विंग्रते: पूरणः विंग्रतितमः, पर्धे (४५०) डट्, (१२६) तेलींयः, (२५८) चकारलीयः, विगः। एवं विग्रत्नमः विंगः इत्यादि । सङ्गादं सु एकविंग्रतितमः एकविंग्र इत्यादि । पूर्वेण (४५२) सङ्गादि-वर्जनेऽपि, चनेन सङ्गादेः पृष्णे तसट् वा वक्तयः, तेन एकपष्टितमः एकषष्ट इत्यादि । पाणिनिः ५।२।५६ ।
- † चतुर्च षष्च उतिथ कतिपयय तसमात्। उतिरिति प्रत्यः (५०८), तेन तदनाना किति-यित-ततीनां ग्रहणं। एथः पूरणे थेट् स्यादित्यथः। धतुणां पूरणः चतुर्थः, एवं षष्ठ इत्यादि। विद्यमानिविधिक्तिकाना पदलं स्वाधादिकं, लुप्तविधिक्तिकानानानु पदलं भातिदिश्किमेव, ततय भातिदिशिकमिनत्यमिति न्यायात्, चतुर्थः षष्ठ- इत्युभयम पदलाभावेन विरामाभावात् (१०२) रसान विसर्गः, (१५५) पस्य च न उदिति। पाणिनिः प्राराहरू।
- ‡ बहुय गणय पूगय सङ्घ पात्रय तत्त्वात । ऋतुरिति प्रत्ययः (५०८), तेन यावत् तावत् एतात्रन कियत् इयत् इत्येतेषां ग्रहणं। एग्यः पूरणे तियट् म्यान्, तियट् परे श्रव्यवहितपूर्ववर्ति-तकारस्य लीपय इत्यर्थः। बह्रनां पूरणः इत्यादि वाकः। पाणिनिः ५।२।५२,५३।

४५७। दितीय हतीय तृय्यं तुरीयाः। (१॥)।

८५्८। सङ्ख्याया धाच् प्रकारे।

(सङ्गायाः ५।, भाच् ।१।, प्रकारे ०।)।

चतुःप्रकारं चतुर्दा । 🕆

ं ४५६। देघं हेघा चैधं चेघा घोढ़ैकाध्यं वा।

(देध-एकध्यं।१॥, वा।१।)।

एते निपात्यन्ते वा प्रकारे। पत्ते दिधा त्रिधा षड्धा एकधा ।

४६०। सङ्ख्याया ऋवयवे तयट्।

(सङ्ग्रायाः ५।, श्रवयवे ७।, तयट् ।१।) ।

चतुरवयवं चतुष्टयं। §

* दयो: पूर्णः, चयाणां पूरणः, चतुर्णां पूरणः, इति वाक्येषु क्रमेण एते निपात्या: । तुर्थ्य दूर्व्यत्र (२२८) तद्वितयकारवर्जनात् न दीर्घः । पाणिनिः ५।२।५४,५५; तर्थतरीयेत्यत्र ''चत्रण्ड्यतावायचरलीपय'' इति वार्तिकच ।

† सक्षायाः इत्यनेन (१०१) सक्षातुल्यानामिष ग्रहणं, तेन सक्षावाचकीयः उत्यत्वहृगणियय धाच् स्थान् प्रकारे। चकारीऽत्ययार्थः। प्रकारी भेदनादृश्चे इत्यन्तः। चतुःप्रकारिनित चतारः प्रकारा यस तन्। एवं कतिधा इत्यादि। सर्व्विक्षभक्तयें एवायं प्रत्ययः, तेन चतुःप्रकारान् भुङ्को, चतुःप्रकारैः भुङ्को इत्यादौ चतुः भुङ्को इति। पाणिनिः ५।३।४२। चिपचि (५।४।२०) इति पाणिनिम्वेण वहीः क्रियाभ्यावृत्तिगणिने वर्षमानान् स्वाये धाप्रत्ययो वा स्थान् ; यथा, वहुधा दिवसस्य भुङ्को, वहुवारानित्यर्थः। चतपव वान्रार्थेऽपि धा इति जीमराः। यथा, तिह्नतपरिभिष्टे "वहीरविष्रकर्षे धा वा" इति स्वकृता गीयोचन्द्रेण "वहुण्यन्दाद्विप्रकर्षे वारे वाच्ये धा वा स्थान्" इति वित्तिस्विता।

‡ दिप्रकारं, विश्वकारं, षट्प्रकारं, एकप्रकारिमिति यथालमं वाक्यानि । षड्षेति (१५५) डे क्वते, दान्तटवर्गपरत्वात् न (४०) घस्र ढ:। पाणिनि: ५।३।४४,४५,४६; बोढेल्यव ''धासु वा'' इति वानिकस्य ।

§ पुन: सङ्गायदणं डत्यतुवहुगणानामप्राप्तायं । चवयववत्तः सङ्गायाः तयट् स्वात्,

४६१ | द्विनेवीयट् | (विने: प्रा, ना ।१।, प्रयट् ।१।)।

द्यं दितयं, त्रयं त्रितयं। *

४६२। तरतमौ दिबह्रनामेकोत्कर्षे।

(तर-समी १॥, दि-वहनां ६॥, एकोत्कर्षे ७।)।

इयोरेकस्यातियये तरी बह्ननां तमः स्यात्।

अयमनयोरतिययेन विदान् विदत्तरः, अयमेषामतिशयेन

विदान् विदत्तमः। ग्रुभतरा ग्रुभतमा। गृ

8६३। रूपकाल्पे चेबूप् खंवा वित्तु पुंवचा।

(रूप-कर्ल्य २०), चारा, द्वैप् ऊप्ारा, खंरा, वा ।शा, त्रित् ।शा, तु ।शा, पुंतत् ।शा, चारा)।

ट इत्। इयीर्विभाषयीर्भध्ये विधिर्नित्यः। चलारीऽत्रयवा यस्य तत् (कुलं) चत्रवयवं इति वाक्ये चतुष्टयं, (१०२,६५,४३८,४७)। स्त्रिया चतुष्टयो। पाणिनिः प्राराधरा

^{*} द्दी च त्रयस्य तत् तस्त्रात् दित्रेः । भाग्यां अथ्य् स्यादा भावयते । दावयतं त्राययतं द्दात वाक्यदयं, दिः वि-सन्दाभ्यां अथ्य्, (२५०) द्रकार-लीपः । पत्ते पूर्वेण तथ्यः । स्त्रियां दयौ, वयौ । पाणिनिः ५।२।४३ ।

[†] तरय तमय तो। दौ च वहवय दिवहवसीषां, (११३) निर्दारणे षष्ठी। दिवहवािमित वहववनानलेऽपि प्रव्यानाः पूर्वेलिङा एव। विद्यारा कर्नो छेयः। उत्कर्षांऽतिययः। एवन उत्कर्षार्थ-प्रत्ययानाः पूर्वेलिङा एव। विद्यारा उत्कर्षां गयते, (१८३) टङ्, (६४) टस्य त। द्रथमनयांत्तिथयेन यथा
यथत्ता, पासामतिथयेन ग्रथा ग्रथतमा, (१२०) पंवदभावः। एवं प्रतिथयेन साधा
साधतरा द्रवादि। पव द्रष्टव्यम्—स्वे उत्कर्षथस्य प्रयुक्य वृत्तौ प्रतिथयवस्यः प्रयुक्तः।
प्रस्थायमित्रिषयः—विद्यतः दिवत्तमः दिवन् मूर्खतरः मूर्खतमः द्रत्यपि भवति।
विद्यत्रभावे एव तरत्भी, परन् प्रयुक्य प्रतिथयेष्ठिप। गुणानासुन्कष्टापक्रष्टवेऽपि
तदितथ्य एव तरतमप्रयोजकः। प्रतिथय प्रतिथयेष्ठ श्रीमता गोथीष्ठिष्य
"दिवह्म्थीऽस्थ्यें तरत्भी'' दित मृत्र विश्वस्य "प्रतिथयस्य समानद्रपपित्र एव भवति"
दित जन्ना। पाणिनः प्रशिष्ठ,प्र०।

चकारात् तर-तम-रूप-कल्पेषु ईवन्तमूबन्तच स्वं स्थादा छट-दित्तु पुंवच । स्तितरा स्तीतरा, वामोक्तरा वामोक्तरा। विदुषितरा विदुषीतरा विदत्तरा, सतितरा सतीतरा सत्तरा

४६४। त्यादेश क्ष्मः। (बादेः प्रा, च । रा, क्षः रा)। सिख्यादेशीत्कर्षे क्ष्मः स्वात्। पटुक्षः, पचितिक्षं। प

४६५ । किमेळाचाद्रं चतरां चतमां।

(किम्-ए-व्यात् ५ौ, च ।१।, श्रद्रव्ये ७।, चतगं-चतमां ।१॥)।

किम एदन्तात् व्यात् त्याद्यन्ताच दिबहनामेकोत्कर्षे चतरां चतमां स्तः नतु द्रव्ये । किन्तरां प्राह्णितरां उच्चेस्तरां, पचिति-तरां। एवं चतमां। द्रव्ये तु उच्चेस्तरस्तरः। ॥

[ः] रुपया कल्पय रुपकल्पं तिमान्। ईप् च जप् च देवप्। उय स्था ह, ह इत यस्य वित्। द्रैयन्तं जवन्तच पटं इतस्य वा स्थात् तरतमरूपकल्पेष् परेषु, उकारित् स्वतारेनु पुंचच वा इत्यर्थः। (३२०) पुंवतस्त्रक्तेत्यनेन नित्ये प्राप्ते अपनेन विकल्प-विधानं। इयमनयोरतिव्ययेन स्त्री, इयमनयोरतिव्ययेन वामीरूः, इति वाक्यदयं। स्वस्यव स्त्रियाः सीन्दर्यात उत्कृषीं गस्यते। अपनेन वा इत्यः। विद्धातोः शव् (१९०३) तस्य स्थाने कसु प्रत्यये, (२५०) ईपि, (२१८) वस्य उः विद्धी इति, ततः इयमनयोरतिव्ययेन विद्यी, एवं अस धातोः (१९००) अव्हमत्यये ईपि सती, ततः इयमनयोरतिव्ययेन सभी इति तरप्रत्यये, अनेन वा इस्वः, पचे पुंचच।पाणिनः इ। १। इ। १। १॥

⁺ येन विधित्तार्त्तास्थिति न्यायात् त्यादेः त्यायनात् चनागत् लिङाम ६पः स्थात्। भव एकप्रस्थयस्य भर्यद्येन कमान्यामभवात् किवलम् छत्कवे द्रस्थेव भनुवर्त्तते। भतिश्रयेन पटुः पट्डपः, भतिश्रयेन पट्ढे पट्डपः, (१२०) प्रवहावः। भतिश्रयेन पत्ति पचिति पचिति ह्यं, श्रव कियायाः चत्त्वषः। एवं भतिश्रयेन पचिति ह्यं द्रत्यादिष् कर्नवैचनानुसः रेण तिवादयः प्रयुज्यन्ते, परन्तु कियायाः पुंत्ताव्यभावेन रूपान-क्रिया-पट्य निङ्गिण्याभावे सःमान्यतान्नपुंत्रकं, एवं क्रियायाः सङ्ग्राभावेन च प्रयमीप-स्थितमेकवचनमेव। पाणिनः प्रश्वाहर् ; १।१।३००।

[‡] किम्च एयः व्यञ्ज किमेव्यं तस्नात् । न द्रव्यमद्रव्यं तस्निन् । चतरांच चतमां चतो । मस्टूकगत्या दिवङ्गामेकोत्कर्षे इति भनुक्तंते । चक्कारात् त्यायनायः।

४**६६। गुगादे** छेयसू।

(गुणात् ५।, वा ।१।, इष्ठ-ईयम् १॥)।

गुणवाचिनो दिवहनामेकोलर्षे क्रमादिष्ठेयस् ईयस्विष्ठी वा स्तः।

४६७। जीमंश्च डिन्नैकाच:।

(जि-इमन् ।१।, च ।१।, डित् ।१।, नैकाच: ५।)।

जि-रिमन् इष्ठ ईयसुष अनेकाची लीः परी डित् स्थात्। स्रविष्ठः, स्वीयान्। पं

किन्तु चानुक्रष्टं नीत्तरच इति न्यायात् व्यायात् विव्यय्ते जीनक्षयं चतरां, वह्ननामेकीत्क्षयं चतमानिति कमः। चकारित् प्रव्ययायं। प्रव किमादीनां मध्ये ये गुणादि-वाचिनी द्रव्यवाचिनय तेथ्यो गुणादी वाच्ये एती प्रत्ययी कः, द्रव्यवाच्ये तु न स इत्ययः। इदमनभीरतिश्ययेन किम् किन्तरां, किम्श्रव्योऽच क्रिस्तायं।। इथीरतिश्ययेन प्राप्ते प्रत्ययविधानमान्यात् स्वप्तमीविभक्तेरच्वक् । प्रयमनयीरितश्येन प्रचेत प्रत्ययविधानमान्यात् स्वप्तमीविभक्तेरच्वक् । प्रयमनयीरितश्येन पचति प्रतितरां, प्रच पचनिक्षयाया चत्वक्षः। चक्षेसर इति, यद्याय द्रव्ये (जाती च) प्रकर्षाभावकच्यापि गुणाकयाप्रकर्षे। यदा द्रव्ये प्रारोध्यते तदैवायं प्रतिविधः, पूर्वेष (४६२) तरतमाविति। एवमेव गीभीचन्द्रचित्वतपरिश्रिष्टे—"नाति-द्रव्ययी: प्रक्षवाभावात् गीतरी डित्यतम इति न भवित। यदाचापि क्रियाग्रयप्रकर्षी विवन्यते तदा तरत्तमाथ्यां भवितव्यमेव।" पाषिनिः १११।२२; ५।४।११।

- * गुणवारिन इति मुणवहाचिन एव यहणं, नतु गुणमाचवाचिनः, तेन ग्रुक्तीयान् घटः इति स्थान्, नतु घटस्य ग्रुक्तीयानिति । चत्रप्त ''गुणवचनेभ्यो मतुषी लुगिष्टः'' इति भाष्यलिखनम् । ''ग्रुक्तोगुणीऽस्थासौति ग्रुक्तः पटः'' सिज्ञान्तकौतुदी । विवद्ग-नामेक्तोत्कार्षे इति चतुवर्त्तते । यद्यपि पाषिन्यादित्याकरणेषु (पाणिनिः ५।३।५५, ५७,५८) विवद्गनामित्यनेन द्यस्विष्ठयोः कमी हस्यते, तथापि, वीपर्वेन कमविपरीत-प्रयोगद्र्यनान्, इष्टेयस् द्रेयस्विष्ठो वास्त इति वत्ती कमाभावः कथितः।
- † ञिष इसन्चतत् ञीसन्। चकारादिष्ठेयस्च । माला एकोऽस्यस्य स नैकाच् तस्रात्। इसन्साइचर्यात् जिरच सेः पर एव, तेन जागरवतीत्य।दीन मसक्षः। चयननयीरेयां वाचितिस्रवेन् लघुः समिष्ठः, इष्टे, चनेन तस्य खिडाइने,

8६८ । लुङ्मट्वट्विनां । (लुक् ११।,मत्-वत् िकां (॥)।

मतिष्ठ:। मेधिष्ठ:। *

8६१ हन् लोषः। (हन् ११), लोषः १।)। करिष्ठः । 🌵

8%। वाढ़ान्तिक स्थूल दूर युव चिप्र चुद्र प्रिय स्थिर स्फिरोक गुक् बज्जल त्यप्र दीर्घ ह्रस्व इड इन्दारका:—साध नेद स्थव दव यव चेप चोद प्र स्थ स्फा वर गर बंह नप द्राघ ह्रस वर्ष इन्दा:।

(वाद्र-- इन्दारका: १॥, साध--- इन्दा: १॥)।

एषां खाने क्रमादेते खुः अग्रादिषु।

साधिष्ठः नेदिष्ठः स्थविष्ठः द्विष्ठः यविष्ठः चीदिष्ठः चीदिष्ठः

⁽१२६) टिजीप:। एवं लघीयानिति वा। पचे लघुतरः लघुतम इति। पाणिनिः इ।॥११५५।

मध वस विन्ष तेवां। प्रधेवस्तत् विभन्ने विषयाम इति न्यायात् लगादेः
समस्यन्तवेनानुवितः। तेन — जि इसन् इष्ट प्रेयस् एषु परेषु मत्-वत्-विनां खुक्
स्थात्। प्रतिस्थेन मतिमान् मितष्ठः, प्रभेन मतीख्रीका, डिस्थात् टि-खोपः। प्रतिस्थिन सेधावान् मेधावौ वा इति वाकादये वतु-विशेख्रीक डिस्थान् टिखोपे सेधिष्ठस्ति। एवं मतीयसी सेधीयसीव्यादि । पाषिनिः ५ ११६५ ।

[†] यन् लीचः स्थात् आगिदिषु । अतिश्येन कर्ता करिष्ठः, अन व्यो लीपे, त्यलीपे त्यलचणनिति न्यायात्, (५४२) गुणे एकाच्लात् न जिवहातः । एवं करीयान् । कर्त्तभावः करिमा। कर्त्तारमाचि कारयति, अन व्यो लीपे, तत्वन्यगुपस्य निव्ती, औ परे पुनः (५००) वृद्धः । पाणिनिः ६। ४। १५४ ।

प्रेष्ठ: खोष्ठः स्केष्ठः वरिष्ठः गरिष्ठः वंश्विष्ठः वरिष्ठः द्राविष्ठः इसिष्ठः वर्षिष्ठः वस्टिष्ठः । क्ष

४७१। प्रशस्यः यः। (प्रमस्यः रा, मः रा)।

श्रेष्ठ:। 🕆

४७२। ज्यो दृद्धययस्याः।

(ज्य: १।, इंड: १।, च ।१।, ई्यस्वी ।१।, मा: १।) ।

हतः प्रयस्यस ज्यादी ज्यः स्थात्, तस्मात्रियसीरी त्राः स्थात्। ज्येष्ठः ज्यायान्। क

वाट्य अन्तिक्य इत्यादि, साधय नेटयेत्यादि च दत्तः। स्किरी वहर्यः, छक्र्यः इ।थं:, त्रप्रोतीति त्रप्र: भौणादिकारिफ:। इन्दारकी देवी सुख्यी वा। क्षमी यया---च न्ति का युवन चिप्र-द्रए य व चेप चीट स्यव टव साध टीर्घ त्र प्र प्रख वड बन्दारक बहल स्फिर लक गर द्राघ वर्ष ब्रन्ट 示明 गर ब ह चप वर ₩ एषां मध्ये ये गुणवाचका न भवन्ति तेथ्याऽपि इ.इ.।दथी भवन्ति, इ.झादिषु परेषु चादेशविधान-सामर्थात । अधमनधीरेवां वा चितिष्रधन वादः साधिष्ठः, एवं सब्बंब प्रथमान्तेन बाक्यं। इष्ठप्रत्यये चनेन साधादि-चार्दश्चे (४६०) जिल्ल (१२६) टिखीप:। प्रेष्ठ: स्थेष्ठ: स्फ्रेष्ठ: एतेषु एकाच्लात् न डिक्तं। एकाच-४क्षेनसामर्थादेव (२५८) यथोरिति न चकारलोप:। राभतकंवागीशसुप्रस्थ स्कान् विना सर्वे इसना देशा: एकाच्लात् ञ्रादीनांन डिच्लमिति व्दति । एतन्त्रतद्यः पाणिनिसम्बतम्, थर् गर् बंद्धि वर्षि द्राचि चयु इत्थादि-इसन्तादेशप्रयोगात्। पाणिनि: ५।३।६२,६।४।१५६, 1 649

भूप्रयस्यः यः स्थात् ज्यादी । चयमनधीरेषां वाचितवयेन प्रवस्यः श्रेष्ठः । एवं चैत्रान् । प्रवस्यस्य भावः चेनाः । पाचिनिः ५।३।६० ।

[‡] द्रैयभीरी द्रैयस्त्री द्रति जुप्तप्रधमेकम् । चयमनयीरेवां वा चित्रधिन इद्घ: प्रथस्यो का ज्येष्ठः । एवं ज्यायान्, चच ज्यादेशात् परस्य द्रैयशीरीकारस्य चाः । पूर्वेण (४००) वर्षिष्ठः वर्षीयानिति च भवति । पाणिनिः प्रशिद्र,६२ ।

४७३ । पृथु **चढु दाग सम दढ परि**ष्टढ्साई:।

(प्रयु-परिवदस्य ६।, ऋत्।१।, रः १।)।

एषासकारस्य भगदी रः स्थात्। प्रशिष्ठः। अ

808 । युवाल्पौ'कन् वा l

(युवाल्पी १॥, कन् ।१।, का।१।) ।

किनष्ठ:, यविष्ठ: श्रत्यिष्ठ:। एवमीयसु:। 🌣

४७५। गुणादिमन् भावे।

(गुषात् प्रा, इसन् ।१।, सावे अ)।

गुणवाचिन इमन् स्थात् भावे। लिघमा । 🕸

८७६। भूयोभूमभूयिष्ठा:।

(भूयस-भूमन्-भूविष्ठा: १॥)।

अप्रयुच सटुकेल्यादि इन्हे तस्य । भयमनयोरिषां वा भतिमयेन पृथुः प्रथिष्ठः ।
 एवं सदिष्ठः क्षिष्ठः अशिष्ठः द्रदिष्ठः परित्रदिष्ठः, प्रथीयान्, प्रथिमा इत्यादि च ।
 पाचिनिः ६१४।१६१ ।

[†] युवा चल्य कन् स्वाहा अप्रादी। चयमनयोरियां वा चित्रध्येन युवा चल्यो वा कनिष्ठ: इति युवाल्ययोददाइरणं, पचे युवन्श्रन्ट्स्य (४००) यविष्ठ:, चल्यश्रन्द्स्य चल्यिष्ठ:। एवं कनीयान्, पचे यवीयान् चल्योयान्। पाणिनिः ५।१।६४।

[‡] गुणवाचिन इति गुणवदाचिन इत्यथे:। तेन कपस्य भावः कपत्वं, रसस्य भावः रसत्विमित्यादि, न तु कपिमा रसिमा इत्यादि । यिक्तमा कालिमा नौलिमा इत्यादि । यिक्तमा कालिमा नौलिमा इत्यादि तृ ग्रक्तादिगुणवती घटाईरेव धर्मः। लघीभावः, लघ्या भावः, लघ्या भावः, लघ्या भावः इति वाक्यवयेऽपि लघिमा, (२२०) पृंवद्वावः, (४६०) जिल्लं, (१२६) टिलीपच । इमन्-प्रत्ययानःः पृंलिङ्गएव चाभिधानात्, कीवलं प्रियस्य भावः प्रेमा प्रेम इति पृंणिङ्गः क्रीविलङ्गयः। प्रमानिः प्रारीश्ररः।

बही-रीयस्त्रिमितशासस्य क्रमादेते निपालकी । *

४७७। त्यादेश्चोने कल्पदेखदेशीयाः।

(त्यादे: ४।, च ११।, चीने ७।, कल्प-देखा-देशीया: १॥)।

नेस्याचन्ताच ईषदूनेऽर्धे एते स्युः ।

र्देषदूनी विद्वान्—विद्वलास्यः विद्वदेश्यः विद्वदेशीयः । तार्किक-देशीया । पचतिकरूपं । १'

४७८। लेवेज्ञ: प्राक्। (वे: प्रा, वह: १४, माक्।११)।

ईषटूनः पटुः बहुपटुः । 🕸

89६ | पाशः कुत्सायां । (पात्रः १।, कुत्मायां १।)।

कुत्सिती भिषक् भिषक्पायः । §

क चित्रक्षयेन बहुरिति वहुक्रव्यादीयसुप्रत्यये भूयः, इष्ठप्रत्यये भूयिष्ठः । वहीर्भाव-इति इसनप्रत्यये भूमा इति । पाणिनिः ६।॥१९५० १५०।

[†] ति चादियंस्य स त्यादिसस्यान्। चा (ईषत्) जनः चीनसियान्, (२६) चनारलीपः। कत्यच देशस्य देशीयस्य ते। विदन्तत्य इति (१८३) विरामे परे दङ्। एवं विदद्देश्यः विद्वदेशीयः। एषां पूर्व्यजिङ्गतैव। ईषद्ना दीर्घा दीर्घनत्याः दीर्घदेशीया, एषु (१२७) ससन्तत्रादिलात् पृंवहावः। ईषद्ना तार्किकी तार्किकदेशीया, (३५०) पृंवहावः। ईषद्नं यद्या स्थानस्या पचित पचितिकत्यं, एवं पचतःकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचितःकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं, पचित्रकत्यं

[‡] ली: पुनक्पादानं त्यादिनिहस्त्रथे । स्यायनात् वहः स्वात्, सच वहः परच लातः सन् पूर्वः स्वादित्यथे: । वहपटुरिति विभक्तेण्यि कते, पुनर्खिङ्गसंज्ञायां विभिन्तिः । हेवद्ना विद्वी वहविद्वी, भव वहप्रत्ययस्य मसनतरादिलेऽपि परस्याधिलाभावात् न (६२०) पंचत्। पाणिनिः ५।३।६८ । भव द्रष्टव्यम्—वीधिलङ्गिवरामनते वहपत्ययो वस्पेवकारादिः, तर्कवाचस्पतिमते तु सन्तःस्थादिः ; प्रत्ययत्नेन सनःस्थादिरेवाक विश्वितः । ४४५ स्वटीका द्रष्टस्या।

[§] स्थायनात् पात्रः स्थात् कृत्सायां । कृत्सिता विद्वी विदत्पात्रा, असनतरा-दिलात् पुंबद्वावः । पाणिनिः ५।३।४०।

४८०। चरट् भूतपूर्वे। (वस्ट् ।११, स्तव्वे अ) । भूतपूर्वेऽधे वरट् स्थात्। भृतपूर्व बाक्यः प्राव्यवरः। *
४८१। प्या कृष्यस्य। (व्याः ४१, ववः ११, व ।११) ।

यम्तात् रूपः चरट् च स्यात् भूतपूर्वे धे । क्षणस्य भूतपूर्वी गीः —क्षणरूपः कणचरः । ग्रभारूपः ग्रभचरः । १

४८२। बह्वल्यार्थात् काचग्रम् वा।

(बह्नत्यार्थात् ५।, कात् ५।, चग्रम् ।१।, वा ।१।) 🕨

बह्नयीदलार्थाच कात् परसमस् स्यादा । बहुमी देष्टि भूरिमः, ऋलमः स्तोकमः । ‡

^{*} भूतपूर्वः प्रागभूतः, तिकावधे स्थायनात् चरट् स्थात्, ट ईवधः । भूतपूर्वः चाद्यः (नतु सम्प्रति वर्षते), भूतपूर्वा चाका चाकाचरी, भूतपूर्वा विदुषौ विद्वरी, प्रसन्तरादिलात् (३२०) पंवहावः, टिन्तात् (२५०) ईव्। पूर्वग्रहणात् यव वर्तमानता प्रतीयत तव न स्थान्, यथा दंधरी भूत इति । पाणिनिः ४।३।५३।

[†] ष्यत्तात् षष्ठात्तात्। यसायाः (गीः) भूतपूर्वी गौः ग्रभाष्यः, भव (३२०) ष्रयवर्जनात् न पुंबद्वादः, यसचरः भव पुंबत् स्थादेव । साणिनिः ५।३।५४।

[‡] वहुष भाष्य बहुत्यों, तो भया यस स तसात, जात् रत्यस्य विशेषणं। चकारित् भव्ययार्थम्। प्रयक्ष योगात् भृतपूर्वे रत्यस्य, प्या इत्यस्य च नानुवृत्तः। बहुश रित सहन् वहीः वहृति वा देहीत्ययं कर्यातारकात् चमन्। भृरिशः हित भृरि भव्ययं बहुर्थः। एवं सङ्गः पूर्यमः वृत्त्यः रत्यादि। बहुभिनेतेः पश्यति, बहुभ्यो देहि, वहुप् तौर्येषु स्नातः रत्यादौ बहुतः। भन्तं देहि भव्यशः, एवं सीक्षणः। क्षमम इति त वक्षव्यं। कात् किं, बहुनां स्वामोत्यव न स्थान्। पाणिनः ५।४।४२। भव पाणिनित्वे स्वार्ये सस् स्थान्, परस्वे च वौद्यायाम्। भश्यो वारायेम् टीकाल्रहः प्रयुक्तते, यणाः, "क्षमाचरणे सहायतां बहुतः सीन्य गतस्त्रमावयोः" इति कुसारे वहुत्रा वहुत्राति मिल्लाय्यास्य।नम्। भिष्टकाव्ये "भनेकश्चरिते मप्यानग्वतः" इत्यव भनेक्ष्य इति पदे जयमङ्गलादयोऽप्येवम्।

४८३। सङ्ख्येकार्थात् वीश्वायां।

(सङ्गा-एकार्थात् ५।, वीसायां ७।)।

कति कति कतिगः गणगः यावच्छः तावच्छः, दिगः, पादगः। *

8८8। चक्रत्वस् वरि । (पक्रत्वस् ।१।, वार श)।

कति वारान् भुङ्को कतिक लः, गणक लः पञ्च कलः । 🕆

४८५। सुच् चतुर्दिने:।

(सुच् ।१।, चतुर-दि-वे: ५।) ।

एभ्यः सुच् स्थात् वारे। चतुः दिः तिः। ह

४८६ । सयर् तरूपे । (मयर् ११, तरूपे, ७)।

[•] एकः एकशागः, एकः प्रधीयस्य स एकार्थः, सङ्गाच एकार्यश्व समाद्याति स्वात्। सङ्गावाचकः कारकात् एकशागार्थाच कारकात् च सस् स्थात् यी सार्था। कित कित दिहि किति सः. एवं गणं गणं दिहि गणमः, यावलं यावलं यावच्छः, तावलं ताव

[†] सङ्गाभितस्य वारोऽधो न सम्भवतीत्याङ कतिवारानिति । विचादव्यथे। एवं गणकत्यः। (१०१) सङ्गावच्यं। पञ्च वारान् पञ्चकत्यः, एवं दशकृत्व द्रत्यादि । (१४६) विभक्तेर्श्विक, (१८५) न दौर्षः। पाणिनिः ५।॥१७।

[‡] चतुस विश्व विश्व तत्तकात, पुंक्तं स्वत्वत् । सुचा चत्नत्वस् वाध्यते । स्व-चकार चत्रारवायं:, चकारोऽव्ययार्थः । वारः क्रियास्यावित्तगणनम् । चतुरिति, चतुरी वारान् इत्वर्ये सुच् (१०२) रस्य विस्तंः, (६०) विसर्गस्य सः, (२१३) सस्य चीपः, ततः सुचः सस्य विस्तंः । एवं ची वारी दिः, चीन् वारान् विः । पाचिनिः प्रामाहितः

तदालानेऽर्धे मयट्स्यात्। विख्यालाकं विश्वामयं। वाद्ययं। अ

৪८७। प्रकारे जातीय:। (पकारे अ, नातीय: १।)। तार्विकजातीया। প

४८८। वित्ते चुञ्जुचयौ।

(वित्ते ७।, चुघु चयौ १॥)।

विद्याचुन्नः विद्याचणः। 🕸

४८१ निर्हत्ते भावादिम: I

(निर्वृत्ते था, भावात् ५।, इ.स. १।)।

पाकिम:। §

§ भावविद्यित तदनात् इ.स. स्थात् निर्वृत्ते (तेन निष्यक्ते) पर्वे। पाक्तेन निष्यः पाक्तिमः, (२५०) प्रकारलीपः। प्रवनिति भाववाची (११२४) घज्, पाकः। ''वैर्मस्

^{*} तदेव इयं घाका यस्य तत् तद्र्यं तिक्षान्। प्रथम्योगात् किमित नानवर्षते, प्रकारणवात् स्यायन्तादेव। विष्याक्षकिति विष्यास्का यस्य तत् विष्यास्य जगत्, एवं वागात्मकं वाद्ययं प्रास्तं। "एकाची नित्यम्" इति वार्तिकेन वाद्ययमिति। इरिक्शाक्षकं हिर्क्षयमिति निपातनात् यलीपः। टिच्लादोपि तेजीमयी। पाणिनौ वहुम्याऽयेश्यो मयट् इस्यते। यथा, षागतार्थे — ४।३।८२; विकारार्थे प्रवयवार्थे च — ४।३।१४६,१४८,१४८; इदमर्थे गीमच्दात् पुरोषे — ४।३।१४५; विकारार्थे — ४।३।१४६,१४८; प्रकारववने स्वार्थे — ५।४।२१,२२; विकारार्थे निपातः — ६।४।१९०४।

⁺ स्थायन्तात् जातीयः स्थात् प्रकारि। प्रकारशस्दः 'सादश्यवाची पुंलिकः, तयुक्रार्थे इत्थर्थः। "सामान्यस्य भेदकी विशेषः प्रकारः" इति पाणिनिटीका। तार्किकाः
प्रकारः तार्किकातीया, (१५०) पृंबहावः, तार्किकतृत्या स्त्रीत्यश्चः। एवं पटुजातीयो
क्षत्रः, सदुजातीयं फलं। किञ्च विद्याः प्रकारः विद्योजातीया, चन्न नातीयस्य
प्रसन्तरादिभिन्नत्वात् (१९०) न पृंबहावः। पाणिनः ५।१।६६।

[‡] स्याद्यन्तात् (''तृतीयान्तात्" इति तुपाणिनिः) चुसु-चणी स्वातां विश्वे (तेन स्थाते) पर्वे । चुसुः पञ्चमस्वरहयवान्, चणी मूहंन्यवान् । विद्यया स्थातः इति वान्ते । पाणिनिः ५।२।२६ ।

८८०। पश्रुभ्यः स्थानिद्वषट्को गोष्ठगोयुग-घडुगवं।

(पशभ्य: पू॥, स्थान दि घटके था, गोष्ठ गीयुग वङ्गवं १।)।

गीगोष्ठं गोगोयुगं गोषड्गवं। *़

४८१। गुग्डोचभ्योऽपकर्षे रष्टरौ_।

(ग्रुष्डी कभ्य: ५॥. प्रमामें ०।, र-प्टरी १॥)।

त्रपञ्चा ग्रण्डा ग्रण्डारः ग्रमीरः कुटीरः, उचतरी । 🕆

४८२। पौलुतिलोमाकर्णादेः कुणतैलकट-जाइं पाकसेइरजोम्ले।

(पीलु--कर्षादे: प्रा, कृष - जाहं रा, पाक-- सूर्ले श)।

पीलुकुणः, तिलतैलं, उमाकटः, कर्णजाहं। श

- स्थानच ती च पट्कच तिकान्। गोष्ठच गोग्रगच वङ्गवच तत्। पग्रवाचकिस्यः स्थाने वाच्चे गोष्ठः, दिक्तमित्यर्थे गोग्रगः, षट्किमित्यर्थे वङ्गवः स्थान्। गवां स्थानं गोगीष्ठं, एवं मिक्वगीष्ठं। गीर्वकं गीगीग्रगं, एवं इत्तिणगोग्रगं। गवां षट्कं गीपङ्गकं, एवं इत्तिणगोग्रगं। एवां कौवत्वं स्वभावात्। "गीष्ठवादयः स्थानादिष्ठं पग्रनानस्यः" "दिल्वे गोग्रच्" "पट्ले पड्नवच्" दित वार्तिकवयम्।
- † ग्रष्डाय उत्ताख्य ते तेथः । उभयत यहुवचनं गषायं । रय एरयती । ग्रष्डादेः रः, उचादेः एरः स्थात् चयक्षेंऽर्षे (इस्तते, तनुते इति पाणिनिः) । ग्रष्डा मिद्रास्थानं । चपत्रथा ग्रष्डा ग्रष्डारः, एवं चत्रा असी अभीरः, चन्या कुटी कुटीरः । स्वयंत्र पुंस्तमिधानात् । चपक्रष्टा (गत्यीवना) उचा उचत्री, एवं चपक्रष्टा (वाखिका) वत्तसा वत्सतौ इत्यादि । पाणिनिः ५।३।८८,८१।
- ‡ पीलुव तिलय खमाच कर्णय ते चादशीयस तकात्। कृणय तैलय कट्य जास्य तत्। पाक्षय सेस्य रजय मूलच तत्तिलः। पीलादेः कृणः पाके, तिलादेलेलः

नित्यम्'' इति पाणिनिस्त्रे (४।४।२०) "एवं तर्हि भाव इति प्रक्रत्य इमन्दक्तव्यः'' इति वार्त्तिकस्य ।

८८३। सेचे शाकटशाकिनौ।

(चेत्रे ७), शाकट-शाकिनी १॥)।

द्रचुगाकटं द्रचुगाकिनं। *

८८४। इतोऽस्य जाते।

(इत: १।, अस्य ६।, जाते ७।)।

फलितं। 🅆

स्रेहे, उमादे: कटो रजसि, कर्णाटेर्जाही मूले स्थादिवर्धः। पौक्षीः पाकः, तिलस्य स्रेहः, जमाया (मिमना) रत्नः कर्णस्य मूलं इति क्रमेण वाक्यानि। कृषकटान-यो: पृंग्लं, तिलत्राहास्पर्याः क्रीवत्वत्राभिधानात्। पाणिनि. ५।२।२४। ''झेहं तैलव्'' "कटच् भक्तर्णं त्रलावृतिकीमास्यो रजस्युपसंख्यानम्" इति वार्त्तिकदयस्र।

* स्वाय्युन्तादेती सं: तस्य चेत्रसित्यर्थे। इची: चेत्रमिति वाक्यं। यद्यपि सामान्येनीत्रं, तथापि इचीरंदिति केचित्, इचुसूलकान्यामिति परं, ''संभवने चेत्र पाक्षटश्रन्द् श्रत्ययो वक्तव्यः'' ''शाकिनशब्द् प्रत्ययोवक्तव्यः'' इति वार्त्तिकदृष्ठे तु न तथा नियमः ; य्या, इचुशाक्षटं, सूलशाकटं, जीरशाकटं, वासुशाकटमित्यादि। एवं इचुशाकिनमित्यादि।

† स्थायनादितः स्थान् ऋस्य जातमित्यर्थे। फलमस्य नातं फलितं वनं, फलिती इ.चः, फलिता लता। फलाव्देरैवायं विधिः। फलादिन्तु (पाणिनिमते तारकादिः, कौमरसर्वेऽपितव्या)—

फल पृथाकुरपन्नय गब्बे कार्यक मृत्र सर कालीलं। इर्ष कृत्इल किसलय गसं इसका कच्चक सुख सीमलं। तन्द्रा तिलकं मैदल रोगं कज्जल कृद्धल कारक देगं। निद्रा सुद्रा मद गल रोगं कइंग कन्दर कुसुन तरहं। संजा तारक सूच पुरीषं पुलक विचारं त्रण भक्षारं। स्वक पिपासा खजा दीइं निष्कृमण ज्वर दु:ख द्रीइं। मुश्च दीचा वन्नं सूच्कां रण प्रखा द्रमा जुपा:। मुश्जीवाङ्गार रोमाच प्रवाल व्यापि चन्द्रका:। पिछीत्कार्य सुसुचा च खरीत्कार चे सम्भरी।

यतदातिरिका चन्येऽपि गर्भादयः धन्दा सन्ति । बुसुदित-पिपासित-मन्दी न कान्ती सकर्मकलात् । पाणिनिः ५,२।३६।

४२५। चि. क्रथ्यस्ख्रभूततङ्गावेऽखावीर्घा-वव्यस्य।

(कि रा, क्र.मू.चम्म ०॥, चमूततहाव ०।, चन्सौ र॥, ईवाँ र॥, चयस ६।)। ग्रामूततहावेऽधे क्राम्बस्ताषु परेषु चिः स्थात्, तिसंसावर्ण-स्वयो-दीकार-घोँ स्तः नतु व्यस्य। *

४८६। त्वी वमात्रो लोष:।

(त्वः १।, वसात्रः १।, खीम्यः १।)।

वकारमात्रस्यो लोष्यः स्यात्।

त्रक्षणं कृषां करोति कृषाोकरोति, कष्णीभवति कृष्णीस्यात्।ф

अ तय भूष अम् च ते तेषु । धमूबस्य घनातस्य तद्वेण भाव उत्तपित्तस्ततहादः ।
"प्रागवस्थावतीऽवस्थान्तरेणाभूतस्थाजातस्यानन्तरं तदाक्षमीलाभाऽवस्थान्तरेण नन्य घमृततहादः" इति ति इति तिरिण्टे गीर्योचन्द्रः । काष्ठं भस्य करीति इति तुन भ्रमृततहादः,
किन्तु भभस्य भस्य करीति इत्येव । ("भग्ययकर्तारि" इति पाणिनिः ।) कथातौ
स्थातौ भस्यातौ वा परि भमृततहार्वऽषे स्यायन्तात् विः स्थातः चौ पर्ग प्रकतेरनस्थितथीः भवणं इस्वयीः कमेण ईकार-दीर्घो सः, नत् भव्ययस्य ईकार-दीर्घो, भव्ययात्
विमुल्ययस्य स्वारिय भव्यस्यति षष्ठान निर्देशात् । विष्यत्यस्य इकारियक्ष्यं, चकारित्
भव्ययायः । पाणिनिः ५।४।४०; ६।४।३२।

[†] व चाभी मार्चयति वमातः। वकारमावाविश्वष्टगत्यथी लीष्यः स्वात्। तेन त्रि, (१०२०) विण्, (१०२०) विट्, (१०३२) विच् क्रिप् इति पञ्चानां क्षीपः। ध्रुक्षणं क्षणं करोतीति वाक्यं क्षणः भव्दात् च्रिः ध्रुक्षणं क्षणं करोतीति वाक्यं क्षणः भव्दात् च्रिः ध्रुक्षणं क्षणं करोतीति वाक्यं क्षणः प्रवे क्षणो मवित क्षणो स्थात्। ध्रुक्षणं परं दि स्थादिति क्षणात् स्थाते परं दि स्थादिति क्षणात् स्थाते परं विः स्थादिति क्षणात् स्थापः प्रवेशिक्षणः भवीतिः ध्रुक्षणः स्थावितः प्रवेशिक्षणः स्थापः स्यापः स्थापः स्यापः स्थापः स्थापः स्थापः स्थापः स्थापः स्थापः स्थापः स्थापः स्था

१८७। यङ्ङाको चद्री।

(यङ्ख्य-को ७), च ।१।, ऋत्।१।, री ।१।)।

ऋकारो री स्थात् याङ छे । की ची च। मात्रीकरोति। क

४८८। मनस्र सुर्यतोऽकरकोर हीऽन्तलोपस्रौ।

(सन:--रष्ठ: ६।, श्रनखोप: १।, च्वी ०।)।

मनीकरोति । 🌣

४८८। कार्त् स्रायत्त्रोः सम्पद्यकादौ चसादा।

(कार्त् स्त्रायच्यी: व्या, सम्पद्ध-कादी वा, चसात्।१।, वा ।१।)।

साक को अधीन तो च सम्मदाति कृष्वस्तिषु परेषु च चसात् स्यादा।. कृत्स्रं लवणं जलं सम्मदाते — जलसात् सम्मदाते। राजायत्तं सम्मदाते — राजायत्तं सम्मदाते । कृ

करीति कमीं करीति, प्रजानिनं ज्ञानिनं करीति ज्ञानीकरीति, प्रत्यादी (११८) नस्य लुपि, नजीऽत्यायंत्वात् तदादिविधिनिविधामावे, प्रकारस्त्रयोरोकारचीं स्वातां। प्रव्ययस्य तु प्रत्या त्रया त्रत्वा प्रति वाक्षे त्रयाक्रत्य प्रत्यादी विष्ययान्तस्य (५४८) समासे, (११७६) क्वाची यवादेश:। साचीक्रत प्रति तृ नजा निर्दिष्टमनित्यमिति न्यायात् दौर्घः। पाणिनि: ५।४।५०; ०।४।२६,३२, ''प्रव्ययस्य च्वावौलं नित वाच्यम्'' प्रति वार्षिकस्य।

^{*} भमातरं मातर करीति — मातृगन्दात् चिष्वयये ऋकालस्य री। यङि — चेकी-यते। द्ये की, (८४८) मातेवाचरति मात्रोयते, पितरिनवाचरति (८४०) पिनीयति। पाणिनि: ०।४।२०।

[।] समय चत्रुय चित्रय भव्य रजव रहव तत्त्रस्य। एषाम् भन्तस्य लीप: स्थान ची परे। भमनी सनः करीति सनौकरीति, स-लीपे अकारस्य द्री। एवं चनूकरीति, व-लीपे दौर्यः। चेतीकरीति, अवकरीति, रजीकरीति, रहीकरीति। पाथिनि. ४।॥॥१।

[‡] ज्ञारसं सकलं तस्य भाव: कार्नकां। आयित्तरधीनलं। कार्नकाच चायत्तरः कार्नकायत्ती तयी:। संपदाः संपूर्णका-देवादिक-पदधातुः, सम्पदाय कादिय तत्

पू०० | देये नाच । (देवे व), वाच् ।१।, च ।१।) ।

देयेऽधें त्राच् तसाच स्यात् सम्पद्यादी । देवाय देयं करोति—देवता करोति देवसात् करोति । *

पू०१। नैकाचोऽव्यक्तानुकरणात् डाच् बानितौ दिस्र। (नैकार्पः प्रा, प्रवक्तातुकरणात् प्रा, डाच्।रं।, वा ।रा, प्रनितौ ७।, वि: रा, प्रारा)।

श्रनेकाचोऽव्यक्तानुकरणात् सम्पदादौ डाच् स्यादा, निविती, तस्मिंच दिभीव:। १

प्०२। त लीप्याऽतष्टिस्तितौ हेस्तन्ती वा।

(त ।१।, लीप्य: १।, चतः ६।, टि: १।, तु ।१।, इती ७।, हे: ६।, तु ।१।, घनः १।, वा ।१।)।

तिस्मिन्। सम्पद्ये च इत्यनेनेविष्टसिती पुनः क्रादियहणं प्रच अनुवर्त्तनार्यः, चानुकष्टं क्रोत्तर्य इति न्यायेन अनुवर्त्तननाधात्। वसात्प्रत्ययस्य चकारीऽव्यवार्यः। हत्स्यं खबणं जल कराति जलसात् करोति, एवं जलसात् भवित, जलसात् स्थात्। पर्वे तद्वेष स्थितिः। पाणिनिः ५।४।५२,५३,५४।

इति। येन्द्राधाती: कर्माण वाच्ये यप्रत्यये देशं तिस्रान् चर्थे। चकारोऽव्ययार्थः ।
 देवचा सन्यदाते देवसात् सन्मदाते इति च। सन्यदादीनां परिख्यत्ववेऽपि स्थात्,
 तेन ''सकरोदचिरेवरः चितौ विषदारमः/फलानि सम्यसात्'' इति। पाणिनिः प्राध्यप्र ।

[†] एकोऽच् यस्य स एकाच्, न एकाच् नैकाच् तसात्। प्रव्यको ध्वनात्मक-प्रव्यः. तस्य प्रनुकरणम् प्रव्यकानुकरणं तसात्। न इति प्रनिति तसिन्। इती — तिस्प्रिति डाचि सति प्रव्यस्य डिल्ड्य स्थादित्यर्थः। वाग्रष्ट्स्य व्यवस्थया इती परंऽिक कस्य (इभीवी वाच्यः। पाणिनिः प्राधार्थः, इ।१।८८।

तस्यादन्तस्य त लोय्यो डाचि, इतौतु टिकीयः, देसु अन्तोः लोय्यो वा। *

पटपटाकरंकि। एकाचसु—स्क्किशित। इतौतु पटदिति करोति—पटिति पटत्यटेति पटत्यटिति।

पू०३। तीय सम्ब वीज सङ्घ्यादिगुणात् क्राञ्च कर्षो । (तीय-गणात् था, क्राञ्च था, कर्षा था)।

एभ्यः करोती डाच्स्यात् कृषी। दितीयं कर्षणं करोति दितीयाकरोति सस्वाकरोति, वीजेन सह कर्षणं करोति वीजाकरोति, दिगुणाकरोति । अ

प्०४। समय निष्मुल दुःख ग्रूल सत्यात्— यापन निष्मोष प्रातिकृत्य पाकाशपथे।

(समय-सत्यात् ५।, यापन-- श्र शपद्ये ७।) ।

अ तस्यादलस्थिति तस्य घनेकाफीऽस्यकानुकाग्यस्य, घटनस्य घन-भागानस्य पटत् भागत् इत्यादेशकारी लीखः स्थात् डाभि परं, इतिगृद्धे परं तृ ताहगस्थेव शब्दस्य टिलीखः स्थात्, एवं इती दिर्भृतस्य तस्थेव शब्दस्य चलवर्षा लीखो वा स्थादित्यर्थः। पाणिनिः ६१४/६८।

[†] पटत्शव्दात् डार्चि, घनेन तकारकोषे पटदत्यस्य दिले पटपटाकशीति । अनेन टिलोषे पटिति, स्यानिबच्चात् न (५८) चर्षो जयु । देलु घन्तो वा सीध्यः पटत्पटेति पटतपटदिति । पाणिनिः ६।१।१००।

[‡] तीय: प्रत्यय:, तेन दितीय: हितीयय । सङ्घा चारियेस्य स सङ्घादिः, स चासी गुणयिति सङ्घादिगुणः । तीयय सम्बय वीजञ्च सङ्घादिगुण्य तस्मान । क्राञ्च परे एथ्यां डाच् खात् कर्षणेऽयां । दितीयाकानीति दिवारं चित्रं कर्षतीत्ययः, एवं सम्बर् कर्षण करीति । दो एकार्थां । दिगुणं कर्षणं करीति दिगुणाकारीति, एवं चिगुणा-करीतीत्यादि । पाणिनः प्राप्तपूर,पूर ।

एभ्यः क्रमादेतेष्वर्धेषु डाच्स्यात् क्षित्रि परे। समयाकरोति निष्कुलाकरोति दुःखाकरोति भूलाकरोति सत्याकरोति।

पृ०प् । सपत्रनिष्मत्रात् प्रियसुखात् मट्रभद्रात् पौडानुकुल्यवपने ।

(मपच-निष्पचात प्रा, प्रियसुखात् प्रः, मद्रभद्रात् प्रा, पीडान्कृत्स्वयपने ७।) ।

एभ्यः ज्ञमादितंत्र्ववेषु डाच् स्थात् कृत्रि। सपत्राकरोति निष्यत्रा-करोति सगं। प्रियाकरोति सुखाकरोति। मद्राकरोति भद्राकरोति। ф

अ समयय निष्कुल च दु: खच म्लच सत्यच तमान । यापन च निष्कोष य प्राति-क्ल्यच पाकय अम्रायच तिमान् । समयात् यापने, निष्कुलात् निष्कोषे, दुखात् प्रातिक्ल्ये, स्वात् पाके, सत्यात अम्राययं अर्थं डाच् स्यात् क्रां अपरे । समयाकरोति समयं यापयतौत्ययं: । निष्कुलाकराति, द्रांडिम निष्कोषयतौत्ययं: । अन्तरवयपस्य विष्किरणं निष्कोष: । निष्काषिमद्रार्थे भद्रं निष्कुलं करोति । दुःखाकरोति, मध्रं पौड्यतौत्ययं: अच प्रातिक्ल्यं । स्थाकरोति मां म्रेलन पचतीत्ययं । सत्याकरोति सुनि: सत्यं कथ्यतौत्ययं:, अच न मप्यः । सपये तु सत्यं दित्यं करोति । पाणिनिः प्राष्ठाहरू, इर्ष्, इष्ट्रा

[†] सपत्र निष्यत्राथ्यां पीडायां, वियस्रावाध्यां षातृकुल्ये (चित्ताराधने), सद्रभद्राध्यां वपने (सुष्डने) डाच् स्थात् क्षत्रि । सपत्राकरीति स्थां, व्याधः सपत्रं अरं स्थण्यरीरे प्रवेश्ययतीत्यर्थः ; निष्यत्राकरीति स्थां, स्थण्यरीरात् श्रःसपरपार्थे निष्कृास्यतीत्यर्थः । "सपुङ्गश्यय भपरपार्थे निष्कृास्यतीत्यर्थः । सपुङ्गश्य भपरपार्थे निर्धाननात् निष्यत्रं करीति यश्यः हिन्दीचितः । प्रव्यत्र सप्यत्रे भपरपार्थे निर्धाननात् निष्यत्रं करीति यश्यः । प्रव्यत्रे करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षः) करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षः) करीति प्रावटः, निष्यत्रं (पत्रपृक्षः) करीति यश्यः । स्थायः सप्यायं, प्रव्यत्रावृद्धः करीतीत्यर्थः । सद्र सद्री स्क्ष्यार्थां, सद्रावरीति सास्यं नापितः, सङ्गलपूर्यं वपतीत्यर्थः । पाष्यिनः ५।४.६१,६९,६०, "सद्राचिति वक्षत्र्याः इति वार्त्तिक्षः ।

प्रदे। दन्नमाचद्वयसट् माने।

(दब्ब-माच-इयस्ट् ।१।, माने ७)।

परिमाणार्थे एते खुः।

गजपरिमाणः—गजदन्नः गजमात्रः गजदयसः । 🕸

्पू०७। सङ्ग्राशन्यतो डिन्।

(सङ्गा-- भन्-भतः ५, डिन् ।१।) ।

दगी, तिंगी। १

प्रद। कति यति तति यावत्तावदेतावत-कियदियन्तः।

(कति-- इथन्त: १॥) 1

किं-यत्-तदां डत्यन्तानां यत्-तत्-एतत्-किम्-इदमां वलन्तानां एते क्रमात् निपात्यन्ते माने । 🕸

पूर्र। दशादेडी युते शतादौ।

(दबादी पा, ड: १।, युती वा, बतादी वा) ।

[🌣] दन्नय मात्रय इयसय समाहारे, तस्त्रात् ट। टकारस्य प्रश्लेकीन सम्बन्धः, दम्नट् मापट् दयसट्। परिमाणसिष्ठ ऊर्दपरिमाणं। गत्रः ऊर्दपरिमाणमस्य गत्रपरि-सागः — एयमचें एते प्रत्ययाः । टिस्तादीप्च । पाणिनिः भ्रारा३० ।

[†] ग्रन् च ग्रत् च, प्रन्थत, सङ्गाचासी ग्रन्थत् चेति तस्यात् । ग्रन्थतीः जेव-स्तयोरसम्भवात् तदन्तथीर्बंडणम्। शङ्घावाचकात् भनन्तात् (दभन् चादेः) शत्-चनाइः (श्रित् प्रादेः) डिन्स्यात् परिमाणार्थे, ड इत्। दग्र परिस्थणमस्य दशी, एवं विश्री (सास:), डिन् (१२६) टिलीप:। ''शन्श्रतीर्डिनिर्वक्तम्यः" इति वासिकम्।

[‡] किं परिमाणमेवां कति, (का संख्या परिनाणनेवानिति तुपाचिनिः), ए४ सब्दें वां वाक्यानि । पाणि निः ५।२।७१।

एकाद्यं मतं, विंघं मतं। #

पूर्व। किंयत्तदेकान्यात् दिवह्मनामेकिनिद्वीरे डतरडतमौ।

(नि--श्रवात् ४।, दि व्ह्रना ६॥, एकनिहारि श, उतरंडतभी १॥)। श्रानयोः कतरो वैष्णवः, एषां कतमः ग्रैवः। पं

पूर्र तस् तो:। (तम्।रा, र्कः ६।)।

त्ती: स्थाने तस् स्थात् । कृषातः सर्व्वतः श्रमुतः । 🛊

^{*} दश पादिर्यस स दशदिलस्थात्। पत्र पतदगुणसंविज्ञानवहुन्नीहिणा दम हिला एकादगादीनां ग्रहणं। (भतएव पाणिनी दशानादिख्युक्तम्)। एवं उभयत्र पादिशब्दगीर्श्ववस्थावाविलात् दशदिरिति विष्टिपयंन्तानानेव, भतादाविति अतसहस्र्योर्शेव ग्रहणं। तेन, एकादशादः विष्टपर्यन्तान उः स्थात् गुते (प्रिक्षेके इति पाणिनिः) प्रया, भते सहस्रे च वाच्ये इल्प्यं:। एकादश्रभिग्रंत एकादश्र भतं, (एकादशाधिका प्रस्निन्भते इति पाणिनिः), जिल्लात् (१२६) टिलीपः। एवं विभ्रशी गुतं विश्रं सतं, पत्र (१२६) विभ्रतेसीलीपे, (२५८) भकारलीपः। पाणिनः ५।२।४५,४६।

[†] कथ यथ सच एकथ प्रमाय तत्तमात, दी च वहवय ते तेषां। जातिगुणिकिया-दिभिर्ध्यवष्क्रेदी निर्दारः, एकस्य निर्दार एकनिर्धारः तिवान्। उत्तरय उत्तमय ती। एभ्यो द्योर्ष्यंथे एकस्य, निर्दार्थे उत्तरः, वहनां भध्ये एकस्य निर्दार्थे उत्तमः स्थात्, जिति टिलीपः। चनयीर्ष्येथे कः कतरः, एषां मध्ये कः कतमः। एवं यत्रः यतम हत्यादि। पाणिनिः ५।३।८२,८३,८४।

[‡] प्रथग्योगात् पूर्वात् किमिष नानुवर्तते । सर्व्यवात् जिज्ञात् सर्विविभन्नेः स्थाने तस् पादंत्रः स्थान्, इति सामान्येन उन्नेऽपि शिष्टप्रयोगानुसरिय प्रयोक्तव्यनेव । भत्तत्व "साम्बेविभक्तिकाससिः" इति साम्बे । ज्ञाच इति, क्रच्यिति, क्रच्येति , क्रच्ये इति, क्रच्येति । प्रति इति तसी इति, क्रच्येति । क्रस्ति तसी विभिन्निक्षानं क्राय्ये स्थादेव, तेन (१२१) टेः स्थाने पः, (२०४) दस्याने मः, (२१५) इस्त्रस्ति उत्तर्वा दे । विभक्तिविभवविद्यत्ति स्थान् विभक्तावेत्, तेन वसादे स्थाने तसि क्रवे इति इत्यादे (१२२) गुचादि । स्थान् । एवच्च विभक्तिस्थाने तसाद्यो वे भादेशासदन्तानामन्यवत्तिति प्राचः।

प्रश्। देवादेहीप्तरोस्त्राच्।

(देवादी: ६।, दीश्री: ६॥, वाच् ।१।)।

देवचा वन्दे रमे वा। *

ग्र्१३। स्विन्होस्त्रोऽह्यादेः प्रयाः।

(खिनको: ५।, च: १।, भद्यादे: ५।, प्रा: ६।)।

स्रेवेषोय परस्याः स्यासः स्यात्, नत् दास्मद्युषदः । सर्व्वितम् सर्व्वव, तत्र बहुत्र । १

पूर्ध। सर्वेकात् कासे दा।

(सर्वेकात् ५।, काले ०।, दा ।१)।

सर्विधान् काले सर्वदा । क

(पाचिति: "तिहितयासव्येविभिक्ति:"१।१।१८)।) पाष् याष् भिन्नानानासव्ययतं नासी-स्रोके। पाचिति: ५।१।७,१४।

- * देवादे: परयोधिंतीया-सप्तस्थीसताच् स्थान्। देशंदेशी देवान् वा बन्दे देवचा
 वन्दे। देवे देश्यी: देवेषु वा दभेदेवचारसे। देवादिशेषा—देवी वह: पुनर्सर्वी
 मृत्या: पुरुषय घट्। पाणिनि: शुक्षाध्रश्रश्रक्षः
- † सिय वहत्य तत्त्वात्। सङ्घायं वह्यस्य यहकं। हिरादियं स दादिः न दादिरदादिस्यात्। दादिस (८६) खवादिन समाप्तिपर्थंत रखत आह दिन्यसम्प्रियंत्र स्थाप्त स्थापत स्यापत स्थापत स्
- ्रं स्थलंब एक्स सकात्। काली वर्त्तनानाम्बालामाः परकाः सल्या दा स्थात्। एकस्थित काली एकदाः। याविणिः ॥।३।१॥।।

प्रप् । किमन्ययसदोर्हिसा।

(किमन्वयत्तदः ५।, हिं: १।, च ।१।)।

एभ्यः स्यार्डिदाच स्थात्। कस्मिन् काले कर्डिकदा। *

ष्र्६। तदो दानीं वा।

(तद: ५।, दानीं ।१।, वा ।१।)।

तदानीं तर्हि तदा । 🌵

पूर्छ। पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरीत्तरोभया-देद्युसिक्क।

(पूर्व- उभयात् ४।, एबुस् ११।, बक्रि का)।

पूर्विसिन्नक्ति पूर्वेद्यः। 🏗

पूर्दा दिक्षान्दाहिन्देशकाले स्तात् प्रीपीप्तत्री प्रे लुक्।

(दिक्-बन्दात् प्रा, दिग्-दिय-कार्ल २), सात्।११, प्री-पी-ताः १॥, घनः प्रा, सुक्।१।)।

क्षं भ्रम्य यस्य सच तत्तकात्। भ्रमिक्तृ काले भ्रमहिं भगदा, यहिं यदा,
 तिहें तदा। पावितिः पाश्रिः।

[†] काले वर्त्तनानात् तदशस्त्रात् सप्तवा दानी वा सात्। पाणिनि: ५।१।१८।

[‡] पूर्वक चन्नव चन्नारक इतरक अपरव चन्नरव उत्तरक वन्नव तत्त्वात् । एस्पीइट्ट्य: परस्वा: सप्तस्व एवुस् लात् किंद्र वाच्ये। पूर्वेद्युरित चन्न, (५२०) चादिस इत्यमेन तिवतनकरकोक्तात्वेद्यानामपि तिवतसंत्राः विधानात् (२५८) चनारकीयः। पाणिनिः ५।३।२२, "पूर्वास्वान्यतरितरापराधरीभयीत्ररेस्यः एयुस्त्यं दितः "युक्तेभ्रमातः" इति चन्नथम् इति चन्नार्किकम्।

परस्तात्, प्राक्। 🏶

पूर्ट। वैनोऽपी। (वा ।रा, एनः रा, कन्यो ।रा)। पूर्वेष । पं

पूर्व। दिच्चणोत्तरादाङी।

(दवियोत्तरात् ५।, माःमाधी ।१॥) ।

द्विणा द्विणाहि। उत्तरा उत्तराहि। \$

पूर्श वाधराचात्ताः।

(वा । १।, अध्यात् ५।, चारा, चात् । १।, ताः १॥)।

अधरात् अधरस्नात्, दिचणात् दिचणस्नात् । §

^{*} दिशि वर्णमानः श्रन्दो दिन् श्रन्दः, सच पूर्वादः प्रागादिकः । दिशि देशे काले च वाच्ये दिश्वाचकश्रन्दान् परासां प्रथमा-पद्यमी सप्तमीनां स्थानं सात् स्थान्, अन्च धातोः किप्रथने सावितात् स्थाः परस्य साती लुक् स्थादित्यंः । यन्यकारेण तिस्रणो विभक्षीनाभेकसृदाइरणं प्रयुक्तं परसादिति, परा दिक परी देशः परः कालः, परस्या दिशः परस्मान् देशे परस्मिन् देशे परस्मिन् कालान्, परस्या दिशः परस्मान् देशे परस्मिन् कालां, इति वाक्यानि । प्राक् इति प्राची दिक्तं, प्राक् देशः, प्राक् कालां वा इति प्रथमस्थाने सान् तस्य लुक् । मनौषादितान् प्यत्। एवं पद्यमीसप्तस्थोरिप वीध्यं। पाणिनिः प्राहारु १३० ।

[†] दिग्देशकाले वर्त्तमानिभ्यो दिक्षम्बद्देश्यः प्रीप्तग्रीरेनः स्नाद्या। मूर्व्वणिति पूर्वः पूर्व्वस्मिन् वादत्यर्थः । पाणिनिः ५।३।३५,।

[्]र चाय चाहिय तो चाही, विवचनं यथासङ्गानिरासायें। दिन्देशकाले वर्त्तमानाभ्यां दिवियोत्तराभ्यां प्रथमा-सप्तयीः स्थाने चा चाहिय स्थान्। विशेषलात् साती वाधकावेती। दिवियः दिविणि अन्या, उत्तरः उत्तरिक्षन् वा इति वाक्षं। पाणिनः प्रश्र(१९९,१७,१८)

[§] ताः प्रीपीप्ताः । प्रथरक्षस्टात् चनारात् दिविषीक्तरशस्टान्यां दिग्देशकाले प्रयमा पद्मनी सप्तमीस्थानं भात्स्य। त्या । प्रथरः भ्रथरस्यात् प्रथरस्मित् । अथरात्।

पूरु । पूर्वाघरावराः पुराघावाः स्तादसोः।

(पूर्व्याधरावरा: १॥, पुराधावा: १॥, स्तादसी: ७॥)।

पुरस्तात् पुरः, श्रधस्तात् श्रधः, श्रवस्तात् श्रवः। श्रतएव श्रस्।

प्रह। चवत् याच् प्रकारे।

(चवत्।१।, याच्।१।, प्रकारे ७।)।

येभ्यस्य उक्तस्तेभ्यः प्रकारे याच् स्यात्, सच तद्दत्। सर्व्व-प्रकारंसर्व्वया। †

प्रथ। कुतः क कुछ कुनेती ऽता ऽतेह सरै-तर्द्धधनेदानौं पञ्चादुपर्य्युपरिष्टात् परेद्यवि सद्योऽ-द्यैषमः परुत्परारौत्यं कथम्। (कतः - कथम्। ।॥)।

दिविष: दिविषक्षात् दिविकस्मिन् वा दिचिषात् एवं उत्तरात् । विवालपचे प्रधरकात् दिविषसादिति । पञ्चस्यकोदास्ररणं वहुलप्रयोगदर्भनात् । पाणिनि: ५।३।३४ ।

- पूर्वय पधरय प्रवर्श ते। पुरय पध्य प्रवश्च ते। साध पन् च तौ तथीः। पूर्वस्य पुरः पधरस्य प्रधः प्रवरस्य प्रवः स्थात् स्थात् सादिशः पर्योः। पुरसादिति पूर्व- श्रव्दात् (५१८) प्रथमादैः सात् प्रादेशे, प्रनेन पुर पादिशः। पन् परे पुर पादिशे, (२५८) प्रकारसीपे पुरः। एवं पधरशब्दात् पधसात् पधः, प्रवरशब्दात् पवसात् पवः, प्रतिशः । एवं पधरशब्दात् पधसात् पधः, प्रवरशब्दात् पवसात् पवः, प्रतिशः । एवं पधरशब्दात् पधसात् पधः, प्रवरशब्दात् पवसात् पवः, प्रतिशः । एवं पधरशब्दात् प्रवसात् पधः , प्रवरश्चिष्ठानिधानादेव, एतेश्यः प्रथमादैः स्थाने पस् स्थादिति वक्षव्यं। पाणिनः प्राशः १८,४०।
- † चन्दवत् सुखिनिखुक्ते यथा चन्दस्य चाङ्गादक्तिन सायं ग्रद्धति न तु धावल्या-दिना, तथाचापि चनदिखुक्ते (५१३) चन्द्रादिस्निन्द्रनन्तरज्ञातलेनैन सायं ग्राम्चं, न तु केवलं सप्तमीस्तानजातलेन । चत्रप्य-चन्नादिस्तिनद्वयां परासां (छदाइरण-प्रापकात्) वितीयादिविभक्तीनां स्त्राने याच् स्थात् प्रकारे । प्रकारः साद्यां । चकारः चन्ययार्थः । सच तहदिखनेन, (६२०) प्रत्यये परे पुंतद्वावादिकं स्वादिति स्वितं । सन्य प्रकारं, सन्यं प्रकारेचः सन्यं प्रकाराय, सन्यं स्वात् प्रकारात्, सन्यं स्व प्रकारस्य, सन्यं प्रकारं स्वतं प्रकारिकः सन्यं प्रता । स्वतं याया एव याच् द्रति पाणिनिः प्रकार ।

एते निपास्त्रको ।

कसात्—कृतः, कसिन्—क कृष्ट कुष, ससात्—इतः, एत-सात्—सतः, एतिसन्—सष, सिसन्—इष, सर्वदा— सदा, श्रिसन् काले—एतिष्टे अधुना इदानीं, श्रपरिसन्— पयात्, अर्थे—उपि उपरिष्टात्, परिसन् सिक् —परेश्वित, समानिऽक्रि—सदाः, श्रीसनिक्र—श्रदा, श्रीसन् वर्षे—ऐषमः, पूर्विसन् वर्षे—परत्, पूर्वतरिसन् वर्षे—परादि, इदम्मकारं —इसं, किम्मकारं—कथम्। *

पूर्प । त्यनाद्य चिर दिचणाद्यादे—स्य-ष्टन-त्न-त्यण्-मा भवादो। (लच-पायादेः प्रा, प-माः १॥, भवादो १०)। एभ्य एते क्रमात् स्युः भवाद्यधे। त्यनत्यः तनत्यः, श्रद्यतनी श्रास्तनी; विरत्नः परुष्तः, दाचिणात्यः पायात्यः, श्रादिमः मध्यमः । ११

कलादिति। एषा तावत् टीका, सल्बेलेव पुसकेषु,त सूलमध्ये सितिविष्टा हम्यते।
 पाणिनि: प्रशिष,०,१२,१२,१०,२,५,११,६,१६,१०,१८,३२,२१,२२,२४,२४,८५,८५
 १०४,१०५।

[†] त्यवस सदास चिरस द्विषक भादिस ते भाद्यी: यस स तकात्। त्यस प्टनस्त तस त्यस्य च सस ते। भाव विमतिनमाहत्य सन्देरित तामस्वरुषं, त्यप्टनत्यक्तं इति पाठी वा। त्यवदिः त्यः, भयादिः एनः (तन्त्र इति जीनराः), चिरादेः तः, दिच्चादिः त्यस्, भावादिः सः स्वात्, तव भव इत्याय्ये। त्यम भवः त्यम वस्ति वा इत्यस्यः, एवं तवतः। भयभवा भयतनी, (२५०) विक्वादीए, एवं चाः (पूर्वदिन) भवा चानती। भयादितात्—सत्तनः, विद्यातनः, दीवातनः, सायनानः, सदातनः, सत्तातनः, स्वातनः, स्वतः, स्वातनः, स्वतः, स्वत

प्र६। किमः क्तान्तात् चिचनौ।

(किम: ५।, क्यनात् ५।, वित-चनौ १॥)।

कस्य चित् कदाचित्, कस्यचन कदाचन। *

पूर्ण | श्रादिस्तः । (पादिः रा, तः रा)।

(३२३) चैक्याचुदवहोऽ: इत्येतमकारमारभ्य यक्य उक्त: स तसंज्ञ: स्थात्। †

इति तपाद:।

इति खाद्यन्ताध्याय:।

स्यायनाधिकारः समाप्तः।

दाचिषात्यः, दिचिषा इति (५२०) घा: । िषाचात् (४१६) इति: । एवं प्यात् भवः पायान्यः । चादिना पौरस्य इत्यादि । चादौ भवः चादिनः, सध्ये भवः सध्यसः । "चयान्ययाते किसः" इति क्रमदौत्ररः । तेन चियानः, चान्तमः, पश्चिमः । "चयादि-प्यात् किमच" "चनाव्य" इति वार्तिकदयम् । पायिनिः शराटः, १०४, ४।३। ५,२३।

- # 'ससासक्त्री तिस्त्रन' इत्यमरीक्षयी: चित्-चन-इत्यव्ययशब्द्धीयोगेन कवित् की-चित् कीचित् काचित् किश्विदित्यादिपदे सिकेऽपि एतन्म्चकरणं कथित् कदाचिदि-त्यादेरेचपदत्वनित्यां इत्ये, तेन काटाचित्कमित्यादी (४१६) पूर्श्वेपदक्क इद्यादि स्वादिति।
- † च चादिरंख स चादि:। प्रधानेन व्यपदेशा सवनीति वासात्, तदित-प्रवरचोक्क-विश्वक्रियानवातानामादेशानामि तदित-संभा स्वादिति, तेतं (५९८)-पूर्वेष प्रवादो (२५८) पौपरं चकारचीपादि विदं।

व्याद्यन्ताधिकारः।



पूम:। स्वाद्यध्याय:।

-->∞∞∞---

१म पादः—संज्ञा।

पूर्द। घो:— ·

तिप् तस् अन्ति सिप् थस् य मिप् वस् मस्—
ते आते अन्ते से अधि ध्वे ए वहे महे (की)
यात् याताम् युस् यास् यातम् यात याम् याव याम—
ईत ईयाताम् ईरन् ईयास् ईयायाम् ईध्वम् ईय ईवहि ईमहि (खी)
तुप् ताम् अन्तु हि तम् त आनिप् आवप् आमप्—
ताम् आताम् अन्ताम् स्व आयाम् ध्वम् ऐप् आवहेप् आमहेप्(गी)
दिप् ताम् अन् सिप् तम् त अम्प् व म—
त आताम् अन्त यास् आयाम् ध्वम् इ वहि महि (घी)
दि ताम् अन् सि तम् त अम् व म—
तन् आताम् अन्त यास् आयाम् ध्वम् इ वहि महि (घी)
पाप् अतुस् उस् यप् अयुस् अ पाप् व म—
ए आते इरे से आधे ध्वे ए वहे महे (ठी)
ता तारी तारस्तासि तास्यस्तास्य तास्य तास्य ह तास्य ह (डी)

यात् यास्ताम् यासुम् यास्त्यास्तम् यास्त यासम् यास्त यास्त— सीष्ट सीयास्ताम् सीरन् सीष्ठास् सीयास्त्राम् सीध्वम् सीय सीविह्य सीमहि (ढी)

स्थित स्थतम् स्थन्ति स्थिति स्थयम् स्थय स्थामि स्थावम् स्थामम् स्थिते स्थन्ते स्थिते स्थेवे स्थवे स्थे स्थावहे स्थामहि(ती) स्थत् स्थताम् स्थन् स्थम् स्थतम् स्थत स्थम् स्थाव स्थाम—स्थत स्थेताम् स्थन्त स्थाम् स्थियाम् स्थावम् स्थाविह स्थामिह (धी: ४।, तिष्—स्थामिह ।१॥)। (यी) **

एतानि सामीतिमतसङ्घाकानि घी: पराणि प्रयुज्यन्ते । १

पूर्ट। की खी गी घी टी ठी डी टी ती प्यो ऽष्टादग्रगः। (की-प्यः १॥, षष्टादश्यः।१॥)।

तान्यष्टाद्याष्टाद्य अमादेतत्संज्ञानि स्यः। 🕸 🤺

 [&]quot;प-न-णा दिस्ती न्किंग्येतः" इति वार्त्तिकस्वम् । पाणिनिः ३।४।७८। अत्र स्वे चलादशानाभेव विभक्तीनाम्ब्लेखः । पद्यात् लकारस्थाने भादेशा भवन्ति । यथा, २।४।८५. ३।४।८२, १०२, १०८ इत्यादि ।

[†] धीरिति पश्चयनं तिवादीनां प्रव्ययवज्ञापनाथे। सह भणीत्या वर्णते यत् तत् भाशीति, तच तत् शतखेति भाशीतिश्रतं, तत् सङ्गा येषां तानि साशीतिश्रत-सङ्गकानि वसनानीत्यर्थः।

[‡] ष्रष्टादम ष्रष्टादम इति वीसायां (४८३) षम्रस्, ष्रष्टादममः । तानि तिवा-दौनि ष्रष्टादम ष्रष्टादम भूला, क्षभान की-प्रादिसंज्ञकानि स्पृरित्ययः । भगवता पाणिनिना तु ययाक्षमं खट् (३।२।१२३), विधितिङ् (३।३।१६१), लीट् (३।३।१६२), षङ् (३।२।१११), लुङ् (३।२।११०), तिट् (३।२।११६), तृट् (३।३।१५), पामीर्लिङ् (३।४।११६), लृट् (१।६।१३), लृङ् (३।३।१३६), एतत्संज्ञकानि क्षतानि ।

पूरुण। पन्चर: शिच।

(पश्च १॥, र: १।, भित्।१।, च ।१।)।

ताः पञ्च रसंज्ञाः स्यः, शिच। #

प् ३१। नवशः पमे जितोऽन्यङिद्भगं घे।

(नवश: । १।॥, पसे १॥, जित: ५।, भन्य कि इग्नं ५॥, घे ৩।)।

तानि नव नव क्रमात् प-म-संधानि स्युः, तेच जितो धोः परेस्तः, तदन्य-ङिद्ध्यान्तु क्रमेख स्तो घे। पृ

भू३**२ । ङिट्पिट्र: । ं**(ङित्।श, पवित्।श, रः श)। अपित् रो ङित् स्थात् । ः

पू ३३ । कित् ठी ढीपं। (कित्।श, की।श, कीपंश)

अपित् ही व्याः प च किलां सं स्थात्। §

ता: पञ्च की स्वी नी घो टी इति पञ्च, प्रथमीपस्थितपरित्यागे प्रमाणाभाषात् ।
 त्या र मंज्ञाफलन्तु प्रभूदित्यादी (५५४) वसीऽग्स्येश्यनं न इस्, प्रियद्विन डिच्चात् (५३२) न गुण्य (५४२) । प्रकारित्प्रत्ययस्य ग्संज्ञया (तदी अ व व्यये) तुद्तीत्यादी न गुणः, भवन् दीव्यन् इत्यादिषु प्रदम्भये परि प्रप्रमादिष्य । पाणिनिः ३।४।११३,११४। गः च सर्विधातुक्रम्, परः च सार्वधातुक्रम्, परः च सर्विधातुक्रम्, परः च सर्विधातुक्रम् ।

[†] नव नव ६ति (४८६) नवशः । पञ्च सञ्च पसे, पं परसौपदं, परोद्देशकाला वीधनस्वरूपीयं। ज इत् यस्य स् जित् तस्यात् जितः । ज इत् यस्य स हित्, ष्रस्य क्षिष्य ष्रस्यक्रितौ तास्यां। तानि तिवादीनि । तेच पसे आनुवस्थातीः सः, तटस्यात् आनुवस्थात् स्वातः पं स्थात्, जानुवस्थात् संस्थात्, कर्तानुवस्थात् स्वात् स्वात् संस्थान् स्वात् स्वात्य स्वात् स्वात्य स्वात

[‡] क इत्यस्य संकित्, प इत्यस्य संधित्, न धित् चिपित्। चिपिदिति श्रितं परंपरच चतुक्तस्यो। पाणिनि: १।२।४।

[§] क्या: पं ढीपं, यात् यासामित्वादि नव । पाविनि: शाशर अ, वार्ति बचा

पू ३८ | दा-धा दा | (दा था।१।, दा।१।)।

त्रिपत्दाधाच दासंद्रः स्थात्। *

पूरुपू। यलोऽचेक् जि:।

(यल: ६।, भवा'३।, इक्।१।, नि: १।)।

श्रचा युक्तस्य यलस्य स्थाने दक् क्रमास् निसंत्रः स्थात । 🕆 🔻

पूर्ह। सञ्चत्, दिस्तु वा।

(सक्तत् ।१।, वि: १।, तु ।१।, वा १।) ।

जिः पुनर्ने स्थात्, दिसु वा स्थात् । 🕸

ॐ दा घा इत्युभयं स्वरूपं, तेन — दा ख लूनी, दा त दाने, खुदा ज्लि ख, खुधा ज्लि च इति चतुर्णां. एव देख पालनं, दीय केंद्रे, घे टपाने इति चयाया एचीऽशिल्था (६०८) इति घाकारे क्षते दा-सज्जा, शिति परे घाकाराभातात् दासंज्ञा नानीति । घिषदियनंन देप शाधने इत्यय्य दासंज्ञा निवंध:। दासज्ञाफलन् (५४८, ५५२,६१२,८११) एतेषु सूचेषु दट्या । पाणिनि: १।१।२० । घाच दा ८ घा ।

[†] प्रचास्त्रवर्णेन युक्तानां य व र ल इत्येषां स्थाने क्षमेण-इ उ ऋ ल इत्यादेशाः जिसेचाः स्युरित्यर्थः। फलान्तु (६६१,६६१) इत्यादिषु ट्रष्टकः। लक्षारुस्य जिले सम्यवित, यल्मेच्यानुरीधादन्तःपतनं। पाणिनिः १।१।४५। भ्रष्ट जि: -सस्प्रसारणस्।

[‡] सक्तत एकवारं, जिरित्यन्वर्षते । यावत् सम्यवसाविधिरिति न्यायात् पुनः सामग्रीसमाधानेऽपि, त्रिः पुननं स्यात् । तेन, व्यय व्यध व्यच व्याद स्थाति । पित्रा एकवारं य स्थाने इक्ते पुनः वि इत्यस्य स्थाने उने स्थादिति । दिन् या इति वागव्दः समुचयार्थः, दिवस पुननं स्थादित्यर्थः । तेन, कितप्रस्ति-धानीः मिन किते दिवि चिकित्स धातोः, चिकित्सित्ति सक्तिति पुनः सिन क्रवे चिकित्सियतीव्यती पुनिदेलं न स्थादिति । एवं क्षधातीर्थे इदि दिवे चिकित्स धातोः मिन चिक्रीयियते स्थादाविप पुनर्भ दिविभिति दुर्गादामः । वन्तुतम् (पाणिनो 'अनस्यासस्य' इति खिक्याते पुनिदि विश्व विश्व व्यव स्थाति। प्रविदे स्थादित्यये । पाणिनिः स्थात् स्थादित्यये । पाणिनिः स्थात्यः स्थादित्यये । पाणिनिः स्थातः स्थादित्यये । पाणिनिः स्थातः स्थादित्यये । पाणिनिः स्थातः स्थादित्यये । पाणिनिः

पूर्ा प्रागच्कार्यादिचि दि:।

(पाक ।१।, भच्कार्थात् ५।, भचि ७।, डि: १।) ।

श्रवि परे अच्-कार्यात् प्राक् दि: स्थात्। *

पूर्वः पूर्वः खिः। (देः ४।, पूर्वः १।, खिः १।)।

देधी: पूर्वी भागः खिसंत्रः स्थात्। क

पूर्ट। स्वा वृद्धाः (सःवीशा, वु.कशा)।

स्त्री घ्रसंज्ञी घी रसंज्ञ: स्थात् । क्ष

पुष्ठ०। स्वः स्वे तः। (स्वः १।, स्वे ७।, बः १।)।

स्ये परे खो रसंजः स्यात्। §

इति संज्ञा-पादः।

^{*} अचः कार्यं अच्कार्यं तसात्, प्राक्शब्द्योगे (२००) पश्चमी। यत्र स्व स्व प्रे स्वर्त्वर्णस्थाने कियत् आदेशः सम्भविष्यति, दिलञ्च समाविष्यति, तत्र प्रथमं दिलं स्थात्, पश्चात् स्वरकार्यं स्थादिल्यं। यशा—निनायं गृहात दल्यारौ आदौ दिलं पश्चात् विवस्ती। यत्र एकदा अच्कार्यंदिल्यं। प्रसक्तिस्त्रीवायं नियमः। नियम- आयं प्रायिकएव, तेन अरिरिषतौलादौ आदौ गुणे ससी पथात् दिल्वमिति। पाषितिः १।१५६।

[†] हिरिति घीरित्यस्य विशेषणं, घीरिति अधिकारप्राप्तम् । स्वारं स्वारं नमतौत्यादी धातुत्वाभावात् पूर्व्वभागस्य न खिलं। पाणिनि: ६।१।४ । अत्र खि: = अभ्यासः।

[‡] लघुगुरुसंज्ञथी: फलं (५८२,६१६) इत्यादौ द्रष्टव्यं। पाणिनिः १।४।१०,१२।

[§] स्थे क्रियने नैवेष्टसिडी स्व इ.ति कथनं कदाचित् कल्दसि संयोगे परे गुक्नं ऋषाः दिति सूचनार्थं, ऋतएव प्रक्रेवेशिह पिङ्गलसूचम् । पाणिनि: १।४।११ ।

२य पादः - पवत्।

(१) भू सत्तायाम्।

भू-तिप् इति स्थिते—

प्र8१ | विश्वप्रे | (विश, शप्। १।, रेश)।

रे परे घो: गप स्थात् घेऽघेँ।

प्४२। गुर्घङञ्चाकिङिति।

(णु: ११, घूड: ६१, च ।११, अ-कडिति ७।)।

त्रन्यस्य घुमंज्ञोङय गुःस्यात्, नतु किति ङिति । भवति भवतः । पै

^{*} घं प्रधें कर्नि वाचि । प्रयः प्रप्रत्, प्रकार स्थितः । ,शिच त् (५२०) स्थादानेत्यादिना तिष्ठाद्यादंगः । (८२१) द भावयी यंका बाधिताविशिष्टं सुतरां कर्त्तयं प्रप्यात्, तेनाच घं इति व्यथं मिति चेत उच्यते, — कर्माकर्तर वार्च (८२०) द्वदद्वद्व इत्यने यगादातिदेशात् श्रवादेवीचि, चिकीषंत इत्यादी (८३१) मन्यस्य-त्यादिना प्रयंगादिनिधिने, प्राधिककर्भृवाच्यतात् श्रवादयः स्युग्ति । नच श्रवादे वीधकस्य यगादिनिधिने सुतरां श्रवादिना भाव्यमिति वाच्यं, स्वद्रगती विप्रतिधिचे यदवाधित तद्वाधितमेविति न्यायात् पुनः श्रप्सङ्गाभावात् । प्रतएव प्रगृद इत्यच (६५०) सक्तं।प्राधिपचे सेनिधिचे श्रवि न स्थादिति । पाणिनिः १।१।६८ ।

[†] गाग्णः, घुयासी चक्र्सित घुक् तस्य। कच कच कडी, कङी इती यस्य स किंदि, न किंदि, भक्षिक्त तिस्मिन्। खघीरुः: (११) चकारात् (८) भ्रत्यस्य इड स गुणः, याहरजातीयस्य विप्रतिष्यो विधिर्ण ताहग्जातीयस्येति न्यायात् कितिक्ति-प्रस्थयास्यो भिन्ने भन्यस्मिन् प्रस्थये परे इत्स्ययं:। निम्नाष्यविक्ति पूर्ववर्त्ति-धात्ना, धात्नरजातयो: श्रुग्पोय गुणः स्यात्। एवं (८४२) कास्यकप्रस्थयः किस्तरणान् कद्मवित् खिद्रस्थापि गुणः स्थादिति, यथा सुदमाचष्टे मीद्यतीस्यादि। भृतिप् इति स्थिते, भ्रष्, ककारस्य गुण भीकारः, (२५) अव्। एवं भवतः इत्यादि। पाणिनिः धाइ।८४,६६—१।१।५।

पूष्ठहा लोपोऽतोऽदेचोः।

(स्रोप: १।, चत: ६।, चत-एची: ७॥)।

श्वकारस्य लीपः स्थात् श्वकारे एचि च परे। भवन्ति, भवसि भवषः भवषः।

(१०८) या तिमभिव। सवामि भवाव: भवाम:। #

प्र81 मुब: प्राप्ती वा मं।

(सुव: ५।, प्राप्ती ७।, वा ।१।, मं १।)।

प्राप्ती सुबी मं स्थादा वि । भवते । ए

पृष्ठपू। याचातोऽतः।

(द्रीश, आ।शा, भाय-भात: ६।, भत: ५।)।

अकारात् परयोरायातोराकार देः स्यात्। भवेते भवन्ते, भवसे भवेथे भवध्वे, भवे भवावहे भवामहे । क्ष

अ भव भदिवोस्ति प्रकरणवलात् थी: परव नातधीरैव यहणं, 'यथा भविन भवे भवन वुभूषंतीत्यादि, मुरारि: क्षणोक्षविमत्यादौ न प्रसङ्घः। नीपीऽतीऽदेतीरिश्वेव पाठ: साध: एकारभिज्ञानामनावण्यकतात्, भदिभीरिति तृ लिपिकारप्रसादागत इति। भविन इत्यव प्रपीऽकारनीप.। पाणिनि: ६१११८०।

⁺ भू मत्तायासिति गणपाठात् भूधातीः सत्ता एव पर्धः, सत्ता च उत्तातिर्विद्यः सामता च । प्रतिव्रव्ये (५३१) परस्येपटभीव । यदा तृ प्राप्तिर्यः तदा आसानपदम्पि भवतीत्येतत्त्वयनार्यम् एतत् सूत्रं । "प्राप्तिसम्पद्षजन्मप्" इति भद्रमञ्जः । प्रात्मनेपटभेविति केवित् । चे कर्भि वाच्ये इति भग्ष्कुसुताधिकारात् अनुवर्णते । चात्मनेपट-प्रकर्णं दिला प्रवेतरस्वकारणं िर्लप्रभारज्ञापनार्थे प्रथमप्रयुक्त भुधातीः पटससुदाय-प्रदर्भनार्थ्य । पाणिनिमति भूधातुः परस्मेपदी सत्तार्थ्य ।

[्]रे द्वा इति भिन्न पटं। भाष च चात चेति तस्य। चाथ चात इति कोवलयोरसम्भवात् तदादि विभन्नीनां यहणं, तेन भाथे चाते चाथां चातां इत्यंतियां यहणं। भवेते भवेथे — उभयत चानेन चात चाथयोराकार ई, (२३) गुणः। भव

प् ४६। ख्या या-युस्-यामा-मीयुसीयम्।

(ख्या: ६।, या-युस् यानाम् ६॥, ई-ईयुस-ईयम् ।१॥)।

अकारात परेषां ख्याः या युस् याम् एषां स्थाने-

दे देयुस् देयस् एतं क्रासात् स्यः। अ

भवेत् भवेतां भवेयुः, भवेः भवेतं भवेत, भवेयं भवेव भवेम। भवेत भवेयातां भवेरन्, भवेयाः भवेयायां भवेध्वं, भवेय स्वे-विक्त भवेमिक्तः। भवतु भवतां भवन्तु।

पूर्वा हेर्नोपोऽस्योन्नोस।

(इं: ६।, कीप: १।, अस्यीप्री: ५।, च ।१।) ।

श्वकारा द्याभ्या-मुप्नुभ्याच हेर्नोपः स्यात् । 🕆 भव भवतं भवत, भवानि ।

पृष्ठद्र। व्यस्य ग्यनुकार डाच् च्विकाणेऽलं सन्तानोऽदेाऽन्तः पुरो ऽस्तं तिरः कारिकार्यादे धौ

सः । (बस ६।, गि--ज्यांदेः ६।, घो ०।, सः १।)।

एषां व्यानां धी परदे सः स्यात्। ३

इकारकरणेनापि पदसिखौ (५ स्वे) दिसाववर्णेन सइः एकसाववर्णस्य सास्यमयक्तिसिति कला दिसावकरणं; एवं पर्वापि बीध्यम् । पाणिनि: ७।२।⊏२ । अप्व दय् इति इस्तः ।

^{*} ख्या इति ग्रहण चदन्तधातीकां चप्राप्ताये। पाणिनिः अरायः।

[†] स्यः संयोगः, नात्ति स्यो यत्र कोऽस्यः, उप्च तुत्रति उप्नः, षस्यशमाडप्नेषेति ; षस्योप्नुस्तव्यात् । चकारादकाराज्ञ । उपनुष्यां यथा—तनु हिनु । षस्यास्यां किं, षाषुद्वि । पार्विनिः ६।४।१०५,१०६ ।

[‡] भनुकारी भनित्यटिह्लाबनुकरणश्रदः। निय भनुकारय डान् च च्यि कथे च भक्षम् च सत् च भनस् च भन्नर् च पुरस् च भक्षन् च तिरस् च

पृष्ठर । प्राग्वन्ता गो उन्तरदुर्गे गोदि इन मीना चिन्वानिष् शान्तानशो,-गद नद पत पद दा मा सो इन वा या द्रा श्वा वष वह शम चि दिहान्तने,-वी त्वन निंस निन्द निच मवान्ता- ' इने,-ऽक्ष खा द्यापान्तान्त-ने:।

(प्रास्तत् ।१।, न: ६।, च: १।, घनर्-भदर्भी: ५।, चादि — नग्न: ६।, गद — नी: ६।, वा ।१।, तु ।१।, घन — हन: ६।, घक — नी: ६।) ।

णादे धी हन्ते मीनाते हिनोते रानियः यान्त-नयी गदायन्त-नेय नस्य अन्तरो दुर्वर्जगेय परस्य णविधिहेती सति णः स्यात्, अनादे मेवान्त-हन्तेः कादि-खादि-षान्तवर्ज-ध्वन्त-नेय वा स्यात्। अन्तर्भवाणि प्रभवाणि। दुरन्तु दुर्भवानि। भवाव भवाम। भवतां भवेतां भवन्तां, भवस्व भवेषां भवध्वं, भवे भवावहे भवामहे । *

कारिका च उष्णंदिशेति तस्य । डाच् चि दित ही प्रत्यथे (५०१, ४८५), अव तर्तानां यहणं । श्रव्यानामेषां प्रज्ञानां धाती परपदे सित समासः स्वाद्त्वर्थं । यथा — प्रणस्य, सनत्क्रच्य, पटपटाक्रत्य, क्षणीभृय । कणे सनस-शब्दी तृहार्थें, कणेक्रत्य सनःक्रत्य, पयः पिवतीति शेषः । श्रम्पद्वत्य । सत् श्राटं सत्क्रत्य । कप्र्र्यं त्विऽपि श्रमत्क्र्य । श्रदः श्रम्पदंशे — श्रदः क्रत्य । श्रन्तश्य । श्रम्पत्य प्रस्क्रत्य । श्रम्पत्य प्रस्कृत्य । श्रम्पत्य प्रस्क्रत्य । श्रम्पत्य प्रस्कृत्य । तरीभ्य । कारिका स्वयंदा यव पीडास्, कारिकाक्रत्य । उरीक्रत्य, श्रादिश उरि करी पश्रतीनां यहणं । एषु समामात् (११७६) क्वाची यप् । श्रम्य समासः एकपदीभावमानं इन्हाद्मिनं च त्यायनानामेव, श्रतः समास्रकरणे एतत् स्वं न कर्ता । धात्रकरणाद्दित-णत्विधिः पूर्वं समासकरणात् समासाभावे एव न स्यादित स्वितम् । पाणिनः १ । धाद्र १६१,६२,६४,६६,६९,६५,६६,६०,६८,०००,०१ ।

श्रनासि दुर्यत्र स्रोऽदः, भद्यासौ गियेति भद्गिः। भन्तर् च भद्गियेति
 तसात्। स्र्वं वादिय इन च मोनाय हिन्य भानिष्च तालव्यशाल-नश चेति तस्य,

पूप्रा बीटी बीष्यम् घोरमा।

(ची-टी-थीव अम, मम्।११, थी: ६१, ममा।३।)।

श्वासु परासु धोरम् स्थात् न तुमा योगे। श्वभवत् श्वभवतां श्वभवन्, श्वभवः श्वभवतं श्वभवत, श्वभवं श्वभ-वाव श्वभवामः । श्वभवत श्वभवेतां श्वभवन्त, श्वभवद्याः श्वभवेद्यां श्वभवध्वं, श्वभवे श्वभवावहि श्वभवामहि । *

मृद्धैन्यणादिश्वि (५००) णोपदेशं क्रत्या ज्ञेष: । (५६६) पुनर्दं न्यतप्राप्ति: स्वादिति । गर्य नदयेत्यादिदन्वे गद—दिहाः, ते चन्ते यस्त्र स गद—दिहानः, सचासौ निवेति गर—दिहानशिक्षः । सवी चन्ते यस्त्र स सवानः, सचासौ इन चेति सवानः इन, चन्त्र निवं निवं नवानः इन चेति तस्य । कातौ चायौ येषां ते कात्वाद्याः, मृद्धैन्यषोऽने येषां ते पानाः, कात्वाद्याय पानाय कात्वाद्यपानाः, न कात्वाद्यपानाः स्वाद्यपानाः, ते चन्त्र सम्बद्धाद्यपानाः स्वाद्यपानाः, ते चन्त्र सम्बद्धाद्यपानाः स्वाद्यपानाः विवेति तस्य ।

यथा — प्रययित प्रह्मिष्यित इत्यादि । मीना इति प्रायुक्तस्य मीधातीः, हित् इति प्रयुक्तस्य हिंधातीर्यहणे । चानिप इति विभक्तिः । प्रयायित इति भाननभलात् चलं, प्रमण्ड इति न गलं । गदायन्त ने यंषा — प्रयागति विभक्तिः । दाइति दासं अक्स्य यहणं, तेन — प्रयिश्चिति प्रियद्शति प्रायद्शाति । देङ दी घट इति नयाणां (६०८) भाकारे प्रयिद्शस्य रित्यादौ यालं स्थान्, भिति परे तु भाकाराभावान् दासं भाभावे न प्रात्यं । दी इत्यस्य (२०४३) उत्तरियां प्रत्यं स्थादेव । मा इति स्व कप्यहचं — तेन माइति, मा ल, माउन्य, इत्यतिषां प्रत्यं स्थादेव । मा इति स्व कप्यहचं — तेन माइति, मा ल, माउन्य, इत्यतिषां प्रत्यं स्थादेव । मा इति स्व कप्यहचं — तेन माइति, मा ल, माउन्य, इत्यत्यं (६०८) भाकारे च स्थादेवित । भावे न स्थावं व्या — यथा — प्रायिति प्रानितीत्यादि । प्रनिकरोति प्रनिखादित प्रनिभेषति इत्यादी कादि-खादि-यानान्त-निलात् न प्रत्यं । तिक्षत्रिनिलात् प्रयिपचित प्रनिपचतीत्थादी विकत्यः । भनभवायोत्यादौ भानिपो नस्य प्रत्यं । पार्थिनः ६०११४,१५,१६,१७,१८,१८,२६,२३,२४।

* णादिक्वभीनादीनामनुइतिमाबद्धाह धीरिति। मा इत्यनेन माख-श्रव्यकापि यक्त । योगसुभयेन, न तृभव्यविह्नत्वेन। भम् इत्यागमः, म इत् (१०) भादौ खादिति। भभवदिवि भूष्यादिष, भनेन भम्, (५४१,५४२,३५,६४) श्रष्, गृषः, भोक्साने भव्, दस्याने त्। एवं सर्व्यन। पाचिनिः ६।४।२१,०४। पूपूर। व्यांसि:। (श्वां अ, वि: १ः)।

धोः सिः स्थात् व्यां। *

पूपूर। भूस्थापिबदेनी लुक्ष्मे।

(सू-स्था-पिव दा-दन: ४।, सुक्।१।, पे ७।)।

रभ्यः सेर्नुक् स्थात् पे। अभूत् अभूतां। 🕆

पूप्र। सुवो वन् टीळाचि।

(सुव: ६।, वन् ।१।, टौकाचि ७।)।

भूवी वन्स्यात् टीर्क्वोरचि परे। श्रभूवन्। ध श्रभूः ग्रभूतं ग्रभूत, श्रभूवं श्रभूव श्रभूम ।

पूपूष्ठ। वसोऽरखंमनौदितः।

(वस: ६।, भरस ६।, इस् ।१।, भनौदित: ५।) ।

अनीदितो घी: परस्य अरस्य वसस्य इम् स्थात्। §
अभिविष्ट अभिविषातां।

[#] ष्यंगतिविश्रेषात् निभित्तगतिविश्रेषस्य बलवस्त्रात्, षयः श्र्यस्तादीनां यकीऽपि बाधकः । तंन कत्तेरि षभविष्ट, कर्माण सभाविषातानित्यादि । पाणिनिः ३।१।४३,४४।

[†] भूष स्वाच पिवय दाय दन चेति तस्रात्। पिव दति निर्देशात्पा सः रचये पै शोधे दस्येतयीः श्रपासीत्। दादति दासंज्ञकः, तेन दैप शोधने दस्यस्य भदासीदिति। श्रमूदिति द्या रतात् (५५४) वसीऽरस्येति न दम्। क्रिस्थात् (५४२) न नृषः। सुक्करपात् (५०४) न ब्रिडः। पाणिनिः २।४।७०।

[‡] शुव इति षष्ठान्तस्य भूधातीर्वन्त्वरः धालवयवलात् तिकान् परै भूधातीः (१४२) नृष्यविविधार्थम् । वनीऽकार उदारवार्थः, न इत् (१७) पनी । भू-भन् (५५०,५५१,५५१,५५२) भभूवन् । पाण्यिनः ६।४।८८।

६ न रोऽरलस्य । नास्ति चौत् इत् वक्त सः चनौदित् तक्यान् । वस इति कन्ताःस्यवकारादिः प्रत्याकारः, घरस्येति (५३०) एच रः व्रिचेति स्पोक्रमिकस्य ।

पूपूप् । मान्तोऽदनतः।

(मान्त: ६१, ऋत्।११, ऋगतः ५।) ।

मस्यान्त् इत्यस्य त्रत् स्थात् नलकारात् परस्य । *
त्रभविषतः, त्रभविष्ठाः त्रभविषायां ।

पूर्द् । घेस-लोगो वा। (वेश, मलोगः रा, माराशे। वेपरेसस्य लोगो वास्यात्। क

पूपूछ। टी ठी ढीं घो ढिच: सेमस्त इलो वा।

(टी-ठी-डी-घः ६।, ढ ।१।, इच. ५।, सेनः ५।, तु ।१।, इल: ५।, वा ।१।) ।

इचः परस्यासां धस्य ढः स्थात्, सेम्हलात् परस्य तु वा स्थात्। श्रमविद्वं श्रमविध्वं, (६४) भूम्भसोरिति सस्य दः—श्रभ-विद्धं, \$ श्रमविध्वं श्रमविध्वंह श्रमविद्धांहः।

स इत् (१७) भादी । इसी वसस्यानजातलेन तत्त्रस्यालात् वसी गुणिलाग्रणिलेन इसीऽपि गुणिलागुणिलं, तेन विनरिय इत्यादी गुणः, दुद्दिव इत्यादी न गुण । भौदितस्तु कविकल्पटुमात् केयाः । पाणितिः शराक्ष्य— ७.२।१० । भव भौदित्-स्थानेभगुदाभेत्कथनम् ।

[.] * सस्य भाक्यनेपदस्य भन् नान् तस्य । भन् इति इष्टमनस्य यद्यपं, तेन भनः भन्ते भन्तां इत्येवामपि । भनत इति विं, एधन्ते, (५४३) खोपीऽसीऽईचोरित्यकार-खोपस्य स्थानिवक्ताकीकारान् । पाणिनिः ७१।५ ।

⁺ पाणिनिः =|२१२५ ।

[‡] टी-ठी ढीनां घटोठीढीध तस्यः । सङ्क क्रमान भैते सी सेम् तस्यात् । आसां टी ठी-डीनां । इन्त्रस्याहारः । मू—ध्यं (५५०, ५५२, ५५४, ५४२, २४, ५५६), ततः भनेन धस्य वाढ, भभविदुं भभविष्यं । सलीप्राभावपचे सस्य द भभविदध्यमिति । पासिनि: ८|६।७८ ।

पूप्द। धुद्धिष्ठतिहा। (४:१।, वि: १।, व्यक्ति ७)। व्यां ग्रेडिंच धुद्धिः स्थात। #

पूप्र । अभ् खय ह व क्यां जब चप्र ख चाः खः। (भभ-क ऋषो ६॥, अव्-चु शाः १॥, खः ६।)।

खेर्भभ् खय् इकार घे कवर्ग 'ऋवर्णानां क्रमात् जब् चप् जकार स्व चवर्गाकाराः स्युः । 🌵

पूर्६०। भवोऽङ् कां ढ-भावे तु वा।

(भुव: ६।, षङ् ।१।, न्यां ७।, ड-भावे ७।, तु ।१।, वा .१ः)।

भुवः खेर्ङ् स्यात् क्यां ढ-भावयोस्त वा । 🕸

बभूव बभूवतु: बभूवु:, बभूविय बभूवयु: बभूव, बभूव बभुविय बभूविम ; बभूवे बभूवाते बभुविरे, बभूविषे बभूवाये बभूविद्वे बभूविध्वे, बभूवे बभूवियहे बभूविमहे। टे भावे च—बभूवे बभूवे इति प्रयोगी।

क टी च म्रङ्च काङ् तिकान्। प्रकरणादेव घी: प्राप्ती पुनक्षादानं, क्या चळाव-हितपूर्व्यघातीरेव दिलं स्थादिति ज्ञापनार्थं, तेन इन्दान्यभूव इत्यादी इन्दादेनं दिलांगित। वीक्षायर्थे पदानां दिलमपि वक्तव्यम् (विद्यानाकीसुदी-दिक्कप्रकरणं इष्टब्यम्।) पाणिनि: ६।१।८,११।

[†] भाभ् च खय् च इय र्घय कुच ऋय से तीयां। जब् च चप्च जय स्वय चुय भय ते। क्रमय-----भाभ् खय् इ र्घकु ऋवर्ष

मब्चप् मस्य पुष

पाणिनि: ८।४।५४,--०।४।५८,६२,६६ ।

[।] पाणिनिः ७ ४।०३ । वार्त्तिकञ्च ।

भविता भवितारी भवितारः, भवितासि भवितास्यः भवि-तास्य, भवितास्मि भवितास्यः भवितासाः; भविता भवितारी भवितारः, भवितासे भवितासाये भवितास्ने, भविताहे भवि-तास्त्रहे भवितासाहे।

भ्यात् भ्यास्तां भ्यासः, भ्याः भ्यास्तं भ्यास्त, भ्यासं भ्यास्त भ्यासं भ्यासः, भविषीष्ट भविषीयास्तां भविषीरन्, भविषीषाः भविषीयास्तां भविषीय भविषी-विष्ट भविषीमितः।

भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति, भविष्यसि भविष्ययः भविष्यव, भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः ; भविष्यते भवि-ष्येते भविष्यन्ते, भविष्यसे भविष्येये भविष्यक्षे, भविष्ये भविष्या-वहे भविष्यामहे ।

श्रभविष्यत् श्रभविष्यतां श्रभविष्यन्, श्रभविष्यः श्रभविष्यतं श्रभविष्यत, श्रभविष्यं श्रभविष्याव श्रभविष्यामः, श्रभविष्यत श्रभविष्येतां श्रभविष्यन्त, श्रभविष्ययाः श्रभविष्येयां श्रभविष्यः, श्रभविष्ये श्रभविष्याविष्टं श्रभविष्यामिष्टि।

भवतिक भवतकः। प्रणिभवति प्रनिभवति । *
एवं चेततीत्वाद्यः। १

^{*} वस्व इत्यादि, दिले, खेर्भय व, चनेन चक्त् । भविना इत्यादि (५५४, ५४२, १५) । स्यादित्यादि कित्त्वात् न गुणः । भविषौद्रमिति चासां घस्य टः स्थादिति कथनेन व्यवधानेऽपि टः । भविष्यतीत्यादीनि सुगमानि । भवतकीत्यादी (२०८) टं: पूर्वे चक्त्। प्रणिभवतीत्यादि (५४८) चक्कखाद्यवानान्तनेर्वा एतं।

[†] एवं चेततीत्थादय इत्यमेन येष विशेषकार्य्याणि न सन्ति ते एवमित्ययः। विशेषकार्यार्थे स्वार्णाङ कदायसीत्थादि।

(२) चिती संज्ञाने। *

चित घातु: र् घनुवन्ध:, संज्ञाने प्रक्रष्टज्ञाने (पर्धे) वर्णते इति ।

प्रसङ्गात् गणपाठीका अनुबन्धास्तत्प्रयोजनानि च लिख्यनी।

```
ष-मुखीद्यारणार्थ:। (४)
                                    ज-ज्वलादिः। (१०००)
मा--- निष्ठाभाषादिकम् वेट ।
                                    र्ज--- उभयपदी। (५३१)
    (१०००, भावे क्रियारमी च वाची
                                    জি--- খ্ব-ন: |
   क्तः क्तवतुः स्थाने वादट्)।
                                       (१०८५, वर्त्तभानकाली का:)।
                                   ट्र-साणु:। (११४२)
प्र--- मुण्वान् । (५६८)
                                   ड --- चिमक्ययतः । (११४३)
द्रर्---वा चङ्वान् ।
                                   ख-फवादिः । (५०६)
    (५६५, ७० इति स्वमते)।
र्द्र---श्रविड्विष्ठ:।
                                    त--- घटन: । घन्-घनः । (७०५)
   (१००१, का-कवतुस्थाने न इद्)।
                                   द-तनादि:। (६८८)
                                   ४—६घादि:। (७३८)
च--क्यावेट्। (११७२)
                                   न-स्वादि:। (७३८)
क-वेट। (५०३) वेस्।
                                   प-सुचादि:। (७४१)
च्ट—चङि पङ्गत:। (६३८)
                                   भ-- भमादि: । (०४०)
म्ह---चिक्त वा ऋस्व:। (७०८)
                                   म—घटादिः। (७६८)
लृ—चङवान्। (५६५, रू)।
                                   मि- विचि इष्-चर्माः वा इस्त । (७१६)
ए---सिच महद्धि:। (५७६)
                                    य-दिवादि:। (७३८)
ऐ-यजादि.। (६५१)
भी--- निष्ठात न।
                                   र — वैदिकाः। (वेदीन भातः।)
   (१०५२, क्ता-क्रवस्वी: त-स्थाने न)।
                                   स-पदादि:। (६७०)
भौ--भनिट। (५५४) भनिम्।
                                   लि-हादि:। (७२६)
                                   लु-स्वपादिः। (६६१)
क — चुरादि:। (७७३)
कि—वा चुरादि:। (७७३)
                                   व--- इतादि:। (६४८)
                                   म-तुदादि:। (७३८)
ग---क्यादि:। (७३८)
गि-प्रादिरपि (७६८)।
                                   भि—कटादि:। (७५५)
                                   ष---क्रदङ्वान्।
   पूषातुभित्रधेत खादिय। (१०५२)
घ—बदादिः। (५६१,६८५)
                                       (११५६, क्रदर्ने उङ)।
                                   च--- जचादिः । (१७४)
জ---त ज्वान्।
   (५३१, कर्मार वाचे त्रात्मनेपदी)।
```

पूर्श । नदाद्यस्तिसे-र्दिखोरीम ।

(बदादि श्रसि-से: प्रा, दि-स्यो: ६॥, ईस्।१।)।

एभ्यो दि-स्वोरीम् स्वात्। *

पूर्द्र। अस-स्वात् असीम ईमि सेलीपः।

(भस खात् ४।, भसि ७।, इमः ४।, ईमि ७।, भेः ६।, खोपः १।)।

भासात् खाच परस्य भासि, इमः परस्य ईमि, सेलीपः स्थात्। भारतीत् अवेतिष्टां। 🌵

पू६्३। अनुस् सिद्देरभुव:।

(धन्।१।, छस्।१।, सिर्वः ५।, भस्वः ५।)।

सेर्देश परस्य अन उस् स्थात् नतु भुवः । अचेतिषुः, अचेतीः । \$

^{*} कदादिष प्रसिष िथेति तथात्। दिय िय तथी:। कद स्थप यस प्र-प्रम्त जच इति पञ्च कदादि:। प्रसिदिति प्रसिधातः, स्वक्ष्यके तिप्। सिरिति (४५१) स्त्रां सि:। एतेभ्यः परस्य देः सेष ईत् स्यादित्ययः। कदायिक्थ्यां स्या दि-स्योरेव, कदादेश्यां सि-स्यव्यानिन प्रसिर्भू इति पादेशेन च स्त्राः दिस्योरसभावात्। सेसु स्त्राः दिस्योरेव, स्या प्रसभावात्। पाणिनिः अहादक्ष्यः।

[†] भास् च स्वेति तकात्। भाग् प्रत्यादारः। घवेतीत्—वित—व्या दि (५५०, ५५१, ५५४, ५४४, ५४१, ५६१)। घवेतिष्टां— घव दसः परस्य दूंखवेति विशेषनिय-मात् इस्तात् परस्यापि संगं लोगः। घवेष्ट घत्तीष्ट द्वादौ लीगस्वरादेश्योसु खरादेश-विधिवंतीति न्यायात् घादौ गुणे सिलीपो न स्वादिति। पाणिनिः पारारह, १०,१८।

[्]री सिव दिय विदिश्तकात्। सेः परस्य का चन् उन्, देनु घ्यापत्। यथा भवेतिषुः। चस्यः चपुः चदुः चनुः एषु (५५२) सेर्जुनि, त्यनीये त्यन्तवपनिति नायात्सेः परत्नात् चन् उस्। देनु चजनुरित्यादि। पाणिनिः १।४।१०८।

५६४। खेराद्यची कोषोऽनु शस्खपाद्य-न्तान्यस्थाद्यन्तौ।

(खं: ६।, भावच: ५।, लोप्य: १।, भनु ।१।, प्रस्-भनौ १॥)।

खेरायनः परो भागी लोष्यः स्थात्, पद्यात् यसादि-खपान्ती यदि स्योऽविशष्टस्तस्यादिनीयः, यद्यन्यादृशस्तस्यान्तो नीष्यः। चिचेत चिचिततुः चिचितुः। *

(३) चुतिर् घरगे।

५६५। शासु लिट्दात्पुषादे र्ङ् ष्टीपे—ज् छि सन्भु विषु मुचु म्लुचु गुचु ग्लु ज्विदितस्तु वा।

(शास-पुषादी: प्रा, कः ११, टीपे था, नृ-इरितः प्रा, तु ।१।, वा ।१।)।

यासी र्जुकारितो खुतादेः पुषादेश ङः स्थात् टीपे, जादेख वा। प्रज्यातत् अच्छोतीत्। जुच्योता प्

^{*} पादिषासी पण्चित पायच्तालात्। पादिरत प्रणां मध्ये इत्यथः। यस् च खत् च सस्यो, पादिष पन्य पायनी, सस्यो पायनो यस स मस्यपायना, सच पन्य तो प्रस्तिपायना, सच पन्य तो प्रस्तिपायनानासी, तो च तो स्थो चिति प्रस्तिपायनानासी, तथारायनी प्रस्तिपायनानास्थायनी। पत्र पद्माद्धः। पथात् पायचः परभागामाने इत्यथः। तेन यस्य स्थः पायचः परभागो वर्णते तस्य तक्षोपामनारं, यस्य तु न वर्णते तस्य प्रधमतप्त, प्रमादिन्द्यपान-संयोगस्य पादिवर्णो लोयः, प्रन्यविधसंयोगस्य पन्नवर्णा लोयः स्थादित। चिचेत इति चित— चप् (५५६) विलं, प्रनेन स्थः तलीपः, (५४२) वृषः। पाणिनः वृश्वाह्य, ११।

म लु इत् यस्य स लित्। युत् च पुत् च युत्पधी, ती चादी ययोसी युत्पुषादी। शास्य लिच युत्पुषादी चित तस्यात्। स्तरते लिदि स्तिनैव सिश्वे युत्पुषायी-वंडसं प्राचासत् रोपात्। इत् इत् यस्य स इतित्। जृत्य विश्व सन्सुख विश्व सुचुष सुचुष सुचुष सुचुष सुचुष सुचुष सुचुष अध्यय इतिति तस्यात्। शासुप्रधतीनां स्वकारित् विष्टार्थः। युत्राद्य प्राम्यपितः, च्यत् दो-पे स्विधासयात् स्या समयपदिनः स्वृतित।

(8) मन्य विलोड्ने ।

प्रईई। खात् ग्रिपत् किदा।

(स्थात् ५।, ठी ।१।, चिपत् ।१।, कित् ।१।, वा ।१।)। 🤋

पूर्ध। इसङ्गो लोपोऽखौ।

(इसुङ्न: ६।, 'लोप: १।, प्रणौ ७।)।

भीर्हम उङी नस्य लीपः स्यादणी।

ममथतुः ममन्यतुः । मर्थात्। १

जुतादयस जुत हत स्थ स्वन्द क्रम सित निद स्विद स्विद रूप घृट सुट सुट सुठ सुठ सुठ सुठ सुठ सुठ सु सुम नम तुम सन्म सन्म सन्म सन्म सन्म सन्म दिन नथीविंगिति:। प्रवादयस पुष एप तृष दृष सिव स्थ क्षम सुव स्थ सिव रथादि (=र्भ नय तृप ट्रप दृइ सुह सुह सुह सिह) अमादि (=स्म तम दम सम सम चम कम मट्) भम जम यम तम दस वस वस वस वम व्याव सुव तुम सुष विस जुम सुम सम सम चच स्थ हय क्षम क्षम तृष क्षम क्षम सुम सम सम चच स्थ हय क्षम तृष क्षम क्षम दिव डिप जुन गुप पुप क्षम लुप सुभ चुम नम तुम किद दित। वीपदेवेन तु गणपाठे सर्वे दिनि निर्देष्टा दित। भाष्युतिदित दिन्निन वा छ:। डम्म सेवी-भक्त, तेन पचे क्यां सिरीव। क्यां स्थि मुच्योत दित। पास्थिन: १।१।५५,५६,५०,५०। छ=भछ।

- * संयोगात परा ऋषित् ठी कित स्थादा। परमुत्रे इमुङ्नी लोपोऽणी ज्यानु वा इति क्रते, ऋषित्ज्ञां नसोपिवक्तले सिर्द्धे प्रथक् एतत्मृतकरणं अस्जधाती: (०५१) अस्जोऽरेखो भर्ज वेल्यनेन वभर्जे इत्यत्र भर्जादेशार्थे। ऋसंयोगासु निल्यम् यथा — पाणिनि: १।२।५।
- † उक् चासी न चेति उक्त, इसी इसनधातीरक्त इसक्त तस्य। नासि सर्यधिन (परे) सीऽग्रसिसन्। सन्यधातीः चतुम् पूर्वेष कित्, चनेन न लीपः। पचे किचामावान् चमुचलाभावे न न-लीपः। मध्यादिति (५२३) निल्पिसचे निल्पं न-चीपः। पाणिनिः ६।॥२४।

(५) कुछ हिंसा-संक्षेत्रयोः।

पू६्द। नेदित्पूजार्थाञ्जोः।

(व ११।, इदित्-पूजार्थाची: ६॥)।

इहितो थी: पूजार्थस्याञ्चतेस न-लोपो न स्यादणी। श्रतएवेदितो तुण्। प्रनिकुत्यात्। (५४८) कादिलान णः। क (६) विधु शत्यां।

पूर्ट्र। भ्वाद्यादिष्ण: स्रो ऽष्ट्रीव्यक्**ष्ठिवां।**

(भ्वादादिषा: ६।, स:१।, घ-छो-चक्क-ष्ठिवां ६॥)।

स्वादेरादी स्थितयोः व-णयोः स-नी स्तः, नतु च्यौ-खक्कष्ठिवां । पं

प्राची सेक सीक स्प स् स्ज स्नु स्यान्ये दन्याजनासादयः शोपदेशा धवः, खब खित् खत् खञ्ज खप सिड्य । गोपदेशा स्वनृज्यद्दं नाथ नाध नन्द नक्क नृ नटः।

^{*} इत् प्रकार: इत् यस्य स इदित्, पूजारंशाधी प्रत्य चेति पूजाधान्य, इदिय पूजाधान्य च तथी: । इकारानुबन्धधातीनेकार एव नास्ति कथं तस्य सीधी निधिष्यते स्रतभाइ प्रतएवेत्यादि, (पाधिनि: ७।१।५८) चत्त्व न-सोपनिवेधादेव । पाधिनि: ६।४।२४,३०।

⁺ भू: चादिर्यस स भादि:, भादिरादिः भाषादिः, षच वच च, भाषादी च भाषादिच तस्य। भादिरिति भू सत्तावानित्वादिर्दयगचालाकः, तथाच-भाषदादी सुद्दीवादि दिवादिः स्वादि-रेव च, तुदादिच बचादिच तनक्रादिसुरादय इति। भीरिधकारिऽपि भादियस्च नामधातुनिरासाये। पाविनिः ६।१।६४,६५। वार्तिकसः।

(सेला— घनो १॥, दन्याणन्तसादय: १॥,षीपदेशा: १॥, चन: १॥, सकाः — सिण्डः१॥, च ।१७, षीग्रदेशा: १॥, तु ।१।, घ-वतः — नट: १॥)।

सेंधति। %

प्७१। व्याच्छस गत्रवंबरे स:।

(ब्याक्कस्य ४।, मलर्थप्रदे ७।, सः १।)।

गत्यर्थे वदे च भी परदे वास्यांच्छत्य तः स्वत्। प्रच्छ नेवति। 🕆

प्७२। गीकः सुस्तुम सो सुवास्थान्त-सुझाः स्था सेनि सन्ज स्थन्जा अतिसेधा अतिसदाः

वीपरेश-कोपरेशी दर्शयति वार्डशा भार्थ्या।

रुच नह्च राषादि इच्छः, न धन्ति रुत् नहं नाथ नाथ नाय नक्ष न नटः सेवु धातुषु ते। रुत्पस्तिवर्जिता नादयो धारावः कोपदियाः, धातुसंचाकाले स्टंबादिलीन पठितार इत्यर्थः। कोपदियापलान् (५४८) इत्यनेन कलं। पाचिनिः हाराह्स स्वे वार्तिकान्।

सेधतीति विषधातुः कोपदंशः, (५६०) वस सः।

† व्यक्त तत् घष्णः चिति व्याक्तिसस्यः। नस्यभ्य वदयःतिस्यण्। घष्णः इति घनि-सुस्तार्थो निपातः। घष्णः-सेधित घभिसुस्तं गष्णःतौत्यर्थः। एवं घष्णः वदति घभिसुस्तं वदति। (५४%) व्यस्य ग्यनुकारिकस्यः विग्रेशीऽयं। पाषिनिः र।४।६८।

ऽयङ्सिचा ऽनङ् सामा उन्तव्यवस्वन परि नि वि सेव सुम ऽनङ् सिवा ऽने।ऽङ् सहां सः षो ऽस्यपि दश् स्थादेस्त देश्व। *

(गि-१क: ५१, सु—सुर्जा ६॥, स्था—सर्जा ६॥, स: १।, य: १।, प्राप्ति ७), ऋषि ।१।, दश-स्थादे: ६।, तु ।१।, हे: ६।, च ।१।)।

स्वादे-रस्यात्तसुत्रः स्थादे-रगत्यर्थ-मेधो ऽप्रतिपूर्व्व-सदो यङ्वर्ज-सिचो ऽङ्वर्जस्तमो ऽन्नार्थव्यवपूर्व-स्वनः पर्यादिपूर्व-सेव-सम ऽङ्वर्ज-सिव श्रोऽङ्वर्ज-सहाञ्च गैरिकः परः सः षः स्थात् अस्यन्तरेऽपि, द्यानां स्थादीनान्तु हिस्तानाञ्च।

निषेधति न्यषेधत । गती तु-गङ्गां व्यसेधत् । ф

^{*}गिरिकं गीक तसात्। सः स्वरुपः (नतु संयोगः), स्वीदकं यस स सालः, न स्थानी द्रायानः, स वासी सुज विति अस्यानसुज्। अस सुभय सीय सुवय अस्यानसुज् । स्वामी सिवयित अयङ् सिवः, नासि अङ् यसात् सी इनङ्, स वासी सिवयित अवङ्क्षाः, वि-अवाध्यां स्वनः व्यवस्तः, असे (भवणे) व्यवस्तः अन्नव्यवस्तनः; नासि अङ् यसात् सीइनङ् स वासी सिवयित अवङ्क्षाः, वि-अवाध्यां स्वनः व्यवस्ताः, असे (भवणे) व्यवस्तः अन्नव्यवस्ताः; नासि अङ् यसात् सीइन् स साधी सिवयित अवङ्क्षितः, भीय अङ्च भीइडी, न विवयित भीइडी यस सः अनीइङ्, स जासी सह भित अनीइङ् सहः ; सेवय सुमय अनङ्सिवय अनीइङ् यसात् सीवस्तानदृष्टिवाद्वीइङ्सहः ; परिय निथ वित्य परिनिवयः, तेथ्यः सेवसुमइनङ्सिवाइनीइङ्सहः ; प्यात् स्थाय सेनिय सन्त्रय स्वन्त्रय अगतिसिथय अप्रतिसद्य अयङ्क्षिचय अनङ्भाव्य अनङ्भाव्य अनुव्यवस्त्रय परिनिविक्तिस्तमुम् अतिसद्य अयङ्क्षिचय अनङ्भाव्य अनुव्यवस्त्रय परिनिविक्तिस्तमुम् अतिसद्य अयङ्क्षिचय अनङ्भाव्य अनुव्यवस्त्रय परिनिविक्तिस्तमुम् अतिसद्य अवङ्क्षिचय अनङ्भाव्य अस्तिस्वयः परिनिविक्तिस्तमुमुम् स्थाः ।

[†] भव सुव इति तौदादिकस्य षूत्रा चीपे इत्यस्य ग्रहणं, नतु पूष्डल पूर्योङ इत्येतयीः। मिनिरिति नामधातुः सेना-शब्दात् (८५८) जि:। निषेधतौत्यव भगत्यथंलात् वर्लं, च्या दिर्पप न्यपेधदित्यव भम्च्यवधानेऽपि वर्लं। गत्यथं तु व्यसेधदिति न पलं। संध इति निर्देशात् दैवादिकस्य निसिच्यतौत्यादौ न पलं। भवस्यपतौत्यव व्यवस्थनः

(७) विधू मास्त्रे माङ्गस्ये च।

५७३। वेमूदित् खर चाय स्फाय प्याय सूति सूय धूञ रधादि निष्मुषोऽरवसो रुदुसुनोस्त्वश्याः।

(वा ११, इम् ११, कदित्—निष्कुषः ४१, घरवषः ६१, घटुसनीः ४१, तु ११, घष्याः ६१)।

एभ्यो वसस्यारस्य दम् स्यात्,वा, रौत्यादेसु ठीवर्जे ।
असेधीत्।

५७४। वजवदरं लजनिमो ऽजिश्विजागु विः सौ पे।

इत्युक्ती: गीकिभिन्नादिषि पत्नं । सुम् इति सुम्-भागमः (७५३, ०६६) । (१११) किला-दिल्यनेन प्राप्तं चपमगैनिसिक्तमेव घत्नं भ्रमेन नियम्यते, तेन विसीति प्रतिस्नाति इत्यादी न घत्नं ; तोष्ट्रयते इत्यादी खि.निसिक्तनं घत्नं स्यादेव । किलादित्यन यथा, तथा इष्ठापि विसर्गन्यवधानेऽपि पत्नं स्थात्, यथा नि:ष्टौतीत्थादि । पाणिनि: पाश्चिस्, ६६,६७,६८,६८,००,११३, वार्त्तिकानि च ।

क तत् इत् यस सं जिदित्, रघ मादियंस स रधादिः, निमः क्य निस्तृष ; किदिस स्वरथ चायस स्मायस प्यायस स्तिय स्वय धूजन रधादिय निस्तृष चित तसात्। क्य द्य सुव नय तसात्। स्वर इति स्वृज प्रदीपतापयोः, सजातीय-धालन्तराभावात् स्वृग्रहणे नैविष्टिसी से सरग्रहणं किचित् निर्धेषं वाधिला विकल्पीऽयं प्रवर्तते इति ज्ञापनार्थं, अत्रव्य (६१६) नेस्तस्थप इत्यनेन इस्निपेधेऽपि सस्वरिय सस्वयं इति भनेन वा इन्। स्ति स्य इति भदादिःदिवाधोगं हणात् षू म चिपे इत्यस्य भसावौदिति निर्णानम् । रधादिनु रघ त्य द्य सुष्ठ सुष्ठ सिंह नम्म इति भयावौनिमतान्तवादायः। कृतस्त अष्ट। स्वमते किदिस्तेन सिद्धौ स्व-रधायां रिद्य पाठः प्राचीनमतान्तवादायः। कृतस्त इत्येतेषां ज्ञां विकत्यस्थेन वर्णनं (५८४) नेमसम इति नियमात् निर्थं इन् स्यादिन । पाणिनिः ०।२।४४,४५, वार्त्तर्भ "किति तु नित्यः प्रतिपेधः। स्तृत्वा। स्त्वा। धूला।" इति।

व्रजे वंदे-ररन्तस्यालन्तस्याजन्तस्यानिमय सौ पे विः स्यात्, न तुः जि-स्त्रि-जागृगां। श्रसैसीत्, श्रमेक्षिष्टां। अ

पू ७५। ढभात् तथीघीऽघः।

(ढभात् प्रा, तःथी: ६॥, घ: १।, घघ: प्रा)।

टभात् परयोक्तवयोर्धः स्यात् नतु धाजः। श्रमेदां। वि (८) खद स्वैर्धे विधे च ।

पू ७६ । इसादे: सेमा ऽद्धारे दित्चणखस-वधा वाङत: सौ पे त्रि:।

(इसादे: ६।, सेन: ६।, घ-इ-म-य-एदित्-चण यस वध: ६।, वा ।१।, छङत: ६।, सौ ७।, पे ७।, ति: १।)।

हमयान्तादेकारेतः चणादेवान्यस्य सेमो हसादेरुङोऽका-रस्य त्रिः स्यात् वा सौ पे। प्रन्यखादीत्, खादिलात्र णः (५४८), त्रखदीत्। अ

[•] नास्ति इम् यसात् मीऽनिम्। तजय वदय घर्ष घत् च घत् घर्ष घत् च चिति तस्य। जिय यिय जारकित तत्, न तत् घिजित्वजार तस्य। घर घल् — एतदन्तथीर्यहणं। घच् इति स्वरवर्णाः। तजेर्वदिति, घातीः स्वरूपकयने इप्रत्यथी वक्तन्यः। घनिम् इति ददा इम् न स्थात् तदेव, तेन घमेसोदिति, इमी विकल्पपचे घनिम्लात् स्थि इकारस्य हिन्दः ऐकारः(८) घचघारास्तेज् विरिति नियमान्। वज्रसाह-चर्यात् वद इति दन्यवकारादिः। (६८८) जागोऽणविति गण्यापाविष इह जार-वर्जन विशेषविधानान् प्राप्ताया वर्षेनिविधार्यः। पाणिनः शरार, १,१,४। निविधन् प्रमुवि प्रदत्तः।

[†] ८भ इति प्रत्याद्वारः ८ घघभ इति । भ्रमेत्रामिति विकल्पपचे भ्रमिल्लात् इन्ही, (५६२) ଖি- जीपे, भनेन तस्य घः । घाञलु धत्तै इति । पाणिनिः घारा४० ।

[‡] इस् त्रादिर्थस्य स तस्य । सह इसा वर्त्तते य: स सेम् तस्य । एत इत् यस्य स एदित्, इत्त सच यच एदिस चणक्ष अस्य यक्षच तत्, न तत् कक्षीयदित्वणअस्यवध

प्७७। ज्ञिलल्येनुङतीः।

(ञ्चिति ०।, भन्येजुङतो: ६॥)।

धोरन्यसीच उङोऽकारस्य च वि: स्यात् चिति णिति च। चखाद। अ

पू७८। **गण्यन्ये वा।** (पि^{१०।, घन्ये ।, वा।१।)। चखाद चखद। गं}

(८) गद भाषे।

प्रणिगदति। \$

(१०) बद खेर्थें।

पू७१। तृ फल भज तप यथ ग्रथ दभादा-न्ताखह्मां था: कित्-सेमथपदे: खिलाप्या-ग्रग

तस्य । उङ्चासी पश्चिति उङत्तस्य । इन्तादिनु पश्चीत् प्रकरीत् प्रकरीत् प्रकरित् प्रकरित् प्रकरित् प्रकरित् प्रवित् प्रवित् न बिडिः । यखादौत् प्रखरीत् प्रविन वा बिडिः । पाणिनिः ९।२।५,९।

^{*} अच याच ज्यो, ज्यो इती यस स ज्यात ति त्या । चन्यासी इसे ति चन्येच्, चन्यं चार्यदित एकंत, चन्येच एकंच ती तयी: । चन पुनः एकती यहचात् इसादिति । तिन धातुमानस्य चन्येच एकत्य तिः स्यादिति । एकत्त इति वेन क्षेत्रापि एकतो यहचं, तेन चभाजि चलाभि इत्यादौ (१२६) न कोपे ततः एकतो इति: चन इत्ती धोरिति यहचात् त्वचयतीत्यादौ जिसमेतस्य (६२१) धातुमंत्रायामित त्व-स्यस्य धातुलाभावात् एकतो न इतिरिति । नागरयतीत्यादौ (११८) गुने, एकनिस्तिनं कार्यो कार्यान्तरस्य वाधकमिति न्यायात् पुनर्न इतिरित । च्याद इत्यन एकतो इति: । पाणिनः अश्रिस् ।

[†] अपन्ये (चलनपुरुषेकवचने) स्विपि परे धोरन्यस्थेच सक्कीऽकारस्य चित्रः स्थादा इ.स.चै:। पाणिनि: ७।१।८१।

[🛊] प्रविगदतीत्वत्र (५४९) गदावलनिर्यतं ।

दद वाद्यन्यथा-िख णुनलोपिनां जूवम स्वम नस फणादि वधार्थ-राधान्तुवा।

(तॄ—इसं ६॥, ठ्या: ६।, कित्-सिमयपि ७।, श्वत्।१।, ए: १।, खि-खोप: १।, घ ।१।, घ-श्रम-नक्षोपिनां ६॥, जु—राधां ६॥, तु ।१।, वा ।१।)।

नादीनामाद्यन्तस्थितास्यहसानाञ्च अकारः ह्याः किति सेमष्टिप च एः स्थात् खिलोपय, न त प्रश्ने देंदे विकारादे रन्ध-याभूतखे णुमतो नलोपिनय, जूवमस्थमनसफणादीनां हिंसा-र्थस्य राधिय वा स्थात्। बेदतुः बेदुः बेदिष । अन्ययाभूत-• खेस्तु चखदतुः। ॥

(११) गद मञ्दे।

(५६८) भ्वाचादीति णो नः। नद्ति। प्रणिनद्ति। ф

तृथाती पुंमस्वात् पत्नभनीर यथा विवात वपः संघी गादिलात् यथायीः संघी गादिल्लात् निलीपिलाव दभी निलीपिलात् सप्राप्ती प्रथमितः । प्रत्यादिस पत्म राज भाज भाग भाग स्थम स्वम इति । स्वन प्रवादिपाठसामर्थादेव स्थानारस्थापि एलं, एवं वधार्थराधीऽपि ।

बेदतुरित्यादि वर्ग्यंबकारादित्वात् न निषेध: । दत्त्यादेमु ववज्ञतु: ववनतृरित्यादि । चस्रदतुरिति (५५८) स्रस्थानं च-करणादन्ययास्त्रितं । पाणिनिः ६।४।१२०,१२१,१२२, १२३,१२४,१२६,वार्त्तकानि च ।

[ं] सः संयोगः, न स्रोऽसः, षस्यवासी इस चिति षस्यइस्, षायान्तयोः षस्यइस्
येषां ते षायानास्यईमः। तृथ फलय भनय नपय यथय यथय दभय षायानास्यइसय
तेषा। सइ इसा वर्णते यः स सेस्, सेस्चासी यप् चेति सेस्यप्, किन्न सेस्यप्च तिका। सनः स्थानकार षादि यंस्य स वादिः, षन्यवा ष्रन्यकारो जातः खियंस्य सेऽन्ययाखिः, ष्य नलीपय तौ सन्तोपौ, तौ विविते ययोन्तौ सन्तोपिनौ ; प्रश्य (पाणिनमते तु दन्यानःः) ददय वादिय श्रन्ययाखिय सन्तिषिनौ च ते, पसात् नञ् समासे तिषा। वधाययासी राधचेति वधायराध्य, जृथ वसय समय चसय फ्राइय्थ

[†] प्रणिनदति (५४८) गदायन्तनेर्थलं।

पवत ।

, (१२) ऋई पीड़ायां।

पूट_। स्थान्तादादादादात्रोः खेरान् कां वा त्वाञ्छे: ।

(स्वान्तादादि-ऋदादि पन्नी: ६।,खे: ६।, पान् ।१।, व्यां ०।, वा ।१।, तु ।१।, पाञ्के: ६।)। स्यान्ती योऽकारादिस्तस्य ऋकारादेः ग्रश्नोतेश्व खेरान् स्यात् व्यां मानर्ध । * श्राव्छतेसुवा।

(१३) इदि परमैखर्थे।

पूर्र। सूयोऽमजादे: । (भ्यः ११।, भन् ११।, भनादेः ६।)। श्रजादेरिम क्रते पुनरम् स्थात्। ऐन्दत्। 🕆

प्रदर्। विं जादि-दयायासत्यानेकाचोऽनृच्छू-र्णाष्ठ्रामाम ।

(विजादि - भनेकाच:, प्रा, भन्कुणीः प्रा, खां था, भाम् ।१।)।

स्य: संयोगीऽने यस्य मृस्यानः । भत् भादिर्यस्य सः भदादिः । स्यानायासी भदादियेति स्थानादादि:। ऋत् भादिर्यस स ऋदादि:। स्थानादादिव ऋदादिव भग्नभृति तस्य। भत्र ऋदादिरिति भन्तवर्त्ति वर्णान्तरसहित-ऋकारादिरैव, तेन ऋधाती-नं ग्रहणं। चानई दति चई पए, दिलं, खे: छाने चान्। पाणिनिः ७।४।०१,०२, वार्त्तिकसः ।

⁺ भव (सरवर्णः) मादियंस सीऽजादिसस्य। मिस कते इति (५५०) घीटीथी-खन प्रत्यनेन। ऐन्दर प्रद घरएवेदिनी तुण् इन्द, घ्यादिण् (५५०) पनि, अग्री धातोरिकारिय सन्ती, पंचात् चनेन पुनरम्, ततः पुनः मन्तिः। चर्यचम्हयस्य सन्ती पुनरन्तरणस्य वैयर्थात्। (५०५) घीटी थीष्यम् घीरमा अनादेर्त्रिय, इति क्रते सिखी पुनरेतत्त्वकरणं चादिष्टस्थापि चनादेः पुनरम्विधानार्थे, तेन यज्ञधातोः ऐज्यस, वयधाती: भौटामित्यादि सिद्धं। पाणिनि: ६।४।०२।

वसंज्ञेजादेरीय त्रय त्रास एभ्यस्थान्तादनेकाचय त्राम् स्थात्, नतु ऋच्छूणीः। *

भू ८३ । स्वस्क्रन्वामः। (मृ-चन् क्रारण, चतु ।रा, चानः धा)।

भू अस् क एते आमन्तादनु प्रयुज्यन्ते । इन्हास्त्रभूव इन्हामास इन्हाञ्चकार् । 🕆

प्र⊏8। नेम ऽसुम्झ स्टस्सु दु श्रु सो-रेव

क्याः । (न।१।, दम्।१।, चमुम्क--सीः ५।, एव।१।, व्याः ६।)।

एभ्यएव ळा इम् न स्थात्, अन्यस्मादनिमीऽपि स्थात्।

कर्गर्तः । कथासौ इच् पित विच, विच् पादिर्थस स विजादिः, विजादिः इयय प्रस्य प्राप्तस्य स्थय प्रनेकाचित तथात् । स्टब्कं कर्ण्य स्टब्क्णः, न स्टब्क्णः तसात् । त्या प्रत्यानाः । त्यानानामनेकाचलनेव प्राप्तौ प्रथक् य इयं स्वामास (८४८) इत्याद्यर्थम् । पाणिनिः १।१।१५.१६,३०।

[†] मूच भम्च क्रवेति भूसक्त । त्रान दित पद्या एव परतः प्रयोगे सिंडे भह्य इणं क्रियाविष्य प्रयोगस्य स्वानं दिए प्रयोगायं । तेन तं पात्र यान्य समास दित, एक्ताम् पद्यक्ति दित च रघुभ ही । (दर्नु न पाणिनिस्स्यतम्) । प्रति तेत्र दित्र प्रयोगः पुन्ति दित्र प्रयोगः । भव भाक्षिने (६००) स्टिराक्षायित, (०२०) प्रयाम् वेति भाक्षि भूदिरनुप्रयोगः । भव भाक्षिने पद्यक्षि दस्तु भ्योऽस्सुवी-रनुप्रयोगे कत्ते ति कतस्य भाक्षिने परक्षे परादेशी वक्तयः, करीते रनुप्रयोगे तु (क भूगेदि क्रियापत्रे) मूल्योगिद्व परक्षे परादेशी वक्तयः । पाणिनः श्राधः , भव स्वे प्रयोगिवधानसानव्यादेव (६८२) न मू-भादेशः । पाणिनः श्राधः , भव स्वे प्रयोगिवधानसानव्यादेव (६८२) न मू-भादेशः । पाणिनः श्राधः , भव स्वे प्रयोगिवधानसानव्यादेव (६८२) न मू-भादेशः । पाणिनः श्राधः , भव स्वे प्रयोगिवधानसानव्यादेव (६८२) न मू-भादेशः । पाणिनः श्राधः , भव स्वे प्रयोगे कर्षे सनुपरोपादानः विप्यानं निक्क्ष्यं व्यवहितिनिक्ष्यं द्वि त्यात्रे स्वानं क्षां प्रयान्यः ; तेन तं पात्रयां प्रयममासेव्यादिक्तमपाणि नैयमिति सिक्तः नाथः ।'' "तं पात्रयां प्रयममास पपात प्रयाद्वित दिति गोयोभन्दः । "चामः क्रञनः प्रयुक्तवे" दिति कात्वस्त्रम् । "व्यवधानिऽदि हति गोयोभन्दः । "भानः क्रञनः प्रयुक्तवे" दिति कातकस्त्वम् । "व्यवधानिऽदि हस्यते, तं पात्रयाम्यवममास पपात प्रयात्रे" दिति प्रानं भः ।

द्रन्दाञ्चकर्घ। 🎄

(१४) णिदि क्रवायां।

प्रणिन्दति प्रनिन्दति । 🌣

(१५) उख गती ।

प्रप्। खेर्ये। रियुवर्णे।

(खं: ६।, बी: ६।, इयुव ।१।, अर्थे ७।) ।

स्वेदिवर्णीवर्णयोः क्रमादियुवी स्थातां त्रर्णे परे। डवोख। त्रर्णे किं, जसतुः!। ध

(१६) अन्तु यतिपूजनयोः।

(५६८) नेदित्पूजार्थाचोरिति, अच्यात्। गतौ तु अच्यात्। §

(१७) सुचु इर् गत्यां।

(५६५) शासुलिद्ब्दिति को वा, श्रमुचत् श्रमीचीत्। ग

[†] प्रशिन्दति प्रनिन्दतीत्यचः (५४८) वा गलं।

[्]रंडय उद्याय तस्य यो:। इष्य उद्यातत्। चर्चे प्रप्रभानवर्षे परे। उदीख इति उद्धा चप् दिलं, खलीपः, स्वस्य उकारस्य गणाचीकारः, (वर्णादाङ्ग वसीज इति व्यायात् चादी न (२२) दोर्घः।) ततः चनिन ले. उस्थाने उन्। ऊखन्रित्यका किति गुणाभावे समानवर्णलात् न उब्, सन्धिः। पाणिनिः ६.४।९८ ।

[§] भधात् भन्व दो सात्, पूनायेकात् न नर्लापः । गत्येषं भचादिति न लीपः । श्रुभमुवदिति सुव टौ-दि, चादिकात् इः,डिति गुणाभावः । पचे व्यां सिरिकादि ।

एवं (१८) स्नुचु, युचु, म्बुचु। (१८) श्राह्य श्रायामे।

সাৰাক্ত মাক্ত।

(२०) वज गती।

ववजतुः, ववजिष्य । (५७८) वादित्वात्र ए: । 🌣

(२१) वुज गती।

(५०४) वृजवदेति वृ:। अवाजीत्।

(२२) अज गती चेपणे च।

पूद्ध। व्यजोऽरे वा त्वनवस्ववजनकृषि।

(वी ।१।, भन: ६।, भरे अ, वा ।१।, तु ।१।, भन-विध अ, भ घल्-मल्-कापि अ)।

अजते-ररे वी खात्, अन-त्ये वसे च वा स्थात्, न तु घञादौ। 🕆

प्राप्त । नेमेकाजाद्युदतोऽधिव यि डी शी युक्षा सुच्च च्या वुः।

(न ।१।, इम् ।१।, एक।च्-मात्-इ-उत्-ऋतः ५।, पश्चि--वः ५।)।

^{*} खुनुप्रस्तयोऽपि त्रतुवन्धाः गत्वर्धाः । श्रानाञ्च श्राञ्च श्रति श्राञ्च खप् (५५०) वा खेरान् । वजधातुदंन्यवकारादिः, श्रतएव न खेलापः नच श्रकार एकारः ।

[†] अनस वस्य तिक्षन्। घज्य अल्च काप्च घजल्काप् तिक्षन्। अन इति (११३४) मत्ययः। वस् मत्याचारः। घज् अल् काप् एते च (११३४,११४०) प्रत्ययाः। 'वी' इति दीर्घीचारणं किं—प्रशीतः, वीला, वीतिः इत्याद्यर्थम्। पाणिनिः साधाप्रद्रप्रः।

खगदेरन्थेभ्य एकाज्भ्य त्रादन्तेवर्णान्तीदन्त-ऋदन्तेभ्य इम् न स्थात्। त्रविषीत् त्राजीत्। विवासः। #

पूट्ट। सुध्वोरणुचीयुव्यो व्याँ त्वस्यान्ते-काचो व्याः।

(त्रु-ध्वी: ६॥, प्रस्तिचि ७।, इयुव् ⊧२।, यी: ६।, व्यी १॥, तु ।२।, प्रस्थात् ५।, नैकाची: ६॥, व्यी: ६॥) ।

श्रीर्घीय द्रवर्णीवर्णयीरणाविच द्रयुवी स्तः, श्रानेकाचीसु श्रस्थात् परयोः क्रमादुवर्णेथर्णयो व-यो स्तः। विव्यतः विव्युः। वि

विव्यतु: विव्यु: अभयन भनेन द्रस्थाने य: । एवं विव्यिव विव्यिन ।

^{*} एको ऽच्यस्य स एका च्। भागच इय उत्च चृत् चित भागु इत्, एका वासी भागु हमेति एका जायु हत् तसात्। यिश्व शिय शीय युष क्य ग्रम स्वय चृत्र चृत्र व्या त्र स्वय चृत्र चृत्र व्या ते, न विद्यले ते यत्र तत् भाश्व श्वि की यु क ग्रास स्वय चृत्र चृत्र वृत्र वृत्य वृत्र वृत्य वृत्य वृत्र वृत्य वृत्र वृत्य वृत्य वृत्य वृत्र वृत्य वृत्य

[†] शुख पुषु त्रधोः। नालि ण्यं िवन् सीऽणुः, ष्मण्यावावक्षेति प्रख्य तिथान्। इय् च उव् च तत् इयुव्। इय उय् यु तस्य। वच यच तौ व्यो। न स्थो- उस्यलक्षात्। न एको नैकाः, नैकीऽच् ययोजौ तथीः नैकाचीरिति युष्वीरित्यस्य विशेषणं। उय इय् वी तयोः स्थोः। यीरित्यक्षयचनान्तस्य इयुव इत्यनेनैव कमः, न तु श्रुष्वीरिति विवचनान्तेन, श्रीरिवर्णसासभावा्। तेनायं नियमः— षणाविष् परेश्रोक्षयणस्य उव् स्थान्, धातीरिवर्णावणयीः क्षमेण इयुवी स इति। एवं व्योरिति विवचनान्तस्य श्रुष्वीरिति विवचनान्तेन कमः, तेनायं नियमः— प्रनेकाचः श्रीरस्थीगात् परस्य अवलं इवर्णस्य यकारः इति। (३५) यसायवायावः इत्यस्य, धातुप्रकरणे प्रयं विशेषान्यमः। पाणिनिः इष्टाश्र ००००२।

पूद्र। सजहशत्वातात्वती नित्यानिम्तु-स्थपो वेमनृव्येऽदः।

(सृज दश घच्षाठ-घलतः ५१, नित्य-घनिम्-तुः ५१, घपः ६१, वा ११।, ६म्।१।, घन् स्र व्ये ऽदः ५।)।

स्रजिर्दृ भेरजन्तात् भ्वादिपाठे त्रकारवतो नित्यमिम्रहितहत्वात् थप इम् वा स्थात्, नतु ऋ व्येज चट्ट एभ्यः । विविधिय विवेष । #

(२३) चि च्ये।

पूरः । द्वीऽज्यरे । (र्धः ११, बच् १११, वि ८), परे ०)। त्रजन्तस्य र्घः स्थात् प्ररे ये परे । चीयात् । 🕆

^{*} यतः प्रस्यस्य घलान, पाठे (दशिष्यण्याठे) जलान् पाठालान् । स्जल्प स्थ च च पाठालांसित तस्मात् । नित्यम् प्रानिम् द्र(प्रत्ययं) यस्मात् म नित्यानिम्ता तस्मात् । नित्यम् प्रानिम् द्र(प्रत्ययं) यस्मात् म नित्यानिम्ता तस्मात् । नित्यानिम्तारिति घजनस्य पाठालतस्य विशेषणं । स्थ व्यय पर चिति स्थ्येऽद् न स्व्योऽद पर्वेऽद तस्मात् । पाठकाले प्रकारवत्तो यथा पच—पेविष्य पपक्ष्य, वच—उविष्य उवक्ष्य स्त्यादि । पाठयस्यं विना क्षेत्रस्य प्रति क्षते स्वार्यः विना क्षेत्रस्य पक्षत्र स्त्याद्यः नित्यानिम् । नत् स्र्योद्यः विद्याद्या नित्यानिम् । नत् स्र्योद्यः विद्याद्या नित्यानिम् । नत् स्र्योदः त्रत्यात् । नित्यानिम्तः क्षिं — प्रियायय पेठिष्य इत्यादो नित्यानिम् । नत् स्र्योदः व्यय स्थान्यस्य स्वार्यः च संसत्त्वात प्रमङ्गान्याते, (६१६) नेस्तस्यपेऽद्वृक्तुरित्यनेन इ स्वः भिन्न-स्टलात् यप इस्तिष्यं, स्वः क इति स्योदि नित्यानिम्तृत्वात् प्रनेन विशेषानात् वेम्प्राप्तौ निषेषः, (५८४) नेमस् प्रति नित्यमात् (५५४) वसोऽरस्येति नित्यमिम् स्थादेव । प्रज्ञाताः यप्, वौ पादेभे, प्रकल्यात्वाद्य । पाणिनः । २।६१,६२,६३, ६५,६६, कारिका च ।

[्] न र: घरससिन् घरे, यि इत्यस्य विश्वष्यं। घत्र सामानाजनिर्निशात् जिवहवाघरित, हरिरिवाघरित शिवायते हरीयते इत्यादी लिङ्गानस्थापि दीर्धः। धार्ते रत्तास्थातस्य प्रक्रतिर्विकतरिपि घघी दीर्धः, यथा, क्षे — ह्यात, क्षि — स्थादिकादी भौ क्षतिऽपि दीर्धः। सियात् कियादित्यादी तु (६१०) सम्स्याने इत्यान-रि चार्देशधामस्यात् न दीर्धः। वि — दी-यात्, दीर्घः, चीयात्। पाषिनः १४। १५।

(२४) कटे वर्षावरणयोः।

चकटीत्, एदित्त्वात्र विृ: (५०६) । *

(२५) गुपू रचणे।

पूर्श। कम ऋतो गुपूधूप पण पनो जि-ङीयङाया धः।

(कमः ४।, ऋतः ४।, गुपू घूप-पण पनः ४।, जिङ्-ईयङ् भायाः १॥, घः १।)। कमो जिङ्, ऋतेरीयङ्, गुपादेरायः स्थात् स्वार्धे, तदन्तयः धुसंज्ञः । गोपायति । पं

पूर्र। वारे। (वा ११, भरे ७।)।

एभ्य एते वा स्यु: अरे विषये। अगोपायीत् अगोपीत् अगोपीत्। गोपायामास जुगोप । इ

[ः] कट---ए इत् सिचि श्रश्डिः, वर्षणे भावरणे च वर्तते । सकटीत् टी-दि, (५৩६) एट्स्वात न ब्रडिः ।

[†] गुपूत्र धूपत्र पणत्र पन चेति तस्मात्। जिङ्च द्रेयङ्च पायत्र ते। जिङी अकारी व्हार्थः, इन्कार पात्मनेपदार्थः। द्रेयङो इन्कार पात्मनेपदार्थः पगुणार्थत्र । पर्थिवभीषानिभिधानात् खार्थे एव स्रः। गुपधातोः त्रायप्रत्ये, गुणे, धृतशायां, गीपाय-धातीकिष्। पाय इति पदनिनिर्देशात्, गोपायधातीकीं क्रते, (००५) प्रकारकीषे, गोपायि-धातोः द्यादि, पार्गिपायिदिति प्रन्तीपित्वात् (६२८) न इस्तः। पाणिनिः १।१।२८,२८,३०।

[‡] भरे इति विषयसप्तभी, तेन, व्यानिव विषयतिप्रत्ययः सभाव्यते इति टीप्रश्तु-त्यत्तेः प्रागेव भादेशाः, ततो धातुसंज्ञायां टीप्रश्तिविभक्तुत्पत्तिः। भगीपायीदिति भायान्तत्वेन धातुसंज्ञायां धात्नन्तरतात् (५५४) नित्यन्ति। पचे कदित्तात् (५०३) वा इस् भगीपीत्, भगीभीदिति भनिसतात् (५०४) इतिः। गीपायामास इति (५८२) प्रत्ययान्तवादनेकाथल। दा भाग्। पाणिनिः ३।१।३१।

यवं (२६) धूप ताये। क्र (२७) तपी सन्तापे।

(५५8) ऋीदिखात् नेम्। अतासीत्।

(२८) चमु भदने । १

· पूर्व। छिवुक्कमाचमोऽपि र्घः।

(ष्टितु-क्रम-चाचन: ६।, भवि ७।, र्घ: १।)।

एषां घी: स्यादिष । श्राचामित । श्राङ: किं, चमित विचमिति। (५७६) मान्तलात् न ब्रिः, श्रचमीत् । क्ष

(२८) क्रमु पाद्विचेपे।

पूर्छ। क्रम क्रम स्वम स्वास भास त्रस तुट लाष यस स्यम: य्यन वा रे घे।

(क्रम-संयम: ५१, ग्रान् ११।, वा ११।, दे ७।, वे ७।)।

एभ्यो धे अर्थे प्यन् स्थात् वारे परे। क्राम्यति। §

^{*} ध्पधातो हिद्साभावात् टी दि अधूषागीत् अधूपौदिति (५५४) नित्यनिम् ।

[†] चम-घातुः चकारामुबस्यः क्वा-वेट् (११७२)।

[‡] हितुय क्रमच मा चनच तस्त्र । मिपि इति (५४१) ऋप् परे । भाङपूर्वस्येव चनो दीर्च:, नतु केवलं स्य मनोपसर्गपूर्वस्य च । पाणिनि: श्रेश्यू, ''दीर्घले माङि चन इति वक्तव्यम्'' इति वार्तिकच ।

[§] क्रमय क्रमयंत्रादि दन्दं तथात्। श्रव सास मामी दन्यानी तालव्यानी च । तालव्यानी इति क्रमदीव्यरः । पाणिनिन्नु भाग्न भाग्न इति पठति । संयथी यडणं श्रन्थोपसर्गनिरासार्थे । ग्रानः ग्रन इती यक्तारिव्यतिः । ग्रपो वाधकोऽयं । ग्रिन्तात् (५२०) र संज्ञायां, (५२२) डिस्तात्, नृष्यतोत्यत्र व (५४२) मृषः । नकारसु नृष्यती इत्यादी (२४५) नुष्यंः । ग्रानि परेऽपि दीर्घ इति गीविन्दभटः, तन्त्रते क्रास्यतीत्यादि । श्रानी विकत्यपचि तत्तदगणीयः प्रत्यय इति । पाणिनिः ११९००,०१,०२।

प्रप्। क्रम: पेऽपि र्घ:।

(त्रम: ६।, पे ७।, ऋषि ७।, र्घ: १।)।

कामति। %

ं ५१६। सु-क्रामोऽमे ऽरवस इम्।

(सु. जन: ५१, असे ०।, घरवस: ६१, इस् १११) ।

श्राभ्यां वसस्यारस्य इम् स्यावतु मे । श्रक्रमीत् । व

(३०) श्री यमु उपरमे।

पूर्ण। स्था दान पा जा घा ध्मा सा-ित्त द्या प्रत् सद् गिमष् यम जनां—ित्र यच्छ पिव जा जिघ धम मनच्छे प्रश्य शीय सीद गच्छेच्छ यच्छ जा: शिति। (सा-जनां दा, तिष्ठ-जा: १॥, गिति अ)। एषामेते क्रमात् स्थु: शिति परे। यच्छति। क्ष

[•] क्रमी र्घः स्यात् पे भपि परे। पे किं, विक्रमते, भपि किं, क्रमिष्यति । पाणिनिः । । । । ।

[†] सुक्रमाध्यामिम् (५५४) सिङेऽपि पुनरिम्विधानं, सिङ सत्यारक्षी नियमाय इति वायात् भात्मनेपदे न स्वादिति नियमार्थं, तेन कर्माण वाध्ये क्रमधातीसिन भक्षामि इत्यन, सेमत्वाभावात् (७४४) न इत्यः। याद्यग्नातीयस्य विप्रतिषेधी विधिर्पि ताद्यग्नातीयस्य विप्रतिषेधी विधिर्पि ताद्यग्नातीयस्यति न्यायात् सुधातीः परस्यैपदे एव भनेन इमि सिङ्गे, पुनः (५८०) नेभेकानित्यन सुधातीः प्रतिप्रसवः सुवितः सुवितवानित्यादौ इम्पाध्यथः। पाणिनिः शराइद्

[‡]स्थाच दा-म चेत्यादि इन्हें तेषां। तिष्ठच यच्छ चेत्यादि इन्हें ते। दान इति नका-रेत्-दाघातुग्रहणं चन्य-दाधात्नां श्रद्धशानयीर्यच्छादेशनिष्ठच्ययं। पा इति पानार्थ-गा-सहणं। चन्नीति चट गती चट खिंगत्यामित्युभयी:। इष इति तौदादिकस्थैन।

प्रदायम-रम-नमातः पे सेरिम् सन् चैषां।

(यभ-चात: ४।, पे ७।, से: ६।, इस् ।१।, सन् ।१।, च ।१।, एवां ६॥) ।

यमादेशस्नाच सेरिम् स्वात् पे, तेषाच सन्। त्रयंसीत् चर्यसिष्टां। *

(५८८) सजहमेति वेम्, येनिय यसन्य।

एवं (३१) णभी प्रब्दमत्वीः ।

(३२) इय नती।

ग्रह्यीत् (५७६) यामतलाव वि:।

(३३) दल मि भेदे।

(५०४) व्रजवदेति विः, श्रदासीत्।

(३४) जि फला विसर्धे।

फीलतुः फीलुः फीलिय । 🌵

अन इति देशदिकसेव। षष्ठ र इति नीक्षा शिक्षीति कथनं, इयक्तींत्य (६००)
प्रयोत्तिक, रेपरे सरकादेशनिहस्त्रयें। क्रमसु— '
स्था दान पा जा घा था सा सर
तिष्ठ यथा पिव जा जिम्न धम सब सरका
टम प्रत सद नम इत यम जन
प्रस शोय सीद गक्क इच्छ यक्क जा
पाणिनि: ९।६१९९,९८,९८।

[#]यम चरन चनन चचात् चतवात्। तेवां यमाडीनां स्थाने सन्स्थात, मद्ग चनी। पेकिं, चरंसा चटास दशादि। पाविनिः ७१२।७३।

[†] फल धातुः, जिः भयकः (१०८५), चा निष्ठाभावादिकः वेट् (१००२), विषः रचं छत्वादमं। फीसतुरित्वादि (५०८) खिलीपः, भकारस्य एकारः।

(३५) तार इज्ञगती।

प्रकारीत्।

(३६) ष्ठित जिरसने।

(খু ১ ২) ष्ठिवुलामिति र्घः, ष्ठीवति ।

पूर्ट। डिवजाद्यी: खेडक्रीस वा।

(डिय-पनाथीं: ६%, खे: ६%, ठ-छो: ६॥, तः।११, वा ।१।)।

तिष्ठेव टिष्ठेव, ष्ठीव्यात्। #

(३७) जिं भवे।

६००। जेर्नि: सन्-छो:।

(जै: ६।, गि: १।, सन् व्यो: ७।)।

जिगाय । 🅆

(३८) रच पावने।

प्रनिरचिति, पान्तत्वाच ए: (५४८)।

(३८) यच् व्याप्ती।

६०१। वाच-क्रगार्धतच: सुधे रे।

(वा ।१।, भच क्रमायंतचः ५।, प्रु. १।, घे ञा, के ञ)।

क हिन क मनादियः तथीः। उ च क च तथीः। हिनभातीः खैः उक्षारस्य मनादिशातीः खेः क्षकारस्य च तकारः स्थादा । यथा तिष्ठेन टिक्षेन, उतिच्छिपति खिचिक्षिति । हीव्यादिति (२२०) दीर्थः। "भस्य दितीयस्थकारककारीविति" वृतिः। "उच्छः तुक्" इति च सिद्धानकौसुदी ।

[†] जेगि: स्थान् सनिक्यास्य । वा-इयमध्यवत्तिंबाइस्य निव्यतः । यथा जिगाय, जिगीपतौत्यादि । जेनुबन्वोन्तिबन्तीति वक्तव्य । जित्रः तोः तुम्स्याने तिम्, भन्तु स्यानं सःभन्ति भवतौत्ययः । पाणिजिः २३५०।

भ्राभ्यां रे परे युः स्यात् वा घेऽवैं। श्रन्त्णोति श्रचति । * (५८८) श्रुध्वीरित्युव्, श्रन्त्णुवन्ति । (५७३) जदिलादिम् वा, श्राचीत् । (२१३) स्यादेः सी लोपः ।

ई०२। षढ़ी: का: सी। (ष-ड़ी: ६॥, मा: १।, में ०।)।

ष्ट्रस्य उस्य चकः स्यात् सकारे परे। चाचीत्, चाचिष्टां चाष्टां, चाचिष्ठः चाचुः। वे

एवं (४०) तत्त्रु कार्थे।

क्षणार्थः किं, निर्भर्तसने सन्तचित ।

(४१) णिच चुम्बने।

(पू ४८) प्रणिचति प्रनिचति ।

(४२) कषी विलेखने।

६०३। क्षप स्था स्पा तिप हप स्पः सिष्ट्रां वा।

एभ्य: सिर्वा स्वात् व्यां । \$

^{*} क्रमार्थशासी तच चिति क्रवार्थतच, षचय क्रथार्थतच चिति तस्मात्। यथा तच्चीति तचिति काष्ठं तचा, तन्करीतीलार्थः! क्रमार्थः किं, सनचिति चीरं साधः, निर्भत् स्थतीलार्थः। प्रच्णाति षच प्रप्रथयस्य उकारस्य गुणः। व्यां पाचीदिति (५०३) इस्पन्ने, पनिस्पर्वऽपि श्राचौदिति वच्यति। पाणिनिः ३।११०५,०६।

[†] भाक्षीदिति यनिमपत्ते, व्यां सि:, (५६१) ईम्, (२१३) कलीपे, यमेन पर्य कः: (१११) पत्तं। भाष्टामिति भनिमपत्ते, (५६२) सि-लीपे, (२१३) कलीपे, (४०) तस्य ट। भाज्ञिति भनिम्पत्ते कलीपे, षस्य कः, से: सस्य पत्ने, (५६३) अन् स्थाने उम्। पाणिनि: ८।२।४१।

[‡] क्राप च स्था चित्रादि तसात्। पर्वे क्राप स्था (६०५) सका प्राप्तिः,

६०४। वद्रीऽनिज्यासे दशस्जोस्त नित्यं।

(वा ११), ऋत् ११।, र: १।, भिक्तत्-भासे ७।, हशस्त्री: ६॥, तु ११।, निखं १।) ।

कषादीनाम् ऋकारो रः स्थात्वा श्रकित्भसे, दशस्जोस्तु नित्यं। श्रकाचीत् श्रकाचीत्। *

६०५ । इग्रषो ऽनिमिजुङो ऽद्दशः सक् व्यां स्थित्रस्वालिङ्गने । (इ-य-वः प्रा. अनिम्-इज्ञङः प्रा. प्र-दयः प्रा. धम्

भनिमिजुङो इ य-वान्तात् दय-वर्जात् सक् स्थात् व्यां, श्चिषतेस्वालिङ्गनेऽर्थे। भक्तचत्। पं

(४३) रुष हिंसायां।

६०६। वेम् सह लुभ म्ह सुश्च वस लग रुष रिषिषो स्तोऽरस्थ।

(वा ।१।, इस् ।१।, सह—इषी: ५।, त: ६।, भरस ६।) ।

तृप हर स्वां (५६५), ङ-माप्तिः। ''सम्बस्यक्रप्रत्यां चुे: सिज्वा बाच्यः'' इतिः वार्त्तिका। अत्र स्पृन दम्भते।

[•] नासि नित् यथिन् घोऽनित्, स चासौ भस् चेति तिखन्। क्रवाद्योऽनुवर्णने । वायहणं परत्नानु अत्तिनिवस्यये। भितित्-भसं इत्यमेन मुणिनि भसे इत्यथंः, तेन दिहचते सिख्ति इत्यत्न भनिम्-सिन (८०४) भगुणत्वे, न स्वकारस्य रः। केचिन् भितित् कथनं ङित्भसप्राध्यं, तेन हथ-यङ्नुकि दरौद्रष्ट इत्यादि। भकाचौदिति क्रष-टोदि, सिः, इन्, भनेन प्रथमं स्टस्याने रः, ततः (५०४) भकारस्य विज्ञः, पश्चे स्वकारस्यैत विज्ञः, भकाचौदिति। उभयन (६०२) प्रस्य कः, प्रतं। पाणिनिः ६।१। ५८,५८।

[†] इय तालव्य-शय मूर्जन्य-प चेति तथात्। नास्ति इम् यथात् चीऽनिम्, इच् खङ्यस्य च इजुङ्, चनिम् चासौ देजुङ्चित तथात्। चनिमिजुङ इति इशकी

एभ्यस्तस्यारस्य दम् स्वादा। रोविता रीष्टा। *

एवं (४४) रिष हिंसायां।

(४५) उष दाहि।

६०७। दरिद्रा काम कास जागुषा वाम् छा।

(दिरिद्रा — कपः ५१, वा ।१।, भाम् ।१।, व्यां ०।) ।

एभ्य ग्राम् वा स्थात् छां। (५८३) भ्वस् कन्वाम इति। श्रोषा-स्वभूव उवीष। गृं

(४६) यय प्रतगती।

(यथाय) यथयतुः ययशिय। 🕸

(४७) मिष्टी सेचने।

(६०५) इयषोऽनिमिति सक्। (१०५) होडोमी। श्रमिचत्। (७०) द्रोदिर्घथानुरिति, मेटा। §

विशेषणं। नास्ति हण्यव भीऽहण् तकात्। ऋयं (५५१) सेवांवक:। श्रक्तचिति (६०१) सेविंकत्य-पत्ते भनेन सक् षस्य कः, षत्वं। पाणिनिः १।२।४५,४६,४०।

अ. सडच लुभचस्थ भुयग्रचन वस्त्र त्य प्रगच वस्त्र रिष्व दृष्य तस्रात्।
एषु कंशासित् प्रभाप्तो केशासित् निथे प्राप्ते प्रथं वैकल्पिकविधिः। एथी रभिन्नस्य
सकारस्य दम् वा स्थादित्यर्थः। दृष्यदृष्णात् दृष् ग्र वाञ्के दृश्यसेव विकल्पः।
प्रवागभीक्षो दृष्य सर्पणे दृश्यस्योतिस्यनेव।पाणिनिः ०।२।४८०।

[†] दिग्दा भारधाजी: (५८२) नित्ये प्राप्ते, भव विकलार्थे ग्रहणं। भाग-विकल्प-भवे ज्वीप इति (५८५) खें: स्थाने ज्वा पाणिनि: ३,१३८ ।

[‡] मशमतृरित्यादी (५८८) मशवर्जनातृ न खेलें।पादि । भन्न मभाम इति पर्द निरर्धकं पूर्कत्वेरेव तत्सिक्षे:।

(४८) दही भस्नीकर्षे।

(९०६) दारेर्घः । (१७०) समान्तस्येति दस्य घः । ग्रधाचीत् ।

(४८) चह कल्कने।

भचहीत्, (५०६) हान्तलात् न विृ:।

(५०) ग्रुच ग्रोके।

(६०६) योचिता गीता।

(५१) ग्लै हर्षचये।

६०८। एचोऽशिला:।

(एच: ६।, पशिति था, पा: १।)।

धोरेच आः स्थात् अधिति । *
(५८८) यमरमेतीम्सनौ । अखासीत् । .

६०८। गावातो डो। (पप्तरा, आत. प्रा, डो: १)। श्रादन्तात् परो गाप् डो: स्वात्। जग्बी। गृं

अ एव इति घातीर न्यावयवस्थै न, तेन घटौकी दिल्यादी न स्थात् । एवं घक्रतस्थैव एव इति, तेन कोष्यतीलादी न स्थात् । घिति इति विषयसन्मी, तेन घादौ घाः, पषात् प्रत्ययोग्यात्ः, घतएव सामग इत्येष घादनात् (१८९०) उप्रत्ययः । घत घर इति नोक्का घितिति वयनं धे-धातीः व्यादि घथादियत्र लोपविधेर्वनवन्तादादी सेलुंकि रे परेऽपि घा-प्राप्तायः । लेधातीः यङ्लुकि खो-यात् ज्ञान्तायादित्यादी च रेपरेऽपि घा-प्राप्तायः । (६६५) व्यंधातीलु व्यां न स्थात् । पाणिनः ६।१।४५ ।

[†] डी इत्यस्य उ इत् (१२६) टि. लोपार्थे। भी इति न कला डी-करणं क्विचिटेक-पदेऽपि सिथनं स्थादिति स्वनार्थे, तेन तितत्व: (चालनी) भसुसुईची भदसुईची इत्यादि सिद्धं। जन्नी इति ग्लै-च्या-थप्। पाणिनि: ७१।३४।

६१०। उसेचीयगुराचि लोप:।

(उसि ७), एवि ७), इमि ७), अन्तरावि ७।, कौप: १।)।

उसि एवि इसि ऋणोररस्थाचि घोरातो लोपः स्थात्। जग्लतुः जग्लुः जग्लिथ जग्लाथ। *

६९१। स्थादेकेंऽस्थो वा काणौ।

(सादेः ६।, ॐ ।१।, पस्यः ६।, वा ।१।, व्यक्षौ ०।) ।

स्यादेरादन्तस्य स्थावर्जस्य ङेस्यात् वा व्यणी । ग्लेयात् ग्लायात् । पं

(५२) गै प्रब्दे।

६१२। दा मा गै हाक पिव सो स्थोऽरहसे त्वयपि डा । (दा-सः ६), प्रदहवे ७), त ।११, प्रविष ७), जी ११)।

एषां काणी डे स्थात्, ऋरहमे लणी यप्वर्जे डी स्थात्। गेयात् \$

अन रोऽरः, नासि णुर्यस्थिन् सोऽणः, चणवासावरयति चणवरः, तस्य चन् चण्यराच् तस्थिन्। प्रथक्पदकरणात् जस्यादौ चणानांचयः। जिस्त यथा चम्, एचि—ददेदघे, ६िन—जिल्ल्य, चण्यराचि—जिल्ल्यः, चलार्डः (११४५)। ग्लैथ्यः (५८८) वा द्रम्। पाणिनः (।४।६४।

[†] स्य भादिर्यस्य स्थादिलस्य । ब्या भण ब्याणलस्यिन् । के इत्यस्य क इत् (१७) अन्त्यस्य स्थाने । परमुवे स्थायकणेने व स्थायकार्यस्य सार्यकार्ते, संयोगायादलत्वात् भनेन क्यायौ स्थायाती: विकल्पापितिनवारणार्थे । क्यायात् स्वायादिति क्यायात् । पाणिति: १।४।६८ ।

[‡] दाघ मायेळादि इन्हें तस्य । घरधाधी इसयेति तिखान् । काणी इत्यत्वर्तते, ततस्य विधिदयं । यप्वजनादेव घरहमें इत्यस्य प्रणी इति विशेषणं लस्यं, यादग-जातीयस्येति न्यायात् । दा इति दासंज्ञकः । मा इति मासदर्गं, तेन मा ल माने,

(५३) छाँ संहती ध्वनी।

ष्यायति । 🕸

(५४) दै-प ग्रोधने।

(५३४) पित्वात्र दासंज्ञा । अदासीत् । दायात् । १

(५५) धे-ट पाने।

(२५७) ट ईबर्घ: । \$

६१३। जि यि सु दुकमाऽङ् वे व्यां विषेट ध्वत्येल्यद्भनेस्तु वा। (बि—कमः प्रा, षङ् १२१, षे अ, व्यां अ, वि-भेट-ध्वनि-एकि पर्हि-कनेः प्रा, तु १२१, वा १२१)।

जानादिभ्यद्यां श्रङ् स्थात् घेऽघेँ, खाादेसु वा। (५५०) धुर्दिष्ठाङीति, श्रद्धत्। §

मा ङ ्वि अव्दे, मा ङ ्य च, मे ङ प्रतिदाने एषां ग्रहणं। गै---टी-यात् गेयात्। पाणिनि. ६।४।६०,६८।

श्वायतीति (५६८) श्री वर्जनात न पस्य मः।

[†] घटासीदिति (५६८) यमरमेति इस्मनी । दायादिति दासंज्ञाभावात् न छ ।

[‡] ट र्नुवर्ध इति, र्तन मुझस्यो, सनस्यौयादि (१०१०)।

[§] जिस शिष सुष हुष कम चेति तथात । शिष धेटष ध्वनिष्ठ एलिय प्राहिष किनिषेति तथात, सुजलात पुंत्लं। सुरिति दत्त्वादिः। ध्वन्यादिकानः, ध्वनिरिति घटादिलात् (७६८) इत्लः, भदनचुरादिस । भदधिति धे-धातीः द्याःदि, भनेन भड़, (६००) ए-छाने भा, (५५८) दिलं, (६१०) भा-छोपः। धे किं, भकारियवातां कटौ देवदसेन । (५४१) धं प्रप्रेदित सूत्रे उक्तलेऽपि भन्न घे दित पुनः कथनं प्राधीननात्वादार्थे, "विश्वद्रसुभ्यः कसंदि चङ्" द्रति पाविनिद्रासनात्। एवं (६१८) स्वेऽपि। पाविनिद्रासनात्। एवं (६१८) स्वेऽपि। पाविनिः इ।१४८,४१,५१।

६१४। वेशाच्छासाधः सेः पे लग्वा।

चे--- प्र: प्रा, से: द्रा, पे अ, सकाशा, बा।शा) ।

श्रधात श्रधासीत्। *

(५६) पा पाने।

(५८७) खादानिति पिव। पिवति। (५५२) भूखापिवेति सेर्नुक। अपात्, पेयात्। 🌵

(५७) घा गसीपादाने।

जिन्नति। अन्नात् अन्नासीत्। ध

(५८) भा मन्दान्मिसंयोगयोः ।

धमति। अधासीत।

(५८) ष्ठा गतिनिहसी।

तिष्ठति। न्यष्ठात्। नितष्ठी। स्थेयात्। §

(६०) सा अभ्यासे।

मनति ।

^{*} घेशी की सी सा इत्येतेभाः सेलुंक स्थादा पे। घेषदयं (५५२) सेल्कि प्राप्ते विकल्पार्थे। पशादिति पड़ी विकल्पपचे न्यां सि:, पनेन सेर्जुक, पत्ते (५८८) द्रम्सनी, ऋधासीदिति। पाविनः राधाण्य।

⁺ विवतीति विवादेशस्य भदनासात् न गुणः । वेयात् (६१२) के ।

[🛊] चन्नादिति चनेन वासेर्लुक्।

[§] न्यष्ठादिति (५०२) प्रमागमव्यवधानेऽपि वलं। नितष्ठौ इति विक्रतस्थापि चलं। स्येयादिति (६१२) के।

(६१) दा-न दाने।

प्रणियच्छति। प्रख्यदात्। देवात्। *

(६२) हु कौटिखे।

६१५१ स्याद्यक्तृत्रतो गुर्यङ्यक्ठी व्यागी स्कुस्त यां।

(खादि पत्तिं स्वतः ६।, षः १।, वङ्यक्-डोब्बणो ७।, खः ६।, तः ११।, व्यां ७।)। स्यादेरते ऋकारस्य षः स्यात् यङि यकि ठोट्योरणो च, स्कुस्तु व्यामेव । जञ्चरतः । पं

६१६। नेस्तस्यपे ऽट्टुस्तुः।

(न ११।, इ.स. ११।, ऋतः ४।, घरः ६।, घ-इ-ऋ-स्तुः ५।) ।

ष्ट-ऋ-स्कृ-वर्जात् ऋकारान्तात् घप इ.म् न स्यात् । जन्नर्थे। 🕸

^{ं 🛊} प्रणियच्छति प्रग्यदादिति (५४%) गदायमानेर्णत्वं।

[†] सः मंत्रीय चादियस स स्थादिः, स्थादिय चित्तं स्थादात्तीं, तत्रीः चत् स्थादात्त्वें, तत्रीः चत् स्थादात्त्वें, तस्य। मंत्रीयादिधातीः, चः-धातीय च्यकारस्य इत्यः। च्छाइचर्यात् स्थादे-रिति चटन्तस्येव, तेन स्थापस्तीनां म प्राप्तः। नास्ति सूर्यभान् सीऽसः ठीक्योरसः ठीक्यापः, यङ्च यक्च ठीक्यापचिति तस्यन्। क्यापिति दी-परस्थेपदस्य यहणं, तेन सृत्रीष्ट इत्यादी चाल्येपदं (६५६) कित्त्वेऽपि चनेन न गुषः। स्कुरिति (७६६) सुन्यक्त-क्रज इत्यदंः। पाणिनः ९।४।१०,११,२८,३०, वार्तिकस्र।

[‡] इय ऋष स्तृष ते, न विद्यन्ते ते यस सः भवस्ता तस्तात्। (५८४) नेमस्मित्य-भेन इधातोष्ठीमात्रस्य इम्निपेधेऽपि भावः इयहसात् यम इम्, तेन ववरिष इति, भागवत् तुवहव इत्यादि। स्वृधातोष्ट्रस्तिऽपि (५७३) वेम्ट्रिट्रियत स्तरप्रहणात् मस्त-रिष्य सस्त्रये इति वा इम् स्यादेव। भाव इक्त स्त्रुवर्जनादेवाच एव निषेधी मन्त्र्यः, वेन जनागरिष इति। जन्नये इत्यत्र (५८४) नेमसुभित्यनेन भागानिम्लादिम्प्राप्ती भनेन निषेधः। पार्षिनः शराहरू।

६१७ । स्यर्डनः । (सस ६।, चत्-इनः ५।)।

ऋदन्त-इन्तिभ्यां खख इम् खात्। इतिखति।

(६३) खृ ज गब्दोपतापयोः।

(५०३) वेमृदितीम् वा। श्रस्तारीत् श्रसार्वीत्। 🕆 सस्रियः सस्र्धे।

(६४) स्ट गती।

६्१८ । वक्तायस स्था लिप सिच हो हो घे व्यांसस्त्वा लिवस्थस्तुमे।

(विजि—ः हृ: ५१, ७६: ११, घे ०।, र्घा ०।, स्व: ५१, तु ।११, वा ।१।, लिव्स्यः ५॥, तु।१।, मे ०।)।

वक्त्यादेर्घेऽर्घे रू: स्यात् ट्यां, स्टक्तस्यान्तु वा, लिपादेलु मे वा स्यात्। क्षं

[#] सद्य इनच तसात्। स्यस्य इति स्यख्डपस्य ग्रहणं, तेन स्यति स्यतम् स्वनौत्या-देरैव। इम: केवलस्य भनुवति:, नत् नञ्चिष्ठणस्य, स्वाभाविकानिम्-इन-धार्तारिम्-निषेधवैफल्यात्। स्वधाती-रुदिस्वात् वेसत्वेऽपि, विशेषविधानादनेन नित्यसिम्, तेन स्वरिष्यतीत्वेव। पाणिनि: ७१२।७०।

⁺ अखारीत् अखारीत् (५०४) अजनतादुभयत्र ऋ इत्यस्य विदि: चार्, (१९९) इलात् पारस्य सस्य वलं।

[्]विक्रिय प्रस्थय खाय लिप्य सिच्य क्षाय तत्त तसात्। स्टव च्य मृतसात् सः। विकरिति प्रदादिगणीय-वच-घातः (ब्रुची वचादेशेऽपीति केचित्)। प्रस् कित्ति दिवादीथोऽस्वातः। लिब्स्यः इति बहुवचनं गणाये, लिप सिच क्वे इति। प्रस्थातीः इरिच्वात् परस्थेपदे कः (५६५) सिख एव, इइ तु भाकानेपदार्थः। तेन (८०६) भाकानेपदे निरास्थत इति। पाणिनिः श्राप्तः, ५३,५४।

६१८। दस्रोर्ण:। (हमो: ६१, ष: १।)।

द्योर्ऋवर्णान्तस्य च णः स्वात् ङे। असरत् श्रसार्वीत्। अ

६्रः। ऋद्रिः श्यक्ढीपे।

(चटत्।१।, रि: १।, भ्रायक्-डीपे ७।)।

स्रियात्। 🌣

(६५) ऋ गती।

ऋच्छिति। ग्रारत् श्रार्षीत्। श्रार, त्रारतुः, ग्रारिष्ट। त्रय्योत्। ः

(६६) यु यवणे।

६्२१। योः सुर्धे रे जिया।

(यी: प्रा, यु: १।, घे ७।, रे ७।, जि: १।, घ ।१।)।

युनो घेऽर्धे युः स्थात् रे, युनस जिः। युणोति युग्रतः युग्रत्ति। §

 ^{*} द्व्यच च्य्य तौ तयो: । अर्थवशात् के इति मप्तस्यन्तवेनानुवितः । असरिति कि.पच से सुवितः । पाणिनिः शक्षा १६ ।

⁺ प्रव यक्च ढीपच तिखन्। इन्त्र-स्रकारी रि: स्थात् के यांक ढी-पेच परे। सिथादिति इस्तान-रि-निर्देशादेव (५८०) न दीर्घः। पाणिनिः ७।४।रू।

[‡] भारतः भर्यादित्युभयच (६१५) सु:। आरिथेति (५८८) ऋवर्जनात् न वेस्।

[§] युःधातीः श्रो तते यु द्रवस्य (५३५) जिः उकारयक्त रेफस्य च्हः । श्रुः प्रि वाधकः । ग्रद्भतं, नुस्थितिः । युधातं स्वादिगणीयभक्तवा भादिष् पाठात् कचित् यवती-त्यपि । प्रयोतीत्यत्र श्रीककारस्य नुषः । प्रस्त्वनीत्यत्र (५८८) श्रुष्वे।रिति व, (१०७) चलं । पाणिनिः ६।र।७४।

६्२२। नूपाऽखखास्त्रोपा व्राम वा।

(न्प: ६।, भस्यस्य ६।, चन्नोप: १।, व्नि ७।, वा ।१।) ।

श्रस्यस्य नो-रूपच उकारस्य वा लोपः स्थात् वमयोः परयोः। मृखः मृणुवः मृग्मः मृगुमः। (५४०) हेर्लोपोऽस्थेति, मृगुः। शुश्रुव। 🕸

(६७) सुगती।

६्२३। सुस्तुधाः सेरिम् पे।

(सु-ल्-धी: प्रा, से: ६।, दम् ।१।, पे ७।)।

ऋसावीत्। सुषविष, सुष्विव। सविता सीता। 🕆

(६८) सुगती।

(६१३) जिथीत्यङ्। असुसुवत्। सुस्रोय, सुसुव। 🕸

(६८) दु गती।

चरावीत् अदींषीत्, दुदुविव । §

[🛊] नुश्व उप चेति तस्य । न स्थोऽस्यमस्य । उती लोपः उद्ग्रीपः। व च म च व्म तिखन्। नुरत्र श्रुः, उप् तनादिभ्य क्षतः (≰प्रद्र) ग्रुप्। ग्रूगोनि तनी-भी लादी, लीपस्तरादेशशीसु स्तरादेशविधिवेसीति न्याशात् घादी गुण एव । शृतुव द्गति क्याव, (५८४) नेमभुम इति नियमात् न इम् । पाणिनि: ६।४।८९।

[†] सुद्य सुत्र ध्य तकात्। सु सुधुधातुम्यः सेरिम् स्थात्पी। सुधातीः (५,०३) विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं ग्रह्णां। भ्तु धु द्रथेतयी: (५,८०) एकाजुटलालेन निधेषं ग्रहणं। पे किं, असविष्ट असीष, असीष अधीषानां। (५०३) बदुसुनी-स्त्रज्ञा इति नियमेन सुपविष सुप्वित इत्यादी नित्यमिम् । स्विता स्रोता इति (५०३) बादम्। पाणिनिः ७।२।७२।

[‡] ऋसुस्तुवदिति (४८८) उव । एवं ऋदुटुवत् । सुस्तीयेति नेमसुमिति नियमेन (५८८) सृज्दशेत्यस्य वाधितत्वात् न इस्।

[§] चढाबीत् चढीपीदिति (५०३) कटुसुनोस्तव्या द्रव्यको:वादम्। टुटुविवैति नेमसुमिति नियमात ऋत्यत्र नित्यमिम्।

(%) द्रुगती।

श्रदुद्वत् । दुदुव ।

(७१) गम्बी गती।

गच्छेति । (५६५) तिदित्वात् ङः, ग्रगमत् । जगाम । (२३०) इनगमेत्युङ्वोपः,जग्मतुः जग्मः । जगिमय जगन्य ।*

६२४। गमाऽमे स इम् मार्हात्त् वा।

(गमः ५।, भमे ७।, सः ६।, इम् ।१।, मार्हात् ५।, तः ।१।, वः ।१।) ।

गमः परस्य सस्य इम् स्थात् न तु मे, मयोग्यात्तु वा। गमि-ष्यति। पं

(७२) सम्भी गती।

श्रसामीत् श्रसाप् सीत् श्रस्पत् । ई

(७३) स्कन्दिरी गति-शोषणयो: ।

६२५ । विस्तामा निर्वन्ति-सु-निर्दु:खप: स: षो:,-निनिविस्मुर-स्मुल परिविस्त्रान्दाऽप्राणिघ-निपरिनिर्व्यभ्यनु-स्थन्दस्तु वा।

(विस्तभा -खपः ६।, सः १।, वः १।, निनिर् - खन्दः ६।, तु ।१।, वा ।१।)।

 ^{*} दुदुवेति नेससुसिति नियसात् न इस्। जगिमय जगन्य इति (५८६) वा इस्।

[†] मं भाक्षानेपदं भर्षतीति मार्प्तसान्। (८०५) सभीगस्व्यत्येनेन भाक्षानेपद-विभानान् समर्गत्त संगंद्यते इयादी न इस्। भाक्षानेपदयीग्यत्यले तु संजिगनिषु: संजिगंसुरत्यादी वा इस्। पाणिनि: ७।२।५८।

^{‡ (}६०३) त्रयस्य प्रति, (६०४) वर्द्रश्ति भन्नासीत् भसार्यसीत्, सि-विकल्पपचे (५६५) लिदिचात् कः भस्यत्।

विस्तभाते वे वर्जे व्यादिपूर्विस्य स्वपः सः सः स्थात्, न्यादि-पूर्व-स्मुर-स्मुतोः परिवि-स्तन्दतेः श्रप्राणिष-न्यादिपूर्वस्य स्यन्द-तेयस्यादाः। परिष्कन्दति परिस्तन्दति । *

(७४) तृ प्रवन-तरणयोः।

६२६। च्टुताणुः कित्र्यां।

(महत: ६।, गः १।, वित्व्यां ७)।

तेरतुः । 🕆

६२७। वृता वेमार्घाऽठीढीपसे:।

्वृ-स्रतः ५।, वा ।१।, इनः ६।, घं: १।, घ-ठी-टी-पर्सः ६।)।

हुङो हुज ऋदन्ताच इमो घी स्थात् वा,न तु त्याः त्याः परेष। तरीता तरिता । ठी टी परेस्तु तरिष, तरिषीष्ट, अतारिष्टां । अ

^{*} वे: स्कमा: विस्तिमां, विश्व सुध निर्च दुर्व तेथः स्वप, निर्गतो वः यधात् स्र निर्वः, निर्वशामी विस्तिद्रं स्वप् चेति, पथात् विस्तमाथ निर्वविस्तिद्रं स्वप् च तस्य। निर्व निर्च विश्व ते, तेथः स्कुर स्कुली, परि विष्यां स्कृतः परिविस्तन्दः, निष्य परिय निर्च विश्व प्रसिथ अनुध ते, तेथः स्वन्द निपरिनिर्व्यथनसन्द, प्रशाणी घः (कतां) यस्य सः अमाणिषः, सचासी निपरिनिर्व्यथनसन्द चेति अमाणिषनिपरिनिर्व्यथनसन्द प्रमाणि विनिर्वं स्कुरस्कुली च परिविस्तन्दय अप्राणिषविष्यिरिनिर्व्यथनसन्द चेति तस्य। स्क्रमा इति त्रान्तिर्वेश्यत् विस्त्रभीतीत्थव यत्वं न स्थात्। निर्वं द्रति यदा स्वप्यातीः कि स्थादित्थवः। अप्राण्यिच इति स्वन्दिर्वयेषणान् निस्तन्ते (मदं सुचित्) इस्तीयव न सर्वं। पाणिनः पाश्च १० ०३,०४,०५,००,प्य।

[†] किञ्चासी ठीचेति कित्ठी तस्यां। तेरतिरिति भनेन गुणे, (५०६) भकारः एकारः खिलोपसः। दोर्घन्दत इति किं, चक्रतः। पाणिनिः अधारशः।

६२८। ऋदिरणावुर्लेष्ठित्रात्।

(ऋत्।१।, इर्।१।, पयी था, उर्।१।, ता।१।, श्रीष्ठात् ॥)।

ऋकार दर्स्यादणी, ग्रोष्ठगात् परसु उर्। तीर्थात्। 🕸

(७५) षन्जी जि सङ्गे।

६्रिट । षन्ज दन्श ष्वन्जोऽपि नलोप:।

(षन्ज-दन्भ-ष्वन्ज: ६।, ऋषि ७।, न-स्रोप: १।)।

निषजति । न्यषाङ्चीत् । निषषज्ञ, ससजतुः ससञ्जतुः । विषयः । (१) दृश्यिरी प्रेच्च थे ।

पण्यति । अदर्भत् । (६०४) वर्द्रीऽिकदिति, अद्राचीत् । क्ष (५८८) सजद्देशितीम् वा, दद्भिष दद्रष्ठ ।

^{*} भन भी: इति नीक्वा भीष्ठादिति कथनं दत्त्ववकारस्यापि प्राप्तार्थं, तेन वृधाती: सनि बुव्यंतीति (८०५) दोर्घं, भनेन भीष्ठापरत्वादुर्। भीष्ठादिति धालवथवादेव, तेन सम्पूर्वकस्य ऋषाती: सभीर्थादिखेव। लाचिषिकस्याप्यव ग्रहणं तेन भश्विकीर्थात (८०५) स्वं द्रष्टव्यम्। तौर्थादिति तृधाती: दौ-यात् भनेन इर्, (२२८) दौर्षः। पाथिनि: ७१११००,१०२।

^{ां} पन्त्रय दन्शय घन्त्रच तस्य। एषां नस्य लोप: स्यादिष। एभ्य: श्रप् कित् इति न ज्ञाला नलीपिवधानं, दिश् कङ् दर्शे इति इदन्बस्य-चुरादीय-दश्धाती: ॐ-विकालपण्यं दश्ते इत्यत्र (५६८) नलापिविधेषेऽिष, भनेन नलोपाधे। निपज्ञतीति (५०२) षत्वं। न्यवाङ्वीदिति (५०४) वृत्तिः, (२११) कुङ्, (५०,५१) नस्याने अनु-स्वारत्तस्य च ङ। (१११) कवगात् सः षत्वं। (५०२) भान्यवधानेऽिष षत्वं। निषषञ्च इति द्वितेऽिष द्विरोः षत्वं। सस्जतुः ससञ्जतुः (५६६) वा किङ्कावः, (५६०) कित्यचे न-लोपः। पाणिनिः ६।४।२५।

[‡] पद्मति (५८०) द्वयस्थाने पछा। भदर्भत् (५६५) ङः, (६१८) गुणः। ङः-विकस्यपचे भद्राचौदिति भनिमलात् (५०४) विज्ञः, (१५४) षङ्, (६०२) षस्य कः, (१११) षत्वं।

(७७) इन्गी दंगने।

त्रहाङ्चीत्। #

(७८) कित निवासे रोगापनयने संग्रये च।

६३०। कित्तिज्युपः सन्तेम् मान शान दान बधस्त खेडी च। (कित्-प्राः शा, सन्।११, मारा, रम्।११, मान-मधः शा, तु।११, खे: ६१, की।१:, च।१।)।

कितादेः सन् स्यात्, इम् न स्यात्, मानादेसु खेर्ङी च ।

क्रमादेतेऽत्र सन्देहे चान्ति-निन्दा-विचारणे ।

नियानार्जवनिन्दासु क्ग्जयेऽपि कितो मतः ॥ कृ

६्३१। सन्जादि र्घुः। (सन् अप्रादिः १), पः १)। सनन्ता जायन्तय धुसंज्ञः स्यात्। ध

^{*} भदाङ्चीदिति दन्ध-धातोः टो दि, इद्धिः षङादिक्ष ।

⁺ कित्व तिज्व बुप्य तसात्। मानय प्राप्य दानय वध्य तसात्। प्रति हिंष्टार्थं तात् सार्थे एव धन् भवति। एतेषां सप्तानां धात्नामणांन् निर्हिशति। क्रमा-दिति। यत्र धन्विधाने एते कितास्यः सप्त क्रमात् सन्दं इतिष् सप्तस् पर्णेषु मताः, क्रितः क्रज्येऽपि मतः। तेन कित-सन्दं इन्क्रज्ययोः, तिज उत्त धान्तो, गृप उत्त निन्दायां, सान उत्त विधारणे, प्रान उत्त निमाने, दान उत्त पार्जेवे, वध उत्त निन्दायाः मित्यथः। सन्दं इः विश्वतानिकक्षोटिविषयकं ज्ञानं, भित्यस्य प्रक्रमाकः यथा-प्रास्त्रे विक्रिताति। क्राज्यो रोगप्रतीकारः। चान्तिः सहने। निन्दा दोषवस्याख्यानं। विवारणं इद्शित्यं न वेति प्रमाणानुसन्धानं। निमानं तीच्णीकर्षा प्रार्जनं पक्त-टिक्षोभावः। एष्वर्षेषु सक्तमंका एव। पाणिनः श्रीः। ६।

[‡] आहिस—्जि (७७७) सन् (८०३) यङ् (८२०) कास्यक् (८४२) का (८४१) का (८४८) कि (८४८) कि (८४८) कि सम । सन्व्यायनानां धुसंभाकरणं (५२६) तिवादिः समन्ये। पाण्यिनः ३।१।३२।

६३२ । सन्यङन्तो हि: । (धन-यङ् धनः १।, वि: १)।

विकिस्ति। अविकिसीत्। विकिसामास । %

प्रति पवत् पाद: । +



३य परदः -- मवत्।

(७८) एध ङ हडी।

एधते। ऐधिष्ट। एधाचको। ह

(८०) दद ङ दाने।

(५७८) ग्र-मागर्देख्की:, दर्दे ।

(८१) व्यक्त उन्सर्पणे।

(५६८) अन्धीषकी स्ती:, खकती विषकी

[#] सन् च यङ्च सन्यङी, ती ऋले यस्य स सन्यङलः। तदगणसंविज्ञान-बहुनीहिणा सन् यङ् ससेतो हि: स्वादित्यर्थः। कदाचिदतदगुणसंविज्ञान-बहुनी ही कीवली घातुरिप हि:, तेन सीचते इत्यच सनं हित्वा सुचधाती हिंते, (८१५) भीचा-देश:। चिकित्यतीत्यादि, कित: सन्, इनिषेधे, (८०४) ग्रानीनिभीति वत्यमाणात् मुणनिषेधं, हित्वे चिकित्य इति भागस्य धातुसज्ञायां तिवादिनं। त्यान्तत्वादान, ततः (५८२) चसप्रयोग:। पाणिनि: ६।१।८।

[†] पवतां परस्मेपद्वतां धातूनां पादः एकार्याविच्छन्नस्वसमूहः इत्यर्थः।

[‡] एघ-ते (५४१) श्राप्। एघतन् (५५०,२३,५५१,५५७,१११,४०) ऐधिष्ट । एघ-ए (५८२,५८३)। चात्रानेपदिलात् कीवर्णक प्रयोगः।

सुग्धबोधं व्याकरणम । [५ भ.२पा. ६२२-६२४ त.

₹80

(८२) ऋज ङ आर्जवे।

आवृजे। %

(८३) तिज ङ चमा नियानयी:।

तितिचते। १

(८४) व्वन्जी ङ सङ्गे।

निष्ठजते। 🏗

६३३। निविपरि खन्ज सुसादे: सः षोऽमिवा।

(नि-सुमादेः हा. स: हा, ष: १।, पानि वा ११।)।

न्यषङ्क न्यसङ्क। सस्त्री सस्त्री। §

६३४। सत्खञ्जोष्ठां नाखे:।

(मद-खञ्जी: ६॥, व्यां ०।, न ।१।, अवि: ६।)।

खिवर्जस्थानयोः सः षो न स्थात् ळां। विषखजे विषखन्ते। १

भारने इति ऋज-ए (५८०) ऋकारादिलात् खेरान्।

⁺ तितिचते इति तिज (६३०,६३२,२११,६३१,) तितिच इति धातु:। (६३६) चालानेपटं।

¹ निष्वनते (५६८,६२८,५७२)।

[§] सुम षादिर्थस्य स सुमादिः, स्वन्त्रय सुष्य सुमादिशित। निष्य विषयपिय
ते, तेभ्यः स्वन्त्रसुमादिः तस्य। सुमादिः (५०२) सुम, ष्रनङ् सिव, ष्रनोङ् सह इति।
निविपरिभ्यः परिपामेषां सः षः स्थान् वा ष्यमि सित। न्यम्बङ्क्त इति नि-स्वन्त्र-तन्
(५५०,५५१,५६२) सेलीपः, (२११,५०,५१) ष्रनेन वा पत्नं। सेः स्थानिवस्तात् (५६०)
म नलापः। सन्त्रे सस्त्रे इति (५६६) वा कित्सं न्यायां, (५६०) नलोपःतदमावौ।
पाणिनः ८,६१००।

[¶] सट्च खञ्चन तौ तयो:। न खिरखिलस्य भखे:। दिवसको दिवख^{छे}

(८५) त्रपूषङ् लज्जायां।

श्रविष्ट श्रवप्त । वेषे। *

(८६) जभ ङ् जक्षने।

६३५। नुण् जभोऽचि।

(नृष्।१।, जभ: ६।, पवि ७)।

त्रजिभष्ट । 🕆

(८७) हुम ङ स्तमे।

विष्टीभते। व्यष्टोभिष्ट। 🕸

(८८) पण ङ व्यवहारे स्तती च ।

(५८१) कामऋतित्यायः । पणायते ।

६३६। सन: पमे धा वी त्वायात्।

(सन: प्रा, पःसे १॥, घी: ६।, वा ।१।, तु ।१।, भाषात् प्रा, ।।

पणायति । अपणायिष्ट अपणिष्ट । पणाया चक्रे पेणे । §

इति इपनेन निवेधात् म्लास्य न वर्लखेलु (५०२) वलमेव । व्यामिति किं, विषाख-च्यते इत्यत्र उभयोरिव वर्ला पाणिनिः, ८।३;११८, काशिका वार्षिकानि च ।

^{*} श्रविष्ट इति (५०३) वा इम्, पचे (५६२) सिलीपः श्रवप्तः। विषे इति (५०८) खिलीपः, श्रकार एकारयः।

[†] जभो तुण् स्थादिच परे। णिल्लाद्रन्याचः परः। प्रकरणप्रलादात्मनेपदिन-एवेति बोध्यं, अपभ जभने इत्यस्य तुलभतौत्यादि। श्रजन्मिष्ट इति इ.सि, श्रवि परं उण्। एवं जन्मनसित्यादि। पाणिनिः भारादेश।

[‡] विष्टीभते, सुभधाती: (५०२) वलं | व्यष्टीभिष्ट इति श्रम्यपि वलं ।

[§] घी: म्लधातुसम्बन्धिनी प-मे सन: सनलात् सः, त्राथालात्तु वा । तथात्र परक्षेपदिधाती: सनलात् पं, भाव्यनेपदिधाती: सनलात् मं, समयपदिन: सनला-

६३७। विच्छास्तृतिपणो वायः।

(विच्छ-मल्तिपण: ५।, वा ।१), चाय: १।)।

पणायते पणते। %

एवं (८८) पन ङीड़े । १

(८०) वामुङ वान्ती।

कामयते। (६१३) त्रान्तलादङ् । क

६३८। ञाङ्गङः खो उनग्लोपिशास्त्रदितः।

अम्बोपिनः शासी ऋकारितयान्यस्य उङः स्वः स्थात् जेः परे ग्रङि परें। §

टुभयपदिमिति। आयान् वेति वाण्यन्दो व्यवस्थितविकल्पार्थः, तेन आयानिपदिन-भायान्तान पसे स्त: परकीपदिनस्तुपसेव। भन्नो गुपधानी: गीपायतीक्षेत्र। पणाय-तीति चायात् वैत्यस्य विकल्पपत्तं उदाइरणं। चपपायिष्ट चपपिष्ट (५८२) वारे द्रवसीदाहरणं। पाणिनि: १।३।६२।

🛪 न मृतिरमृतिः, ऋसुतौपणा मृतुतिपणा, विच्छया मृतुतिपणा चेति तस्मात्। विच्छ धातीः ऋल् त्यर्थात् पण्यः चायः स्यादाः। स्तृतिवर्जनात् स्यवद्वारार्थे भवती वर्थः। व्यवसारमा क्रायिक्रयस्वरूपः। पाणिनिः ३।१।२८,३१।

- 🕇 एवं पन इत्यनेन (५८१) भाषप्रत्ये पनायते पनायति इत्यादि ।
- 🗜 कामयते दति (५८१) जिङ् कृते, (५००) हर्दी, कामि-घातोत्ते विभक्ति:।
- 💲 जे. परीऽङ् ञाङ् तिम्निन्। भाको लीपः श्रम्लीपः, भीऽस्नासीति भम्लीपौ । च्छत् इत यस्य म च्हदित्। भग्लीपी च शासुय च्हदिचेति, पश्चात् भञ्योगेतस्य। जः परे प्रक्रि परे इति कथनात् जे: पूर्वविभीभागसीत उकः स्वः स्वादिति । अस्तीपि-

६्३८। खे: सन्बद्धी, ध्रार्हसादे र्घश्च, त्यनेकाचास्त्वकति इते वी।

(खे: ६।, सन्वत ।१।, घी ७।, घी: ६।, इसादे: ६।, घं: १।, च ।१।, ल्यनेका घी: ह∥. तु।१). भकालिइलः हा. वा।१।)।

श्रनग्लोपिनः खेः घो ध्वचरे परे सन्वत् कार्यं स्थात जाङि. घीय खेर्हसारे: घी: स्थात, कलि हलि-वर्जस्य ली: अनेकाचय सनवडा स्थात्। 🕸

ईश्व । स्यस्येत् सनि । (स्वस ६।, इत् ११।, धनि ७)। खेरवर्णस्य इत स्यात् सनि परे । पे

६४१। जेर्लापो ऽनात्विष्णुायान्ते द्वामिम् शित्।

(ञी: ६।, लीप: १।, अनाल—श्रिति ৩।)।

त्रालु इण्ड बाय्य बन्त इत् बाम् इम् शित् एभ्योऽन्यव ञेलीपः स्थात । क्ष

^{*} सन्दर्वसन्वत्, लिख अनेकाचतौतयो:, कलिख इलिखेति कलि इलि , न कालिङ्गलि: अकलिङ्गलिस्य। अनम्लीपि-शास्त्रदितामत्तवर्भनेऽपि शास्त्रदिता सघ-सरयुक्तधालवरपरलाभावादपाप्ती, धकास्ट च ल दीशी दलस्य ऋदितीऽपि अनेकाच् लात विश्वेष वाधितलात्, कीवल-मनग्लीपिन: इति व्याख्यातं। चनग्लीपिधाती: खें सम्बत्कार्यं स्थात् ञाङि, लघुघाल बरेपरे। तत्रैत इसादेधीती: खिर्यदि सघ-र्भविति तदा तस्य दोर्घः स्थातः। कलि इलि-भिन्न लिङ्गस्य भनेकाव-घातीय स्वेः सन्वत् वास्यादिल्थे:। पाणिनि. ७।४। ८३, ८४, वात्तिकानि च।

[†] खे: प: ख्यस्य। पाणिम: ०।४।०६।

[‡] भालुय रण्य प्रायय भलय इत्य प्राम्च रम्च शिव ते, न वियन्ते ते यत स तक्किन्। भालादी तु-सहयालुः, कार्याणुः, सप्हयायः, मरूयनः, सनयितुः, कारयामास, कारयिष्यति, कारयतोत्यादि। (१०७०) सूत्रे सेमृकादौ परे तु श्रेलीप:। परिचितिः दःश।५१,५२,५३,५४,५४।

अचीकमत अचकमत । कामयाञ्चली चकमे। अ

(८१) अय ङ गती।

यायिदुं भायिध्वं यायिह्नं। ययाश्वते।

(८२) एवं, दय ङ गतौ।

(८३) स्मायी ङ वडी।

भ्रस्मायिष्ट । 🕆

६४२। योर्लीमो इस्यये।

(यो: रं॥, लांप: १।, इसि अ, अर्थ अ)।

त्रस्मास्त । 🕸

(८४) ग्रीप्यायी ङ वृद्धी I

ई ४३ । पदस्तनी स् घे प्याय ताय दीप पूर जन बुधस्तुवा।

(पदः प्रः, तनि ७।, इण् ।२।, घे ०।, प्याय-नुषः प्रेः, तु ।१।, वा ।१।) ।

^{*} अधीकमत इति कम धाती: (५८२) जिड्, (५००) वर्डि:, कामि इत्यस्य (६११) धातमं आ, तत: तन्, (६१३) भङः, (६१८) अखः, कमि इत्यस्य दिले मि इथस्य खोपे, कस्य भकारे, खेः सन्यत्वात् (६४०) भकारस्य इकारे, लघुखंदीं अभिने जेलींपः। जिङो विकम्पपचे, अङ् दिलादिकश्व। कामयाश्वभिद्रति कामि धातीः (५८२) त्यान्तवादाम्, ततः क्षप्रयोगः। जिङोऽभावे चकमे।

[🕇] चायिद्विति (५५६,५५०) सर्लापः, घस्य छ.। भस्तायिष्टीत (५०३) वा इत्।

[‡] यच वच यौ तयोः । वकारी दल्यः । यवयोर्जापः स्थात् भान्ये इन्हिपरे । भरकास्तिति भनिभपस्ते यन्सीपः । एवं स्काताध्याता । दिवी यङ्कुकि कटोऽप्राप्ति-पर्भे देदेति भाग्य वक्षीपः । इन्हिकां, स्कायते सेवते । भर्ये किं, दोव्यति । वार्सिकाम् ।

पदी घेऽर्थे इण् स्थात् तिन, प्यायादेसु वा। क

६४४। द्रणस्तन लोप्य:।

(इ.स. ५।, तन्।१।, लीव्य: १।)।

श्रयायि श्रयायिष्ट श्रयास्त । 🕆

६्८५ । पायः पी यङ्कोः ।

(प्याय: ६१, पी: ११, यङ् खो: ०॥)।

पियो । 🕸

(८५) तायु ङ सन्तानपालनयीः।

यतायि यतायिष्ट । §

(८६) यल ङ चलने।

त्रमलिदुं त्रमलिध्वं त्रमलिद्धं। ¶

इ.णी च इत् ब्रह्मार्थः । सेर्बाधकोऽयं। पाणिनिः इ।१।६०,६१।

[†] इष: पर: तन् लोप्य: स्यात्। इष: इति सामान्यायें, तेन (६२१) रतनो-यंगियावित्यनेन क्षतादिषोऽपि तनो लोप:। पदस्तनीय चे इत्यत्र तनः स्थाने इष क्षते लाघवेऽपि, त्यां सेरापत्तिः, तन्स्थानजातलेन इषो जिल्लात् भवीधौत्यत्र गुषाभावस स्थात्। भष्यायिष्ट इति इषो विकल्पपचे (५०३) वा इम्। भष्यासेति इमीऽभावपचे यसीप:। पाणिनि: ६।४।१०४।

[‡] प्याय-स्थाने पी: स्थात् यिङ क्यास्त । पित्ये इति (५८८) यः। पाणिनिः ६।१।२६।

[§] अतायौति तायधाती: तनि (६४३) इस्। पचे (५५४) अतायिष्ट ।

[¶] भग्रालिदृनिति (५५६,५५०) वा-इधेन पदनयं।

(८७) पेत क सेवने।

परिषेवते, नाषेविष्ट, विषिषेवे। प्रतिसेवते। *

(८८) काम्र ङ दीप्ती।

काशामास चकाशे। 🕆

एवं (८८) कास ङ कुगद्रे।

(१००) ईह ङ चेष्टायां।

ऐहिदुं ऐहिध्वं ऐहिड्डं। क्ष

(१०१) र इ वधे गत्यां।

अर्विष्ट अरोष्ट। करुविषे। §

(१०२) दे ङ पालने।

६४६ । दे रेंडो दिगिष्ठां।

(है: ६।, देड: ६।, दिगि: १।, व्यां ०।) ।

दिग्तस्य देङो दिगिः स्थात् व्यां। दिग्ये। श

 ⁽५०२) परिषेत्रते, नायेनिष्ट ६ति अन्यापि, विषिषेते इति देश पत्नं। परि-नि-वि-पृत्रेत्वाभावात प्रतिसेत्ते द्वित न पत्नं।

[†] काशामास इति (६००) वा चास्।

[‡] ऐडिंदु (५५६,५५०)।

[§] भरविष्ट भरोष्ट (५०३) वा इम् । क्कविषे इति ठौवर्जनात् (६८४) नेससुमिति इम् । (६८८) ख्व ।

[¶] दिग्ये इति दिवत्तस्य देघातोः (दिगि-मादेशः, (५८८) इ.स्थाने यः। पाणिनिः গাধান।

(१०३) घो डी ङ नभोगती।

चडियष्ट । अ

(१०४) गुप ङ गोपन-कुलानयोः।

जुगुप्रते।

(१०५) मान ङ विचारे।

मीमांसते।

(१०६) बध ङ निन्दायां।

बीभसते। १

(१०७) खुत ङ ए दीप्ती।

(५६५) शासु तिद्युदिति ङ:। तेनैव पं। अयुतत्, अयोतिष्टा

६४७। दात्-खाषी: खेर्जि:।

(द्युत्-खार्ष्याः ६॥, खेः ६।, जिः १।)।

दियुते । §

(१०८) वृत ङ वॢ वर्त्तने ।

६ं8⊂। दृद्धो नेम् पे खसनो वीलमे।

(बदस्य: ५॥, न ।१।, इस् ।१।, पे ७।, स्य-मनी: ६॥, वा ।१।, तु ।१।, प्रसे ७।) (

श्वडियट इति (५८०) डी-वर्जनात् न इम्निषेध: ।

[†] जुगुप्तते, सीमांसते, बीमत्सते, इति (६३०) मन्, सान-वधी: खंडींच। नुपधाती: (८०४) प्रनिम्सनि न ग्रा (१९०) वध-घातीवस्य सः।

[‡] तेनेव पं (५६५) टीपरकोपदे उट-विधानसामव्यांत् बुतथाती: व्यासुभवपद-मिल्ययः।

[§] द्युद्य स्वापिष तथी:। द्युती ज्ञानस्वपय खेर्जि: स्थान्। दिद्युते इति खे: (५१५) यस इ:। पादिनि: ৩।৬।६०।

हतादे: ख-सनोरिम् न स्थात् पे, मादन्यत्र तु वा । त्रतएव पं। वर्तस्यति। मेतुवर्त्तिथते। अ

(१०८) स्वन्दू ङ वृ चर्षे।

निष्यन्दते निस्यन्दते घृतं। निस्यन्दते हस्तीति प्राणिघलात षः। 🕆

(११०) कपू ङ वॢ कल्पने।

ईश्वर । कपः क्रुपो ऽक्रपादौ । (कपः ६।, क्रुपः १।, श्रक्रपंदौ ०।)।

क्रपः स्थाने लृपः स्थात् न तुक्तपादौ । कल्पते । 🕸

ई्पू०। नेम् पे खा:। (नाश, इम्।श, पे भ, बा: ६।)। क्षपीद्याद्रम् नस्थात् पे । अत्तरव पं। कल्प्षा। पे किं, कल्पिता कल्प्ता। कल्प्स्यति, मेतु कल्पियते कल्प्-

स्यते। §

 ^{*} वृद्धाः दृति बहवचनं गणार्थे। भतएव पिमति हतादेशात्रानेपदिनः परस्मैण्दे स्य सनोरिम्निविधादेव स्य सनोक्तभयपदिलिनिवर्थः । यथा वर्तस्यति । सनि विवत्-स्ति। मे तुवर्त्तिप्यते, स्नि विवर्तिषते । मादन्यव तुविवर्तिषा विव्रत्सा इत्यादि । इतादिय-इतुर्वृषः ग्रवः सन्दूः क्रयः पञ्च इतादयः । पाणिनः ०।२।५६ १।३।८२ ।

⁺ घृतं निप्यन्दते द्रवीभवतीलायं:, (६२५) प्राणिघलात् वा पलं। इसी निस्य-न्दते चीको भवतीत्यर्थः, भव प्राणिघलात् न षत्वं।

[🛊] क्रपा चादि: यस्य च क्रपादिः, नञ्योगे तिकान्। क्रप: स्थाने क्रप: स्थान् नत् क्रपा-प्रस्तित् । क्रपादिर्थया—क्रपा क्रपाणः क्रपाणः क्रपीटच (कर्पटम्) क्रपः क्रपी दात। कल्पते दति क्राप्रचादेशे श्रपि खकारस्य गुणः भल्। पाणिनिः माराधिन "क्षपणादीनां प्रतिथेघ." द्रति वार्त्तिकाचा।

[§] अवापि अतएव पं। तत्व - द्युतादेः द्यासुभयपदिलं। इतादेः द्युतादानः

(११९) व्यथ षाङ् पीड़ायां।

६५१। व्यथ ग्रह ज्या वय व्यध वश व्यच प्रच्छ वृक्ष भ्रम् च खप वच यजादेः खेर्जिष्ठगां।

(व्यथ - यजादे: ६।, खं: ६।, जि: १।, न्यां ०।)।

एषां खेर्जिः स्थात् ळां। विश्यथे। *

(११२) जि तरा पङ् स्वदे।

त्रवरिदुं त्रवरिध्वं त्रवरिद्धं। 🕆

इति सवत्-पादः।

र्गणतात् त्यां स्थ-सनीय उभयपदिलं। क्राप्तु युतादिलात् इतादिलात् नेस्पे जा-इल्पनेन च, य्यां स्थसनी: खाख उभयपदिलमिति, अन्यत्र सर्वे एवास्पनेपदिन:। कल्पा परसौपदे अनेन दम्निषेध:। कल्प्सतीति इदस्योनेस्पे इल्पनेन निषेध:। आसमिपदेतु (५०३) वादम्। पाणिनि: ७।२।६०,१।३।८३।

* व्ययस्थादि — यजादियिति इन्हे तस्य । वय इष्ट वेञ स्थाने (६६१) वयादेश: ।
तस्य च वेञस्थानजातलेनैव यजादिलात् जी सिंहे पुनिष्ट यहणं (६६२) व्याने
वेपक्कामिति जिनिवेषस्य वाधनार्थे। यह प्रक्त वय सम् म इति चतृणां खेजाँ कते,
(५५८) स्टकारस्य सकारे, जं: फलामावेऽपीह यहणं यहादिगणार्थं, तेन यद्यति पृक्ताते
इत्यादी (६६१) यहादिलात् जि:। यजादिनु — यिज विषये वेञ् वेञी
क्षयतिस्या, वदि वैसिय स्थातिस्रते नव यजाद्यः। विव्ययं इति विधिवलात् खेः
रायचीलीपान् प्यात् न स्थानलीपः। व्य इत्यस्य भी कते, सकत् विस्तु वैष्यनेन विद्वस्य
प्रतने जि:। पाणिनः अधाह्म, ६११।१०।

† चलरिद्धमित्यादि (५५६,५५०) विकल्पहर्यं।

8**ष्ट्रं पादः—मित्रः**।

(११३) पत ॡ ज गत्येखर्ययोः।

६५२ । वञ्चख-छिन-पतां वोचख-ख-पप्ता ङ।

(वचि-षस्य-श्वि-पतां ६॥, वोच-षस्य-श्व पप्ताः १॥, ङे ৩।) ।

एवामेते क्रमात् स्युर्ङे। प्रख्यपत् । *

(११४) ण ज टुवंम उहिरणे।

वेमतुः ववमतुः, वेमिथ वविमथ ।

(११५) भ्रमु ज ए चलने।

(५८४) क्रम क्रमेति खन्वा। अय्यति अमिति। भेमतुः बभ्यमतः।

(११६) सह ज ङ शती।

व्यवहत व्यसहत । (६०६) वेमसहेतीम् वा । परिवहिता । 🕆

६्पूइ। सन्द-वन्नोऽदो दिः।

(सह-वह: ६।, चत्।१।, भी।१।, ढि ७।)।

^{·ः} विषयः ऋरयय श्रियः पतःच ते तेषां—

कोच च अस्थ्य अध पप्तय ते स्थः। विचित्ति घटादिक एव, भीवादिक कान उपप्राप्ताभावात्। प्राचितिक एव, भन्यसात् उपप्राप्ताभावात्। पाणिति-स्रते असघातोः युक् चागमः । प्रख्यपत्तदिति प्र-नि-पत—टौदि, (५६५) लृदिस्वात् इतः, चनेन पप्तादेशः। (५४६) गदायन्तने र्णत्वं। पाणिनिः अधार०,१८,१६,२०।

[†] वेमतुरित्यादि (५०६) जूवनभ्रमेति वा खिलीपः भ्रकारस्य एकारस्य । व्यवहर्तिति चिस्तकः—चीत, (६२३) वा पत्नं। परिषक्तिता (५०२) निलंगत्नं।

सहवहोः अकार यो स्थात् ढे परे। निसीढ़ा, (५०२) श्रोलान ष:। *

(११७) षद स्ट जी विषादे गती। निषीदति। न्यषदत्। निषसाद्। प्रतेलु प्रतिसीदति। पै

(११८) शदृ त्ह जी माते।

६५८। शहोऽपि मं। (शदः प्रा, पि था, मं रा)। श्रीयते। अग्रदत्। क्ष

(११८) फण मि ण गती।

फेणतः पफणतः, फेणिय पफणिय।

(१२०) राज् ज ण दीप्ती।

रेजतुः रराजतुः, रेजे रराजे । (५७८) विधिबलादातीऽप्येत्वं।§

[•] निसोटा पित नि.सह.— डी-ता, इ.सीऽभावपत्ते (१०५) इस्य टः. पनेन पका-रस्य फ्रोकारः. (५०५) तस्य घः, (४०) घस्य टः, (००) टजीपः। एवं सीटच्यः। भोटा. बोटच्यः। पाणिनिः ६।३।११२।

[†] निषीदिति, नि-सद-तिप्, (५८०) सीदादेश:। (५०२) षतं। नाषदत्— टौदि, (५६५) त्रुदिस्वात् ङ:। ष्यस्व्यथ्यानिऽपि षतं। निषसाट—ठी षप्, द्विता-दिकं, (६२४) खिभिन्नस्य षत्निभेषः, खेलुषतं। (५०२) प्रतिवर्जनात् प्रतिसीदतीति न षतं।

[‡] भप्विषये भदो मं स्थात्, यत्र यत्र अप् तत्र तत्रात्मनेपदिनित्यर्थः। भौयते (५६५) भौयादेश:। भपि किं, भगदत्, भत्र टौ-दि (५६५) छ:। पाणिनिः १।३।६०।

^{\$} फोचनुरित्यादि (५৩১) फचादित्वात् वा एलं, खिलीपश्च। विधिववात् राजृ- স্থা प्रभतीनां फचादिपाठवलादाकारस्थापि एलं खिलीपश्च।

एवं (१२१) टु सामृ ङ ण दीप्ती।

साखते भाषते। सेप्रे बसाप्रे।

एवं (१२२) टुभाष्ट ङ ग भासि । *
(१२३) घन ग ग्रब्दे ।

विष्णिति श्रवष्यणित मांसं, व्यष्यण्त्, विष्णेणतः विषष्णतः । विस्तनित वीणा, निस्तनित श्रवं, (५०२) श्रवव्यवेत्युक्ते ने षः। वि

(१२8) खनु च विदारे।

(२३०) इनगमेत्युङ्लोपः, चखूतुः चखू ।

६ॅपूपू। खन-सन-जनां ङा आसे, ये तुवा।

(खन-सन-जनां ६॥, ङा ।१।, भारे ७।,ये ७।, तु ।१।, वा ।१।)।

खायात् खन्यात्। क

अध्यक्षित दित (५८४) ग्रान्वा। सेभे दित फर्णादिलात् भातीऽप्येलं। भाग-भागो दन्यमानौषा।

[†] समन्दं मांसं सुङ्क्ते इत्यये:, श्रवष्यगतीति विधानवत्तात् श्रकारात् परस्यापि घतं। व्यष्टपदिति घी दिप्, श्रमव्यवधानेऽपि घतं। विश्वेषन्रिति फणादिलात् वा एलं, खिलोपस, दिकक्तस्यापि घलं। वीषा विस्तृति मन्दायेते, श्रनायेभिन्नलात् ; अर्ध निस्तृति सुङ्क्ते, वि-श्रवभिन्नपूर्वेलात्, न घल ।

[‡] एषां उत्तान् अभि परे, येत्वा, ङिक्तादन्यस्य स्थाने। पत्र विति अभि परे न स्थादिति बोध्यं, तेन यङ्नुकि चंखन्ति चंखंसीत्यादि। (धतरव किति ङिति अभवादौ परे इति पाणिनिः)। एवं ध्यण्भिन्ने येपरे बोध्यं, तेन जन्यनित्यादि। पाणिनिः ६।४।४२,४३।

(१२५) चायृ ञ निग्राने ग्रर्चे । ग्रनायीत्, (६४२) योृनीप द्रति, ग्रनासीत् ।

(१२६) लघ ज स्पृहायां।

लायति लापति । *

(१२७) गुह्न ज संवर्णे।

६५६ । गुहो गोकः । (गहः ६१, गोः ६१, कः ११)। गुहो गोकः स्थात्। गूहित गूहते। अगूहीत् अष्ठचत्। १

६५०। गुहरुहिहिलिहां टीमदन्खे न सि: सक वा।

(ग्रह-द्रह-विहासिहाँ हाँ, टीमदत्त्वे था, नारा, मि: रा, मक् ारा, या ारा)।
एषां टीमदन्त्वे परे सिर्ने स्यात्, सक् च वा स्यात्।
अगूढ़ श्रष्ठचत । ध

अपचायौदिति (५०३) ब्राइम्। चष्यतौति (५८४) ग्रान् वा।

[†] क्रति (८८३) गुद्धं गोद्धानिखुदाहरता भवि परे एवायं विधिरिति स्वितं, तेन गृहिता गोदा, गृहिष्यति घोच्यतीत्यादि । भगृहीदिति (५७३) वा इस् । पर्चे भनिस्लात् (६०५) सक्, (१०५,१७०,६०२,१११) भघुचदिति । पाणिनि: ६।४।८८ ।

[‡] ग्या मं टीमं, टीमे दन्यः टीमदन्यसिम्। एवां सिर्मं खादिति पद्यभी हिला पक्षी-निर्देशेन, गुड़धातीः सेम्पचे जातः सिः टीमदन्येऽचरे परे न तिष्ठेत्, सेर्जातलेन सपी न प्रसङः। धनिम्पचे (६०५) डयाव इस्पेन जातः सक् च वा तिष्टेदिस्थयः, धतः सकोऽभावपचेऽिव सपी न प्रसङः। तथा दुड्-दिइ-लिडां धनिमि-जुङ्हान्तलात् सिप्राप्तिरेव नास्ति, सक्तंत् वा स्थादेव, सकोऽभावपचे सपी न प्रसङः, सकद्यतो विप्रतिषेधे। अगृद्धाति तृद्वाधितमैविति न्यायादिस्थयः। अगृद्धाति गुड़-

६५८। सकाऽस्तोषो उचाने।

(सक: ६।, मत्-लीप: १।, पवि ०।, पव्ने ०।)।

सकोऽकारस्य लोपः स्यादवे अचि परे।

त्रगृहिषि त्रष्ठि । त्रगृहृहि त्रष्ठ्वाविह । दन्ये किं, त्रगृहिषहि त्रष्ठ्वामिह । त्रव्ये किं, त्रगृहिषत त्रष्ठ्वन्त । ॥

(१२८) ह ज हत्यां।

६्पूर। इगुङ् माढीखनिम् किद्गमस्तु वा।

(१गुडु: ५1, म-ढीसि ।२।, श्रनिम् ।१।, कित् ।१।, गम: ५।, तु ।१।, वा ।१।)।

टौतन्, भनेन सेरभावे, (१०५) इस दः, (५०५) तस्याने घः, (४०) घस दः, (००) दलीपः पूर्वस्य च दीर्घः। भनुचत इति सक्, (१०५, १००, ६०२, १११)। सकी विकत्यपचे तुभग्द इसीन। में किं, भनुचत्। (दन्योष्ट्रीऽपि वकारी दन्यग्रहणेन स्टब्रिते, तेन भग्नह्र स्पृचाविद इति सिद्धानकौसुदी)। पाणिनः ०।३।०३।

• भती लीप: भल्लीप: । न व्यं यव्यं तिमन् । वह्नवनिभिन्ने यनि विषये इत्यर्थः । अगृहिषि—टी इ., (५०१) इस टः, (१००) गस्य पः, (६०१) टस्य कः, (१११) षतं । विकल्पपन्ने भन्नित्तं (१०५) उस्य कः, (१११) षतं । विकल्पप्रेतिः, (१०५) इस टः, (१००) गस्य पः, (६०२) टस्य कः, (१११) षतं । विकल्पप्रेतिः, वकारस्य इत्यत्वेन भन्नताभावात् होदोभावित्यस्याप्राप्तिः । सम् विकल्पप्रेते सक् । अगृहिष्यक्षीति मकारस्य द्व्यत्वाभावात् न सिनिवेषः । इसी विकल्पप्रेते सक् । अगृहिष्यक्षीति मकारस्य द्व्यत्वाभावात् न सिनिवेषः । इसी विकल्पप्रेते सक् । अगृहिष्यक्षीति मकारस्य द्व्यत्वाभावात् न सिनवेषः । अश्वने इति इम्विकल्पप्रेते सक्, अत्र व्यन्वर्जनादनेन न भन्नारत्वीपः, परन्तु (५४६) लीपीऽतीऽदिचीरित्यकारत्वीपः, तस्य स्थानिवत्त्वात् न भन्नस्याने भत् । भन्नारत्वीपे भवस्यस्यावित्यिते भवे इति स्वयं भावाति—(१६) लीपीऽतीऽत्येत्वेशीरित्तं, (७०५) क्रमान्नोपेऽशित्यद्यीरित्येतेभ्योऽत्यस्वेष भन्नारत्वीपस्य स्थानिवत्तं नाम्नीति । तेन (६००) लुगदस्योऽप इत्यादिना भन्नारत्वोपे स्थानिवत्तान्, (५५५) मान्तोऽदनत इत्यस्य प्रवत्ती दृष्टते विक्रते इत्यादि विद्यं। पाणिनिः ०।३।०२।

इगुङ ऋवर्णान्ताच परा ने स्थिता अनिम् टी सिय कित् स्थात्, गमसुवा। श्रष्टत श्रह्मातां। हृषीष्ट। *

(१२८) दु डु स ज सृतिपुद्यी:।

बस्व। 🕆

(१३०) दान ज ग्राजीवे छिदि।

दीदांसति, दीदांसते। क्ष

एवं (१३१) गान ज तेजी।

थीयांसति ।

(१३२) भजी ज भागसेवयोः।

भेजे, भेजिय बभक्य।

(१३३) श्रिज सेवायां।

(६१३) जियीत्यङ्, ग्रमियियत्। ययिता। §

इत् उक् यस स इगुङ्— भिद वुध स्तृत प्रश्तिः। इगुङ्च ऋष इगुङ्ग तथात्। दी च सिथैति, मं (भाक्षनेपदे) दीक्षि, मदीसि। नासि इम् यस मोऽनिम् इति मदीमिवंशेषणं। गमसु आक्षानेपदे (८०५) समगत समगंता। अञ्चत इति मन्, सिः, अनेन कित्, (५६२) सेलेंग्रः। पाणिनिः १।२१११,१२,१३।

[†] बसव इति (५८४) नेससुस् इति इस्निपेधः।

[‡] दौदांसतीत्वादि (६३०) सन्, खेडीं च।

^{\$} भेजे इति (५०८) प: ए:, खिलीपथ। भेजिय इति (५८८) वा इम्। पर्वे वमक्षय (२११) कुङ्। अभिवियादिति श्रङ् दिलादिकं, (५८८) इयः। श्रयिता (५८०) थियकंनात् दम्।

(१३४) रन्जी ज रागे।

६६०। रन्जो ऽपष्रकानास्टिणनो न-लोपो जौतु स्रगरमणे। (रननः ६।, अप्-वक्त अन-अम्-िष्णनो ०), न-

लीप: रं।, जी ७।, तु । १।, सगरमचे ७।)।

रजति रजते। ररजतुः ररच्चतुः। *

. (१३५) लिषी ञ कान्ती।

ग्रिविचत्। विचीष्ट। 🕆

(१३६) यजैं जी देवार्ची-दान-सङ्गक्ती।

(६५१) व्यथयहित जि:, द्याज।

६६१। ग्रहस्वपाद्योः कङित्-कितो र्जिः।

(यह-खपायी: ६॥, कडित कितो: ०॥, जि: १।)।

यहादै: किति ङिति, खपादे: किति, जि: स्यात्। ईजतु: ईजु:, इयजिय दयष्ठ । क्ष

^{*} अप् च पकथ अनय अस् च स्थिनिश्चेति तसिन्। एतेषु प्रत्येषु परेषु रन्तः
न-सीपः स्थात्, औ परे तृ स्गरमथेऽयें। स्थिनिश्वि कत्प्रत्यये वक्तव्यः, तिक्षन्
रागीति। रञ्जनितित् व्यानस्थैव। रजति रजते इति अपि नलीपः। ररजतुः
ररञ्जत्रिति (५६६) वा कित्संचायां, (५६०) किति नलीपः। पाणिनिः ६।४।६६,
३।२।१४२, "रजकरजमरजःस्पसंस्थानं कर्त्तव्यम्", "िष्वन्थि च रञ्जेरपसंस्थानं
कर्त्तव्यम्", "रञ्जेथां स्गरमण उपसंस्थानं कर्त्तव्यम्" इति वार्त्तिकानि च।

[।] पितचदिति (६०५) सक्। विचीष्ट (६५८) किल्वात् न गुणः।

[‡] ग्रह्म खपम ग्रह्मपी, ती भादी ययोसी तथी:। कडी इती यस स कडित, कडिंच किच कडिल्किती तथी:। (६५१) व्यथगहेति सूत्रे पठिता: ग्रहादय: खपादयय जीया:। यज-मृत् दिलादि, व्यथगहेति खेजिं, भनेन मूलस्य जि:। एवं ईलु:। इयजिष (५८६) वा इस्। पर्व (१५४) पड्, (४०) षस्य ठ:। पाणिनि: ६।१।१५,१६ ।

(१३०) है वपी ज मुग्छ वीजीप्तगी: ।

प्रख्वाप ।

(१३८) वहै जी प्रापणे।

प्रख्यवाचीत्, अवीढ् । उवाह् , जहे । ॥

' (१३८) वै जै स्यूती।

६६२। यांन बे-प्रच्छां।

(ग्यां ७।, न ।१।, वे-प्रच्छां ६॥).।

वैज प्रच्छि व्रिष्ठ भ्रम्जीनां जिने स्थात् व्यां। ववी, ववतु:। 🕆

६६३ । वेजो वय वा । (वेजः ६१, वय् ।११, वा ।१।)। वेजो वय् स्यादा त्यां। जवाय जयतुः । क्ष

^{*} प्रस्युवाप प्र.नि-वप-पप्, दिलादिनं, (६५१) खेर्जिः । (५४४) गदायन्तर्भकं । प्रस्यवाचीत् प्र-नि-वहः टीदि, (१०५) इस ढः, (६०२) ढस्व कः, (५०४) त्रनिम्लात् हिंडः, गदायन्तर्भेषंत्रं । त्रवीद वह-टीतम्, (५६२) सिलीपः, इस ढः, (६५२) प्रकार भोकारः, (५०५) तस्य घः, (४०) घस ढः, (००) ढलीपः । जवाह वह-टी.सप्, दिलादिनं, (६५१) सूलस्य जिः।

[†] प्रच्छां इति बहुवचनं गणार्थ। विजी जिनिषेधेऽपि तदादेशस्य वयी न जिनिषेधः, प्रत्यथा तत्र (६५१) वयीग्रहणस्य वैयर्थात्। विजीणप् (६०८) एकार श्वाकारः, दिलादि, (६०८) षप् डौः, ववी, पत्र स्वेर्णनः। एवं ववतः, पत्र स्वेर्णस्य च जिनिषेधः। पाणिनिः ६।१।४०, वार्णिकच।

[‡] जवाय इति भनेन वयादेशे, (६५२) खेर्जिः । जयतुरिति खेर्मूलस्य च जिः। पाणिनिः राक्षाधर,६।राइर ।

ईईश यव: किति। (यारा, व: रा, किति ७)।

वेजो यस्य वः स्थादा व्यां किति। जवतुः। *

(१४०) व्ये जै हती।

ृ६६५ | नाव्येष्ठतां | (नारा, पारा, बेटरा, खां अ)। वैज्ञानसात् खां। विचाय | 🕆

६६६। जिंवान्य: निति।

(जिं २।, वा ।२।, भन्य: १।, किति ७।)।

द्वेञ्जीऽत्त्यो भागो जिं वा प्राप्नोति व्यां किति। विव्यतुः विव्ययतुः, विव्ययिष्य । इः

^{&#}x27; # विजी यस भमभवात् तदादेशस्य वयएव यकारस्थेसर्थः । जवतुरिति जयतु-रितिवत् सार्ध्यं, कंवलमनेन यकारस्य वकारः । पाणिनिः ६।१।३६।

[†] व्यंजे इतावित्यस्य व्यां विभक्तों (६०८) भानस्यात्। भनुइत्ताविष व्यामित्यु पादानं, कितीत्यस्य वा इत्यस्य च निइत्त्यर्थे। विव्याय इति भानिधेचे (६५१) यजादित्वात् खेजिः, (५००) बिडःः, (३५) ऐस्थाने भाषः। पाणिनिः ६।१।४६।

^{‡ (}६६१) ग्रहस्वपायोरित्यनेन प्राप्तस्य निर्वेकन्यविधानं। जिं वा कितीति ति ति भारी निःविधाने प्रयात् वि इत्यस्य हिले,, यजादित्वात् (६५१) खंजिं-विधाने ज्यातित्वात् स्थात्, (५३६) जि: पुननं स्यादित्यस्य नात्र विषयः हिभूतस्य वेः प्रक्रम्यनरत्वात्। विव्यतिरिति व्ये व्ये इति हिले, (६५१) खेजिं:, भ्रमेन मूलस्य निः; (५८८) इस्याने य। विव्ययतिरिति भनेन मूलस्य निर्वेकन्तप्ति (३५) ए-स्थाने भय्। विव्ययया हित (५८६) व्यंज-वर्जनात्, (५५४) नित्यमिम् सर्वेव (५३६) पुनर्जिविधान-निय्यात् विद्यस्य न छ.। "छभयेषां यहणसामर्थात् हसादिः भ्रषं वाधिला सम्यसारणम्" इति इतिः।

(१४१) ही जै सादीयां मब्दे च।

श्रहत्, श्रहत श्रहास्त । *

६६७। ह्वी हेर्जि:। (हः ६।, हे. ६।, जि. १।)।

देर्हें जो जिः स्थात्। जुहाव जुहुवतु:। 🕆

(१४२) ऐ वसी निवासे।

ईईट। सत्खरे। (चादा, त्।शा विश्व, परेश)। सस्य तस्यादरे से परे। अवासीत् अवात्तां, उवास जवतः । धः

(१४३) वदै वाचि।

श्रच्छ-वदित । (५०४) व्रजवदेति वि: । श्रवादीत् । उवाद जदतुः । §

^{*} महदिति हि-टी-दि, (६१८) छः, (६१०) मा-लीपः। ऋहत महास इति, (६१८) लिब्स्यस् भेवा इत्यनेन वा छः।

[†] जी: पुनकपादानात् कां, किति, वा, इति चयायां नानुवृत्ति:। हि धाती येंच दिलं तच खेर्मूखस्य चित्र: स्थादिलर्थः। यथा भाजूहवत् जहन्नति द्रत्यादि। जुहाव इति भनेन जभयच जि:, (५००) वृद्धिः, (३५) भौस्थाने भाव्। जुहवतुरिति (५८८) उस्थाने उत्। पाणिनिः ६।१।३३।

[‡] भवात्सीत्, भनिम्लात् वृद्धिः, भनेन सस्य त । भावात्तानिति भन्तरङ्गलात् निरवकाश्चलाच भादौ सस्य तकारे पश्चात् सिलीपः । उवास जवतः (६५१) यनादि-लात् खिनिः । (६६१) किति परे मूलस्य जिः । पाणिनिः ७।४।४९ ।

^{\$} चच्च-वदति (५८१) समासः, समुखे वदतीलर्थः। उनाद कदतः, यनादिलात् निः।

(१८४) टु भी खि इर्गति हद्योः।

(५६५) प्रासुनिद्युदिति ङ: वा। श्रखत्। (६१३) जित्रीत्यङ्वा। श्रमिखियत् श्रखयीत्। *

६्६र। खेर्जि वी यङ्-खो र्जप्रङ्सनी:।

- (ब्रे: ६।, नि: १।, वा ।२।, यङ्क्यी: ७॥, न्राङ्सनी: ०॥)।

खेर्जि वी स्थात् यिङ क्यां जेः परे श्रङि सिन च । ग्रमाव भिष्वाय, ग्रग्रवतुः भिष्वियतुः । श्रविता । श्रूयात् । पै

इति भिश्रपादः।

इति खाद्यध्यायः।

^{*} प्रज्ञत चिटीदि, ङ:, (१५२) चिस्ताने च। ङ-विकल्पपचे पङ्, हिलादि, (५८८) गृथ्वीरिति इय् पशिचियत्। पङ्विकल्पपचे द्यां चिः, (५५४) इ.स., गृषः, (१५) एस्याने पर् प्रचयीत्।

[†] यङ्च ठीच ती तथी:। चङ्च सन् च चङ्मनी, जेः परी चङ्मनी, तथी:। ग्रजाव प्रति चादी जिः पद्यात दिलादिकां। पचे भिषाय। एवं चतुक्ति (५८८) यथा-यीग्यं उव्प्रय्। ग्रयादिति (६६१) जिः। (५८०) दीर्घः। पाणिनिः ६।१।३०,३१।

६ष्ठः । १म-चतुर्गणाध्यायः ।

१म पादः-श्रदादिः।

~~?~~

(१४५) ग्रद ली भच्छे।

६७० । लुगद्धतो ऽपः। (लुक् १२८ महस्यः प्रम, पपः ६१)।

यदादे: परस्थापी लुक्स्यात्। यत्ति। %

६७१। इमसो हे धि:। (इ.समः था, हे: रा, वि: रा)।

हो भी साच परस्य हे धि: स्यात्। श्रहि। 🌵

६७२। हमाद्ग्रां दिसे लेंगियामी।

(इस-षदभ्यां ५॥, दि-से: ६।, लीपामी १॥)।

हसात् परवो र्दिस्रो नीपः स्थात् अदः परवोरम् स्थात् । क्ष आदत् आदः ।

[•] प्रदृष्य इति बहुवचनं गणार्थं। धं अप् रे इत्यव प्रदादिवर्जनं न कला पत्र लुक्-करणं कदाचित् अपः खिलायै, तेन प्रइनदिव्यादि। पिपन्, (१०६८) प्रप्-विशिष्ट-धातीर्गृषानिकत्ये, पदादिगणीयकदधातीः रोदितं कदितनिव्यादि सिद्धं। खुक्कर-धात् युतः युवन्तीत्यादौ (८३) खुक्कि न तचेति निषेधात् न गुणः। पाणिनिः २।४।७२।

[ो] इ-- लुइचि। षद-- घिता । ६४-- ६निः। वस-- छङ्दि। पकास--वकाद्वि इत्यादि। (८५६) विशेषविधानात् तातङादेशस्यक्षे न स्थात्, तेन लं धर्म भत्तात् चित्र वा। पाणिनि: ६।४।१०१।

[‡] दि-मेरिश्चेकवचनं क्रमनिरामार्थं। दि-मेरिति च्या एव, य्याना सिन्यय-।।नादमभ्रव:। पाथिनि: ६।रा६५,०।३।र००।

६७३१ वसूदः सन्चल्घि।

(घम्लः ।१।, बदः ६।, सन्-टी बल् घित्र ०।)।

यदो घम् ख्यात् सनि व्यामिल घिचि च। (५६५) लिखात् ङ:। श्रवसत्। अ

६७८। जांबा। (क्यां ७।, वा ।१।)।

जवास ब्राद। (२३०) हनगमेत्युङ्लोपः। जचतुः ब्रादतुः, जवसिय ब्रादिय। १

(१६६) पा ल भचणे।

प्रिपाति । 🕸

६७५। दिषविदाती उनुस्वा।

(दिष विद-स्रात: ५१, भन् ११।, उम् ११।, वा ११।) ।

द्देष्टे वैत्ते रादन्तांच परोऽन् उस् स्यादा। अपुः अपान्। \$

[#] सन्च टौ च ऋल्च घञ्चिति तस्मिन्। सनि निष्यसित। व्यां श्रघसत्, (२३०) ड-वर्जनात् न उङ्-लीपः। ऋनि घत्रिच प्रघसः घासः। (पाणिनिः ३।३।६०) न्याद इत्यादौ सुन घसादेशः। पर्यापनिः २।४।३०,३८।

[†] भदी घस स्थात् ना व्या । जनतः उङ्लीपे (६४) घस्य कः, (१११) णास-यसमसीत बलं। भद घस इति दाश्यां धातस्यां भाद जमास इत्यादि सिद्धाविष एतत्म्चकरणं घसधातीस्थपि भदतुत्व्यतम्भापनार्यं, तेन (५८८) भदवर्जनादेव घसवर्जने सिद्धे, घसधातीः जमसिय इत्यव (५८४) नित्यसिम् । पाणिनिः २।४॥४०।

^{‡ (}५४९) गदनदेति चलं।

[§] श्रव श्रम् इति घ्या एव, व्यान्तु हिष: स्वत्व्यवधानात् न प्रमङ्गः, तेन व्या श्रह्मचन्। विदाशीमु सिन्यवधानात् श्रनेनापृषी, (५६१) नित्यसुस् श्रवेदिधः, श्रप्तासिषुः। पाणिनि: ३।४।१०८,११०,११२।

. (१४०) वम स काम्ती । *

वष्टि । (६६१) ग्रह्स्सपाद्योरिति जि: । उष्टः उमन्ति । श्रवट् । उनाम । १२

(१४८) इन जी हिंसा-गत्थी: ।

६७६। वनतनाद्यनिमां अम्लोपो अस्-यप्यतिकार्षो।

(वन-तनायितमां क्षा, जन्ने बीप: २१, भन्यिपः अ, भितिक अ, भषी अ)।
एषां जम्लोपः स्थात्, अणी भन्ने यिप्,च, नतु तिकि।
प्रणिहतः। (१८८) हनो हो प्तः। प्रन्ति। प्रहेखः प्रहन्वः,
प्रहस्मः प्रहन्मः। क्ष

६७७। जन्नेधि-माधि इन्यस्ति-मास्ति हिना।

(जिहि-एधि-माधि ।१।, इनि मस्ति-मास्ति ।६।, हिना ३।)।

रषां डियुक्तानां क्रमादेते स्युः। 🛭 🛊 डि 🛙 🖇

कान्तिः कामना, प्रचीति यात्रतः।

[†] वम-तिप्, (१५४,४७) वङ्, तस्य ट:। भवट् इति घौ-दिप् (६०२,१५४,६४)। ठौ-वप् जवाम (६५१) खं-जिं:।

[‡] तन पादिर्यस्य स तनादिः । नास्ति इस्यक्षात् सः । वनसः तनादिस पनिस् पैति तेषां । ञन् कस्य प्रत्याहारी । यप् इति (१.१७६) क्षाप-स्थाननातः । तिक् (१००७) प्रत्ययः । नास्ति पुर्यक्षिन् , स तिस्मिन् , पणौ इति कसी विशेषणः । एषा-मिति बनधातीसनादेशनिमास्त्र । प्रणि इत इति पनि न जोप्रः ; (५४८) गदायस्ते-र्णतं । एवं प्रदृष्ण इत्थादि स-वास्त्रहनो वा यत्वं । पाषिनिः ६।४।३०,३८,३८ ।

६७८। इनो वषष्टीकालि टीसे तु वा।

(इन: ६।, वध: १।, टौकालि ७।, टौमी ७।, तु ।१।, वा ।१।)।

इनो वधः स्थात् व्यां व्यामलि च, टी-मे तुवा। अवधीत। *

६७८। खे ही वो अणिति च।

(खं: ५१, इ: ६१, घ: ११, ञ्चिति ०१, च १११) ।

खेः परस्य हनो इस्य घः स्यात्, जिति णिति च। जघान, जन्नतुः। हन्ता। वध्यात्। प्रहणिथति। 🕆

(१४८) यु लिभसपेणे।

६८०। रिपडस्युता उद्देतिः।

(र-पित्-इसि ७।, उत: ६।, पदेः ६।, ब्रि: १।)

श्रद्धे भी क्लारस्य विः स्थात् पिति इसे रे। बौति बुतः बुवन्ति । क्ष

^{*} टी च टी च भन् चित तिधान् । भन् इति (११६४) प्रत्यः । य्यादी इन्तेः प्रयोगं निषिध्य भौवादिक-वधधातः प्रयुक्ति इति तात्पर्यम् । भवधीदिति इनी वधदिभे वधधातोरनीदिक्तात् (५५४) इम्, ततः (५६१,५६२) ईम्, सिलीपय । एवं वध्यात्, (भन्) वधः । टीने तृ—भाविष्ट भाइत इत्यादि । (पाणिनिः १।२।८४) परिच इत्यादी तुन वधादेशः । पाणिनिः २।४।४२,४२,४४।

[†] चकारादयंदयं, खे: परस्य इनो इस्य घ: स्यादिति, जिति चिति च परेऽपि घ: स्यादिति च। खे: परलात् जधनिय जिधां भरौत्यादि। जिति घातयिति, चिति घातक इत्यादि। जन्नतुरिति (२२०,१८८) उङ्लोपी न्नादेशच। प्रइषिष्यतीति (६१०) इस्। (५४८) नादिहनभीनेति चलं। पाणिनि: अश्वरुप्यु

[;] रथासी पिञ्चासी इन्स्चिति तक्षिन्। न दिरदिश्यस्य । यथा खीति यीति रौति। ऋदेः किं, जुद्दीति। युश्चि (५८८) उत्र। पाणिनिः शशस्ट।

(१५०) युल मित्रणे श्रमित्रणे च। ग्रीति । यविता। अ

(१५१) गुल सुती।

श्रनावीत् अनीषीत्। नुनुविव। *

(१५२) च्लुल तेजने।

च्छविता।

(१५३) णाु स प्रसुत्यां। अ

(५८६) स्क्रमीऽमे इति इम्। श्रस्रावीत्।

(१५8) इ-न स गती। 🌵

६८१ | यिनाऽचाणो । (य ।श, इन: ६।, अवि अ, षषी अ) ।

द्रनी यः स्थादणाविच । क्ष यन्ति ।

६८२। गाव्यां। (गारा, यां ण)।

दनो गा स्थात् व्यां। श्रगात्। द्रयाय। §

^{*} यितता, च्लाविता इति (५८०) प्रतिप्रमवान् (५५४) इम् । भानावीदिति (५०१) वा इम् । भाजन्तवान् (५०४) त्रिः । नृतुदिव, (५०२) ख्रव्या इत्युक्तः, नेमसमिति (५८४) नियमात्, नित्यमिम् । मचपाठे चु इति पोपदेशभिद्येशः । (५६१) भ्वायादीति षस्याने सः, सृ इति धातुः ।

[†] इ-न घाती नंकारः (५५२) भुस्थापिवेत्यादियु विभेषज्ञापनार्थः।

^{‡ (}५८८) ऋष्वीरिति प्राप्तव्यस्य द्वयो वाधकः। पाणिनिः ६।४।८१।

[§] इ.चप्, (६००) मूलस्य इडिः। (५८५) खे. स्थाने इय। पाणिनः; राधाश्रम्

६८३। खे: किति घे:। (खे: ६।, किति ७), घं: १।)। इन: खे: घं: स्थात् किति छां। ईयतु:। क्र

ं ६८४। अगे क्यां। (पने: ११, व्यां ११)।

अगिरिनो घी: स्थात् किति व्यां। इँयात्। अगीः किं, अन्वियात्। पं

(१५५) अधीक ल सारणे। ह

६८५। इंन्विदिका:। (इन्वत्।१।, इक: ६।)।

द्रन द्रव द्रक: कार्य्य स्थात्, रूपच तदत्। §

(१५६) या ल गती।

प्रणियाति । श

एवं (१५७) वा ल गमन हिंसयी:।

^{*} विभूतस्य दन धातीः क्या चन्यत्र कितीऽसभावात् वृत्तौ क्यामिति त्याख्यातम्। द्रेयतुरिति, (६८१) यकारे, चनेन दीर्घः। पाणिनः श्रिष्ठा६८।

^{† (}५८०) घाँऽज्यरे इत्यनेन दीर्घे सित्तेऽपि, भयं नियमार्थः, तेन व्यां किति भगेरिन एव दीर्घः न तु सगेरिति। पाणिनिः ७।४।२४।

[‡] इ-क: ककारियक्रार्थ:। पिधयद्दर्श चन्यपूर्वस्य केवलस्य च प्रयोगनिरासार्थे।

^{\$} रनधातोरित दक्षधातोः कार्यं स्थात्, रूपच तद्दित्यनेन सर्व्वेतेव स्थादिति स्थाप्टं, तेन (८०६) गमीनिङोरित्यचापि यद्दणं, भतएत दक्ष-धातोरिप चिधिजगिमप्रतीति । ससीतयो राधवगोरधीयविति भही, चातिदेशिकस्थानित्यतेन दनतुत्वाता-भावात् (६८१) य चादेशं वाधिता, (५८८) दय भादेशः । "द्दण्विदिक दित वक्तव्यम्" दित वार्तिकम् ।

[¶] प्रियाति (५४८) गदनदेति पर्ले।

(१५८) द्रा ल खप्रे पलायने च।

(१५८) ख्या ल ख्याती कथने।

अख्यत्। 🕸

(१६०) मा ल च माने।

प्रिमाति। मेयात् : # .

(१६१) विद ल जाने।

६८६ । वेत्ते: क्रीपंठीपंवा।

(वेत्ते: ५।, कीपं १।, ठीपं १।, वा ।१।)।

विद: परस्य क्या: पस्य व्या: पं स्यादा।

वेद विदतुः विदुः, वेख विद्युः विद्, वेद विद्व विद्या । पत्ते सगमं । पः

६८७। ङाम् वा ठ्यां ग्यान्तु क्रानु।

(डाम्।१।, वा।१।, व्यां ७।, ग्यां ७।, तु।१।, क्र।१।, घनु।१।)।

वैत्तेष्ठां ङाम् वा स्यात्, ग्यान्तु क्षञ एवानुप्रयोगः । 🕸

^{*} प्रत्यदिति (६१८) डः, (६१०) पालोप:। प्रणिमाति (५४८) गदनदेति पत्नं। भेयादिति (६१२) छः।

[†] स्थानिवदादेश इति न्यायात् ठीपस्य कीप-तृज्यत्वात् न दिलं, (६८०) न उत्तम्, नेवा वैत्य इत्यादाविम् । केवलं कीपरस्मैपदविभक्तीन।नाकारभेद इति। पाणिनि: १।४।⊏३।

[‡] ग्यानु इत्यनेन गीपरेऽवि छाम् वा स्थात्. तस्यात् क्रञ एवानुश्योगः नतु श्रम्-तुभीरिति । ज्यस्त श्रमुणः । पाणिनिः ३।१।४१ ।

ईदद। तन्थः ग्रुप्रे व।

(तन्भ्यः ५॥, ग्रुप् ।१।, वे ०।, घे ०।)।

विदाङ्गरीतु वेत्त्। *

६८१। जञी उदयौ रे।

(क्रज: ६।, चत्।।।, च।१।, चयौ ०।, रे ०।)।

क्षजो ऽकार उ: स्थात् अर्णो रे। विदाङ्गुरुतां वित्तां। अविदुः अविदन्। पं

६्८०। घ्यांसौरवादघो:।

(घा ७।, सी ७।, र ।१।, वा ।१।, द-घी: ६॥)।

द्धोरेफ:स्यादासी घ्यां। अवेः अवेत्, अवित्तं अवित्तः। विदास्त्रभूवं विवेदः। ध

तन्थ्य इति वह्वचनं गणार्थे, तनादिथ्य दल्यर्थः । गुपः भपावितौ जकारस्थितः,
 अपपी वाधकीयं। विदाइरीत् इति क्र-पर्यागे, क्रञमनादित्वात् ग्रप्, गुपि परे (५,४१)
 क्रञी गुणः, पुनः तुप परे ग्रप जकारस्य गुणः। पाणिनिः ३।१।९६।

[†] नास्ति णः (गुषी प्रत्ययः) यक्षात् सीऽणुलिखन्, भणी इति दे द्रवस्य विशेषणं। भगुषिप्रत्ययपूर्व्ववितिन रेपरेद्रत्ययः। विदाङ्ग्दतामिति ग्रपि परे ता इत्यस्य ग्रणे, विदाङ्गर् इति स्थिते, भनेन भकार उकारः। भविदुरिति च्या चन्, (६०५) दिष-विदेति उस् वा। पाणिनिः ६।४।११०।

[‡] अप्रेतिति विद-घौ-सिष्, (६०२) सिपी लीपः, त्यक्षीपे त्यलचयमिति न्यायाः इनेन दस्य रेफःः, (१०२) रस्य विसर्गः। विदास्त्रसृत (६८०) विकल्पेन उक्ताम् (५८२) सृप्ययोगः। एवं विदासास, विदासकारः। पर्च विवेदः। पाणिनिः ८।२।७५।

(१६२) श्रस ल भुवि।

६८१। लोपो उक्यमो र्ङ्किंद्रमो रच्यां।

(लीप: १।, अस्ति-अ-धी: ६॥, ङित्-र-सी: ०॥, अध्यां ०।) ।

श्रस्तिरकारस्य ङिति रे, सस्य च से, लोगः स्थात्, नतु घ्यां। स्तः सन्ति, श्रसि, एधि, श्रासीत् श्रास्तां। *

६८२ । भूररे । (मः रा, बरे का) । अस्ते भूः स्थादरे । अभृत् । क

६१३। प्रादुगीक: सः षा उच्छे।

(प्रादुर्-गि-इक्तः ५।, सः ६।, षः १।, भच्-घे ७।)।

प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात् । निषन्ति । क्ष

[•] षष सप असी, षसेरसी अल्यसी तयो:। ङिचासी रश्वेत ङिद्र: ङिद्रश्व स्व तौ तयो:। स इत्यनकारान्तगृहणात् सि से स्व इति चयाणां ग्रहणं। धरे परे (६८२) भू-भादेशेन अस-स्थित्यसम्भवात्, केवलं ङित्गृहणेन सित्ते, रग्रहणं भरे परे "लावस्य उत्पाद्य इवास यवः" इत्यादी कदाचि दसभातीर्भू आदेशनिषेधाये। सः सन्ति उभयव ङिति रेपरे म-लोपः। भसि इति सेपरे स-लोपः। ग्या इि (६७०) एषि । घ्या दिप (५६१) ईम्। पाणिनिः ६।४१११९,०।४।५०।

⁺ भरविषये भस्यातुस्थाने भ्षातुरादिस्थते, तेन भूधातुःनिमित्तं सर्व्वे कार्ये स्थादिति । पाणिनि: २।४।५२।

[‡] गेरिक् गोक्, प्रादुष गोक्ष तकात्। प्रादुर्गन्दात् गेरिक्य परस्य अस-घाती: सस्य य: स्थात् अचि ये च परे। अचि ये च किं, प्रादुःक्षः इत्यादी न पलं। पाषिनि: ८।३।८०।

(१६३) सजूस म श्रुही।

६८४। सना उनिङ्ति विवी लचाणी।

(बन: ६।, भक्डिति ७।, नि: १।, वा।१।, तु।१।, भवि ७।, भवी ७।)।

त्रकिक्ति सजो ति: स्वात् श्रणाविच तुवा। मार्ष्टि सष्टः, मार्जित सजिता । *

(१६४) वच ली वाचि। गं

(६५२) वचस्यिषयतामिति वीच । भवीचत् । उवाच जचतः ।

(१६५) रुदिर् ल घ रोदने।

६८५। रद्गो ऽया इसस्यम्।

(बद्भ्य: ५॥, षय: ६।, इस् रस ६।, इस् ।१।) ।

क्टादेः परस्य श्रयस्य हमस्य रस्य दम् स्थात्। § रोदिति क्टितः। श्रयः किं, क्यात्।

^{*} क- औ दतौ यस्य स काङिन, न काङिन् श्रकाङित् तिस्ति । स्त्र इति घटादीय-मुरादीययो देथी ग्रंडणं। स्त्रजो शौ विश्यिको क्षिकौ श्रकाङितीति कथनं किमार्चती-त्यत्र श्रानिस सनि (८०४) भगुणेऽपि इदिप्राप्त्रग्रें। सार्ष्टि श्रनेन इदिः, (१५४) पड् । पाणिनिः शरा११४। वार्त्तिस्त्र।

[†] एतस्रात धाती: चन्ति-चन्त-प्रयोगी नास्ति ।

[‡] भशेचदिति (६१८) छ:। छवाच (६५१) जि:। जचतु: (६५१,६६१) जि:।

[§] बदस्य इति बदादिगणेश्य इत्थर्थः, गणसु (५६१) स्त्रे उक्तः । इस् चासी रविति इसस्तस्य । रिवध्ये अप्राप्ती विधिग्यं, तेन गीदिष्यतीत्यादी (५५४) इस् स्थादिन । पाणिनः २१९०६ ।

६८६। दिखोरम् वा। (दि.सी: ६॥, घम ।रो, गारा)।

क्दादेः परयो दिंस्योरम् स्यादः। अरोदत् अरोदीत्, अरोदः अरोदीः। *

(१६६) जिष्पी घलु स्त्रे।

विस्विपिति, (६२५) सवलात मः। विसुत्वाप, दुःषुषुपतुः, (६२५) निर्व्वेलात् मः। 🅆

(१६७) अन घ लु प्राणने।

प्राणिति प्रानिति । अ

(१६८) खस घ लुप्राणने।

खसिति। अखसीत् (५०६) चणादिलात्र विः।

(१६८) जच च लु घ भच-हासयी:।

जिति।

६८७। अन्तोऽट्हे:। (पनः ६), पन (१), वे: ४।)।

[#] दिस्रोरिति च्या एव, व्यान्तु सि-व्यवधानादसभाव: । अभी म इत् आदौ। अरोददिति सम्, पर्वे (५६१) ईम् अरोदीत्। एवं च्या: विपि। व्यान्तु, (५६५) वा क्षेत्रसदन अरोदीदिति। पाणिनि: शहाटट।

[†] विसुष्वाप इत्यव (५०२) दशस्यादेरिति नियमात्, भव खेर्न घलं, खिनिमित्तकं सूलस्य षलं (१११) किलादित्यनेन स्यादेव । दः पृथुपनुहित्यतः बलवस्वादादौ (६६१) जो क्षते, पले चक्रते, पश्चात दिलमिति ।

[‡] प्राणितीति (५४८) भननिंसेति वा चलं।

द्वे: परवान्तोऽत् स्यात्। जचित । अ (५६३) अनुस्सिद्देशित। अजनुः।

(१७०) जाग्ट च लु जागरणे।

्र्ट्र । गुनस्कां। (चः ११, चित्र ७), अव्यां ७)। द्देवसि परे गुः स्थात्, नतु र्खाः। प्रजागरः, ग्रजागः। त्रजागरीत्। जागरामास जजागार। 🕆

६्टर। जाग्री ऽणव्वीण्ङिति कसुकाने तु वा। (जायः ६।, घ-णप्-वि-इण्-डिति २।, क्रमु-काने २।, तु।१।, वा।१।)।

जागर्ते र्णुः स्थात्, न तुणपि वी द्रणि ङिति च, क्वसी काने तुवा। जजागरतः। \$

अन्त् इति इसलिनिर्देशात् प्रति अन्तु अन्तामित्यादीनां ग्रहणं। देरिति (१९७४) स्वे कथितात्। ज्ञच-पन्ति ज्ञचति, एवं दहति । चिकी घेनील्यादी, (५४३) श्यी लीपे स्थानिवस्तात्र भन्तोऽत्। पाणिनिः ७।१।४।

[†] भनागवरिति जाग्र च्या भन्, (५६३) भन उस्, भनेन नुष:। ब्यानु जुड्ड:। मजागः—च्याः सिप्, (५४२) गुणः, (६७२) सिपी खोपः, र विसर्गः । चकागरीत् (५,०४) न इंडि:। जागरामास (६००) वा घाम्। पाणिनि: ७।३।८३।

[‡] जागदति सूत्रतात् न जुः (१४१)। णप्च विद्य दण्च ङिचेति तत्,पद्मात् नञ्धीगे तिसान्। यापप्रस्तिषु गुणनिषेधात् अन्यत्र सर्व्वतेव गुणः स्यादिस्पर्यः। औ जागरयति, घांत्र नागरः, यिक नागर्यते, यपि प्रनागर्यः, दी-यात् नागर्यादित्यादि। चवादी तु जनागार, नाग्टवि: (११३१), ऋजागारि, नाग्टत: नाग्रतीत्वादि । कसुकानि (घे) जजागर्वान् जजाग्रवान्, (ढे) जजागराषः जजागाषः । पाषिनिः ৩।३।८५ ।

(१७१) दरिद्रा च लु दुर्गत्यां।

७००। दरिद्रो ङि ईस्व ऽणौ हाग्योस्त वा।

(दिरद्र: ६), डि: १), इस्रे थ, अणो थ, हाक्योः ६॥, तु ।१।, वा ।१।)।
दिद्गिते र्डि: स्थात् अणी हमे रे परे, हाग्योसु वा ।
दिद्गित: । *

७०१ | ऋाद्वारा लोष्यो ऽणो हसे त्वादः ।
(या-ह्यो: ६॥, चा १२।, बोष्ये: २१, घणो ००, इसे ००, त १२।, ई १२, घटः ६०)।
ऋा द्रत्यस्य देव आ लोष्यः स्थात्, अंगी हसे तु दावर्ज-मी
स्थात्। दरिद्रति। पं

७०२। दरिद्र त्रालोपोऽसनकानेऽरे व्यान्तवा।

(दिरदः ६।, भानोपः १।, भ सन्भक्षकभने था, भरे था, यां था, तं ।१।,या ।१।)। द्दिद्र आलोपः स्थादरे, नतु सनि अने अने च, व्यान्तु वा । अद्दिद्रीत् अद्रिद्रासीत् । द्दिद्रामास द्दरिद्र । द्रिद्रात् ।ः

इाक्चभीय तथी: । ङ इत् (१०) चन्यस्य चाकारस्य स्थाने । पाणिनिः
 ६ । ४। १२४, ११६ ।

⁺ ग्राय दिय तौ तयी:। चन चणी रे इति नक्तळां, तेन ख्वाधाती येकि चाख्या-.यते इत्यादी न प्रसक्त:। चणी इसंतु कीणीते जहीते इत्यादि। दा-धा-धालीसु दसे, धसे। दरिद्रति (६८७) चन् चत्, चनेन चालोप:। पाणिनि: ६।॥११२,११३।

[‡] सन् च अवस्य अनय तत्, न तत् असनकार्भ तिसन्। यथा दिदरिद्रास्ति, दरिद्रायकः, दरिद्राणं। यि दरिद्रामास (६००) वा आस्, पर्च अन्तरङ्गलादादौ आ-लीपे ददरिद्र, पाणिन्यादयम् जौ आदेशं यलवनं मला ददरिद्रौ इत्युदाहरिन । "यमु यिल ददरिद्रीत तिन्नर्भूलभेव" इति सिद्धान्तकौसुदौ। वार्त्तिकदयम्।

(१७२) चनास च लु दीप्ती।

(६०१) हुभसो हेर्घि:। चकाघि। (६४) भाष्भसोरिति सस्य इ:। चकादि। #

७०३ | घ्यां दौतसः । (व्यां अ, दौ अ, तारा, सः ६)। घ्यां दी परे सस्य तस्यात्। श्रचकात्। पं

७०४ | सौवा | ^{(सी ०), वा (श) ।} भवकात् भवकाः । क्षे

(१७३) गास च लु गासने।

9०५। ग्रासिङ इस्ट ऽणौ कौ त्वाग्रासस्य । (शास-उङ्ग्रा, इत्।रा, इस्ड ०।, त्रणो ०।, को ०।, त्रारा, त्राणास ६।, चारा)। ग्रास्ते रुङं इत्स्यात् त्रणी इसे ङेच, को तु आग्रासय। ग्रिष्ट:। ग्राधि। अभिषत्। §

[🌣] चकाधि (५५६) सलीप:, पचे चकाहि।

[†] विभाषाद्यमध्यवर्त्तिताद्रित्यं। अध्वकात् (६०२) दिपी लीप:। अपनेन सस्य त्। पालिनि: ८।२।०३। तन्मते सस्य दः।

[‡] सस्य तस्थादा घ्यां सी परे । भवकात् भवकाः (६०२) सिपी लीपः । पाणिकः द्वारा ७४ ।

[§] प्रास उर्ज् प्रामुङ् तत्। इस् च ज्य तसिन्। चयी इति स्तरां इसी विभेषणं। प्रास इति प्रास च नु प्रामने इत्यस्येव। कौ तु प्राप्रासय इति प्राप्यंकः श्रास ज वाशिष इत्यस्य किपि एव, प्रयो इसे तु प्राप्राक्षे इत्यादी प्रात्मनेपदीयस्य इत् न स्थात्। किपि यथा, मित्रं भ्राक्षीति मित्रभीः, प्राप्राक्षे इति प्राभौः (१०३३)। प्रिष्ट इति प्राक्षारस्य इः, (१११) श्रास्त्रमेति पत्नं। प्राप्ति (६९०)। य्या दि, (५६५) स्थिष्त्। पाणिनिः ६।॥॥३४। नार्त्तिकानि च।

(१७४) चच ङ स बहे।

चष्टे। 🗱

७०६। चचः क्साञ्खाञ् ऽरेऽत्यागीससने।

(चच: ६।, क्साञ्च्याञ् ।१।, भरे ७।, भ्रतागीसमने ०।) ।

चचः क्साञ्खाञ्स्यादरे, नतु वर्जने उसि ग्रसि ग्रने च। श्रक्सासीत् ग्रक्सास्त, श्रस्थत् ग्रस्थत। त्यागे तुसमचर्चिष्ट। 🕆

७०७। यां वा। (ठारं ७।, वा।१।)।

चक्सी चक्से, चख्यी चख्ये, चचत्रे । 🕸 🔻

(१७५) ईड़ ङ ल सुती।

ईहे। §

७०८। सध्वो रखेम् जनीड़ीश:।

(स-ध्व: ६।, रस्य ६।, इम् ।१।, जन-ई.ड्-ई.श: ५।)।

[🛊] वदः कथनं। चष्टे इति चच्ते (२१३) क-लीपः।

[†] क्साञ् च खाञ्च तत्। न रोऽरसितिन्। खागय उस्च चस्व चन्य तत्, नञ्योगे तिक्षान्। क्साञ्खाञ्दल्यभयो जीनुवसाद्भयपदं, अर्र इति विषय-समी, तेन विभक्षात्यत्ते: पूर्लं एतौ स्यातामिति। वर्जनेऽये उसादौ प्रत्यये च न सात्। क्साञ् इति तालत्यमध्य इति पाणिनि-कमदौष्यौ। सतानरान्रीधात् भेपदंवेन दन्यमध्यः कथितः। र्न्त्यथदादेशविधानसामर्थात् वतं न स्यादिति। मक्सासौदिति (५८८) इन्सनौ। चक्सास्त (५८०) एकाजादन्तवात्रेम्। चख्यत् प्रस्तत इति (६१८) छः, (६१०) चालोपः। समचिष्ट त्यक्तवानित्यर्थः। उसादौ तु वद्यः, वच्चाः, विचच्यः। पाणिनिः २।४।४४। वार्त्तिकानि च।

[‡] चचः क्षाञ्ख्याञ्च स्थादा ठ्यां। विषयसप्तमीयं, तेन घादावादिये ञानु-वसादुभयपदं। पाणिनिः २।४।५५।

[§] ई.ड ते, (४०) तस्य ट·, (६४) इस ट:।

एभ्यः परस्य सस्य ध्वस्य च रस्य इम् स्थात् । ई ड़िषे ई ड़िध्वे । 🕸

(१७६) ग्रास ङ ल उपवेशनी ।

ग्रास्ते। (५८२) र्व्विजादीत्याम् ग्रासाचन्ने।

(१७७) वस ङ ल श्राच्छादने।

वसिता वस्ता। गं

(१७८) निसि ङ स चुखने ।

प्रणिंस्ते प्रनिंस्ते । 🕸

(१७८) सू ङ ल प्रसवे।

सूते।

७८ । सूते न गुर्ग्या । (मृते: ६१, न ११, खः ११, ग्यां ७)। सुवै। §ं (५७३) वेमूहितीम् वा। असविष्ट असीष्ट।

(१८०) भी ङ ल भयने।

७१०। मीडने रे गुः। (भीडः ६।, रे ०।, गः १।)।

^{*} जन इति १८८ मं स्थानस्य जुडी त्यादिरेन, न तु २३४ मं स्थानस्य देवादिनस्य, तस्य ग्राना व्यवधानात्। भागाशी विधिष्यं न तुनियमः, तिन जनिता ईडि़ता इत्यादी (५५४) वसी ऽरस्थेतीम् स्थादेव। ईडि़पी ईडि़पी इति क्याः से खे भनेन इम्। एवं द्रीग्रङ ऐस्यों, ईष्टी इत्यादि। पाणिनिः ७१।००,०८। तन्मते व्याः खिमि ऐडि़ष्मम् ऐड्ष्म इत्युभयम्। इति मिद्धानकौ मुदी।

[†] वसितावसा इति (६०६) वा इस्।

[🙏] प्रचिंसी प्रनिंसी इति (५४८) धन निंस निन्देति वा गलं।

[§] स्ङ ख धाती र्युर्नस्थात् ग्यां। सुवै स्-ऐप् चनेन चगुणले (५८८) छव्। पाणिनि: ७।३।८६।

श्रीते भ्रायाते । %

७११। मान्तो रम् विदस्तुवा।

(मान्त: ६ा, रम्।१।, विद: ५।, तु।१।, वा।१।)।

भीडः परस्य मस्यान्तो रम्स्यात्, वेत्तेसुवा। भेरते। अभयिष्टा वे

> . (१८१) ग्रघी ङ्ल ग्रध्ययने । ः

ऋधीते।

७१२। गौङ ष्टीष्यो वर्ग।

(गी ।१।, इड: ६।, टी-थ्यी: ७॥, वा ।१।)।

इङोगीस्थात् वाटी-थ्योः परयोः। घेलान गुः। अध्यगीष्ट अध्येष्ट । §

७१३। ठ्यां गा अप्रङ सनोस्त वा।

(ब्यां ७।, गा ।१।, त्राङ्-सनी: ७॥, तु ।१।, वा ।१।) ।

श्रीको ग्रः स्थात् रे पेरे, गुणनिमित्ते अगुणनिमित्ते चेत्यर्थः । पाणिनिः ७।४।२१ ।

[†] सस्यान् मान् तस्य । विद इति शीङ-साइचर्यात् भदादिपितस्येव ग्रष्टणं । श्रेरते इति शी-भन्ते, भनेन भन्तस्थाने रम्, मिस्वादादौ, एकदेशविक्ततमनन्यवत् भवतौति न्यायात् पूर्वेष गुणः । विदसु संविद्रते संविदते, (८०५) भान्यनेपदं । भश्रिषट शी-टी-तन् (५८०) स्वस्य प्रतिप्रसवात् (५५४) इ.म् । पाणिनिः ०।१।६,७ ।

[‡] गणपाठे चिषपूर्वकस्य इष्ट-धातो निर्देशात् चिषपूर्वकस्यैव प्रयोगः न तु केवलस्य। चाते चधौयाते (५८८) दय।

[§] घंतात्र एः, गी इति दीर्घनिर्देशात्र गुण इत्यर्थः । भध्यगीट, भधि-इ.टी-तन्, गी-मादेशः, एकाजिवर्षांकतात् न इन् । गी-मादेशस्य विकल्पपचे (५०१) पुनरनागमे भध्येष्ट । पाणिनिः २।४।५० ।

दुङो गास्यात् ह्यां, जेः परे ग्रङि सनि च वा। श्रधिजगी। श्रध्यगीषत श्रधेषत । *

(१८२) दीधी र्ङ च सु देवने दीप्ती।

७१४। दीघीवेच्यो न गु:। (दीघी वेच्यः ६१,न १११,गः ११)। दीघ्यै। नं

७१५ | लोप्यो उन्तो य्यो: । (लोप्य: १, पन: १, यी: अ)। दीधी-वियो-रन्तो लोप्य: स्नात् यकारेवर्णयो: । अदीधिष्ट । क्ष

(१८३) एवं वेवी ङ च लु ई-ल-वत्।

(१८४) दिषी ज स वैरे।

(६৩५) हिष्यविदातो ऽनुस्या। ऋहिष्ठः ऋहिष्यन्। ऋहिष्ट। ऋहिचत्। §

^{*} भङ्च सन्च अङ्ग्रनी, जें: पङ्सनी जाङ्-सनी तथोः। अधिनगे अधि इ-क्या ए, गा-भादेशे दिलादी, (६१०) भाषीपः। यी-र्स्यत, (०१२) गी-भादेशे अध्य-गीयत, विकल्पपे अध्येखत। जाङ्-सनीम् पध्यनीगपत् भध्यापिपत् भधिनिगाप-यिषति अध्यापिपयिषति। पाणिनिः २।४।४८,५१।

[†] दीधी च विवी च समाद्वारे तस्य, दिवचनान्तत्वे परम् वे चतुवर्त्तमानधी र्यथा-सङ्घालपसङ्गः स्वात् । एतथी ग्रुं नं स्थात् सर्वतः । गी-ऐष् (५८८) दीध्ये, एवं दीध्यनीयमित्यादि । पाणिनिः १।१।६ ।

[‡] यच इस तौ यो तथी: यो:। व्या-त्तनि सेरिम्, भनेन ईलोप भदीधिष्ट। पाणिनि: ৩।৪।५३।

[§] भदिपुरिति च्या भन्, उस्विकल्यपचे अदिमन्। भदिष्ट च्या-सा। भदिचदिति

ट्रा दि, (६०५) सक्, (६०२,१११)।

(१८५) दुष्टी अ ल दोष्टने।

श्रध्चत्, श्रध्चत श्रद्धः। *

(१८६) एवं दिही ज ल लेपने।

प्रशिदेग्धि। १ अधिचत्।

. (१८७) जर्षु ज स श्राच्छा हने।

७१६। वार्णाः पिइसे णुः।

(बा । १।, कर्णें।: ६।, पिन-इस्रे ७।, गः १।)।

जणीं णुः स्थादा पिति इसे रे। इ जणीति, जणीति। (६८०) रिषदस्युत इति वृि:।

७१७। घ्यां। (घां ।)।

जणीं णुं: स्यात् पिति इसे घां। श्रीणीत्। §

७१८। गुव्ति ष्ट्रां। (स-उव्तिः १।, यां ०।)

भ भध्वत् दुइ-टी दि, (६०५) सक्, (१०५) इस्य टः, (१००) दस्य घः, (६०२,
 १११) दस्य कः, पलदाः। टा।सन् भध्वतं भद्ग्धं (६५०) गृहदृहंति न सिः सक् वा।

[†] प्रणिदेशिष (५४६) गदायन्त-नेर्णत्वं।

[‡] पिद्यासी इस्वासी रचेति तिबान्। (६८०) रिविद्यस्त इति प्राप्तक्वेविंगेषीऽयं, निकल्पपचे ब्रिंदिन। पाणिनि: ७,३।८०।

[§] निवार्थे प्रथक् विधानं। पाणिनिः शश्रदः।

जणीं णुं: उव वि: एते स्यु-ध्यां। श्रीणवीत् श्रीणुंवीत् श्रीणीवीत्। *

७१८। नाजन्तादेरादि दिः।

(न ११।, चलतादी: ६।, चादि: १।, वि: १।)।

यन्तादिस्थिताची धी-रादि हिं ने स्थात्। प

७२०। स्थादौ नवद्रोऽये।

(सादौ ७।, न-व-द र: १॥, पर्ये ७।)।

स्रादी स्थितान वदरादिन स्थुर्नतुये। जर्णुनाव। 🕸

७२१। ङिदिम वार्णाः।

(डिल् ।१।, धम ।१।, वा ।१।, ऊर्थोः ५।) ।

जर्गी: पर इम् ङित् स्यादा। जर्गुविता जर्पविता। §

श्राच छवच विच. समाहारे पुस्तं सीवात्। गुर्धे चौर्धवीत्. छवि चौर्णवीत्, इडौ चौर्णावीत्। पाणिनि: १।२।३,०।२।६।

[†] भन्न भादिय तो भनादो, भनो भनादो यस्य स तस्य। यस्य भातोरादी अने च स्वरवर्णः, तस्य भादिवर्णे हिला दिलं स्थादिल्ययः। पाणिनिः ६।१।२।

[्]र स्थः संयोगसस्यादिसिधान्। न चवचद चर चते। प्रिये इति परस्थित-यसारिण संयुक्ताः पूर्व्ववितंनी न वद राः दिः स्युर्विलयंः। अवापि पाननादेधें-रिल्यनवर्णते. अन्यया दुद्राव दद्रौ इत्यादी दकारस्य दिल्वनिषेधापितः। ज्ञणुंनाव दिल कर्णुवातोः, स्वद्येन ककारं रकारस्व दिला, तु इत्यस्य दिलं। पाषिनिः ६।१।३। वार्तिकदथवा।

[§] ऊर्ण्**विता इति अनेन इसी क्षित्वे (५**५५) उत्। पचे **सुष**ः। पाणिनिः १।२।३ ।

(१८८) षु ज स सुती।

७२२। पिद्धस्यम् ब्रवे। यङ्लुग्रतुस्तासु वा।

(पित्-इस-रस्य ६), ईम् ।१।, ब्रुवः ४।, यङ्खुक्-रु-तु-स्तोः ४।, तु ।१।, वा ।१।)।

हुवः परस्य पितो इसी रस्य ईम् स्थात् यङ्नुगादेनु वा। स्तवीति स्तीति, श्रभिष्टीति। न्यष्टावीत् न्यस्तावीत्। श्रस्तीष्ट। तुष्टुव। स्तविता स्तीता। *

(१८८) टु चु न चुते।

चविता। 🕆

(१८०) त ल ध्वनी।

रवीति रौति। रविता रोता। पै

(१८१) तु ल हत्ति-हिंसा-पूर्तिषु ।

तबीति तीति। तविता तीता। १

^{*} पिश्वासी इस्वासी रियेति पिडसप्तस्य। यङ् लुक् यस्यात् स यङ्लुक्, सक्ष रस तुस सुयेति तस्यात्। स्वीति सु-तिष्, अप्, तस्य सुक्, भनेन ईम्, उकारस्य गुणः, भा-स्थाने भव्। पर्च (६८०) इति: सौति। भिभिष्टौति (५०२) स्वं। न्यष्टाबीदिति (६२३) इ.म्. भनन्ततात् (५०४) इति:, (६२३) निविषरौति वा वलं। भनीष्ट इति भार्मानेपदं (६२३) न इ.म्, भादौ गुणे, इस्वपरताभावात् न (५६२) सिखीपः। तुष्टुव इति द्या व, (५८४) नेमसुमिति न इम्। स्विता स्वीता (६०६) वा इम्। पाणिनिः ७।३।८२,८४,८५। एतन्मते पुनः सार्वधातुकायस्यात् भिषद्मस्यपि वा भवति। तेन रवीतः इताः इत्यादि।

[†] चितिता इति (५८०) प्रतिप्रस्तात् (५५८) इ.म् । रिवता रोता (५०२) बहुसुनी-स्कट्या इति बाइम् । तिवता तीता इति (६०६) वाइम् ।

(१८२) ब्रूच ल उत्ती।

ब्रवीति।

७२३। पञ्च तिए पञ्च गाववा इसा

(पच ।१॥, तिप् ।१॥, पच ।१॥, चप् ।१॥, वा ।१।, घाषः १।, च ।१।) । ब्रुवः परेषां पञ्चानां तिबादीनां पञ्च खबादयो वा स्युः, ब्रुबः याष्टः स्थात् । श्राह श्राहतुः श्राहुः । ॥

७२४। इस्त थि। (इ: ६।, न।१।, वि ७)।

श्राही इस्य तः स्थात् थे परे। श्रास्त श्राह्यः। पत्ते सुगमं। 🌣

७२५ । वर्चा ऽरे । ^{(वषः १।, परे ७।) ।} ब्रुवो वचः स्थादरे । अवीचत् । उवाच, जने । क्ष

^{*} तिप् षप् च एतयो बैङ्वधनान्तलं गणाधे, तिवादवः पञ्च, षथादयः पञ्च इत्यर्थः । षाडादंशो ग्रवाद्यादेशपणे एव । तिवादि-स्थाने गवादिकरणात् न दिलं, न इम्, नापि षतीतकालप्रतीतिः । (किविभिन्नः "किमिन्कः भौति स्कुटमाह वासवः" इत्यादौ वामनमतेन बाडादिकं भूते प्रयुच्चते ।) तिपो षप्, तभोऽतुम्, पन्तेः उम्, सिपस्यप्, थभोऽयुम् इति क्रमः । षाड इति ब्-तिप्, यप् षाडय चादेशौ, एवं बाडतुरित्यादि । पाणिनः १।४।८४ ।

[†] श्राइ इत्यस्य विभक्तिव्यत्यधेन श्रनुवृक्तिः । श्रात्यः 'इति निषः स्थाने यप्, श्राह श्रादेशः, श्रनेन इस्यतः । (७२२) पिहसस्येमित्यतः ब्रुवः स्वरूपग्रहणात् श्रतः न ईम् । पाणिनिः १-१२१३ ।

[‡] विभित्तिव्यत्यभेन ब्रूरत्यसानुइति: । चरे इति विषयमप्तनी, तेन वाचां इत्यत्र ब्रुधातोः वच्-चादेशं समाव्य (८०१) इसन्तवात् व्यण् । एवं व्यां (६१८) वक्त्यस्य व्यति उपस्यो भविष्यतीति समाव्य उपस्यात् पूर्वमेन वचादेशः । एवं सर्वत्र चरसमावनायानेव वचादेशः । ततः सर्वत्र ब्रूजो जानुवस्थात् उभयपदं, तेन चवोचत् चवोचत इत्यादि, (६१८) उपस्यो, (६५२) वोचादेशः । उवाच इति षण्, (६५१) खें किंः । जचे इति (६५१) खें:, (६६१) मूनस्थापि जिः । पाणिनः राधाप्रः ।

ह्वादि:।

-----B(-----

(१८३) इ लि होमे।

७२६। ह्वादी रे दि:। (ह्वादि: ११, रे था, हि: ११)। ह्वादि दि: स्थात्रे परे। जुहोति। *

७२७ | ह्वी वच्चागी | (हः ६।, व्।१।, विव ७।, वर्षी ०।) । ह्वी क्वारस्य व्स्थात् अणाविच रे। जुह्वति । जुहुधि । पे

७२८। पणाम् वा भी-ह्नी-स-हो छत्रां।

(पश्राम् ।१।, वा ।१।, भी-क्री भृ-ही: ५।, व्यां ०।) ।

एभ्यः प्रयाम् वा स्थात् छा। जुह्नवामास जुहाव। 🕸

[•] ह: (धातुः) भादिर्यं स हादिः। गखपाठे लि-इतां धातृनां श्रदादिलं हादिलच। जुडोति ह-तिप्, (५४१) भए, (६००) तस्य लुक्, हिलं, (५५८) से ईस्य जः, (५४२) सूलस्य गुगः। (६८०) रापिडस्यृत इत्यच डिलवर्जनात् न बाँडेः। पाणिनिः २१४१०५,६१११०।

[†] कोष इहः तस्य इहः। (५८८) युर्ध्वारिति उत्यमप्तिवीधकीऽयं। लुह्नति, श्रनि (६८७) भनीऽत्, भनेन व्। भणौ किं, लुह्नानि। रेकिं, लुह्नतुः। लुह्नि ६७१) हे धिं:। पाणिनि: ६।৪।८०।

[!] पश्चामः पिचान् गुणः, शिच्चान् रसंज्ञायां (७२६) हिलं, चाम-स्थिति.। गुडयामास इति इ-षप्, पश्चाम्, हिलादि, (५८३) चस्प्रयोगः। एवं सूल प्रयोगेऽपि। शामो विकल्पपचे जुडाव। पाणिनिः ३।१।३८।

(१८४) जि भी लि भीत्यां।

विभेति । (७००) दरिद्रो ङिरिति, विभितः विभीतः, विभ्वति। विभयामास विभाय । *

(१८५) क्री लि लज्जायां।

जिन्नयामास जिन्नाय । अ

(१८६) ए लिंपालने।

७२८। पृभादे कि:,खेरे।

(पृत्र-मः श्रादे: ६।, जिः १।, खं: ६।, रे ०।)।

प्ट-ऋ-स-माङ-हाङां खे डिं: स्यात्रे। पिपर्ति। १

. ७३०। पुद्दी वा। (पु: ६।, र्ष: १।, वा।१।)।

पिपूर्तः पिप्रतः । पपरतः पप्रतः, (५०८) समत्वात्र एः। \$

^{*} विभेति भौ तिप् दिलादिकं। तम् विभितः, खौ क्रते खिल्लादन्यस्य र्द्रकारस्य स्थाने रः, पर्वे विभीतः। चिन्तं विभ्यति (६८०) चन्तं चत्, (५८८) र्द्रस्याने य। चप् विभयामास, पशास् चस्प्रयागयः, पर्वे विभाय। एव क्री-चपं जिक्रयासास निकाय।

[†] पृ लि पूनीं इति पाठमु कविकान्यहुमिवरीधिलात् न रहीतः। पृत्र ऋष भादिय तत्तस्य। भादिम् २०५-२०० मंद्यक स्व-प्रस्ति द्वादिगणसमाप्तिपर्यनः इत्यतः प्राह स्व माङ इाङामिति। यया—िपपर्ति दर्यते विभक्तिं सिमीते जिक्षीते इति। दे किं, प्रपाद वभाद द्वादि। पिपत्तीति दिले खं: स्थाने ङिः, ङ इत् खेरन्यस स्थाने इः। पाणिनः ०।४।०६,००।

[‡] प्रधातो दीर्घः स्वादा। चिनष्टलात् सेः रे इति च नात्रवर्णते। जिपृ लि तु पालने इति दीर्घान्त पृ धातौ स्थितेऽपि एततस्वकरणं ऋसान्तस्थापि दीर्घान्तवत् पदसाधनार्थे। पिपूर्ण इति दीर्घे क्रिते (६२८) उर्, (२२८) दीर्घः। चतुस् पपरत्रिति दीर्घपचे(६२६) गुणः। (५७८) गुणवस्तात् न खिलोपः चकारस्थाने एख। पाणिनौ दीर्घान्यस्थात् नास्य स्वस्थानस्यः। "ऋस्वानीऽथिनिति केचित्" इति तु सिद्धानकौत्रदी।

(१८७) भी हा-क बि त्यागे।

जहाति, जहितः जहीतः, जहित । *

७३१। हाकीऽन्तलोपः खां।

(हाक: ६।, भन्तखोप: १।, ख्वां ७।)।

जह्यात्। 🕆

७३२। हो डावा। (धी था, खा।रा, वा।रा)।

हाको ङा स्थात् वा हो। जहाहि जहिहि जहीहि। हेथात्। ‡

(१८८) ऋ र्लि गलां।

द्रयर्त्ति । §

(१८८) जन म लि ङ जनी।

जिन्ने, जिन्निध्ने। ग

^{*} निहतः इा-तम् (७००) दरिद्रोङितिति वा ङिः, पचे (७०१) त्राह्योरिति ई.। चिन नइति, त्राह्योरिति चा-लोपः, (६८७) चन चत्।

[†] डाक-धातोरालीप: स्थात स्थां। इनको इ स्थामिति कते सिञ्जाविष, भादी डिलंपसादनलीप इति ज्ञापनार्थे भन्तकोप: इति कथितं, तेन नज्ञादिति भादी डिलंपसाद भाकोप:, भ्रन्थया (५६०) प्रागच्कार्थ्यादि दिरिति विश्वमेन इमे परेपसात् दिलं खेरदन्तलव्याघात: स्थात्। एवं जड़ित इत्यादी भादाविव दिलं। पाचिनि: ६।४।११८ ।

[‡] जहाडि इत्यादि भादौ दि: पत्रात् ङा, ङि:, ई.म । ब्यान्यात् हैयात् (६१२) ङे। पाणिनि: ६।४।११०।

[§] इयर्त्ति, (৩२८) पृक्षादेरिति खे ङिं:, (॥८५) इय:, मूलघाती र्गृष:। एवं इयृत: इयृति। व्यादिप्तां चन्, ऐय: ऐयृतां ऐयक इत्यादि।

[¶] नशिषे जन का: सें, (৩০৯) इस्, (२३०) उङ्लीपः, (४६) नस्य স। ध्वे नशिष्ये।

(२००) निजिरी ज लि पीषणे श्रीधने च।

७३३ | निजां खेरे गु: |(निजां सा. बी: सा, रे शा, ग्राः शा) । निज-विज-विषां देखे भुः स्थात् रे। नेनेकि नेनिकः । अ

७३४। न द्युङोऽचि। (नारा, द्राङ: ६ा, पवि ०।)। देरुङो ए न स्थादचि परे। नेनिजानि। 🌵

एवं (२०१) विजिरी ज लि विवेके।

(२०२) विषि लिं जी व्याप्ती ।

श्रविषत् श्रविचत्। 🕸

(२०३) डु दा ज लि दाने।

प्रणिददाति । चिद्र द्रत्युक्ते-रालीपः । दत्ते । §

निज्ञामिति वहलं गणार्थं, गणा्य गणााठे हासुमध्यिदसमापकपर्यन्तः इत्यत-भाष्ठ निज्ञ-विज्ञामिति। निज्ञ-तिप् नेनेति (२११) कुङ्। एवं विज्ञ वैविक्ति, विष वैविष्टि इत्यादि। भन्न विच-धातीरिष स्वेणीरित वक्तन्यं। पाणिनिः ०।४।०५।।

[†] इंकड् दुाड् तस्य। भात्र अवि इति स्विपये एव । निज आप्तिप् हिलादिकं, भानेन सूलस्य गुणनिवेधे नेनिजानि, एतं वेविजानि । यङ्क्तुकि लेलिहीति सीस्चीति इत्यादि । चङ: किं, जुहवानि । रैकिं, निनेज । अवि किं, नेनेकि । पाणिनिः ९। १, ८०।

[‡] विष-टौदि, (५६५) इ.रित्तात् वा खः:। पत्ते (६०५) सक्, ऋविषत् श्रविचत्। र्कु प्र-नि-दा-तिप्, (५४१) गदादान्त-ने खंत्वं। ते दर्भ (७०१) भा लीपः दा-वर्जनात नर्द्रः।

७३५ । द्यो दी-धा दें-धे हो।

(ब्री: ६॥, दा-घी: ६॥, दे-घे ।१॥, भी ०।)।

दे दीनो देर्घानो दे घे च स्थात् हो। देहि। #

७३६। स्थादो कि ष्टीमे न सु:।

(खादी: ६॥, ङि: १।, टीमे ०।, न ।१।, ग्रः १।) ।

स्था-दो र्डि: स्थात् टीमे,तस्य च न शु:। श्रदित श्रदिषातां । १

(२०४) डुधा ज लि धार्णे।

प्रणिद्धाति ।

७३७। घो द घो उन्तलोपे तथि।

(घ: ६।, द।१।, घ: १।, पन्तलीपे ०।, त-थि ०।)।

धाजी दस्य धः स्थात् तथयोः परयोः, श्रन्तालोपे सिति। धत्ते । धेडि । श्रिधित । क्ष

١,

[#] दास धास तौ तथी: दाधी:। टेल धेन इति लुप्तप्रथमा-दिवचलं कमार्थ। षच खुदा ज्लि, खुधा ज्लि इति इथोरेव ग्रहणं, असीधां टामंज्ञकानां धी पर्र दिलासक्षवात्। दा-दि दिल, दिक्कासीव दे-चादेग्र: देहि, एवं घेडि। पाणिनि: ६।४।११८।

[†] स्थाय दाय ती तयी:। उट इत् चन्यस्य स्थाने। चन दा इति दामंजकः। दा-टीतन् चदित (५६२) इस्तात् असि सि-खोप.। चातां चदिपातां अतस्परला-भावान् सिक्षोपाभाव:। पाणिनि: १।२।१०।

[‡] धाजी दकारसभावना खेरेन । चन्तालि (७०१) चालि पे सित । घने पति धाती दिखं (५५६) संबंध्य द:, (७०१) मूलस्य चालिपः, चनेन खे दंख्य घ:। एवं धतः ध्रुय इत्यादि । धत् संघेष्ठे प्रथादी तु (१००) सभानस्यति दस्य घ:। चन्न चणी तथा दति काते सिक्षावि चन्तलीपे प्रति क्यानं, यङ्गृतिः का कवली: दाधीतः सधीतनाम उल्लाहिः स्वादि हिस्स धकारापतिनारणार्थं। पाणिनिः प्राराहिष

(२०५) टु डु स ज लि स्ति-पुद्यो:।

विस्तः, विश्वति । विभरामास वभार । #

(२०६) मां ङ लि ग्रव्हे।

प्रणिमिमीत मिमात मिमते।

एवं (२०७) श्रो हा-ङ लि गती। अ

इति भदादि पादः।

२य पादः-दिवादिः।

(२०८) दिव्यु क्रीड़ायां

७३८ | दिव-स-तुद-त्ध-क्रारि र्यन्वनण्नाः
ग्रिट्वे रे | (दिव-क्रारिः शा, यन् - नाः १॥, यित्।१॥, चे ०॥, रे ०॥)।
पन्यो चेऽर्थे यन् तु त्र नण्ना एते रे परे क्रमात् स्युः, ते च
गितः । दीव्यति। *

विश्वति स-ष्यति (६८७) घल घत्। यप् विभरामाम, (७२८) वा प्रवाम,
 (७१८) खेडिं:। माङ्-ते निभीते खेडिं:, (७०१) ई:, षाते घले (७०१) पालीपः
 निमाते मिमते इति। एवं इा.ङ-— जिहीते जिहते।

^{*} दिवय सुत्र तुद्य कथय कौयेति, ते भादयो यस्य तस्यात्। भादि श्रव्स्थः प्रश्लेकेन सम्बन्धः। यन् चतुर्यभयः नण्चनायः ते। य इत् थेषां ते श्रिन् इति बहुवभनानं। तेच श्रितः इत्यनेन दिवादेः श्रव्, स्वादेः श्रुः, तुदादेः श्रः, कथादेः भ्रण्,कप्रादेः श्रा इति। श्रित्करणात् (५३०) रसंज्ञायां, भिषद्रवात् (५१२)

(२०८) षिच्यु तन्तुसन्तती ।

निषीयति। न्यषेवीत् न्यसेवीत्। *

(२१०) नृती य नर्तने।

७३८। नृत् कत् चृत् कृत् हृदे ऽरसे ऽसे रिम वा। (क्त-हदः ४।, भर्मः ६।, भमेः ६।, ४न ।१।, वा।१।)।

एभ्यः परस्यारस्य सिवर्जस्य ,सस्य इम् स्यादा। नर्त्तिष्वति नर्त्स्यति । सौतु अनर्त्तीत्। पं

(२११) त्रसी य भये।

(५८४) क्रमक्रमेति स्थन् वा। तस्यति तस्ति। तत्रासः वसतः तत्रसतः। क्ष

िक्सि, स्क्रानादी परे (५४२) न गुणः । एते भपी नाधकाः । स्रण् इति चकारात्त-वसात् (१७) क्षादिरत्याचः परी अनद्रिष भणं नाधते । भिष्यं क्षादिरिति षष्ठा-नत्तेन भयों बोध्यः, विक्क्षभंसमयाये भूसमां स्थात् संधर्माकतमिति न्यायेन च पक्ष-स्थनत्त्वेन प्रयुक्तः । दीन्यति दिव-तिषु, स्थन्, (२२८) दीर्घः । पाणिनिः ३।१।६८, ७१,७७,०८,८१।

- निषीव्यति (५०२) पर्लं । न्यपेवीत् (६३३) वा पत्नं।
- † वृद्ध इत्यादि इन्दः। घरषासी संयति तस्य घरसः। वृत्-स्यति वा इन्। धननौदिति टीदि, (५५४) नित्यमिम्। पाणिनिः ७।२।५०।
- ‡ चसति ग्रह्मन्दिक उपपंचे ग्रप्। चस-भातुम् (५०६) वा ख्रिन्तोपः, भाकार एक अ-स्यः। पचे तचसतः।

(२१२) जृ दर्ध जरायां।

जीर्थिति । अजरत् अजारीत् । जेरतुः जजरतुः । जरीता जिरता । *

(२१३) भी य निमाने।

- ७४०। यन्येाशमादिमिदा लापर्वणु।

(यनि ०।, श्रां भनादि मिद: ६।, लीप-र्घ स १।) ।

श्रोकारस्य लोपः श्रमादे घी मिदेर्णुः स्थात् यनि । 🌵 स्थति । श्रशात् श्रशांसीत् । 🕸

, एवं (२१४) की य लूनी।

(२१५) षीय नागी।

प्रणिष्यति । न्यषात् न्यषासीत् । सेयात् । §

क्रीर्थंभीति जॄ-तिप्, ग्रान्, (६२८) इर्, (२२८) दीर्घः। भजरत्, टी-दि,
 (५६५) वा छः, (६१८) गुषः। पचे भनारीत् भी पे (५०४) वृद्धः। जिरतः क्रजनःतः,
 (६२६) गुषः, (५०८) वा खिलीपः अरुधः। करौता इति (६२०) इमी वा दीर्घः।

[†] भीय ग्रमादिय मिद च तस्य। लीपय घंय ग्रय तत्। उभयत्र समाहारी क्रमान्यः। गणपाठे भ इत् शमादिः, सच--शम श्रम दम चम तस यस मद क्रम इति घष्ट। पाणितिः २|३।२१,२४,८२।

[‡] स्विति, शी-तिप्, स्वन्, जीलीप:। जशात् टी दि, (६०८) जीस्थाने चा, (६१४) वासेर्लक। पर्च (५८८) इम्सनी जशासीत्।

प्रिक्षियति प्र-निसी तिप् (५४८) गटायत्त-ने र्णलं । न्यपान् न्यनासीत् (५०२)

 प्रस्यपि पलं। सेयात् ढीयात् (६१२) डी।

(२१६) दो य च्छेदे।

प्रखदात् । देयात् । *

(२१७) राध्यी ग हिंसे।

रेधतुः रराधतुः । वधार्धः निं, ग्रारराधतुः । अ

(२१८) व्यध्यी ताड़े।

विध्वति । विव्याध, विविधतुः । १

(२१८) पुषी ल्ह पीषणे।

(५६५) गासुलिद्यादिति ङ:। अपुषत्। 🕆

(२२०) स्त्रिष्यौ चि एट स्त्रेषे।

यक्षिषत्। यालिङ्गनेतु यक्षिचत्। 🕆

(२२१) रध्यू ऌ पाक हिंसयी:।

७८१ | नृण् रधा मुचां नश्मस्जी रभलभी रनदीमच्ये अस्यरण्यचि । (तण् ११) रधः ६१, सर्चा ६॥, तस्

मम्त्र: ६।, रभ लभ: ६।, अनठीमचि ७।, ए ७।, भामि ०।, अरब्बचि ७।)।

प्रत्यद्वात्, प-निदी-टी दि, (६००) भीष्याने भा,(५५२) से लृंक् दामंजकतात्, (५४८) गदायन्त-ने र्णलं । देशत्, (६१२) कि । देधतः, राध (वधार्षः) टी भतुस्, किंतुं, (५०८) विधिवलात् वा खिलीपः भाष्य । पचि रराधतः । भाराधनार्षे त भारराधतः भव न एः ।

[†] विध्यति, व्यधःतिष् (६६१) जि:। णप् विव्याध (६५१) खेर्जि:। ऋतुम् विवि-धतु. खे. मूलस्य च जि:। पश्चिषत्, पृवादिलात् (५६५) ड:। प्रश्चित् (६०५) सज्

रधष्ठीवर्जेम्वर्जेऽचि, सुचादेरत्वे, नम्मस्जीर्भमे, रभ-लभीरठीवर्जेऽचि, तुण्स्वात्। घरस्वत्। रिवता रहा। ळान्तु ररस्विव रेख, ररस्विम रेखा । *

(२२२) लप्यू जिल्ल प्रीयने।

त्रतर्पीत् मत्रापीत् भताप् सीत् भ्रष्टपत् । पं

एवं (२२३) दृष्यु इर्जि हर्षाहङ्कारयोः।

(२२४) मुद्धू जिल्ल वैचित्ते।

मोहिता। (१७८) मुहां घडिति, मीम्या मोटा। ह

[•] न ठी घठी, षञ्चा इम् घठीम्, नासा घठीम् यत्र सः घनठोम्, घनठोम् चासी
घवित अनठोमच तिमन्। रस्र ठी च रञ्जो, न रञ्जो घरञ्जो, तयोरच् घरञ्जच्
सिम्धत्। रस्रधातीः ञ्चा इमि सामार्क्ष घिच घरि नृष् स्थात्, ञ्चा इम्सिने घन्यिमन्
इमि न स्यादिति तात्य्यम्। ठीमचि इति क्रते त ररस्तृरित्यादो ञ्चा घिच नृषोइमाधिकपमिन्द्रं स्थःत्। सुचासिति बहुबचनं गणायं, तेन सुचादिरिति, सुचादिस —
पकारान्वस्था धातवः — सुच सिच लिप लुप कत विदादयः। घर्ये इति तुदादिलाञ्चाते
इम्लय्ये परे इत्ययं:, तेन घिज सीक इति। असे इति अस्प्रस्यादारे। रठीवर्जे
इनीति रिम्बं ठीभिन्ने घिच परे इत्ययं। घरस्वदिति, रध-टीदि पुषादिलात् (५६६)
इः, तिम्बन् चिपरे घनेन नृण्, शिस्तात् (१०) अत्यादः परे, न-स्थितः, उकारधिक्रायं:। नृष्करणादिव (५६०) इसुङ् ब इत्यने न नलीपः। रिवता इति
रध-डीता, (५०३) रधादिलात् वा इम्। ठी-व ररस्वन, अव ञ्चा इमि नृण्। इमी
विकत्यपचे (५०६) खिलीपः, घकारस्य एकारः। एवं ठी म। पाणिनिः ०११५६।

[†] तृप-टीदि, (६०३) वा सि: (५०३) वा द्रम्, घतपौत्। द्रमीऽभावपची (६०४) चरुखाने वा र:, घनिम्लान् (५०४) घकारस्य ब्रद्धि: घनासीत्। रस् विकल्पपचे, चटकारस्य ब्रद्धि: घताप्ैभीत्। सेविकल्पपचे (५६५) उटः घटपत्।

[‡] मीहिता, सुइ-डी-ता, (५०२) वा इम्। इसी विकल्पपचे भीन्धा, घडं विकल्पपचे मीट़ा, चनरङ्गतादादी गुर्पे, (१०५) इस ट', (५०५) तस घः, (४० घस ट:, (७०) टक्षोपः।

(२२५) गम ख यू नामे।

987 | नम्र नेम् वा को (नमारा, नमारा, वा रा, के आ)।

प्राणियत् प्राणयत्। निधिता प्रनंग्धा प्रनंष्टा, श्रयाम्तलात् (५८८) न णः। ॥

(२२६) शमु भ्य दूर् उपश्रम ।

प्रणिशास्यति । क

(२२७) लम्यु भिर्ग्लानी।

क्राम्यति क्रामति। १

(२२८) श्रस्यु दर् चिपे।

श्रास्थत्। 🅆

(२२८) यस्य दर् यति।

यस्रति यसति, संयस्रति संयसति । अन्यत्र प्रयस्रति । \$

(२३०) लुभ्य द्रग् गार्डेग।

लोभिता लोब्या। 🕸

(२३१) जीर् मिद्या सेहै।

मैद्यति । \$

(२३२) स्यो ङ स्ती।

असविष्ट असोष्ट । 🕸

[•] नम्र धारो नेंग्न स्यात् वा छे। नम्र-टौदि (५६५) ङ:, वा नेम-म्रादेग:। (५४९) मान्तलात् नस्य गलं। डौ-ता (५०३) वा दम् निधता। दमी विकल्पपचे प्रपूर्वनम-डौ-ता (०४१) नृष्, (१०८) घङ्। घङो विकल्पपचे (१५४) षङ्, (४७) तस्याने ट:। "निधमन्यीरलियीलं वक्तव्यम्" दित काभिका।

[†] प्रियासयित, (७४०) श्रमादिलात् दीर्घः, (५४८) गदायत्त-ने र्णलं। स्नास्यति '(५८४) वा स्यन्, श्रमादिलात् दीर्घः। विकल्पपचे श्रप् (५८३) विद्यक्रमेति दीर्घः, सामित। सास्थत सस-टीदि, (५६५) छः, (६५२) पर्स्थादेशः। पर्चे त्रासीदिति।

^{*} यस—संपूर्वक यस घाती: (५८४) ध्यन् वा, संपूर्वकादन्यत्र (७३८) निर्श्यस्य प्रयस्ति । लुभ डी ता, (६०६) वा इस् लीमिता लीखा । निर्दितप्रयन् (७४०) मिटेर्गुष: नेदाति । स्—तन्, (५०३) वा इस् अप्रविष्ट मसीष्ट ।

(२३३) घो दी छ य चये।

98३। दीङ्घ्यां यन् यन्गौ ङा सनि तुवा।

(दीक: ६१, व्यां ७१, यन् ११, यप-व्यो ७१, खा ११, सनि ७, तु ११।, ना ११)।

दीङ ह्यां यन्, यिष गौ च ङा, सिन तुवा स्थात्। श्रदास्त । दिदीये। #

(२३४) जनी स्य ङं प्रादुर्भावे।

जायते। 🌵

७८४। जनवधः सममो ऽक्रमवमाचमो ज्ञित्-क्रदिणि खो ऽमयमविश्रमस्तुवा।

(जृत्यथ: ६।, सेमम ६।, घ-कमवनावम: ६।, ञ्चित्-स्रदिषि ०।, स्व:१।, चम-यम वित्रम: ६।, तु।१।, वा।१।)।

जनी वध: सेमोऽमन्तस्य च कमवमाचम-वर्जस्य स्वः स्यात् ज्णिति क्रति दणि च, श्रम-यम विश्वमसु वा। श्रजनि श्रजनिष्ट। जज्ञी थि

^{*} यप् च खुष समाहारे तिस्मिन्। यप् इ.इ. (१९०६) क्वाच्स्याने जातः प्रस्ययः। खरिह गुणप्राप्तियीग्य इत्यर्थः। सनितु ङावास्यादिति। घदास इति दौ-टौतन, सिः, घनेन गुण्धिनि परे ङा, ङिस्वादन्यस्य स्थाने। क्या ए, दिलं, घनेन यन् निस्ता-दन्ते। औं (गुणयोग्ये) दापयति। यपि भदाय। यौ किं, दौयते। सनि दिदासते दिदीवते। पाणिनिः दाधाइ इ. ६ १९॥ ६०।

⁺ जायते, जन-ते, म्यन्, (५६०) जादेश:।

[‡] जनस्य तथय तत्तस्य । इसा सङ्वर्धमानः सेम्, सेम् चासी चम् चिति तस्य । कसम्य वसस्य भा-चम्च ते, न सन्ति ते यच स तस्य । अच् च्च ज्यो, तो इती यस्य स अ्थित्, अ्यत्, अ्यत्, अ्यत्य, अ्यत्यत्य, अय्यत्य, अय्यत्य,

(२३५) दीपी ङा ऋ दीपने।

अदीपि अदीपिष्ट। *

एवं (२२६) पूरी ङा प्यायने । (२३७) पद्यौ ङ गती।

(६४३) पदस्तनीण् चे द्रति । प्रख्यपादि, अपसातां। *

(२३८) बुध्यो ङ अवगमने।

श्रकोधि श्रवुद्ध । *

(২३८) नहीं जा बर्से। (২३९) नहीं धङ्भी। স্বাকীत्, प्रनद्य। *

इति दिवादि-पाद: ।

३य पादः—स्वादिः।

(२४०) षु जन बन्धे।

सुनोति, श्रभिषुणोति, सुनुतः सुन्वन्ति । (६२३)सुजुधोरितीम् । व्यवावीत् । श्रसविष्ट श्रसीष्ट । सुषुविव। विसविष्यति विसोष्यति, (५७२) स्थान्तवात्र षः । 🕆

बधक इत्यादि। ऋजनि, जन् टीतन्, (६४७) इ.ण्. (६४४) तन्लीपः, (५९०) बर्दिः, अनेन इ.स्तः। पर्चे त्यां सिः, अजनिष्ट। ठीए, जक्की दिलं, (२१०) छङ्लीपः, (४६) नस्थाने ज। पार्खिनः ९।३।३४,३५। वार्त्तिकं भाष्यद्य।

[#] दोप-टीतन् (६४३) इ.ण् वा, (६४४) तन्लोपः, भदौषि । इ.णो विकल्यपचि भदौषिष्ट । प्रस्त्रपादौति (५४८) णालं । अबुद्ध इति बुध-तन्, इ.सी विकल्यपची सि:, (५६२) सिक्षीपः । भनात्सौदिति भनिम्लात् (५०४) बढिः ।

[†] सु-तिप्, (७२८) खादेः यु, (५४२) गृत्तः, सुनीति । क्यिम्पुणीति, (५०२) षत्तं, (१००) षत्तं । सुनृतः किस्ताझ सः । सन्तिन्तं, (५८८) उत्तारस्य वः । व्यवानीत्, वि-सुटी हि (५७२) षस्यपि वत्तं । टी-तन् (५७३) वा द्रम्, असविष्ट क्यभीष्ट । ठी-व सुप्यिव, (५७३) बदुसुनीस्त्रकाः द्रति द्रम् विकत्य भिषेषात् (५८४) नेमसुमिति नियमेन नित्यमिन्, (५८८) उत् . (१११) षत्तं ।

(२४१) हु मि श्र न चेपे।

७८५। मिस्यो र्यन्गौ ङाऽखललि लियस्तु वा।

(मिस्योः ६॥, यप्-चौ भ, जा ११।, च-खल्-घलि था, लियः ६।,उ ११।, वा ११।)। श्रमासीत्। प्रस्यमास्तः। *

(२४२) चिजन चित्यां।

७४६। चे: िक की सन्छो:।

(चे: ६।, कि: १।, वा ।१।, सन्-ठग्ने: ०॥)।

विकाय विचाय। विक्ये विची। 🕆

(२४३) स्तृ ज न स्तृती।

७४७। स्थादाृहुदु-रस्कु वेंम् सन्मढीसे:।

(स्यादि-ऋत्-ऋत्-वु: ५१, घस्तु: ५१, वा ११।, इम् ११।, सन्-मडीसे: ६१) ।

स्तवर्ज-स्यायृदन्ता-हदन्ताच वजो वङ्य सनो मे स्थितयो-दीसोय दम् स्यादा। यस्तिरष्ट त्रस्तृत। स्तिरिषीष्ट स्तृषीष्ट ।

सिम न, भी ख्य, भी जग, भी ति, एषां ख्यां स्थात् यिप गुणसाधन-योखे
 म, नतु खिल घिल च, लीधातील वा, ङ इत् चन्यस्य स्थाने । घमासीत्, टौदि, िम,
 घनेन डा, घादनतात् (५८८) इम्सनी । प्रस्थमास, गदायन-ने र्यलं। पाणिनिः
 ६१२।४०,५१ । वार्तिकञ्च।

t सनि—चिकौषति विचौषति । पाणिनिः शश्रद ।

[‡] स्य चादि ग्रंस स स्थादिः, स्थादिशाधी स्वेति स्थायृत्, स्यायृत स्व हवेति तसात्। नासि स्व ग्रंसिन् सोऽस्कलकात्। दी च सिय दीसिः, में (चात्मनेपदे) दीसिः मदीसिः, सन्च मदीसिय तस्य। स्ववजं संयोगादि-स्टरनात्, दीर्घ-सदरनाय, उभयपदि-उठाः, चात्मनेपदि-उड्य दूलायः। चलिए इति स्नृ-टौतन्, चनेन सेरिम्, प्यात् गृणः। इसो विकल्पचे अनृत, (इप्र) से किस्तात् न गृणः, (५६२) सिलीपः। एवं दी सीए। पाणिनः शराधर, ४२,४३।

(२४४) ह च न हती।

स्रादि: ।

श्ववारीत्। श्रवरीष्ट श्रवरिष्ट श्रवतः। वनरिय, वहवः। वरिषीष्ट वषीष्टः। अ

(२४५) धुजन कम्पे।

(६२३) सुलुधोरितीम्, अधावीत्।

(२४६) हिन वर्षने गती।

प्रहिणोति । 🅆

७४८। हे: खेरनिङ वि:।

(ई: ६।, खें: ५।, अनिङ अ, घि: १।)।

खे: परस्य हे घिं: स्थात तु ग्रिङ । जिघाय । 🕸

(२४७) कविन कतौ हिंसे।

७४६। द्वविधिव्याः द्वधी स्रौ।

(क्रवि-धिच्यो: ६॥, क्र-धी १॥, स्रौ ७॥)।

कणोति। अक्षाखीत् (५६८) अतएवेदिती नुण्। चक्षणः। काखिता। काखपात्। §

^{*} भवारीत्, व-टौदि, (१८०) व दलस्य प्रतिप्रस्वात् (५५४) दम्। भविष्ट, व-टौतन्, सि:, भनेन वा दम्, (६२०) दभी वा दौर्धः, दौर्य-विकल्पपचे भविष्ट, दमी विकल्पपचे भवत, (६५८) से: किल्वात् न गुषः, (५६२) सिलीपः। वविष्य, व-दौः चप् (६१६) प्रतिप्रस्वात् (५५४) दम्। ववव ठौ-व, (५८४) दम्निपेषः। ठौ-सीष्ट विषयि वषीष्ट, भनेन वा दम्। दमोऽभावपचे (६५८) कित्संस्रा।

^{† (}५४८) इनमीनाहिन्वानिविति गलं।

[‡] चिंडित, चनीइयत्। पाणिनिः ७।३।५६।

[§] अति-धिय्योरिकारातुवश्वात् विभक्त्युत्पत्तेः पूर्वे तृष् अते अन्व धिन्व इत्येतधीः श्री परेक्क धिषादेशी स्वातानित्ययेः। श्रक्तस्वीदित्यादी वकारस्य दत्त्यलेन भत्तस्वा-भावात् तिस्नन् परे (५०) न नस्यानुस्तारः।

(२४८) दन्भुन दसी।

देभतुः ददस्यतुः। 🌣

७५०। अन्य-ग्रन्थ-दन्भां धिप न-लोपो वा / h

(यस गर्थ दन्भां ६॥, विपि ०।, नसीपः १।, वा ।१।)।

देभिय ददिभिय।

(२४८) धिवि न प्रीती।

धिनोिि ।

(२५०) त्रशु ङ न व्याप्ति-संहत्यो:।

(५८०) स्थान्तादिति खेरान्। त्रानग्रे।

ं इति खादि-पाद:।

-

8र्थ पाद:-तुदादि:।

(२५१) तुदौ ज म व्यथे।

तुद्ति तुद्ते।

(२५२) सम्जी ज य पाकी।

भृज्ञति। अभाचीत्। क्ष

७५१। सम्जो ऽरे गौ मर्जवा।

(सम्जः दा, ऋरे ७), सौ ७।, सर्भ ।१।, वा ।१।)

[ः] देभतुरिति (५६६) वा कित्मंत्रायां, (५६०) नलीपे, (५०६) दभग्रद्यात् खिलीपः, भकार एकारसः।

[†] अपत्र थप् किहा इति कते, दिभि यथि दूर्लतयोग्दित्वस्थाः थप् विभन्नौ (५६८) मृजीपनिधेषापत्तिः स्थात्। "ययियस्थिदिभासञ्जीनां लिटः किस्तं विति स्थाकरणानरस्" इति भटोजिदौषितः।

[‡] तुदतीत्यादि (७२८) प्रप्रत्ययः, तस्य डिस्तात् न गुणः। भः स्वाति (६६१) निः, श्रयोत् रस्य सः। श्रभानीत्, अस्न-टौदि श्रनिस्तात् (५७४) हडिः, (२१३) स्वादेः सन्तेपः, (१५४) परुं, (६०२) पस्य कः, (१११) सेः सस्य वर्तः।

बभर्ज बस्रज, बस्रजे बभर्जे। *

(२५३) मुच ली ज य प मीचि।

(७४१) नुण्रध इति नुण्। सुञ्चति। अमुचत्, अमुक्त। 🌵

(२५४)। जिलिपी जगप लेपने।

श्रलिपत्। श्रलिपत श्रलिप्त। \$

(२५५) षिची अगप उचगे।

निषिञ्चति। न्यषिचत्। न्यषिचतन्यिवता। निषिषेच। ईः

(२५६) क्रती गप च्छिदि।

(৩३८) न्टत्कदितीम् वा। कर्त्तिष्यति कर्त्स्यति। (२५७) षूग्रचिपे।

विषुवति। व्यषावीत्। §

अ नास्ति रो यसात् सः भरमस्तिन्। अस्ति भर्ज वा स्यात् भरे थौ गुणसाधन-योश्वे इत्यर्थः। भरं इति कथनात् त्रभाजीदिश्वत्र सिरूप गुणिनि परंऽपि तदुत्तरं टौरि-रूप-रस्य विद्यमानत्वात् न भर्जादेशः। बभर्ज बस्यज्ञ इति ठौ णप्, वा भर्जादेशः, (६४) सस्य दः, (४६) दस्य जः। बस्रज्ञे, ठौ ए (५६६) कित्त्वेऽपि (६६२) व्यां न विष्क्तामिति जिनिशेषः। 'कित्त्वाभावपत्रे गुणसाधनयोग्यते सति भर्जादेशः। पाणिनिः ६।४।४०।

[†] असुचत्, सुच-टीदि (५६५) लिदिलात् ङ:। असुक इति आसानिपदे ङखाप्राप्ती सि:, औदिल्लादिमीऽभावे (६५८) में: किलात् न गुण:, तत: (५६२) सेलीप.।

[‡] लिप टीदि, (६१८) छ:, चिलपत्। टीतन्, चात्मनेपदे तेनैव वा छ:। पर्चे िधः (६५८) कित्संज्ञा, (५६२) सेलींपः। निधिचितं, नि-िधच-तिप् (०४१) तुष्, (५०२) घतं। टीदि, टीतन्, लिपवन् साध्यं, चम्व्यवधानेऽपि घतं। ठीषप् निधिषेच, (५०२) दिसक्तसापि घतः।

[§] विषुविति, वि-स् तिष् (५८८) छव्, (५०२) षत्नं। व्यषावीत् (५०३) वेस्टिति स्वे त्ति त्य ग्रहणात् प्रस्नात् (५५४) नित्यनिम्, (५०४) चनन्ततत् इद्धिः, प्रस्यपि घतं।

(२५८) ब्रम् म च्छेदे।

हयति। अत्रश्रीत् अत्राचीत्। वत्रश्च वत्रश्चतुः। *

(२५८) ऋच्छ य गमनमीहकाठिन्धेषु।

७५२। ऋच्छो गुष्ठगां। (सच्यः ६१, णः ११, ग्यां ००) श्रानर्च्छ। पं

(२६०) कृ शाविचेपे।

(६२८) ऋदिरणाविति इर्। किरति। चकरतः। करीता करिता। #

७५३। प्रत्युपोपात् काः सुम् हिंसाच्छेदे।

(प्रति-उप-छपात् प्रा, कः हा, सम् ।१।, हिंसा-केंद्रे ०।) ।

प्रत्युपाडिंसायां उपाच्छेटे किरतेः सुम् स्यात् । प्रतिस्किरति उपस्किरति । §

(२६१) त्न्प म प्रीणने।

[•] त्रय-तिप् (६६१) ति:, इयति । टीटि (५०१) किटिन्तात वा इम् । पचे (५०४) चिन्त्वात् विति:, (१५४) षङ्, निमित्तस्थापिये नैमितिकस्थाप्यया इति न्यायेन चकारनिमित्तकस्थ गस्य पुनर्देन्यले (२१२) स्वाटे: स-लीप:; (६०२) षस्य कः, (१११) कवर्गत् पलं। बत्रयतु: (६६२) जिनिवेध:।

[†] ऋष्को षः स्वात् क्याः। ऋष्क-धाती लंघुङोऽभावात्, प्रतृसादिविभक्तौ प किस्तात् गुणावाप्तौ विधिरयं सामान्यत्रीविषयः। तेन पानव्कं पानव्कंतृरित्यादि, (५८०) स्वेः स्वाने पान्। पाणिनिः ७।४।११।

[‡] चकरतु: (६२६) ग्रुण:। करीता करिता (५५४) इ.स. (६२०) इ.सी वा दीर्घ:। § प्रतिम्न उपच प्रत्युपं, प्रत्युपञ्च उपच प्रत्युपीयं तक्षात्। हिंसाच केटच हिंसा-च्छेटं तक्षिन्। प्रतिक्तिरति हिनम्ति, उपक्तिरति हिनसि किनति वा इत्यर्थः। (५०२) परिनि वि सेव सुमृत्युक्तेः चच प्रतिपूर्णस्य न पत्नम्। पाणिनि: ६।१।१४०,१४१।

७५४। त्नपां न-लुक् वा ग्र-णौ।

(तृन्पां ६॥, न ।१।, लुक्।१।, वा ।१।, ग्र-णी ७।)।

ह्यन्प तुन्प ह्यन्फ तुन्फ रिन्फ गुन्फ ह्यम उन्भ श्रन्भां नकारस्य तुक्वास्यात् श्रेणीच। ह्याति हस्यति । अ

(२६२) जुती य प हिंसे।

चत्ति चत् स्थति । 🌵 •

(२६३) प्रच्छी य ज्ञीप्से।

पृच्छति। अप्राचीत्। पप्रच्छ पप्रच्छतुः। 🕸

(२६४) सजी य विसर्गे।

त्रसाचीत्। ससर्जिय सस्र । §

(२६५) ट्मस्जी ग स्नाने।

मज्जिति। श्रमाङचीत्। प

(२६६) सृगी म सृगि।

यस्पाचीत् यसाचीत् यस्पचत्।

^{*} वहवचनं गणार्थम् । गणाय वन्ती नत्रमदाकः स्वयं स्वयं निर्वातः । यौ इति गणा-साधनयोग्यप्रत्यये इत्ययेः । यथा, तर्पयति तृष्पयतीत्यादि । तृषतीति भ्रे परे न-लुक् । विकत्यपचि (५०) नसानुस्वारः, (५२) चतुस्वारस्य मः । वार्षिकम्, नाच त्वन्पः ।

^{† (}७३६) वा इस्।

[‡] प्रच्छतीति (६६१) जि:। चप्राचीदिति (१५४) षङ्, (६०२) **षस्र कः,** (५०४**)** प्रानिम्लात् बडिः, (१११) पलम्। पप्रच्छतुरित्यत्र (६६२) न जि:।

^{\$} स्टज-टीदि, चि:, (५६१) चिस्याने देंम, (६०४) नित्यं सरस्याने रः. (५०४) भकारस्य विज्ञः, (१५४) पङ्, (६०२) पस्य कः, (१११) पत्वं। ठी-यप्, (५८८) वा इम्। इम्बिकल्यपचे पङ्, (४०) थस्य ठः।

[¶] मस्ज-तिष् (६४) सस्याने द, (४६) दस्याने ज। टौदि, (७४१) तृण्, (२१३) सखोपः, (५०) नस्यानुस्वारः, (५१) अनुस्वारस ङः।

[∥] स्थ्य-टौदि, (६०३) सि:, (६०४) च्टरः, प्रतः बिडिः, षङ्, सस्य काः, पत्वं। र-विकल्पपचे च्टकारस्य बिडिः। सि-विकल्पपचे (६०५) सक्।

(२६७) विच्छ ग गती।

विच्छायति विच्छति। अविच्छायीत् अविच्छीत्। *

(२६८) समी मसी।

यमाचीत् यमाचीत् यमचत्। 🕆

(२६८) इषु भ वाञ्छे।

दच्छति। (६०६) वेमसहेतीम् वा, एषिता एष्टा। 🕆

(२००) कुट गिकौटिखे।

७५५। क्टां गुत्री जिगति।

(क्टां ६॥, णु-बी १॥, ज्याति ७।) ।

कुटारे गुंबि य स्थात् जिति णिति च, नास्यत्र। श्रक्तटीत्। चुकोट । ३

(२७१) व्यचित्रव्याजे।

विचति। विव्याच, विविचतुः। §

^{*} विच्छ-तिप् (६३७) भायः, (६३१) धातुमंत्रा, ततः भादिलात् तिप्रापौ। भाय-विकल्पपभि तुदादिलात् ग्रः। टीदि स्पष्टं।

[†] सभा टीदि, स्पृणवत्। इपःति (५२०) दक्क-आदेश: ।

[्]रेज च पा च ज्या, ती इती यस्य मं ज्यात् तस्य । जित्-िषतीः परधीः गृषवृद्धीः सिंही पुनर्विधानं नियमार्थं, तेन क्टादीनां जित्षिद्धासन्यच गृषवृद्धी न सः इति नियमः। जित्-िषतीक गृणमानस्यां गृषः, वृद्धिसनस्यां वृद्धिरित्यः। भारत्य, भक्टीत् कुटियिति कुटनिन्यादी न गृणः। नू श्रि स्वने इस्यादीनां अनुविद्यादां न गृणो नच वृद्धिः, भग्णतादृव् च। एवं तृविध्यतीत्यादि। कुटादिश्य—कुट पुट कुच गृन गृड डिप कुर स्कृट सुट वृट वृट क्ट लुड कड लुट कड कुड पुड पुट तुड युड स्युड सुड कुड सुद गुर पुन पुन पुन पुन कुड कुड कुड सुद पुन सुन पुन पुन पुन (सुन) कुटादिश्यन्ति भवत इति मुन्न पुन पुन (सुन) कु (क्)। जिख निल इति हो विकल्पन कुटादिन्ध्यगती भवत इति प्राचीनाः। पाष्टिनः ११२।१।

[§] विचिति (६६१) जि:।

७५६। व्यचो जि-रञ्णिदसि।

(ब्यच: ६।, जि: १।, श्रञ्खिदिस ०।)।

तुदादिः ।

विचिता। *

(२७२) तृट गिच्छेदे।

नुवाति नुटति। 🕆

(२७३) स्पुर शिस्पूत्तीं।

निष्प्रति निस्पुरति । 🕸

एवं (२७४) म्मुख ग्रिस्पूत्ति चलनयोः।

(२७५) नू शि स्तवने।

ऋनुवीत्। नुनाव। §

(२७६) मुङ ग मृतौ।

७५७। स्टङ ष्टीको मं। (सङ: ५१, टीका ०, मं १।)।

व्यां क्या-मत्ये च मुङो मंस्यात्। ११ (६२०) ऋदिः ग्रथक्दीगे।

^{*} जच ग्राच ज्यों, तो इती यस्य मं जित, जिश्व यम् च जित्म, ने ज्यों में तिसान्। व्याची जि: स्थान् ने तृ जिति ग्रिति मसि च। यथा निविधा निविधाति विस्ति विक्याच विविवति रिथादि। जिति ग्रिति शिस तृ था चर्यात व्याचकः उद्यासाः (१०३२)। (याणिनिसते तृ किति डिति परे एथ जि: नास्यत्)।

^{† (}५.८४) क्रामक्तर्भति ग्यन् वा।

^{‡ (}६२५) विस्तर्भेति ना पर्ला

[§] भनुवीदिति कुटास्लित गुणवृद्ध्यी निषेत्रे, (५८८) पृथ्वीरिल्युय्।

[¶] टीच द्वीच अब टोब्सं तस्मिन् विषयमप्रभी। सडी डिव्हेडिप स्मांत्कास् अप्रत्येष चित्रयेस स्मादिति नियमः, अभवति परसीपदमेव। आस्मनेपदिनिक्ति परसीपदिनां कविदिति स्मायंन भदाविद्यदस्यदि स्मादिनतं केवित। पासिनिः १।१।६९।

स्त्रियते, असत, स्पीष्ट । एषु किं, समार, मरिष्यति । ॥

(२७७) चो विजी ङ ग्राभी-कामी।

৩ খু দ। विजे र्णु ने सि । (विजे: ६।, णः १।, न।१।, ছদি ৩।)। विजे र्णु ने स्वादिमि । স্ববিজিष्ट । ণ

इति तुदादि-पाद:।

१म चतुर्गणाध्यायः।

ुम:। २य-चतुर्गगाध्याय:।

१म पादः--क्धादिः।

(२७८) रुधिरी ध जि जावरणे।

क्एडि। *

अपूर। नणों ने उसी। (नणः ६।, न ।१।, र अ, अणी अ)। नणों नकारः स्यादणी रे। कसः कसन्ति। नं

[#] सियते (५८८) इस्थाने इय। अस्त स्वीष्ट, घमयत्र (६५८) कित्संजा।

[†] विज: किदिम् इति क्रते सिद्धाविष स्प्रष्टायमेवं क्रतः। पाणिनिः १।२।२।

६६४-ति (०३८) त्रण्, णकाश्चित् (१०) भन्याच: परे, भदननकार-स्थिति: ;
 (१००) गलं, (५०५) तस्थाने घ:, (६४) घस द: ।

[।] भरं नणां उत्तम्भवात् भव र इति स्प्रष्टार्थं। एवं परस्वेऽपि । ऋदन्त-न-स्थाने नृस्थादिव्यर्थः। कन्य इत्यादौ, चयी यवैकवर्गीया मध्यमन्तव लुष्यते इति प्रमाणात् गध्यर्शन-वकारस्य लोपः। तवर्गयुकःनकारस्य ग्रालामातः। पाणिनिः ६।४।१११।

अक्णत्, अक्णः अक्णत्। अक्षत् अरीत्सीत्। अ

(२७८) छुदु ज धिर् देवने।

(७३८) छहिषाति छत्साति।

एवं (२८०) हृदु ज धिर्नादरे। (२८१) हृह ध हिंसे।

७६० | तह रूण् पिद्धस् । (तृहः रा, दण् । ११, पित हैम् रे ७।)। तहा नण रूण् स्थात् पिति हमे रे। तृष्टि त्र्णेट त्र्रं हन्ति । अतहीत् अत्वत् । १

(२८२) हिसि ध कि हिंसे।

७६१। नणो न लोप्य:। (नण: प्रा. न ।रा, बीप्य: १।)।

हिनस्ति । 🏗

(২८३) श्रन्जू ध ञि व्यक्ति गति सचिणे। ' श्रनिता। 🕸

^{*} अक्षपदिति च्या दिप्, (६०२) देलें।पः, (६४) घस्य त (द वा) । च्याः निप्, (६८०) घस्य रंभे, रस्य विसर्गः, रंभिविकलें (६४) घस्य त्। व्याःदि, (५६५) इरिस्तात् इटः। इविकलें अनिम्लान् (५०४) वृद्धिः, अरोक्षीत्।

[†] पिश्वाभी हम् वाभी रथेति तिस्ति । इणी णिलात् नणः भन्यायः परे स्थितिः । तृह-तिप्, (७२८) नण्, तृन्ह, भनेन इण्, तृनंह इति स्थिते, (१०५) हस्य टः, (५०५) तस्य घः, (४०५) वस्य टः, (००) टलीपः, (१००) णलं, तृणेटि । तृह-तस् व्यष्टः, (७५८) नणी नृकारे (४०) नस्य णकारः, अस्यत् पूर्ववत् । भन्ति तृंहिति, (५०) नस्यानुस्तारः । टीदि, (५०२) कदित्तात् इम् भतर्भीत्, इसी विकल्पपचे (६०५) भनिम्लात् सक्, (१०५) हस्य टः, (६०२) टस्य कः, (११२) घलं। टहिभातीः सुदादिमणीयस्थेव कदित्त्विति कातन्ताः । पाणिनः ७।३।८२।

[‡] नयो नः पूरो नकारी कीष्यः स्थात् । क्रिस-तिप्, भातप्वेदिती नृष् हिन्स्, ततः क्षादिस्वात् नष् हिनन्स इत्यस्य भानन नषः परी न कीष्यः क्रिनक्ति । एवं अन्तर्भ भानति, सन्ज सनिति । पाणिनि ६।४।२३।

७६२। अनुज: सेरिम् पे।

(अन्जः ५।, सः ६।, इम् ।१।, घे ७।) ।

अन्जः परस्य सेरिम् स्थात् पे। आञ्जीत्, आनञ्ज। *

(२८४) जि इसी ङ ध दीप्ती।

द्रस्थाञ्चक्रे । 🌣

इति क्षादि-पादः।

२य पाद: --तनादि:।

(२८५) तनु ज द विस्तृती।

तनोति तनुतः तन्वन्ति, तन्वः तनुवः तन्तः तनुमः। #

७६३। से लुक्त त- यासो म्तन्स्यो ऽक्तर्जा।

(सी ६, लुक् ११), त-याधी: ७॥, तन्था: ५॥, ऋकु: ५।, वा ११)।

कवृर्जात् तनादेः सेर्जुक् स्यादा तःयासोः परयोः। अतत अतनिष्ट, अतयाः अतनिष्ठाः । १

भ भन्तिधातीकदिक्ताडिमली नियायी विधानं। भेरन्यत, अजिता अङ्का,
 भश्चियति अङ्क्यिति इत्यादि। आनश्चिति (५८०) स्थान्तादिति खेरान्। पाणिनिः
 গাংগাঙ্গ।

^{† (}५८२) र्व्विजादीत्याम्, (५८३) क्रप्रयोग:।

[%] तनोति (६८८) ग्रुप्, (५४२) ग्रुप उकारस्य गुण । तल्वलीत्यादी (३५०) उस्थानेव। तन्व द्रत्यादी (६२२) उकारलीपीया।

^{ां} तय याम् च ती तथीः। याम्माइचर्यात् त इति भावानेपद्वस्थैव । भवाया परस्थेपदस्य तां तंत एष अतानिष्टां अतानिष्टं भतानिष्ट एसपि प्रधक्तेः। तथीः रत्युको चिद्याविष्याम्यदणं स्पष्टार्थे। भातत भातथाः इति, अनेन संर्लुकि, लुक्

(२८६) षतु ज द दाने।

सनोति । असात असनिष्ट, असाधाः असनिष्ठाः । सायात् सन्यात् । *

(२८७) चगु ज द वधे।

श्रवणीत्। 🕆

(२८८) चिगु ज द हिंसायां।

७६४। नोष्युङो गुर्का लृत:।

(न ।१।, उपि ७।, चङ: ६।, गु: १।, वा ।१।, तु ।१।, ऋत: ६।) ।

चिणोति । 🕸

(२८८) ऋणु ज द गती।

ऋणोति ऋणीति । ह

(२८०) डु का ज द करणे।

करोति। \$

७६५ । कुरुब्लोपो व्यये । (कः प्रा, खन् लोपः रा, व्यवेश)।

कुर्वः कुर्मः, कुर्यात्। चक्तव। §

करणान् (८३) त्यक्षीर्पं त्यल जणमिति न्यायेन गृषि-सौ पर कार्य्यनिवेधे, पगृषिनीः तथामीः परत्योः (६०६) जम्लीपः । अतः किं, श्रक्तत त्रक्रयाः उभयत्र (६५८) सीः किस्तान् गृणाभावे, (५६२) निर्व्य सिलीपः । पाणिनिः २।४।७८।

श्वसातित्यादि अनिन सेर्लुकि, (६५५) खनसर्गति ङा, पर्चे (५५४) सेरिस्।
 सायात सन्यादिति विकर्णेन ङा।

[†] भवणीदिति (५०६) चणवर्जनात् न इडि:।

[्]रं उपि चर्डो गुर्नस्थात्, जङ च्यकारस्य तुवा। विग्रिति, (६८८) उप् तिस्मिन् परे विग्र जङ इकारस्य न गुणः, तिपि परे उप चकारस्य (५४२) गुणः। इत्योति भर्गोति इत्यत्र उङ च्यकारस्य ना गुणनिर्षयः, एवं द्यगीति तर्गे।ति इत्यादि। उड:किं, क्र-तिपृकरोति, भात्र भन्य-च्यकारस्य नित्यं गुणः। पाणिनौ मतभेदः।

[§] बचमच यच ब्यंतिधान् । कञः परस्य उपी जीपः स्थात् विमे येच परे। कुर्ष्यः इत्यादि व म य परेषु उपी खीपः, (२२०) व्यंनच्तयीका इत्यव कुर्वजनात् न

७६६। सम्परेः सुमुपात्तु भूषा-सङ्घ-प्रति-यत्न-विक्रताध्याहारे।

(सम्-परे: ४।, सम् ।१।, जपान् ४।, तु ।१।, भूषा-सङ्ग-प्रतियव-विक्रताध्याद्वारे ०।) । श्राभ्यां क्षञः सुम् स्थात् जपात्तु भूषादावर्थे । संस्करोति, सम-स्क्रषातां, सञ्चस्करिय, सञ्चस्करिव, संस्क्रियात्, संस्क्रषीष्ट । परिष्करोति, पर्ययुष्कार्षीत् पर्ययुक्कार्षीत्, जपस्करोति ।%

७६७। इस्ते पाणौ प्राध्वं जौविकोपनिषदो व्यख क्रञि स-स्तिरी मध्ये पदे निवचने मनस्यर-स्युपाजेऽन्ताजे साचादादेस्तु वा । '

(इस्ते—उपनिषद: ६।, व्यस्य ६।, क्रजि ७।, स: १।, तिरम्— साचादादे: ६।, तु ।१।, वा ।१।) ।

इस्तेकरोति, तिरस्त्ररोति करोति-तिरः।

ं इति तनादि पादः।

दीर्घ:। करोमीत्यत्र, लीपस्वराटेशयां लुस्वरादेश-विधि वैशीति न्यायेन गुणएव। ठीव चक्कव (५८९) नेससुमिति निर्धे धात्न इ.स.। पाणिनिः ६। ४। १०८,१०८।

^{*} सम्-पिश्यां क्रजः सम् स्यातः, सुन जकार्त् चिक्रात्रः, नकार्त् (१०) क्रधाती-रादौ सकारिख्यितः । प्रधानिभिधानिऽपि पाणिनिमतेकवाक्यत्वात स्थासद्वयीरिवः ; "सम्पृत्रेस्य कांचिक्रपणेऽपि सुट्" इति भिद्यान्तको सुदी । जपान स्थादावर्षे । स्था प्रभादार्थे । सद ममूदः । प्रतियती गृणान्तराधानं । विक्रतं स्वद्यस्थान्यधाभावः । प्रध्याद्वारी वाक्यस्य प्रथुताकाङ्क्तित-श्रव्योपादानं । समस्त्रवातां टी-प्रातां, (०४०) स्कृवजैनात् न इम् । (६५८) कित्मंधायां न गुणः । सघस्त्रवि ठी-प्रप्, (६१६) स्कृवजैनात् द्रम् । सचस्त्रिव ठी-व, (५८४) असुनिति कथनादिम् । संस्कृियादिति टी-यात् (६१४) स्कृम् व्याभेविति जक्तः गुणनियेषः । (६२०) स्रस्याने दिः । सस्कृषीष्ट (६५८) कित्रसंज्ञायां न गुणः । परिकरोति (५०२) षत्वं । टी-दि (६३३) विकार्यने पत्वं । पाणिनिः ६।१।१३०,१३६८।

⁺ इसे इत्यादे: उपनिषदलस्य भव्ययस्य क्रञधातौ परपदे नित्यं समासः स्थात्

३य पादः -- क्रादिः ।

(२८१) ड्क्री ज ग द्रव्यविपर्थये।

क्रीणाति। (७०१) यादगोरिति, क्रीणन्ति।

(२८२) स्तु ज ग न उडुती।

७६८। कु कान्भ कान्भ सन्भ स्तृन्भथः अभि हो री। (क्-मृत्मथः अम सुन् मे रा, व अ, र अ)।

एभ्यो चेऽर्धे युः या च स्यात् रे परे। अ .

खुनीति खुनाति, विकामीति (६२५) विकामीति षः—विकामाति । एवं विक्षुमीति विक्षुमाति, विष्टमीति विष्टमाति, व्यष्टमीत्, वितष्टमीत्, वितष्टमा । सुमीति सुमाति । पे

(२८३) मी ज ग वधे।

(७४५) मिस्योरिति ङा, यमासीत् यमास्त ।

तिर:प्रश्वतिम् वा। एष समाम: एकपदीमावमावं नतु बन्दरिक्तसः। समास-करणच (३६६) पूर्व्वनिपात-नियमार्थे काची यवधंच। इसे पाणौ स्वीकारे। प्राध्वं बस्पनातुकूल्ये। जीविकीएनियदौ उपमायां। तिरोऽन्नधाने। मध्ये पदे निवचने मम्मि उरित इति पच चनुपर्शेष एव, उपश्चेषि तु उरित क्राला इसं शेते, पदे क्राला ममाकं शेते था, इत्यादौ न समासः। उपाजि अन्तिने बलाधानार्थे। साचाद्देरसृत-तक्कावं। चादिना—भिष्या अञ्चा नमस् याविस् प्रादुस् विस्त् वशे इत्यादि। पाणिनिः १।४।०१—०६, वार्त्तिकच।

अ स्त्रन्भ स्तुन्भ स्तृनभ सुन्भ सुरोधने इति चलार: सौवा धातव:। पूर्विः धात्पाठे थे न दृष्यन्ते पद्विभेषसाधनार्थं न्त्रे तुदृष्यन्ते ते सौवा:। स्तुत्राद्य: पद्य स्वादिगणीया: क्रादिगणीयाय। पाणिनि ११११८२।

[†] विस्तरभूति मुचे श्वा-प्रत्ययस्य यहणात् विस्तरभूतिविध्य न पत्वं। विष्टर्भूति विष्टभूति उभयत्र (५०२) गीज इति पत्वं। व्यष्टभदित्यादि (५६५) ही वा, उभयत्र प्रस्यपीति पत्वं। वितष्टभंति खिव्यवधानेऽपि पत्वं।

(२८४) पूज गि ग्रोधने।

७६८। पादे: खो ने व्यादेस्त वा। (प्-त्रादे: हा, ख: ११, में ७१, बी-त्रादे: हा, तु।११, वा।११)।

व्वादीनां स्वः स्थात् ना-त्ये परे व्यादेस् वा। पुनाति।

(२८५) कु ज गि हिंसे।

अकरीष्ट अंकरिष्ट अकीर्छ। करिषीष्ट कीर्पीष्ट प्

(२८६) धुजगिकमी।

धुनाति । अधावीत् अधीषीत् ।

(२८७) ग्रह ज गादाने।

ग्रह्माति ।

७७०। इसान्तानो हो।

(इसात् प्रा, ना । १।, आनः १।, ही ७।)।

इसात परी ना त्रान: स्थात् हो परे । रुहाण । ऋगहीत्। जग्राह जग्रहतु: जग्रहिय । 🤉

^{*} ने न्नाप्रत्यये पर्व इत्यर्थः । पादिन्न — पूलू धू का न्वृत्य स्वम प व ट् भूनभूम गृजुक्त च्यारी ली ल्यी (सी) क्री ली (ची) भी दित । च्या गि अपराया-दृह्ह हुँ नित्यस्य पादिभलन् -- जीन. जीनवानित्यव लादिलान् (१०५२) तस्याने न । पाणिनिः 013,50

[†] भक्तरीष्टेत्यादि (७४०) इम, (६२०) वा दर्मा दीर्घः, इमी विकल्पपचे (६५८) कित्मज्ञायां, (६२८) ऋकारस्य ९र्. (२२८) दीर्घः । एवं डो-सीष्टवा ९म्, पर्वे ऋ दूर, तस्य दीर्घः।

^{🗼 (}५०३) वस्दिति वा इस्, पचे (५०४) चनिम्लात् विति:। यज्ञाति (६६१) किः,**रस्था**ने ऋा

[§] ग्रह-गी-हि (६६१) जि:, घनेन नास्थाने चान, (५४०) चकारात् हेर्लीप:। एवं वधान पुषाय सुवाय इत्यादि । इसात् कि, जानीहि । भग्नहीदिति (५०६) **इ**। लालात् न ब्रि.। अग्टहतुः (६६१) जिः। पाणिनिः ३।१।५३।

७०१। ग्रहीरमी घीऽयां।

(यह: प्रा, दम: दा, घं: ११, पद्या ७) ।

यहै: परस्य इमी घै: स्थात्, न तु खां। यहीता ।

(२८८) मृ ज गि हिंसे।

७७२। शृपूद्रां खो वा किट्यां।

्रिं पृन्द्रां ६॥, स्वः १।, वा ।१।, कित-त्थां ७।)।

एवां स्वः स्यात् किति व्यां वा। भयतुः मगरतुः।वि एवं (२८८,३००) जिप् गिपालने, ह गिविदारे।

(३०१) ज्या गि जरायां।

जिनाति, जिज्यो 🎼

(३०२) ब्री गि वलां।

विणाति बीणाति ।

(३०३) जाग बोर्घ।

जानाति ।

(३०४) श्रम्य ग मोचे।

यथाति। येथतु: प्रयत्यतु:, येथिय प्रयत्थिय ।

[🜞] एवं ग्रहीतुं ग्रहीष्यति इत्यादि । ठ्यान्तु नग्रहिष जग्रहिव । पाणिनि: ७।२।३०।

[†] ग्रामरतुर्गित इस्लाभावपचे (६२६) गुगः। एवं प्रतृ: पपग्तु:, दद्रतृ: ददरतु:। पाणिनि. ७।४।१२ ।

[‡] जिनातीत्यादि (६६१) जि: या स्थाने इ:। निषातीत्यादि (७६८) वा इस्तः। जानातीति (५८०) जा-मादेशः। यथातीति (५६०) न-लीपः। यथप्रित्यादि (५६६) कित्पत्ते न-लीपः, (५०८) खिलीमादियः। यप् (७५०) यस्यस्थेति न लीपः पर्व खिलीपादि ।

एवं (३०५) ग्रन्थ ग दर्भे।

(३०६) कुष ग निष्कोषे।

(५०३) वेमूदितीम वा। निरकोषीत् निरकुचत्।

(३०७) श्रम ग भोजने।

अभिता अष्टा 🕆

(३०८) व ज ग वर्ण।

अवरीष्ट अवरिष्ट अवत । ववषे । वरिषीष्ट वषीष्ट । क्ष

दति क्रगादि-पादः।

8र्थ पाद:—चुरादि: ।

-

(३०८) चुर कि स्तेये।

७७३। चुम्धे जिवी। (वृध्ये: ४॥, जि: १।, वा ।१।)।

चुरादे जिंः स्वाहा स्वार्धे। चीरयति चीरयते। अवृतुरत्। चीरयामास। चीर्थात्। पत्ते चीरतीत्वादि। *

निर्ज्वदिति चनिम्पची (६०५) सका, (६०२) पख कः, (१११) पलं।

⁺ अधिता अष्टा (६०६) वेससहतीम वा, (१५४) पङ्, (४०) तस्थाने ट।

[‡] भवरीष्टेत्यादि (०४०) वा इ.म्, (६२०) इ.मी वा दोर्घः, भनिम्-पर्च (६५८) मे: कित्त्वं, (५६२) मिलीपः। ठी से वहवे, (५८४) नेमसुमिति इ.म्-निषेधः। वरि-पीर्ष्टत्यादि (०४०) इ.म्, पर्च (६५८) कित्संज्ञायां न गुणः।

वा ग्रन्टस्य व्यवस्थावाचित्वात् चुरादिस्यो जिर्निसः, चुरायन्तर्गणात् (किकारातु-वसात्) गुलार्दिज्ञ्चा स्थादित्यर्थः । पचि गणान्तरित्यमाभावात् सामान्धगणो स्वादि-रित्यर्थः । यतु चुरधातीः कि कारातुवस्थवरणं पर्धचीरतीत्युदाहरणच तत् कदाचित् चुरार्देजेरिनयलग्रापनार्थे । अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवनीति न्यायात् चुरादेः

(३१०) कृत का संग्रव्हे।

७७४। कीर्त्त: कत:। (कीर्त्त: १।) कृत: ६)।

कृतः कीर्त्तः स्थात् जी। कीर्त्तयति। क्ष

(३११) गण त्क सङ्गाने।

७७५। इसाद्वीपोऽभित्यद्योः। .

(हसात् प्रा, लीप: ११, षशिति ७१, अत्-यी: ६॥)।

इसात् परयोः अकार-यकार्योर्लोपः स्यादिश्वति । गणयित । पृ

७७६। वेङ गणकथः खेर्जारिङ।

(वा ।१।, र्देङ् ।१।, गण-कय: ६।, खेः ६।, जाङि ७।) ।

स्वार्थे जि: । चुरादिस्यो जे जिंचेऽपि उभयपदं न स्यात्, अण्या स्वस ज क् वितर्के इत्यादे जीनुवसी व्यथः स्थात्, तेन ङितयुरादि रास्वनेपदं, जितयुरादे क्ष्मयपदं, जभय-भिन्नचुरादेः परस्वैपदिभिति । यनु अव उभयपदौदाहरणं तत् कहा चिदासमेपदिसिद्धार्थे। चीरयतीत्वादि चुर-जि:, (५४२) गुण:, चीरि इति (६३१) धार्त्वमं जायां, तिप् अप् गुणा: । चीरि-टोदि, (५४०) अनागमः, (६१३) जिथीत्वङ्, (५५०) चीरि इत्यस्य डिले, (५६७) खेरायवः परभागस्य रि इत्यस्य जीपः, (५५०) खेः श्रोकारस्य उकारे, (६३०) आङ्गुङः ख इति मूलधातीरीकारस्य इत्ते, (६३८) खेः श्रोकारस्य उकारे, (६३८) जे लोपः, अपूच्रदिति । ठी-णप्, (५०२,५०३) श्राम्, अन्-प्रथोगय । ढी-थात्, जे लोपि, त्याचीपे त्यावात् गुणस्थिती चीर्यादिति । पाणिनः इ।र।२५ । तन्तते श्राष्ट्रपीयगणात विभाषा ।

- सर्व्वच कीर्तादेशे, गणपाठे कृतवातुकारणं कराचित् कीर्तादेशी न स्थादिति
 ज्ञापनार्थे, तेन अचीक्रतदिव्यपि। पाणिनिः ७१।१०९,८।२।७८।
- † भत् च यथ तौ तथी: । प्रकरणवलात् धातु मंत्रकस्य भकार-यकारयो लें।पः, तेन इसतौ खादौ न खात्। इसात् किं, वीभूयिता। अधिति किं, ईर्ष्यति। भरे इति नीक्वा भिन्नतीति कथनं, मन्य वस्य इति धातीयं ङ्लुकि खी यात् संमन्यातः इत्याप्य यकार लीपायंम्। गणयतीति जी भनेन भकारलीपे, लीपीऽध्यादेश उच्यते इति स्थायेन ख्यानिवच्यात् न छिंडः, एवं कुण त् काभाष मन्त्योरित्यादीनां कुण- यतीत्यादीन सुणः। पाणिनिः ६।४,४८,४८।

गण-कथयोः खेरीङ्स्यात् वा जाम्डः। अजीगणत् अजगणत्, (६३८) अग्लोपित्वान दः। अ

(३१२) काय त का वाक्यप्रवन्धे ।

अचीकायत् अचकायत् । अ

इति चुगदि-पाद: ।

२य-चतुर्गणाभ्याय: ।

८म:। ३य-चतुर्मणाध्याय:।

-4834.4E302-

.१म पाद:-- त्रान्तः ।

७७७। जि: प्रेरणे। (जः ११, प्रेरणं ०।)।

धो र्जि: स्थात् प्रेरणेऽर्थे । क्ष

- * ईड: डानुबस्थात् भन्येवर्णस्थाने भवति । भन्नीगणदिशादि गण जि: पूलेभ्वेण भन्नारक्षीपे गणियाती: टी-दि, (६१३) भङ्, ततः दिलादि, भन्न खे: स्थाने ईडः, ततो (६४१) जे लेंगिः । ईडो विकल्पपचे अनगणदिति । (६३८) खे: मन्दर्शि स्वे भन्ति। प्राणिनिः श्राहे अन्तर्शिक्ष स्वे गणियातुरेव पठितः नतु कथयातुः।
- * लयंतत् कियतामित्यादि कियामु नियोजनं प्रेरणं। यथा सत्यं कर्ष्यं कारय-तीत्यादि। प्रचेतने तूपचारः। यथा परित्रमः चुभां वर्ष्वयतीत्यादि। धीरिति व्याख्यानं मुख्येपकारथात्वातार्थं, तेन भवनं प्रेर्थित भावयति, कामयमानं प्रेर्थित कामयति, चिकित्सन्तं प्रेर्थित चिकित्सयति, चीरथन्तं प्रेर्थित चीरथिति, चिकी-र्धन्तं प्रेर्थित चिकीपंथिति, चिकीयमाणं प्रेर्थित चिकीययति, चरीकुर्वन्तं प्रेर्थित चरीकारथित, पुत्रकात्यन्तं प्रेर्थित पुत्रकास्ययतीत्यादि। प्रेरणार्थञ्जे: परोऽपि जिः, यथा पिता पुत्रेण शिष्यं वदं पाठथतीत्यादि, श्रव पुत्रः पाठथतिन कर्तान्तं पठतेः, तेन (२८४) पुत्रस्य कर्षालं न स्थान्। जे जिच्चात् ज्यान्यधातीरुभयपदप्राप्तिः। पाणिनिः शरारदे।

कुर्बन्तं प्रेरयित कारयित । अचीकरत्। अ ध्रम्यमासत् अडुटोकत्। अग्र्यवत् अग्रिखयत्। व्यतस्त्रभत्,पर्यमीसिवत्,व्यमीसहत्। (५७२) साङ्खान षः। १० अचीचकासत् अचचकासत्। श्रीन्दिद्त् श्रीक्रिजत् आड्डिडत् आर्चिचत्। अररभत् श्रलकभत्। अजीहयत्, (७४८) अनङीत्युक्ते ने घिः। अदिध्ननत् अध्वनयीत्, ऐत्लिलत् ऐल-यीत् आर्दित् आर्द्यीत्, श्रीननत् श्रीनयीत्। १३

^{*} कारयभीत्यादि, क्र. ति (५००) श्रन्थेची वृद्धिः, कीरिइति (६३१) धान्मंत्रा, ततिनिप्त्रपादि । कर्जनं प्रैरिस्त् श्रचोकारत्, (५२०) प्रागच्काधीद्रचि दिगिति म्वात् (८२६) श्रतप्र जो दिने विशित बच्चमाणित्यमेन, क्षड इति धान्मंत्रायां, टीवि, (५५०) श्रमागमः. (६१२) जियीत्यङ्, (५५०) क्षद्र इत्यस्य दिले, (५६४) खेरायव इति विश्वतारस्य लीपे, (५५०) स्वकारस्य श्रकारि कक्षारस्य च चकारे, ततः (५००) वृद्धिः, श्रचकारि इति स्थिते, (६२०) श्राकारस्य इत्वी, (६२१) सल्चे, (६४०) खेरकारस्य दकारे, पुनः (६२०) लघुक्वे दीधें, (६४१) जे लीपः। एवं सर्वन साधनप्रकारः।

⁺ प्रामतं पेरिरत् प्रग्रणामिटित्यत्र (१३८) श्रामवर्जनात् न इन्द्रः । देशकार्गं प्रेरिरत् अदुद्रौकिदित्यत्र (१३८) ऋदिइर्जगत् न इन्द्रः । ययन्त प्रेरिरत् प्रग्रणविद्यत्र विज्ञः, (५३०) प्रागचकार्थादिति नियमान् पादौ दिले, (६११) विजिति वाष्ट्रस्य व्यवस्थ्या स्विभूलस्य च जिः इयुक्त-वस्थानं उः, तती बद्धादिकं । जि विकल्प पर्वे प्रशिव्यत्वर्धिति । विष्टममानं पेरिरत् व्यतमस्थत्, परिषीव्यन्तं प्रेरिरत् पर्यमौभिन्वत्, विष्टमानं प्रेरिरत् व्यभीसहत्, एषु (५०२) साङ्ग्लात् न षः । पर्यादिनिभित्तकं स्विः प्रसं न स्थात्, खिनिमित्तकनु सूल्यातीः ष्रसं (१११) किलादित्यनेन स्थादेविति वीपतिदक्तः ।

[‡] चकाभतं प्रैरिरत् अचीचकामत् अध्यक्कामत्, ऋदित्वात् (६२८) उङी न क्रसः, अनेकाध्वात् (६२८) या भन्वद्वायः। उन्द घी क्रंदे, उज गार्गवे, अदङ अभियोगे, अर्थ ज् पूर्ज—रित चतुर्णां धातूनां — उन्द नं, उजनं, अद्रुजनं, अर्थनञ्ज प्रेरिरिद्ति वाक्ये, जी उन्दि उजि अर्द् अर्थ द्वित स्थिते, (७१८) नाजनादिरिति आयादारं हिला, (७२०)स्थादी नवद्र इति नवद रांश हिलादि जिडि चि एषां दिलं,

७७८। सृदृत्वरप्रथमदसॄसमोऽङ् खेर्जाऽङ चेष्टवेष्टोस्त वा।

(मृ—समः ६ा, घङ् १२ा, खे ६ा, नाहि था, वेध्वेधीः ६॥, तु १२ा, वा १२ा)
एषां खेरङ् स्थात् चाङि चेष्ट-वेष्टोलु वा ।
श्रमस्मरत् श्रद्रत् श्रतखरत् श्रपप्रथत् श्रमस्मदत् श्रतखरत्
श्रपस्मगत्, श्रवचेष्टत् श्रविचेष्टत्, श्रववेष्टत् श्रविवेष्टत् । अ

. ७०६। भाज भास भास भाष दीप जीव मील पीड क्रण वण भण यंग लप लुप लुट हेठां वोडः खः। (भाग – हेठां ६॥, वा ११), वडः ६।, खः १।)।

⁽५०१) पुनरमागमय, चौल्टिट्त् चौजिजत् आइडिडत् आर्धिपदिति । रम्माणं सम मानच भैरिरत् घररमत् अललगत्, (६२८) गुरुधालचरपरलात् न सन्द्रावः । हिन्नन् भैरिरत् घजीह्यत् । मि प्लन र्वं, इल म भये, चई पौडायां, जन त्का परिहार्य — प्रति चतुर्या — ध्वनन् , इलम् , चईन् जनयन् । भैरिरदिति वाक्ये जौ कृते ध्वन् एति इदि जनि इति चतुर्यः (६१३) वा घङ् एति जनि इति द्योः (७१८) धायाच् हिला हिलं, घई दल्पस्य (०१८,०२०) भायाचं रख हिला दि इत्यस्य हिलं। घडी उभावपत्ते (५५१) व्यां मिः, दमादिकं, इति परे न जिलीपः, (५०४) निषेधात् व

[†] स्मृ इत्यनेन स्मृ स्मृती, स्मृ म श्रीत्यं इति दयं; हृ य गि विदारे; जि तर पाड् स्पद; प्रथ म ष क् व्यातों; सर म पड् चीदं; स् ज गि कादने; स्प्रश ष ग्रय-वाधयी:; एपां भगानां खंरह्विधानात् (६१०) ख्यशेत सनीति द न स्थात् (६१०) घीय की हंसादे धंयत्यिप न स्थादिन्दंश:। चंटिवेटोन् खेरडीऽप्राप्तिपहं युवंचर्यरत्तात् (६१०) सन्द्रायस्यापाती को देंचिंन स्थात्। श्रमस्यरित्यादि— स्थानं, दीर्यनं, त्यामाणं, प्रथमानं, सदमानं, स्थानं, स्थानं स्थामानं वा, चंट सानं, वेटमान प्रेरिरिति वाक्यानि। श्रव ह ङ शादरे दित इस्थान-हथाती यंदणिनित कायिन, दियमाणं प्रेरिरिदिति वाक्यं। स्वान स्वान ह्वान स्थान स्थात्र त स्थान स्थात्र व व रहीतः, तस्य तु स्थानसरित्येव पदं। पाणिविः श्रथः स्थान स्थात्र व

एषामुङ: स्व: स्वात् वा जाङि। अविस्वत् अवसानत्। *

७८० । वर्दु ङो धुः । (वा ११, ऋदङ: ६।, धः १।)।

ऋदुङो धो र्घुरव स्थात् वा चाङि । श्रवीद्यतत् अवव ेत् । 🕆

७८१। खपो जि:। (खप: हा, जि: १।)।

खपो जि: स्यात् जो ङि । अस्युपत् । क

७८२ । ग्राच्छासाह्वाव्ये वे पांजीयन्।

(मा-पां हते, जी श, यन् ।१।)।

एषां जी परे यन् स्यात् । शाययति पाययति । §

^{*} टु साजृङ ण भाि , टु सास्ट ङ ण भाि , भागृ ङ दोती, भागृ ङ वाि न दीपी ङ ऋ दीपने, जीव ऋ प्राणने, नील निभेषे, पीतृक बाधे, कणृ भार्तसरे, ऋ वण ग्रन्द, ऋ भण ग्रन्दे, यण क टाने, ऋ लप भाषे, लुप ऋ ग्र प ल जी हेंदें, लुख ऋ विलीड़ने, हेठू ज बाधे, धीड़गेते। टु सागृ ङ ण'भाि हैति तालव्यानोऽिष भव ग्रहौत:। इह हिधातमपि व्यासकारः पटित। भव वाग्रहणं वाह्यमध्यवित्वेन निव्यत्निवारणार्थम्। एतेषु गणपाठे सासधातीक्रें स्वच्रद्रनुबन्धः यणपाति भव स्टर्तुबन्धाः भावः कस्यविद्नुरोधादिति दुर्गादासः, वस्त्तन्तु प्रामादिक-एविति। भविभन्नदिव्यादि, साजनानं प्रैरिरदिव्यादि वाक्षं। पाणिनिः ०।४।३, वार्त्तंक्च। भव सासधातुने दृश्यते, साय्ये च रणधातुरिधकोऽस्ति।

[†] ऋत् उड्ड यस स ऋदुड् तस्य । ञानस्य वतम्स्रति ऋदुङ्भातोः टीविभक्तौ, गुणनिवृत्ति व्वा स्थादित्ययः । क्रपधातोः (६४८) कृपादेभेऽपि ऋदुङ्भकृतिकत्वात् भिषोकृपत् भ्राचकत्यदिति दयमेव स्थात् । श्रव वायद्यपं परवानुवृत्तिनिवस्ययम् । श्रवी-वतदिति वर्त्तमानं ग्रैरिरत् । पाणिनः ०।४।०।

[‡] भस्पुपदिति स्वपन्तं ग्रैरिरत्, स्वप-जि: स्वापि धातः, टीटि भड् भनेन जिः, सिप इत्यस्य दिलं, (६२८) घीय खेईसाटं घः, (१११) षलं। पाणिनि: ६।१।१८।

^{\$} भीय निमाने, को य लूनी, घोयनाभि, छेचै स्पर्डे, व्येजै वती, वेजै स्पृती, पापाने पैभोषे इति क्यं। यनीन इत् ऋने। ऋनं प्रेरयति माययति, पियन्तं पायनं वा प्रेरयति पाययति। पाणिनिः शशाहरु।

७८३। दे: पिबः पीषो जारिः।

(वे: ६।, पिष: ६।, पोष्य: १।, आप्रक्ति ७।)।

ग्रपीप्यत्। *

७८४। ही वी री क्र्यू द्धायातां पण् गुम्र जो। (की- बातां सा. पण्।रा, गः रा, पारा, जो का)।

क्रिपयति विषयति रेपयति क्रोपयति अपैयति स्मापयति स्थापयति। पं

७८५ | स्थोडने अप्रहतै: | (स्थोड: ६१, जाडि ७), इ: ११)।

तिष्ठतेरुङ इ: स्यात् जाङि । अतिष्ठिपत् । 🕸

७८६। घोवा। (प्रः स, वा।श)।

अजिम्निपत् अजिम्नपत् । §

इन्द्रक्तस्य पापाने द्रत्यस्य पीष्यः स्थान् क्याङि । पिवन्तं प्रैरिस्त् ऋषीष्यत् ।
 पिवः किं, पै अपपीष्यत् पाल रचणं अपपीपलन् । पाणिनिः ७।॥॥ ।

⁺ फ्री नि लर्ज, ब्री मि गत्यां, भी री उर य घरणे री मि रवे दित दयं, क्रुयी उर्जर्भ, स्ट ने हिंसे स्ट नि गत्यां स्ट प्रापं च दित वयं, जाशी उर विधृतने द्वित पणां भादलानाञ्च औ पण स्थान, ण दत भल्याचः परः, यद्यासस्थवं गुण्या । द्विपयतीत्थादी पणि क्राते, पकारस्थापि धालवयवत्थान् अष्ट्रडीऽभावात् (५४२) भ्रष्राक्षी गुणानिधानं । क्रीपयति कापयतीत्युभयच भल्याचः परं पकारिक्षत्या तस्थान् परत्या (००५) इसा क्रीप दित य-लोपः । भादिष्टां भादला भिष्, तेन टे उर पालने (६०८) दापयित, इक्षी अ ग द्रश्यविधयी कापयतीत्थादि, (०१३) ईस्थाने भा । निद्रियतं, ब्रीनलं, रीयमाणं रीणलं वा, क्रूयमानं, स्रक्षत्व द्रयुतं स्टक्कत्तं वा, क्रायमाणं, तिष्ठल्व प्रिरथतीति वाक्यानि । पाणिनिः श्रीस्थ

[‡] स्था इत्यय उड्सीड्तस्य। पिय क्षते स्थाप इत्यस्य उडः इः स्थात् आडी-लर्थः। ऋतिष्ठिपदिति स्थाप इत्यस्य भाकार इकारे स्थिपि इत्यस्य दिलादि, (१९१) पतं। पारिपनि: ७।४।५।

[§] ब्रा धातो: पणि क्षती प्राप-भागस्य उङ इ: स्वादा अधिक। अजिबिपिदिनि

७८७। पाति-स्फाया र्जन-वहरी औ।

(पाति स्कायी: ६॥, लन् वडी १॥, औ ०।)।

पालयति स्मावयति। *

و তিনে। সী-খুজা नेन বা। (গী-খুজা, হা, নন্। যা, বা । যা)। গীঅয়নি সাম্মনি, গুনুষনি খান্যনি। প

७८१ कहः पङ् वा । (कहः हा, पङ् । ११, वा । ११)। रोपयति रोहयति । क्ष

७८०। गरोऽगतौ तङ्। (भंदः हा, अ गतौ का, तङ्।रा)।

श्वातयति। गतीतु, गाः श्वादयति गीपः। §

जिन्ननं प्रेरिरिदिति वाक्षे जी पणि न्नाप इत्यस्य चा इ:, तत: न्निपि इत्यस्य दिलादि। इकाममावपने न्नापि इत्यस्य दिलादी, (६१८) उन्हें इत्वे, (६१८) मन्दन्नवे, (६४०) स्वेरित्ने, संगुरुलान् (६१८) दीर्घाभावे, (६४१) जेलींपे, व्यजिन्नपदिति। पाणिनः अधाद्।

- पा ल रचणे दलस्य लन्, स्काशी ङ बद्धी दलस्य वङ्स्यान् जी। लनी निलादने, वङी ङिल्लादन्यस्य स्थाने। पानं प्रेन्यति, स्काशमानं प्रेरयतीति वाकादयं। पाणिनि: ०।६।४१, ''पातेर्ल्यनवनम्" दति वार्त्तिक्य।
- † प्रीय ध्य प्रीधवी, तीचती जी (ञानवर्यों) चिति तथी:। प्रीजृतर्पणे प्रीगञकानी इति दथी:, घृजगिकस्पे इत्यस्य चनन् स्वादा जी। निचादन्तं। धूज इति जातुवस्यप्रच्यात् नासंपानित्यर्थः। प्रीखन्तं प्रीयन्त वा प्रेरयति, धूननं प्रेरयति इति वाक्यदर्थ। ननीऽभावपचे (५००) अन्त्यची द्विः। "ियच्पकर्णे धूज-प्रीजीर्लुग्वचनम्" इति वार्त्तिकम्।
- ्रे जि न कही नियानित्यस्य पङ्स्यादा जी डिलादत्यस्य स्थाने । अन वा सहस्यं परवानुवृत्तिनिवस्थये । कप-धातोः रोपथतीति निदायि, रोपथतीत्यस्य उत्-पादनायंत्रीधनार्थं कहः पङ-विधानम् । रोहनां प्रेरयतीति वाकाम् । पास्तिनः ०।३।४३।
- श्रमद् लु जी शाति देखस्य तङ् स्थान जी, न तु गती । भीयमानं प्रेरथित भानयित, पात्रथतीलथे: । गत्यथंस्य तु श्रादथित गमयतीलयः । पाणिनिः अश्रादर ।

७८१। लाल्यो र्लन्ननौ सोहद्रवे वा।

(ला-ल्या: ६॥, लन्-ननी १॥, स्तेइद्रवे ०।, वा ११।)।

लाते र्लन् लियो नन् स्थात् स्नेडद्रवे ६ थें जी वा। विलालयति विलापयति। विलीनयति, (७४५) मिम्योरिति ङा वा, विलापयति विलाययति घृतं। स्नेडद्रवे किं, लीहं विलाप-यति विलाययति। *

९८२। वा जन्धूतों। (वः इ।, जन् ११, धूती छ)। वाते र्जन् स्थात् कम्पने जी। वाजयित। धूती किं, केप्यान् वापयित। पे

७१३। क्रीजीङो ऽजा चि स्फर प्रजनार्थ-वीनान्तवा।

(क्री-क्रि-इंड: ६।, षच् ११।, था ११।, चि स्कृर-प्रजनाधवीनां ६॥, तु ११।,वा ११।)। एषामच श्रास्थात् जो, चारिस्तु वा। क्रापयति जापयति श्रध्यापयति । ढ़्री

^{, *} सहस्य घृतादेद्रेवीकरणं सेहद्रतः। "सेहिविपातने" इति पाणितः। "सेहि-द्रयद्रावणं" इति क्रमदीयरः। साः ल च ग्रेहे, ली कि द्रावणे इत्येतथीग्रेहणं। ''लीलोडीः'' इति क्रमदीयरः (तिङन्तपादे ४५० म्वे)। विलानं प्रेरयिति विलाल-थिति, पर्चे (०८४) श्रादन्तवात् पण् विलापयिति। विलाययन्ते प्रेरयिति विलीनयित। उभयव घतं द्रावयतीत्वर्थः। पाणिनिः अश्वास्ट।

[†] वा च गमन- हिंस यो रिव्यस्य वालां प्रेरण्तीति वाक्ये वाजयति कस्पयतीवर्षः । क्रियान् वापयति परिकारोती वर्षः । पाणिनिः शाश्चः । सत्र वैभात्य हणं न तुवा-भातः, यती वजधातीवीजयतीव्यादि किंद्वो वै द्रव्यस्य पुक् (पण्) मा भूत्, दिति पाणिनिटीका ।

[‡] क्षीय जिय दक् च समाहारे तस्य । प्रजनी गर्भयहणाम वर्षी यस्य सः प्रजनाधः, सचाधी वीविति प्रजनाध्ये ते । वीनामिति (११०) न्यागमः स्वलात् । दुक्षी ज म द्रश्यितपर्योधे, जि जधे, वाधी क्ष्म व्यव्यमि, एपामित्ययः । क्षापयतीत्यादि —क्षीणनां ज्यानम् अवीयान्य प्रेर्यतीति वाक्यान्। व्यक्ते व्यपः स्थानं व्यान् व्यान् स्थानं व्यान् स्थानं व्यान् व्यान् स्थानं व्यान् व्यान् स्थानं व्यान् व्यानं व्यान् व्यानं व्या

अध्यजीगपत् अध्यापिपत्। चापयित चाययित। चपयित चययित (७८८) मित्वात् इस्व इति प्रक्रियारित दृष्टं। स्मार्यित स्मोरयित। वापयित वाययित, गाः पुरीवाती गर्भं ग्राह्यतीत्वर्षः। अ

८१। सिन्धो घीत् खर्षे मन्त्र।

°(चिभ्यो: द॥, घात् ५१, खर्थं ०१, मं ११, च ११।)

अनयोरच भा स्यात् घात् धर्धे जी मञ्ज। विस्नापयते भाषयते मुग्डः। घात् किं, कुञ्जिकयैनं विस्नाययति भाययति । 🕩

७८५ | भी भीष्वा। (भीः रा, मीष्।रा, वारा)। भियो घ-भन्ने भीष् स्वादा जो मञ्च। भीषयते मुख्डः। क्ष

^{*} भध्यभीगपदिति भिष्ट र टी दि, (०१३) गा मादिशे, एण्, ततः गापि इत्यस्य हिलादि। गा भादिशस्य विकल्पपचे भनेन इ स्थाने भा, ततः पणि भापि इति स्थिते (०१८) पि इत्यस्य हिले भध्यापिपदिति । चापश्रतीत्यादि भिन्नेनं प्रेरयित, चि-नि, भनेन इस्थाने भा, ततः पण्; पचे (५००,३५) ब्रह्मादि । प्रक्रियाग्यं वैयाकृरण-ग्रथविशेषः । स्कृत्नं प्रेरयित भनेन वा छकारस्य भा । विनन्तं वियन् वा प्रेरयित वापयित, भनेन भा, ततः पण्। पचे ब्रह्मादि । प्रीवातः पूर्वदिग्वायुः । वर्षासु पूर्ववायौ वाति गानी गर्भे एक्षनौति प्रसिद्धिः ।

[†] सि इ सिते, जि भी लि भीत्यां, अन्योगर्यो यदि जान्तकन्तः प्रतीयते तदः अच भा, आत्मनेपद् स्थादित् । अत्य आ न स्थात् आत्मनेपद् न स्थादित । विस्तयमानं विभ्यत् च प्रेरवित भीने भागत्तः पण्, आत्मनेपद्भेव । सुष्डः सुष्डित- मस्तकी जन इति दुर्गादासः । एवं विद्यापयते आपयते व्याघः उत्यादिष् कर्मृतः एवं धाल्यंप्रतीति । भन्यत्र कुचिक्या मत्स्य विभिष्ण कर्णेन एनं जनं किश्चित् विद्याययति भाययति एवं खड्गादिना विद्याययति भाययति इत्यादिषु कर्णकारकात् धाल्यंन्यत्तिः नतु कर्मृतः, चत्रप्य भवः स्थानं आ न स्थान्, भामनेपद्ध न स्थान्। पाणिनः द्राराष्ट्रद्रभ्, १।३।६८।

[‡] घमधे कर्नृतीमधे निष्यत्नं इत्यर्थः। पत्ने पूर्व्वस्तीण भाग्यते इति। एवं स्रीपयतेभाषयते व्याघः। घान् किं,खङ्गेन तंभायथति। पार्शिन श्राह्म ।

९८६। दुप्रेरोदू:। (दृषे: ६१, कीत ११), कः १।)। दुपेरोकार जः स्थात् जो। दृषयति। क

७२०। चिद्धिकारे वा। (विद्यासे था, वा । रा)। दूषयित दोषयित चित्तं। ए

७८८। घटादि जनी जूष क्रस रजाम मारतोषनिगान निगामार्थ-त्तां खो ऽक्रमामचमो जीयामोस्तु र्घय जागुया।

(घटादि—क्षां ६॥, खः१।, घंकमामचमः ६।, ञोखमीः ०॥, तु ।१।, घंः १।, घ ।१।, कागुः ६।, घ ।१। ।

घटाबारि-रमन्तस्य माराबर्ध-त्रय जो स्वः स्वात् नतु कमाम-चमां, जेः परवी रिण्णमीमु र्घय जागुय स्वी र्घः । क्ष

इर्दुधी वैक्रते इत्यस्य जिन्निमित्तके गुणे क्रते दीवि इत्यस्य भीकारस्य कः स्थादित्यर्थः। दुवेर्घः इति क्रते तु, दीवः दीवर्षः इत्यादित्यर्थः। दुवेर्षः इति क्रते तु, दीवः दीवर्षः इत्यादित्यर्थः। दुवेर्षः सिति तुञ्जानस्येव। दुव्यनं प्रेरणतीति वावयं। पाणिनिः ६।४।८०।

[†] चिन् मन: तस्य विकारियदिकार:, तस्मिन्नर्थे दुवे की अते क्रीकार कः स्थादा इत्यर्थ:। दूषयति दोषयति चित्तं, क्रीघदति ग्रेष:। पाणिनि: ६।४।८१।

[‡] मारस तीयस निणानज्ञ निणामस ते अर्था यस स मारतीयनिणाननिणामार्थः, स चामी जायित मारतीयनिणाननिणामार्थजाः। घटादिस जनीस जृष्य लस्य रज्ञस समय मारतीयनिणाननिणामार्थजास ते तेषां। कम च सम स चम च कमामचम, न कमामचम स्रकमासचम तस्य। इण् (८२१) च णम् (१९८३) च रणमी, जी: परी इस्तमी जीसमी तथीः। गणपात मकारान्यन्यी घटादिः, स्रतण्य घट म इः पेष्टे इत्यस्य गहणं, नत् घट क हिंसे इत्यस्य। सादिना यावतीयानां मान्यन्यानां ग्रहणं। जनीयहणेन जनी स्यङ्ग प्राद्वभावे दत्यस्य प्राप्तः, जन म लि च इत्यस्य मान्यन्यतिः पि न प्राप्तः। जृष ग्रहणान जृ गि कि ज्ञानि इत्यस्यप्राप्तः। स्रमः इत्यनेन समन्यम् गहण्य ग्रहणान जृ गि कि ज्ञानि इत्यस्यप्राप्तः। स्रमः इत्यनेन समन्यमानस्य ग्रहण् कम स्रम चम इति वयाणां तदन्तगंत्रसाम् स्वर्णं। मारा मारणं, तीवः

घटयति व्याययित प्रथयति, जनयति जरयति क्रसयति, रज-यति सगान् रमयति, जपयति । कमादेख, कामयति श्राम-यति चामयति । *

७६६। ज्वल ह्वल ह्वाल ग्ला सा वन रम नमो ऽगे व्वा । (ज्वल-नमः ६।, ज्वानः ६।, वा ।१।)।

एषामगीनां स्वः स्यादा जो। ज्वलयति ज्वालयति, ग्लपयति ग्लापयति ।

अगेः किं प्रज्वलयति प्रग्लापयति । 🕆

८००। वा शम यम फण गिस्वदां।

(वा।१।, भ्रम यम फण गि-खब्दां ६॥)।

- घटमानं, व्यथमानं, प्रथमानं, नायमानं, नीर्थनं, क्रस्यनं, रननं, रममाणं, नाननं, सामयमानं, प्रमन्तं, चमनाखं, प्रयतीत बाक्यानि । रनयतीत्यस्य स्मान् रमयतीत्यस्यः
 स्मान् रमयतीत्यसं:, तेन (६६०) सगरमणार्थं न-जोप:। रमयतीत्यनेन प्रमन्तोदाहरणञ्च दिर्धतं । जोसमीनु प्रघटि प्रघटि, घटं घटं घाटं घाटमित्यादि । नागुन् प्रनागरि
 प्रनागरि, नागरं नागरं नागारं नागारं ।
- + ज्वल न स बल- त्विषीः, हल फ्रांत स च चाले, रखे कासे, प्णाल श्रीधने, यतु स व्याप्ती, रसु इन जो क्रीड़े, नसी शब्द नत्योः । पूर्वमूत्रे ग्लासीरप्राप्ती अन्येषाधा नित्यप्राप्ती विकलाः । अत्राप्त प्रज्वलयतीत्यादी घटादिलात् नित्यं क्रस्तः, प्रग्लापयति प्रस्नापयतीत्युभयत्र न क्रसः । ज्वलन् ग्लायन्तच प्ररयतीति वाकादयं । रस क्रत्यत्र वस क्रति क्रवित् पाठः । भाष्यम् ।

पितीपणं, निमानं तीज्यीकरणं, निमानी दर्भनप्रेरणं। क्रमेण यथा - ज्ञपयित भवं वीर:, ज्ञपयित एवं पिता, ज्ञपयित खड्गं कर्माकारः, ज्ञपयित रूपं कार्मिनी। निमानी ज्ञानप्रेरणमिति कमदीयरादयः, अत्रपत्र विज्ञापनार्थं विज्ञपिरित्यपि प्रयीगः। एति इंदर्षे ज्ञापयित। पाणिनिः इ। ४। ६२, ६३, ७।३। ३४, वार्त्तिकञ्च।

एवां खः स्थाद्या जो। यमयति यामयति, यमयति याम-यति, फणयति फाणयति, परिस्खदयति परिस्खादयति । *

८०१। इनस्तङ-ऽणविणि ञ्णिति।

(इन: ६।, तङ् ।१।, भ-वप्-इषि ०।, ञ्चिति ०।)।

जिति णिति च परे इन्तेस्तङ् स्थात् नतु णि दिणि च। घातयति । पं

८०२। यि: सन् वेष्यी दि:।

(धि: १।, मन् ।१।, वा ।१।, ईर्घः ६।, वि: १।) ।

ऐर्षियत् । क्ष

इति ञाल-पाद:।

गी: सबद गिस्बद, शम चयम च फण च गिस्बद च तेवां। चुन वाशव्यस्य व्यवस्थ्या श्रमुभिर्ध शमे द्रत्यस्य नित्यं इस्तः, शम क कालीचे द्रत्यस्य नित्यं इस्तः भावः। चौ यम चपरमे द्रत्यस्य नित्यं इस्तः, यम क मि परिवेशने द्रत्यस्य तृ विकल्पन। एवं चव प्रिपूर्वकस्येव सबदस्य वा इस्त दित कातन्वाद्याः, चन्यपूर्वकस्य केवलस्य च घटादिलात् नित्यमेव इस्त इति। शास्यनं शामयमानं वा, यमयनं, पणनं, परिस्वद-मानच प्रेरयलीति वाक्यानि। भाष्यम।

[†] साप् च इण् च षिवण्, न एविण् घनविण् तिकान्। ज च ष घ ज्यो, तौ इतौ यस्य च ज्यान तिकान्। तङी ङ इत् अन्यस्य स्थाने। प्रनं प्रेरयतीति वाकी इन-जि, भनेन इनो नस्थाने त, (६०९) इन्स्थानं घ, (५००) इति:, घाति इति (६०१) धातः। स्वियोम्नु ज्यान, भघानि। पाणिनः शश्शर्।

[‡] जौ क्रते दिलहेगी सित देणंधाती: यिरेव दिः स्वादिलेकोऽयं:। सिन क्रते तृ यि वो दि: स्वात्, सन् च वा दि: स्वादिलपरीऽयं:। देणंतं प्रेरिरदिति वाको ईर्षेक्तं अ, (००५) य नीपस्य निल्लेऽपि येदिंतविधानज्ञापकात् स्वीपाभावे दे्षं द्रस्य (६२१) धातसंज्ञायां टी दि, (६२१) धङ्, ततः धनेन केवलं यि द्रस्य दिले, (६४१) जे नीपि पेणियदिति । सिन तु (५५४) दिने थि द्रस्य दिले देंष्यियपति, सनी दिले देंष्यिपिति । ''द्रंष्येधस्तीयस्येति वज्जयम्' दित वात्तिकाम्।

२य पादः - सनन्तः ।

-00000a-

८०३। सन्तिच्छायां। (मन्।१।, इच्हायां ०।)।

धीः परः सन् स्यादिच्छार्ये । त्रत्तुमिच्छति जिघसति । दिदा-सते दिदीषते, दिद्योतिषते, जितिच्छिषति उचिच्छिष्ति, श्रिधि-जिगापियषति त्रध्यापिपियषति, श्रियाविषति ग्रिखायिषति, जुद्दाविषति । *

^{*} यस धाती याँ ऽर्थनदिवयाया-निकायां तसात धाती सन स्थादित्यर्थ:। अनु-निक्कतीति वाक्येन, इक्कार्या तुम्गर्भायामेव, नतु अदनिमक्कतीत्वादिकपायां। गर्भादिच्छायां'' सितिति भीमराय । इच्छासननात् पुन न सन्, इच्छाया इच्छानारासमः-वात्। खार्थमननात्त् सादेव, विकित्सिवतीत्यादि । अवेतनस दक्काया अमुभवेऽ्दि नदी कूलं पिपति वती त्यादी विवचायां सन्। सन्प्रत्ययः वक्तरिक्तः या वैकालिक एव. पर्च वाका खेव स्थितिरिति । सनी न इत् चिक्रार्थः, घटना-स-स्थितः । जिघताती व्यादि-भद-सन्, (६०३) घस-भादेश:, (६६८) सस्य त, घता इति, ततः (६३२) दिलादि, जिघलस इति (६३१) धातुसंज्ञा, ततः तिष्, श्रष्, (५४३) सनी ऽकार-लोपः। सनन्त्रधाताः (६३६) सनः पनि इत्यनेन परस्रोपदादिनियमः। दातुमिक्कति दी-सन (०४३) ङा वा, दास इत्यस्य दिलादि, पचे दीस इत्यस्य दिलादि। यांतित्तिकृति युत-सन्, (४५४) इ.म्, दिलं, (६४०) खेजिं:। एच्छितुनिक्ति उक्त-सन् इ.म् चिक्त इति स्थिते. (७१८) चकारं हिला किए इत्यस दिले, (५८८) खेळस्य वाता। चध्यापयितुनिच्छति चिधिःइः जिन्सन्, (७१३) दुङो वागाःचादेशः, (७८४) चादन्त-लात पण, गापि धातः, ततः (५५४) इन्, गुणः, एस्याने चय, गापियव इत्यस्य दित्वं जिगापियम धातः ततः तिवादि । पचे (৩ ১২) इ स्थाने चा, पण्, चापियम इति खिते(৩१८) माकारंहिला, पयिष इत्यस्य दिल।दि। স্বাযयितुनिकाति স্থি-সি-सन्, (६६८) श्विभाती विकल्पेन जिः, (५३०) प्रागच्कार्यादिति नियभेन ग्रुइ स इत्यस्य दिले, तत: (५००) ब्रद्धादि, इमादि च। जि-विकलापचे श्विदस द्रत्यस्य दिवादि। हाययित्मिक्कति है जिसन् (६०८) ए स्थाने चा, हाइ स इत्यस्य दिले (६६०) विकतः है धाती जि:, हा भागस्याभावात् (७८२) यनीऽभावे, वद्यादि, इमादि घ। पाणिनि: ३।१।७। भात्र सूत्रे विकल्प:।

८०४ | **णुनीनिमि** । ^{(गःश, न ।श, चिनित छो)। ग्रनिमि सनि गुर्ने स्थात्। विद्वस्ति विवर्त्तिषते, नितृत्सति निनर्त्तिपति, तितरीषति तितरिषति तितीर्षति । *}

८०५ | द्वा ऽज्कानिङ्गा । (र्व: ११, अज्मानिङ्गमां ६॥)
यजन्तस्य हन्ते-रिङ: स्थाने जातस्य गमय र्घः स्थात् अनिमि
सनि । दुध्वर्षति दिध्वरिषति, वृव्पीत विवरीषति विवरिषति
सञ्चिष्कोषति, जिगीषति, चिकीषति चिचीषति, जिघांसति।

८०६। गर्मोलिङोः। (गमि ।१।, इन्-इडो: ६॥)।

क गासि इस् यस्य सः चिनिष् तिसिन, सिन इत्यस्य विशेषणं। सन् इत्य विभित्तित्यत्ययंन चन्तिः। यत्र गुणस्थानं सम्भवित तत्तेव सनीऽगुणिलं, र् जिघांसतीत्यादौ (६७६) न जम् लीपः। वित्तिनिच्छिति विवन्भिति (६४८) चत्र पस् इत्यन्न भाविष्यस्येपदे, (६४८) बद्धाो नेन् पे इति इभिनिष्धे गुणनिषेषः, व इत्यस्य दिलादि। चालानेपदं तु इसि, गुणः। निर्तिनिच्छिति निज्न्मिति निनिर्पिष (७३६) इसीऽभावपचे गुणाभावः, इस्पर्चे गुणएव। तरीतुमिच्छतीति पदः नृ-सन् (७४०) वा इस्, (६२०) इसो वा दीर्घः। चिनिष्पं अगुणलात् (६ः नृस्याने इर्, (२२८) तस्य दीर्घः। पाणिनिः शरारे ।

[†] इस्रो गम इक्स, अच्च इन च इक्स च तेयां। दुष्त्र्वेतीत्यादि ध्वर्त्तीत्व घृमन् (७४०) अनिस्प च अनेन दी थें, भन्तरक्ष लादादी (६२८) उर्, तती दिला (२२८) दी घी:, दुष्त्र्ये घातो कि लाहि इस्प च दिष्त्र दिष्ति । वरी तुमि च अनेन दी घी, ऋ ध्याने उर, तती दिलादिकां। इस् (६२०) इसी वा दी घी:। सक्त तुमि च्हित संस्यान्त (०४०) स्क्षण्तेनात् म इस् , इ दी घीं. (६२८) ऋस्थाने इर्, तस्य दा घी:। जेत्सि च्हित जिन्सन् (६००) मि-आर्द भनेन दी घीं गोष इत्यस्य दिलादि। चेतु मिच्हित चिन्सन्, (७४६) वा कि-आर्द भनेन दी घीं:। इन्तु क्षिच्हित इन-छन्, अनेन दी घीं:, इन्स इत्यस्य दिलादि, (६ इस् घः। पाणिनिः ६।४।१६।

दूनिङोः स्थाने गिमः स्थात् सिन । जिगमिपति, श्रिधिजि-गांसते । *

८००। नेमुगुह्नगृहः। (नारा, उमारा, जगुइन्यहः प्रा)। उवर्णान्तात् गुहो ग्रहथ सन इम् न स्थात्। जुङ्गपति, बुभू-पति, जुष्ठचति। पं

८०८ | ग्रहस्वपप्रक्तां जि:। (गडसप प्रकारण, जि.स)। एषां जि: स्थात् सनि । जिष्टचति, सुपुप्तति । हः

८०१। स्मिङ पूङर्ग्जश्य क्तिर गिर द्रिय प्रच्छ दुस्। (विक्ष पूड-स-प्रन्त-प्रयू-प्रच्छ ४।, उस ११)।

‡ गडौतुमिक्कति ग्रहसन्, पूर्वस्वेण दमनिषेधः, प्रवेन जिः, स्रगढः, गरा गः, उस्य कः, छव द्रत्यस्य दिलादि । स्वृत्तिक्कितिः साप सन् अदिलादिमः, अनेनः जि , सुप्स द्रत्यस्य दिलादि, (११४) वर्ले । पाणिनि कास्त्रिम्सर

[•] गमिरित इकारानुबस्यन गमधालादेशः स्वादिव्यथः । गमधातुनैव पदिम जी दनः स्थानं गमग्देशकरणं, गमनार्थस्य इन-धाती गमादेशः स्थात्, आनार्थस्य न स्थादिति जापनार्थे, तेन जानार्थे प्रतीविधतीति (५२६) सन्भागिव स्वयमुदाहतं। एत्मिच्छति इसन्, गमादेशे (६२४) गमांऽभे स इस् इति इस् गमिष इत्यस्य दिलादि। अर्थ्यद्मिच्छति अधि-इ-सन्, गमादेशे (५०५) दीघें, इङः स्थानिबच्चादाब्यने-पदिविधे, गमीऽमे स इमित्यत्र आत्मनेपदवर्शनीदिमीऽभावे, गांस इत्यस्य दिलादि। पाणिनि: २१४१४०,४८। अत बक्तव्यम् --(२१४१४६) दित पाणिनिग्दीण इन्धानीः सन्वत् आस्तेऽपि गमादेशः, बीधनार्थे तु न भवति। यथा गमधतीति। बीधनार्थे तु प्रलाययति।

[†] ख्य गृहस् यहस्य तस्यात्। उ: जनगांनः। हीत्रीमक्तिः सन्, (८०५) हीर्षे ह्रव इत्यत्य हिलादि। एवं ह्रातृत्तिक्तित्त सन्, (६०°) एस्थाने या, श्वास् इत्यस्य हिली, (६६०) हिक्तस्य जि:, ततः दोर्घे जुह्पति, अवापि उदलावादनन इम्-निवेधः। भिवतृत्तिक्तित्त बुभूषति दोर्घोदनवादिग्निष्धः। गृहिनृत्तिक्तिति बुभूषति दोर्घोदनवादिग्निष्धः। गृहिनृत्तिक्तिति वुभूषति दोर्घोदनवादिग्निष्धः। गृहिनृत्तिक्तिति वुभूषति दोर्घोदनवादिग्निष्धः। गृहिनृत्तिक्तित्ति वुभूषति दोर्घोदनवादिग्निष्धः। गृहिनृत्तिक्तित्ति वुभूष्य दि, (१००) गस्य घ, (६०२) उस्य क्षः, पुष्य द्वास्त्वादि। पाणिनिः १९११ ।

एभ्यः परस्य सन इम् स्थात्। सिसायिषते पिपविषते श्रदिर-षति श्रीस्त्रजिषति श्रीसिषते चिकरिषति पिप्रच्छिषति। अ

८१०। स्रस्त स्रि खु यूर्णु भर दरिद्रा सन तन पत ज्ञपर्डिंदिन्भिवो वा। (अन्न-रण: १५ वा ११)।

एभ्यः सन इम् स्यादा। विभिन्निषति विश्वजिषति विश्वचिति, शिययिषति शियीषति, सिस्तिरिषति सुसूर्षति, शियविषति युगूषति, जर्णुन्तिषति जर्णुन्तिति जर्णुन्त्रिति, विभिर्तेषति वुभूषति, दिहरिद्रिषति दिहरिद्रासति, सिस्ति-षति सिषासति, तितनिषति तितंसति,—तितांसतीत्येवे। पिपतिषति। पे

[†] अस्त च शिष खृष युष जर्षुय मरख दरिद्राध समय तनस पतस प्राप ऋषिय दन्भ च इत च तत्तकात्। अस्ती अ ग्रापाके, श्रि अ सेनायां, खुज ग्रब्दी

८११। मि मी मा दा रभ लभ शक पत पद हिंसार्थराघोऽचोऽनिमसनीस खिलोपस्।

(मि--राधः ६।, घषः ६।, घनिम्सनि था, इस् रि।, खिलीपः १।, च ११।)।
एषामच द्रस् स्थात् खिलीपश्चानिम्सनि । (२१३) स्थादेः सी
लोपः । पिस्ति । जिज्ञपयिषति । *

पतापयो:, युल नियाणे, जर्णाञाल श्रीप्कादने, सुञ भरणे इति भीवादिकस्य ग्रहणं नतुभा लि भृतिपुद्योरिति जुड़ी खादे: प्रस्य तुबभूषंती खेव। टरिटाचल टर्गास्टी षन दुञ दाने, तनुञ द विचारे, पत ख ज गथां, पत्य खैं छैं। इति इयं, जा का मारणादी, ऋध्य निर्वही, दन्भ न दन्धे, इव इति इवान्तः दिव विव प्रिवादिः । स्व-धाती वेंसर्लंडिंप अब सहयां. र द स नो स्वच्या द्रति (५०३) एषां वेसामपि सनि वेनलं नासीति ज्ञापनार्थे, तेन नेस्युइयह इति इस्निपेधे रुख्यति दुदृषति सुसूषति नन्पतीत्येव। सप्टसिच्छति सस्ज-सन्, अनेन इम् (०५१) वा भर्जादेशे दिलादि। पचे ससन इ.स. इति (६४) सस्य द, (४६) दस्य न, मिजिप इत्यस्य दिलारि। इसी विकासपची (११३) स्थादी: स-सोपे, (१५४) वह, (६०२) वस्य का अच इत्यस्य हिलाहि। श्रयितुमिच्छति इमीऽभावपचे (८०५) दीर्घ. श्रीष इत्यस दिलाहि। स्तरितं स्तर्ते वा इक्कति पनिमपचे च्हकारस दोघें, (६२८) उर, (२२८) तस दोघें, स्वर्ध इत्यस्क दिलादि । यवितुमिक्कति युद्र पद्रत्यस्य (५३०) प्रागचकार्यादिति नियमेन कादी दिले तती गुणादी युयविष प्रत्यस्य (८१६) खेवकारस्य द:। ऊर्णवितृतिक्कति ऊर्ण द्रव इत्यस (७२१) इमी डिव्लं, (५८८) उकारस उव, कर्णविष इत्यस, (७११,०२०) कं रख डिला सःविष इत्यस्य हिलाटि। इसी डिक्सविकल्पपचे गसः। अनिसपर्चे षितमसनि (८०५) दौर्घ:। भर्त्तभिष्कति, प्रनिमपचे ऋकारस्य दौर्घ:, ऋस्थाने घर. तस दीर्घ:, भूषं इत्यस्य दिलादि । दरिद्रितृतिकाति, अनेन इ.म्, (६१०) आ लोप:, दरिद्रिष इत्यस दिलादि। चनिमपचे (७०२) सन्वर्जनात्राकार लीप:। सनितु-सिच्छति (८१८) जिस्बोरिति नियमात न मुलस्य एवं। चनिमपर्च (८५५) ङा, सा स इत्यस्य दिलाटि । तनित्ति च्छति, चिनमपचे (५०) नस्यानस्य रे तंस द्रव्यस्य दिलारि । (८०४) सुर्गानमोत्यन कुरास्कावनायामेव धनिमस्नीऽगुरुत. धतएवान अगुराताभावे (६०६) न अमुखोप:। एके इति पाणिनीय-जीमरा:, तनोतेरनिम्सनि वादीर्क-मिक्कलीत्यथः (पर्वकृति: ६।४।१०)। प्रतितृतिककृति प्रिपतिषति । पाकिति: ०।२।४८. वासिक्छ।

* जुनि ज न चेपे; भी ज ग वधे, भी कि गत्यामिति दयं; मादति माल च माने, माख्र लि श्रव्दे, माङ य च, ने ङ प्रतिदाने, मे इट य तुच दति पच; दाद्रिक ८१२ | ज्ञपङीपामीयः। (जप-सध-भाषां इण,ईर्यः १ण)।
एषामच ई ईर् ई एते क्रमात् स्युः खिलोपश्चानिम्सनि।
जोमति। यहिं धिषति ईति सति। दिदिभाषति। *

८१३। दभा यौ। (दमः ६), यी १॥)।

दन्भे-रच द ई च स्यादिनिमि स्नि खिलोपश्व। धिस्ति धीस्ति अनकारिनिर्देशात्। दिदेविपति। पं

८१८। क्यो: ग्रूटावणी अस्की यङ्लुखीस्त वा। (क्वी: इ॥, परी १॥, पणी १०, अम् की १०, यङ्नुक् वी: १॥, त ११।, वा ११)।

दा-मंज्ञकः, तंत दा-न लूगी, दा त् दाने, डु दा ज लि च. दें ड पालने, दो य च्छेदे. डु धा ज लि धारणे, धे ट पानं इति सत्त , रमी ड रामस्ये ; लभी ड लामि ; सक छ् य सक न ज सकौ इति इयं ; पत लृ ज गत्या पत्यडे ख इति इयं ; पत्यों ड गती ; राध्यों सिद्धौं अव तु हिमार्थ.। एषामच इस् स्यादित्यथं:। सक धातो: स्वमते जिद्दिलात् वैनर्वेऽपि बहुशदिना प्रतं चिनम्ल। पित्यतीत्यादि, पतितृमिच्छिति पूर्वेस्वण धिनम्पचे पत स इत्यस्य दिले, चनेन स्वेलीपं, धकारस्य इम् पिस्तस इति स्थिते स्थार्थें स-लीप:। जपयितृमिच्छित ज्ञिप सन् पूर्वेण इम्, गुणारी अपयिष इत्यस्य दिलादि। पाणिनि: १०४।५४, वार्तिक्छ।

[•] ज्ञय सथ च भाप च तपां। ईय ईर् च ईय ते ईयां। ज्ञप द्यस्य प्रवः स्थाने ई, सथ: इर, भाप ई इति क्षमः। जीमतीत (८१०) मिन्पचे मने विलीप: यथ्याने ईय, (६४१) वें लीप:। भिष्तिमच्छिति स्थ सन् (९१०) मम् इति इम, मधिप द्रवस्य य स्व दिला थिप द्रवस्य दिलादि। भिन्मपे (६४) स्वस्य स्वस्य स्व दिला ता द्रवस्य दिले, भनेन विलीप:, सस्याने दर्भ। दिसित- मिच्छति दन्भ सन् (८१०) समज इति इम्। पाणिनि: १८। ४५,५८।

[†] इथ देख र्जु, ती थी। धिम्मतीत्यादि, दन्भ-धन्, (८१०) सम्ज इत्यनेन इभी ऽभावपत्ते, घन मूर्व दभ इति च-नकार्गनरेंगात् गुणसम्भावनाभावऽपि चिनिस सनि न-लीपः, ततः (१७०) दस्य ध, (६४) सस्य प, धमः इत्यस्य दित्तं, धनन खिलीपः चकारस्य इ, देच। देवितृतिच्छिति दिव छन्, सस्च इत्यनेन इवन्ततात् वा इन्। पाणिति, अधाद्धः।

क्रकार-वकारयोः प्रकारोटो स्थाताम् श्रणी जसे की च, यङ्-लुकि वे च वा स्तः । दुद्यूष्रति । * मित्सिति दित्सिति धित्सिति, रिफ्ति लिफ्ति, शिचति, पित्सिते, प्रतिरित्सिति, हिंसार्धः किं, श्रारिरात्सिति । ईसिति । पे

८१५। मुचीऽढे हे में।च वा सनि।

. (सुच: ६।, भढ़े ०।, इ: ६।, भीच ।र।, वा ।र।, सनि ०।)।

श्रदस्य मुची दे: स्थाने मीच वा स्थात् सनि । मीचते मुमुचते ।ः

^{*} क च व च कृ तियो:। श्राय कर्च तो। जम् च किय तिमान्। यङ् लुक्व व च यङ्लुस्थी तयो:। जम् प्रत्याद्वार:। क स्थानं शः, व स्थाने अर्— इति क्षमः। चणानिति पृथक्षद्करणात् यङ्लुक्ति तनसम्बन्धाभावे गुणिःन चगुणे च जसे वा मः, वकारित् यङ्लुकि चन्धव च सर्व्विधान् वकारि वा मः ; क्षिपः पृथकग्रहणात् केवलं किपी वकारि नियमिल्ययेः। द्युपतोति दिव सन्, इमीऽभाषपर्च-चनिम् सनीऽगुणले, प्रनंन वस्थाने क, यूप इत्यस्य दिलादि। पाणिनि द्राधार्थः, भाषञ्च।

[†] सम्जाशिवस्थिदा इरणान्युकानि, सिमीमा देवस्य चिद्रौ इरणाव्या इ— सिक्सिती त्यादि, मेतुं मातुं वा इच्छिति सि भी मा एतिथः सन्, चित्रम्मिन चिचः स्थाद्धे इस् सिस्म इति (६६०) सस्य त, खेलींपः। चाक्षमिपदिनान् मिक्सिते इत्येव। दातु-मिच्छिति दा-सन्, धातुमिच्छिति धा-सन्, मिक्सितवन् साध्यं। रखुमिच्छिति लक्षु-मिच्छिति रभ-लभाश्यां सन्, च्वाग्यः इस् (२११) स्थादेः सलीपः, (६४) भस्य प, रिप्स इति दिलं, खेलीपः। प्रकृमिच्छिति णक सन्, चानः स्थाने इम्, स्थादेः सलीपः, सनः सस्य (१११) चलं, शिच इत्यस्य दिलं, खिलीपः, शिचते इति च। पत्तुमिच्छिति पद सन्, इस्, स्थादेः सलीपः, पत्त इत्यस्य दिलं, खिलीपः। प्रतिराहुमिच्छिति प्रतिराध-धातुः हिंसाणः, चत्रपत्त चचः स्थाने इम् खिलीपय। चाराध धातुराराधनार्थः चत्रीन इस्किलीपौ। चार्मिन्छिति चाप सन् (८१२) चा स्थाने द्रं, द्रेस इत्यस्य दिलं, खिलीपय।

[‡] ढस्याभावी ऽहं तिखन्। भक्षमंकी सतीत्यथः। इत्ती भटत्य दित सुची विशे-षणं। भटस्य देसुनी भीच वास्यात् सनीति कथनात् सनं हिला केथलस्य सुची हिलमिति तालाय्ये। भीजुनिच्छति यटविवचायां पापात् स्वयं सुज्ञी भवितुनिच्छती-त्यर्थः, सुच-सन् श्रीदिलान्नेस, दिस्तास्य सुची मीवादेशे (२११) कुछं, (१११) पल,

८१६। जयत्योः खोर्ये।

(ज-यल्पो: ५१, ख्यो: ६१, ६ ११।, ए ७१)।

खेतवर्णस्य जकार-यल-पवर्गात् परे श्रवर्णे परे दः स्थात् सनि । ज्ञु गती, जिजावियपति । रिरावियपति, पिपावियपति विभाविष्यति । जयल्पोः किं, नुनाविष्यति । श्रतएव जो दिले वि: । *

८१७। यु सु सु दु पु सु चुङां वा।

(गु—चुङां ६॥, वा ै।१।)।

शियावयिषति श्रयावयिषति । ф

भीच इति धातुः, पचे सुसुच-धातुः। कर्म्यक नृत्वादात्मने पदं। षढे इति किं, सुसु-चिति वत्संगीपः, अव न पददयं नात्मने पदछ। पाणिनिः ७। ४। ४०।

क्ष व्यापन् प्रयातमात्। खेदः ख्युसस्य। ए इति भः शब्दात् सप्तमी। जकारात् यव र जातू पवगांच परिस्यती योऽवर्ण भिमिन् परे खेदवर्णस्य इः स्यात् भव्यविक्तसमांऽसभ्यवात् व्यविक्ति सनोव्यवंः। जुगताविति धातुपाठः। नावितिन्मित्ति जु-जि-सन् (५२०) प्रागच्कार्यादेचि विशित नियमेन जु इ ष इत्यस्य विले प्रयात् इष्ठादौ जुजाविय इति स्थिते, भनेन नकारात् परे उवर्णे परे खेदवर्णस्य इः। एवं रावियतुमिच्छिति, पावियत्मिच्छिति, भावियतुमिच्छिति वार्ययतुमिच्छिति, भावियतुमिच्छिति वार्ययतुमिच्छिति वार्ययतुमिच्छिति स्थात् वर्णे परे न स्थादिति। एवं सुवाविययति जुडावियवतीत्या-दिषु न स्थात्। जवन्तं प्रेरिरदित्यादि वाद्ये भजीजविद्यादिष्यि (६३८) खेः सन्व- इति स्थेनेन खेदवर्णस्य इः। भत्यव जो, दिले, प्रथात् विरिति प्रागच्कार्यादित्यस्य स्थरणार्थः। पाणिनिः र। । ।

† युष सुष सुष दुष पुष मुष चुङ च तेषां। यु यवणे, सु गती, ख स प्रस्ताः दुपुङ सुङ चुङ च गती, एषां सप्तानां खेरवर्णस्य द्रः स्वाद्या सनि, चय्यविद्यात् कर्मसास्थवात् वर्णद्रयव्यविदि ऽवर्णे परे इत्यर्थः। यु प्रश्वति धातुम इ-चात् जयलपोरिति नानुवर्षते। यावित्रतृतिक्किति यु जि सन् दिलादौ खेरवर्णस्य वा द्रः। एवं प्रखन्तं प्रैरिरदिति वाक्ये यु-जि टी दि, चङ्ग्यु द रत्यस्य दिलादौ, खः सन्दर्शवे, भनेन खेरकारस्य वादः सिययवत् अग्रयविद्यादि। पाचिनिः ०।४।८१। भव सुंब सुधातुनं दृष्यते।

८१८। व्युङो ऽवो हसादे: सेम: क्वाच किहा सदविदम्षस्त नित्यं।

(ब्युङ: ५।, घ-व: ५।, इसादे: ५।, सेम: ५।, क्वाच् ।२।, घ ।२।, कित् ।२।, वा ।२।, बद-विद-सुप: ५।, तु ।२।, निल्बं २।)।

हसारे: सेम उकारोङ इकारोङय वान्तवर्जात् सन् क्वाच कित्वा स्थात् रुद्धादेसु नित्यं। रुरुचिषते रुरोचिषते, लिलि-खिषति लिलेखिषति। रुदादेसु रुरुदिषति विविद्धिति सुसुषिषति। वान्तः किं, दिदेविषति। *

द्१ । जिस्तोः खेः सः पः ष्रग्यस्वित्खत्-सहः । (जिन्लोः ६॥, खेः ४॥, मः १॥, षः १॥, पणि ७॥, ष-धिद्-सद्-महः ६॥)। ृ खेः परस्य ज्ञान्त-स्तौत्योः सस्य षत्वभूते षणि षः स्थात्ं, न तु स्विद-स्वद-सहां। सुव्वापियषति तुष्टूषति। जिस्त्योः किं, सिसिचति। षणीति किं, तिष्ठासति। खेः किं,प्रतीषिषति।'ि

इति सनन-पादः।

^{*} उस इय वी, तो छड़ी यस म व्युङ तसात्। नासि व (वकारान्तः) यत्र सः भव तसात्। इकारोकारोङ्-भेग्यंवकारान्न-धातोरभावात् भव व इति दत्त्व एव। इसभादि यस तसात्। इमा सह वर्त्तभानः सेम् तस्मात्। क्वात इति चकारेग प्रकरणवन्नात् सन् श्राक्रयतं। रोचित्तिच्छति कच-सन्-इम्, भनेन सनः किन्तं गुणाभावः, कचिव इत्यस्य दिलादि। एवं गुणे रोचिव इत्यस्य दिलादि। एवं लेखितुनिच्छति।
रोदितुनिच्छति वेदितुनिच्छति मंगितुनिच्छतोति विषु नित्यं सनः किन्तः काचि
कचिवा रोचिवा इत्यादि। देवितुनिच्छतोत्यत्र वान्तवात् न किन्तः। एवं देवित्या।
पाणिनिः १।२। ५, २६।

[†] षत्नप्राप्तौ नियमीऽयं। षत्नभूते षिण खिनिमित्तकं सूलधातौ: पत्नं ज्यन्त-सौत्योरिव स्थात् नान्यसित्ययं:। ऋषत्वभूते सिन, तथा खेरन्यसात् पत्नभूते षट्यपि पूर्त्रेनियमो बलवानिति। खिद-खद-सदां ज्यन्तानासेव निषेध:। खोपयितुनिच्छति,

३य पाद:--यङन्तः ।

८२०। मूत्र सूत्र सूचाटयर्त्तुत्रर्णु हसादोकाचे। ऽशुभरचो मुझर्भृशार्थे यङ्।

(म्व--एकाचः प्रा, षश्चमक्चः प्रा, सुहुमंत्राधे ठा, यङ् ।१।) ।

एभ्यः ग्रमहत्तवर्जभ्यो यङ् स्थात् पौनः पुन्ये अतिमये चार्षे । *

 \mathbf{z} २१। गत्यर्थाद् गृ लुप सद चर जप जभ दन्श दहा वक्रगर्हे । $(\mathbf{q}, \mathbf{q}, \mathbf$

गत्यथीत् वक्रे, यादे गेर्हायां, यङ् स्थात् नतु पूर्विके, तद्युके तुस्थात् । 🕆

स्वप-नि-सन्, स्वापियम दलम् दिलं, (६४०) स्वे निं:, (१११) सनः सस्य मूलधातीय पतं। सीतुमिच्छिति मुभन्। ८०५) दीर्घः, स्वाप दलसं दिलं, उभयव पतं। सेनु-मिच्छिति सिष-सन् (२११) कुङ्, सिक्स दलस्य दिलं, (१११) सनः सस्य पतं, ज्ञान-सु-भिन्नलात् मूलस्य न पतं। एवं सुम्यतीत्वादि। स्थानुभिच्छिति स्था-धन् स्थास दलस्य दिलादी, निमित्ताभावात् सनः पत्नाभावं, एतित्रयमविष्कर्मृत्तलात्, (१११) मूलस्य पतं। प्रश्चेतुमिच्छिति प्रति-द्र-सन्, (०१८) दकारं हिला कोवलं सन एव दिलं, (६४०) खेरित्वे, सनः सस्य पत्ने, मूलधातृनिमित्तकं स्वः सस्य पत्नं स्थादिन, स्वः परस्थितमूलधालभावादंतिव्यमप्रवेशानवकामः। स्विदादेसु सिखेद्यिपती-स्थादीन पत्नं। पाणिनिः पाश्चर्र, ६२।

[।] गृत्र लुप प सद च पर च लग च अपन च दन्श च दह च तस्मात्। वक्रय

८२२। खेर्ी:। (खे: ६१, प: ११)।

यिङ परे खेर्णुः स्थात्। पुनः पुनरित्रययेन वा मूत्रयित स्रोमूत्राते, सोस्त्राते सोस्चिते। *

८२३। घी ऽनितः। (र्घः १।, भ-नितः ६।)।

अन्नकारेतः खेः षंः स्यात् यक्ति । अटाळाते अधास्यते अरा-र्थ्यते कर्णीनूयते । पे देदीयते मेमीयते जेगीयते जेहीयते पेपीयते सेषीयते तेष्ठीयते । ध

गर्डाच बक्तगर्ड तिखान्। गत्यवादिति गृलुगादिश्ति च पृथक् पदकरणं वक्तगर्डान्या यथासङ्घार्थः, तेन गत्यवात् वक्षे गाटं गर्डायामिति । न तु पूर्वोक्ते इति एन्या सुद्धर्भशार्थे न स्यात्, तदयुक्ते सुदुर्यन स्वायंन वा युक्तयो वैक्षगर्दयोत्तु स्थादित्ययः। अत्र गत्यवादिति इसाधिकाच एव, पूर्वम् से सामान्यती यहणात्। पाणिनिः इ।१।२१,२४।

^{*} पुनःपुनरित्तग्रयेन वा इत्यत्न कियाविभेषणे द्यसीया । भूतत्क प्रस्ति मूत-धातीग्रादिलात् जि: (७०५) पकारलीपे, मृतिधातो र्थेङ् (६४१) जिलीपः, मूत्रा इत्यस्य (६२२) हिलं, खेरायची लीपे, पनेन गुणे, मीम्त्रा इति (६२१) धातु-सन्नायां, यङ्गो ङिल्लादात्मनपदं घे भ्रष्, (५४२) यङीऽकारलीपः मीमूत्राते इति । एवं सूत्रत् क सीस्त्राते, स्तत् क सीस्त्राते । पाणिनिः ०।४।८२।

[†] न इत्येषां ते नितः (नीन् तुन् रीन्), न वियने निती यस सीऽनित् तस्य, खिरिव्यस विशेषणं। षटाध्यत इति, षट गती, पुन.पुनरतिश्येन वा वनं षटित, (किवलं) वनं षटतीति वा, इत्ययं घट-यङ् षध्य इति, (०१८) घनार हिला या इत्यस दिलं, खिरायच इति यकारलीपे, षनेन षकारस्य दीर्घ। एवं पुन:पुनरयाति, षश्रास्तते। प्रमःपुनर्वनं सः क्लित इयिनं वा श्रास्यते, स्र यङ् (६१५) गृणः, षयं इत्यस वक्तारं हिला, (०२०) ष-ये इति कथनात् यं इत्यस हिलं, खेरायच इति य-लीपे षर्यं इत्यस पनेन खेदीर्घः। पुन:पुनहणेति कर्ण्-यङ् (५८०) दीर्घः कर्ण्य इत्यस (०१८, ०२०) कं रस्र हिला णूप इत्यस्य दिलं, खेर्णः, रेफसम्बन्धामावात् सूचधाती-नंकारस्य इत्यलं। पाणिनिः ०४। । व ।

[💲] इसायेबाच उदाहरणाचाह पुनःपुनर्दशति दा-यङ् (६१२) डी, दीय इचस

भोश्यते शेष्वीयते, साम्मर्थते, चेक्रीयते सच्चेष्कीयते, विसे-सिच्यते, यङलान्न पः । * वक्रं व्रजति वाव्रज्यते ।

८२८। यो र लः। (गः ६६, र १११, लः १६)।

गिरते रो लः स्थात् यिङ । गिर्हतं गिरति जीगित्यते । लीलुप्यते सासयते । पं

दर्प्। की युर्जा। की युर्जा। की: दा, चः रा, वा।रा)। की: खेयु: स्यादायिकः। चीकूयते, कीकूयते। क्ष

दर्६। नीनं वन्च सन्स ध्वन्स सन्श कस पत पद स्कन्दां। (नीन ११), वन्च—कानां ६॥)। एषां खेनींन् स्वात् यङि। वनीवचते। §

दिलादि। एवं पुनःपुनमोति, गायति, महाति, पिवति, स्वति, तिष्ठति। सीस्था इति द्यो भेलस्य (१११) पत्वं।

^{*} पुनः पुनः स्वयति सि यङ् (६६८) विकलीन जिः, (५८०) दीर्घ, स्य इत्यस्य दिलादि, पचे सीय दत्यस्य दिलादि। पुनः पुनः स्वरति सृ यङ् (६१५) गुणः, स्वर्यं दत्यस्य दिलादि। कः यङ् (४८०) क्रस्थाने नी, भीय द्रत्यस्य दिलादि। सं-कः यङ् (७६६) सुम् कृते, (६१५) स्तु म् व्याभेविति नियमान न गुणः। वि-पूर्वेक सिच-यङ् विसेसिच्यते, (५०५) स्व गि-निसित्तकं खिनिसित्तकमपि घलं न स्यात्, दशस्यादेदेय दति विधानवन निवेधेऽपि तथा।

[†] गृथ निगरणे, यङ् (६२८) ऋखाने दर् भनेन र स, गिल्य इत्यस्य दिलादि। विभी गिरतेरिति कथनात् राणाते जेंगीर्थते इत्येव। गर्हितं सुमाति सोसुप्यते, गर्हितं सीदति सासयते। पाणिनिः ८।२।२०।

[†] मस्दृक्षमत्या खेरित्यस्यातुइति:। कुङ शब्दे, पुन:पुन: कावते इति कु-यङ्, (५೭०) दीर्थः, भनेन वा खेयु भादेशः। पाणिनिः ०।४।६३।

६ वन्चुगत्यां, सनसुकृङ संशे, ध्वनसुकृङ गती, भन्य य ख श्रधःपति (ताल-व्यानः, पाणिनिमत्त दन्यानः.), कस न गती, पत कृत्र गर्या, पद स्थैथें---पथी ङ

८२७। जम जप जभ दह दन्य भन्ज पर्या शपी ऽती नुन लवयस्तु वा।

(जम-श्रपः ६१, घतः ६१, तृन्।२१, च-व-यः ६१, तृ।२१, वा।२१)। चमन्तानां जपादीनाञ्च श्रदन्तस्य खेर्नुन्स्यात् यिङ, लवया-न्तस्य तुवा। जञ्जन्यते जाजायते।%

८२८ | इना वा भी | (इनः ६१, बा ११, भी ११)। जीन्नीयते जङ्गन्यते । जञ्जप्यते । चञ्चन्यते चाचन्यते, मम्मव्यते मामव्यते, दन्दयते दादयते । 🌵

गतौ इति हमं, स्कन्दिरी गिति-भोषणभी: इति । नीनी न इत् भन्ते । श्रव पत सृष्ठ गत्यामित्यस्वैव ग्रहणं, पत्य उद्देश इत्यस्य तृपापत्यते इत्येय, तेन (१११८) पापितिरिति स्वयस्य द्वादि । वक्तं वस्वति, वन्च-यङ् (५६०) न कीपे, वच्च इत्यस्य द्विते, भनेन स्वेनींन् वनौवच्यते, (८९३) नकारंच्वात् न दीर्घः । एवं सनीसस्यते, दनीध्वस्यते, वनीसस्यते, पाणिनः ९।४।८४ ।

^{*} जम् प्रत्या द्वारः । जमय जपक जभय दहय दन्यथ भन्जय प्रयथ प्रप्य कार्य क्रम्य जपक तक्स्य। भन तुनः क्षेवलं न द्वत् भने, न तु जकार द्वत्, भनो तु-रनुस्वारः, श्रम्यथा ग्रंथस्थते र्रस्यते द्रत्यादी भसपरत्वाभावात् (५०) भन्त्वारो न स्वात् । येन विधिस्तदन्तस्यित न्यायात् ल-व-य द्वति लान-वान्त-यान्तानानित्यथः। स-य-मध्यपाठात् वकारीऽच दन्यः। पुनः पुनशीयते जन-यङ् (६५५) ङा-भादेशस्य विकल्पपचे जन्य द्वत्यस्य दिलं, भनेन स्वेन्त्, (५१) भनुस्वारस्य नित्यं जम्। जीभराम् — भनुस्वारस्य दानत्वं परिकल्पा (५२) वा जम् कुर्वन्ति (तिङन्तपादस्य ५६० मृत्रे गीयीचन्द्रः)। नकारित्वात् (८२३) खं ने दीर्षः। जन-स्थाने (६५५) ङा-भादेशपचे जाजायते द्वति। एतत्स्वीदाहरसाम्र भादौ ङाभावपची दर्श्वतः। पाणिनः ०।४।८५,८६। भन्न श्रम्यातृनं हस्यते।

[†] इन-धातः भी स्वाहायिकः । फुनःपुनर्शनः इनयङ्, भीय इत्यस्य हिलादि । विकत्यपचे इत्य इत्यस्य हिले, पूर्वेण खेन्न, (६०६) खेः परस्य इस्य घः । गहितं कपिन जञ्जस्यते । एव जञ्जस्यते, दन्दस्यते, दन्दस्यते बम्बस्यते, पन्पस्यते भंभस्यते । वकं चलति, पुनःपुनर्मवति, वकं टयते, एतेषु पूर्वेण वानुन् । तुन्पचे खेनं दीर्घः । "इन्वेहिसायां यक्षि भीभावी वाचाः" इति वार्त्तिकाम् ।

८२८। चरफलोरुचोङी न णुः।

(चर-फली: ६॥, छत्।१।, घ ।१।, छङ: ६।, न ।१।, छ: १।)।

चरफतोः खेर्नुन् स्थात् उक उकारस यक्ति, तस्य चन णः। चच्चर्यते पम्मुत्यते। *

८३०। रीनृत्वतः। (रोन्।११, चततः ६१)।

ऋकारवतो धो: खे: रीन् स्थात् यङि । नरी द्रत्यते । 🅆

८३१ | व्येखपखमो ज़ि: | (वी-खप-सम: ६।, नि: १।)।

एषां जि: स्यात् यङि । विवीयते सीषुष्यते सेसिम्यते । \$

८३२। नवगः। (न।१।, वमः ६।)।

वष्टे जिने स्थात् यङि। वावश्यते। §

[•] खेर्नुन् इति , अनुवर्त्तते, खेरुङोऽभावान् मूलधातीरङ उकारय। यङ्कु । प्रसक्तस्य गुषस्य निषेधार्ये न स्परियुक्तं। वक्तं चरति चर्यं इत्यस्य दिले खेर्नुन्, मूर्धाती रङ उकार: (२२८) तस्य दीर्दः। पुनःपुनः फलति पम्सुल्यते। पाणिनि । । । ८०,८८।

[†] स्ट्रेन् वियते यस्य साम्यतान् तस्य । म्हकारवत द्रत्यनेन यदा स्टकारस्थिति तदेव खि: रीन् स्थादित्ययं:, तेन चिकीयते द्रत्यादी (४६०) म्हकारस्य रीभावे न रीन्, यक्ष्मुक्ति तु चरीकर्त्तात्यादी सादेव । एवं ग्रह-प्रच्छ-त्रयादीनां (६६१) जी क्रं म्हकारवच्चात् रीन् स्थात्, तेन जरीयद्यते परीष्टच्छाते वरीव्यते द्रत्यादि । पुन:पुन कृत्यति दृत-यङ् त्रत्य द्रत्यस्य दिले खं: रीन्, चुम्रादिलान् प्रलाभाव: । एवं दरीहस्यते द्रत्यादि । पाणिनि: ७।४।८०, वार्षिकच ।

^{‡ (}६६१) खपादे: किति निरिति नियमारप्राप्ती विधिरवं। धनिष्टलात् खे रिलस्य नातुइत्ति:। व्ये को इती, खप घलु श्यने, स्मृतु ध्वाने, पुनःपुनर्श्ययेतीव्यिति वाक्यानि । व्ये यक्तु, धनेन जिः, (५८०) दोर्घः, वौय इत्यस्य हिलादि । स्वप-यह जिः सुष्य इत्यस्य हिलादि, (१११) पतं। स्यम यक् जिः विषय इत्यस्य हिलादि पाचिनि: ६।१।१८।

[§] यहादिंखात् पाप्तौ निषेष: । वश ख कान्तौ, पुन्:पुन वंटि । पाणिनि: ६।१।२०

८३३। चाय: की। (वाय: ६१, की ।१।)।

चायते: की स्थात् यङि । चेकीयते । क्ष

८३८। घाध्मा ङी। (घाषी: 🕫, डी।१।)।

जेघीयते देधीयते । १

८३५। ग्रीडो इय येऽणौ।

(भीडः: ६।, ङय्।१।, यं ०।, भणी ०।)

ग्रागयते । 🕸

यङ्लुगन्तः।

८३६। यङो लुग्वापा लुक् पं दि ग्वीदि च धूक्तन्तु वाऽनि तु नित्यं नातः।

(यक्ष: ६), लुक् १२), वा १२), भवः ६), लुक् १२), पं ११, विः ११, खादि ११, व १२), पृक्षं ११, तु १२), वा १२), भिन्न २०, तु १२), निन्दे ११, निर्दे ११, जतः ५१)। यक्षो लुक् स्यादा, लुकि सित अपो लुक् पं दिलं खेर्णु रिल्मादि कार्याच स्थात्, ध्रयहणोक्षन्तु वा स्थात्, श्रनितु नित्यं लुक् स्यात्, उदन्तास्विन न स्थात्। §

पाणिनि: ६।१।२१ ।

⁺ उदी इत्यस्य उद्भात् भन्यस्य स्थाने । पुन:पुन जिम्नति, पुन:पुनर्धमतीति वाक्ये । पाचिनि: ७।४।३१ ।

[‡] भी धातो र्क्यसात् भयो थे, डिक्तादत्त्यस्य स्थाने, भय-स्थितिः। भयो ये इति कथनात् कर्मायि वाच्ये यक् भ्रय्यते, क्वाचः स्थाने यप् संश्रयः, काप् श्रया इति । पुनःपुनः भेते, भी-यङ्, उत्युश्य इत्यस्य दिलादि । पाणिनः ७।४।२२ ।

^{\$} यक्षी लुक्-करणेन खलींगे त्यलचगमिति न्यायप्राप्त कार्यस्य लुकिन तनित निषेषात् (४८०) यङ्ग्रकी चर्दीति, (६१५) स्याद्यस्तृती जुरिति, (४६०) इसङ्नी-

बीभवीति बीभीति, बीभूतः बीभुवति। अबीभवीत् अबीभीत् अबीभूतां अबीभुवन्, अबीभूत् अबीभुवीत्, बीभु-वाचकार। *

वनीवचीति वनीवङ्क्ति, वनीवकः, वनीवचित । जङ्ग्मीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गमितः, जङ्ग्मीमि जङ्गन्मि, जङ्गन्यः, जङ्ग्मः। जङ्गनीति जङ्गन्ति, जङ्गतः, जङ्ग्मिति जङ्गनित जङ्गनित

लोप इत्यादीनि न स्युः, यङ नतंन विहितं कार्थं स्यादेव, तेन घातुमं ज्ञा स्थानाम् च स्यात् । खादि-कार्यस्य यङि परे विहितस्य लुकि न तचित निषेधादमाप्तौ वचनं । धुग्रहणीक्तमिति, यच कचित् स्वं धातुविश्रेषग्रहणपूर्वकं यत् कार्यमुक्तं तदवा स्यादिति । चिन तु इति (८.९३) पचादिलादिन क्रते तसान् परे नियंयङो लुक् स्यात्, इस्सीदन्तधातीमु चनि परे न लुक्सात् । पाणिनिः २।४।०४, भाष्यच ।

तिपा ग्रपान् व सेन निर्द्धिं यत् गणेन च। यमका च्यहणं कि चित् पर्चेतानि न यङ लुकि। ज्ञाचार्या यङ लुको च्छित् में ट्रक्त मिन्टिमिष्॥ इति प्राचीनव चन-मिष् स्थापेयं। (६८६) वेति रिवादी तिषा निर्द्धिलात्, (५०६) स्वर इति प्रपा, (७१०) श्रीङ इति चन्वसेन, (६८५) कद्वा इत्यादी गणेन, (५०६) एकाची वक्त व्यवात्, तत्तन् कार्थन स्थादिति। ज्ञानेटां सेट्क्तं (८४१) विभिदिता इत्यादी।

्कं पुन:पुनभविति यङ् लुकि, भू-यङ तस्य लुक, हित्तं खे गुँण:, वीभ् इत्यस्य धातु-संज्ञायां तिप् प्राप् तस्य लुक, (०२२) ईस, गुण:, वीभवीति । ईभी विकत्यपचे गुण:, बीभीति । एवं सन्वंच । वीभू-तम्, ङिच्चात् न गुण: । मन्ति (६८०) भ्रन्-स्थाने भत्, (५८८) खव, वीभुवति । घी-दिप् (७२२) ईस वा, भ्रवीभवीत, भ्रवीभीत्, धी-तां भ्रवीभूतां, धी-भन्, (५६३) भूवर्जनात् न छम्, (५८८) छव, भ्रवीभवन् । टी-दि (५५२) ध्रष्ठणोज्ञात्वात् वा सिचीप: भ्रवीभृत्, पचे भ्रवांभुवीत्, (८४१) भरे गुणनिवे-धात् उव् । ठी षप् (५८२) त्यानादान् छव्, ततः (५८२) क्रप्रयोग: ।

† वन्च यङ्क्कं, दिलादि, (८२६) खे नींन् वनीवच धारोसिए, ईम्। ईमी विकल्पपंचे (२११) कुङ्, (४०,४१) नस्यातुस्वारे भतुस्वारस्य ङ्। तस्, (४६७) म- खीप:। मन्ति, (६६७) धनस्याने भत्, न- खीप:। गम-यङ्कुक् (८२०) खे नुन् कङ्गभधातुः, ततस्यि वा ईम्। पचे मस्यातुस्वारे तस्य न। तस् (६०६) अम्लीपः। भिन्ति (२३०) ध्यह्णीक्षत्वात् वा उङ्खीपः, जन्त भत्। मिप्ईम् वा, पचे (२०२) गमी म-स्थाने न। वस् मस् उभयव मस्थाने न। इन-यङ्कुक् गमवत्, भिषक्ति (६०६) इस्र घ।

चशुरीति चश्चिति । चाखातः चङ्कतः, चङ्ख्निति चङ्कति । निता । जाजातः जञ्जन्तः जज्ज्ञिति जञ्जनित । देदिवीति देदोति, देयूतः देदितः, देयूवः देदिवः । वेविच्छीति वेवेष्टि, वेविष्यः वेविच्छः । *

८३७। हाक: खेर्न घं:। (इति हा, से हा,न । १।, घं: १।)। जहित जहाति। १

८३८। दन्शो न-लोपो वा।

(दन्मः ६।, न-लोपः १।, वा ११।)।

दन्दगीति दन्दंगीति दन्दष्टि दन्दंष्टि । 🕸

८३६। जिनेवा। (जि: ११, न ।११, वा ।१),।

क चर यङ लुक् (८२८) खे नुंन एङ छकारय, तेनेव गुणानियेघः, ईनीऽभावपचे (२२८) छकारस्य दीर्घः। खन-यङ लुक्, तम् (६५५) धृक्षवान वा छादेथे, जमन्तवाभावान् खेनेनुन्, (८२३) दीर्घः। पचे जमन्तवान् खंनेनु । चित्र (२००) वा उङ लीपः, जम्म चन्। धागमादेशयीर्मच्ये विधीयानागमी विधितित न्यायात् तिप् सिप् प्रस्तिषु घादौ (०२२) ईमि ङादेशाभावे चक्षनीति चङ खनीत्यादि. ईमी-विकत्यपचेऽपि पिति भासे परं निष्धान् न ङा इति बीध्यं। जन-यङ लुक् खनवत्। दिव-यङ लुक् दिव घातुः तिपि देदिनीति(०३४) निषधान् न गुणः। ईमी विकत्यपचे (८४४) वस्त्राने जट्, तस्य गुणः। जटी विकत्यपचे (६४२) वस्त्रीपः, तती गुणः। तम् वस् उभयच वा उद्, पचे वस्त्रीपद्य। विकत्यु विक्तः विक्र विक्र विकर्ण वा, त्रिष्, ईमी वक्तस्त्रपचे (८४४) इस्त्र वा उद्, पचे वस्त्रीपद्य। विक्र वङ्ग लुक् विविक्तः वातुः, तिप्, ईमी वक्तस्त्रपचे (८४४) इस्त्र धः, गुणः, (१५४४) षङ्। वस्, वा इस्य धः।

[†] हाकथातो: खें: घीं न स्थात् वा यङ्लुकि । (८२२) घींऽनित इति प्राप्त-दीर्घस्य निषेधोऽयं । जहिति (०२२) ईम्, सन्धिः । सिद्धान्तकौसुदीमते तु न दीर्घनिषेधः, तेन जाहिति जाहाति इति ।

[‡] दन्य-धाती र्नकारस्य खीप: स्वादा यङ्ल्कि । दन्दग्रीतीति द्रेनपचे वा नकारखीप:, श्रनीभपचेऽपि वा नकारखीप:। (८२०) खंनुन, श्रनिनपचे (१५४) षङ्, (४०) तस्याने ट। पाणिनिः ०।२।८६, श्रव मुत्रे नित्यम्।

सास्वपीति सोषुपीति समस्यिध सोषोति।

८४०। रीना रिनरनी वा।

(रीन: ६।, रिन्-रनी १॥, वा ।१।)।

रीन: स्थाने रिन्रनी वा स्तः यङ्तुिक । चरिकरीति चर्कारीति चरीकरीति चरिकत्तिं चर्के क्तिं चरी-कर्त्ति । १

८४१। यङ्लुक्कालापे ऽरेन गुनी।

(यङल्क-कार्लापे था, गरे था, न ।१।, णु-त्री १॥)।

विभिद्ता मर्मृजिता। अरे किं, वेभेत्ति मर्मार्ष्टि। इ

इति यङन पादः।

च यङ् निसित्तक एव जि नं स्यात् वायङ् लुकि, नेन (८३१) श्रेस्वप्स्यभी जिस्ति स्थैन निषेष: । जिवेति क्राते जिमानस्थैन निकल्यो स्थ्यते । वस्तुतन् (६६१) यहारे जिनिस्सित । सीष्पीति स्थापित स्थापति निक्ष्यते जिः प्यात् दिलादि । सीष्पी तीत्यव (७३४) गुणनिषेष: । एवं प्ये—वाश्येति वेवशीति वाल्याति वेवति । स्थ्य-संस्थानीति संस्थिति संस्थानि सेसेन्ति । पाणिनिसते निल्यम् ।

[†] स्वलात् चलाभावः। अव वा-यहणं परव निबस्य । रौनः स्थाने इति रौन उत्यक्तिस्थाने इत्यर्थः, अन्यथा निस्तात् रौनोऽन्तं रिन्रन्प्रमितः स्थात्। रनोऽकार उदारणार्थः। क्र यङ्क्ष्, इस्पर्चे रिन्रन्रौन्, अनौस्पर्येऽपि रिन्रन्रौन्, अतएव षट् पदानि । एवं वत—वरिव्रतीति यहंगोति वरीव्रतीति वरिवर्त्तं बर्व्वर्त्तं वरीवर्त्तं इत्यादि । स्टधानीम् परियरीति अररीति परियर्त्तं भर्त्तां, अव (५०५) असमानवर्षे परेस्वेरिय । पाणिनिः ९।४।८१,८२।

[‡] यङ्कुक् च काभीपय तत्तिका । यङीकुिक कालीपे च सित घरे साती न स्थाता। पुन:पुनरितथिन न भेता विभिद्दिता, विभिद्दः हो ता (५५४) इ.स., भनेन गुप-निषेष:। पुन:पुनर्गार्जिता मर्स जिता, पूर्वमृत्तेच खी: रन्, मर्स जन्ही ता, इ.स., (६८४) स्लोऽकिङ तील्यनेन प्राप्ती भनेन इहिनिषेष:। का-लीपे तु (८४५) सनिधिता इत्यादि। जीमरासु यङ्कुगत्तिथो जी कते विकल्पन विक्षं कुर्व्वनि, बीभावयित बीभुवयतीलादि (संविष्तसारे तिङ्क्तपारे ४६० मृत्रे)। पाषिनि: १।१।४।

४र्थ **पादः**— लिधुः ।

-9000000

८४२। ले: काम्यक खेच्छायां।

(ले: ५।, काम्यक्।२।, स्त्रच्छायां ७।)।

ले: परः काम्यक् स्थात् त्रात्मेच्छायां। त्रात्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रकाम्यति। अ

८४३। क्योऽस्यार् यस।

(क्यः १।, भग्वप्रात् ४।, ई.।१।, भः १।, च ।१।)।

मान्त-व्य-वर्जात् ले: क्यः स्यात् खेच्छायां,तिसिन्नवर्णे ई स्थात्। क्षेत्रानीयति । (४२३) श्रोदीताऽज्वदिति। गत्यति नाव्यति । (४८०) यङ खक्ये इति । कर्नीयति । (२५८) क्यां खेने च गार्गीयति । क्षे

अ स्वयं दक्कायाः कर्मभूतं यिश्वः थिद असमसाहिशेषणात् आत्मास्त्र-स्विधि-पदाहा उत्तरवर्ति न स्थात् तदा तस्मात् कायक् स्थादियणः, तन सहात्त पुत्रसिकति ह्यादी न स्थात् , समास तु सहापुत्रसिक्कित राजप्त्रसिक्कित ह्यादी न स्थाद् । स्थाद्वित । कायकः किक्वात् आत्मनी मृत्तिमिक्कित स्वित्तकायतीत्यादी न गुणः। स्थानः पुत्रसिक्कितीति वाय्यवियासात् हितीयान्तात् लिखितं वांध्यं, तन आत्मनः पुत्र द्रध्यते इत्यत्न न स्थादिति। पुत्रकाय्यतीति पुत्रसिति हितीयान्तात् कायक, (११८) क्षेत्रक् वे चिति स्थे परे क्षेत्रक्ति, पुत्रकाय्य इति (६३१) घातुसक्रायां, तिप्-मपौ, (५४३) स्वारक्षीप्रः। पाणिनः ११।६।

[†] सच व्याच न्यां, नासि म्बं। यत्र भोऽस्वासस्यात्। सकारानं चत्रयस्य हिला चन्यस्यात् लिङ्गादिल्ययः। चत्र चकारिण काम्यक् च स्थादिति स्वितं। तेन चर्ल्यस्यात् लिङ्गात् काः काम्यक् च स्थात्, भकारानाटव्ययास्य कीवलं काम्यर्गविति निकार्यः। कास्यकः इन् समुखायः, यर्नस्थितिः। पाणिनिः श्रापः, ०,४।४,३, वार्सिकसः।

[‡] भावानी भागनिकात भाननित्यसात् काः,निधान् पर अकारस्थ है, भानीय होत

८८८ । न-लाप: क्यडेंत्र । (न-लोप: १।, का-डेग्र ०)।

राजीयति।

८४५। इसात्तयोर्वारे।

(इसात् प्रा, तयी: ६॥, वा ।१।, पर ७।)।

हसात् पूरयीः वय-ङायोत्तीपः , स्यादा अते। समिधिता समिज्यिता। के अस्पात् किं, किंकास्यति स्रःकास्यति । क्ष

धातः । एवं पुत्रीयतीत्वादि । पूर्वम् तेण ज्ञानकास्वतीत्वि । भवणं सः ई.कयनात् कन्यानिच्छति, कन्यीयति ज्ञानकार्यः ई । कन्याकास्यतीति च पूर्वम् तेण । गानिच्छति गव्यति, ज्ञाविच्छति नाव्यति, ज्ञस्यत्र कास्य भच्छत्वात् (३५) क्रमेण भव् आव् । 'ज्ञातानः कत्तीर निच्छति, च्रम्याने री,। एव धात्रीयति । गर्गस्यापत्यं गार्यः गर्गस्यत्व् एयः, ततः गार्यः निच्छति, च्रम्याने री,। एव धात्रीयति । गर्गस्यापत्यं गार्यः गर्गस्यस्त् एयः, ततः गार्यः निच्छति, च्रमे परि णार्योपः, अकार ईष ।

नालस्य से नंकारस्य लुपि क्रिते (१५) तदादिविधि नं स्वादित्यती सोपिध्यानं ।

एशत क्याधी: मलां: विरामितिहितं किमिप कार्थं न स्वादिल्यानुस्सेधं, तैन विद्यां मिन्किति विद्याति अन न (१०६) दङ्। लिहमिन्किति विद्याति अन न (१०६) इस्य छ। वापिनिक्किति वाचिति अन न (१०६) इस्य छ। वापिनिक्किति वाचिति अन न (२०१) कुङ्। पुमां मिन्किति प्रति अन न (१०६) स्वान्ति प्रान्ति प्रति अन न (१०६) विस्ताः। निर्दिक्किति अनुरिक्किति सर्पेष्यिति धनुष्यित इत्यादौ न (२०२) विस्ताः। मिपिरिक्किति अनुरिक्किति सर्पेष्यिति धनुष्यित इत्यादौ न (२२०) रङ्। गिरिक्कित गौर्यिति प्रतिकिति पृथ्यिति इत्यादौ न विरामिविहितला-भावात् (२२०) इकी दीर्घः। पाणिनिः हाराठ।

राजानमिक्कति पूर्वम्वण काः, अनेन न लोपः, ततः पूर्वेण श्रकारस्य ईः।

† विभाक्तिविधरिणार्मन का-छायीरनृशक्ति:। समिधर्मष्टा द्वित बाकी काः, समिव्य धातुः, डी-ता, (५५४) द्वम्, अनेन वा कालीपः। एवं दृषदमेष्टा दृषदिता दृषद्विता। इसात् किं, धानीथिताः अरे किं, समिव्यति। पाणिनिः ६।॥५०।

্রে (০৪২) वर्गोऽस्थादियस प्रत्युदाहरणमाह- किमिक्ति स्वरिक्ति, उभयव पूर्वेण कास्यकाः एवं उधिकास्यतीत्यादि।

८४६। धनोदकाशन-ष्टषाख्रले ग्रन्हपानान्त-जाभार्थे ङा डनङ ङा सन् सनसनौ क्ये न ष:।

(धन—ली: ६।, यह— अर्थे था, उत्तारा, उनङ्गरा, उत्तारा, सन्।रा, सन्-अपनी रा, की था, नारा, घ: रा)।

धनस्य ग्रहणे ङा, उदकस्य पाने डनङ्, ग्रग्ननस्य श्रवे ङा, द्वषाख्यीर्जाभे सन्, लेरर्थे काम्ये सन् ग्रसन् च स्थान्, की— सः षो न स्थात्। ॥

धनायति उदन्यति श्रमनायति वपस्यति श्रम्भस्यति, दिध-स्यति दध्यस्यति। ग्रहादौ किं, धनीयति। १

[•] अषय अयय अष्ठायं, धनस उदक्ष अधन च उपायच विविति तस्य । यहस्य पानच अत्रच (भन्षां) जाभस अपंत्र तत्तिमान् । सन् च असन् च सनसनी । धनप्रव्यस्य गृहणे कास्ये ङा, ङा त अत्यस्य स्थानं, उदकस्य पाने कास्यं इनङ्, डडी, इतौ
अन स्थितिः, अधनस्य भन्षणे कास्ये ङा, वपायधी जांभे कास्ये मन्, न इत् अन्ते,
जाभी भैयुनं, एतिइत- जिङ्गस्य अर्थे कास्ये भन् असन् च स्थान्, क्ये परे इति सर्वेच
योजनीयं । क्ये परे इति कथनात् इच्छापापी, पुनर्वतो कास्ये इति कथनात् अतिस्णायामित्यर्षो बोध्यः । सः षो न स्थादिति एतन् भनादेशस्येव, तेन धिष्पांति
सर्वियतीत्यादौ पतं स्थादेव । सर्वेच कर्माकारकादेव स्थादिति । पाणिनिः अधि ३४,
७।१।५१, वार्त्तिकं काथिका च ।

[†] घनं ग्रहीत्मिक्कित धनायित ङा, घनगन्दस्थायंमङ्गीषनं प्राधीनानां मतं, तेन वस्तं घनायतीत्यादिप्रयोगः। उदकं पातृमिक्कित उनङ, डिक्तात् उदक्ष्यस्य प्रवाद स्वात् उदक्ष्यस्य प्रवाद स्वात् उदक्ष्यस्य (१२६) टि: प्रक्षागस्य नीपः, उदस्य प्रवादः। प्राप्तं (प्रवादः) भोजुनिक्कित ङा, प्रवादि प्रयंग्यं प्रयंगास्य नीपः, उक्कितः। इत्यं प्रयोगः। वधीऽव ग्रक्षलः पुरुषः, वयं प्रयंगाः। वधि दक्कित सन् प्रकातः, प्रवाद प्रयोगः। वधि दक्कित सन् प्रमन् च, न प्रवां। प्रवं विषय विषयतीय्ये प्रयोगः। वधि दक्कित सन् प्रमन् च, न प्रवां। प्रवं विषयति क्षय्यति क्षयात् वै प्रयंगदः। नेन दध्यस्यति तक्षं दित न स्वात्। एवं वीरस्यति क्षयणस्यतीत्यादि। प्रादी दिधिणव्दी-दाइर्थेन प्रकारान्तिमञ्जस्य विद्वस्थिति क्षित्वः। प्रतिव्णाया किं, दधीयतीत्यादि। यहणादी किं, (भविष्यतीति भवः), धननिक्वित धनीयित, एवं उदकीयित, प्रयन्तैन्यति, वधीयिति, प्रयन्तिन्यति, वधीयिति, वधीयिति, वधीयिति, विष्ठिति विष्ठिति विष्ठाः।

८४७। ढडोपमानादाचारे काः।

(ढ-डीपमानात् ५), फाचारे ७।, का: १।)।

ढात् डाचे।पमानात् क्यः स्यादाचारेऽर्घे । शिवमिवाचरति शिवीयति विण्ं, विण्याविवाचरति विण्ययति शिवे । *

८८८ | भान्ड प्रकी सलोपश्च वा गल्भ-क्रीव-होटात्तु मं । (धान्धा, डप्रकी १७, च-कीपः ११, च ११।, वा, ११, गल्भ-कीव-होटात् धा. तु ११, मं १।)।

घादुपमानादाचारिऽयें इत्र की स्तः, मस्य च वा लोपः, गल्भा-देसु काविष मं। क्षण द्रवाचरित क्षणायते क्षणिति, स्वायते स्वति, स्वामास (५८२) त्यान्तवादाम्। पयायते पयस्यते। गल्भायते गल्भते। पं

[•] टघ डच टडं टडच तर्पमानचिति टडोपमानं तस्थात्। उपभाननाचकात् कर्ममद्राद्धिकरणपदाच का. स्थात् पाचारेऽयें। विष्णं गिर्वामव श्राचरित् शिवं विषो दिव श्राचरित् उपथे का. (८४३) श्रकारस्य द्रं, विष्ण्यतीत्व (५८०) दीवं:। कास्यक्पस्थौनां कित्करणात् धात्विद्धितं कार्यं लिधी श्रिप स्थादिति यात्रं। पाधिकरणपपमानस्य क्येपरं न-लीपो न स्थादिति वक्तव्यं, तेन् राजनिद्धवाचरित राजनित गुरी। राजानिमवाचरतीत्वच राज्ञंथतीत्वेव। चौरीदौयन्तीत्वादि पदम् भान्यानं चौरीदिमवाचरनीत्वादि वाक्ये कम्योपमानात् क्ये साध्यं। पाणिनि. ३।१।१०, वार्तिकच।

[†] किचिदेकदेशस्थिति न्यायात् खपमानादित्यतुद्वस्य, सममस्याममस्तेन मित्याकाङ्-भेण भङ्गतिरिति न्यायात् घाटिस्थिनेन सम्बन्धः। द्वी क्रतं डिल्वादास्थिनेपदः का क्रतंऽपि गल्भादेरात्यनेपदं विधीयतं । क्रणायते इति (५८०) घाँऽज्य्यरं इति दौषः। एव इरीयते विष्ण्यते। (४८०) पिचीयते। (४२३) गव्यते नाव्यते। (५५८) गार्गा-यते। (५४४) राजायते दण्डीयते। (३२०) विद्यीवाचरति विदस्यते, सतीवाच-रति मत्यते, मृत्दरीवाचरित मृत्दरायते, ग्रुनीवाचरति स्वायते इति। क्रण्यतीति किः, क दन् भगुषः इकार उचारणार्थः, ततः (४८६) वकारमात्र प्रथस्य

८४६। समादे स्त्रार्धे वा त-स-लोपस्र।

(स्वादे: प्रा, चूर्ये अ, वा ११, त-स-लीप: १।, च ११।)।

स्यादे युग्धें ङा-की वा स्तः, तिसान् तःस-लोपय। स्यायते स्याति स्यीभवति। चेतायते प्रवायते वेहायते। *

८५०। डाज् लोहितादे: पञ्च।

(डाच लीहितार्ट: ५१, पं ११, च ११।) ।

डाजन्तात् लोहितादेश च्युर्थे ङाकी वास्तः पञ्च। पटपटा-यते पटपटायति पटपटाति पटपटास्थात्। लोहितायते

स्वीपः। तदल्यत्वेन क्रणा इति (६६१) धात्मंज्ञा, तिप् अप्, (५४३) अकारस्वीपः। एवं इति-रिवाचरित क्षि. इरयति, एवं विश्ववित पितरतीयादि। स्वं इवाचरित स्वाः स्वायते, क्षिः स्वति । स्व इवाचराति क्षिः (५८२) स्वामासः। पय इवाचरित क्षः: , वा सस्वीपयः भोजायते अपरायते दुर्भानायते एतेषु नित्य सस्वोषो वज्ञस्यः। गल्भ इवाचरित द्यः क्षियं, उभयनात्मनेपदं। एवं क्षीवायते क्षीवते, इंदियते होदते। गल्भीऽहदारी, क्षीवी नपुंसकः, होदं स्वीप्वं। पाणिनिः १९१११, वार्तिकःसः।

* स्य पादि यस स तमात्। चे र्षयार्थः अस्ततहातः तिमान्। तथ सय तौ तयां लापः तमलीपः। इतो तिमान् इति उद्ये को च परंत स लापा नित्य इत्ययः। अस्यो स्था स्वति चः स्थायते, किः स्याति, पचे (४८५) चिः स्थाभविति। एवं अचेतयेतो भवित चेतायते उः, मलीपः, (५८०) दौषः। किः चेति, पचे चेतीभवित अव (४८८) सलीपः। अग्रयत् ग्रयत् भवित ब्र-की, श्रयायते श्रयति, चस्यच तलीपः, पचं श्रयहवित। एवं अने इत् सवित वेहायते वेहिति वेह-इवित (वेहत् गर्भोपघातिनो गीः)। स्थादिय—स्या श्रीग्र चपल वहद्रय पष्टित प्रतीप चत्सक यचि वेहत् ग्रयत् जनानम् समनम् दुर्मानम् चिम्ममन् चीत्रस् तिनम् रहस् स्रजम् वर्मम्, डाच्प्रव्यान्, लीहित धर्मं हित्त नील मन्द फीन भद्र सल वर्मन् निद्रा कपा कर्षण इति दाविश्वत्। च निद्राविश्वदो धर्मावचनीऽपि शन्दशक्तिस्रभावात् धर्मावचन एव, तेन निद्रायते जनः चित्रावान् निद्रावान् भवतीत्यथः। पाणिनः लोहितायति लोहितति लोहितीस्यात, धर्मायते धर्मीयति धर्माति धर्मीस्थात । *

८५१। शन्दसुखकष्टादेः क्रतिवेदपापे ङाः।

(शक्ट सख-कष्टादे: प्रा. क्रांति-वेद-पापे ७), ङा: १।) ।

ग्रव्हादे: कती सुखादेरनुभवे कष्टादे: पापार्थे प्रवृत्तिरित्य-सिवर्धे ङाः स्थात। ग्रन्दं करोति ग्रन्दायते, वैरायते। सुखमनुभवति सुखायते, दुःखायते। कष्टं कर्मं करोति कष्टायते । 🕆

८५२। वाष्पोष्मफेनधूमादुद्दाक्तौ। (वाष-धूमात् धा, खदानो ७)।

वाष्पायते उषायते फेनायते धूमायते । 🕸

यदापि (५०१) सम्पदाति क्राम्निष परिष डाच विहित-क्तथापि अत्र डाजन्तात द्यक्तिविधानसासर्थात द्य-कि-विवयेऽपि डाव स्थादिति वक्तव्यं। पश्चेति चकारेण किल्वात प्राप्तनात्मनेपदमपि स्थादिति मुचितं। अपटत् पटत् स्थात् इति वाक्ये ञ्चिषये डाचि डिभावादी पटपटा इति डाजलान् डा भातानेपटं परसौपद्ख, कि: पटपटाति, विकल्पपर्च चिं। एवं घर्लाहिती सौहिती भवति, श्रधर्मी धर्मी भवति। ली दिनादिय-स्मादिभेषा लो हिनादवी दादम । पाणिनि: ३।१।१३,१।३।८० ।

[🕇] भ्रब्दय सुख्य कष्ट्य तत् भादि यस्य तस्मात् । क्रतिय बेदय पापच तस्मिन । बेट इति विद ल जाने इत्यस्य चलि रूपं। पापार्थे पापजनक कर्माणि । कप्ट कर्म करोति कष्टभनकः कर्ष्यं कर्त्तं प्रवर्त्तते इत्यर्थः । श्रव्हादिः — श्रव्ह वैर प्रतीपाभः कन्द-भी हारदृष्टिना:, काल ह: मुदिनं भेघ: कोटा ऋहा ऋटा तथा, मीका भीटा च पीटा च मुष्टा भ्रन्दादिरीरित:। सुखादिय-सुखं दु:खञ्च त्रप्तच क्रपण: करूणस्वा, प्रतीपा-लीकसोढ़ासः क्रक्रांशाया: सुखादय:। कष्टादिय— कष्टच मन्त्री ग**इनच कव:** क्रक्रच क्षष्टादिष् पञ्च शब्दाः । पाणिनिः ३।१।१४,१७,१८।

[‡] एम्यी डा: स्वादुदानी जर्डनि:सारणे इत्यर्थ:। पाणिनि: शशार्द, वार्त्तिक्छ।

८५३। रोमन्याच्चलेगे। (रोमयात्या, पर्लणेण)। रोमन्यायते गी:। *

८५४। नमस्तपोवरिव:कार्डादिभ्य: क्या: खतौ।

नमस्तरोति नमस्रति, तपस्यति वरिवस्यति, वाख्र्यति काख्र्-यते. चित्रीयते. महीयते. हृणीयते । गं

टपूर्म ने: क्रलाख्याने जि:।

(ले: ५।, क्रति-पाच्याने ०।, जि: १।)।

ते: परो जि: स्यात् कतावाख्याने च। प्रश्नं करोति श्राचष्टे वा प्रश्नयति, जड़यति श्रीडिटत्। श्रीजिटदित्येते। (४६८) लुङ् मददिनामिति। ईसमन्तमाचष्टे ईययति। सुखन्तमाचष्टे सुचयति। स्रिवनमाचष्टे स्रजयति। क्षं

पूर्वमादुहानौ इत्यसायनुवर्त्तनम् वीध्यं, तेन एदगीर्य-चर्त्रणे पर्ये रोमत्यात्
 स्वाहित्यर्थः । रोमत्यायते उदगीर्थं चर्व्यतीत्ययं: । पाणिनिः शशास्त्र।

[†] नसस् च तपस् च वित्वस् च काख्वादिय तेथाः। एयाः काः स्थात् कर्तौ भर्षे । वित्वसम्बन्धने स्वा उच्यते । काख्वादिगणमध्ये काख्रुम्बदस्य आनुकस्थेन, चित्रौ मही हृणी मब्दानां ज्ञानुकस्थेन स्, (काम्ययेऽपि) यद्यासम्भवं समयपदं भागसनिपद्य । काख्वादिय — काख्वादिय — काख्वादिय — काख्वादिय — काख्वा काल्वा काल

[‡] भनुब्रमाविप क्रताविति कथनं स्पष्टार्थ। लेशित कथनात् दानकार्थे न स्वादिति, तेन लचयतीत्वादी न (२११) कुल्। ज इत् उभयपदं। प्रश्नयतीत्वादि, प्रश्ने जि (४६०) डिल्वात् (१२६) टिलीपे प्रश्नि इति (६३१) घानुसंचा। वद्मधातीः

द्र्ध् । ख्रोताखाखतरगालोडिताह्वरक्या-खतरेतक-लोपः । (श्रेतात्र-भाइरक्य ६।, भश्र-क-लीपः १।)। खेताखमाचष्टे खेतयति, श्रष्ट्ययति, गालोड्यति, श्राह्वर-यति । #-

८५७। नाप् सत्यार्धवेदैकाजतः।

(नाप् ।१।, सत्यार्थवेदैकाजतः ६।) ।

सत्यादे रिकाचीऽकारान्तस्य च जो नाप् स्यात्, न इत्। सत्यापयति प्रर्थापयति वेदापयति स्वापयति। (४००)वादान्ति-केति साधादयः, साधयति। प्रमस्यमाचष्टे यापयति। प

^{*} श्रीताश्रय भश्रतरय गालोडितय चाह्नरकव तत् तस्य । श्रथय तरय इत्र क्य तेषां लीपः। एषां कमादितेष(मंग्रानां लीपः स्वादित्यवे:। श्रश्वतरमाष्टे, गालोडितमाष्टे, श्राह्मरकमाष्टे। (उन्प्रादशीले रोगार्ने मूर्वे गालोडितो मतः। श्राह्मरकमस्यष्टवाकाम्।) भाष्यम्।

[†] एकाचासी पत्चेति एकाजत्, सत्यय प्रयंख वेदय एकाजव तत् तस्य । सत्य-काचके, प्रयंगावके, वेदनाचके, स्वनाचके इति वास्त्राणि । वादमाचके साध्यति ।

८५८ | जि: कल्यादे: | (वि: १), कलादे: ४।)।

कत्वारेरपंविशेषे जि: स्थात्। कलिं ग्रह्माति कलयित, ग्रचकलत्। इलयिति, ग्रजहलत्। क्रतयिति, ग्रचीकतत् ग्रचकतत्। वर्णयिति, त्वचयिति। तृस्तानि विनिहन्ति वितृस्त-यिति। वस्तं संकारयिति संवस्त्रयिति। अ

वर्माणा संनद्वाति संवर्मायति । चूणैरवध्वंसते अवचूणैयति । इस्तिना अतिक्रामति अतिइस्तयति । वीणया उपगायति उपवीणयति । तूलैरवकुणादि अवतृ लयति । आकैरुपस्तीति उपस्रोक्तयति । सेनया अभिमुखं याति अभिषेणयति । अभिषेणयति । अभिषेणयति । अभिषेणयति । अभिषेणयति । सम्मिष्टि अनुलोमयति । इस्तौ निरस्रति अतिइस्तयति ।

एवं भिनिकमापष्टे नेद्यति, स्यूलमापष्टे स्वयति, दूरमापष्टे द्ययति, युवानं यवयति, (४०४) कन्-भाटेशे कनभति, जिप्रं चेपयति, चुद्रं चाँदयिति, प्रियं प्राप्यति, स्थितं स्थापयित, स्थितं स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, स्थापयित, ह्यापयित, (४०२) ज्यापयित, स्थापयित, (४०२) ज्यापयिति च । (४०३) पृष्टं प्रययित, सदं सदयित, स्थापयित, स्थापयित, ह्यापयित, ह्यापयित, स्थापयित, ह्यापयित, स्थापयित, स्थापयित

^{*} कलिशादिर्गस स कल्यादि सस्मात्। कलि इली कामधेन सन्नावं वायक कादिति । स्वाः। तती भाज्यने च (८५५) पूर्वेण जिविधानात् भन्न भयं विश्वेषे स्वादिश्वकम्। प्रवेश स्वयं विवृणोति, कलि यहातीत्यादि। कलिशच्दात् जिः, (४६०) डित्, टेलीपः, कलि इति भातः। भवकलदिति (६२८) कलि इलि वर्जनात्न सन्वद्वातः। रवं इति यहाति, ततं यहाति। भवीकतदिति (६१८) विकल्पन सन्वद्वातः। वर्षे (वर्णद्वा) यहाति, त्वं यहाति। वितृत्वयित, तृत्वरहितं करोतीत्ययः। (तृतं रेणी च पाये च जटायास नपुंस्कमिति भेदिनी।) संकादयित परिद्धातीत्ययः। पाणिनः स्वरूप्त, वाणिकानि स्व।

पुच्छमुत्चिपति उत्पृच्छयते। भाष्डानि संचिनोति संभाण्ड-यते। चीवरं संमार्जयति परिद्धाति वासचीवरयते भिचुः। *

८५८। तिथो यथेष्टं दिः, कण्डादाना-द्योस्त हतीयानाद्योः।

(लिधी: ६१, यथेष्टं २१, ति: ११, कब्बुादि-मजायी: ६॥, त १२१, वतीयानायी: ६॥)।
पुप्रचीयिषति पुतिचीयिषति पुतीयियिषति, पुचीयिषिषति,
पुप्रतित्वीयियिषिषति । कम्ब्बूयियिषति, श्रीयस्वीयिषति । ११

रित लिध-गार: ।

'३य चतुर्गणाध्याय: ।

• वर्माणा कवचेन संनद्यात वप्रातीत्ययं: | चूणेंद्रणंद्रव्ये: भवध्यंमते भविकर-तीत्ययं:, नाध्यतीति कथित । इतिना इत्युपलचणं भ्रव्यंता भितकामित भव्ध्वय-तीत्यि स्थान । तृलै: परिमापकर छैरवक्षणाति परिमातीत्ययं: । भिषिषयतीति (५०२) गीक इति वलं, (१००) गलं । भिषिणियित्ति चित्रतं इति वाकं सिनिधाती: सन् (५५४) इन्, ड्रिलारी, दशस्यादेरिति डिक्कस्य पलं । भाष्डानि मूलधनानि सिचनीति सिचतानि करीतीत्ययं: । (भाष्डं पावे विषद्भूलधने भृषात्रभृषयीरिति सिक्नी ।) भव संवर्ष्ययतीत्यादित् सप्तम्दाहरणेष् करणकारकीय एव जि: भत्यवैते सक्ष्यंका: प्रयोगा:, भन्येषु कर्ष्यंकारकोयः तेन प्रायशः भक्ष्यंका इति । एष्ट्राइरणेषु पुक्तिभाष्डिचीवरिय्यः भाक्षनेपदं, भन्येथः परस्वैपदं प्राचीनसम्बतम् । पाणिनिः २।११२५,२० ।

† बादी लि: प्यान् पु: लिप्ट: नामवातुरिति यान्त् इष्टमनितिकस्य यथेष्ट (किया-विश्वेषणं)। क्षाक्ट्रादि यथं सं कण्ड्वादिः, षच् पादियंस्य मः प्रभादिः। कण्ड्वादिय षजादिय तथीः। ढतीयय प्रनादिय तथीः। यथेष्टसिति क्रमेण युगपदा इस्पर्यः, तथाच कदाचित् प्रथमवर्षस्य, कदावित् वितीयादः, कदाचित मुळेषा युगपत्, कण्ड्वादे-मृतीयस्थैत, प्रजादिय पादिवणे दिला दितीयस्य ढतीयाद्यो दिमांव इस्पर्थः। पुज-विश्वाचयित भिष्यं इति वाक्यं (८४०) काः पुजीय-धातुः, ततः पुजीयितृमिक्कति सन् (५५४) इप्, पुजी विष्य इस्पस्य पुप्रभृतीनां क्रमेण युगपच दिलं। कर्ष्यं करीतीति वाक्ये (८५४) व्या, ततः कण्ड्वितिस्किकति सन्, इम्, कण्ड्विष इस्पस्य ढतोयवर्षस्य विष्टस्य दिलं। प्रश्विवाचर्यति गां (८४०) काः, प्रश्वीयित्रमिक्कितीत सन्, प्रश्वीविष्ट इति

१म:। त्याद्यन्ताध्याय:।

श्म पादः-पं।

टर्६०। घे पं परानु-क —प्रत्यथ्यति-चिप— प्र-वच्च —परि-च्छष— घ्यापरिरमो वा तूपरम:।

(घ ७), पं १।, परा-चतु ल, प्रति-चनि-चित्, प्र-वह, परि-स्व, विश्वा-परि-रम: ५।, वा ।१।, तु ।१।, चप-र्म: ५।) ।

एभ्यः पं स्थात् घे, उप-रमसुवा। 'पराक्षरोति श्रमुकरोति, प्रतिचिपति, प्रवहति, परिस्थिति, विरमति श्रारमति परि-रमति, उपरमति उपरमते विश्वाः। *

८६१। कम्पानार्थेङब्धयुष्रप्रदुस्जननग्रो। ऽजिप्राणिद्वादाच जे:।

(कम्पः -- नगः प्रा, पञि प्राणिघाड़ात् प्रा, च । १।, जे: प्रा)।

चलयित भोजयित ऋध्यापयित, बोधयित योधयित प्रावयित द्रावयित स्नावयित जनयित नागयित, गाययित क्रणं

^{*} परानुभ्यां तः परानुकः, प्रत्यभ्यतिभ्यः विषः प्रत्यभ्यतिनिषः, प्राइहः प्रवहः, परेभृषः परिम्वयः, व्यापरिभ्यो रमः व्यापरिरमः। ततः, परानृज्ञय प्रत्यभ्यतिविषकः प्रवहः अ
परिमृषः व्यापरिस्म चिति तस्मात्। चिनेन नियमेन का विष यह स्था इति चतुणं
किर्च्छिप भाक्यनेपदं न स्थात्। वैथींग (२८६) हितीया विश्विता तेषाभन्वादीनासिक्षः न ग्रहणमितिः, तेन व्यमनुकुषते ध्यापे स्थात्। विष्णः उपरस्कृति उपस्कृते
की इतीत्यथः। पाणिनः ११९।०६----८५।

यमोदा। अपाणिघात् किं, मोषयते मालिं। अङ्गत् किं, भितं कारयते। अञी किं, रूपयते हरिः। *

इति पःपाटः ।

२य पाइ:--मं।

_----

८६२। वि-परा-जि --परि-व्यव-क्री-नि-वि-शानुप्रच्छो मं। (वि-पचः प्रा, मं १।)।

एभ्यो मं स्थात् घे। विजयते पराजयते, परिक्रीकीते, निविधते, श्रानुते श्राप्टच्छते। *

[•] कम्पयननं, पर्तं भोजनं, ते अयं यिषां ते कम्पादायों, तेच इङ च वुधय युधय प्रुष दृष स्थ जनस नम् च तसात्। प्राणी घी यस स प्राणिघः, नास्ति ढ यस सीऽढः, प्राणिघांतः मजिप्राणिघाढः समात्। एथ्यी जानीथः पं स्थात् वी, एतेन फलन्त्कर्तथ्ये प्रात्मनेपदं न स्थादिति बीर्थं। चल्यति जन्यतीति च घटादिलात् इस्तः। भाययति क्षणमिति, क्षणः भेते इति प्राणिकर्मृकीऽकर्भकः, ततो जानान् परस्थैपदं, भालिः ग्रंथतीति भ्राणिकर्मृकीऽकर्भकः, ततो जानान् परस्थैपदं, भालिः ग्रंथतीति भ्राणिकर्मृकीऽकर्भकः, तेन जानात् परस्थैपदंनियमाभावे छभ्यपदं। ६पयते इति ६पत् कत्त्वतौ निश्चस्रादः, स्तरां भ्रजानद्भाया भ्रमभवात् नैतिव्यस्त्रसम्, भ्रतप्रकृषिरस्थानलं उभयपदमेव। पाणिनः १।३।न्द्र, प्रण्डान्दः।

[•] वि-परास्था निः, परि-व्यवेश्यः कीः, ने विंगः, षाङो नु-प्रच्छी। ततः विपरा-जिय परिव्यवकीय निविधय पानुप्रच्छी चेति तस्थान्। घे इति पूर्वादन्वर्णते। डु क्षो ज ग द्रव्यविपर्थंग्र इत्थादि ञानुयन्थधात्मामात्यनेपदः विधानं प्रफलवन्तकर्भयंकि पान्यनपद्माप्तार्थे। एवं सर्वव। नि-विध् इत्यनेन प्रचिविधतीयादी न मं स्थान्। पाणिनिः १।२।१०,१८,१८, वार्तिकस्थ।

८६३। श्रा-दाओ ऽखप्रसारे।

(भा द।ज: ५।, प्रखप्रसारे ७।)।

त्रादत्ते। स्वप्रसारे तु, व्याददाति सुखं क्षणाः। *

८६४। त्रा-गमेः चान्तौ। (पागमेः प्रा, पानी ७)। प्रागमयते कालं। पे

८६्५। पर्यन्ववाङः क्रीडः।

(परिन्त्रनुत्रव-माङ: ४।, कीड़: ५।)।

परिक्रीड़ते अनुक्रीड़ते अवक्रीड़ते आक्रीड़ते । ‡

द्द्। समी ऽक्जने। (समः ४।, पक्रनने ७)।

संक्रीड़ते। क्जनेतु, संक्रीड़ित चक्रं। §

८६७। क्रो ऽपाइषान्तवासेच्छे चतुष्पाद्वौ सुम् च।

(का: ५१, चपात् ५१, इर्षाव्रवासेक्के ७।, चतुषाद्वी ७।, सुन् ।१।, च ।१।) ।

अस्तं स्वाक्तं, स्वस्य प्रसारी विक्तारणं स्वप्रसारः, नञ्योगेतिकान्। भाङ-् पूर्वात् दाञीमं स्वात् घे, नतु स्वप्रसारे। भादत्तं रुद्धाति, व्याददाति विक्षारय-तौत्यर्थः। पाणिनिः १।३।२०। अत्र "अनास्थविद्ररणे" द्रत्युक्तम्।

[†] गिम जीन्तः, चान्तिः प्रतीचणं। भाङ्पूर्त्रात् गमयते में स्थात् घेचानी (प्रतीचायाम्)। भागमयते कालंप्रतीधते इत्यर्थः। भागयनादी भर्ये परस्पेपदमेव। वार्तिकम्।

[‡] परिश्व चनुत्र चन्य चाङ्च तस्मान्। एभ्यः क्षीड़ते में स्यात् घे। सद्घार्यका-तुपूर्वातृ न स्यादिति वक्तव्यं, तेन वालकानतृकोड़ित। पाणिनिः १।३।२१। चत्र नावः।

[§] संपूर्व्यात् क्रीडले में स्थात् घे, न तु कूत्रने । कूत्रन-सम्यक्तग्रस्टः । वार्त्तिकान् ।

भ्रपस्किरते मत्तः कुक्कुटः म्बावा। भ्रन्यव मक्षोऽपकिरति, गजीऽपकिरत्यमः। *

८६८। भ्रषधामीर्गत्यनुकारे भ्रप-नाथ-हुञः।

(ग्रपच-चागी गैत्यनुकारे ७।, ग्रप-नाय हज: ५।)।

कणाय प्रपते गोपी । मोचाय नायते मुनि:। पैत्रकमनुद्दरते प्रावः। पं

८६८। प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाशे संप्रव्यवाच स्थः।

(प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाभे ७।, सं-प्र-वि-श्रवात् ५।, च ।१।, स्य: ५।)।

^{*} पत्रच वास्य ती, तयीरिक्ता अववासंक्ता, इर्थेण अववासिक्ता यस स इर्षाअवासिक सिखान। चतुषाव विय तत्तिखान। चतुषात पणः, विः पची। इर्थहेत्रक अचर्णेक्तावित इर्थेहेत्रक वासेक्तावित च चतुष्पित पितिष्य वा कर्त्तार सित पपात् किरतं में स्थान, तस्य सम् चियथः। अपस्किरते, मनी इटः कुकुटः अचार्थी भूमिमाखिखति, सनः आवा वासार्थी भूमिमाखिखतीत्यथः। घन कृषातुराखिख-मार्थे एव बीध्यः। चतुष्पादौ किं. सम्नोऽपिकरित धृत्यधं भूमिमाखिखति। इर्षा-वासीक्षे हित किं, गजः अभी ललं अपिकरित कर्वे विपतीत्यथः। अव तुक्षयीग-विद्यानां सह वा प्रवृत्ताः सह वा निवित्तिति चायेन आवानेपदाभावपचे सुमिन व स्वादित। पाषितिः ६।१।१४२। "किरतिहर्षजीविकाकुलायकरणेष् वाच्यन्" इति वान्तिके इर्षाट्यस्त्रयो विषयाः उक्ताः, तन इर्षो विनेषस्य कारणम् इतरे फलं। बीप-देवसु मतान्तरमवलम्बा इपंजनितं विषयस्यस्ये विखितम।

[†] यपी आक्षाभे इ.चसान यपये, नायृ ङ तापश्चिषीरैध्येऽयेने इत्यसात् चाशिष, इज इत्यानित्यसान् गत्यनुकारे, मं स्थान् घे। श्रप्थः पुनादिश्वरीरस्पर्शादिना नियानिरसमं, चाशी-रिष्टार्थाविक्षरणं, गत्यनुकारी गतिसहशोकरणं। गोपौ क्षणाय यपते, कस्यचित् शरीरं स्पष्टा मधेतव क्रतिनिति दिव्येन क्षणं तीपयितृनिष्कतौत्ययः। यप्यादन्यन नियमाभावा-दुभयपदमेव। सुनि मीचाय नायते मीची में भ्यादि स्थाद्यस्ति इत्ययः। छभयन (२८४) चत्यौ। नायधाती-रास्त्रनेपदिलेऽपि चाशिषी ऽत्यन परस्तेपदनेव। चन्नः पैठकं पिटसम्बन्धीयं गमननिति यावत् चनुकर्रः चनुकरीति पिटवत् गक्कतीत्ययः। गतियक्षणात् रूपायनुकारे न स्थादित। "श्राप्ताक्षेत्र', "स्राधिव नायः", "इरतिर्गतताक्कीत्ये' इति वार्तिकत्वयम्।

नित्यं मध्दमातिष्ठते। त्विय तिष्ठते विवादः। रामाय तिष्ठते सीता। सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते वितिष्ठते स्रवतिष्ठते समस्यित। *

८०। उदोऽनुर्हेह । (घरः धा, षर्हें वा)। मुतावित्तिष्ठते। श्रन्थव श्रासनादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति।१

८७१। सन्त्रेणीपात्। (मन्त्रेण श, उपात् पा)। गायनमा उपतिष्ठते अर्को। क्ष

८७२ । मेन्राध्वसङ्गाराधि । (मैनी मध्व सक्त भाराधि श)। सन्तमुपतिष्ठते साधुः। गङ्गामुपतिष्ठते पत्थाः। पतिमुप-तिष्ठते नारी । विणाुमुपतिष्ठते वैणावः। §

^{*} प्रतिज्ञादावर्थे तिष्ठते में स्थात्, सं-प्र-वि-भवेभ्यो व्यक्षिन् किसिन्नपर्धं मं स्थात् घे, चकारात् भर्थदयं। प्रतिज्ञा भङ्गोकारः, निर्णयो निषयः, प्रकाशः स्वाभिप्राय-प्रकटनं। निर्णय भन्दमातिष्ठते, निल्मिति शब्दस्य विशेषणं, शब्दी निल्प इति प्रीतिज्ञां करीतीत्यर्थः, मीमांसक इति श्रेषः। त्विय विवादसिष्ठते इति निर्णयः। भीता रामाय तिष्ठते स्वाभिप्रायं प्रकाशयतीत्यर्थः। (२८४) चतुर्थौ। समस्थित इति (७३६) ङि:। पाणिनिः ११३।२२,२३, वार्त्तिक्षः।

⁺ न कर्ज भन्ते, भन्ते दंदा (चेटा) यस सः भन्तें ह सिखन्, भन्तें हे दित कर्त्तां विशेषणं। चत्पूर्वात् स्थाधाती में स्थात् भन्तं विषये चेटमाने कर्तार। सुन्नो चित्रकृते सुन्निविषये चेटते द्रत्ययं:। भासना-दुत्तिष्ठतीति कर्त्तु कंटिलान्न मं। यामात् भत्तसुत्तिष्ठतीति भतसुत्पद्यते द्रत्ययं:, भतस्य कर्त्त्येटाया भभावान्न मं। पाणिनिः १। १। २४।

[‡] सन्त्रकरणके भाल यें उपात् स्थो मंस्यात् चे। गायना मन्त्रेण भाकं सूर्यं उपाक्ते इत्ययं:। सन्त्रेण किं, युवित यैंविनेन भार्त्तरसुपतिष्ठति। पाणिनि: १।३।२५।

[§] मित्रस्य भावी भैत्री, प्रध्वा पत्याः, मङ्गः सङ्गनः, पाराध पाराधनं। एष्य-येषु उपात् स्थीनं स्थात् घे। पध्यनि कर्षरि सतीति भावः। साधः सनं साधुं

조৩३। सिप्तायों वा। (विश्वायों श, वा ११)। भिचु धीर्ष्यकसुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा। %

८७४। ऋढात्। (भडात् ४))। ज्ञानमुपतिष्ठते। पः

८७५। समी गम्ळप्रक्तसृयुवेत्तर्रात्रंदशः।

(सम: ५।, गम-ऋष्ठ-प्रच्छ-स्व यु-वेत्ति-पर्त्ति हम: ५।)।

सङ्गच्छते, समगत समगंस्त, सङ्गसीष्ट सङ्गसीष्ट। सम्बच्छते, संप्रच्छते, संखरते, संश्रणते, संविद्रते संविद्रते, समिगृते, सम्प-खते। यटात् किं, यङ्गां सङ्गच्छति। ॥

ख्यतिकते मित्रं कारोतीत्यर्थः। गङ्गासुपतिकते पत्याः गङ्गां गच्छतीत्यर्थे। पयि कर्मिर किं, पत्यानसुपतिकति । पतिसुपतिकते पत्या सह सङ्गंकरोतीत्यर्थः। विणु-सुपतिकते चागाध्यक्षीत्यर्थः। "उपाद्धेवपूजासङ्गतिकरणानिचकरणपथिष्यिति वाच्यन्" इति धार्मिकस्।

रुअपुनिच्छा लिग्ना। लिग्नार्थे उपात् इसो मंस्यादा चे। धार्मिकसुपतिष्ठते
 उपविद्यति वाधार्मिकात् (धनं) सञ्चिमिच्छतीत्यथं:। वार्तिकम्।

[†] उपात् पत्रकातात् स्वी मं स्वात् वि । विभाषादय-मध्यवित्तिलाहिलां । ज्ञान-सुपतिष्ठते ज्ञानं उपस्थितं भवतीलायः । पाणिनिः १।३।२६।

८७६। गेर्वासोहो देच।

(मैं प्रा, वा ११।, पस्सीष्ठः प्रा, ढे ७।, च ११।) ।

निरस्रते निरस्रति, समृहते समृहति । *

८०७। गेहह: खो ये ऽणौ।

(ग्रे: प्रा, कइ: ६।, ख: १।, ये ७।, प्रश्री ७।)।

बच्च समुद्यात्। 🕆

८७८। त्राताङ्गढादहाचा-हनयमः।

(भावमाञ्चल प्र', भटात् पूरा, भ ११।, भा-इन-यम: प्रा) ।

उरग्राहते, पादमायच्छते। ग्राहते ग्रायच्छते। ग्रन्थन ग्रनुमाहन्ति, परिश्रार ग्रायच्छति। इ

८७२ । इन: कित् सि:। (इन: ५१, बिन ।ए) वि: ११) ।

चस्पुदर्चेपे, तद ङ वितर्को । गै:पराध्यामाध्या मंस्यादा वे, ढेकर्चावि
 चिद्यमाने, चकारात् प्रकर्माक च । वार्तिकम् ।

[‡] भारतमः भन्नं ढं यस्य स भारताहरसस्यात् । नास्ति ढं यस्य सीऽदसस्यात् । इतः च यस् च इत्यम् भारते इत्यम् भारत्यम् तस्यात् । मस्कूकवत्यः चे मं इत्यन्तवर्तते । स्वान्नकर्यकास्थास्य भारत्यकृतं हत्यसास्थां चे नं स्यात् । स्वान्नदितिः नीच्चा भारत्यहादिति कथनं, (२६५) पारिभाविन्नस्वाङ्ग-स्थाङ्ग्ये, भारत्य परिवर्तते भायन्त्वतीत्वव नात्मनेपदं । चरीः वचः भारते ताङ्यतीत्वयः, पादं चरणं भायक्वते दीर्घं करोतीत्वर्थः । कर्माविव्यायां भारते ताङ्ती सवति, भाष-क्वते दीर्घं करोतीत्वर्थः । पाणिनाः १।१।२८, भाष्यच ।

हन: पर: सि: कित् स्वात्। श्राप्टत श्रावधिष्ट, श्राप्टसातां श्रावधिषातां। *

८८०। यमः सूचने वा तूदा है।

(यम: ५१, स्वने था, वा ११।, तु ११।, खडाई था)।

श्रायत । रामः सीतामुपायत उपायंस्त । ए

८८१ | व्युत्तमः। (वि-उत्-तपः प्रा)।

वितपते उत्तपते पाणि जनः। ः श्राक्षाङ्गढादढाच किं, महीं वितपत्यर्कः।

८८२। तपोढाद् यक् चरे।

(तपीढ़ात् प्रा, यक् ११।, च ११।, रे भ)।

तप्यते तपुस्तापसः। रे किं, अतप्त। §

^{*.} पाइत इति पूर्व्वेषात्मनेपरं, (६७८) वधारेग्र-विकल्पपचे अनेन से: कि ला (६०६) अम्लीपः, ततः (५६२) सिलीपः। वधारेग्रपचे (५५४) इम् भावधिष्ट। एवं टी श्रातां। पाणिनिः १।२।१४,[२।४।४४]।

[†] यम: पर: ति: कित् स्थात् भाक्षनेपदे सूचने भ्रयें, विवाहार्थे तुवा। सूचनम् इक्कितादिना विद्यापनं। भायतः इति भाष्यम्, पूर्वेषाक्षनेपदे टौ-तन्, सिः, भनेग् से: किक्तं, (६०६) अम्लोपः। उपायतेत्यादि (८०८) उपयम् इति वक्त्यमाण सुचेषाक्षनेपदे भनेन विकल्पेन से: किक्तं। पाणिनिः शश्य,१६।

[‡] व्युद्धभां परादात्माङ्गढादढाच तपो ध मं स्थात्। मञ्जूनगत्या ध मं इत्वतु वर्तते। जनः पाणि इत्तं उत्ततं करोतीव्यर्थः। एवं जनः उत्तती भवतीति श्रद्धादि वितयते उत्तर्यते। पाणिनिः १।३।२०, भाष्यं, वार्तिकच।

ह तयः ढं (कर्च) यस्य स तपीठलस्थात् । प्रथक्षिशानात् व्युदिति नानुवर्भते तपीटादिस्पेन आस्त्राह्माइटाइटाविति च निरसं । तपःकस्प्रकात् तपी संस्थात् घे, परं यक् च स्थादिस्पर्थः । अत्र यक् अपी वासकः । तपक्षस्यते तपः अर्ज्जयतीस्थयः

८८३। सृजः याङवात् तनीस् च।

(स्टन: ५१, त्राह्यात् ५१, तनि ७।, इष् ११, च ११)।

सृज्यते सज भतः। ग्रसर्जि। याडघात् किं,स्जति सजं मालिकः।%

८८४। निसंव्यपह्यः। (नि.सं-वि-खप-ह्न: ५)।

निद्वयते संद्वयते विद्वयते उपद्वयते । 🕆

८८५ । सर्वीया-माङ: । (स्वर्तावां ०।, भाङ: ४।)।

क्षणायान्रमाद्वयते। ‡

८८६। सूचनावच्चेपणसेवासाइसप्रतियत्न-क्योपयोगे खाः । (स्रान-उपयोगे था, क्रजः धा)।

श्रपकुरुते, खीनो वर्त्तिकामुपकुरुते, विशां प्रकुरुते, परदारान् प्रकुरुते, एथादकस्योपस्कुरुते, गीताः प्रकुरुते, यतं प्रकुरुते। §

एवं तथ्यंत तथ्यतां भतय्यत। भतप्तिति टीतन्, निमित्तगतविश्वेषात् सिरेक्, न तु यक्, भौदिचान्नेम्, (५६२) सिकीपः। पाणिनिः ३।२।८०,८८।

यतपूर्वक-धाधातोर्ङः (११५०) यहा इति, यहा विद्यतेऽस्ति (४४६) प्रज्ञादिवात् षः यादः, यादः घः यस्य सः याद्यस्तस्यातः । याद्यमत् स्त्रत्रो संस्थात् चे, तिन परि इत्य्, चकारात् रेपरे यक् च स्थादिक्ष्यः । क्षकः यद्यविक्षिष्टी जनः सर्ज्ञाता स्त्र्यते रचयती स्ययः । अभजीति तन्, इत्य् सिवाधकः, (६४४) तन् लोपः । सालिको न स्रदानान् । वार्तिकदयन् ।

^{े †} नि सम् 14 उप एथ्यः परात् हेजो संस्थान् घे। चनिष्टलात् यगिष्धो-नीनुइतिः। पाणिनिः १।३।३०।

[‡] चार्कः, परात् ह्वेजो मंस्रात् द्वेस्पर्दीयां गस्यनानायां। स्पर्दापराभिभवेच्छा । चानूरंतन्नामकामसुरं। स्पर्दायां किं. पिता पुत्रनाह्वथति । पाणिनिः १।३।३१ ।

[§] स्वनादार्थेषु क्रजो मं स्थात् घे। स्वनं — परदीषायाविष्करणं, व्यवचिषणः— तिरस्कारः, सेवा - प्रनृशितः, साहसं — प्रशाहीषमनाजीचा करणं हिंसा-पौर्थ-

ट्र प्रभः मत्तौ । (भवः था, मकी का)। दैत्यानधिकरते कथः । *

८८८ । श्व्टाढादेः । (श्व्टाडाल् ४।, वे: ४।) ।

स्तरान् विकुरुते, वायुर्विकुरुते। अन्यत्र चित्तं विकरोति कामः

य्रिश नीजः। (जान-व्यवेष जा, नीजः प्रा)।

प्रास्ते नयते, विष्णुं नयते, दण्डमुनयते, पुत्रमुपनयते, सृत्य-सुपनयते, ऋणं विनयते, द्रव्यं विनयते । #

परदारगमनादि, प्रतियवी—गुपालराधानं, कथा—चाल्यानं, उपयोगी—धर्मादाधै द्रव्यविनियोगः। अपकृष्ठते कस्यचित् दीषमाविकरीती वर्षः। स्रेनी वर्तिकामुपकृष्ठते तिरस्करीती स्थंः। स्रेनी वर्तिकामुपकृष्ठते तिरस्करीती स्थंः। च वर्त्तिका स्थंः। परदारान् प्रकृष्ठते साहस्रत् तथु, प्रवर्त्ति स्थंः। एषः काष्ठं तस्य उदकं रसः, एषी-दक्स काष्ठरसस्य उपस्कृष्ठते चित्रयेगोने गुपालराधानं करीती स्थंः, प्रतियवार्षे (अद्धं सुम्। गौताः प्रकृष्ठते कथयती स्थंः। स्रतं प्रकृष्ठते स्रतं द्रव्याणि विनियुङ्को इत्यर्थः। पाणिनः १। १:३१ । भव म्मनिस्य गन्धनपदं प्रयुक्तं तस्यार्थे प्राण्वियोगान् तुकृतं स्वनम्। हिसा इति भदी जिदी चितः।

* अधिपूर्व्वात् क्रजो मंस्रात् घे सत्तौ । सिकरिभमंत्रः । टैस्मानिधकुरते क्रणः प्रभिमनतील्यंः । पाषिनिः १।३।३३। (फल प्रसत्तं≔चनाक्रिभवय)।

† शब्दो ढंग्रस सः शब्दढः, नासि ढंग्रस सोऽढः, शब्दढस भढक तक्तसात्। वेः परात् शब्दकर्माकादकर्माकास कञी संस्थात् घे। स्वरान् शब्दान् विकृषेति विशेषेण करोतीसर्थः । वार्थावृक्तकते विकृतो अवतीसर्थः । पाणिनः शश्श्रः, १५॥।

‡ जानं प्रमेयनिषयः, पत्रां पूजा, जरवेप उन्नयनं, उपनयनं यजोपवीतदान-संस्तारः, स्विवेतनं, विगणनं ऋण्योधः, व्ययो विनियोगः। एवर्षेषु नौजो सं स्थात् वि। शास्त्रे नयते प्रमेयनिषयं करीति, विश्वं पूज्यति, दखसुरिवपति, प्रवं यजोपवीतदानन संस्तरीति, स्व्यमुपनयते स्व्याय वेतनं ददाति, ऋणं शोधयित, द्रव्यं विनियुक्तो इत्ययं:। पाणिश्वः १।३।१६। ८८०। घषामूर्त्तढात्। (वस्तामूर्त्तात् ४)।

क्रीधं विनयते । घस्यं किं, गुरोः क्रीधं विनयति । प्रमूर्तं किं, गण्डं विनयति । *

८८१। वृत्तुत्रत्साहतायने क्रमः-परोपक्रमः।

(हिन्डित्साइ-तायने छा, कमः ५१, परा-उप-कमः ५१)।

ऋचु क्रमते बृद्धिः । धर्माय क्रमते साधुः । सतां श्रीः क्रमते । पराक्रमते उपक्रमते । 🕆

८१ | त्राङो भोद्गमे । (पाङ: पा, भोदगमे ०)। प्राक्रमते प्रकी: । भोदगमे कि, प्राक्रामति धूम:, खं व्याप्री-

दश्वः पद्भः। (वे: प्रा, पिकः ३॥)।

साधु विक्रमते वाजी । पद्धिः किं,वाजिना विक्रामति राजाः ।§

[#] चेकर्त्तरि तिष्ठतीति घस्यं, घस्यं प्रमूत्ते टंयस्य म तस्यात्, नीओ संस्यात् चे | को भंविनयते श्रमयतीत्यर्थः, घत्र की घः कर्तृस्यः । गण्डं व्रषं। पाणिनिः १।३।१९०।

[†] बित्तरप्रतिवन्धः, खन्नाइ खद्मनः, तायनं वृद्धिः (स्कीतता)। एव्यर्थेषु क्रमः परीपक्षमय मंस्थात् घि । परीपयहण्यमन्योपसर्ग-निरासाय । स्टत्त वेटेषु वृद्धिः क्रमते स्वश्तिकता भवति । सर्काध क्रमते खन्नास्ते । स्वतां स्वी वंदेते । पाणिनिः १।३।३८८,३९८।

[‡] भानीति भानि (१८७) चादनात् चे जः। भानां चन्द्रत्यांदीनासुद्वने चाजः-पूर्वात् कसी भंस्यात् चे। चाकमते चद्रच्कतीत्यर्थः। पाचिनिः ११३।४०, वार्त्तिकच।

[§] वै: परात्कामो मंद्यात् घे पडिर्धाल वें नियते । वाकी घीटकः पडिगंच्छति । पाणिनिः १।६।४१ ।

दश प्रापादारको। (म.चपात् था, भारकी वा)। भोत्तं प्रक्रमते उपक्रमते। *

द्रभू । वाऽगे:। (वा।११, भने: ५।)। क्रमते क्रामति । पे

८८६। निह्नवे जः। (निह्नवे श, शः प्रा)।

श्रतमपजानीते । क्ष

टर्७। त्रुढात्। (भडात् ४)। सिपंबो जानीते। §

ट्ट। संप्रतेरसातौ । (सं.प्रते: ४१, पस्ती थ)।
संजानीते प्रतिजानीते । श्रमृती निं, पुत्रं संजानाति । १

दर्र। अटें आ है। (जे: ४१, हे थ, पर्जो थ, घे थ)। दर्भदते भवी भक्तान्। प्रजी यत् ढं तचित् घ दति किं—

[⇒] प्रीपाभ्यांपरात् कामी भंस्थात् घे त्रार्ग्धे । भीकृंप्रक्रमते वारभते द्रत्यर्थः पाव्यितिः १।३।४२ ।

[†] नास्ति गिर्धिकान् चीऽगि सम्मात् । अप्रीः क्रमी मंस्रादा घे । उपसर्गरहित क्रमधातः उभयपदीव्ययः । पाणिनिः १।३।४३ ।

[‡] जानाते में स्थात् घे निक्रवे ; निक्रवोऽपलापः। श्रतमपलपतीत्वर्षः। चप जानातिरपक्रवार्षः। पाणिनिः १।३।४४।

[§] भक्तम्प्रकात् जानाते घें मंस्यात्। सर्पिषो एतस्य मानीते सर्पिषा करणे प्रवर्त्तते क्रत्यदं:। (३०३) चाऽज्ञाने धे इति करणे षष्ठी । पाणिनिः १।३।४५।

यु सं-प्रतिभ्यापरात् जानातं घें संस्थात, न तुस्पृतीः। संजानीते प्रतिजानी चक्रीकरीतीत्थर्थः) पुत्रं संजानाति सोत्करुष्टस्यरतीत्यर्थः । पाणिनिः १।३।४६ ।

दर्शयति यम् भन्नान् भन्निः। सृतौतु, स्नारयति भन्नान् इरिः। *

१००। ज्ञानयत्रप्रलोभे वदः।

(ज्ञान-यव-प्रलोभे ०।, वद: ५।)।

पाणिनि वेदते, चेत्रे वदते, शिष्यमुपवदते । 🕆

१८१ च्रनोरढांत्। (भनीः था, भडान् थी)।

श्रनुवदती । 🕸

८०२। विमति-व्यक्तसन्होक्तेत्राः।

(विमति-व्यक्तसहीक्यो: ७॥)।

विवदन्ते शिषाः। व्यक्तं किं, संप्रवदन्ति खगाः। §

च्रजी (घजानदशायां) ढेकर्माण घे (जानदशायां मिति यावत्) कर्तार सति, जानाडाती में स्थात् घे, न तुस्रृती। भक्ताः भवं पेश्वनि, भवः भक्तान् दर्ययते पासानिति भेषः। भक्ताः मस्रु पश्चनि, मितः भक्तान् मस्रुं दर्ययति। घव घजानस्य कर्मा प्रसुः, जानस्य कर्वी भक्तिः. घती नासनेपदं। सार्यतीति घव घजानद्यायां कर्माणे कर्माणे कर्माणे कर्माणे कर्माणे वादासमेपदं। पाणिनिः र। स्थि।

⁺ ज्ञानं यव: प्रकीक्ष: (उपमन्त्रणमिति पाणिनिः, र इस्प्रच्छन्दनमिति क्रमदीश्वरः) एव्ववेषु वदे वाचीलस्मात् मं स्थात् चे । पाणिनि वैदितुं नानातीलर्थः । चेत्रे यवं करीतीलर्थः । शिष्यं प्रकीक्षयतीलार्थः । पाणिनिः १। ३। ४०।

[‡] चनुपूर्वादकचंकात् वदी मंस्रात् घी। चनापि व्यक्तीकौ इति पाणिनिकम-दौत्रती। चनुवदते रामस्य कचाः, रामो यथा वदति कचीऽपि तथा वदतीव्ययः। चढात किं, पृथ्वीकमनुबदति। पाणिनिः १।३।४८।

[ु] विविधा मित विभितिः, व्यक्ता चासी सडीक्तियेति व्यक्तसडीक्तः, विभितिष्य व्यक्कसडीक्तिष्य ते तयोः। एतयोर्थयो वैर्ममानात् वदी मं स्थात् घे। विवद्ते श्रिष्या द्वति दयोददाइरणं, विरोधिज्ञानपूर्वकं वदन्ति, व्यकं सडवदन्ति वा इल्लयंः। संप्रवदन्ति चस्त्रटं वद्नील्यंथं:। पायिनिः १।३।४०,४८।

६०३ | तद्योगे वा | (तद्योगे वा, वा।१।)।
विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वैद्याः । *.

१०४ | ऋवाट्गिर: । (भवात् ४), निरः ४।)। अवगिरते । न

१०५१ सम: प्रतिच्चरयां। (सम: ४१,प्रतिवायां १०)। यतं संगिरते। इ

८०६। उच् र: सटात्। (उत्पर: ४।, वटात् ४।)। धर्ममुद्यरते। सटात् किं, धूम उचरति। §

६:०० | समस्या । (समः ४।, प्रा ३।)। प्राक्षेत सञ्चरती। ¶

रुंदांन: सा चेच्रार्थे।

(दान: ५।, सा ।१।, चेत् ।१।, चर्षे ७।)।

स्तथी: (विस्ति-व्यक्तसक्षीक्षीः) थीगसिक्षन्। प्रसिद्धवर्षे वदीमं स्थाद्या घी।
 वैद्या: विरीक्षिक्षानपृथ्वेतं व्यक्तं सक्षवदन्तीत्यथे:। पाणिर्नि: १।३।४०।

[†] अप्त गिर इति कथनात् स्थाति नेति भाष्यम् । पार्थिनि: १।३।५१।

[‡] संपूर्व्यात् शिरतेः प्रतिज्ञायां घे मं स्थात् । प्रतं प्रतिकानीते इत्यर्थः । प्रतिज्ञायां किं, यामं संगिरति ददातौत्यर्थः ; (गासं संगिरति वा) । याणिनिः १।३।५२ ।

[§] छत्पूर्श्वकात् सक्तमंकात् चरी घे मं स्थात्। धर्मासुघरते छ ब्रह्मयति । धून-छ ছरति छ दगक्कतील थें:। पाचिनि: १।३।५३।

क् साधन-व्यतीयानीन योगे सम्पूर्वकात् चरो घे मं स्वात् । हितौ सद्घार्षे प व्यतीययान स्वात्, तेन पुर्वतेन सम्बर्धतं, पुर्वेण सम्बर्धतः । "हेतुव्यतीयायुक्तार्यपि अवति, बुद्यासस्वरते वृषः" इति तुगीयीचन्द्रः । पाणिनिः १।१।५४।

हास्या संयच्छते कामी। चर्छेकिं, हास्या संयच्छति भिचां भिचवे।क

६०६। उप-यमा विवाहि । (अप-यमः श्रा, विवाहे अ)। रामः सीतासुपायत उपायंस्त । वृं

१९० | सुजी ऽश्चे । (स्रणः ४१, पश्चने १७)। श्रालीन् सुङ्को गीः । श्रनशने तु, पृथ्वीं सुनक्ति राजा । क्ष

८११ । संच्योः । (संन्योः ४।) । प्रस्तं संच्युते । §

१२। युजिर उद्ग्यची ऽयज्ञपाने।

(युजिर: ५१, छद्ग्यच: ५१, भयज्ञपात्रं ७।) ।

[#] सा टतीया चेत् यदि चर्ये चतुर्घयें भवति तदा तेन तृतीयान्तेन संपूर्ध्यकात् दानी मंस्रात् । कामी अनः दास्या संयक्ति दास्यै वस्त्रादिकं ददातौत्ययः । टास्या इति (२८३) अध्यक्षसम्प्रत्ने टतोया । टास्या संयक्ति भिचां भिचने इत्यच दास्या इति करके टतीया । उपसर्गान्तरव्यक्तानिऽपि यया, दास्या सम्प्रयक्ति । पाणिनिः शहाध्यः ।

⁺ उपात् अभी मं स्यात् घे विवाहे । विवाहग्रव्हेनाव स्वौकाराणें बीइव्य उति सम्बन्तम्, यतः पाणिनी 'स्वकरणे' उत्युक्तम् । ''स्वौकरणे'' इति च कमदीवरः । तेनः ''श्रस्ताण्युपार्थस्त जिल्दाणि" प्रकटसुप्यच्कते इत्यादि सङ्गच्छते । वीपदेवन तु ''पाणिग्रहणिन्ह स्वौकरणं रुह्यतं न स्वौकरणमावन्'' इति ज्यादित्यसम्बन्धां वन्द्रादोनां मतमनुस्त्य 'विवाहे' उत्युक्तम् । उपायत इति (८८०) सेः किस्वात् (६०६) अमलीपे, (१६२) सिलीपः, किस्वविकत्यपर्व सस्य (१०) अनुस्वारः । पाणिनः १।३।१६ ।

[‡] भोजनार्थे सुजी मंस्यात् घे। 'घनवने' इति तःपाणिनः, प्रवनःरचणं तक्षितेऽयें इत्ययं:। शालीन् घान्यानि । रचाभिन्ने उपभोगार्थेऽपि कचित् महाकविष्यनेगारी मं स्थादिति वक्तव्यं। यथा—बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव कोवलाम् (रघुमंश्रम्) इत्यादी । पाणिनिः १ । १६६६ ।

[§] संपूर्वकात् च्योति में स्थात् वे। संच्युते प्राणयतीत्यर्थः । पाणिनिः १।३।६७

उद्युङ्के प्रयुङ्के। यज्ञपाचे तु, प्रयुनिक सुचं। *

१३। प्रतारे विन्त-गर्डे: । (प्रतारे अ, विश्व-गर्डे: ५)। वटं वश्चयते गर्डयते। प्रतारे किं, ग्रीनोऽहिं वश्चयति । १

१८८। पूजाभिभवे च लापे: । (पूजाभिभवे ७), च।१1, लापे: ५)।

जटाभि र्लापयते। स्थेनो वर्त्तिकामुद्धापयते। पुत्रमुद्धापयति। एषु किं, पृतं विलापयति। क्षे

८१५। मिथा कारे-रस्थासे।

(निया। ११, कारे: ५१, प्रभ्यासे ७।)।

पदं मिथ्या कारयते। मिथ्या किं, साधु पदं कारयति। अभ्यासे किं, सक्कत् पदं मिथ्या कारयति। §

^{*,} उत् घ, गेरव तत्तवात् । उदो गेरचय परात् युनिरी ज घ युती इल्यकात् मंस्रात् घे, न तु यद्यपाचे । प्रशुनित्त सुचिनिति सुचं यद्ये नियोजयतीलायैः । पाणिनिः १।३।६४, वार्तिकच । ''मसंनिर्दरः प्रादेः'' इति जनदीवरः ।

[†] वन्तुगर्या, रुधिर्धुलिफ् इत्येताभ्यां प्रेरणक्यन्ताभ्यां घे मं स्थात् प्रतारी। प्रतिभागिति पाणिनिसर्व्यक्यांणी, विसंवाद इति क्रमदीश्वरः। वटुंबाद्यणकुनारं वस्त्रयते गर्द्वयते प्रतास्थतीस्ययः। स्थिनः पत्तीक्यप्तिं सर्पं वस्त्रयति परिइरतीस्थयः। पाणिनिः १।६।६८।

[‡] पूजायां भिभने चकारात् प्रतारे च लापयते घें मं स्रात् । लापिरिति ली-धातो जों (७४५) ङापची, ला-धातीय जी, उभयीरादलतात् (७८४) पणि इपं। कटाभि जंटिल केमें: पुणकटाभिव्यां पूजयतीययं: । स्रोनी वर्त्तिका-मभिभवतीययं: । पुत्रं प्रतारथतीययं: । इतं द्रवीकरीतीययं: (७८१) । पाणिनि: १:३।७० ।

[§] निष्या-श्रन्दात् परात् कारयते घें मंस्यात् पौन:पुन्ये । परं निष्या कारयते स्वरादिदृष्ट' पदं पुन:पुनक्चारयतीत्वयं:। साध पदं पुन:पुनक्चारयतीत्वयं:। स्वरादिदृष्ट' पदं सकद्चारयतीत्वयं:। पाणिनि: १।३।०१।

१६ | व्यतीहारे गतिहिंसाग्रब्दाय-हसान्य-हृवहो ऽनन्योन्यार्थे | (मातीहारे का, गति—वहः धा,मनकीवार्षे का) व्यतिभवते त्रर्भिमन्दः, व्यतिहरते व्यतिवहते । व्यतिजन्निष्व व्यतिजन्निष्वं । *

१९० | होऽस्तेरेति । (इ. ११, घर्षः ६१, पित १०) १ अस्तेर्हः स्यादेकारे परे। व्यति हो। ११ गत्यधी देसु, व्यतिसर्पेन्ति व्यतिष्ठन्ति व्यतिजलान्ति व्यति-इसन्ति। अन्धीन्यार्थे तु, परस्परं व्यतिसुनन्ति । ६३

१८ । सृहश्(ऽ)ननुत्तानाप्रतियोः सनः।

^{*} गित्य हिंसा च प्रव्य गितिहंसा प्रव्या हिंसा प्रव्या हिंसा प्रवार । स्वीतिहंसा प्रवार । गितिहंसा प्रवार प्रवार । गितिहंसा प्रवार । प्रवार प्रवार । गितिहंसा प्रवार । गितिहंसा । प्रवार प्रवार । गितिहंसा । गितिहंसा

[†] व्यतिहे इति व्यति-अस-की-ए, भनेन अस्थान इ-भादेश:। पाणिनिः ०।४।५२। ‡ व्यतिसप्नीत्यादि गत्यथादिलात् व्यतौद्वारिपि न मं। परस्परं व्यतिसुन-नौति परस्परश्व्देनेव व्यतौद्वारस्यात्रलात् न मं। स्यग्विनिमयेनीभौ द्वतुर्भ्वन-इयनिति रघुवंश्च विनिमय-श्रव्दस्थापि भन्दीन्यायंक्तल्यनेन नात्मनेपदं।

एभ्यः सनन्तेभ्यो मं स्यात्। सुस्मूर्षते हिट्छते जिन्नासते शुत्रूषते। अन्यत्र अनुजिन्नासित श्राशुत्रूषति प्रतिशुत्रूषति। क

ह्रश्व जिञ् जान्त-पिव घे नृद्वद वस दम्स्चाद परिमृहायमयसा ऽगिद्धापवदाग्रन्थात्समायम: फिलिनि। १० (जित्-मिष: ४१, पिका-यम: ४१, फिलिन ७१)।
जितो जान्तिपिवादे रगिजानाते रपवदो ऽग्रन्थोदादिपूर्वयमस्
फलवित घे मं स्थात्। यजते। पाययते धापयते नर्त्तयते वाद्यते वासयते दम्यते रोच्यते श्राद्यते परिमोह्यते.
श्रायामयते श्रायासयते। जानीते श्रपवदते उद्यच्छते संयच्छते श्रायच्छते। ग्रन्थेतु, वेदमुद्यच्छति। फिलिनि किं,
यजति याजकः। \$

इति म-पाद: ।

^{*} नामि चनुर्यक्षिन् सोऽननः, स चासौ जाविति चनन्ताः । न विद्यते चा-प्रती यक्षिन् सोऽनाप्रतिः, स चासौ युविति चनाप्रतियुः । सृष दृश्च चनन्त्राय चना-प्रतियुवित तस्रात् । एथः सनन्तियां संस्थात् वि । पाणिनिः १।३।५०,५८,५८ ।

[†] परिनृंद्धः परिसुद्धः, चाङो यस-यसौ चायसयसौ, पिवस्य धेस हत् च वदस्य वसस्य दस्य क्वयं चटस्य पायस्यसौ चेति तत्। आन्त्यासौ पिवधेहदद-वस्टस्य चाटपिस्द्वायपिस्द्वायस्यम् चेति तत्। जिस्र आन्तिप्ति—— यस् चेति तसात। नालि गिर्धेक्षित् सीऽगिः, चिग्यासौ जाधेति चिग्याः। चपात् वदः चपवदः। छद्च सम्च चास छत्समाः, तेथां यस् उत्समायम्, न ग्रयो ऽग्रयः, च्यां छत्-समायम् चयात् समायम् । ततः चिग्यास चपवद्य चग्रयोत्समायम् चिति तसात्। पाषितिः १।१।०२ — ७०,८६, वार्तिकद्यस्य।

[‡] भाव ञि∩पटेन गणपाठे ञानुबन्धाः ञालास रुद्यासी। तेन जिल्लेनैव ञालपाप्तो ञाल-पिवारे ग्रंडणं (८११) कम्पान्नार्थेङ इत्यादिना विहित-परखेपटस्य वाधनार्थम्। भन्मया पिवधे भाद एषानद्रार्थलाम् भन्येपामञिप्राणिघाढलात् तेन

३य पाद: -- ह-भावं।

440

८२० | उ-भावे मं | (ड-भावे था, मं रा) । धोर्डे भावे च मं स्थात् । *

८२१ | र-तनो र्यगिगा । (र-तनोः ७॥, यक्-इपी १॥)।

धोः रे परे यक्, तिन परे इण्, स्यात् हे भावे च। स्तूयते विष्णुः स्तूयेत, स्तूयतां, ऋस्तूयता अस्तावि। गै

परस्मैपदापत्तिः स्थात्। ततस्य कस्पादार्थेङित्थादिः विशेषविधिरस्य सर्वञ्चानित्यः फलवत्कर्त्तरं भाग्यनपदं सिडमिति। किञ्च स्थान क्वतिकं इत्यादि चुरादि-गणीयस्य ञानुवस्थात् च्यादे जें जंकारिण ञानुवस्थितः नासीति म्चनात् गणपिठत-ञानुवस्थितः चुरादेनेंगं व्यवस्था। यजते इत्यादि। यजे जो देवाचांदो इति जित्। पापाने, भे टपाने, कृत्य नर्भने, बदै वाचि ऐवमं निवासे, दम् स्य स्प्रभी, कच कुल प्रीतिप्रकाशयोः, भटलो भने. मृद्यू जिल् वैचित्ये, भी यस्पर्भे, इर् यस्य यतने, एकादमैते ञ्यानाः। ज्ञाग बोधे, बदै वाचि, भी यस्पर्भे इति चयः। वेदसुद्यक्ति वेदमवगन्तुसुद्यमं करोतीत्थयः। याजको यजतीत्थत्र वेतनदानेन यजमान-एव फलवान्, न तु याजक इत्थयः।

(५३१) मनमः पसे इत्यनंग उभयपदपाप्ती व्यवस्थियं, फलवित कर्त्तरि त्रात्सनेपदं, फफलवित परसीपदिनिति।

^{*} ढं कर्यं, भावे भाववं:, सनाइरि ढ भावं तिद्यान्। (८२५) भावे माद्यानिति वस्त्यति, तथाव्यत्र भावद्यस्य परत्रानुबच्ध्यें। इत्तौ भीरिति कथनं भातुमात्रप्राप्तार्थे, तेन पच्चते, चिकितस्वते, कार्यते, पिपच्चते, पापच्यते इत्यादि। कर्याणि वाच्ये प्रस्थान कर्याण प्रवोक्षातान कर्यापदस्य सङ्गान्ताम-युष्यदस्यदायनुसारेण क्रियापदस्य वचनादि भविता। पाणिनि: १।३।१३।

[†] भर्षेगत विशेषापेत्रया निनित्तगत विशेषस्य वलवस्तान् यां विकायक् वाध्यते, इ.सा च सिर्वोध्यते। किस्तान् यकिन गुर्या, सिस्तान् इस्मि ब्रेडिः। सूपते इत्यादि

८२२। इन ग्रह दशच: सिडादेर्मिण वा।

(इन-यह-दय-चच: ४।, चि-ड्यादे: ६।, मिण् ११।, वा (१।) ।

एथः परासां सि-डी-टी-ती-घीनां मिण् वा स्थात् ढ-भावे। श्रस्ताविषातां श्रस्तोषातां इरिइरी। तुष्ट्वे, स्ताविता स्तविता स्तोता, स्ताविषीष्ट स्तोषीष्ट, स्ताविष्यते स्तोष्यते, श्रस्ताविष्यत श्रस्तोष्यत। * स्तर्थते, श्रथते, संस्त्रियते। व

८२३। नेण् तपो ऽनुतापे।

(न । ११, इण् । ११, सम्ह ५१, भनुतापे ७।) ।

श्रन्वतप्त। दीयते। क्ष

६२४। यन् जिणत्कदिग्यातः।

(यन् । १।, ज्यात्कदिणि ७।, बात: ६।)।

⁽५.२०), घोँऽज्यरे प्रति दीर्घः। विखरिति कर्मा, जनैरिति भेषः। टौ-तन् आसावि (५.२०) हडिः, (६४४) रखनन् लीयः। पाणिनिः ३।१।६६,६०।

[•] इनय ग्रह्म दम्म प्रमात नामात्। पिस आदिय (डी टी ती थी) तत्त्रस्थ। मिणी मिलादादी, विल्वात् इद्धिः। इसी वाधकीऽयं। कृटी मातां स्थिः, सेरादी मिण, लकारस्य (५००) इद्धिः। पत्ते (५००) भेसेकालादिति इस्निवेधः, (५४२) गुणः। इरि-इरी कर्णः। डी-ता, वा मिण, मिणी विकल्पपत्ते (६०६) वा इस्। एवं टी-सीष्ट, ती-स्वते, धी-स्वतः। पाणिनिः ६।४।६२।

[†] स्तृ-ते, यक्, (६१५) स्यायस्तृत इति गुण:। एवं सर-ते प्रयंते। सं-त्त-ते, (७७६) सुम, (६१५) स्तुलु व्यामेवेति नियमात् गुणाभावे, (६२०) स्टद्रिः।

[‡] तपी ऽनुतापार्थे इण्न खात् ढभावे। चलतप्तित तन्, इणो निवेधे द्यां विः, चौदित्ताद्रेम्, (५६२) चिलोपः। दौयते इति दा-न दाने, खुदा अलि दाने, दा ख खूनौ, दे ड पालने, दै प मोधने, दो य च्छेदे इखेषां (६१२) दामागै इति छौ। पाणिनः ३।१।६५।

श्रादन्तानां यन् स्थात् विषति क्वति, इषि च। *
यदायि, श्रदायिषातां श्रदिषातां। पे
इन्यते, श्रविष श्रघानि, श्रघानिषातां श्रविषवातां श्रहसातां।
रुद्धते, श्रयाहि, श्रयाहिषातां श्रयहीषातां।
इन्यते, श्रदर्शिषातां श्रद्धवातां।
श्रयस्ते, श्रदर्शिषातां श्रद्धवातां।
श्रयस्ते मोहो मुकुन्देन, श्रयमि श्रयामि, श्रयमिषातां श्रयामिषातां श्रयामिषातां।
श्रातां श्रयमयिषातां। ||

[•] जन पान डपी, ती इती यस्य में जियात, स नासी लंबेति जियात्लत्, सन्न इण्च तिसान्। यनी न इत् मन्ते। न्यादन्तधात्रधी पाप: स्थाने (६०६) डी विधानात, जी न (७८४) पाय-विधानात् न्यत्र जियाति इत्यनेनैव सिडी लदियो ग्रंडचं दिद्रा-धाती चंपि ददरिद्र इत्यत्र यनागम-निषेधार्थं, भ्रन्यथा, लीपीऽप्यादेश उच्यते इति न्यायेन लीपसादेशकी, भागमादेशयीमंध्ये बलीयानागमी विधिरिति न्यायात्, (७०२) दरिद्र भालीप इति मुनंबाधिला भानेन यनागमापन्तः। पाणिनिः ७।३।३३।

[†] भदाथीत्यादि दा-तन्, इण्, (६४४) तन्लीपः, भनेन यन् । भातां सिः, मिण्, इण्-मिणोरभेदात् यन् । निणो विकल्पपर्च (७३६) खीदीरिति ङि:।

[‡] चवधीत्यादि इन-तन्, रण्, तन्। त्रापः, (६०८) वधादेशः, (५००) विद्वः,,(०४४) पुनः क्रखः। वधादेशविकत्यपचे (६०८) खेडी घ इति इख घः, विद्वः। चातां विः, भिण्, इस्य घः, विद्वः। भिणी विकत्यपचे वधादेशः, तस्यापि विकत्यपचे (८०८) इनः कित्विरिति सेः किस्नुं, (६०६) अम्-चीपः।

[ु] राज्यते इति (६६१) जि:। ती चातां, सि:, निष्, तिष्, तिष्, पचे इम् (७०१)

[¶] भदिर्भि, दश-टी-तन्, इष्, गुषः, तन् लोपः। टी भातां सिः, निष्, गुणः। पचे भौदिस्तान्नेन्, (१५४) षङ्, (६०२) षस्य कः, (६५८) सेः किस्तं, (१११) षतं।

[॥] श्रयंति इति श्रमधाती: जि:, (८००) वा श्रमिति निलं इखः, श्रमि इति स्थिते यक्, (६४१) जेवापः। मीइ इति भन्नामकर्त्तुः कर्मालात् चक्तकर्याप (२८०) श्रयमा। श्रमि-तन्, इष्, (९८८) जीखनीनु घंषिति इखी दीर्घष, ततः तन्नीपः। भातां, सिः (८२२) भन्नत्वात् निष्, जीखमीनु घंषिति इखी दीर्घय। निषोतिक व्यपचे इम्, न जेवापः।

१२५। भावे मादंग। (भावे था, मायं १।)

मस्याद्यं वचनं भावे प्रयुज्यते । मुद्या भूयते, श्वभावि, बभूवे हुभूवे, भाविता भविता । यम्यते मुनिना, श्वयमि । श्रकामि श्रवामि । श्रविष । श्रजामि श्रविता । व्ययमि व्ययमि । श्रविष । श्रजामि । श्रविष । श्यविष । श्रविष । श

१२६। भनजगिलसी वेखमी नेलीप:।

(भन्ज- ऋगिलमः: ६।, वा ।१।, ছথ্যদী: ৩॥, न-लीप: १।) ।

त्रभाजि श्रभिज्ञ, श्रताभि श्रतिभां गौ तु, प्राविभा । गै

[•] भावे क्यादिविभक्तयः चक्तं संकादेव धातीः खाः, कत्मत्ययासु सक्तं कादि । भावो धाल्यं, तिस्ति वाचे चालनेपदस्य चाचं वधनं स्यादिल्यंः । धाल्यंस्य वाच्यः लात् युमदस्यदोरवाचलं से-प्रस्तयो न खाः, चित्रच धाल्यंस्य दिलादेरिविवाती दिवचन वह्वचेने न सः, धाल्यंस्य दिलादेविवस्यामिष पुवास्यां सूयते द्रलादो दिवचनादिन स्यादिति । सूर्यते द्रति, सया दित चनुक्तकत्तरि हतीया । सू सत्तायामिति चक्तं भावे की ते, यक् । चभावि टौ-तन्, दण्, विद्वः। वस्वे बुभवे द्रति (५६०) भुवेदिक व्या । ददन्तु पाणिनीया नेच्छिता । भाविता भविता, मिण्या, पचे दम् । भ्रम्यते सुनिना दित मसु भियं भने, ते यक् । सुनिः धानोभवतील्यंः । चमिन, टौ-तन्, दण्, विद्वः (०४४) जनवध दित इस्तः । सुनिः धानोभवतील्यंः । चमिन व्यापि, एवं चम चित्र भाविन चर्चान विद्यामि । च्यादि वध हतौ टी-तन्, चवाि स्थामि, प्रयं चम चािन, चयािन, चयािन, च्यािन, च्यािन, स्वः। चााावि, (६८६) जागीऽणविति गुणिनवेषः, धिदः। जो तु (०८८) वौक्सीसु चंय जागुवित्व वा इक्षे पददयं । भाष्यम् ।

[†] नास्ति गिर्धिसन् सोऽगिः, स घरसो लभ्य घेति भगितभा। अन्त च पिनः सभ च तत्तस्य। अन्योर्नस्य लोपः स्थादा इणि खित च परे। भभाजीति भन्ज धौ मीटने टी तन्, इण्, नलोपः, ततः सङ्भकारस्य बिद्धः। नलोपाभावपचे उङ्भकारास्य बिद्धः। नलोपाभावपचे उङ्भकारासावात् न बद्धः। एव सभी क्षय प्राप्तौ टी तन्, इण्, (७४१) तृण् रख इति तृण्, भनेन नलोपपचे बद्धः, भन्यत्र न बद्धः। गौ तु इति उपस्गे स्पपदे सतौत्यंषः। पाणिनः ६।४।३३,०।१।६८।

८२७। ढवट् ढद्दी ऽढे। (डवत ।१।, डघ: १।, घडे ७))।

ढमेव घलं प्राप्तं ढघः, स च ढवत् स्थात् नत् ढे सित । *
तथाच-क्रियमाणन्तु यत् कमं स्वयमेव प्रसिध्यति ।
सुकरैः स्वैर्णैः कर्त्तुः कमंक्तेति ति ति हुः ॥
स्वयमेव भिद्यते काष्ठः स्रभेदि । पः

धालषां: के चित् कसंस्थाः के वित् क फृेस्याय भवित । श्रव क फेर्यायं धात्ना भेव कसंगाः क कृत्विविवचा, नत् क कृत्यायं धात्नां, तेन पच्यते श्रीटनः स्थमेव, भियतं काष्टं स्वयमेव इत्यादि स्थात्, खायते श्रीदनः स्वयमेव, गस्यते थानः स्वयमेव इत्यादि त विध्यं। तथाध प्राञ्चः — कर्मास्थऽपि त्व धालथें कर्मकत्तां च कर्म्यवत्। कर्मस्थः पचते भावः क्ष्याय्य । कर्मस्थः पचते भावः क्ष्याय्य । सदाद्यः। कर्मस्थो वृध्यतेभावः कर्मृत्वत्॥ कर्मस्थः पचते भावः क्ष्याय्य । सदाद्यः। कर्मस्थो वृध्यतेभावः कर्मृत्याय्य गमादयः इति॥ पचतेभावः कर्मस्थायः । स्वति॥ पचतेभावः कर्मस्थायः । विक्रात्ति स्वत्यावः । स्वति॥ भेदादिः काष्टादिष्येव न तु भेदादिक्षति। वृध्यते भावो ज्ञानं प्रिष्यविव न तु ययादौ, एव गमादौनां भावः पादचालनादिः कर्मृत्येव नत् ग्रामादावित्ययः। एवच — निर्वत्यें च विकार्ये च कर्माव्डाव इष्यते। न तृप्राय्ये कर्माणीति सिडालीऽयं व्यवस्थितः॥ किच एकिकयाकर्मणः कर्मृत्वं विवन्यते इति वीध्यं, तेन पचत्यादनं देवदत्तः, राध्यते श्रीदनः स्वयमेव इत्यव न स्थात्।

† एक कियायां एक स्व कर्षालं कर्णुल्य क्यं सभावतीत्वत चाइ — कियमाण निति। कियमाणं साध्यमार्ग्यत् कर्षाः कर्णुः सकरेः सखिनिषाद्यः, स्वैनिजेः कर्षासम्बन्धिनिरिति यावत् गृषेः, स्वयमेव प्रसिध्यति निष्यते तत् कर्षाकर्षाः इति विदुर्जानिन बुधा इति श्रेषः। चन्त्रेन भिद्यमार्गं काष्ठं स्वयमेव भिद्यतं, काष्ठस्यात्मिङ्ग्लक्ष्पगृणेन कर्णुः सुकरेष स्वयमेव भेदी जायते इत्यर्थः। काष्ठमिति चाष्यातेनीकवात् प्रथमा। टौतन् चभेदि।

[#] टच तत् घयेति टघः, भारी ढं पद्मात् घ इत्यथः। टघः कस्मैकत्तां द्वत् कस्मैवत् भवति, नत् दे कम्मीण सर्ति, दिकस्मैकस्थले एकस्य कम्मेणः कर्तृलवित्यायां भन्यसिन् कस्मीण विद्यमाने न स्थादिल्यथः। तेन याच्यते राजा स्वयमेत मृत्तिनित न स्थात्। दयदिल्यनेन कस्मेताच्यविद्यितं यक् इ.ण मिण् भात्मनेपदञ्च भतिदिख्ति, न तु कर्मकर्तः कस्मैलं विधीयते। पाणिनिः श्राप्० यार्तिकञ्च।

१२८। कुषि-रन्जः खन्-पेवारे।

(कुषि-रन्जः ५।, ग्रान्-पे १॥, वा ११।, रे ७।)।

कुष्यति कुष्यते, रज्यति रज्यते। *

द्र | वेगाज्दुः: | (वा १२), रण् १२।, पन्दुः: ४।)। अजन्तात् दुस्य दण् स्यादा ठवे। अजादि अक्षत, अदीहि अदुग्ध। १

१३०। न तप-कघ-सद्पचदुइ:।

(न ।१।, तप-वध-सढ-पचदुइ: ५।) ।

तपो रुधः सटाभ्यां पचदुद्वाभ्याश्व इण् न स्यात् ठवे। श्रतप्त, श्ररह। श्रपत्त श्रामः फलं, श्रदुग्ध गौ दुग्धः। श्रतएवानयो-टेंऽपि टवलं। क्ष

^{*&#}x27;कुषिय रन्त च तत्त्रसात्। स्थन् च पञ्च ते। भाष्यां रै विषये स्थन् परसौपदस्य स्थाद्या कर्माकर्त्तार वाच्ये। कुष ग निष्कीषे, रेपरे पंस्थन् च, पचे संयक्। एतं रज्जातीति रन्जी ज रागे, (५६०) नलीपः। 'रे किं, भक्तीष, चुकुषे। भारीष्न, ररने ररत्ते। पंविति कृति सिर्डेऽपि स्थन्विधानं, कुष्यन्ती रज्यन्ती इत्यच (२४५) निस्तृत्वर्षे। पाषिनिः ११८०।

[†] भव् च दुइ च तसकात्। धनलभाती टुइधातीय तिन परे इण् वा खात् ढिथे। वा-बङ्खं वाधिकारिनिडच्यथे। भकारीति क-तन्, इण्, (६४४) तन्-लीपः, (५००) डिश्वः। पर्चे व्यां सिः, (६५८) से: किस्नं, (५६२) सेलें।पः। भदीकीति इणि गुणः। पर्चे (६५०) सिनिषेधे सकीऽप्रातिपर्चे भदुष्य। पाथिनिः श्रार्द्र, इर्।

[्]रंटन सह वर्त्ते यो तो सटी, सटी च तो पचड़ की चिति, ततः तपथ कथय सटपचड़ को चिति तथात्। चतन्नित इष्-निषेधे न्यां सिः, घोटिच्चात् नेम्, सिलीपः। एवं यक्त कुष्य सेः कित्तसा। घपक्ष घास इत्यादि, कालेन फलं पच्चमान घास स्वास्य सर्थं फलं घपक्र, एवं गोपन टुम्धं दुश्चमाना गौः स्वयं दुश्चं घटुग्य। चय सक्त कंक-

६३१। सन यन्य ग्रन्थ ब्रू कृ गृ दुह्न नस-भूषायात् यक् च जिसुत्रि-माढात्त्वमिण्।

(सन-भूषाधात था, यक् १११, च १११, जि—माटात् था, तारा, चिमक् ११।)।
सनन्तादे-रिण् यक् च न स्यात् द्वे, जान्तादेसु मिण्वर्जे। क्ष चिकीर्षते अचिकीर्षिष्ट। अधीते अवस्थिष्ट, ग्रधीते अग्रस्थिष्ट। ब्रूते प्रवीचता किरते अकीर्ष्ट, गिरते अगीर्ष्ट । दुखे अदुखा नमते अनंस्ता तंसते अतंसिष्ट। कार्यते, अचीकरत अकारिष्ट अकार्यिष्ट। सुते असाविष्ट असीष्ट। ययते अग्रियियत अवायिष्ट अव्ययिष्ट। आहते आविष्ट अधानिष्ट आहता । पे

पचटुडाथ्यां इष्-निषेधे व्यां सिः, सिलीपः, खभयव श्रौदिचान्नेम्। श्वतएवेति, स्वे सक्तर्यक्षपचटुडयडणात् श्वनथीः कार्यान्तरभचेऽपि कार्यकानृतिभिति वीध्यं। पाणिनिः शाराहरु, द्यु, वार्त्तिकञ्च।

सन् सननः । भूषा चर्षे। यस स सूवायः । सन् च यस्य यस्य यूय कृष कृष रृष दुइस नमय भूषायंसित तस्रात् । जि ज्यंतः । में (चात्रमनेपदे) चटः (चकर्मकः) माटः । जिव सुष विष्य माटयेति तस्मात् । न मिण् भमिण् । एसी यक्, चकारात् इण् च, न स्यात्, इणोऽभिन्नं तेन मिण् भिष् न स्यात् उदे, जानादेसु मिण् भिन्नः इण् यक् च न स्यात्, मिण् तु स्यादेवेल्ययः । दुइधातीः पूर्वेण इण्-निवेधे भव यहण् यक्-निवेधार्थे । जानत्वो विकर्मक्तेऽपि चत्रप्तानयो टेंऽपि टघलमिति बीध्यं । पाणिनः इ।१८८, वार्तिकवयः ।

पाणिनः इ।१८८, वार्तिकवयः ।

¹ चिकी वैते इत्यादि, यं कर्मुमिच्छति स स्वयमेव विकी वैते इति विकी वै-धाती: यक्षि वेधे भाशिक कर्मृवाच्यत्वात् अप्। टी-तन् इक्प्-िवेधे (५५१) सिः, चिक्रिक् लात् मिणीऽपि निवेधे (५५४) इन्। सक्तदगती विप्रतिवेधी यदवाधितं तदवाधितमेवेति न्यायात् सिवाधकस्य इषीऽपि निवेधे पुनः कथं सिरिति चेत् न्यायस्य सर्व्ववास्त्रीकारादिति। अन्य ग मीचे कौ-ते यको निवेधे भाशिकर्मृवाच्यतात् (०१८) आ, (००१) आहेशादिति ई.ं, (५६०) नलीपः। टी-तन्, इक्-निवेधे सिः इन् च। एवं ग्रयःग दर्भे इत्यस्त्रापि।

८३२। न्यादि-अन्ताढगत्यर्था मुख्ये ढे ढत्यमाप्रयः। गौणे याचादयोऽन्ये, तु यथेष्टं द्विढधुष्यिति॥*

यस्यते ग्रस्ते इति भीवादिकौ किवदुदाइरति।ब्रूते यक्निधेघे क्रय्, घटादिलात् भयी लुक्। टी-तन्, इयनियेथे, भर-विषये (७२५) वचार्देशे, (६१८) वक्तास्थेति उः, (६५२) वोचार्रम:। कृम विचेपे ते यक् निषेधे, तुदादिलात् (७३८) मः(६२८) ऋस्याने इर्। टी तन् रण्निषेषे, सिः, (७४०) स्वायृहदिति इमीऽभाषपचे (६५८) से: किन्त, इर्, (२२८) दीर्घ:। इस्पर्चतु भक्तरीष्ट भक्तरिष्ट इति च। एवं स्टूश निगर्ण इत्य-स्थापि। दुर्ग्धे इति दुइ ते, यक्निषेधे गए, प्रापी लुक्, (१९६) दादेवं। टी तन्, पूर्शमृत्रिणेव रण्निषेथे, (६५०) सकोऽप्राप्तिपचे सि-निषेधे:। नम-ते यक्निषेधे अप। टी तन्, इण्निवधे सिः, भोदिस्तात्रम्। तस धातुर्भूषायः। कारयते इति काजिः कारिधाती: तं, यक्निवेधे भए। टीतन्, इण्निवेधे, (६१३) श्रङ्, दिलादिकं, भाचीकरतः । भाङो नित्यत्वेऽपि भाव मिण्वर्जनिति कर्यनन निर्णः प्राप्तानरोधान् স্মাল-ব্যিম্যা पचे व्यां सिरिति, স্থत: मिथि जेलेंपि, স্বकारिष्ट, मिथीऽप्राप्तिपची इ.सि. जीलें।पोभावे भाकारियष्ट। णाुल प्रसुधां सुर्तयक्निविधे, ऋष्, ऋषी लुक्। टी-सन्, इण्निविधे, व्यांसिः, निष् इडग्रादि, श्रम्माविष्टः। निषीऽपाप्तिपचे, (५८६) सुक्रमोऽभे इति नियमादिन्निधेधः । श्रिज सेवने ते, यक्नियंधे भ्रष्। टीतन् द्रवनिषेधे, चङ् दिलांदि, अधियियत। निष्पत्ते अयायिष्ट, इस्पत्ते अविथिष्ट। चाहते इति चाहन ते यक्निष्धे भप्, भपोलुक्, (६०६) ञम्लोपः। टी-तन्, इपी निवेधे, सि:, निष्, (६०८) वधार्दशः, इद्घि (७४४) इस्तः, चावधिष्ट। वधाः देश।भाव-पचे (६९८) इ.स. घ:, हडाादि, ऋाघानिष्ट । निर्णाऽभावपचे (८९८) से: कित्त्वं, तती अमुलीपः, ततः सिलीपः, मार्डतः। म्राङ्यूर्व्वडन्तरकर्म्मकात् (८०८) चात्मनेपट्विधानात्, सक्तर्यकीऽष्ययं नाटः बीडव्यः चक्तर्यक्यः कर्माकर्त्तृतासभावात् ।

* दिकसंकधातुभ्यः कसंणि वाचि प्रत्ययोग्पत्तो सुद्धः गोणसुभयं वा कसं उत्तं भवतीति सन्देहं व्यवस्थामा चन्यादीति। भानित हं (कसं) यस्य संऽदः। चहच गत्ययं घरणत्ययों, जान्ती चती घटगत्ययों चित जान्ताहगत्ययों। न्यादयय जान्ताहगत्ययं चते। दिह्मपु दिकसंकधातुषु सध्ये, (२८४) न्यादयो चनी वह हृ दिख्य गह का स्य सुष पचाद्या नव, जान्ताकसंका जान्तगत्ययां य धात्रयो सुद्धः है कसंषि वाच्ये हत सर्वाप्रवाच्या चापुयुः। (२८५) याचादयो च्याच्यायं दु इ चि प्रच्य दुध सू शास जि इत्यर्थं धात्रयो गौषे कसंप्रिय वाच्ये कसंप्रत्ययमापुयुः। चन्ये तृ दिकसंका धातवः यथेष्ट सुद्धं गोषे वा कसंप्रिय वाच्ये कसंप्रत्ययमापुयुः। चन्ये तृ दिकसंका धातवः यथेष्ट सुद्धं गोषे वा कसंप्रिय वाच्ये कसंप्रत्ययमापुयुः। चन्ये तृ दिकसंका धातवः यथेष्ट सुद्धं गोषे वा कसंप्रिय वाच्ये कसंप्रत्ययमापुयुः। चन्ये क्षिय पटति। साचात् किया धानायं यह हम् यु क द्वितानंद धातृन् चन्येषु कथित् पटति। साचात् किया

निन्धे विजनमजागरि रजनिमगिम मुद्मयाचि सभीगं। गोपी द्वावमकार्यत भावसैनामनत्तेन ॥ *

इति ढभाव-पाद:।

न्ययिलं सुष्यलं, व्यविहित कियान्वियलं गौषालिमिति। स्वयं यथ्ष्टमिति स्विष्याद्तं, स्वयं अभानामा प्रयोज्यं कभीनोतं भवतीति पाणिनि स्वयं कमरीश्वराः। पाणिनिः यथा—"गौषे कम्मषि दुद्यादेः (दुइ याच पत्त दुष्ड क्ष प्रच्छ वि बूशास जि मन्य सुष) प्रधानि नी हृ कृष् वहान, वृद्धिभैवार्थयोः शब्दक्षां वास्त्र निजेच्छेया, प्रयोज्यक्षम् स्वयं प्रयानामा लादयोः मताः।''

* उदाइरणान्याइ निन्धे इत्यायार्थया। अनन्तेन क्रणेन गोपी विजनं (वनं) निन्धे प्रापिता, अन गोपीति सुख्य कथं उक्त । अनन्तेन गोपी रर्जानं अनागरि नागरिता, (२०२) देशास्त्रकालंत्यनेन कालाधिकरणस्य रजने कथं ते सकर्मकस्यापि, स्वभावा-दक्तमं कस्य नाग्रधातीं जानकार्या गोयाः (२०४) कथं ते, तत्य प्रेरणिकयाया सुख्ये कथं गोपीत्युकं। अनन्तेन गोपी सुदं हथं अगि प्रापिता, अनापि गोपी सुख्ये कथं जानि प्रापिता, अनापि गोपी सुख्ये कथं जानि प्रापिता, अनापि गोपी सुख्ये कथं जानि प्रापिता, अनिष्कां अयादि प्राथिता, अन्तेन गोपी गोपं कथं उक्तं। यथं हमाइ—अनन्तेन हावं (भावविश्वं) अकार्यंत कारिता, अन्य गोपी सुख्ये कथं उक्तं। अनन्तेन एना गोपी भावय अकार्यंति भेषः, अन्ते भाव इति गोपं कथं उक्तं। अकार्यंत इति कारित जानकार्यातीः भीता।

चनमंनाल--

सत्ता-जीवन-दर्प-भीति-भयन-कीला-निवास-चया-ऽत्यक्तध्वान-नभीगित-स्थिति-जरा-लज्जा-प्रमादीद्ये। छन्मादं च प्रलायन-समययी: खातौ चवे खोटने मीई धावन-युड-ग्राजि-दहने मानौ मुतौ मज्जने॥ दीप्तौ जागर-भीय-वक्तगमनीन्साई सतौ संभये म्लानौ मन्दगतौ च तृख-पतने चेष्टा-कुषी रोदनी। बढी कावकृतौ च सिडि-विरतौ क्षेपविभे वले कस्पीहेग-निमेष-सङ्ग-यतन-खेदे घवीऽक्षकृता.॥

सक्तमंकाय कमाविवचायामकमंका भवन्ति, तथाच भाष्यम्— भातीरथांन्तरे हत्ते धालयेंनीपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरिविवचातः कमावीऽकामांका निधिति॥ भालयें न सह कमांब उपसंग्रहादिखये, यथा, तपस्रति सुनिरित्यादि।

धर्घ पादः—क्तिः।

-0x20\202-0-

१ ३३ | भवद्भूतभव्ये निशः कादाः । (भवत्-मूत-भव्ये ७), विशः ।१॥, कादाः १॥)।

क्याद्याः स्य स्तिस्रस्तिस्रः क्रमात् वर्त्तमानातीतभविष्यत्सु कालेषु स्युः। *

> ग्रेते स चित्त-ग्रयने मम मीन-कूर्य-कोलोऽभवत्रृष्टरिवामनजामदम्नाः।

पार्व्यक्रियायाः समाप्तिपर्यनः काली वर्त्तमानः, यथा महाभारतं पठति । स चतुर्ळिम:--यया, प्रवृत्तीपरतयैव, वृत्ताविरत एव च ; नित्यप्रवृत्तः, सामीयो वर्तमान-श्रुद्धिः । क्रमेण यथा---भांसं न खादित, पादौ प्रवत्तं भांसभीजनं निवर्त्तयतीयर्थः । इ.इ. कुमारा: कीड्लि, तदानीं कीड्राभावेऽपि पूर्वकीड्राया बढ़ी वर्त्तमानलात्। पर्व्यतासिष्ठन्ति, नित्यप्रवृत्तत्वात् । किञ्च पर्व्यतानां नित्यप्रवृत्ताविष सन्यन्धविवज्ञवा भूतभविष्यतकालयोर्पि प्रयोगी भविष्यति । सामीप्यी दिविधः — भूतसामीप्यी भविष्यतः सामीष्यय, यथा-चागमनानन्तरमपि एषीऽइमागच्छामि, एवं गमनात् पूर्व्वमपि एवीऽष्टं गच्छामीति। पाविनि: शशश्रश्रा

यिमन् काले कियासमाप्ति भेवति स भूतः, सच विधा,-पदातनः, श्चलनः, परीचचेति । क्रमेण यथा — सः भयाभवत्, स स्नोऽद्राचीत्,स बहुदिनं नगाम । भयतने घी, इसलने टी, परोचे ठीति कथित तन्न, सर्व्यवेत व्यक्षिवारात्। पाणिनिस् "पनयतने सङ्" (३।२।१११), "लुङ्" (३।२।११०), "परीचे सिट्" (३।२।११४)।

भविष्यत्रपि चिधा--- ऋदातनभविष्यन् अनदातनभविष्यन् दूरभविष्यन् । यथा--- अद भविता, यो भविष्यति, वलारान्ते भविष्यतीति। पाणिनिन्तु "पनयतने नुट्" (शशारक), "लुट् भिने च" (शशारक)।

[🐡] भवंत्र भृतम् भव्यम् तत्तविमन्। की भाद्यायासां ता:। भत्र कालेद्रति भवन्नित वर्भनाने श्रतुर्विधानात वर्धमान:, भूत इति विश्रेष्यं पदमध्याद्वार्थे। श्रतीते क्षतिधानादतीत:; भव्यो भविष्य १ काल:, सामान्यकाले तव्यादि-विधानादिप इह भविष्यतकाले यः। की खी गी-वर्त्तमाने, घी टी ठी-व्यतीते, डी टी ती-भविष्यति, घो - सर्व्वकाले (१६३)।

योऽभूद्वभूव भरताग्रजक्षणाबुदः कल्की सताच भविता प्रहरिष्यतिऽरीन्॥ *

६३४ । की सोनानीते। (की ११, कीन ११, पतीते थ)। से सोन योगे अतीते काले की स्थात्। इन्ति सा रावणं रामः। ११ १३५ । यावतप्रास्यां सच्चे। (यावत-परास्यां ३॥,मज्जे थ)।

यावद् भवति कल्की, पुरा दृश्यते कल्की । ‡

८३६ | कदाकहिंग्यां वा । (कदा-किंहिंगां ३॥, वा ।२।)। कदा प्रथामि गोविन्दं, किंहिं द्रच्यामि ग्रङ्गरं। §

८३० । किन्मि लिप्सायां । (निनिः ३ण, निमायां ०)। डतरडतमत्त्रयन्त-किमो रूपै योंगे भव्ये की वा स्थात् लिपायां। कतरः कतमः को वा भित्तां रास्रित राति वा। ¶

अ स्ती-गी ढी-पीनां विश्वषिविधं वस्त्यतीत ता विद्याय उदाइरित शेते इति । स सम विकायधि चित्तगय्यायां शेते, यः सीनक्त्रभंकीलोऽभवत, रहित्वामनजामद्द्याः प्रभूत्, भरतायजक्षणवृद्धो वसूव, कल्को भिवता, सतां साधूनां प्रशीन प्रहरिष्यते चेत्य-लयः । सीन-क्र्यांभ्यां कीलः सीनक्र्यंकीलः, एवं सर्व्यंच वियहः । कीली वराहः ।

[†] स्म इत्यव्ययं चतीतकालवाचि । यद्यपि भृतमावि स्मण्रच्दः प्रयुक्ती वैयाकरणेः, तथापि भृतिक्रयाक्रमान्वियत्वे एव प्राय्याः श्रिष्टप्रयोगी दृश्यते । यथा ''प्रश्नित स्म जनता दिनात्यये'' इति रघुः । पाणिनिः ३।२।११८ ।

[‡] भाष्यां योगे भविष्यत्काक्षे की स्थात् । निकटागामिके पुरा, तत्साहचर्यात् यावदिख्यययं। भतप्त, यावद्दास्यति तावद्भी च्यते इत्यादी भव्ययभिन्ने न स्यात् । पाचिनि: ३।३।४।

[§] भाभ्यांयोगेभव्ये की वा स्थात्। पस्थाभि द्रद्यामीलुदाष्टरणदयेन विकल्पा दर्भित:। पाणिनि: ३।३।५ ।

[¶] किसिरित वह वचनेन सर्विविधानां किस्यव्दरूपाणां प्राप्तिः। जन्युनिच्छा

१३८। लिप्यसिद्धी। (विसा-विही क)।

लिफेरनावादिना खगीरे: सिष्ठै। सत्यां भव्ये की वा स्थात्। यो भिचां ददाति दास्यति वा स खर्मे याति यास्यति वा । *

६३६। ग्यर्थाम्सयोः । (स्ववांषंपधीः ण)।

ग्या प्रधे पृथादी प्रामंसायात्व भन्ने की बा स्थात्। गुरुषेदा-याति प्रायास्यति वा, प्रथ लं वेदमधीष्व वयं तर्कमधीमहे। पे

८४०। जात्विपिथ्यां सदा चीपे।

(जातुं अपिभ्यां ३॥, सदा २॥, चीपै २॥) ।

जातु निन्दिस गोविन्द मिप निन्दिस यङ्गरं। \$

१८४। कथमा खीचवा।

(कथमा ३।, खी।१।, च।१।, बा।१।)।

लिप्सातस्यांगस्यमानायानित्यर्थः । (५१०) दयोर्माध्ये कः, वहनां सध्ये कः, को वादाता,भिवांरांति रास्यति वा,राल दाने । पाणिनिः १।३।६ ।

लखुमिष्यते यत् तत् लिप्प्यां (पद्मादिः) कर्माण यः, तेन सिहिसस्यां । प्रयक् योगात् किन्धिरिति वानुवर्णते । दातारं कथिन प्रीन्सः हयति यो भिचामित्यादि । प्ररोचनायामिति कौमराः । पाणिनिः इ। इ। ६। ।

[†] ग्या पर्थी ग्यंथं: । इसी प्रिष्यादाविति कथनात्, (८५४) वस्त्रमाणेषु ग्यंथं विध्यादिष्ठ मध्ये प्रेष्यप्राप्तकालातुमतय एव ग्रस्तने । पार्थेचा सम्भावना । गृहर्येदायातीति पार्थंचार्या, लं वेदमधी जिति ग्या पर्धे प्रतृमती उदाहरणह्यं, प्रधी ज इत्यस्य पर्चे प्रधीये इति की प्रप्तिमे इंद्रचस्य पर्चे प्रध्याम है इति गी च भविता । प्राथंचायां प्रीप्राणें भंभ्ये ती नित्यमिति वक्तव्यं (संविष्तमारं, तिक्तन्तवादे ८३८ मृत्रम्), तेन इटियेदायास्यति प्रीष्ठं धान्यं वस्तामीलेव । पार्थिनि: २।३।८।

[‡] जालपिथां योगे, चेपे गर्शयां, सदा सब्बेंषु कालेषु नित्यम्व, की स्वादिल्यंः। सदेलाधिकारः।. जातु कदाचित्। पाणिनिः १।३।१४९।

क्षयं निन्दस्यजं, निन्दे: यभुं, देवों निनिन्दिय। *

8२ | किसि: ख़ीत्यो | (किश्वः रण, खी वी रस)।

83 । ऋन्ये आ अहा मर्जे । (भने: २॥, घारा, घत्रदामणे का)। किसिश्व (८३७)।

न यदधे मर्पये नी यत् स मिर्हिश्यते हिर्रे। हरं गर्हेत, को निन्देत् विष्णुं निन्दिश्यतीश्वरं॥ क्ष

८८४। निंनिनास्त्रधीयां ती।

(किंकिल- अपस्यर्थाभ्यां ३॥, ती ।१।)।

तं किंकिल द्वषीकेशं निन्दिष्यसि, न मंखसे। महादेवश्वास्तिनाम, श्रद्धे नी न मर्षये॥ §

कथम् प्रस्टेश योगे सर्वेषु कासेषु स्वी चकारात की चवा स्थात् ग्रहीयां। भटा चिपे क्रस्यतुवर्त्ततं। कथं निन्दशीति कथंशब्दस्य तिषु वाकीषु सम्बन्धः। पाणि।नः श्रश्थः।

[†] उतरउतमञ्चल-किमी रुप्रै वेंगि सब्बेंदु कालेषु खी-ल्पी स्वातां गर्हायां। पार्विनि: श्वारु४४।

[‡] यहा सक्षायना, नर्षः चना। यहाण सभावः सब्बं, मर्थस्थाभावः सम्प्रें। सम्बद्ध समर्थस्य तम्बिन्। किस्थिति हितः। उत्तर उत्तम काल-किमी रूपै-रूपेस सुद्दै थें। से स्वेषु खी-त्यौ सः सम्बद्धानवें हों, स्वर चिपे इति नातुवर्तते। स सनो यत् इरिंगहिं स्वते इर गर्डें। तदइंन यहभे नो मर्थसे, को जभी विण् निन्देत्, ईयर निन्दिस्ति, तदहंन यहभे नो मर्थये इत्यन्वयः। पाणिनिः शशर्थस्।

र्ङुकिम: पर: किल, किकिशः। चलपेषे ऽलिभवत्यादि:। चाम्यः शंगे सञ्चेषु कालंबुती स्याद्यञ्जानवें। स्वं किकिशक निस्थितं इतीकेकं निन्दियन्, ऋतिनान

८१५। जातु-यद्-यदा-यदिभि: खी।

(नातु-यद-यदा-यदिभि: ३॥, खी ।१।)।

न मर्षये यहधे नो जातु निन्दे जनाईनम्। *

१४६। यच-यनाभ्यां चेपचिते च।

(यस-यनाभ्यां ३॥, चैपचिने ७, च ।१।)।

यच निन्देत् विभुं, गर्हे चित्रं ऋडां न मर्पये। 🕆

८४७। चित्रे त्ययदिना।

(चित्रे ७।, तौ ।१।, भ यदिना ३।)।

यदि-वर्ज्जितेन ग्रब्दमानेण योगे चिने गम्ये सदा ती स्थात्। चित्रं द्रच्यति नामान्यः क्षणं, पम्येत् यदीम्बरं। ध

८४८। वाहेऽप्युताभ्यां खी।

· (पार्ट् ७), भिप-खताम्यां ३॥, खी ।१।)।

समाव नायां महाटेवच न संखसे, तदहं नो यद्वधे न मर्थयं इति श्लोकार्यः। पास्किनिः शशिष्टिः।

^{*} जातुष यद च यदा च यदिष ते ते:। एभि योगे सब्बंद कालेद खी स्था-दयडामर्थे। भवान् आतु कदाचित् जनाई नं निन्दत् तद इंन मर्पये ना यड्घे। एवं यक्षिन्दत् यदा निन्देत् यदि निन्देदिति च। पाणिनिः ३।३।१४०, वार्त्तिक्च।

[ा] यचय यात्रय ताथ्यां। भाष्यां योगे चेपे चित्रे चकारात् भयज्ञामधे च, सन्त्रेषु कालंषु खौ स्यात्। चेपो गर्का, चित्रसायर्थे। जनो यच विभुं निन्देत् तदहं गर्के, तिवत्र, तत्राहं ग्रज्ञांन कारोमि, तदहंन मर्थये इत्ययं:। एवं यत्र निन्देदिति। पाणिनि: ३।३।१४८-१५०।

[‡] यदि बार्जिन इति बीपदेवमतम् ; यद्य यच-यदि-वर्जम् इति तु भद्दीजित-क्रमदीयगै। नाम सम्भावनायां श्रन्थः क्षणं द्रस्यति तिविचं। ऋ-यदिना किं, श्रन्थः द्रंथगंथदि पञ्चीत् तिचिचं, श्रन खी-पयोगंदर्श्यवा यदिना योगे चित्रं ग्रम्ये सदा खी स्यादिति मुचितं। पाणिनिः ३।३।४॥ ।

श्रपि इन्यादघं मभ्-रत दुःखं जयेदजः। *

८८। प्रौद्धा सस्भावने । (भौका रा, सभावने थ)।
प्रौढिः सामर्थ्यः सभावनं क्रियास योग्यताध्यवसायः।
प्रौढिन्देतुक-सभावनोपाधिकेऽर्थे वर्त्तमानात् धोः सदा खी
स्यात्। श्रपिहिंस्यात् जग्नायी महापातकपञ्चकं । प्रै

८५०। यहाधै वी ऽयदि।

(ऋडार्थे: २॥ वा ।१।, ऋ-यदि ७।)।

अद्धे ऽजं भजे: प्राणै-भैच्यसेऽजं बभक्षं तं । 🕸

८५१। भव्ये वा फलहेली:।

(भव्ये ७), वा ११।, फलई ली: ७॥)।

र्यं यायाचे-वमेदीयं, श्रीयं नंखति याख्ति। ¸§

अ वाटं चितिशयः । चितिशयार्थे वर्त्तमानाभ्यासप्यताभ्यां योगे सर्वेषु कालेषु स्वी ख्यात् । श्रमुः असं पापं चिप क्ष्त्यात् पापक्ष्तने चितियोग्य इत्यर्थः । चनः क्रच्यः दुःखं उत नयेत् दुःखन्ये चितियोग्य इत्यर्थः । पार्षानः इत्यर्थः ।

[†] योग्यताच्यवसायः भौग्यतावलम्बनं । सामर्थ्यंन क्रियास् योग्यतावलम्बनं छपाछि-भेंदकं यस्य तिक्षत्रयें वर्त्तमानात् भोः सब्बेंपु कालेपुग्वौ स्यादित्ययः । ''सिद्धाप्रयोग'र इति च पाणिनः । जगन्नायः सहापातकपञ्चकं ऋषिष्ठंस्थात् सामर्थेन सहापातकपञ्चक-इनने योग्य इत्यर्थः । पाणिनिः ३। श्रु १५४।

[्]र न यद ष्ययद तिकान्। ऋडायें योंगे प्रौका समावने सर्वेष जालेषु खी स्थादा न तु यद्ष्रव्दभयोगे। त्वं प्राचै: सामयों: घनं भने: षष्टं यद्दे। पर्व षनं भन्त्यसे तं समक्ष, इति भविष्यदतीतयोक्दाष्टरणदयं। ष्यदि किं, यद्देऽनं भवान् प्राचै-भेजेन् यन् पुक्षोत्तममिति पूर्वेण (९४९) नित्यं खी। पाणिनि: १।३।१५५।

[§] वाग्रहण परच वाधिकारिनिबस्तयो । फलंकार्थ, हेतु:कारण । फलकियायां फेतुकियायाञ्चवर्त्तमानात् भी: भव्ये खी वास्यात्। जन: ईश्रंनभेन्नेत्रं यंयायात्

रपूर । कामोक्ते ऽकचिति । (कामोक्ते अ, पकचिति अ)। कामं भजेत् भवान् भर्गे कचिदर्चिष्रते यिवं । *

ध्यू ३ | गी चेच्छा थैं: | (गी।रा, च।रा, दक्का थैं: २॥)। दच्छामि, प्रव्यं सेवेत श्रीपतिं सेवतां भवान् । कामीक इति किं, दच्छन् करोति । पं

्रभूष्ठ । विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाध्येषण-संप्रत्र-प्रार्थनाप्रेष्य-प्राप्तकालादौ । (विधि—प्राप्तकालादो ७)।

सदा। यागं कुर्यात्, इह भुद्धीत भवान्, इह मयीत भवान्, पुलमध्याप्रयेत् भवान्, िकं भी वेदमधीयीय उत तर्कमधीयीय, भी भी जनं लभेय, प्रेषितस्वं गङ्गां गच्छे:, प्राप्तस्ते कालस्तपः कुर्याः। एवं गी । कृ

कल्यार्षं प्राप्नुयात् । देश-नमस्तारी हेतुः, कल्याणप्राप्तिः फर्स्नः। पचे श्रीश्रं नेस्निति चेत् श्रायास्त्रति । पार्षिनः ३।३।१५६ ।

अस्छू असुत्या सदेत्यनुवर्त्तते। कामोक्रमिच्छाप्रकाशः, तिस्त्रवर्धे सर्व्वेषु कालेषु स्वीस्थात् न तृक्षित्रभवन्द्रपर्योगे। भवान् काभं यक्षेष्टं यथा स्थात्त्या भर्गे थिवं भक्तेत् इति वक्तुरिच्छया एतदाव्यं। भक्तिसिंदिति किं, किंचित् शर्वे पर्विद्यते इति किंतुक्तिया स्वास्थित इति किंतुक्तिया स्वास्थात् । (कृषित् कृष्टिति किंतुकृष्टित विद्याप्त स्वास्थात् । (कृषित् कृष्टिति किंतुकृष्टित विद्याप्त स्वास्थात् । (कृष्टित् कृष्टिति किंतुकृष्टित विद्याप्त स्वास्थात् । (कृष्टित् कृष्टिति कृष्टित कृष्टित

[†] इच्छा छैं शेंकि सर्वेद कालेद कानो कि स्त्री गीच स्थान् । घडं इच्छानि — भवान् ग्रव्वे न डाटेवं सेवेत, श्रीपतिं सेवतांवा । घव इच्छादकाश्रे स्त्रीगीच । इच्छन् लगः करोति इत्यव इच्छाप्रकाशीनास्त्रीतिन स्त्रीगीच । पाणिनिः ३।३।१५०, वार्तिकच।

[‡] विधिय निमन्त्रणस्य भामन्त्रणस्य भ्रध्येषणस्य संप्रत्रश्य प्रार्थना च प्रेयस्य प्राप्त-कालादियेति तिकान्। सदा इति इति:। एव्हेषेत् सब्बेषु कालेप् खो गी च स्यात्। भप्राप्तप्रापकी विधि:, (विधि: प्रेरणं स्त्यादेनिकस्य प्रवर्भनिनिति सिदान्तकीसुदी)

ध्रुप्। समर्थनाशिषो गी।

(समर्थन-चात्रिषी: ७॥, गी ।१।)।

सिन्धमपि शोषबाणि। #

८५६। तस्रोस्तातङ् वाशिषि।

(तु-ह्यी: ৩॥, तातङ् ।१।, वा ।१।, স্ব।মিষি ৩।) ।

पातु पातादा शिवः, पाहि पातादा शिवः। १

१५७। मुक्तभंशार्थे हि-त-ख-धं।

(सहभूभार्थे ७। हिन्त-खंध्वं ।१॥)।

पीन:पुन्धे चतिमये चार्ये सदा काले ग्या हि-त-स्व-ध्वं स्यु:।

यथा, यागं क्यांत, एवं क्यामुपाधीत। यस्याकरणे प्रत्यवाय: स्याचित्तमलणं, (निमलणं निधीगकरणं भाग्यकं याजभोजनादी दी हिचादे: प्रवर्त्तनिकिति मिडाल-कौमुदी), यथा, इह भुक्षीत भवान् । यस्याकरणे प्रत्यवायं न,स्याचदामल्लणं (ज्ञामल्लणं कामचारकरणम् इति सिडालकौमुदी), यथा, इह प्रयोत भवान् । सत्कारपूर्वकि व्यापार: इति सिडालकौमुदी), यथा, पुत्रक्यापण्येत् भवान् । संप्रयो जिज्ञासा, (संप्रधारणिति पाणिनिटीका), यथा, किं भी वेदमधी-यीय छत तर्कमधीयीय, अहमिति शेषः । प्रार्थना याच् आ, यथा, भी भोजनं सभेय, अहमिति शेषः । कर्माणः प्रिर्ण प्रेयं यथा, प्रेषितस्वं गक्कां गर्कः । त्विक्रयोचित-काललाभः प्राप्तकालः, यथा, प्राप्ति कालः तपः कुर्याः । भादिणब्दादनुमती च (चित्तसर्गः कामचारानुज्ञा इति पाणिनः), यथा, याइनहं करिष्यं इति प्रयो, कुष्यं इति । भन्तती ख्या न प्रयोगः । एवं गीति यागं करोतु इत्यादि । पाणिनः शश्रिश्वर-१६३।

- भश्रक्विऽध्ययसाय: समर्थना, (''समर्थनाशिषीय'' इति कातल्यम्), यथा सिन्धुनिप
 श्रीषयाणि । इष्टार्थस्थाविकारणमाश्रोः, यथा जीवतु भवान् । पाणिनिः ३:३।१०३ ।
- † तु-इयो: स्थाने तातङ्वास्यादाधिवि गम्यमानायां। सर्व्वावयवादंशोऽयं, तेन ङिक्तेऽपि नान्यस्य स्थाने । डिक्तनु,भवान् राजलं कृषतादित्यादावगुणार्थे, वद्य स्व कान्तौ—भवान् स्वर्गसृष्टादित्यादौ जिप्राध्ययेशः। पाणिनि: ७१।३५ ।

मुहुर्भृषं वा लुनाति लु**बाव चविष्यति वा—लुनीहि** लुनीत लुनीष्व लुनीध्वं। *

ध्यूट । मास्मेन घीट्यो । (मार्कन रा, वी-खी रा)। मास्मयन्देन योगे सदा घी-खी स्तः। मास्म भवत् दुःखं, मास्म भूत् योकः। प

ह्यूह। माटीवा। (माश, टी।श, वा।श)। मां-योगे सदाटी स्थादा। मा क्रिंसीत् सुखं, मा विरमतु, मा विरंस्रति। इ

६६०। खागिन। (ही १११, पाक्रिवि २०)। जीव्याचिरं सज्जनः। §

भ पीन:पुन्ये चिताये चार्ये, मर्ब्वेषु कालेषु, लिङ्गे युचिट चम्पदि च प्रयुज्यमाने, तेवासेकले दिले वहले च ग्या हित स्व ध्वं स्युग्लयं:। ततायं विशेष:—कर्चिर चार्च्य परसीपदिनी हित दिते द्वं, कर्निर कर्मीण भावे च चालसेनेपदिन: स्व ध्वसित द्वं, कर्निर जभयपदिनथलागीत । कियासम्बर्ध सल्यव्यं विधिवां भवतीति वक्तस्यम्। (पाचिनिः ३।४।३), यथा, पुरीमवस्कन्द लुभीहिनन्दर्भ मुषाण रवानि चरामराङ्गनाः इति साघः, चव चतीतकाले प्रयोगः, रावणः कर्ता। चव पुनः पुनयस्कन्दिल्येषां सममूलक एव इति सिद्धान्तकीमृदी। पाणिनः ३।४।२।

[†] माम्य-योगोऽत्र व्यवद्वितोऽव्यवहितो वा । माम्य योगेऽपि (५५०) प्रमागमनिषेषः । पाणिनिः ३।११९६ ।

[🛨] श्रवापि योगो व्यवहितोऽत्य ४ हिती वा। पाणिनि: ३।३।१०५।

[§] इष्टार्थस्याविष्करणमाधी:। माशिषि गस्यमानायां टीस्थात्। माधीय मध्ये एव सम्भवति, सुतरां सदेति निवसं। पाणिनिः ३।४।१९६।

१६९। सुर्वेख्ययदि खतीते।

्र (सृर्थै: ३॥, ती ।१।, भयदि ७।, तु ।१।, भतीते ७।) ।

स्मरणार्थेयों गे श्रतीते काले ती स्थात्। यच्छव्दश्वेत्र प्रयुज्यते। ध्यपवादीऽयं। स्मरस्थेनं नंस्यसीयं, यत् स्मरस्थानमः थिवं।

८६२। वानेकसार्थे। (वाश, पनेकवार्थे ०)।

श्रनेकसार्ये प्रयोक्तार सित स्वरणार्थेयोगे श्रतीते तो वा स्थात्। ध्यायसीदं यदीमानं द्रस्थति स्तोष्यते भवान्। 🅆

१६४। लियुषादसादि त्यादि नियाः।

(लि-युषाद-षद्मदि ७।, त्यादि ।१॥, तिम: ।१॥)।

[#] स्मृषातीरथं इव पर्यो थेषांते तै:। न यद प्रयह तस्मिन्। ध्यपवादोऽव-मिति घ्या पपवादो विशेष:, तेन यद: प्रयोगे पस्माप्राप्ती घी एव, न तु टी-स्त्री। तं ई्यं नंस्त्रसि एनं खारसि पत्र ती, यत् लं शिवं पानम: तत् खारसि, पत्र घी। पाणिनि: १।२१२,११३।

[†] स्वर्धते यत् तत् आर्थेनिति जानात् कर्षापि यः। चनेक-नेकिनितं साथं सारचीयं येन सीऽनेकसार्थसिसन्। भवान् यत् ईशानं द्रस्यित सीखते च इदं व्यं ध्यायिस स्वरसील्यंः। पचे ध्यायसीदं यददाचीदसायीच श्विं भवान् इत्यदि। सार्थस्य परस्यरसाकाङ्कले विधिरयं, तेन, सारसि यत् लं तर्कमपठः काशीमगच्छस् इत्यादी न स्वात्। पाणिनिः १।२।११४४।

[‡] परत्वात् सब्बेंबां वाधकोऽयं। ज्ञानचेदिति, ज्ञानस्यासकावात् सखस्याप्यसमाव इति भ्रवासकावः। अविष्यति भूते च इति पाणिनीयाः। पाणिनिः'३।३।१३८,१४०।

ली युषादि श्रसादि च त्यस्यार्थे प्रयुज्यमाने त्यादीनि त्रीणि त्रीणि क्रमात्स्यः। अ

जानाति योऽखिलं, यश्च न जानीतः श्वतिसृती ।

प्रास्त्राणि च न जानित्त, स मया सेव्यते थिवः ॥

भासि त्वसेको विष्वेध, भाषोऽचुतिष्यवी युवां ।

भाष यूर्यं हरिहरब्रह्माद्याः, पाद्यनिक्यः, ॥ पे

एको भवामि स्र भवेऽहमादी, दारैर्थोभी स्र भवाव श्रावां ।

वयं भवामो बहवः स्र पुत्रै-स्वनाययाद्यापि विभो प्रसीद ॥ \$

· इति ति-पाद: ।

द्ति खाद्यन्ताध्यायः।

^{*} लिख'युमा स पक्ष स तत्ति सम् गर्य इत्य थे:। यस्य थें दित सर्त्ति सर्वा पि च वाचे द्र स्थे:। यद्या (५११) न्यकः प्रमे दत्यादिना सर्त्ति वाचे प्रस्थय सर्त्तेची, लिङ्गे सर्त्ति दिवादि वर्यं, युमादि सर्त्तादि सिवादिवयं, प्रस्थि सर्त्ति सिवादिवयं; तया (६२०) द्र भावि मे-सित्यनेन सर्वा विचा प्रस्थि सर्त्तेची, लिङ्गे सर्वा विचादित्यं, युमादि सर्वा कि - मादिन्यं, मस्यदि सर्वा ए-मादिन्यमिति। तेषाभेकतः दिल-वक्तेष् विभक्तीनामयोक्तवचन-विवचन-वक्षुवकानि स्युद्धियः। भावि माद्यामिति (६२५) पूर्वभेव भाववाच्ये व्यवस्था स्था। पाणिकः १।४।१०९,१०९,१०६,१०९,१०८।

[†] कानातीत्यादि। यः शिवः भखिलं सकलं जानाति, युतिसृती च यं न जानीतः ज्ञापियतुं न सक्तुतः, भन्मभूतजार्थोऽयं, ब्रास्तािष च यं न जानित ज्ञापियतुं न सक्तुवित, इति एकत-दित्त वहत्वेष कर्णार प्रत्ययः, स विवः सया संव्यते इति कर्माणि प्रत्ययः। इ विविध्य तं एकी भावि, हे भच्युत् स्वी युवां भायः, हे इरिहरक्षक्षायाः भनेक्षी युवं भायः, इति युपदि कर्णार एकत-दित्त वहत्वेष्ट्राहरणानि। पाहि, सुद्दश्चं वा पाथित्यदंः, भक्षान् इति क्रेवः, (८५०) सुदुर्श्यार्थे इति हि।

[‡] भवे संसारे चादी उत्पत्तिकाले चडं एकी संशामि सा, प्रय टारे: सङ्घायां छन्नी भवाव: स्क, तथा प्रणे: सङ्घ वयं कड़ भी भवाम: सा, एतत् सब्दें लक्षायया, चतएव है दिनों च्यापि लंग्नीद मसदी भद, यथा न प्रत्भेवानीलिभिनाय:। भव चस्मि

१०मः। हादन्ताध्यायः।

१म पाद:- ल्य:।

१६५ | झड़ी: क्र-भावे | (क्रन्।१।, भो: ५।, क-मावे الله

वच्चमाण-च्यः क्षत्मंत्रः स्थात्, सच धोः परः स्थात्, स च के भावे च स्थात्। *

कर्त्तरि एकत्व दिल-वहुत्वेषूटाहरणानि । युष्पदश्चदो मृञ्चर्यारेन यहणं, गीणयीसु लिङ्गविदिता विभक्ति: । यथा, चलंभवित चनहंभवतीत्यादि । एवं

प्रकृतिविक्रते व्यापि यची क्रात्वं इयोगि।

वाचक: प्रकृते: सङ्गांग्रह्माति विकृते नंतु॥ इति प्राघः। ' यथा, एको इत्तः पञ्चनीका भवति; पच हवा एका नीर्भन्नीतप्रदि।

• वस्त्यमाणमत्यादिश्रणम् पर्यम् स्यः प्रत्ययसमू इः क्षत्मं इः स्यादिययः। कार्निति क्षत्, वस्त्यमाणभत्ययानां मंज्ञाकारक इत्ययः। सच भातुविश्रणादिष्ठतोऽपि प्रयोगानुसारादण्यसादिप भातोः स्यादित्यस्य भाइ, सच भीः परः स्यादिति, भाभातुसमादित्ययः, तेन (११५०) श्रीष्ठजादिस्यो विश्वितः क्षय द्रेरभातीरिप स्थात्, यया दृश्यां इत्यादि। एवं भयंतिश्रेषे विश्वितोऽपि कृत् प्रयोगानुसारादर्यान्तरेऽपि स्थादित्यत् भाइ, सच के भावं च स्यादिति, तेन ढभाग्याविश्वितस्त्रस्यो वसतेः स्थादित्यत् प्राप्तः, यया वसतीति वास्त्रसः, भव मनीपादिवात् वृद्धः; अपादानेऽपि यया, भंतव्या रजनी। एवच कभूममप्रदानकरणिकरणेष्विप भनीयः स्थात्, यथा, प्रवक्तीति प्रवचनीयो गृक्षभन्नस्यः दशास्त्रसे दानीयो विषः, स्वायतेऽनेनिति स्वानीयं असं, स्वयतेऽस्ति समणीयं यदं, ''अव रस्यते तत्र रमणीयं'' इति गोयीचन्द्रः। एवं कर्त्यव्यपि प्रयण् यथा नियोक्तम्दर्शेत नियोग्यः प्रसः, जायते इति जन्यं, भाषततीति भाषात्यः प्रसादः। स्वत्यते (११८१) क्षश्वीः कभाव प्रत्युक्ते-रन्यवापि प्रयोगत द्वित स्वयं वस्यितः। पास्तिः। ११६८१,८१।

८६६। सक्षो बाध्यः। ^(सदपः १।, बाध्यः १।)।

समानरूपस्यः क्वता बाध्यते, न ल्सरूपः। *

१६७। तव्यानीयया ढ-भावे।

(तव्य-भनीय-या: १॥, ढ भावे ७।)।

धोरेते स्युर्ड-भावे। चेतव्यं चयनीयं चेयं पुर्खं। भवितव्यं भवनीयं भव्यं त्वया। पं

भगिक्षि कारके वाची वाच्यलिकः: क्षदुच्यते।
भावे ल्यकः-खलयांन्या भनटाया नपुंचके।
क्यायन्याय स्थियां ज्ञीयाः, पुंखयु र्घनकौ तथा।
भनीवान्यु कतां लिक्नं वेदितस्यं प्रयोगतः॥ (परिशिष्टपत्रं द्रष्टस्यं)
पाणिनिः ३।१।८६,८०। एतन्यते तस्यत् द्रस्यिकं दृश्यते।

विश्वेषेण सामान्यस्य वाधनं नियमयित । विश्वेषेण कता सामान्यः कत् सदयएव वाध्यते इत्ययः । सदयलन् अनुवसं हिला स्थायिभागेन एकावयवलं । यथा,
विश्वेषेण ध्यणा सामान्यो य एव वाध्यते, न तु तत्यानीयौ । एवं एकार्थे एव
सद्यतं रुद्धते न तु भिन्नार्थले, तेन पचादिलान् कर्त्तरि विद्वितेन विश्वेषेण अन्प्रत्ययेन सामान्यः सद्योऽपि घञ्न व वाध्यते, अत्रप्य पचतौति पचः, पचनं, पाकः
इत्यादि स्यादेव । एवं १११५५) ञीषौत्यादिना स्त्रीविद्वितेन अन-प्रत्ययेन अनट् न
वाध्यते, तेन कारणा कारणमित्यादि । एवमन्यचापि । न त्यस्वपद्यनेन असद्यविश्वेष्यभेन अस्थ्यसामान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा

विश्वेष्यभेन अस्थ्यसामान्यो न वाध्यते इति । पाणिनिः इ।१।८४ । एतन्यते विभाषा

[†] तव्यस भनीयस यस ते। उद्य भाव्य तत्ति स्पृति, भव विशेष इत्यत्त भव्य इति भविष्यदाचिप्रयोगात् तव्यादयो भविष्यत् काले स्पृतिति, भव विशेष कवनाभावात् भव्यक्षित् कालेऽपि। चि-तव्य, एकाजिवर्षान्तवात् इस्, (५४२) गुणः एवं भनीये चयनीयं, ये चेयं। भव पुष्यमिति कर्माणः क्षीवत्वात् तिहिशेषणान भेतव्यादीनामिप क्षीवत्वं। भावे तव्यादी भवितव्यमित्यादि। भव्यमिति यकारस् (४२२) भज्यस्वात् (१५) भोकारस्याने भव्। एवं भावियतव्यं, वुभूवितव्यं, वीभ्यि तव्यं, पुणकाियतव्यं क्षाचीयतव्यं । भावप्रवयान्तवात् क्षीवत्वं। तथाप्य-

्६्८। नो ऽचोऽन्तरदुर्गेः प्राग्वसो ऽख्या-भाभूपञ्जसगमप्यायवे,पानिजादीदितो जि-इसा-दीजुङस्त वा। (नः ६।, भषः ४।, भनरदुर्गेः ४।, प्राग्वत्।१।, षः १।, भख्या — भनिजादीदितः ४।, जिइसादीजुङः ४।, तु।१।, वा।१।)।

अन्तरो दुर्-वर्ज-गेष परस्य णविधिहेती सति नस्याचः परस्य णः स्यात्, न तु स्थादेः इजादिवर्जीदितयः, जान्तादसादीजुङस्य वा। अ

श्रन्तर्योषीयं प्रयाणीयं । प्रयापणीयं प्रयापनीयं, प्रकोष-णीयं प्रकोपनीयं । ख्यादेनु—प्रख्यानीयं प्रख्यापनीयं, प्रभा-नीयं प्रभापनीयं, प्रभवनीयं प्रभावनीयं, प्रपवनीयं प्रवावनीयं, प्रकमनीयं प्रकामनीयं, प्रगमनीयं प्रप्यायनीयं प्रवेपनीयं प्रकम्पनीयं । इजादेन्तु प्रेक्कणीयं । †

१६९ खनाट्टेरे ये। (खनात्-टे: ६१, ए १११, वे का) त

^{*} नामि दुर्यंच सीऽदुः, षदुषाधौ गिश्चेति षद्गिः, षत्तर् च षदुर्गिय तत्तसात्। इच् षादि यस स इनादिः, न इनादिः धनिनादिः, षिनादिशासौ इदिविति पिनादौदित्। स्थाय भाय भृष पूज् च कसय गमय प्यायय वेपय प्रिनादौदि-विति, पसान्नज्योगे तसात्। इसादियासौ इजुङ्चेति इसादौजुङ्, जिय इसा-दौनुङ्चेति तसात्। षत्तरदुर्गेः पराज्ञातोः परस्व कृत्सस्वस्नि-न-कारस्य षषः परस्वे सित षः स्वादिख्यः। स्थादौनां कविलानां ज्ञानानाञ्च निषेधः। पाणिनिः पाष्ठारिः १२,२४, वार्तिकञ्च।

[†] चन्तर्याचीयनित्यादि, एवं प्रपायिची प्रयाच प्रहीच: प्रहाचित्यादि। विकत्य-माह जानस्य प्रयापचीयं प्रयापनीय, इसादीजुङ: प्रकीपचीयं प्रकीपनीयनित्यादि। प्रगमनीयनित्यादि, गमादीनां कोवलानां जानानाच चन तुल्यं द्वपं। प्रेडचीयनिति नित्यं चलं। चन: किं, प्रमप्त ह्वादि।

खन प्रादन्तस्य च टे-रे स्थात् ये परे। खेयं देयं। *

८७०। घ्यणो-रावर्थके।

(ध्यण् ।१।, भी: ५।, भावश्यको ७।)।

उवर्णान्तादवस्यभावेऽधे घ्यण् स्यात् ढभावे। विप्रेण ग्रुचिना भाव्यं। प

. १७१ | इस्यासी: । (इस्-स्रःयु-मा-सी: ४।)।

इसंन्तात् ऋवणीन्तात् यीते रासनोतेश घ्यण् स्यात् ढभावे । वाद्यं घात्यं जन्यं वध्यं, कार्यं, याव्यं, श्रासाव्यं । क्ष

^{*} खन च चाद्य दानाती, खनातीष्टि: खनाहितस्य । प्रकरणवलात् ये इति स्थासंज्ञके यकारे परे इत्यर्थ: । खियमिति खनधाती ष्ट्यंचि चनेन टेरेकार: । देयमिति दास्त्रदर्भात् (८६०) यः, टेरेकार: । त्यमंज्ञके किं, खन्यते, दीयते, प्रखन्य, प्रदाय इत्यादी न स्थात् । पाणिनि: ३।१।१११,६।४।६५ (एतकाते दें, इंत्) ।

[†] भवस्यम् भाव: भावस्यं, भावस्यमेव भावस्यकं तियान् । कियाया भवस्यभावे इत्यर्थः। ध्यणो भणावितौ य-स्थिति:। भाव्यमिति भूष्यण् (५००) इति:, (४२१) यस्य भज्जद्वावे, (६५) भौस्याने भाव्। एवं तपस्विना विष्यः काव्य इत्यादि । भना-वस्यकं तुये भव्यं, क्यपि कुत्यः। पाणिनि: ११११२५ (एतन्यते स्वत)।

[्]रै इस् च स्व युख चा-स्य तकात्। प्रयायीगादावस्त्रके इत्यस्त नातृहतिः। वाद्यमिति उद्यति यत् तत्, वड-ध्यण् (५००) विद्वः। चात्यमिति इन्यते यत् तत्, इन ध्यण् (५००) विद्वः। चात्यमिति इन्यते यत् तत्, इन ध्यण्, (६०६) स्त्रेचे विद्वास्त इस्त इस्त । जायते इति क्रम्य, (६६५) क्रमावे इत्युक्तः कर्णार ध्यण्, वध्यते यत् तत् वध्यं, उभयच वद्यौ (०४४) अनवध इति इस्तः। कार्यमिति क्रज कृष इति इस्तदीर्घान्यास्यां ध्यणि विद्वः। याध्यमिति या-सु-ध्यण्, उभयच वद्यौ (४२१) अञ्चद्यावः, चाव्यम्। पाण्यम्तिः ३।१।१२४,११६।

८७२ । चजोः कगौ वित्यसेम्क्त-यन्ताङ्गयज-गत्यथवन्चां । (पःजोः ६॥, कगौ, १॥, विति ७॥, घः सेम्कःयज्ञाङ्गयज-

विति परे च-जोः क-गीस्तो न तु सेम् तादेः । पाक्यं रोग्यं। गतीतु, वद्यंग्र। म्रन्यत्र वङ्गंग्रकाष्ठं। *

८७३। नावभ्यके त्यज-यज-प्रवचाञ्च ध्यणि।

(म ।१।, पावस्यके ७।, त्यज-यज-प्रवचां ६॥, च ।१।, ध्यविष ७।)।

त्रावस्वकेऽर्थे एवाच चर्जाः कगी न स्तो व्यणि । अवस्यं पाँचं, त्याच्यः याच्यः प्रवाच्यः । पं

८७४। भुज-वच-निप्रयुजा उन्तामान्दम्क्ये।

(भुज-वच-निप्रयुज: ६।, भन्न-मधन्द-भक्ये ७।)।

भुजो भच्चेऽघें, वचोऽयव्हेऽघें, निप्रपूर्वस्य युजः प्रकोऽघें, चजोः कगौ न स्तो व्यणि । भोज्यं, वाचं, नियोज्यः प्रयोज्यः । एषु

[•] सेन को यसात् स सेन्क:, यसात को विदित: सेम् भवतीत्यथं:। यजसाइं यज्ञाकं, यज्ञाके यकः यज्ञांक्रयंत्रः, गत्यथंवासी वन्च चिति गत्यथंवन्च। संम्कस्य यज्ञाक्रयं गत्यथंवन्च चिति, तती नञ्यीगे तेवां। पात्यसिति पच-घ्यण्, वृद्धः, चस्य कः! दल-घ्यण्, गृषाः, जस्य गः। एवं घित्र पाकः रीगः। सेन्कानु याच-घ्यण् याच्य द्वादि। यज्ञाक्रयंत्रस्तु घित्र प्रयाजः भनुयानः चपांग्रयातः, च्रत्यातः, प्रधानयज्ञस्य चक्रयादः। यज्ञाक्रयंत्रस्तु घित्र प्रयाजः भनुयानः चपांग्रयातः, च्रत्यातः, प्रधानयज्ञस्य चक्रयंत्रा एते। यज्ञाक्रद्रति किं, यागः प्रधानयज्ञ द्वायंः। वन्चु गत्थां वक्षी यासः। वक्षीभावार्थे वद्धं काष्टं। पाणिनिः ७।३।५२,६२,६१, भाष्यस्य।

[†] क्रियाया चवस्त्रभावेऽथें सब्वेंबां धातूनां, त्यज्ञ यज-प्रवचाच चावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चनावस्त्रके चन्नेव स्थानं प्रवच्या प्रवच्या प्रवच्या स्थानं क्रिके क्रिके स्थानं स्थानं क्रिके क्रिके क्रिके स्थानं क्रिके क्रिके क्रिके स्थानं क्रिके क्रिके क्रिके स्थानं क्रिके स्थान

किं, भोग्या भू:, वाक्यं पद समुदाय:, नियोक्तमर्हित नियोग्य: प्रभुः । 🕸

१७५। पाय घाय प्रणायानाय कुग्डपाय सञ्ज्ञाय्य राजसय सान्नाय्य निकाय्य परिचाय्याप-समू स्त्रामावस्थामावास्था चाय चित्रागिचित्रा (पाय्य—याज्या: १॥) । याज्याः 🗄

एते घ्यणना निपालनी।

ंपायं मानं। द्धात्यग्निमिति धाया सामधेनी, धाया ऋत्विजः। प्रणाय्येश्यमातः प्रियो वा। श्रानाय्यो दिचणाग्निः। कुग्छै: पीयते श्रत्र सीम इति कुग्डपायः क्रतः। सञ्चायः कृतु:। राज्ञा स्यते राजस्य: कृतु:। साम्राय्यं इति:। निकायो निवास: । परिचायोऽग्निः, उपचायोऽग्निः, चिल्ली-ऽग्नि:। त्रग्नेययनं त्रानिचित्या । समृश्वीऽग्नि: संवाह्य इत्यर्थ:। त्रमा सह वसतोऽस्यां चन्द्राकीवित्यमावस्या त्रमावास्या। यजन्यनया इति याज्या। निपाती भ्रार्थविभेषे। ए

भुजस वच्य निप्राभ्या युज च तस्य । भन्नस मण्डस्य प्रकासित तिसान्। भुज्यते यत् तत् भीज्यं चन्नादि । वाच्यं वचनीयमिल्यर्थः । नियोक्तुं प्रयोक्तुःच श्रकाते-ऽसी नियोज्यः प्रयोज्यः सेवकः । भीग्या भूरिति उपभोग्या पालनीया वेस्रयं:। वार्ल्य पदममुदाय: परस्पराकाङ्चायुक्तपदसमूह: नियीक्तुमईति योग्यो भवतीलार्थ:, भव (८६५) कभावे दस्पत्ती: कर्त्तरि व्यव्। पाणिनिः शहाद ७-६८।

[†] पा घ्यण् पार्यं परिनाणं, पेयमन्यत् । मतान्तरे ना घ्यण्, नेयनन्यत् । धा-घ्यण्, धाया सामधेनी प्रिज्ञालनमनः, एवं धायाः ऋतिनः ; धेयमन्यत्। प्रणीयतेऽसी प्रकायः ; चन्यत्र प्रकेयः । गार्डपत्यादग्रेरानीय यः प्रकीयते स भानायी दिवणाग्निः ; ष्यत्य पानिय:। कुण्डपाय्य: क्रतु:; प्रन्यव कुण्डपेयं दुर्घः। सीमी लताविशेष्ट्य रसः। सकीयतेऽसी सवाय्यः ऋतुः ; भन्यत्र सम्बेगं पुग्यं। राज्ञा स्यते मङ्गलपूर्व्यक् सायते

८७ई। पृशक सह तक चत यत शसीऽचम वप रप लप चप दभी यो भज जप यजानमस्तुवा।

(९ — ग्रसः ५१, षषम — दसः ५१, वः ११. सज — षानमः ५१, तः ११, वा ११)। पवर्गान्तात् ग्रकादेश्व चमादिवर्जात् यः स्थात् ढभावे, भजादेशु वा। रम्यं ग्रक्यं सम्धं तक्यं चत्यं यत्यं ग्रस्यं। भज्यं भाग्यं, जम्यं जाप्यं, यज्यं याज्यं, श्रानम्यं श्रानास्यं। चमादेशु श्राचास्यं वाप्यं राष्यं लाप्यं नाप्यं दास्यं — श्रनकार निर्देशात्। *

१८० । यत्रात्तभो मुण्। (विशः भान्तभः ६।, सण्।१५)। श्राङ्पूर्वस्य तभो मुण्स्यात् यकारे परें। श्रात्तभगो गोः। क

ऽिखितिति राजस्यः कतः, (''राजयन्दः सीमवाषी, तिन सीतव्यं राजस्यं" इति तु कमदीचरः; भट्टोजिरी चित्रकु "राज्ञा भीतव्योऽभिषवदारा निष्पाद्यितव्यः, यदा खतात्मकः सोमी राजा स स्यते कछातेऽदीति अधिकरणे क्यप् निपातनात् दीर्घः), स-व्यण्; भन्यत्र सव्यं। समीयते इदं साझायं इतिः; भन्यत्र सत्तेयं। निचीयतेऽसी निकाय्यो निवासः; भन्यत्र निचेयं। परिचीयतेऽसी, परिज्ञायः, उपचीयतेऽसी उपचायः भिन्नः, वोयतेऽसी विव्यः; भन्यत्र परिचेयम्, उपचियम्, चेयम्। समुद्धातेऽसी उपचायः भिन्नः, वोयतेऽसी विव्यः; भन्यत्र परिचेयम्, उपचियम्, चेयम्। समुद्धातेऽसी समुद्धाः, सं-वह-व्यण्, निपातनात् तिः, दीर्घयं, भन्यत्र संवाद्यः। यद्याद्धिक कश्चे व्यण्य पदं सिव्यति, तथापि वहधाती व्यण्य भनिष्टवारचार्यं निपातनं। भना (भव्ययं) चन्द्रस्य कला, तया सह वस्ताऽस्यां तिको चन्द्राकों इत्ययं समावस्या भनावासा इति दयं। याज्या स्टक्। एकमधंतिमवादि। पाणिनिः ३११।११४,१२२, १२९—१३२। एतन्यते राजमस्यपदं कावनी निपातः।

* पुत्र मक्य सम्घ तक्य चत्य यत्य मन चेति तक्षात्। चमय वपय रपय सपय चपय दभ चते, न विद्यन्ते ते यत्र सी ऽचम-वप-दप-लप-चप-दभः, तस्मात्। भव्य कपय यज्य चा-नम चेति तस्मात्। (८०१) इसन्तलात् प्राप्तस्य व्यणो वाधकोऽयं। स्यामिति पवर्गान्तलात् यः, एवं तप्य सम्यामित्यादि । मक्ष इपेदिवादीदिव यहणं, चन्य माक्यं साक्ष्यानिति । चाचास्यमित्यादिषु व्यण् एव । दास्यमिति दन्सु न दभे इत्यस्य नकार-रहितपाठात् नकारकोपे,(५००) हविः । पाणिनः ३।१ ८८,८८,१२६, वार्तिके च।

† सुवा च इत् भन्याचः परः। भालभागे नारवायः सर्भगीयो वा इत्ययः। पावितिः श्राद्धः। एतन्त्रते तुन्। १७८। उपात् स्तृती । (उपान ४), स्ती थ)।
उपपूर्वस्य सभी मृण्स्यात् ये परे प्रशंसार्या। उपसम्भाः साधः।
स्तृती किं, उपसभ्यमसात् किञ्चित्। अ

८७८। गद-मद-यम-चराचरो ऽगे र्यः।

(गट सद यस घर चाचर: ५१, चनी: ५१, य: १९१)।

श्रमिश्य एश्यो यः स्थात् उभावे । गद्यं मद्यं यस्यं चर्यं श्राचर्यं । श्रमेः क्षिं, प्रगाद्यं श्रभिचार्ये । 🅆

हटः । पग्यावदावयरीचार्यत्र वच्च अयत्र च्या अयत्र क्या अयत्र प्रस्ता क्या अयत्र प्रस्ता क्या अयत्र प्रस्ता निपात्यन्ते । पण्यं विक्रेयं । अवद्यमनिष्टं । वर्ष्या कर्मा ; वर्ष्यं श्रेष्ठं । आचार्ष्यो गुरुः । उद्याविद्रनेनिति वद्यं यक्षटं । जितुं यक्यं जय्यं . एवं चय्यं । क्रयं इट्टे प्रसारितं । अर्थः स्वामी वैद्यो वा । उपस्तियते इत्युपसर्था ऋतुमती । न जीर्थातीति अजय्यं सङ्गतं । क्ष

उपलक्षाः सत्र्य इत्यर्थः। उपलक्ष्यं प्राप्तत्र्यमित्रर्थः। पाचिनिः ७।१।६६।

[†] चयभपि व्ययो वाधकः । शिपूर्वकेभी व्यय् एव । पायिनिः ३।१।१००,वार्त्तिकच।

[्]रेषण क व्यवकार स्ती च, प्रसं ; भन्यच पाण्यी विष्णुः सम्य इत्यर्थः। नज्युष्यस्य वदतेः भन्यं पनिष्टं निन्दनीयनिन्ध्यः, भन्यच भवायं वाक्यं। इत्यष् वर्षा वरणीया, वर्ष्यं पुननीयं ; भन्यच वार्ष्यं। भा-चर स्थल् भाषार्थः गृहः, भन्यच भाष्यः। (८६६) सूर्वान्न-नियमेन (८०८) व्यणी वाधितलान् भव निपातः। स्त्रक्षते इनेमेति वक्षां; भन्यच वार्ष्यः। ति, जव्यं; भन्यच क्षयः। चिनुं भन्यं चर्षः; भन्यच चिरं। क्षि, क्रव्यं; भन्यच क्षयः। स्त्रक्षं चर्षः; भन्यच चर्षः। स्वरम् सार्थः विष्ठः। स्वरम् स्वरम् सार्थः। व्यवस्यः स्वरम् सार्थः। सार्थः।

८८१। ह स जुब स्विन्-गास्टुड्-ष्टञो ऽक्तपचृतन्हच पाणिस्जुसमवस्जः स्वप्।

(ह — हजः ५।, चलप - समवस्रतः ५।, काप् ।१।)।

द्रादे ऋकारोङो इञ ब कपादिवजीत् काप्स्थात् ढभावे। अ

१८२ । ख्य तन् पिति । (खस रा, वन् ।रा. विवि अ)।

स्वान्तस्य तन् स्यात् पिति । श्राष्टस्यः सत्यः जुथः सत्यः इत्यः ग्रिषः हस्यः हत्यः । क्षपादेनु कन्पा चर्त्ये श्रद्धा पाणिसर्धा समवसर्था रज्जुः । प

१८३। द्वा सम्बद्धाः गुहः दृहः शन्स संस्ट प्रत्यपिग्रहो वा । (क-परः था, बा ११)।

एभ्यः क्यप् स्थात् वा ढभावे । क्षत्यं कार्यं, इष्यं वर्षं, सज्यं मार्ग्यं, गुद्धं गोद्धं, दुद्धं दोद्धं, प्रस्यं गंस्यं, संस्त्यः संभार्यः, प्रतिग्रद्धं, प्रतियाद्धं, अपिग्रद्धं अपिग्राद्धं । 🕸 🕒 🗸

क स्त्उङ्यस्य स स्टइङ्. हय क्षय मुत्रच लुख इन् च भात च स्टुङ् च इज् चिति तक्षात्। पार्णे स्टज् पाणिस्टन्, नमाऽतः समतः, समतात् स्टज् समत्यस्त्रः, क्षपच चृत्रच स्टच्य पाणिस्टज् च नमतस्टज् च तत्, पथात्रज्यीने तथात्। व्यपः किस्तात् चगुणः। पाणिनिः ११:१०६,११०,११२, वार्मिकदय, भाष्यच।

⁺ ऋस्वालस्य तम् स्यात् प इत् क्रांति परे, निदली। स्व ठेन कंनापि प्रकारिय स्थालस्य यहणं, नत् स्वसाव-स्थालस्य; तेन वितर्श्वेत्यादी अमलीपे स्वन तन्। साहत्यः स्थादि, सा-ह-क्यप्, किस्वात् गुणाभावः, पिस्वात् तन्। निग् इति शान क्यप्, (७०५) स्थी इति उङ इ. (१९२) वर्षा। वस्य इति स्वन्भृत्अाश्वात् स्वस्मेन्त्व, कर्मां क्यप्, वर्त्तनीय इत्यर्थः। वजी आनुनन्धात् वङ इत्यस्य वार्थ इत्येत्। क्ष्यामिति क्रायः ध्यण्. (६४८) क्षृपदिशे, गुणः। पाणिश्यां स्टब्यंति समवस्रन्थते- इती इति च वाक्षे घ्यणि, (६०२) अस्य गः। पाणिनः ह।१।७१।

[‡] समी क संस, प्रत्यिभ्यां यह प्रत्योभ्यह , क्षय व्यव च स्व च स्व च दुइ च

१८४। गृष्ण विनीय विपूय जित्या सूर्य रचाव्यच्य भिद्योद्ध पृष्य सिद्ध तिष्याज्य युग्य स्टप्य कुष्य भार्थाः। (एक-भार्षाः १॥)।

एते काबन्ता निपालन्ते।

प्रस्म पदं, कण्यस्मः कण्यनर्यः, सम्मोऽस्वेरी, यामस्मा गामवाम्नाः विनीयः कल्कः। विप्यो मुद्धः। जिल्या मृद्धः। सरतीति स्थ्यः, एवं कचः, श्रव्यथः। कूलं भिन-त्तीति भिद्यो नदः। वृदि उज्भतीति उद्धो नदः। कार्यः पुणातीति पुषो भन्नतं। कार्यः साध्यतीति सिद्धाः, सएव तिष्योऽपि। श्राच्यं प्रतं। युग्यं वाहनं। कष्टे स्वयं पचते द्दित कष्टपचो वीहिः। कुष्यं सुवर्णकृष्याभ्यामन्यत्। भार्था वधः चित्या च। ॥

भन्भ च्संध्य प्रत्यपियइ चेति तस्रात्। सस्त्रंत्र विकल्पपचे (८०१) घाण्। कार्यं-नित्यत्र (५००) इति:। नार्यानित्यत्र (६८४) इति:, (६०२) अस्य गः। गोच्चानिति व्यणि, गुणे, (६५६) गुद्दी चोद्धितित्यत्र चिच परे विधानात् चत्र न कः। भस्यनित्यत्र (५६०) न-लाप:। पाणिनि: ३।१।११२,११३,११८,११०, वार्तिकं काश्विका च।

[•] पद-पत्त्य-परतत्त्व-विहर्भृतेषु (पाणिनि: ३।१।११८) यद्यां निपास्तते, यया, प्रयद्यां पदं; क्रण्यवर्यः क्रण्यव्यः पाष्ठव द्रत्ययः ; भावते भावतः ; पानवाद्या पानविहर्भृता नदीत्ययं: ; एथ्योऽन्यत याद्यः । क्रल्कोऽस्त्री समलैनसीरित्यमरः ; भन्यत्र विनेयः । श्रञ्चः अरपुष्ट्खः ; भन्यत्र विपयः । इलि मंहत् इलं ; भन्यत्र जेयः । मृत्योदयसिष्यान्ताः भर्यो कर्तरि क्यम्नाः, भन्यत्र स—सायः द्रत्यादि । रोचतं इति क्षः । न व्यथते भव्यः । तीवयतीति तिष्यः , पृष्यनचनवाची । भज्यते सत्त्यते ऽनेनित भाज्यं । युज्यते यत् तत् युग्यं । कष्टपण्य इति कर्माकत्तिरिक्यप्, "क्षष्टेन पण्यने" इति तु क्रमदौष्टः । ग्रयते यत् तत् कृष्यं । स्वणं-क्ष्ययोसु गोष्यं । सियते ऽसौ भाष्या । (८६६) स्वष्ये वाध्य इति नियमात् (८८१) सूर्व प्रयो वाधितत्वात् भव निपातनं । पाषिनिः इ।१।११८४ - ११०,११६,१२१, वार्तिकानि च ।

१ द्रिप् । ले वेद: क्यूपयौ । (लें: ४१, वद: ४१, क्यप्-यौर॥) ।

से: परात् वदः काप्-यौ स्त; ढभावे। ब्रह्मणा उद्यते इति ब्रह्मीद्या ब्रह्मवद्या, कथा। *

१८६। स्त्रोद्यं नित्यं। 🕆 (मधीयं रा, नित्यं रा)।

१८७। भू-इन: काप् भावे न तस्र।

(भू-इन: ४।, काप्।१।, भावे ७।, न ।१।, त: १।, च ।१।)।

लीः पराभ्यामाभ्यां काप्स्थात् भावे, इनो नस्य तस्र। ब्रह्मः भूयं ब्रह्मालं, ब्रह्महत्या । ३

१८८ | घो: कोलिमो ढवे |(धी: धा, केलिम: ११, ढर्घ ७))।

धीः परः केलिमः स्थात् उवे । खयमेव पचन्ते इति .पचेलिमा-स्तण्डुलाः । एवं भिदेलिमाः माषाः ।' १

क्यप्यौ इति इयं क्यपी विकल्पं स्चयित । बद्धाणा ब्राह्मणेन । ब्रह्मोखाः इति (६६१) जि: । यप्रलये ब्रह्मवयाः । भावे तु, ब्रह्मीयं ब्रह्मवयाः एताट्यस्थलेषु स्यायकोपपदस्य क्रदलेन धातुना समासी वक्तव्यः । चतएव "प्रादिवर्जिते सुपि" इति क्रमस्त्रैयस्वव्यास्थाने गोयीचन्द्रः । चनुयं चनूयं चनुवायिनिति तु पदानि भवन्ति । पाणिनि: ११११०६ ।

[†] स्वषा खदाते प्रति स्वषोदां, निर्श्वं क्यप्, जि:। निर्श्वमिति कथनेनु स्वषावदा-मितिन स्वात्। पाणिनि: २।१११४।

[‡] त्रज्ञणो भाव:, त्रज्ञभूयं त्रज्ञतमित्यर्थः । त्रज्ञणो इननं त्रज्ञहत्या, (६०६) जन्-खोपे, (১.८२) तन्, चभिधानात् स्त्रीलिङ्गता । पाणिनि: ३।११९०७,१०८ ।

[§] उच्च तत् घर्षति उचः तिकान् । घीरुपादानं सञ्जेधातुप्राप्तप्रथे । केलिमः कि स्वात् न गुषः । कालेन पच्चमानाक ग्रुलाः खयमेव पच्चले इत्यर्थः । ग्रुडस्थेन भिद्यमानाः माषाः खयमेव भिद्यले इति भिदेलिमाः । एवं भिदेलिमं काष्ठं । मेधेन सुच्चमानं

१८६। ते ल्याः, श्वास्त्रिप्रेष्यानुद्गाप्राप्त-कालेवा। (तेरण, ल्याः रण, मध्य-प्राप्तकार्व अ, वा ररा)।

तव्यादयो ख-संज्ञाः स्युः, ते च मक्याद्ययेषु वा स्यः। *
वोद्यं मक्या वोद्यः वहनीयः वाह्यः। स्तोतुमर्द्यः स्तोतव्यः
स्तवनीयः सुत्यः। प्रेषितस्व त्या गन्तव्यं गमनीयं गम्यं।
धनुज्ञातस्व त्या प्रध्येतव्यं प्रध्ययनीयं प्रध्येयं। प्राप्तस्ते
कालः त्या ध्यातव्यं ध्यानीयं ध्येयं। गं

इति स्य-पाद: ..

वारि खबनेव मुच्चते इति मुचे लिनं। इत्यादि । भव ठघे इति कथनं काश्विकामतानु-सारि, वार्त्तिकभाष्ययोनुकर्वाणीति । ''केलिमर उपमल्यानम्" इति वार्त्तिकम् ।

• सकाय प्रकास प्रयास प्रतृक्षा च प्राप्तकालय तत्ति शिष्टाः। सकाति इसी प्रकाः कर्णाच यः। 'प्रज्ञाते योग्यः क्रियतेऽसाविति प्रश्चः, प्रमास्त्रकार्यलात् कर्णाच यः। निर्वकार-पाठे तु कर्णाच प्रकः, ते तव्यादयः—तथ्य, प्रतीयः, य, घ्यण्, काय्यः, किसि प्रति, 'ल्यः' संज्ञा येषां ताह्याः स्युः। ते च तव्यादयः सकाययेष वा स्युः। वा-सम्भः ससुष्टायायेः। तेन, सकायय्याभाि दिन स्युरित्ययेः। ल्यादिक्रवन-सम्दानां नामसंज्ञानाहः —

षणादानं क्रदन्तञ्च तिङ्जतानं प्रमासनं। नाससज्जा भवेदेवां स्थायुत्पत्तिस्तत.पर्॥

† भन्यार्थेषु पूर्व्वादाइरणानि, श्रक्याद्येथेषु उदाइरणान्याइ नीटुनिल्यादि । नीट्रक्य-प्रति नइ-तव्य, (१०५) इस्स ठ, (६५३) भन्तारस्य भोकार, (५०६) तस्याने ध, (७०) धस्य क, (००) ढलीगः । नीटुंश्रक्यः स्वल्यो भार प्रति श्रेषः । नास्य प्रति नक्ष (८०१) घर्रणु, (४००) ढलिः । सीत्रमस्यः गुकरिति श्रेषः । स्वय प्रति (८०१) काप्, (८०२) स्वस्य तन् । दस्युदाइरणद्यं कस्योणि नार्ष्यः । प्रेथ्यादीनासुदाइरणानि भानवार्षः । ध्यातव्यमिति व्यैतव्य, (६००) भा, ध्यंयमिति (६११) ए । पश्यिनिः १११८५, ३१२१६६,१६८ । एतन्यनिकत्यः ।

२य पाद:- खनादि:।

८८०। त्यस्को. दे। (हन-सकी शा, वे श)।

र्घोस्तृन्-णकौ घे स्त:। करोतीनि—कर्त्ता, कारकः, इरि-द्रायकः। *

८८१। गलेचीपक-पादकारको है।

(गलेचीपक पादचारकौ १॥, ढे ७॥)।

एती निपाली है। १

१६२। मार्हात् क्रमो नेम् एण:।

(माइत् ४।, कम: ४।. न।१।, इन्।१।, वण: ६।)।

प्रकारता उपक्रम्ता । अन्य च क्रमिता अतिक्रमिता । 🕸

८१३। ग्रन्थनित्यचादे शिननान् धे।

(यह-नन्दि-पच-चादे: प्रा, विन्-चन-चन् ।१।, घे ०।) ।

ग्रहादे चिन्, नन्धादेरनः, पचादेरन्, स्वात् घे। गाँही स्थायी

[•] वन् च पक्ष ती। वन् इति दन्य-नकार, भीषादिकतन्मव्ययानानां पित-भादि-प्रव्दानां विश्वेषार्थं। यकस्य यकारो (५००) वृद्धार्थः। तन् तक्कोसतद्वर्धः तक्काधकारिष्वर्धेष्विष (पाणिनिः शश्रक्ष) स्थादिति बीध्यं, भ्रतपव ग्रन्थति (३०५) शोकार्थवन् इति कथितं। दरिद्रायक इति (००२) दरिद्र भाकीप इत्यत्र भक्षकंनात् भाकीपानावे, (८२४) यन्। पाणिनि शश्रक्ष । एतन्यते वन् वन् म।

[†] एतौ कर्माधि वाची सकप्रस्थयेन निपासी। गर्ले चुन्यतेऽसी गर्लेचीपकः। पादास्थां क्रियतेऽसी पादकारकः। भाष्यम्।

[‡] मं (भाक्षानेपदं) भईंतीति माई:। भाक्षा-ेपदगितियोग्यात् कमः परस्य दश्य-इम् व स्वात्। प्रक्रभेत्यादि (८६४) भाक्षानेपदयोग्यतः। मृकारस्य (५०,५१) भनुसार-नकारी। भन्यत्र भाक्षानेपदायोग्ये द्रस्यदः। वार्षिकम् ১

प्रपायिणी, नन्दनः विचचणः जनाईनः मधुस्रदनः लवणः, पचः देवः लेखाः लोलुवः रोक्यः । *

१८४। चिक्तिद चक्रम चराचर चलाचल पतापत वदावद घनाघन पाटपटा वा।

(चिक्तिद-पाटपटा: १॥, वा ।१।)।

एते अननां निपालन्ते वा।

पचे, क्रोदः क्रसः चरः चलः पतः वदः इनः पाटः । 🅆

ग्रहश्च नित्य पचय ते आद्यो यस्य स तक्षात्। विन्च धनय धन् चतत्। णिनी प इत् (५००) वृद्धार्थः। र्भनः भकारान्तः। भन् इत्यस्य नद्दन भ-प्रत्ययात् विभेषायं:। गहादि:--गह स्था पा सह दास भास मन्त्र महं रच युवप भी (भी) याच इत्रज बद वस क्राभी भूराध रुध । नन्द्रादि:—नन्दि वाग्रि सदि दूषि साधि वर्षि भौभि प्रोचि सक्तिपि दिन कि. परिस दिपे क्रिन्ट कर्षि इपि महिं यु सूदि भौषि लून।शि चिवि। पचादि.—पच वष वप वद चल पत गद भव सुचर स्टप गम ट्य चप चम निष त्रण किंद मुद लिख क्रम इन पट भूध खगुज़ भहुतृगाइ दिव पुर भीव दुनो ज्वल सा एवमपर्ऽपि प्रयोगतो ज्ञयाः। (३०५) उचे क्रतीत्वच स्तथं कथ-नात् कदाचिद भविष्यत्क ले च्हणार्थं च णिन् स्थादिति (पाणिनि: ३।३।१००)। एवं (६६०) स्त्रमुक्कनात् विषानि-प्रत्ययाऽपि वक्तव्यः ; घ इत्, चन्यस्य इकारस्य च इत्, य इ.च., इ.न्स्थिति: (पार्षिन: १।२।१४१-१४५)। ग्रज्ञातीति विस्तात् वृद्धिः। तिष्ठ-तीति (८२४) यन् । प्रियतः यौ, (८६८) चल, चलप्रदर्भनाधिनेव दिवचनानं पटं। नन्दयतीति चन:, (६४१) जलीप:। विचष्ट इति (७०६) चन वर्जनात् न चच: कुसाज-ख्याजी, (१०७) यतः। ननं भद्यं यतित, सथं सूद्यतीति, जन नध् भसुरिविश्वेषी । लुनातीति लक्ष्यः राजसः, खभावान् गलं। पचतीति पचः, दीव्यतीति देवः, भन भन् (८८६) क-प्रत्ययस्य वाधकः। लेलीयतं इति भन्, (८३६) भनि तु नित्यं यखलुक्, (८४१) गुपनिषेध, (५८८) ई.स्थाने यः। लील्यते इति पनि यङ्लुकि उस्थाने उत्। रीक्यते इति पनि, उदनात् पनि यङ्लुक्निविधः। (५४३) यङीऽकारसीयः। याचिनि: १।१।१३४। त्यु = भन। भच् = भन्।

⁺ कियु इर् क्षेट्रे, क्रसुंम उड़ती, घर गती, घल ज गती, पत छ ज गला, वरे वाचि, इन ख वधे गती, पट क लिबि, इत्यष्टभ्यः पचादिलादिन एते वा निपालने। पाटपट इत्यच पाट्पट इति चान्दाः। ,पाट्पट इति पाचिनोधाः। पचे क्षेद्र इत्यादि, पाट इति चुरादिलान् जी, इक्षिः। वार्त्तिक्षत्रयम्।

१८५। राचे मन् वा क्रति।

(रावे: ६।, मन्।१।, वा।१।, क्रति ७।)।

राचेभेन् खादा क्षति । रांचिचरः राचिचरः । *

९६६। कृ गृ ज्ञा प्रीजुङ: को — दुहो घङ्च।

(कृ गृ-जा प्री-इजुङ: ५।, कः १।, दुह: ६।, घङ्।१।, च ।१।)।

कारेरिजुङ्य कः स्थात्, तिस्रंय दुही घड् स्थात् र्घ । किर: गिर: प्रः प्रियः चिपः भूतहः कामदुघा गीः । क

१८७। इनजनाद्गमादे डि: l

(इन-जन-मात्-गमादेः ५।, उ: १।)।

हनो जन श्रादन्तात् गमादेश डः स्थात् घे। श्रोकापहः वराहः सरिसजं पङ्गजं श्रजः गोदः दिपः प्रहः श्राश्रगः नगः गिरिगः, वारि चरतीति वार्षो हंसः। क्ष

[#] क्रिति क्रदने धातौ परे इत्थर्थः । मनोऽनावितौ, निचादने । रेपविन्यरतिति पचादितादिन, भनेन मन्, (५०,५१) मखानुखारः, भनुखारस्य ज । पचे राविचरः । भगदद्वारः सत्यद्वारः (पाणिनिः ६।३।७०) (१००८) षण्, तिमिद्विष्तः ("गिर्वऽगिलस्य" इति वार्त्तिकम्) (१८६) क्षां, इत्यादौ मन् वक्तव्यः । पाणिनिः ६।३।७२ ।

[†] इत् उङ्यस स इजुङ्, कृय गृय जाय प्रीय इजुङ् चेति तसात्। दुधी घङ् चेति चकारात् इजुङ्लात् के सतीलर्थः। परस्तेण उपस्थिन सिंदेऽपि अव जा-यहणं, परस्ते उपपदपूर्वादेव उः स्थात्, इह त केवलात् जानातेः क इति जाप-नार्थम्। अव इजुङ्नावनिमित्तकतया विश्वषेस कप्रस्थिन, सर्वधातु-निमित्तकतया सामान्धी ढात् पर्ण् (१००२) बाध्यते। किरतीति किरः, (६२०) इर्। एवं गिरतीति गिरः। जानातोति जः, (६१०) बाधीपः। प्रीवातीति प्रियः (५००) इस्थाने इय । विपतीति विपः, सुवि रोहतीत भू-वहः, उभयव इजुङ्लात् कः। कामं दोग्धीति, कप्रस्थे, इस्य घङि, स्तीलात् (२४२) बाप्। पाविनिः १।१।१३५, १।२।७०।

[‡] इन च जन च चाच गमादिय तसात्। उदा इरण-दर्भनेनं , उपपदपूर्वकादेवे-

१८८। घेट-दृश-पा-घा-ध्म: शः।

(धेट--भ: ५।, म: १।)।

एभ्यः शः स्थात् वे। उदयः उत्पन्धः उत्पिवः उज्जिन्नः उदमः।*

ह्ह। साहि साति चेति वेदीनि धारि पारि लिम्प विन्दो ऽगे: ا (साहि—विन्दः धा, अगेः धा)।

भगिभ्य एभ्यः यः स्थात् घे। साङ्यः सातयः चेतयः वेदयः एजयः धारयः पारयः, लिम्पः विन्दः गोविन्दः । १०

१०००। दुनीभूञ्चलाद्यासुसंस्रो गाँ वा।

(इ-संसी. ४।, ग: १।, वा ।१।)।

त्यथै: । श्रोक्रमपहन्ति, वरमाहन्ति, सरिक्ष जायते (विभक्तेरलुक्), पङ्गाज्यायते, न जायते, गा दर्शात, द्वाभ्यां पित्रति, प्र-ह्वयति, षाय गण्कति, न गण्कति, निरी श्रेते, इति क्रमेण वाक्यानि । एवं तर्मापदः, दुःखापदः, दिजः प्रतृजः सहजः द्वादयः। गमादिन्तु प्रथीगती ज्ञेषः। पाणिनिः शराध्रः,४८,५०; शराध्र-१०१; शराध्रद्, शराध्रद्, शराध्रः, स्वर्थाः कः।

[•] शस्य प्र इत् रमंत्र', सकारस्थिति: । ल्द्घयतौति शः, घे अप् रे प्रप्. (५४१) सकारलीप: । एवं उत्पय्यतौत्यादि वाकाणि । सर्व्यंत्र रे परे प्रप्, (५८०) हमादेः स्थानि पद्मायादियः । साइचर्याद्य पा इति भौवादिक एव । उदाइरखज्ञापकात् प्रायत्रः सापसर्गाचानेवायं विकिरिति ; (स्रतएव "प्रादेघांदेः शङ्" ''सप्रादेशेलेके' इति क्षमदीयरः) । व्याप्त इत्यत्र संज्ञान्तीधात् उ एव ("जिन्न संज्ञायात् प्रतिवेदः इति वार्तिकत्)। पाणिनिः १।१।१२०।

[†] सह ज उर बती, सात क सुखं, चिती संघाने, विद ल सतौ, एजू कसी, ध्य ज स्थिती, प्र लि पालनं, एते जान्ताः। जि लिपी य प ज लेपने, विद लृ य प जी लाभी, इत्युभयोः (७४१) सुवादिलात् चन्। साइयतीत्यादि वाक्यानि। ब-प्रवर्धे, रेपरे जप्, गुवादि। सिन्धः विन्दः इत्युभयन तुदादिलात् यः। चदेजयः इत्यन तु चद्यन्द्यं चपस्रीतिक्यकलेन चतुपसूर्ग्लात् यः इति भाष्यम्। कमदीयरस् चद्यन्द्यं चपसर्गेवात् ''एज्वेदरः'' इति प्रथक् सूर्वं कतम्। पाविनिः श्राहरू

म्रागभ्य एभ्यो ण: स्थात् घे वा । दावः दवः, नायः नयः, भावः भवः, ज्यालः ज्वलः, चालः चलः, ग्रास्नावः मास्रवः, संस्रावः संस्रवः । *

१००१ | खस व्यधेन तन दावह्नसः । (यम-मः पा)। पभ्यो णः स्थात् घे । खासः व्याधः ऋखायः अवतानः दायः धायः अवहारः अवंसायः । प

१००२। नृत्खनरन्जः प्रकः । (अत् खन-रन्जः ४।, पकः १।)।
एभ्यः प्रकः स्थात् घे। नत्तेकी खनकी रज्ञकी । क्ष

१००३ | गो गानट्यको | (गः ४।, पनट् थको १॥)। गायर्तरेती चे स्तः । गायनी, गायकः । §

[•] ण प्रत्ययस ण इत् बदार्थ: भकारस्थित:। दृनीतौति दावः, गाम्ब्ये, (इति:), पचे पचादिलादन् दवः। एवं नयित, भविते, ज्वलित, चलित, भासवित, संस्वति, इति वाक्यानि। भासुसंस्र दत्यादी। व्यतिकरसन्दिहनिरासार्थे समास् न क्षतं। एवं यादः यहः (पाधिनि: ३११।१४३)। क-प्रत्ये यहसित्यौपे (पाधिनि: ३१११४४)। ज्वलादिय — ज्वल चल यल स्वल इत मल पत्त वत प्रत्य तथा वन भन चर सह रस ग्रद सद कुच कम। पाधिनि: ३११।१४० —१४२, काशिका च।

[†] हय साय हसी, भवीत हसी भवहसी । यस य व्यथय इत च तन च दाय भवहमी चिति तक्षात्। पृथक्षम्वकरणं निलायं, भगिरित्यस्य निवृच्ययंच्च । दा इति दासंज्ञकः। यनिति, विश्वति, प्रत्येति, भवतनीति, ददाति, दधाति, भवहरति, भवस्यति, इति क्रमेण वाक्यानि । टायः भागः भवसायः एतेषु चादलत्यात् (८२८) यन् । पाणिनिः ३।१।१३८,१४१, वार्तिकच । भवस्याय-प्रतिस्थायौ च चप्रत्ययानौ इति वक्तव्यम् ।

[‡] षकाः ष इत् (२५०) द्वेवर्थः चक-स्थितिः । नृत्यिति, खनिति, रज्ञिति या सा, इति वाकाग्रानि । रज्ञकीस्वच (६६०) षको परेन-खोपः । पाणिनिः ३।१:१४४, वार्क्तिकाः ।

श्रेषनटो णिच्चात् वृद्धिः, टिल्लादीप् भन स्थितिः। गायिति या सा गायिनी,
 (১२४) यन्, (२५०) द्वेष्। पाणितिः ३।११४६,१४०।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।
 ।

१००४। हायनः। (कायनः १।)।

त्रयं निपात्यते। भावं जहातीति हायनी वर्षः, श्रम्बु जहा-तीति हायनी वीहिः। *

१००५ । प्रद्रस्य स्टब्बो ऽतः । (मु-बः ४।,पकः १।)। एभ्योऽकः स्रात् वे । प्रवकः द्रवकः स्रवकः सरकः लवकः । १

१००६। ऋषिष । (माधिष का)।

जीवतादिति जीवकः। #

१००७। नाम्त्रन्ये तिक च।

(नानि ७), षन्धे १॥, तिक् ।१।, च ।१।) ।

धीराशिषि श्रन्थेऽपि कतः स्युः, तिक् च, संज्ञायां। देवरातः, रिक्तः। §

क काल-नोडिस्थानस्य र्णातः, (८०५) निपातो द्यर्थविश्वेषे दल्काः। "जिङ्गीते प्राप्नोतीति वा" दति सहीलिदीचितः। पाणिनिः ३।१।१४८।

[†] चें। केंगिंदिणि कत्तंदीति वक्तव्यं, यतः ''समिनिहारे'' इति पाणिनिना प्रीक्तम्। ''साधकारिख्युपसंख्यानम्" इति वार्तिकीक्तियः। ''समिनिहारयहणेन साधकारिलं सन्द्यते'' इति भट्टीनिदीस्तिः। साधु प्रवते प्रवकः, (५४२) मुणः। एवं साधु द्रवित, स्रवति, सरति, लुनाति। साधुकारिणि किं, प्रीता। पाणिनिः ३।१।१४८। स्वत्र वृन्। भाष्यद्य।

[‡] पाधिवि गस्तमाने सर्वेधातुम्यो ऽकः स्वात् घे। कीवतादिति (८५६) तातङ् । एवं नन्दकः, वर्डकः इत्यादि । स्त्रियां कौविका । पाणिनिः ३।१।१५० ।

[§] चामिति संजायाच गयमानायां कर्णरे वाच्ये कियतादन्येऽपि (उणादयः) जत-प्रत्ययाः स्यः, तिक् च स्थादित्ययः । देवाय रायान् देवरातः, कर्णरे ज्ञः । एवं देवाय देयात् देवदत्तः, यजाय देयान् यजदत्तः । एवच्च वौरो भ्यात् वौरभूः, निम्नं भूयात् निषभूः, दूत्यादो किए । रमतां रन्तिः, (६०६) तिकि-वर्ज्ञनात् न अम्लोपः । (परि-जिष्टपणं द्रष्टव्यम्) । इदमेव मूर्णं ''उणादयो वच्चकृत्' (पाणिनिः शशाः) इति ज्व-स्थानीयम् । पाणिनिः शशाः १०४।

१००८। सति-सातौ वा। (विति-वातौ १४, वा ११))। सन्तिय। *

१००**६ | ढात् प्रण् |** (डात् था, षण् ।१।)। डात् परात् धीः षण् स्थात् चे । कुश्वकारः, श्रघटं घटं करी-तीति घटीकारः ।†

१०१० | इनचरग-एक | (इन-चर-गः ४।, टक्।१।)। डात् परेभ्यः एभ्यः टक् स्थात् घे । पापन्नः कुरुचरः सामगः-। क्ष

१०११ स्कुष्ट: | (स्र-कः शा, टः शा)।
टात् पराभ्यामाभ्यां टः स्थात् घे। पुरःसरी, यशस्करी विद्या।
भास्करः चपाकरः, कभंकरी दासी। §

 ^{*} सितय सातिय तो । सनीतेराशिशि तिगन्तस्य एतो वा निपाली । पचे सिनः,
 सनुतादिति वाको तिक्, (१०३३) इम् निवेधः, (६०६) ञम्लोपामादः अ अपाणिनः
 ६१४५।

[†] षणी च इत् इडार्थः व इत् ईबर्थः, चकारस्थितिः । टादिति निष्वेत्त्यंदि-सर्माण एव, तेन स्टुकार इति न स्थात् । कुमं सरीतीति कुम्नकारः । यद्यपि नित्य-सनासे वाकारचना नास्ति, तथापि शिष्यवीधार्थमिति बीध्यम् । (११८३) क्रचित-समासानामभिधानं नियासकसिति कथनेन नतु सञ्चेव षण् । पाणिनिः ३।२।१।

[‡] इनब चरय गाय तक्तसान्। टकः कित्त्वादगुणः, टिव्हादीप्, त्रकारिख्यितः। विक्षोऽपवादीऽयं। पापं इन्तीति पापन्नः, टकः कित्त्वात् त्रगुणले, (१६०) उङ्कीपः, (१८८) प्रख्याने न्नः। कुद्दन् चरतीति कुद्द्वरः (कुद्द्व चरतीति पाणिनः)। साम गायतीति सामगः, (६१०) त्राक्षीपः। एवं सद्द्वरः सनुचरः द्रव्यादि वक्तस्थम्। पाणिनः १।२।५,१६,५२—५४।

[§] पुरोऽयं सरतौति, टः, (५४२) गुणः. (२५७) टिच्वादीप् । यगः करोति, असं करोति, चपां करोति, कर्मा करोति, इति वाकानि । (१००७) क्रमकार इत्युदा-

१०१२ । शक्तत्स्तम्बात् दित-नायात् फले-रजो-मलात् देववातात् क्ष-ह्व-ग्रहाप दः ।

(श्रकत् स्तम्बात् ५।, डितिः नायात् ५।, फली-रजस्-मलात् ५।, देव-वातात् ५।, क्रष्ट ग्रह भाष: ५।, इ. १।)।

एभ्यः परेभ्यः क्रमादेतेभ्य दः स्यात् घे। प्रक्कलिरि वैसः, स्तम्बकिर वीहिः, दृतिहरिः खा, नायहरिः, पशः, फलेयिहिः रजीयिहः मलयिहः, देवापिः वातापिः।

१०१३। कुच्यात्मोदराट् भुः खिः।

ृ (कुचि:चाकान् खदरात् ५।, सुः ५।, खि: १।)।

एभ्यः परात् भुजः खिः स्यात् घे । ф

१३१८ | खित्यव्याजनको मन्स्वौ दीकान्तत्वं त्वेकाजिन:।

(खिति ७।, चन्या नर्षः ६।, मन् स्त्री १॥, दोक्रान्तलं १।, तृ ।१।, एकानिचः ६।)।

इरता यसकारेष भनिधानान कवित् षण्, कचिन् टय स्यादिति स्वितं। एवं भनिसर-इत्यादि वक्तस्यम् । पाणिनिः ३।२।१८ — २२। '

^{*} पृथक् पदकरणं यथासक्षायं। तेन, प्रक्रत्स्वाथां क्रञः, हिन्नियाथां इञः, फिलरजो सभियो यहः, देव-वाताथा चापः, इः स्थादि थयः। प्रक्रत् अव्ययभव्दः ताल्यादि विष्ठावाचकः, प्रकृत् करोतीति इः, गुणः। सस्यं गुच्छं करीतीति स्वस्वकिः। हितं चर्मं इरतीति, नायं प्रभुं इरति वहतीति। फले ग्रह्मातीति एका-रान्त्रप्रचात् चिक्तं चात्रप्रविवद्या, चानुक्च। फलया इक इत्ययः। रजी ग्रह्मातीति रजीयिः धूलिया इकी वायुरित्ययः। सलं ग्रह्मातीति मलयिः, इङ्डिक इत्ययः। देवं चाप्रोति देवापि देवया नकः (देवया विक इति कमदीयरः)। वात्र प्राप्रीति वातापि-रसुरविश्रषः। पाणिनः १। २। २। १५ स्व

[†] कृषिय भातमा च उदस्य तत्तवात्। खिप्रवयस्य ख इत् इकारिख्तिः। पाणिनिः ३।२।२६, कालापाः भन्दायः।

व्यवर्जस्थाजन्तस्थात्रषय मन् स्थात् स्वयः, एकाजिचसु दीकान्तत्वं स्थात् खिदन्ते धी परे । कुचिश्वारिः त्रासम्बारिः उदरश्वारिः । *

१०१५ | खग्नीः । (खग्।१।, एकी: ४।)। ढात् परात् एजयतेः खग्रस्यात् चे । जनमेजयः । ११

१०१६ | · मन्यात् खार्थे | ^{(मन्यात् प}्रसार्थे ०)। श्रासानं गांमन्यते गांमन्यः, श्रियंमन्या । ध

१०१७। मुञ्जकूंलास्यपुष्पात् घेट:।

एभ्यः परात् घेटः खम् स्यात् घे। मुझन्धयः कूलन्धयः श्रास्य-न्धयः पुष्पन्धयः। मुझन्धयी, घेटष्टित्वादीप् (२५०)। §

[•] नासि व्यं यत्र सोऽव्यः, षव्यशासी षच् चित त्रव्याच् । (त्रच्-त्रजनः)। प्रव्याच पहस् च तत्तस्य । ही हिनीया, तस्याः क्षं (एकवचनं) हीक्षं, हीकं अन्तं। यस्य स हीक्षान्तः, तस्य भावः हीक्षान्तवं। एकाश्वासो हच् चिति एकाजिच् तस्य । हच् हक्तः। सनी न हत् त्रतं, म-स्थितिः, त्रकार उचारणार्थः। कुचि विभित्तं, खिः, युषः, कुविधव्दस्य पजनत्वात् मन् । पात्यानं विभित्तं, (११८) त्रीजुंकि, (११८) विदामे परे नस्य लुपि, (१५) नजा निर्देष्टमनिव्यमिति न्यायात् तदादिविधिनिवेध-स्थानिक्षते चनेन मन् । एवं उदर विभक्तं उदरक्षिरः। पाणिनः दाश्वद्द, ६९, ६८।

[†] एजेरिति एकृकमे दत्यस्य त्रानस्य ग्रहणं। खशः खशाबितौ त्रकारस्थितिः। जनं एजयतौति खग्, (५४१) चे ग्रप्रेदित ग्रप्, (५४२) गुणादिः, (५४३) त्रकार-स्रोपः, पूर्श्वस्य मन्। पाणिनिः ३।२।२८।

[‡] ढात् परात् सन्यते: खग्स्यात् घेस्वार्थे, स्वःनिमित्तकः घालवें दल्यवे: । गांसन्य इति (७६८) दिवादिलात् स्यन्, (५४३) चकारखोप: । गांभिति एकाजिजनलात् दितीयैकवचनान्तलं । एधं त्रियंगन्या (भाष्यमते त्रिभन्या) । पाष्टिनि: ३।९।८३ ।

[§] सुद्धां (त्याविभेष) धयतीत्यादि वाक्यं। खिदना धारी परे पूर्वस्य नन्।

१०१८। नाड़ी शुनी स्तन कर मुष्टि पाणि नासिकात् ध्मञ्च । (नाडी-नासिकात् ४।, भः ४।, च।१।)।

एभ्यः परात् भी घेटस खग्र्स्थात् घे। नाडि़स्थमः नाडि़स्थयः 🗱

१०१८। घटी-खारी-वाताट् विध्वरुस्तिला-द्मूर्योग्राञ्चलाटा-त्मित-नख-मानात् ध्मा-तुद्-द्दश-तप-पचः। (घटी खारी-वातात् धा, विध-भवस्-तिलात् धा, भम्थं-छयात् तप-पचः।

५।, जलाटात् ५।, सित-नाव-मानात् ५ , भा-तृद-दृत्र-तप-पचः ५।) ।

एभ्यं: परेभ्यः क्रमादेतेभ्यं: खश् स्थात् घे। घटिन्धमः खारि-स्थमः वातस्थमः, विधुन्तुदः ग्रहन्तुदः तित्तन्तुदः, श्रम्र्थस्यस्यः जग्रम्यख्यः, ललाटन्तपः, मितम्पचः नखम्पचः द्रोणम्पचः ।†

१०२० | कूलादुदुजुदृहः । ' (क्र्षेवात् प्रा. वद-वन-वद-वहः प्रा)।

घेटधातीष्टिच्लात (२५७) ईप्। यत्र घेटधाती-रेकारस्वाने चयादेश: स्थात् त³व टिस्त्राहीप् इति वक्षयं, तेन घेट-तय्य = धातयां इत्यादी न इंप्। कातस्त्रम् ।

[🔋] नाडी चग्रनी चसनय करवस्र सृष्टिय पाणिय नांभिकाचेति तस्रात्। नार्जी धमतीति खण्. (५.८०) धमादेगः, पूर्वपदस्य मन् इस्तव्यः। एवं नाङ्ग्ययः इत्यादि । पाणिनि: १।२।२६,३∙,३७, वार्त्तिकं कातन्त्रच।

[†] पृष्टक् पदकर्णं यथासङ्घार्थं, तेन, घटौ-स्वारी-वातेभ्यः भ्रः, विभ्वकस्तिलेभ्यः कदः, चन्योगायां दशः ललाटात् तपः, मित-नख-मान-वाचकेथः परः, खश्र स्थात् र्घ इत्ययं:। घटौं धमतीत्यादि वाकां (१०१४) घटौ-खारी-प्रब्द्यो मंन् इत्स्वयः। खारौ यरिमाणविर्मव:। खरौति च वार्तिके, खरी गर्गरौ (गईभीति सिद्धान्तकौसुदौ)। चरः सर्मातृदतीति चवन्तुदः, चवसी सन्, (२१३) सलीपः । न सूर्यो पछातीति चसूर्यायास्यः । द्रीयन्यच: इति द्रोच: परिमाचविभेष:। एवं चाटकान्यच: इत्यादि। पाचिनि: शराहर---१७, वार्तिकच ।

कूलात् घाभ्यां खग् स्यात् घे। कूलमुद्रजा नदी, कूलमुद्दहः समुद्रः। क्ष

१०२१। प्रियवशाद् भयित्तमेद्वात् सर्व्वकूला-भकरोषात् वद-क्त-कपः खः। (भिय-वशात् ४), भय-क्टरि-भेवात् ४।, धर्ल-कूल-पम-करीवात् ॥, वद-क्त-कपः ॥, खः १।)।

एभ्यः परिभ्यः क्रमार्टतेभ्यः खः स्थात् वे। प्रियंवदः वर्षवदः, भयद्भरः ऋतिङ्करः मेघङ्करः, सर्वेङ्गषः क्रसङ्कषः अभ्यङ्गषः करी-षङ्गषः। ११

१०२२। च्लेम-प्रिय-मद्रात् कुर्वो।

(चिम-भिय-मद्रात् ४।, कुः ४।, वा ।१।)।

एभ्यः क्षञः खो वास्यात् घे। चेमङ्गरः प्रियङ्गरः मद्रङ्गरः। पचेचेमकारः । ः

१०२३। भावधे त्वाशितात् भवः। • • • (भाव-धे ७), तु ।१।, भाभितात् धा, स्वः धा)।

(41.4.4) 3 (4) (1.4.4) 3 (4)

प्राधितात् भुवः खः स्थात् भावे घेवा।

 ^{*} छभयच उदी यहणं स्पष्टार्थं । कूल सुदुनित, क्ल सुद्दनि इति वाकादयं ।
 ऽभयच खम्, क्लमच्स्य मन् । पाणिनि: ३०२।३१।

[†] प्रथक्पस्करणं वदारिभि र्यथाभक्षार्थं, तेन प्रिय-वसाध्यां वदः, भय-स्वितः विभ्यः क्रजः, सम्बेक्लाभकरीयभ्यः कवः, खः स्थात्। प्रियं वदतीत्यादि वाक्यानि। व्यंत्र पूर्वपदस्य मन्। स्पर्वायामिपि निन्दाया-मग्रभेगमने स्वियां, कल्याप-वर्मनी-रंग स्वितिरस्यभिषीयते। करीयः ग्रब्क-गोमयं। पाणिनिः शराबद्ध, ४२,४३।

[‡] चैनं करोतीत्यादि वाक्यानि । पत्ते (१००६) ढात् षण् । पाणिनि: ३।२।४४ ।

श्राधितस्थवं वर्त्तते, त्राधितं भवत्यनेनेति श्राधितस्थव श्रोदनः।

१०२४। तृ स्ट ट दृ जि ध तप यम दम मद लिह गम सहाजो नाम्नि । (१-४७:५१, नाम्ब ७)।

एभ्यः खः स्यात् संज्ञायां । रथेन तरतीति रथन्तरः, विखन्धरः, पितंवरा, पुरन्दरः, धनन्जयः, वसन्धरा, प्रवृत्तपः परन्तपः, वाचंयमः, ऋरिन्दमः, द्ररया माद्यतीति द्ररम्पदो हस्ती, वहं- लिहः, सुजङ्गमः (पतङ्गमः प्रवङ्गमः), सर्वेसहः, वातमजः । पं

१०२५ । मधुजहीरङ्गमीरग तुरग तुरङ्गम विह्नग विहङ्गम (भुजग)भुजङ्ग (पतग)पतङ्ग (स्रवग) स्रवङ्गाः । (भडनह—स्रवङ्गाः १॥)।

धे केरचे। आश्रितंत्रिः। आश्रितस्य भवनं आशितस्य भावे खः। खः प्रत्येय
परे गुणः पूर्वस्य मन्। "आशियती भवल्नेनाशितस्यवः औदनः। आश्रितस्य भवनम्
आशितस्यवः" इति तु सिद्धान्तकी भुदी। पाणिनिः ३।२।४५।

[†] तृतरे, स्र लि स्वित्रिश्योः, इन ज ग इती, दृय गि विदारे, नि जये, ध्र ज ध्यां, तयौ सन्ताये, श्री यस उपरमें, दम्भ इर् ग्रमें, मदी भि थे जि हवें, लिं इल स्वादे, श्री गम ल गयां, सह ज इ शक्ती, श्रज गती चेपये, इति चत्र्धं गम्भी धातुश्यः नास्त्रि वाच्च वाः स्यात्। विश्वं विमत्तिं। पतिं व्योति या सा। पुरं दौर्य्यति (दारयतीति पायिनः) पुरन्दरः, एवं भगन्दरः ("भगे च दारेः" इति काशिका)। धरं जयित धनस्यः, एवं रिषुस्त्रयः। वक्ति धरित (धारयतीति पायिनः)। शवुं तपित, परं तपित (तापयतीति पायिनः, एवं दिश्चत्रः)। वाचां यच्छति, भन्न मन् भापी क्रस्त्य। श्रिरं दास्यति। इरा जलं, इरस्प्रद स्थान मन् क्रस्त्रयः। वहं लिंद्ध वहं विहः, एवं भभं लिहः; ग्रस्त्रकता तृष्ववद्गिष्ट इति गुणप्राप्तियोग्यधात्नां मध्यं लिहधातीः सिव्ववेश्वनं न कला वहं लिह दत्यव गुणी न स्वादिति स्वितं। सुजन वक्तगमनेन गच्छति सुजन न त्रं पत्रक्रमः सवक्रमः। इद्यक्षमः इति धन्नेशायामपीति वक्तव्यं। सम्बं सहते। वातमजतीति वातमजः वातस्याः, संभान्तरोधात् न वौ-भादेशः (५०६)। पायिनिः श्रार्श्वः, १०,२६,४०,४४,४४,४७,६।१।६६८, वार्तिभस्य।

एते खान्ता निपात्वन्ते। ग्रर्डं जहातीति ग्रहेंजही माषः, उरसा गच्छतीति उरङ्गमः, उरगः, त्वरया गच्छतीति तुरगः तुरङ्गमः, विद्यायसा गच्छतीति विद्याः विद्यङ्गमः, भुजेन गच्छतीति (भुजगः) भुजङ्गः, पतेन गच्छतीति (पतगः) पतङ्गः, प्रवेन गच्छतीति (प्रवगः) प्रवङ्गः। *

१०२६। नग्नपितिप्रियान्यसूलसुभगास्त्रात् कु: खनट् घे च्यु घे । (नय-भाबात् ४०, कः ४१,खनट् १२१, धे ७१, चूर्ये ७१)

एभ्यः परात् क्षञः खनट् स्थात् धे चुर्थे। अनम्नो नमः क्रियते उनेनेति नमङ्करणं चूतं, पलितङ्करणं, प्रियङ्करणं, अन्धङ्करणः योकः, स्थूलङ्करणं दिधि, सुभगङ्करणं रूपं, आट्यङ्करणं वित्तं । 🅆

१०२७। भवा वे खिष्णु-खुकजौ।

(सुव: ५१, घे ७।, खिणाु खुकाञी १॥)।

प्रार्थः मण्डन्ः पपानवायुत्यागः । पत्यतिऽनेनिति पतः पत्तः । स्रवीऽव उञ्चयकां । वृद्धवर्षाद्यप्रिप्, तेन त्वर्या गच्छतोति तुरङः, विद्यायमा गच्छतोति विदृष्णः रत्यादि। भव सुजग-पत्तग-स्रवग पदानि उप्तययेन साध्यान्यपि लिपिकर-प्रमादान् एतन् सूवे निविधितानि । वार्त्तिकानि ।

[†] नग्रस पित्रच भियय चन्यस स्यूल्य सुभग्य चाळाय तत्तस्मान्। खनटः खटावितौ, चन-स्थिति:। चूर्येश्वाये: (४८५) चभुततद्वावः। धे करणवाच्यं। नग्रद्भरणितः सिंदिलान् (१०१४) पूर्वपदस्य मन्। क्रधातां गुणः। एवं चपितं पितिकारणं वार्जकां। भियद्भरणं संवगं। चूरियें खनट्विधानात् चिप्रस्ये न स्थान्, तेन नग्नीकारीस्थनिन इत्या खनट् न स्थादिति पाणिनौयाः। काथिकासते चनट् चपिन स्थात्, भाष्यमते तु स्यादेव। पाणिनौः ३१२५६।

नग्नादिभ्यः परात् भुवश्वपर्ये एती वे स्तः। नग्नश्नविष्णुः नग्नश्नावुकः। *

१०२८। ढात् भज-वह-सहो विण्।

(ढात् ५।, भज-वड-सडः ५।, विण् ।१।)।

ढात् परेभ्यः एभ्येा विण् स्यात् । सुखभाक् प्रष्ठवाट् तुराषाट्।†

१०५८ | अनडुच्छेतवाहादिः। (१।)।

एते विणन्ता निपात्यन्ते । अनी वहतीति अनद्वान् व्रषः । खेतेन्छ्यते इति खेतवाः इन्द्रः । अवयजतीति अवयाः, उक्-यानि शंसतीति उक्षयाः यजमानः । पुरीडाः हविः, पुरी-डागः । ः

१०३०। क्रम गम खन सन जंनो विट्।

(जम-जन: ५१, विट् १११)।

^{*} भे जिल्हों. ख इत्, इणु-स्थिति:। खुकजः खजाविती, उक-स्थिति:। भवापि दिप्रत्यथे न स्थात्। भनगो नयो भवतीति नग्नभविणः, भूधातो गृंषः, खिस्तात् नग्न-भन्दस्य मन्। एवं नग्नभावुकः जिस्तात् विद्यः। एवं पलितभविषुः पलितभावुकः इत्यादि। पाणिनिः ३।२।५०।

[†] विण् इत्यस्य दकार उचारणायै:, ण इत् (५००) वृद्धायै:। भविष्टिश्वकारस्य (४८६) त्यो वमान इति लीप:, स्तरां विण: सव्योभाव:। सुखं भजतीति सुखभाक्, विलासी, (२११) कुङ्। प्रष्ठं भयगं वहतीति प्रष्ठवाट् भयः, तुरां विगं सहते दित तुराषाट् इन्द्रः, उभयन (१०५) हस्य ढ, तुराषाडिति (१११) पत्नं। पाणिनि: ३।२। ६२—६४।

[‡] श्वेतवाह चादि र्यस्य सः। चनड्वानिति (१८१) चान्। श्वेतवाः दिति वर्तः परात् वर्षः कर्माणि वाचे विष्। पुरः चादौ दास्वते दौयते दति पुरोडाः, पतेषु (१८४) डसङ्, (१८५) दौर्षः। पुरोडाम द्रति चकारान्तोऽपि निपाल्यते। पाणिनिः ३।२।२१,७२।

एम्यो विट् स्यात् घे। *

१०३१ । विड्वनो ड्री । (विट्वनी: आ, ड्राश) । धोरन्यस्य ड्रास्यात् विटिवनिच । उद्धिकाः, स्त्रग्रेगाः, विसखाः, गोषाः, खजाः । पं

१०३२ । नासुसिस् मन् क्वनिप् विच् किप: । ू (१॥)।

धोरेते स्यु: के भावे च। नीयतेऽनेनेति नेतं दंशा नहीं योतं, उरुव्यचाः रुचचाः रजः, चचुः, सिषः, सुष्ठ 'ददातीति सुदामा गन्मा। \$

^{*} विट: इटाविती, (४९६) वमात्रस्थापि लोपः, सुतरां विटः सर्व्वाभावः। पाणिनिः ३।२।६०।

⁺ तिट्-साइचर्यात् वन् इति गुणी ग्राह्मः, तेन न क्रानिपः प्रसङ्घः। ङा इत्यस्य ङ इत् भन्यस्य स्थाने, भत भाइ धोरन्यस्यिति। उद्धिं क्रासतीति उन्हेश्चिकाः, एवं भग्नं गक्किति, विसं (स्थालं) खनिति, गां सनीति (ददाति), भप्स नायते इति वाक्यानि। सम्बंद पूर्श्लेष विट्, भनेन ङा, भाकारान्ताः भ्रव्दाः। गोगा इति सन धातोः सस्य (५००) क्रतत्वात् (१११) षत्वं। चदाहरणकापकात् असन्तानामेव ङा, नायस्य। पाणिनिः ६।४।४१।

[‡] तथ अस् च उस् च इस् च सन् च किन् च विन् च विन् च किंग् च ते। किन् किंगः च देनाः किन्यः क इ प इतः, विनयः इपाविती, उभयत्र वन्-स्थितः। विन् कियोः सन्धाः भावः। धीरिति सामान्धेनीकाविष प्रयोगानुसारात् अयं। दश्यतेऽन्येति देष्ट्रा दत्तः, (१५४) षड्। नद्यते ऽन्येति नत्नौ रज्यः. (१२०) इस्य घड्ः, (५०५) तस्य ध, (६४) पूर्वेषस्य द। उभयत्र चिन्धिमानात् स्त्रीतं, नदादिलादीष्। यूयतेऽनिनित्ति योतं। एवं युज्यते ऽनिनिति योक्नं, दा ख लूनी दातं, पा पानं पातं, सु स्तीतं, निह सेद्रं, पत पत्तं, अस्य अस्तं, भस्य अस्तं, भस्य अस्ता इत्यादि। उक् सहातं विचिति सक्त्याचाः, (७५६) अस्वर्गनात् न जिः। नरं चष्टे त्रम्वाः, (००६) अस्-

१०३३ | हब्नते नैंस् । (इब्-व-ते: ६१, न ११), इस् ११।)।

क्षती हबस्य तस्य तेय इम् न स्थात्। समर्मा, सुपीवा प्रात-रित्वा सत्वा, भूरिदावा वारिजावा, सोमपाः रेट् रीट् क्रुङ्, युङ् प्रत्यङ् श्रचयूः मित्रशीः श्राशीः गीः बहुस्ट एतस्यक् श्रस्थात् क्रव्यात्। *

१०३४। छादे स्तुमन्कीस्वे खः।

(कार्दे: ६।, च-मन्-िक रम् घ ०।, स्तः १🗗।

क्टाद्यृतेः स्वः स्थात् ने म्नि काविसि घे च। कसं, क्रम्भ, तनुच्छत्, क्रदिः, उरम्बदः। १

वर्जनात् न क्मा-स्थादेश: । रज्यतेऽनेनिति रजः, (६६०) न-कीप: । एवं विधतीति विधा: । चष्टे (पद्यति) भनेन चतुः, (७०६) उत्तवर्जनात् न क्सा-स्थादेगः । एवं धन रवे धभतीति धनुः । सपंतीति सर्पिः । एवं इयते यत्तत् इतिः । गच्छतीति नन्मा (२०२) मस्य न । पाणिनिः शराहरू, ७३—७०, ८०—८६, उत्पादिश्व ।

^{*} इब् इति वयं वकारानः प्रत्याद्वारः । स-गू-मन्, धनेन इम्निवेधः, गुषः । स्पिवतीति स्पीवा, सुपा-किन्प् कित्तादगुणे, (६१२) छी । प्रातरिति प्रातित्वा, सुगीतीति सुवा, उभयव (८८२) तन् । भूरि दहातोत्वव वनिप् (१६४,११८) भ्िदावा, वारिषि जायते वारिजावा, इत्वव वनिप्, (१०६१) छा । सीसं पिवतीति सीमपाः, विच्, विचः च इत् प्राचीनानुवादायेः न त्व्ययायेः । (४८६) वमाव-लीपः । रेषति रीषति रीट् रीट, विच्, गुणः । कुछतीति विच् कुषः । युनक्रीति युङ्, युन्ज-किप्, (५६०) न-लीपः युज्रथस्दः, सिः, (२१०) तुण् प्रत्यस्वतीति क्विप् (५६८) पृजायस्य प्रत्यः न-लीपाभावे प्रत्यः, पर्थः, सिः, (२१०) तुण् प्रत्यस्वरस्य (१८२) तुण् कृते प्रत्यः प्रत्यः च न-लीपाभावे प्रत्यद्धः, (६१४) कट् । सिचं ग्रान्ति सिवग्रीः, प्राग्रानि प्राग्रीः, उभयव (७०५) छकः स्थाने इत्, (२२०,२२८) रङ्, दीर्घः । (००५) क्वौ लाग्रासयिति क्यमात्, प्रत्यव प्रत्यानीति प्रग्राः । ग्रां स्थातीति ग्राः, (६२८) इर् । यहं स्वज्वतीति वहस्य, (६६१) जिः । छतं स्थातीति एतस्य । ससं पत्ति, क्रव्यं (मांसं) पत्ति, प्रस्थात् कव्यात् । पाणिनः ०।२।८,८।

[†] कद कि संवर्धी । कादातेऽनेनिति कसं, (१०११) द्रम्निषेधे, (६४१) जे-

१०३५। दहज्जुह्न वाक् प्राट् स्त्री स्तू द्रू ज्वायतस्त् कटप्रू परिवाट दिद्युज्जगत् दधक् स्वगु-िष्णाहः। (वहन - विश्वाहः १॥)।

एते क्षिवन्ता निपालन्ते । दीर्थितीति दहत्, जुहोत्यनयेति जुहः, वन्त्यनयेति वाक्, एच्छतीति प्राट्, अयत्येनां श्रीः, स्रव-तीति स्तूः, द्रवतीति दूः, जवतीति जूः, आयतं स्तौतीति आयतस्तूः, कटं प्रवते कटपूः, परिव्रजतीति परिव्राट्, द्योतते द्रित दिद्युत्, गच्छतीति जगत्, धृष्णोतीति दष्टक्, दंज्यते द्रित स्वक्, जर्षं सिद्यतीति उष्णिक्। क

१०३६ | जि द्वें। इन्त्यः । (जि: ११, घं: ११, घन्यः १।)। श्रन्थे। जि घे: स्थात् । भित्रं ह्वयतीति मित्रहः । पे

१०३७। वेध्याप्यां को । (वे-ध्या-श्राप्यां ६॥, को ७।)।

कः धीः ग्रापीः। ध्यायोरतएव जिः। 🕴 🕒 🗣

लोंप:, भनेन इसः, (६४) दस्य तं। क्दा रित मन्, 'इस्वय। तनुं कादयतीत, तनुक्तत् किपि इस्तः। के कादयतीत, तनुक्तत् किपि इस्तः। के परं इस्तः विभागत् कादयतेः कर्तति नामि व-प्रत्ययो वक्तव्यः. (१०००), घ द्रन भकारस्थितिः। तेन उरम्कादयतोति उरम्कदः। एवं प्रश्वदः परिकादः दलक्तदः इत्यादि। पाणिनः दाधाद्दः एतम्बदः इत्यादि। पाणिनः दाधाद्दः एतम्बदः एतम्बदः इत्यादि। पाणिनः

अ "जुडीते इंग्रतेवी जुइ: । द्वणांतर्दोर्घ्यतेवी दहत्" इति भाष्यम् । पाणिनिः
 श्राप्र, १७०, १७८, वार्त्तिकपञ्चकम्, ज्यादिषः ।

[†] भान्य देति ज्ञत्प्रत्ययाव्यवितपूर्ववर्ती । सिनहरिति किप्, (६६१) जि:, दीर्षः । एवं हतः हतवान्, इतिः, हता । ज्या—जीनः, श्वि—ग्रनः । भन्यः किं, इष्टः प्रष्टः । वार्तिकं, भाष्यश्व ।

[‡] एषां जेर्घ: स्थात् कौ। वे जे स्यूतो, वयतीति कः, जिति (६६१) जिः,

१०३८। जमुङो अखगौ चातिकि।

(জনুক্ত: ६।, भसि ৩।, পথী ৩।, च।१।, প্রিনিল ৩।) ।

जमन्तस्य उड़ी र्घः स्थात् श्रणौ भन्मे कौ च, न तुर्तिक । प्रयान्। क

१०३८ | स्तित्राव सव ज्वर त्वरी वुड्डा असे च। (स्व अक सव-ज्वर त्वर: ६।, वृ।१।, जट्रि।, घडा हा, असे था, च ।१।)।

एषांव उड़ा सह जट्स्यात् की भन्नि ग्रणी जमेच। स्तूः ज: भू: ज़: तृ:। पं

१०८० | राच्छ्री लाप:। (रात् था, क्वीः ६॥, कोपःश)
रात् परयो-श्ककार-वकारयो लीपः स्थात् की असस्य विजने
च। मुच्छा मूः, धुर्वी धूः। इं

दीर्घ.। पूर्वम्वेष मिद्रिशप नियमीऽयं, भक्ष जीः कार्वव दीर्घः, नान्यव, तेन खतः खला इत्यादि। ध्याययनया घीः, ("ध्यायतेर्दधातेर्वा घीः" इति भाष्यम्), आष्यायते इति भाषीः, कर्षे ये एतयी जंरमभावेऽपि, जे दीर्घविधानादंव को नि वंक्तयः। वार्तिकं भाष्यस्थ।

अस् अस् असनी धातः, तस्य उङ् तस्य। प्रशास्यतीति प्रशान्, प्रश्नम-किष्, भनेन खडी दार्घः, (२०२) सत्य न। अणी भने ग्रया, श्रानः शान्तः शान्तः शान्तः स्वादि! इतः इतिः इता इत्यादौ तु (६०६) अस् लांपे असन्तवाभावात् न दीर्घः। भतिकौति किं, रन्तिः तनिः। पाणिनः ६।४।१५।

⁺ सिद्यु शोवे गतौ, स्नीत्यतीति सः । भव रचादौ, भवतीति कः । मव बस्ने, मवतीति मृ.। प्रथमादिवचनादौ, (१३५) चव, सुतौ. चवौ, सुनौ इत्यादि । ज्वर म गेगे, ज्वरतीति जूः, ("ज्वरते जीं श्रेते वां ज्ः" इति भाष्यम्), जिल्ला भाष्ट स्वदे, लरते इति तः। भाषौ भने—स्रूतिः कतिः स्तिः जूनिः तृनिः। जमे च, सिव-मन् स्रोमा, भव-मन् श्रोम् इत्यादि । पाणिनिः ६।४।२०।

[‡] सुर्का भोड उक्क्ये, धर्वी डिंसे, उभी क्रस्तवनी। क्रिपि चनेन क-व-खोपे, सुर्, धर् अच्टो, ततः प्रयमैक वचने, (२२८) दीर्घः । अपनी अपने च मूर्णः पूर्णः इत्यादि ।

१०४१ । ऋादूटो त्रि: । (पात् ४।, जटः ६।, तिः १।) ।

श्रवर्णात् परस्य जटो व्रि: स्थात्। जनान् श्रवतीति जनीः।

१०४२। यम मन तन गमाऽन्तालाप: क्या ।

(यम-मन-तन-गम: ६।, भन्तर्लाप: १।, क्वी ७)।

एषामन्तस्य लोपः,स्यात् क्षते । संयत् परिमत् परी,तत् संगत्। १

१०४३। सि-विष्वग्-देवस्य टेरदाञ्जी कौ।

(सि-विष्वच्-देवस्य ६।, टे: ६।, भद्रि।१।, भन्नी ७।, क्री ७।)।

स्ने विषयो देवस्य च टेरद्रिः स्थात् विवन्ते श्वचतौ । सर्वी-नवतीति सर्वेद्युङ्, विषयुङ्, देवद्युङ् । कः

भाव रेफ शाइचर्य्यात बकारी दत्यण्य, तेन घर्वगती इत्यादी वर्ग्यकारेन प्रसङ्घः । पाणिनि: ६।४।२१।

[•] जनौरिति, जनान् इति उपपदेन भव-धातीः समासे, ततः किप्, (१०३८) जट्, जन-ऊ, भनेन ऊ इत्यस्य इदिः भी, ततः सन्धिः। यवादी किप् प्रेतैः समास-स्वत्र, जनस्य ऊः जनोरिति, एवं तत्र ऊः तवीरित्यादि। एकपदे तु भव-धातीः किप्, (८१४)वस्य ऊट्, भनेन इदिः, भीरित्यादि। पाणिनिः ६।१।८८।

[†] संबच्छिति, परिमर्जते, परितनीति, सङ्घकते—इति वाक्यानि। सर्व्यंत्र किपि, धन्याचरक्षेपे, (८८२) खस्य तन्। परीतदिति दीर्घनिर्देशात् किवनी धातौ परे किविद्यसर्गस्य दीर्घो भवतौति स्चितं, "खपसर्गस्य दीर्घलं किप्पकादौ किविद्वतेत्" तेन, विरोहित वीद्दत्, उपनद्यति उपानत्, उपवर्षते उपानत्, प्रवर्षति प्रावट् (सतान्तरें) इत्यादि। पाणिनि: ६।४।४०, वार्षिकस्य। परिमत्स्याने "सुनत्" इति विद्वासकीमदी।

[‡] सिस विषक् च देवचेति तस्य । विष्णिति मूर्डंग्यमध्यं चान्तमव्यथं । विषक् समन्तात् चचति विष्ययुङ्, देवानचिति देवयुङ् । सर्व्यं टीः स्थाने चिद्रःचादेशः । एतेषु पूजार्थस्य (५६८) नसीपनिष्षे सम्बद्धस् देवयुष् शस्ती, गत्यर्थस्य तु (५६०) नसीपे विषयुष् शस्तः, ततः सिः, (१८२) तुष् । पाषिनिः ६ ।३।८९,।

१०४४ । अमुद्युङ् अमुमुयङ् अद्द्युङ् अद-म्यङ् । (१॥)।

त्रमुमञ्चती खर्चे एते निपालन्ते। *

१०४५। सह-सन्तिरः सिधु-सिम-तिरि।

(संद-सम्विद: ।६), सिप्त-समि-विदि ।१।) ।

एषां क्रमादेते खु: किबन्तेऽश्वतौ । सध्युङ् सम्यङ् तिर्थेङ् । १

ृै १०४६ । बीक्हो घङ्कौ।

" (बीकह: ६।, धङ्ाश, क्षी अ)।

वीरत्। #

१,४९। त्यदादि-भवत्-समानान्योपमानात् दश्यक्त-सन्-िकापो दे।

(त्यदारि-उपमानात् ५।, हमः ५।, टक्-सक् किपः १॥, दे ०।)।

त्यदादेर्भवतः समानादन्यस्माच उपमानात् दय एते खुः है। §

१०४८। सेङी। (बै: ६१, डा ११)।

^{*} पाणिनिः ८।२।८०।

[🕇] सङ्घाषति, सम्घाषति, तिरः प्रस्ति, इति वाक्यानि । पाणिनिः ६।३।८३-८५।

[‡] विपूर्वस्य कहो थङ्स्यान् की। उत्पर्तमस्यस्य स्थाने। विरोहतीति वौक्त्। वेटींर्यस्य वीजं (२०४२) स्वस्य टीकायांद्रष्टस्यं। पाचिनिमते विपूर्वकात् कथथाती: क्रिपि वीक्ष्पति सिज्ञम्।

[§] त्यद् मादि र्यस्य स त्यदादिः, त्यदादिस भवास समानस मन्यद तत्, तस तत् उपमानस्रति तसात्। मन्य इत्येव श्रस्टः। उपमानभृतेभ्य एभाः परात् हशः टक् सक् क्रिपः स्युः कस्यप्य वाच्ये इत्यर्थः। टकः ट-कावितो मकारस्थितिः, सकः क इत् संस्थितिः, क्रिपः स्टब्संभावः। पश्चिनिः १।१।६०, वार्तिकदयसः।

स्रे की स्थात् टगायन्ते हिथि। स इत हस्यते ताहमः ताहनः ताहन्। भवाहमः। अ

१०४८। समानेदंकिमदः सेकाम्।

(समान-इटम्-किम्-भटः ।६॥, स-ई-को-भम् ।१॥) ।

एषां स्थाने स ई की श्रमू एते क्रमात् स्युः टगादान्ते दिशि । सदयः ईदयः कीदंगः श्रमूदयः । श्रन्यादयः । 🅆

द्रति हनादि-पाद: ।

३य पादः—क्तादिः।

१०५०। ता-तावत् भूते ढभावे घे।

(क्त-क्तवत् १॥, भूते ७।, डभावे ७।, चे ७।)।

^{*} से: सर्व्यादिगणस्य स्थाने इत्यर्थः। जा इत्यस्य ज इत् भन्यस्य स्थाने। ताहभ-द्रति तद-हम-टक्, किस्तात् गुणाभागः, तद स्थाने जा। टिस्तात् (२५०) देपि ताहमी इति च। ताहच इति सक्, (१५४) षज्, (६०२) षस्य क, (१११) कवर्गात् पत्नं। स्त्रियान्तु ताहचा। किपि ताहम् भन्दः, (२११) कुङ्। भवानिव हस्यतेऽषी, टक् भवाहमः, स्त्रियां भवाहमी। एवं भवाहकः, भवाहकः इति। पाणिनः ६।३।८१।

[†] समान इव टम्बते, भयमिव टम्बते, का इव टम्बते, भराविव टम्बते, भन्यहव टम्बते — इति क्रमेण वाक्यानि । सर्वेव टक्। एवं सटवः सटक् इत्यादि । भन्यादय-इति पूर्वेण खा । पाणिनिः ६।३। प्ट. १० । प्राराप्तः ।

^{*} सुत इति ष्टुच ल सुतौ, कर्माण तः (६०६) वेमलेऽपि, (१०५३) इमो

१०५१। चे वी ऽढे भावदैन्याक्रीये तुवा।

(चे: ६।, र्घ: १।, पांढे ७।, भावदैन्याक्षीभे ७।, तु।१।, वा।१।)।

चे र्घः स्थात् न तु ढे, भाव-दैन्याक्रीये तु वा, तयोः परयोः ।

१०५२। सूल्वाद्योदिह्न-चौ-यल्खातो न तो ऽप्-मुक्क-स्था-ध्या-मदो दश्च १ क (म्-ल्-भादि-भोत्-इत-द-र-चौ-यल्-स-पातः ११, न १११, तः ६१, षप्-मदः ११, दः ६१, पं ११)।

स्वादे र्लांदे रोकारेती दान्तात् रेफात् चीयव्दात् यसस्ययुका-कारान्तात् परयोस्तयोस्तस्य नः स्थात्, पूर्वस्य च दस्य नः,न तु प्रादिभ्यः । चीणः चीणवान् । अटे किं, चितः कामी मया । \$

१०५३। वृदुश्चिजूणी: कितो नेम्।

(इ.च्छत् छ-थिञ्-कर्षो: ५।, कितः ६।, न ।१।, द्रम् ।१।) ।

निषेभे, कित्तात् गुणाभावः। 'णा ख श्रोधने, भावे कः, स्नातं। डुक ल द करणे क्रावतः, कित्तात् गुणाभावे कतवत्शब्दः, प्रथमेकवचने, (१८२) चदित्सात् तुण्, (१८५) दंविं, (१८३) स्नान्तकोषः। पाणिनिः १।१।२६, १।२।१०२।

[#] भावस दैन्यस पात्रीशस तत्तिस्मन्। भावी धालसं, दैनं दौनता, पात्रीयः क्रीधीति:। चेरिति पविश्रेषात् सर्व्यंगपपठितः विधाती सहस् । पापिनि: ६।४।६०,६१।

[†] स्थ लूप स्लो, तौ भादी ययोकी स्लादी। भीत् इत् यस स भीदित्। यलः यलानः, स चासी स्थिति यलसः, तेन युक्त भात् यलसात्। ततः स्लादी प भीदिच दच रय चीय यलस्योदिति तसात्। प्य मुर्च्य स्थाय ध्याय मद चेति, न पृमुक्तं स्थाप्यामद तसात्। चौ इति क्षतदोर्धस्य यहणं। स्वादयः—स्ट्रो डौ धौ सी रो लो ती। लादयः पूभिताः पादयः, ४१० पृष्ठ द्रष्टयाः। पाणिनिः पाराधर-४६, ४०। एतमति सादयः भीदितः।

<sup>चीण इति चक्तसंकात् वच्यमाधेन (१०८३) कर्त्तिति, (१०५१) पूर्लेण दीर्षे,
चनेन तस्य न, (१००) णर्ले। एवं क्षवतु, चीणवान्। मया काम: चितः हिंसितइत्यर्थः। चत्र कर्मानचात् (१०५१) चेर्च इति न दीर्घः, दीर्घाभावाद्य न क्रस्य न।
भाव वार्चतु चीणं वित्तिति विकल्पेन दीर्घः।</sup>

हजी हक ऋदन्ता-दुवर्णान्तात् त्रिज जर्षे। स कित इम्न स्थात्। *

स्तः स्नवान् दीनः, 'लूनः जीनः, रुग्णः भुग्नः प्रहीणः, मित्रः निर्विषः, प्यानः ग्लानः श्राणः । प्रादेलु — पूर्त्तः मूर्तः ख्यातः ध्यातः मत्तः । प

इतः ग्रीर्थः भूतः श्रितः कर्णुतः । क्ष

१०५३ | दिव्यञ्चश्योऽजिगीषाजासमें न त-स्तयोः । (दिव-षष-ग्राः॥, पितगोषा-पज-पत्रमेंण, नारा, त ६।, तयीः ६॥)।

^{*} वस सहय छय पिजन कर्णुय तत्तसात्। क इत्यस्य स कितृ तस्य। ह-स्तीः (७४०) स्वायृहदुरिति वेसत्वेन, श्विधातीः (८१०) अस् नश्वीति वेसत्वेन न, (१००१) नेस् जीश्वीत्यादिना क्र-कावलोरिस्निषं क्षेत्र क्ष्यांनाच (१०३३) इत्यतं रित्यनेन इस्निषं पिडिऽपि इद्दोपादानं काच इस् निषेधां। छवर्णान्तत्वेन धौषाविष कर्णोः पुनग्रंहर्षं, अस् नश्वीत्यनेन विकासिर्वेमः कर्णुधातीः नेस् जीश्वीत्यन स्रनेकाववर्जनात् इस्प्रसक्तौ, पुनर्विषेधां स्वत्यान स्वत्यान चवर्णान्त एकाच एव बीध्यः। पाणिनिः ७।२।११, वार्त्तिक्यः।

⁺ खादिमाह स्न इत्यादि—सृ यो ङ स्तौ कस्योग कः, भनेन इन-निवेधे, पूर्लेण तस्य न। एवं कवतः स्नवान । भो दो ङ य चथे, दीनः खादिलान तस्याने न। स्वादिमाह—ल् ज नि हिदि लून, ज्या नि जरायां भीनः, (६६१) जिः, (१०६६) दीर्घः। भीदितमाह—कभी शौ भक्तं कग्णः (१००) णलं। भुभी शौ वक्षणे भुगः, भक्तरज्ञलादादौ (२११) वृष्ठिति कुङ्, पश्चात् तस्याने न। भो हा क लि लागे प्रहीणः, (६१२) छी, (८६०) णलं। दानमाह—इर् मिद्या के है निन्नः, (१००२) इन्-निवेधः। विद्यौ ङ भवि निर्व्विधः, भध्ययने कुछ हत्यथः, भव यलं वक्तव्यं। रात्तस्य स्वदाहरणं न दत्तं, नृर—नूर्णः, सुर—चूर्णः इत्यादि कक्तां। यस्युकादनमाह—प्ये —प्यानः (६०८) ऐ स्थाने भा, खै—स्वानः, श्रा—श्वाधः। पू—पूर्तः, (६२८) दर्, (२२८) दोर्घः। सुर्व्छ - मूत्तः, (१००२) इन् निवेधः, (१०४०) क्र-लीपः, (२२८) दीर्घः। स्था—स्थातः, ध्यै—स्थातः। मद—मत्तः।

[‡] बक्त बतः, (५५४) इ.स्प्राप्ती चनेन निषिद्धः । शृ—शीर्यः, इ.स्यादि ।

दिवेर जिगीषायां अञ्चतेरजे खायतेरस्पर्धे तयोस्तस्य नः स्थात्। श्राद्यनः समक्रः। *

१०५५। घनसर्भे म्यो जि:।

(घन-स्प्रमें ७।, म्यः ६।, जि: १।)।

घने स्पर्भे चार्षे स्त्रो जिः स्थात् तयोः । सीनं घतं । जिगी-घादौ तु. द्यूतं, उदत्तमुदकं कूपात्, भीतं जलं । घनस्पर्भे किं, संस्थानो दृश्विकः सीतात् सङ्घित इत्यर्थः । पं

ं १०५६ । प्रते:। (पतेः प्रा)।

प्रतिपूर्वस्य भ्या जि: स्यात्तयी:। प्रतिभीनः। \$

१०५७। ऋथवाद्या। (भिम-भवात् ४।, वा ११)।

भ्रम्यवात् परस्य श्रो जि: स्यादा तयो: । श्रभियीन: श्रभि-श्यान:, श्रवशीन: श्रवश्यान: । §

[#] दिविश प्रस्तय स्थाय तत्तसात्। न निगीवा चिनगीवा। जं चपादानं, न जं सर्गं ं न स्पर्धे। स्पर्धः। चिनगीवा च च जस अस्पर्धं ग तत्तसान्। सा-दिव-क्त, (८१४) वस्थाने कट, घनेन तस्थाने न। साद्यूनः स्था-दौदिन्त इत्थमरः। सम्- चन् चन्त्र, (४६०) नसीपः, (२११) कुङ्, तस्थाने न, समक्रः सङ्गत इत्यवः। ''समक्री यक्तनः पादौ'' इति पाचिनिटौका। सभयव (१००१) इम्-निषेधः। पाचिनिः ६। १।४०—४६।

[†] घने द्रवद्रव्यस्य घनीभावे इत्यर्थः। श्रीनिमिति श्री ङ गती, क्तः, घनेऽघें घनेन निः, (१०३६) दीर्घः, पूर्वेष तस्थाने न । पूर्वस्य प्रत्युटाइरणमाइ — यृतं, दिव-भावे क्तः, तिगीषार्थे न तस्थाने न । उदक्तं उद्गतमित्यर्थः, कूपादिति घपादानप्रयोग् गात् न तस्थाने न । श्रीतमिति श्री-क्तः, स्यशीर्थे घनेन जिः, पूर्वेष न तस्थाने न । संश्रान इति घनस्यर्शभावे न जिः, पूर्वेष घस्यशीर्थे तस्थाने न । पाणिनिः ६।१।२४।

[‡] प्रयक्षीगात् घनस्पर्भयीनांतुहत्ति:। पाणिनिः ६।१।२५ ।

^{§ &}quot;व्यवेखितविभाषेयं, तेनेइ न समयग्रातः" इति सिखानकौष्ठदी । पाणिनः ६।१।२६।

१०५८। षिञो ढघेन तो ग्रासे।

(विञ: ५।, ढघे ७।, न ।१।, त: ६।, गासे ७।) ।

षिजः परस्य तयोस्तस्य नः स्थात् ढघे, यासे वाच्ये। सिनो यासः स्वयमेव । *

१०५१ पूजी नाग्रो । (पूजः ४।, नाग्रे ७।)। पूनी नष्टः, अन्यचं पूतः । गं

१०६० | दुग्वो वश्व । (इ.म्बी: ६॥ र्घ: ११, च ।११) । श्वास्यां तयोस्तस्य नः स्थात् तयो र्घव । दून; गून: । र्छः

१०६१ | त्रञ्च: काङ् च | $(\mathfrak{a}^{32: \, \xi \, I}, \, \mathfrak{a}^{38: \, \xi \, I})$ प्रश्चेस्तयो स्तस्य नः स्थात्, कङ् च । हक् $(\mathfrak{a}^{38: \, \xi \, I}, \, \mathfrak{a}^{38: \, \xi \, I}, \, \mathfrak{a}^{38: \, \xi \, I}, \, \mathfrak{a}^{38: \, \xi \, I})$

मिश्र इति षोपदेश-निर्देश:। (५६८) षस्य सं। विश्व न वस्ये. कम्मकर्तिः क्षः, टेबद्दीन सीयमानी ग्रासः स्वयभेव सिनः वह इत्यर्थः, ग्रासः कृष्वनः। द्वि किं. सितो ग्रामी टेक्ट्लेन। ग्रामे, किं सिन्धीरः स्वयभेव। वा-इयमध्यवित्तं वा-देतिदारीनां चत्रां नित्यता। "सिनीतेग्रां सक्ष्रिकस्य" इति वार्तिकम्।

[†] धातनामनेकार्यत्वान, नाशार्थ-पूज-धाती-सयीमस्य नः स्यात्। ''पूर्ञा विनाग्ने'' इति वार्त्तिकम्।

[‡] दुगरी (दुद्वीतिनतापे इत्यस्य तुन. तच दृत इति परं), गुङ भ्वनी, गुजि तृ विट्सृजी, इत्यंतिषां यक्षां। टूगू इति दीर्घानास्यां ऋष्ययेन पदनिज्ञाविपि एतत्-स्वकरणं इत्यानयीर्दस्वी: प्रयोगनिषेषाये। "दुस्वीदीर्घय" इति वार्तिकम्।

^{\$ (}१५४) मक्। जेति घङ्पानिवारणार्थनिष्ठ कङ्विधानं। ङ इत् चन्त्रस्यस्य स्थाने। वक्ष इति, वसूम केंद्रे, क्ष, (१०७१) नेस् डीश्वीति इसी निवेशे. (६६१) जि:, घनेन क्रस्थाने न, चस्य क, निर्मत्तस्यापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति न्यायेन तालन्यमस्य दन्त्रस्ते, (२१३) स्थादे: सी लीपः, (१००) णस्तं। पाणिनि. प्राराहर्द, वार्त्तिकस्य।

१०६२। ह्रीघाचोन्दनुदविन्दो वा।

(क्री-विन्द: ५) वा ।१।)।

एभ्यस्तयो स्तस्य नः स्यादा । ज्ञीणः ज्ञीतः, घाणः घातः, वाणः

त्रातः, उद्मः उत्तः, नुद्रः नुत्तः, विद्रः वित्तः । अ

१०६३। चैशुष्पची मकव:।

(चै भ्रष्-पचः ५।, म-का-वः १।)।

एभ्यम्तयो स्तस्य म क व एते क्रमात् स्यः। चामः श्रुष्कः पकाः। 🕆

ं १०६४। प्रस्यो स वा, जिञ्च। (प्र- स्यः प्रा. म ११), वा ११), जिः १।, च ११) ।

प्रस्त्यस्तयो स्तस्य मः स्यादा, जिय। प्रस्तीमः प्रस्तीतः। प्रात् किं, संस्थानः । क

क्षीय ब्राय बाख उन्दय नृदय विन्द च तकात । क्षी लि लर्जे कः, वा तस्यानेन:। एव घागन्धग्रहणे चैं इत्यालने, क्त:। उन्दर्धी लेटे क्त: (१००१) नेम डीमीति ईदिस्थान 'दम निविधे, 'प्रह्०) नलीप'। नदी अ भ प्रेरणे। धी विद इस्मीमार्स । अत्र सूर्वे विन्द इस्पेनेन शैधादिकी विद्धातवीं ध्यते,—प्रमाणानि यया -(१) पार्णिनि: (८।२।५६) ''न्दि दीन्दवामाज्ञीथा'Sचतरस्याम्''-विद विवारणे बौधादिक एवं ग्रह्मते, इति भद्दीजिदीचितः । (२) भाष्य 'वेत्तेल् विदिती निष्ठा विद्यातिर्वित्र इष्यति । विनीवित्रय वित्तय भीगे वित्तय विन्दती: ॥'' (३) कातन्त्रम् ''क्रीप्राचीन्टनर्दावन्टां वा ।" कत्मु ५३८ मुचम् । (४) स्पन्नम् ''नृदीन्टविन्टिचाम्ना-क्रीश्यां वा।" 'विद विचारणे'। ५) संचित्रसार: "छन्दीक्रीघावाविनतिन्दा बा।'' क्रद्रलपादे ५०० सूर्वम् । 'विनन्तिति निर्देशात् विद सत्तायानित्यस्य निर्व विव्रमिति' गोथी बन्दः।

⁺ चैचिं चाम:, ग्रथील शोषे गुक, उभयव अपनमीकलात (१०८३) कर्त्तरि क्का । ड और व पच पाके भन्तरङ्गलाटाती २२११) कुङ्, ततः क्तस्य व:। पाणिनिः प्रा**च**. पूर --- प्र ३ ।

[🛨] भाव वा-प्रव्यस्य सकारं गैव सम्बन्धात जिनित्यः । स्ये संइती ध्वनी, श्रकीनः प्रस्तीत: (१०३६) चल्य-जे दीर्घ:। सस्यान इति (१०५२) तस्य न:। एवं स्थानः। पाणि नि: नारा प्रस्, दारा २३।

१०६५ | निर्वाण भित्तण वित्त फुक्कोत्फुक्क संफुक्क प्रफुक्क चीव क्षण परिक्षणोक्काचा: । (१॥)। एते क्रान्ता निपालन्ते । निर्वाणः श्रान्तः निर्वाणं मुक्तिः, भित्तं खण्डं, ऋणं विशोध्यं, वित्तं धनं वित्तः प्रतीतः, फुक्की विकसितः उत्पुक्तः संपुक्तः प्रफुक्कय, चीवो मत्तः, क्षणस्तनुः परिक्रमय, उक्काधो नीरुजः । ॥

१०६६। जुध वस पूजार्थाञ्चागार्ध्यार्थ-लुभ: क्वस्यम्। (जुध-जुम: धा, क्व: ६१, च १२१, इस १२०)।

एभ्यः परयो स्तयोः त्वय इम् स्यात्। चुधितः उपितः अधितः लुभितः। गतौतु स्रतः। गार्ध्याये तुल्यः। १

[†] पूजाधेशसी षख चिति पूजाधीख। गाध्यें (लिपा) षधीं यस स गाध्योंथः, न गाध्योंथः चगाध्योंथः, स चासी लुभ चिति चगाध्योंथं-लुभ। ततः चुपथेत्यादि दन्धें जसात्। क्वाः क्वाच् द्ययं:। चुप-वसी-रौदित्वात, षदः उदित्वंन (११०२) क्वाची वेसत्ते लुभख (६०६) वेसते (१००१) नेम डोशीति निवेधात, इसीऽप्राप्ती विधिरयं। उदित इति (६६१) जि:। चित्वत इति पूजायंतात (५६८) न नलीपः। लुभित-इति लुभ विसोइने। चक्र इति (५६०) न न्लीपः, (२११) कुङ्। लुम्ब इति लुभ्य इगि लुभ विसोइने। चक्र इति लुभ्य इगि लुभ विसोइने। चक्र इति लुभ्य इगि लुभ तन्स्वाने ध, (६४) भ-स्थाने व। क्वाचलु चुपिता उदिता चित्वा, क्विभिता लीभिता (८१८) वा किस्तं। पाणिनिः शराप्त्र-५४। ै

१०६०। प्रक्तिश्वम सप व्याख्यस स्तयोः क्रिं। (प्र-माचनः प्रा, नवीः दा, ना ११)।
एभ्यस्तयोरिम् स्थादा । *

१०६८ । पूर्णी ध्रष्ठ मिद स्तिद खिद स्तिमा श्री । (प्-मना ६००, कः १।)। एकां गुः स्वात् तयीः केमीः। पितः पूराः, क्रिशितः क्रिष्टः, विमतः वान्तः, जिपतः जप्तः, विश्वसितः विश्वस्तः, श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः श्राश्वसितः। श्रीयतं धिर्वतं मेदितं स्त्रेदितं स्त्रेदितं मिर्वतं। स्त्रार्थः किं, श्रपद्यवितं वाक्यं। पै

१०६२। भावादिहे वादुङा अव्वत:।

(भाव-चादिढे ७।, वा ।१।, उत्-उङ: ६।, चप्-वत: ६।)।

विहिताप उदुङो भावादिढयो र्यु ब्वी स्थात् तयोः बेमीः। ब्योतितं ब्युतितं तैन। चनपसु च्वितं। क्ष

क विश्व पात्र ताथा त्रक व्यात्र स्पृत्र क्रिय वनय जपय व्यात्र च तकात्। पू. धाती-रुव व्यात्तात् (१०५१) निषेत्रे, क्रिय्यातीरुद्धिः इसे लेन (१००१) ने स्डी-वीति निषेत्रे, वमादीनां (५५४) नित्यप्राती विभाषेत्रं। पाणिनिः अश्य ०,४१। वसजप्रयात्रकानिम्विकत्यः चन्द्रवर्षमानमतानुसरिषः; "पाणिनीयासु 'पूज्य' इति स्वे चकारस्थानुक्रसम्बद्धाविन साध्यन्ति" इति गीथीचन्द्रः।

⁺ चनार्थयासी सव चेति चनार्थ-स्व, ततः पृत्र शीच एवत्र निद्य स्विदय सिदय स्वतः स्वारं स्वव च तेषां। इसा सद वर्षेते यी ती सेनी तयोः। पवित इत्वादि, पूर्वेष इत्त, प्रभेन सुचः। क्रिष्ट इति (१५४) विज्ः। वाल इति (१०३८) दीर्घः। शिवतः नित्यादीनि ऋसोदाइरचानि। एवं जि प्रभावश्ये, जी-िर्मेद्या खेडे, स्विद जि भीवे, स्विदा जि सिद्दी, एवां चतुर्षां (१०७३) इत्वष्टे, सुचः। मित्रं (५५४) इत्। स्वत्वं निन्दितनित्यंशः। पाणिनिः १।२।१८,१०,१२।

[‡] भादिउ नियारमा:। भावस भादिउच तथिन्। चन् चक्यस स तस। भप् विद्यतेऽस्य मृक्वान् तस्य प्रति चदुकी विभिन्धं। इत्ती विक्रिताप प्रति, विक्रितः

१०७० | लीपो जी: | (बीपः रा, जी: दा) । जी लीपः स्थात् तयोः सेमोः । भावितः भावितवान् । अ

१००१ | नेम् डीख्वीदिद्देमा ऽपत्यनेकान्-निष्कुष: । (नारा,इमारा,डी-चि-ईदित्-वेनः प्रा, प-पति-पनेकान् निष्कुपः प्रा)। डीनः श्रनः दीप्तः गूढ़ः कतः ततः । पत्यादेसु पतितः दिर-दितः निष्कुषितः । पं

१०७२ । स्त्रादितः । (पादितः प्रा)।

कृतः अप् यसात् स तस्य, भादिरदादेशे त्यर्थः। भदादेः ग्रेपीऽस्थायितेऽपि (६७०) तिष्ठिधानमेतदर्थे। द्युत क वृत्त् दीप्ती भावे काः, (५५४) इ.म्. भनेन या ग्रयः। भदादे भृ दीदितं किंदितमिति। भादिदे तु, (१०८२) घेचादिहे क्त इति कर्मिर क्रे, द्योतितः व्युतित इत्यादि। भायदादिमा-मन्यस्य तु चुध यो चुध चुधितमित्यादि। सेमीः किं, दुन्धं गुप्तं। पाणिनिः १।२।२१, भाष्यस्य ।

 ⁽६४१) इ.मि जिलीपनिवेधादिष्ठ विधानं। भौवित *इ.ति मृ.जि., भावि-ता,
 (५५४) इ.म्, जिलीप:। पाणिनि: ६।४।५२।

[।] ईत् इत् यस स ईदित्। वा इस् येथसी वेमः, येन कीनापि विकल्पितेम इत्यर्थः। डीय श्रिय ईदिय वेमयित त्यात्। पतिय अनेकास निकृष च ते, न विद्यन्ति ते यम सीऽपत्यनेकान् निकृष तथात्। पतिय अनेकास निकृष च ते, न विद्यन्ति ते यम सीऽपत्यनेकान् निकृष तथात्। डीन इति ची डी डि य नभीगती, भनेन इस्निविधे, भीदिस्वात् (१०५२) क्रस्थाने न। यम इति दे भी श्रि इर् गितिष्ठद्वीः, क्षःः, (६६१) किः, (१०६६) के दीर्षः, पृष्ववत् त स्थाने न। दीपी डा स्थ दीपने, दीप्तः, (१००१) ईदिस्वादिम् निविधः, एवं चिती संज्ञाने चित्तात्यादि। गृह स्थान च (१०५) ईत्रस्वादिम् निविधः, एवं चिती संज्ञाने चित्तात्यादि। गृह स्थान च (१०५) इस्वानि द, (५०५) त-स्थाने ध, (४०) धस्य दः, (००) दलीपः पृष्यं द्वाय च (१०५) इस्वानि द, (५०५) त-स्थाने ध, (४०) धस्य दः, (००) दलीपः पृष्यं दीर्घं । तन दु अ विस्तृती, (१०२) पृक्तियदित इति (८१०) अस्त इति च विसत्यात्। एवं सह—सीटः (६०६) वेमत्यात्। गृत—नृतः, (०६८) वेमत्यात्। पतितः दरिद्रतः उभयन (८१०) सम् क्षत्रीतः, निक्षितः इति (५०३) वेम्दिदिति वेमत्यऽपि, भव वर्जनादिम्। पाणिनिः शिराहरुहेग्यते।

श्राकारेतस्तयो रिम्न स्थात्। भिन्नः, मिन्नवान्। *

१०७३ । भावादिहे वा । (भाव-भादिहे ण, वा ११)) मिस्रं मेदितं तेन । प्रमिन्नः प्रमेदितः सः । 🕆

१०**०४। शके टैं**। ^{(सकी: ४१, दें २०)।} प्रकितीऽर्चितुं सिवस्तेन, सक्तः। इं

१०७५ । ज्ञुन्य वाढ् खान्त ध्वान्त फाग्रह कष्ट धुष्ट जम्न न्तिष्ट विरिक्त घृष्ट विशक्त परिष्टढ़ दढं शृत हत्ताभ्यस्पाः । (१०)।

पते ज्ञान्ता निपात्यन्ते। चुन्धो मन्यः, वाढं स्थ्यं, स्वान्तं मनः, ध्वान्तं तमः, फाएटं कषायभेदः, कष्टं कच्छं, घुष्टं प्रव्हितं, लग्नं सत्तं, न्तिष्टं श्रस्पष्टं, विरिन्धः स्वरः, धृष्टः प्रगलःः, विध-स्तस्, परिष्ठदः प्रभुः, र्दढो बली, स्ततं पक्षं, वृत्तो गुणस्कानेण, श्रभ्यणें, समीपं। §

अन्यात् इत्यस्य स तथात्। इर्मिद्या सिंहे, कर्त्तरि क्रः, (१०५२) क स्थाने न, पूर्वस्य दस्य चन, मिद्रः, एवं कवतुः निद्रवान्। पाणिनिः ७।२।१६।

^{ां} चादिपूर्वं ठं, कियारक इति यावत्। भावय चादिठच तत्तिकान्। चाका-रैती घो भावे चादिककां च विदितस्य कास्य इत् न स्यादा। भावादिठयीः क्षवती-रसक्षवात् कीवलं कास्यैवेलर्थः। भिक्तमिति भावे कः, पचे इत्, (१०६८) पूर्वीति गुणः नेदितं।. एवं प्रभिन्नः इति (१०८२) क्रिवारको कर्त्तारकः, प्रबन्देन चारकी दील्यते। सेहं कर्नुमारस्ववानिकर्थः। पाचिनिः ७।२।१०।

[‡] सक धानी: कर्माच विकितस्य क्रस्य इ.म. न स्वादाः। दे इति किं, तेन शक्तं, स सक्तः, भव कदिस्विदेसले, (१००१) नेम खोवीति इम्निवेधः। ''शक्तृ सकर्म्यकः'' इति क्रमदोयरः।

[🖇] चुभ ७० च स्वलने, ताः चुक्तः, सन्यो सन्यनद्षः, भन्यम चुक्तितः। बाइ 🕏

१०७६। नेम् संनिव्यहः।

(न ११।, इस् ११।, सं नि-वि-धर्दः ५।)।

संनिविपूर्वा-दर्दतेस्तयोरिम् न स्यात्। समर्सः न्यसः अर्थः।*

१०७७। वा रुषाम हृष त्वर संघुषाखन:।

(वा ।१।, रूष-चम-इष-लर-संघुष-चास्वम: ५ः)।

एभ्यस्तयोरिम् न स्यादा। रुष्टः रुवितः, त्रान्तः प्रमितः, इष्टः इषितः, तूर्णः लरितः, संघुष्टं सघुषितं, त्रास्वान्तं आस्व-नितं। पं

यवे, वाटं भर्म, भन्यत्र वाहितं। स्वन च शब्दे स्वान्तं मनः, भन्यत्र स्वनितं। ध्वन मि च रवे ध्वान्तं, मन्यव ध्वनितं। फण च निस्नेहे, ञि:, तत: क्र:फागटं कन्नाय-विशेष:. (फाग्ट्मनायास धाध्यसिति पाणिनिः), भन्यत्र फाणितं। कव वधे कष्टं कर्क्ट्रं, (क्रच्छगद्दनयोः क्रषदित पाणिनिः), भागव क्रवित। पृष कि विश्रव्हे पुष्टं श्रव्हितं, (घुषिरविश्रव्यक्ति इति तुपाणिनि, घुषि: प्रतिज्ञाय। मिति तु कमदी खरः), अध्यत्र घुषितं। लगम सङ्गेलपंसकं, प्रत्यव लगितं। संस्कृति देश्योकौ स्त्रिष्टं प्रस्थप्टं, प्रत्यव रेम्ड एक प्रबंद विरिक्य: स्वर:, प्रन्यत्र विरेभितं। ञिध्यान प्रागल्भी धष्टः प्रगल्भः, अन्यत्र धर्षितं। (१००२) भादित इति इस्निष्धे पदसिञ्जाविष, (१००३) भायादिट वेति पाचिकस इमी निविधार्थे निपातनं। अस स वधे विश्वसः प्रगलभः, चन्यन विश्वसितः। चन (१००१) नेम् डीमीति इम्निविधेऽपि, प्रगलभादन्यन द्रम्पाप्तरणे निपातनं। वृद्धि हिंदि च वृद्धी, परिवृद्ः प्रभुः, हदी बली, (हदः स्यूलवलयोरिति पाणिनिः), भन्यत्र परिवंहितं दृहितं। याल्भ पाकेकेवलस्य कानस्य च मनं पक्षं, एतच चीरे इविधि च वाची विपातिनं, ऋन्यन याणः यपितः। इत उटव स्टबर्सने इत्त: भधीत: गुणी गन्यविशेष:, (चिजन्तहतधातुरेवीक: पाणिनिना, णिलुक्च), चन्यच विभितः। चर्दं पीड़ायां, समीपादन्यच अध्यद्दितः। पाणिनिः ७।२।१८--- २१,२५,२६,२७ |

समर्थः इत्यादि, चई पौड़ावां, चनेन इम्निवेधः, (१०५२) तस्य दस्य चन,
 एवं समर्खवानित्यादि । एभ्यः कि, चिहितः प्रार्हित इत्यादि । पाचिनिः ७।२।२४ ।

[†] वषय भाग्य क्रवय त्वरथ संघुषय भास्तन् चतकात्। कृष्ट क्रवादि, क्योर्जि कृषि, भाग सरी अजने मध्दे भागक् रोगे, क्रयु दर्तृष्टी, जिलारा मार्ज्सादे, छव

१०७८। दाना शाना पूर्ण दस्त स्पष्ट च्छन (दान्त-चप्ताः १॥, वा ।१।)।

एते जान्ताः क्रान्तानिपात्यन्ते वा। पत्ते दमितः ग्रमितः पूरितः दासितः स्पामितः क्वादितः प्रपितः। *

१०७६ । स्फाय: स्फी वा । (स्काय: ६१, स्की ११, बारा) । स्फीत: स्फीतवान्, स्फात: स्फातवान् । 🅆

१९८०। प्यायोऽगे: प्यस्वाङ्गे त वा।

द्यगे: प्याय: पी स्थात्, स्वाङ्गादन्यचतु वा तयो:। पीनं मुखं, ष्यानः पीनः खेदः । \$

क्ति इर इती, स्वन साम्ब्हे, एभ्यः ज्ञा-क्रवतप्रस्यययी: वा इम्निवेध:। चान्त इति, भास्तालं इति च (१०३८) असुङ इति दीर्घः। तूर्णंदति (१०३८) सिवंति कट्, (१०५२) क्रार्सेन. ग्रातचा। भव रूप धातो: (६०६) वेससहित, द्वप धातो: (११७२) पूक्तिभेति देम्रत्वे, (१००१) नेम् डीप्रीति निवेधादपाप्ती, चन्येषाञ्च (५५४) वसीऽरस्थेति नित्यप्राप्ती विभाषा । पाणिनि: ७।२।२८,२८ । "इन्टं इतितं लीन'' इति पाणिनिः, "विक्रितपतिचातयोय" इति वात्तिकम् । इत्वन्तुष्टी इट् । इति विद्वान्तकौमुदो ।

🔹 दसु-मसु भिर्यमिने, प्रेरणार्थे, (৩৩৩) औं, कर्म्माणि के (१०३८) टान्त: शानः इति, पचे (৩১८) ऋस्ते, (५५४) इसि, (१०७०) जेर्लीपे दमितः शमित: इति च। एवं पूरी डा पूर्तो -- पूर्ण:, पत्ते (५५४) इ.स्. (१०००) जेलेंगि, पूरित:। दशु इर् चत्चेपणे दक्तः, पचे दासितः। स्पन्न अंग्य-वाधयोः, स्पष्टः, पचे स्वाधितः। छ्ट कि संडती, खायंञी रूतः, पथे हादितः। जप का तु जप्ती—जप्तः, पचे जापितः। पाणिनि: ७।२।२७।

+ स्क्रायते:स्कीवास्थात् तयी:। स्कायीउण इन्ही, ईदिस्वान (१०७१) इ.स. निवेधे, स्क्री-चादेशः, पर्चे (६४२) य-लोपः । पाथिनिः ६।१।२२, भाष्यसः ।

‡ पोनमिति, भो प्यायी उर हजी, त्रः, (१००१) द्रीदिलादिननिषेषे, भीदिलात् (१०५२) तस्य न । भगे: तिं, प्रध्यानं सुखं, (६४२) यलीपः । भस्ताङ्गे तुष्यानः पीनः खोदः, खोदस खाक्षभित्रलं (२६५) सूत्रे द्रष्टवां। पाचिनि: ६।१।२८, भाषचा

१०८१ । श्राङोऽसूघसी: । (बारू: ४।, बसु अधसी:०॥)।

षाङः परस्य प्यायः पी स्थात् तयोः,श्रन्थूषसोः । श्रापीनोऽन्युः, श्रापीनमूषः । #

१०८२। ह्लादेः खः त्रौ च।

(ह्नाटे: ६।, स्व: १।, क्ती ७, च।१।)।

म्नादेः स्वः स्वात् तयोः त्तीच । प्रम्ननः । 🕆

१०८३। दो-षो-मा-स्थां डिस्टागो।

(दो - स्थां ६॥, डि: १।, ति ७। प्राची ७।)। • •

एषां जिः स्थादणी तकारे। दितः सितः मितः स्थितः । ध

१०८४ | ऋाशो वी । (का. भी: ६॥, वा ।१।)।

कितः कातः, गितः गातः। §

१०८५ । भी वते नित्यं। (मः ६।, वते अह निर्वार।)। संभितं वते । १।

[•] भन्यः कूपः, जघः गवादेः सनः, एतगीरयंघीरित्ययः। (६।१।२८) सूर्वे वार्त्तिकमः । † प्रक्रवं कि, क्वादी कासीदने, कर्त्तारे तः, (१००१) इ.स्निवेषे, भनेन इस्से दानालान (१०५२) तस्य दस्य चनः। त्री प्रक्रतिरिति । पाणिनिः ६।४।८५ ।

[‡] दी य केंद्रे, षीय नाभी (घोषदेशनिर्देश:), साइति सास्त्रक्षं, तेन से इर प्रतिदाने, सा क लि शब्दे, साल च साने, सा ख्याच साने इत्येतेषां यहणं। अि ष्ठागितिनिष्ठभी। एवं दितवान् दिति: दिखा। चणी किं, दाता दातुंदाव-सिकादि। पाणिनि: ७।४।४०।

[§] काशी र्জि: स्वादा भणी तकारे। कीय लूनी, शीय निशाने, (६०८) भीस्थाने चा,ततः ङि:। भणी किंकाचं। पाणिनि: ৩।৪।৪१।

[¶] भो य निशाने इत्यस्य नित्यं डिःस्यात् भणी तकारे। व्रते वाची कसीव भयोगः। "स्यतेरित्वं व्रते नित्यम" इति वार्तिकम्।

१०८६ | घाञा हि:। (भाजः सा, वि: श)। धाजो हि: स्यादषी ते परे। हित:। *

१०८७ | चरफलोऽदुः । (वर-पतः ६।, वत् ।१।, वः१।)। भनयोरकार वः स्यादगो ते । प्रफुल्तः । नं

१०८८ | दट् दोऽधः । (दन ।११, दः ६१, षधः ६१)। दासंज्ञकस्य धावर्जस्य दत्स्यात् श्रणी ते । दत्तः । श्रधः किं, धीतः । क्ष

१०८६ । ^{*}ग्यचस्त वा । ^{(ति-घचः प्रा, तारा, वा।रा)।} गेरचः परस्याधी दासंज्ञकस्य वा तः स्यादणीते। प्रत्तः प्रदत्तः। §

डिच्छाना विवेऽपि घाली निगरवार्थः। एवं हितवान्, दितिः, हिला,
 डिविमं। घालः विं, घेटःधीतः। पाणिनः ०।४।४१।

[†] चर गमने इत्यस्थात् का तावलीः क्याचयं, (५५४) वसीऽरस्थेतीनि चव्यविद्यत्त तकाराभावादुकाराभावे चरितः चरितवान् चरिता इति भविता । क्यो तु (१०३३) इव्वतिरितीनिविधे चनेन चकारस्य चकारे, (२२८) दीवें चूर्तिरिति । जि फला भिदि. (१०७२) इम्बिधे, चनेन चकारस्य चकारे प्रफुल्तः । एवं फुल्तवान्, फुल्तिः । पाणिनः १४। ८८ ।

[‡] दा ख जूनी, दा तुदाने, डुदा क खि च, दे क पालने कति चतुर्णांदनः, एवं दस्तवान्द्रिः: दस्ता। डुदा क् खिदाने क्रयस्य दिसमिति च। दासंज्ञकेति क्रयमात् दैपधातो: दातिनिति। धोत कति धेट पाने क्रयस्त, (६१२) की-चादिय:। पाणिनः अध्यक्षः।

[§] चर्षः किं, घेट पाने इत्यस्य प्रधीतः। भवः किं, निर्देत इत्वादि । पाणिनिः ©। ४।४७।

१०६० | भें। दा-ते गीच: । (र्ष: ११, दा-ते थ, गीव: ६।)। नीत्तं। इच: किं, प्रत्तं। अ

१०६१। जन्धाऽदो यपि च।

(जग्ध: १।, भदः ६।, यपि ०।, भ।१।)।

म्रदो जग्ध:स्थात् म्रणी तेयपि च। जग्दं। 🕆

१०८२ । घे चादिढे ता: । (घ ०।, च ।रा, मादिडे ०।, ता: रा)।

भादिटे विहितः को घे स्थात् उभावयोष । प्रकतः कटं सः, प्रक्रतः कटस्तेन । (१०५१) चेघे द्रति प्रचीणः सः । प्रचीणं प्रचितं तेन, चोणः चितोऽयं तपस्री, चीणायुः चितायुः प्रजः । ह

श्वाद्यमध्यवितिलान एतदादोनामष्टानां निल्यलं। गेरिकी घं:स्थात् दा-म्यान-काति तकारे परे। नोत्तमिति पूर्वेण दास्याने तकारे भन्नेन नि इत्यस दीर्घः। एवं नीति: परीतं अनुत्तमित्यादि। पाणिनि: ६। ११२४।

[†] कियापंदलिनेव प्रयुक्तमानस्य भदधाती जैन्धादिश इत्यं शं., तेन पैकितष्डुलादी इदं भद्रमिति भविता। जग्द्रमिति भवित्तमित्यं में, जन्धादेशे, (५०५) तस्य घः, (६४) पूर्वंधस्य द। यपि प्रजन्धा । [पाणिनिमते 'तु (पाष्ठी ६६) भरोभरोति मृत्रेण धलीपे कादी जन्ध देखादि इत्यम्।] क्वाचि परे भादी जन्धादेशे पश्चात् यपि क्रते सिद्धेऽपि, भव यपौति यदणं, क्वाचः स्थाने यवादेशात् प्राक्त प्रकृतेः किमपि कार्यं न 'स्थादिति मृत्ववायं, तेन विमुचित्यादी न कुड् (२११), प्रविश्येत्यादी न षङ् (१५४), प्रविश्येत्यादी न घड् (१५०), प्रविश्वेत्यादी न द (१०५), भाष्ट्रस्थ प्रदीक्षेत्यव च न शक्त ही (८१४)। पाणिनिः १४।३६।

[‡] चादिभूतं ढं कर्म (किया), चादिढं चादिकिया, कियारभ इति यागत्। स कटं प्रक्रत कर्मनारभ्य इत्यान्, तेन कटः प्रक्रतः कर्मनारभ्य इत्यर्थः। प्रचीच इति चनेन कर्मरिकः, चक्रमंकितात् (१०५१) तस्याने नः, (१००) चलं। प्रचीचं प्रचित्तिस्यादि भावदैनाक्षीप्रेषु कमेचीदाइरणानि। पाणितिः १४।०१।

१०६३। गत्मर्थाढ शी स्थास वस जन जू

एभ्यो वे कः स्थात् उभावयोष । गङ्गां गतः कृषां प्राप्तः, प्रयितः, श्रेषमधिषयितो विष्णुः, वैकुण्डमधिष्ठितः, श्रिवमुपा-सितः, हरिदिनमुपोषितः, राममनुजातोऽच्युतः, विष्यमनुजी-र्षीऽनन्तः, लक्षीमाश्विष्टो सुकुन्दः, युद्धमिष्ट्ंदो गोविन्दः । श

'१०६४। भीव्यगत्यदनायति डे च। '' भीव्यं-गित-पदनार्थात् प्रा, डे थ, प । ११)।

नियनार्थात् गत्यर्थात् भीजनार्थाच क्रो डे खात् उभावे घे च।

^{*} नास्ति ट येवां ते घटा: । नत्वर्षाय घटाय श्रीय स्थाय घासव वसच जनस जुम स्थिपम \kappa इ. च. ततमात् । घे, च, क्राः, इति चयमनुवर्णते । परस्वेणैव सिंद्धे भव गत्यथंग्रहणं, गत्यथं-प्राप्तार्थंगीरैकात् दाभ्यां कत्तीर क्राः स्थात्, परस्**वे** तु कैवलंगल्य शहेत्र वतुप्राप्तार्थ। दिति जापवार्वे। ग्रीस्थादीवासकर्म्यकल। देव प्राप्ती पुव-र्वहणं, येन कीनापि सक्तर्माकर्तः पि कर्त्तार क्ष-प्राप्तायो । गत इति (६०६) अम्लीपः। सब्बें गर्मायाः चामार्याः प्राप्तार्योसे ति वचनात् प्राप्त इति गर्मायुं लादेव कर्त्तरि ताः । एवं स्त्रभा इत्यपि । प्रयित इति भाढलात् कात्तीर क्तः, (१०६⊏) गुगः। मधिप्रयित द्रत्यस्य श्रेषनिति, पधिष्ठित द्रत्यस्य वैकुष्टनिति च, पधिकर्षे (२८१) कर्यालं। चिधिष्टत इति (१०८३) ङि:। उपाधित इति घाराधनार्थलात् सकर्माकलं, एवं घोषमध्यासित इत्यादावधिकरणस्य कर्म्यलेऽपि कर्त्तरिक्तः। उपोधित इत्यस्य इरि-दिनिविति (२८१) कर्यालेऽपि कर्त्तरि क्रः, (१०६६) इ.स., (६६१) जि:। अनुजातः भनुत्रीर्थः इति चनुपूर्वभवीरेतयोः सक्कंकलं, यस प्रसाज्यननादि तदेव कर्मः। जात इति (१०७१) इस्विभेषे, (६५५) इता। कीर्षकति (१०५३) इनविषेषे, (६२८) इर्. (२२८) दीर्घ:। भाक्षिट: मधिडढ़ इति च सकर्मकलेऽपि कर्भरि जा:। डढ़ इति (१०५) इस्य टः, (५०५) वस्य च, (४०) धस्य ट, (००) ढलीपः पूर्वदीर्घय। पाणिनिः ३।४।७२ 📗

मुकुन्दस्यासितमिद-मिदं यातं रमापते:। भुक्तमेतद्वनसम्बेखुचुर्गीयो दिद्यवः॥ *

१०८५। नार्चेच्छार्थ जीच्छीलारे: सित।

([चा-चर्चा इच्छा]-चर्थ-जि-इत्-श्रीलादे: प्रा, सति छा)।

एभ्यो वर्त्तमाने क्षः स्थात् तेषु । विदितः, पूजितः, वाञ्चितः, इडः, ग्रीलितः, —शिवोऽनुवर्त्तते । १

^{*} भ्रावी नियन्तः । भृतस्य भाषा भीत्यः, भैत्यः य गतिय पदनय समाहारे कत् यथे।
यस्य स तक्यान् । जे पविकर्णं, प्रकारात् हे भावे से च । सुकृत्यस्य ति । सुकृत्यस्य क्षणस्य ददं (क्षयः) भावितं, प्रास क ल उपवंशने, नियनार्थन्वादिष्ठकरणे कः, इदिसित पिष्ठकरणस्काः । रमापतेः क्षणस्य ददं (क्षयः) यातं, या ल गतौ पिष्ठकरणे कः. इद्मात्यधिकरणस्काः । यनन्तस्य क्षणस्य एतत् (तक्तलः) भृतः भुज धौ वाण-भचयोः पिष्ठकरणे कः, एतदिव्यधिकरणसक्तः । (सुकृत्यं) दिह्ववे । गीप्यः इति कच्च । सर्वव (३०६) कासुकिति कप्तरि पष्ठौ । कर्याणि वाच्ये यथा—सुकृत्येन पीठमध्यासितं, सयुरा यास्य व्याजिकानं सुकं । भाववाच्ये—सुकृत्येन पातितं, यातं, भृतामिति । क्षणि वाच्ये —सुकृत्येन पातितं, यातं, भृतामिति । क्षणि वाच्ये —सुकृत्यः पीठे प्रासितः, सयुरां यातः, प्राजिकानं भृतः इत्यादि । पार्वितः ११३।०६।

१०६६। ठी-प-म-वत क्रमु-कानी।

(ठी-प-म-वत् ।१॥, कसु-कानी १॥)।

धीरेती क्रमात् खाः प म-वत् स्तः। बभज्वान्, जजागर्वीन् जजारवान्, दुबृवान् दिदिवान्, विविद्यान् विविच्छान्। *

१०६७। वसो ईसेका ज्जिनात रूम।

(वसी: ६।, घस-एकाच्-म्ट-इन-भात: ५।, इम् ।१।)

घस एकाची उत्ते रिन श्रादलाच वसी रिम् स्थात्, नान्यतः। जिच्वान् श्रादिवान् श्रारिवान् ईयिवान् दिहवान्। 🕆

[•] ठी-पसे इव ठी-पसवत, तेन घतीते काले कर्तार वार्च परस्वैपदिश्यः कसः, धात्मनेपदिश्यः कानः, समयपिश्यो दय स्थातः ; कस्योण मावे च वार्च कानः स्थादि-त्यथः । कम् कान्योः क इत् घगुणार्थः, उकारः (२५०) ईवयः । वभज्वानिति भन् जन्कः, (५६०) न-जोपः, (५५८,५६४) दिलादि, वभज्वम् घटः, ततः भंः (१८२) उदिचात् नुष्, नमन्तवात् (१६४) दीर्घः, (१८३) स्थानलुप्। एवं स्त्रियां (२५०) उदिचादीप्, (१२८) वस्य चः, वभज्ञवी । जायः कमः, दिलादि, (६८८) वा गुणः, धनायंत्रविष्, (१८८) वस्य नं जायः वसः, दिलादि, दुयूवान्, पर्व (६४२) वस्त्रोपे दिदिवान्। एवं विष्कः कमः, (८१४) कस्थाने वा म, विविद्यान् विविद्यान् । पर्वाविष्कः न । पर्वाविष्कः न ।

^{• †} घस च एका स स्थ इन च भा स तकात्। घर: एयक् यह पात् एका च् १ ति वि जतेऽिय य एका च सप्त याहाः। एतेश्य एव धातुश्यी वसु-स्थानं इस् नाचतः इति नियमः। लिचवानिति भद-क्कमः, (६०४) व्यां विति घसारेशे, भनेन इसि, दिलादी, (२१०) छङ्-सोपे, (६४) घस्य क, (१११) यत्नं। पर्च भदी दिले, (४६४) दस्य लोभे, स्कौ, एका च्लादिन, भादिवान्। एवं यज-क्कसः, (६४१,६६१) स्त्रे स्वाच्यादिन ईतिवान्, वस किषवान्। एवं (५०८) तुमसिति स्त्रे सोप्त में निवान् भीनवान् इत्यादि। स्र-क्षसः, दिलं, (५५८) स्त्रे स्वाच्य भ, (६१५) स्त्रस्त गुणः, ततः स्वादः, भारिवान्। इन गतौ, क्षसः, दिलं, (६८१) स्त्रस्त यकारः ईतियान्। इन गतौ, क्षसः, दिलं, (७०१) श्राद्योदिति भाषोपः दिवान्। पाणिनः शराद्वा

१०६८। इन-गम-दृश-विश-विन्दे। वा ।

(इन-विन्दः ५।, वा ११।)।

एभ्यो वसी रिम् स्यादा। 'जिध्निवान् जघन्वान्, जिम्मिवान् जगन्वान्, दृष्टिश्वान् दृष्टस्वान्, विविधिवान् विविध्वानं, विवि-दिवान् विविद्यान् । अ

१०८८। : दाखान् साह्वान् मौद्वान्। (११॥)।

एते वस्त्रना निपालनी। 🌵

चक्राणः, जजागराणः जजाग्राणः, श्रनूचानः । ह

१९०० | की-प-स-वत् शत्ट-शानौ।

(की-प-स-वत् ।१॥, ऋतः भानौ १॥)।

धोरेती क्रमात् क्याः प-म-वत् स्तः । पचन्। §

क्ष इन क्याः, इम् दिलादि, (२३०) लक् लोपः. (१८८) क्रयः घ, त्रविवान् । पत्ते, (६०८) इना इस्य घः, अध्वान् । गम क्याः, लङ्गोपे अध्यान्, स्रते (१०२) मस्याने न, अध्यान् । हशःकतः, टह्यियान, पत्ते टह्यान् । एवं विश-क्यः, विद स्व स्य प्रजी लाभे विद क्याः, वेने स्नुविविदान् । पाणिनः ७।२।६८ तार्तिकच ।

[†] दाग्रः ङ्दाने, तार्क्षैयानः: दल्यानः इति कीचित्। सइ ज ख्यतौ । सिक्षौ सेचने । एतेभ्यः क्षसुः । पाणिनिः ६।१।१२ ।

[्]रकानसुदाइन्ति, क्रज धातोः कर्मित कमीया वा कानः । जाग्रधातोः कर्माख कानः, (६८८) वा गुणः । चनुत्रधातोः कर्मरि कानः, (७२५) वचार्रेगः, दिलादि, (६५१.६६१) खे भूलस्य च जि:। चनुचानः साङ्गवेदाध्यायौ । पाणिनिः श्रारुग्ट ।

^{&#}x27; ह की पमे इव की-पमनत्। एतेन वर्भमानकाले कत्तंरि वाच्यं परसीपदिश्यं: श्रहः, चात्रमनेपदिश्यः श्रानः, जभयपिश्या इयं स्थात्, एवं कर्माण भावे च वाच्ये सर्वेश्यः श्रानः स्थादिन्ययः। श्रिस्तात् रमज्ञाः, पिस्ताभागाच डित्मंज्ञाः। श्रह इत्यस्य च सर इत् (२५७) ईवर्थः। एतयोः प्रयोगे किथाभमाप्ति नीभीति वीध्यः कियायाः प.इ. नाथके विक्र इतौ च च्यों तौ भवतः। यद्या श्रशाना सुक्षैते ययनाः, इसि

११०१ । श्वाने ऽतो सन् । (शाने ७, घतः ६।, मन् ।६।)। प्रकारस्य सन् स्थात् शाने । पचमानः । अ

११८२ | यासो ऽस्य । (ई ११, मा ११, मा सः ४।, मस ४)। भास: परस्यास्य भा ई स्थात् । भासीनः । १

११०३। वेत्ती: शतु: क्षसु वीं।
(वेत्ती: श्रा, शतु: दा, क्षसु: शा, वा रश)।

विदं: परस्य गतुः कसुः स्यादा। विदान् विद्न्। #

११०४। मितावयस्ताच्छीत्ये शतुः शानः।

(मित्रि-वयस्-ताच्छी स्ये ।, मतु: ६।, मान: १।)।

यतुं निन्नानः, कवचं बिश्नाणः, भोगं भुद्धानः। §

प्रधान सुचारें। पचन इति, जुञौ स्पच पाके. सतः, (५४१) मप्, (५४३) चकार-क्षोपे पचर्गसन्दः, ततः सिः, ऋदिस्वात् (१८२) तुण्, (१८३) स्थानलुप्। स्त्रियां (२५०) दूप्, (२४५) तुष्, पचनौ। पाणिनिः ३।२।१२४, १२६।

मनीन इत् भने। पचमान इति कर्सरि शानः, भनेन मन्। कर्माक विभेच पच्यमान भोदनः। पाचिनिः अशास्त्र।

[†] चस्र मानस्य। चासीन इति, चास क ल चपवेशने, कर्मरि मान:, (५४१) व्रप्, तस्य (६७०) लुक्, अनेन चाकारस्य के। पाबिनि: ৩।२।८३।

[‡] क्रमुप्रव्ययस्य श्रष्ट-स्थानजातत्वेन दिलं चतीतत्वच न स्थान्। विदानिति विद च जाने, जल, तस्य स्थाने क्रमुः, विदम्शस्टः, ततः सिः. (१८२) तुण्, (१६४) दीर्घः, (१८३) स्थानत्वुण्। पचे विदन्। पाणिनिः ७।१।३६ ।

[§] प्रक्तिः सामध्ये, नयो यौननादि, ताच्छीत्यं तत्स्त्रभावतः । एखर्येषु प्रष्ट-स्थाने ग्रानः स्थात् । श्रृष्टुं निम्नान देति, इन-प्रष्ट, श्रुत्वये ग्रहस्थाने ग्रानः, (১৩০) प्रपील्किः (२३०) चङ्-सोपः, (१८८) क्रस्थाने म्न.। कावचं (वन्म) विभाच दति, स-ग्रहः,

११०५। ती-प-म-वत् खत्ट-खमानौ।

(ती-प-स-वत् :१॥, स्वत्ट-स्यनानी १॥) ।

भोरेती क्रमात् त्याः प-म-वर्त्स्तः । करिष्यन् करिष्यमाणः । अ

. १ र्थं पादः—द्रश्वादिः ।

११०६। जिमाज भूसह रच चर वध वत प्रजनापनपालंक निराक्रुत्मट्रपतपच द्रञ्णु म्वें।

(जि-पच: ५।, रणु: १।, घे ०।)।

एभ्य द्रणुः स्यात् घे। कारियणुः श्राजिणुः भविणुः सहिणुः रोचिणुः चरिणुः वर्षिणुः वर्त्तिणुः प्रजनिणुः ग्रपत्रपिणुः ग्रजक्षरिणुः;निराकरिणुः उन्मदिणुः उत्पतिणुः उत्पविणुः।*

यौवनवयसि चर्चे ब्रव्ह्याने भानः, (७२६) द्वादी रे दिः, खे भंकारस्य (५५८) वकारे, (७२८) खे डिं:, (१००) पार्ले। भीगं भुद्धान दित भुन-ब्रह, तत्स्सभावार्थे ब्रह्माना वानः, क्वादिवात् अप्,(७५८) नचा नकारे,तस्य (४६) अकारः। पाणिनः १।२।१२८।

[#] भविष्यत्काले कर्नार् परस्मैपदिभ्यः स्वतः भात्मनेपदिभ्यः स्यमानः, उभयपदिभ्यो दयं स्थात्, एवं कर्माणि भावे च वाची स्थमानः स्थादिल्य्यः। स्यतः इत्यस्य ऋ इत् (२५०) द्रेवयः। करिष्यन् इत्यादि, (६१०) इम्। पाणितः ३।३।१४।

^{*} प्रात् जन प्रजन, स्वात वप स्वत्य, स्वस् क स्वक् , निर: सा निरा तक्षात् क निराक्त, सद क्यात च पत्र चित सद्यतपच, उदी सद्यतपच उत्त्यद्यतपच। ततः जिद्य आग्रंबल्यादि इन्हें तक्षात्। जिञ्जानः। स्व पूर्श्वस्वादनुवर्ध्य केवलं तास्की-ल्यार्थे इन्हाः स्थादिति वक्तव्यं। तास्कील्यार्थस्य च (११३२) स्वयंश्विचंप्रादिति पर्यान्तेष्विकारः। तेन, कार्यात् श्रीलसस्यवादि वाक्ये कार्यास्त्रित्यादि। आनिस्व-रिति काश्विका वितः। पाणिनिः श्राश्वद्याद्यः। एतन्त्रते तस्कीलतञ्चम्यत्रस्याद्यः वारिष् स्थिषः।

११०**७ । व्याक् भूजी: ।** (खक् १११, म^{.जी: ५०)}। श्राभ्यां प्याक् स्थात् घे। भूष्युः जिष्युः । %

११०८ | ग्लाम्हास्था चि पच परिच्ज: सु:। ^{(ग्ला—परिवज: ५।, मु: २।)।}

पभ्यः स्नुः स्रात् घे। ग्लास्नुः स्त्रास्तुः स्थास्तुः चेणाः पच्णुः परिमाच्णुः। 🕆

् ११०८। चिप त्रस ग्रंघ ध्रषः क्रुः। (चिप-ध्रः प्रा, क्रुरा)।

एभ्यः कुः स्थात् घे। चिष्रः चस्नः ग्रन्नः प्रणुः । क

१११०। श्रृस्थाभक्षमगम इन लघ टघ पत प्दो जुकः । (गृ-पदः प्रा, जुकः रा)।

एभ्यो जुका स्थात् घे। प्राम्काः स्थायुकाः भावुकाः कामुकाः गामुकाः घातुकाः लाषुकाः वर्षुकाः पातुकाः पादुकाः। §

णुक्त: किलात् (१०५३) वृदयीति इस्निवंधः, गुणाभावयः। पाणिनिः शशाश्यः,
 वार्तिकसः।

[†] चैचािति गुणे, (१११) वलं। पच्चािति (२११) कुङ्, वलं। परिमाच्चािति किस्लिवित्वादिनिम्पचे (६८४) विति:, (१५४) षङ्.(६०२) वस्य कः, पलं । प्रस्य इम्पचे न प्रयोगः। पाणिनिः इ। २। ११३८। ''ज्यादेः मृः'' इति संचित्रसारि क्रव्यविषादिपादे १९ स्वं।

[‡] क्रुइत्यस्य किस्वात् न गुणः। पाणिनिः ३।२।१४०।

[§] সুকী সিভাব (५००) तन्नि:। स्थायक इति (१२४) सन्। घातुक इति (६०१) इस्य घ:, (५०१) इनसङ्। पाणिनि: १।२।१५४।

११११ । भिच-नल्य-क्कट्ट-लुग्ट-ष्टञः पाकः।

एभ्यः घानः स्यात् वे। भिचाकी जल्पाकी कुटाकी लुग्टाकी वराकी। *

१११२। प्रति गृहि स्पृहि श्रीङ त्रालु:। '(पित-शोक: ४।, पानु: १।)।

एभ्य चातुः स्थात् चे । पतयातुः ग्टहयातुः स्एहयातुः प्रयातुः। १

१९१३। शत सद सि धे दो. तः । (भत-दः प्रा. कः रा)।
एम्बो कः स्थात् वे। शतुः सहः सेकः धाकः दाकः। #

१११८। इसस्रदः कारः। (वस-स-पदः प्रा, कारः १)।

एभ्यः ऋरः,स्यात् घे। घसारः स्टमरः अद्मरः। §

१९१५ । मिद-भास-भञ्जो घुर:।

(सिद-भास-भञ्चः ५।, घुरः १।)।

^{*} वाकस्य विस्तात् (२५७) ईप्। पाविनि: ३।२।१५५ ।

[†] पत त् केथी, रुड त् क ख यहे, सड त् कीप्से, "चयीऽदलपुरादयः, श्री क ख श्रयने, (६४१) भालु-वर्जनात् न जेलीपः, गुणक्षः। पाणिनिः श्राश्क्षः, वार्त्तिकक्षः, पतन्यते दय निद्रां तन्द्रा श्रजा इति चतुष्टयादिष भानुष्। वीपदेवेन तु (४४६) निद्रादिलात् भालुः इति तिश्चिते निवेशितम्।

[‡] घे इत्यस्य प्रथम्-ब्रहणात् दा इति व दासंज्ञ: तेन दैप श्रोधने इत्यक्षापि श्राप्ति:। अनुरिति सूचे ताला-निर्देशात् भदीदस्य त, मनीपादितः।दिति केचित्। परिणिनि: १-१।१५८। एतन्यते ग्रदधाती: भदुः, श्रमुसुधातसतेरीपादिकः कृत्।

[§] क्षारः कद्रत् च ग्रुखः, सर स्थितिः । पाचिनिः हाशार्द् । •

एभ्यो घरः स्थात् वे। मेदुरः भासुरः भङ्गरः। *

१११६। किद-भिद-विद: कुर:।

(क्टिन्भिद-विद: ५।, कुर: १।) ।

एभ्यः कुरः स्थात् घे। किंदुरः भिदुरः विदुरः। १

१११७ । जाग्र यङन्त-यजजपक्ददन्श जकः।

(नाग्ट -- दन्भ: ५१, कक. ११)।

एभ्य जनाः स्थात् घे। जागरूकः, यायजूकः जन्नपूकः वावदूकः इन्दर्भूकः । वः

१११८। यङम्त-चल पत सङ वङ: कि:।

(यङम-वहः ५।, किः १।) ।

एभ्यः किः स्थात् वे । चाचितः पापितः सासिष्टः व्यविष्टः । §

^{*} घुर इ.स.स. घ इ.न ! मजुर इति (१७२) घिति नस्य गः, (५०) नस्यानुस्तारः, (५१) भनुस्तारस्य जः। पाणिनिः शशारे ६१।।

⁺ कुरस्य किस्तान गुष:। भव विद: ज्ञानार्थ:। पाणिनिः शश्रहर।

[‡] यजय जपय वदय दन्य च तत्, यङन्य तत् यजजपवददन्य चेति, ततः जाग्य यङन्त-यजजपवददन्यं च तकात्। पुनः पुनः यंजतीति यायज्य-धानीः जकः, (७०५) यजीपः। एवं गहितं जपित जञ्चप्यते इति जञ्चपूकः। वावद्यते वावदूकः। स्टब्स् ते दन्द्यकः। एवं भक्त वस्य मण्ड वल यम धानुस्यः जकः वक्तव्यः (उचादिषु दृष्ट्यः)। पाणिनिः हाराश्रद्धः, १६६। एतन्यति वावदूकः चौचादिकः।

^{\$} चल काती, पत्र जैसी, सक्त कि सक्त ज उप सक्ती इति दर्ग, वह जी प्रापकी, यक्तनेश्य एथ्य इत्यर्थः। चाचल्यतं इत्यादि वाक्यानि। पापितिरिति, (८२६) नीन् वश्चेत्रच पत्त्वज गत्यानित्यस्य यक्त्यान। पत्य जैसी इत्यस्य नीनीऽभावे पापत्य-धातः, तथ्यात् किः, '(२०५) इसान्नीय इति चक्तार-सक्तारयो खींपः। वार्तिकन्।

११६८। दि साद्र ङलीिषन:।

(दि. १।, च।१।, भात-ऋ- उङ्लोपिन: ५०)।

भ्रादलात् ऋवणीन्तात् उङ्कोपिनस्र किः स्थात् घे, तेषाभ्र दिलं। ददिः चिक्रः जित्रः। *

११२० | यायाय भास कास स्थेश पिश प्रमदो | वर: । (यायाय-प्रमदः ४।, वरः १।)।

एभ्यो वरः स्थात् घे। यायावरः भास्तरः कस्वरः स्थावरः ईस्तरः पेखरः प्रमद्दरः । १००

११२१। चरप् स्जीतागम सामञ्च।

्चरप् ।१।, सः जिन्दन्-नश्-गमः ५।, तः ।१।, मः ६।, च ।१।) ।

एभ्यः च्लरप् स्वात् घे, मस्य तय। स्वती जिलरी रलरी नखरी गलरी। इ

[†] वक्त यातीति यिक यायाय घातः, सास्र क न दीप्ती, कम न गती, जि ष्ठा स्थाने, ईश क ल ऐत्रय्ये, पिश्र श्र पावयवे, प्रपूर्व-सदी भिये जि इवे—एस्य ६लार्यः । सायाय घातीः वरः (१.०३६) इस्निपेचे, (७०५) प्रकारलीपे, (६४२) यलीपः । ईश्वरः इति वरप्रत्ययस्य इन्यादिलान् (१५४) न पक्। पाणिनिः ३।२।१०५,१०६। एतन्यते पिस दन्यानः । प्रमहर इति पदं कातन्ताद्रप्रकीतम्।

[‡] चूरपः किस्तात् (५४२) प्रगुणः, विस्तात् (२५०) ईप्, विस्तात् (८८२) तन् । सरति भयति एति भक्षति गच्छतीति वाक्यानि । नम्नरीति (१०३२) इन्दर्तरिति इन्निवेशः । गलरीति भनेन मस्यतः । वाणिनि ३।२११६२,९६४।

११२२। हिंस दीप कम्पाजस सिङ कम

नमो र:। (हिंस-नमः ५।, रः १।)।

एभ्योः रः स्यात् घे। हिंस्तः दीपः कमः अजसः स्नेरः कसः नसः। *

११२३। सन्भिचाशंस छः।

(सन्-भिच-चार्थसः ५।, उः १।) १

एभ्यः उः स्वात् घे। रिप्सः भिचुः श्रायंसः। 🌵

ं ११२४। विन्दिच्छू। · (१॥)।

एती निपात्वी। वित्तीति विन्दुः, इच्छतीति इच्छुः। \$

११२५। खप तथ धृषो ङ्ग्ज्।

(स्वप-त्वष-धष: ४।, ड्नक्त्।१।)।

एभ्यो कुन् स्यात् है।, स्वप्नक् त्रणाक् प्रणाक्। § 💳

११२६ । श्वन्द आतः। (मृन्वन्तः ४।, वावः १।)।

त्राभ्यामातः स्थात् घे। यरातः वन्दातः। श

[#] इिमिक्त दीव्यते कन्यते न जस्यित स्रयते कामयते नमंतीति वाक्यानि । इंस्र इत्यादी (१०३३) इस्निषेषः । कस इति (५८२) वारे इति जिङीऽप्राप्तिपचे। पाणिनि: ३।२।१६०।

[†] रब्बृतिच्छति, सन्, (८११) खिलोप: इन् च, (२१६) खादै: स-लोप:, (६४) अस्य प, रिष्म इत्यक्षात् छ:, (७०५) चकारकोपै रिष्मु:। भिचते भिन्नु:, चार्यसर्ते चार्यस्ते । पाणिनिः १।२।१६८ ।

[🛊] पाणिनि: शश्रह ।

^{ुँ} जुर्भा क इत् गुणाभावः, नज्-स्थितिः । स्विपिति, हव्यति, प्रचौति, इति वाकानि, हवप्रयोः (१०३३) रम्निवेधः, (२११) कुङ्≀ पाणिनिः १।२।१७२, वार्त्तिस्य ।

न प्रचाति वन्द्रते इति वाक्यवयं। पाचिनि, श्राराश्वरः

११२७। ऋजुकौ भिय:। (जुलुकौ १॥, भियः ५॥)। भीरः भील्कः। *

११२८। सृहि गृहि मुह जे राय्य:। (सह-नी: प्रा, पायः १।)।

एभ्य त्रायः स्थात् वि । स्षृहयायः ग्रह्मयायः त्रवायः दरायः . जयायः । 🕆

११२६। गाँखि माँखि जि जान नन्दिस्योऽन्तः।

एभ्योऽन्तः स्थात् घे। गण्डयन्तः मण्डयन्तः जयन्तः जनयन्तः नन्दयन्तः । ‡

११३०। स्तनि गदि मदि हृदि दूषे रिह्नु:। (स्ति-द्वे: ४।, रवु: १।)।

एभ्य इतुः स्यात् घे। स्तनयितुः गदयितुः मदयितुः ऋद-यितुः दूषयितुः। §

भौधाता रेतौ स्थातां चे । उभयोः किस्तात् गुणाभावः । विभेतीति वाक्यं ।
 क्रुकत्रिप्वक्रत्यम् । भौक्कः । पाणिनः श्रा१७४ ।

[†] सदत् केप्से, स्इत् क उन्न प्रेहे, दी घटन पुरादी ; श्रु शुनी, ह उन्न ब्रादरे, जिलये—एस्य इत्यर्थ:। पाबीदाइरणहये,(६४१) पाय्य-वर्जन।तृन केसीप:। उत्पादिः।

[‡] गडिंग खें, मडिंक भूषे, जिल्हों, जनी स्थङ् प्राद्वभावे, टुर्नीट संबंधि। चित्र जिल्ली: सब्वें ञ्राला:। गण्डयल इत्यादी, (६४१), चन्त-वर्जनात् न ञेलींप:। गण्यल इति तुपदंसंचित्रसारे हस्यते। छवादि:।

^{\$} सनत् का गदन का चाश्रजनी, दावदन चुरादी। सदी सिर्थ जि इर्षे, ज्यानाः, घटादिलात् क्रक्की सदि.। इन कारीति चाचष्टे वा (৭५५) জি: इदिः। इर्दुष्धी

१९३१ । कृगृजागुः क्तिः । (कृग्जागः ४।, किः १।) । एभ्यः क्तिः स्थात् घे। कीर्बिः गीर्बिः जाग्यवः । *

१९३२। स्वयं शं वि सं प्राट् भुवी डु:। (सर्थ-प्रात् ४।, मुव. ४।,(डु: १।)।

ं एभ्यो भुवो हु: स्यात् घे। स्वयन्भुः यन्भुः विभुः सन्भुः प्रभुः । 🕆

११३३। त्नुध्यन सुचर पुसह वह दुनो भे।. (ल्-स प्रतन प्रत-प्-स इ. वह: ४१, इव: ११, भे ०१)। एभ्य इव: स्यात् भे। लिववं श्रास्त्रं धविवं खनिवं सविवं

एभ्य इत्रः स्यात् धे। लवित्रं ऋरित्रं धवित्रं खोनत्रं सवित्र चरित्रं पवित्रं सहित्रं वहित्रं । 🕸

११३४ | घञलनटो ऽघे | (घञ्चनः १॥, पवे १॥)। धोरते स्युर्न तु वि। प्राकारः, पादः, दासः, उपाध्यायः,

बैक्तते, जि., गुणे, (৩১৩) भीस्याने ज कते दृषिः। सन्धिनुष्यादौ (६४१) ९ नुः वर्जनात् न जेर्लोपः। चयादिः। तव तु इदिस्थले इविदृष्यते।

^{*} कृ म विधेषे, गृ म निगरणे गृगि मन्दे इति ६थं, जाय खुलु जागरे। किरतौति कीर्विः, (१०३६) इव्वतेरिति इसिविधे (६२८) इर्, (२२८) दीर्घः। एवं गिरति स्थाति वा गीर्व्वः। जागर्त्तीति जायिः (६८८) वि-वर्जनात् न गृषः। उषादिः। क्रविः जागविंरिति तु संविष्तसारः।

[†] डुद्रथस डिच्चात् (१२६) टिलोपः । एतत्-पर्यानीषु ताच्छीत्यार्थाधिकारः । पाथिनि: १।२।१८०, वार्त्तिकच ।

[‡] लूज गि व्हिदि, ऋ प्रापे, धूज गि कम्पे, खतुज विदारे, तू उन्न स्तौ, चर गतो भदने भाषारे, पूज गि प्रोधे, सहा कि सह ज उन्न प्रातौ, वहें औं प्रापणी। धे करवार्या । लूयतेऽनेन, भय्येतेऽनेन इत्यादि वाक्यांगि। पाणिनिः १।१।१८४ — १८६। पतकाते विह्वम् तथादिसिद्यम्। देयतायां कर्तार पवित्रं।

प्रासादः । समाजः, श्रमः, कामः वामः श्राचामः, श्रमः श्रामः यमः यामः विश्रमः विश्रामः । अ

११३५ | कामावे 5 मी । (क मावे ण, प्रमी शा)। त

प्रवसः, वधः, करः निलयः समजः मयः लयः। ज्ञानं मानं दानं प्रवेपनः वयनं अजनं दिस्ट्राणं ग्रयनं । क्ष

घस्य वर्जनात् क्रांमादि-कारके भावे च वाच्ये इत्यर्थः। 'भावी घालयः, क्रियामाचवाचीति यावत्। क्रियायाच चवस्याइष्टं भवति, तथाच-चवस्य हे क्रियायाः कः सांध्यता सिङ्कतादि च। साध्यता त्यदि-वाच्या स्थात् सिङ्कता द्रव्यवत् भवेत्। द्रव्यवत्तं घञादिः स्थात् योगी लिङ्केन सङ्ग्राया इति। तेन पाकः पाकौ पाकाः इत्यादि। पाणिनः ३।३।१८,१८,५६-८०,११५,११०। एतन्त्रते चच्, व्यप् = चला स्थाट = चनट।

घञी घकारः (८०२) घजी कार्यः, जकारः (५००) इद्ययः । यथा पाकः भाग इत्यादि । भाकी जकारः कातन्वादानुयाथी । भनटष्टकार (२५०) देवयः । प्राकार इत्यादि, प्रकर्षेण कियते ऽसी. कम्मीण घञ, इद्धः । प्रस्य दीर्घविधानात् घञत-धातौ परे कचिद्रपसगस्य दीर्घलं स्थादिति स्वितं । तथाच — उपसगस्य दीर्घलं किप्चनारी क्षेचित् भवेदिति पाचः, ("उपसगस्य घञ्ज भमनुष्य बहुजम्" इति पाणिनः (६।३।१२२), मनुष्यभिन्नं इति किं, निषादः ।) यथा—प्राप्नदः नीहारः भौवारः प्रतीकारः प्रतीकारः प्रतीकारः यतीषातः प्रतीकारः प्रतीकारः व्यतीसारः, क्षिप परीतत् नैकन् (१०४२,१०४६ स्वटीका दृष्ट्या) स्थादि ।

पद्यते ऽनेनित पादः, दाखते ऽद्यौ दासः, चपैत्य घधीयते ऽद्यात् चपाध्यायः, प्रसीदित्त (मनांभि) घित्र प्रासादः इति कारकीदाइरणानि । भावे यथा, समकनं समाजः समूदः, (५८६) घज्वजंनात् न वी-घादेशः । श्रमनं श्रमः, घित्र हृद्धौ, (७४४) जनवधित क्रसः । काम इति (५८२) वारे इति जिडोऽपाति-पचे घित्र हृद्धिः, जनवधित्यत्र वजंनात् न क्रसः, एवं वामः भाषामः । भ्रम यम विश्रमां वा क्रस्ते भनः भामः इत्यादि ।

† पूर्व्यम् चन्नादयः कर्गरि न स्युरित्युक्तापि, चन स्वे भनी सर्व्यकारकेषु भावे च स्युरित्युक्तवता, प्रयोगानुसारेच क्राचित् क्रांय्यपि स्युरिति स्चितं। यथाः घन्नि कन्नतौति रोगः, चितसरतौति चतीसार इत्यादि। चन्यम पूर्व्यत्वे संज्ञायां, चन चसंज्ञायानिति। पाचिनिः शशरुहः।

‡ चिल चदाघरित, प्रात्तौति प्रघस:, (६०३) चदी घसादेश:। इनमं वध:, (६०८) इनी वधादेश:। क्रियते ऽनेन कार:। निलीयते ऽक्षिम् निलयः, (७४५)

१९३६ | ष्ठीवन-सीवने वा | (शीवन-सीवने १॥, वा ११)। एते निपाल्ये वा । पत्ते छेवनं सेवनं । *

११३७। मुण् लभो ऽनेकदु:सीर्गे: खल्घञो:।

(सुण्।१ः, लभः ६।, भन्-एक-दुः-धोः ५।, गेः ५।, खल्-घञोः ৩॥) ।

. केवल दुः सुवर्जात् गेः परस्य सभो मुण्स्यात् खिल घिन च। प्रसम्बद्धाः । स्रन्यच दुर्जाभः । एकेति किं, स्रतिदुर्लभः । 🕆

११३८। खदैधावीद हिमखय प्रयंथ स्मार स्माल राग काय निकायाकायाः।

एते घञन्ता निपात्यन्ते । स्यदी वेगः । एध इर्धाः । ऋवोद ऋवक्कोदः । हिमस्रयः हिमस्रस्यनं । प्रस्रयः प्रस्रस्यनं । स्फारः

भाववर्जनातुन ङा। सलजनं समजः, (५०६) भाववर्जनात्न वी-भादेशः। डुनि छन चेपे मी जगवधे इति द्वास्यां भावे भाव मयः, (०४५) भाववर्जनात्र ङा। एवं ली ङ्य भी • स्थिति, लयनं लयः। भन्द्यया, जायते इति भावं ऽनट् झानं। सा-स्वरुपाणा निस्योध (०४५) ङादेशे मानं। दा-स्वरुपाणां दीडच (०४३) ङादेशे दानं। प्रविपनमिति (८६८) विपवर्जनात् न भावं। भाज-भन्द् (५८६) विकल्पेन वी-भादेशे वयवं भजनं। दिन्द्राणमिति (००२) भानभजनात्र भालोपः। भी ङ सा भयने भयनं। कारके भन्द् यथा — कियते इननेति केदनः खाः, वसनी रख्यादिशादि।

किनु निरसने, िब्बु तनुसन्तभी एतयी भावि ज्ञिट दीवीं वा निपाल्यते, पवे गुण:। किनुसिवीदीविधः इति चन्द्रस्वम्। एषीदशदिवादिति पाणिनीयाः।

[†] एकी (शिक्षतीथी) च ती दुःस् चिति एकदुस्, न विद्यंते एकदुःस् यच सीऽनेक-दुस् सम्मात् । सुची च इत् भन्याचः परः छकारधिक्रामः, म-स्थितिः । प्रलचः इति चित्र चनेन सुच् । केवल-दुःसुवर्जनात् दुलीमः, एवं सुलाभः । चित्रदर्जनः इत्यचन केवलदुः । (७४१) तुष्रभ इयनेन सिक्षेऽपि एति इथानं विवसाये । पार्थिनिः भाराहक्र्रः ।

स्कीरणं। स्काल: स्कीलनं। रज्यतेऽनेनेति राग:। कायी देह:। निकायी निवास:। श्राकायसिति:। *

११३६। खनो डं-डरेक्नेकवकाः।

(खन: ५१, ड-डर-द्रक-द्रकवका: १॥)।

त्राख: ग्राखर: ग्राखनिक: ग्राखनिकवक: । 🕆

११४०। व्याप्तौ भावे णिन:।

(व्याप्तौ ७।, भावे ७।, विनः १।)।

धोर्भावे णिनः स्थात् व्याप्ती सत्यां। णिनाक्तात् स्वाधे णैः। साराविणं वर्त्तते। क

१९४१। व्यतीहारे गन्स्ती।

(व्यतीहारे ७।, षन् ।१।, स्त्री ।१।) ।

^{*} स्थन् इल्व्ह चरणे स्यदः, विगादन्यव स्यन्दः। जि इत्वीङ गुती एपः काष्ठं, प्रस्व इत्वः। भवपूत्रं उन्द धी क्षेत्रे भवोदः, श्ववादस्य उन्दः प्रीन्दः। श्वस्य ग मीने, हिमस्य श्वसं हिमश्रथः प्रश्यसः श्वस्य श्वसः परिश्वसः। स्कृर स्कृतः विश्वस्ता ज्ञानस्य स्कारः, स्कालः। स्कार इति (७८३) भीजीङ इत्यनेन श्वा क्षते, स्कृतः धातोष स्काल इति सिज्ञाविष, निपातनं, पत्ते स्कीरः स्कोल इति भनिष्ट-निवार-धार्षे। रन्नौ ज रागे, करणे भावे वा रागः, श्वस्य रङः। वि ज न चित्यां कायः, निकायः, भाकायः, भगव चायः मिचायः भाचाय इति । वितिश्वितेत्वर्षः। पाणिनः ६।१।४०, ६।४।२०,२०,२०,३।३।११।

[†] खन धातीः उडर इक इकवक एते खु कभावे इत्यर्थः । उडरगी डिलात् टिलोपः । वार्त्तिकम्।

[‡] विनस्य ग इत् ब्रह्मथं:। संपूर्व क स ध्वनी भावे चिने, वडी, संराविण इति स्थिते, (४३३) स्वार्थे ची, (४१६) चिने विदिनि चादाचो बडी, (२५८) ययी लीप इत्य-कार-कीपे, सांराविषं, बह्ननां समवेतग्रस्ट इत्यथे:। पाणिनिः शशेष्ठ, ५।४।१५।

धोर्भावे चन् स्वात् व्यती हारे, यनन्तात् स्वार्धे णाः, तदन्तस स्तियां। व्यावहारी। *

१९८२ । द्विताऽयुभीव । (द्वितः था, षष्टुः ११, भावे २०)।

. टुकारेती घोरयुः स्थात् भावे। वेपयुः। 🕂

१९४३। डितस्तज्जे चिमक। व (ड्वितः था, तज्जे का, विमन् रा)।

हुकारेत स्त्रिमक् स्यात् ध्वर्णातिस्पत्रे। करणाज्ञातं कतिमं।

१९४४। स्वप रच्चयत प्रच्छ विच्छ याच यजो नङ्भावे न जि:।

(स्वप-, यजः,,धा, नङ् ।१।, भावे ७।, न ।१।, निः १।) ।

णनी णकारी तदार्थ:, दल्यनकारसु (१०००) दुनीमृज्यलाहीति चप्रत्ययेन सह प्रभेदार्थः, तत्पालच (৬১৯) यो्ग्येमदाक्तीत्यव°ष्यक्षां। भकार-स्थितिः। परस्यर-व्यवद्वरणं द्रति वाकी व्यावद्वारी, व्यव-इट-णन्, (५००) वर्षत्वः, व्यवद्वार दति स्थिते, (४३३) खार्चे चा:, (४१०) श्रीगृंभ इत्यत्र णननावर्जनात् यकारस्य न इस, (४१६) भादाची वृद्धिः, (२५८) अकारलीपः, (२५७) विस्तादीप्, पुनः भकारलीपः। एवं यरस्यर-व्याक्रीशनं व्याक्रीशीत्यादि। पाणिनिः १।१।४३, ५।४।१४।

[†] टुइत् यस्य स द्वित् तस्रात्। प्रथक् योगात् स्थतीहारस्य स्त्री इत्यस्य व नानुवृत्ति:। वेपनं वेपणु:। एवं वसधु: दवधु: साजधुरिखादि। पाचिनि: ३।३।८८

[‡] डुद्रत्यसः संडित्तसात्। तसात् (धालर्थान्) नातं तस्त्रं (೭೭७) उपसर्थः सिसं, तिकान्। डुक अ इत्यकान् निमक्, किल्लादगुणे क्रमिमं, एवं डुदा^ड दिविमं (१०८८) दा स्थाने दत्, जुधा अ (१०८६) दिविमं, खुपच व पिकानं, खुवर छप्तिमं, दुभः ज्यन्तिममित्यादि । पा**षिनिः शश**प्पः, धाधार० ।

एभ्यो नङ् स्थात् भावे, न च जि:। स्तप्नः रक्ताः यतः प्रश्नः विश्वः याज्ञा यज्ञः। अ

११८५ | किहाँ उन्हार्गः । (कि: ११, द ४।, पन्तर्गः ४।)। श्रन्तरो गेव परात् छा-संज्ञकात् किः स्थात् भाते । श्रन्तर्धिः श्रादिः । ।

१९८६ | ढाड्डे | ^{(ढान प्रा, डिंज) ।} ढात् परात् दः किः स्थात् हे । वारिधिः पयीनिधिः । क्षं

११४७ । ति: स्व्यक्षे । (किरा, खी । रा, अवे अ)। धी: ति: स्थात् न तु चे, तदक्तय स्त्रियां। किति: बुद्धिः मिति: स्मृति: प्रकृति:। (१०८२) स्नुदेः स्वः तौ चेति। प्रस्नृतिः, भूति: फुल्तिः। §

नक्डी डिच्चात् गुणाभावः, निस्थितः। निर्मितः निर्धधात् हिंद्दश् यह-स्वपाद्यीरिति प्राप्तस्य जेनिषेषः। प्रयाक्षियः समयव (८१४) क्वी. य्टाविति कस्य या. । याच्या इति (४६) नस्य जः, घिभधानात् स्वीतं, (२४६) त्राप्। यज्ञ इति (४६) नस्य जः। एषु (१०३३) हव्वतेरिति इस्मिधिधः। पाणिनिः ३।३।६०,८१।

[†] भन्तक्षीनं भन्तिर्धः, भादानं भादिः, कित्स्धदगुर्थः, (६१०) उस्त्रेचीति श्रामीपः। पाषिनिः ३।३।६२, वार्षिकञ्च।

[‡] उंचिधकरणवाच्छे। वारिधीयतेऽिकान्, पयोः निधीयतेऽिकान् इति वाक्यद्वयं। पाणिनि: ३।३।८३।

[§] घः कर्चा, तस्त्र वर्जनात् कर्त्तृभित-कारके भावे च वाच्ये दल्यंः। क्रियतेऽसी दति कर्म्याष्, करणमिति भावे वा क्रितिः। बुध्यते ऽतया दति कर्णे, वीधननिति भावे वा बुद्धिः, (५७५) तस्त्र घ, (६७) घस्य द।. मननं मतिः, (६७६) अन्लीपः। क्यरचंक्यृतिः। प्रक्रियते-इतयाः करणे प्रक्रतिः। प्रद्वादनं प्रद्वतिः, (१०१३) इव्वते-

१९४८ । कृगृज्याम्बाहात्वादेनिः।

(कु--- खादे: ४।, नि: १।) ।

एभ्य: परस्या: क्ते निः स्थात् । कीर्णिः गीर्णिः ज्यानिः ग्लानिः हानिः लूनिः पूर्णिः । *

११८८ । साति हिति यूति जूति । (११॥)।
स्यति-हिनोति-यौति-जवतीना-मेते स्वन्ता निपात्यन्ते । पे

्११५०। शौ वज यज विद खास मन चर भटांचीन समज निपत निषदः क्यप्।

(भी---निषद: ५।, काप्।१।)।

एभ्यो भावे काप् स्थात् तदन्तय स्त्रियां। यया व्रज्या इच्या िया सुला त्रास्था मन्या चर्या सत्या त्रटाव्या इत्या समज्या निपत्या√निषद्या।'ंं '

रितीम्निवेधः (प्रह्नितिति तु सिडान्तकौसुदी) । भूयते ऽनया मृतिः सम्प्रितः, भवन-मिति वा, (१०५३) वृद्शीति इम्निवेधः । फलनं फुल्तिः, (१०८०) चरफलाऽदुरिति सकारस्य छः । पाथिनिः ६।३।८७ ।

[•] लू चादि यस म लादिः, कृष गृष ज्याय ग्लाय हाय लादिस, समाहारे तसात्। लादिष (७६१) मृष्टोकायां द्रष्टयः। कीर्णिरिति, कीः स्थाने निः (१०५१) द्रम्निषेतः, (६२८) ऋषाने दर्, (२२८) दीर्षः। एवं गीर्णः। ज्यानिरित्यत्र कीः स्थानिवत्तास्त्रीकारात् (६६१) न निः। हानिरिति हा-ङ धातीः कीः स्थाने निः, (६२२) दामाग्रेहाक इति हाक-ग्रहणात् न खी। ("ची हाक् हानिरपचयः" इति त संवितसारः)। लूनिरिति (१०५३) इन्निषेतः। पूर्णिरिति पृथातीः व पूर्णिरिति । सपन्नो संवितसार च तु पृथातीः पूर्णिरिति । उपादिः, वार्त्तिकाः । स्थाने संवितसार च तु पृथातीः पूर्णिरिति। उपादिः, वार्त्तिकाः।

[†] सीय नाशं, हिन वर्डने गती, यु ल नियणे, जु गती, एवानेते प्रयोगा इत्ययः। सातिरित्यत्र, (१०८५) दोषोमास्यां ङिरिति न ङि:। पाणिनि: ३।३।८०।

[।] भव, सूर्व भावे इति नीका हत्ती भावे इति व्याख्यानात् प्रयोगानुसारिस

११५१ । कः श्या (कः श्रा, गः रा, च ररा)।

करोते: ग्रःस्थात् क्यप् च, भावे, सच स्त्रियां। क्रिया, क्रत्या। अ

१९५२ | सृ-जागुर्यः । (स्-जागुः ४१, यः ११)। श्राभ्यां यः स्थात् भावे, सच स्त्रियां । परिसर्था जागर्था । क

११५३। ग्रंस्याद:। (शंम् लात् ४।, भ: १।)।

त्राभ्यामः स्थात् भावे, सच्•ित्त्वां। प्रग्रंसा, दिहचा श्रटाटा कग्डूया। ः • • • •

कर्नुभिन्ने कारकेऽपि स्यात्, यथा, भिनेऽस्यामिति अधिकारणे भ्रत्या स्वृद्धादिः, भ्रयनिमिति भावे वा, क्यप्, (८१५) भ्रोडो ङय, स्त्रीलात् (१४८) आप् । तज्जनं त्रच्या । ध्वनां इत्या, (६६१) जि । विटत्यनया इति करणवार्चे विद्या, विदनं (ज्ञानं) इति वा । भवनं (यजनं) मृत्या, (६८२) तन् । आमेनं आस्या अन्यते ऽनया मन्या (पथाद्यीवाभिरा), मननिमित वा । चरणं (आचरणं) चर्या । भरणं (पीषणं) भ्रत्या । चट-यंङ्, घटाद्यभातोः क्यप् (९०५) इमाल्लोप इति क्रमञ्चः आकौर-यकारयी-णेषः अटाद्या मृहुसंनणं । एति भन्या, भ्रयनं वा, इत्या । समजन्ति (मङ्गक्ति) भर्यामिति समज्या, सभा, समजनिति वा । (५८६) कैय्वर्जनात् न वी-भादेशः ॥ निपतत्त्यस्थामिति निपत्यां, पिक्किला भूमिः । मिवीदन्यस्थामिति निषद्या, क्रयविक्रय-भूमिः । पाणिनिः इ। इ।६८६ स्ट वार्त्तिकः ॥

^{*} म इत् र-संज्ञः, अकार-स्थितिः । ज्ञ-मः, (भाववाचः) (८२१) र-तनोरितिः यक्, (६२०) चृत् रिः, स्त्रियामाप्, किया । कापि च, गुणाभावे, (८८२) तन्, क्रत्या । अत्र चकारेण कोरपि ससुद्ययात् कृतिः इति च । पाणिनिः ३।३।२००।

[†] परिसरणं परिसर्थां, परिपूर्वसैव प्रयोगः । जागरणं जागर्याः । वाक्तिकस् ।

‡ श्रम्स च त्ययेति श्रन्थं तस्यात् । त्यः प्रत्ययानः । प्रशंसनं प्रशंसाः ।

हश्सन्, (१५४) षङ् (६०२) षस्य कः, दिहत धातोः च प्रत्ययः, (५४३) पूर्वाकारसोपः, दिहसा । एवं चिकिन्सा इत्यादि । श्रटाटा इति श्रटश्यङ्, श्रटाव्यधातोः

१९५८। सेम्कात् सरोः। (विमकात् ४), वरोः ४।। यसात् को विह्नितः सेम् स सेम्कः, तस्तात् कमतो धोः श्रः स्थात् भावे, सच स्त्रियां। ईहां जागरा। सेम्कात् किं, नीतिः राहिः। कमतः किं, पत्तिः। अ

११५५ । तुलेच्छारा तारा अारा कारा हारागीधा लेखा रेखा चूड़ा:। (१००) । एते क्रान्ता निपालनी । चोदना चूड़ा । १०

११५६। भौषि चिन्ति पूजि कथि कुम्बि चर्चि स्पृत्ति तोलि दोलि षिट् भिदाद्यात्वर्घटादे क्ः । (भौष - भावर्षटादेः ४।, ७ः १।)।

माः, (७०५) प्रकार यकार्यो लेंग्यः । कस्डूया इति कम्डूशन्दात् (८५४) क्यः, कम्डूय धातीः मः । म्रचः परत्वात् (७०५) न भकार-यकार-लोगः । एवं चटतीया गीपाया इत्यादि । पाणिनिः ३।३।१०२ । ''शंक्षिप्रत्ययदः" इति कातर्त्वे कृत्सुपन्नमे पादे ।

इसा सड वर्त्तते यः स सेम्, सेम् को यद्यात् स सम्क्रलस्थात्। सेमकात् गुर्वचरयुक्तात् घाताः चः स्थादित्ययः। द्वेंडनं द्वेडा, कागरणं नागरा। की कते द्वेडितं नागरितं। नयनं, नीयते उनया इति वा, नीतिः, राधनं राडिः। की क्रतेनीतं राडं।पत्तिरित पत-क्रिः, कंपतिर्तानित।पाणिनिः ३।३।१०३, वार्तिकाच।

⁺ तुल घाताः, तीलयत्यनया तुला परिभाषद्ग्यः। इत्र घाती-रिच्छा। चट— घारा कुरिका। तू—तारा नचनं, छत्ताकारियौ भगक्तौ च। ध—घारा, द्रवद्रव्यपतनं, ब्रह्मादिपतनं, खड्गादि निशितस्यलं, मसूहः. प्रकारयः। कू—कारा वस्त्रनालयः। इः—इ।रा इर्षं, इ।रयः। गुध—गोधा अङ्गुलिनं, गीधिका च। लिख—लेखा लिखनं, लकारस्य रेफे रेखा च. प्रेणौ। चुट-च्छुडा, चोटना प्रेर्णा इत्यद्यः। पाणिनिः ३।३।१०१,१०४। तुलाग्रस्त् प्रथक् सिदः।

एभ्यो भावे: ङ: स्थात्, सच स्त्रियां। भीषा चिन्ता पूजा कथा कुम्बा चर्चा स्पृहा तीला दीला, पचा, भिदा किदा गुचा विदा चिपा जना पीड़ा सरा वसा रुजा, घटा व्यथा लरा। 🕸

११५७। चाता ऽन्तः खर्गे:। (भातः ४।, भन्तर्यत्गे: ४।)।

णभ्यः परादादन्तात् ङः स्यात्, सच स्त्रियां। त्रन्तर्दा यदा, संज्ञा प्रमाः। 🕆

११५८। ञी-िष स्रन्यि ग्रन्थि वेत्ति वन्दासी

(क्रि— त्रास: ५।, त्रन: १।) ।

एभ्यो इनः स्थात् सच स्त्रियां।

^{*} ष इत् यस्य म षित्। भिद भादि र्यस्य स भिदादि:। भावर तरपर्यनः. स चासी घटादिशति त्रालर्घटादि:। ततः, भीषिय चिलियेणादि इन्हें तस्मात्। भीष्यादि दीलि पर्यन्ता नव त्रान्ता:। वित् गणपाठ मूझन्यवकारत् धातु:। भिदादि र्गणः । उत्तरस्य उत्तरं, भकारस्थिति । भी जि, भी वि— उत्तः, (६४१) जेलीपः, (२४८) भाष, भीवा। एवं चिना दलादि। पचा दति जुजी वृपच पाकी, विस्तात् छ:। एवं सञा समा रत्यादि। भिटादि यंथा, भिटा किदा गुना विदा चिपा एषु जिल्लात् न गुण:। जना इति (२३०) इनगर्भत्यत्र उत्वर्जनात् न छङ्-स्रोप:। सरा इति (६१८) हस्रोरिति गुण:। भालर्घटादि येथा, घटा व्यषा लारा। एवं जुलरा, भय भया, चप चपा, लज्जा लज्जा, संघ सेधा, वप वपा, कप क्तपा इत्यादय:। पाचिन: १।१।१०४,१०५। भीषि इत्यारम्य दोलि इत्यत: सब्दे क्रसिकं कातन्त्रम्।

[🕇] चलर्धानं चलर्जा, एवं अबा, अत् इत्यव्यर्थ। मंजायतेऽनया संज्ञा नाम। प्रमीयतेऽनया प्रमाणमिति वा प्रमा। एषु (६१०) उन्सेचीति आः-सोपे, स्त्रोलादापः। पाणिनः ३।३।१०६, वार्त्तिकच ।

कारणा देवणा यत्यना ग्रत्यना वेट्ना वन्दना घासना। 🕸

१९५६ । प्रश्नाख्याने िं!। (प्रश्न-पाळाने ०), वि: १।)।
प्रश्ने प्राख्याने च घी पिं: स्थात्, सच स्त्रियां। कां कारिमकार्षीः, सर्वीं कारिमकार्षे। पं

११६०। नजो उन्याक्रोशे स्त्री।

्नञ: प्रा, चनि।१।, चाक्रीभे ७।, स्त्री।१।)।

नजः.परात् धी रनिः स्यात्, त्राक्तीमे, सच स्तियां। श्रजीवनिस्तवं भूयात्, अप्रयाणिः। 🕸

११६१। ईषत्-दु:सा: खल् भावे हे।

(ईषत्-दुर्-सी: ५।, खल् ।२।, भाव ०।, हे ०।)।

एभ्यः परात् भीः खल् स्थात् भावे ढे च । ईषदाक्यभृवं भवता, दुराह्यभृवं भवता । ईषत्करः कट-स्वया, दुष्करः सुकरः । §

^{*} जिर्जानः, जिस द्विथियादि इन्दः। कारि— भनः कारणा इत्यादि। एषु (६४१) जे खेँापः। पाणिनिः, ३।३।४००, वार्त्तिकसः। ''द्विरनिच्छार्थस्य'' इति वार्त्तिके तु द्वधातीः भ्रत्वपणा। कातन्त्रे तु द्विधातुर्त्तिस्वतः।

[†] चि इत्यस्य च इत् ब्रह्मयं, इ-स्थिति:। क-चिः, (५००) वृद्धिः, कारिः कार्य-भित्ययः, चकार्थैः लसिति प्रत्रः', चकार्यं चहमिति श्रेषः। प्रत्रे, चाव्यमे (उत्तरदाने) च उदाहरणदयं। पाणिनिः ३।३।४१०। एतन्सते विभाषा। विभाषायहणात् पचे यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति, क्रियां क्रत्यां कृति वा।

[‡] श्र-जीव-श्रनि: श्र-जीवनि:, श्र-प्र-या श्रनि: श्रमयाथि: (१६८) नीऽच रित खलं। स्यधिकारिऽपि स्त्रीय रूषं स्यधिकारिन वृत्त्वयं। श्राक्षीर्य कि, श्रक्षतिसस्य घटस्य। पाणिनि: १।१११२।

[§] खलः खःली इती, चकारिस्थितिः। एषामञ्चयलान् (१०१४) खिन्कार्याः भावेऽपि, ईपन्दुःसीः परात् धातीः खल्विधानसामर्या**त् पाळादिशस्य**यक्षानेऽपि

११६२। ऋातो उनो उदिरद्र:।

(भात: ५।, भन: १।, भदरिद्र: ५।)।

दिस्तिवर्जादादन्ता-दीष हु:स्मे: परात् श्वन: स्थात् भावे ढेच। ईषत्पान: दुष्पान: सुपान:। श्रदिदः किं, ईषहिदः। *

११६३। देश शास युध धष स्टषी वा।

(हम्र-स्यः ५१, वा ११)।

केषत् दुः सोः परेभ्य एम्यो ऽनः स्यात् भावे दे च वा । सुदर्भनः सुदर्भः, दुःयासनः दुःयासः, दुर्योधनः दुर्योधः, सुधर्षणः सुधर्षः, देवसमर्षणः देवसमर्थः । १०

११६४ । तादय्य चतुम्। (नादर्थे ७), चतुम्।१।)।

भी- यतुम् स्थात् तादर्थें। क्राणं द्रष्टुं याति । 🕸

स्थादिति, तेन, ईषदाकान भूयते इति वाकी ईषदाकाभव्दात् भूषाती भवि खल, गुण:, खिल्लात भाकास्य मन् ईषदाकाभवं, एवं दुराकाभवं। ईषद्व कियतेऽसी ईषत्कार:, एवं दु:खेन कियतेऽसी, सुखेन कियतेऽसी, एव भव्ययलात् न मन्। पाणिनि: ३।३।१२६।

- ईवन पौयते उसी, दुःखेन पौथते उसी, सुखेन पौयते उसी, एषु कर्माण चन: ।
 ईवन् दिस्द्रायते इति पूळींण भावे खल, (७०२) दिस्द्र चालीप:। पाणिनः शश्रद्भ ।
- † सुखिन दृष्यते ऽसी, भन: सुदर्भन:, पर्च खल सुदर्भः। दुःखेन भ्रिष्यतेऽसी दुःश्रासन: दुःश्रास:। दुःखेन युष्यते ऽसी, दुंशासन: दुर्थोधः। एवं सुखिन ध्रष्यते ऽसी, दूंधन सृष्यते ऽसी,
- ‡ स घालयं:, स चासी चर्यः प्रयोजनस्थित तदर्यः, तस्य भावसादस्यं तिसान्।
 यस्य धातीरर्यः चना-धालर्षस्य प्रयोजनं भवित तस्यात् धातीः चतुम् स्थान्, च इत्
 चन्यस्यं, तुम्-स्थितिः। चन भावे वाची भविष्यत्काले चेति बीष्यं। द्रष्टुनिति
 ह्य-तुम्, (६०४) च्हकारस्य र, (१५३) वङ्, (४०) तस्थाने ट। चन हम धातोर्यः
 या-धालर्थस्य प्रयोजनं। क्रिययोरिककर्नृते स्थीव चतुम् स्थात्, तीन विग्नं भोक्तं
 निम नायते इति न स्थात्, भोजनाय निमन्तयते इत्थेव स्थात्। भाषिनः १।३।१५८।

११६५। क्ताच्वा निषेधे ऽलं-खलुना।

(क्वाच् ।१।, वा ।१।, निषेषे ७।, ऋलं-खल्ना ३।) ।

निषेधार्थयोरलं खल्बोर्योगे घी: क्वाच् स्यादा भावे। अलं दल्वा अलं दानेन, खलु पीला खलु पानेन। *

११६६। पूर्वकाले। (a)

पूर्विस्मिन् काले स्थितात् धीः क्वाच् स्थात्। विशां नला स्तीति। १

'११६७।, न नित् खन्दखन्दः।

(म । १।, किन् । १।, स्कन्द-स्थन्द: ५।)।

कान्वा स्थन्वा । 🕸

क्राच यकारीऽव्ययार्थः, फ इत गुणाभावः, ला-स्थितिः । प्रलं दत्ता दानं निषिद्वित्तिव्यर्थः, (१०८८) दा स्थाने दन-पार्दशः, पत्ते दानेन (२८८) सहवारणंनिति हतीया। खलुपौला, पानं निषिद्वित्त्यर्थः (६१२) दामा इति ङौ। पाणिनिः २।४।१८ ।

[†] यदा कत्ती क्रियाइयं कियाइयं वा करीति तहा परिक्रयिपेचया पूर्विधान् काले वर्षमानात् घातोः भावे क्राच् स्यादिर्स्थः। विश्वं नत्वा स्तीतीति स्ति-क्रियायाः पूर्व्यकालं वर्षमानात् नमः घातेः क्राच् (६०६) जनलोपः। नमति च स्वीति च इत्यादौ समकाललात् न स्यात्। भ्रचापि क्रियायाः मेककभूत्वे एव क्राच् स्थादिति। पुत्रं टहास्यं भवतीत्यादौ तु स्थितस्थेयध्याद्वारादेकक र्मृत्वे। भनन-क्रत्य पतित्, सुखं व्यादाय स्वपिति इत्यादौ तु पूर्वकालविवचयेति वक्तव्यं। पाणिनिः १।४।२१।

[‡] आध्यां परः क्वाच् किव्न स्थान् । क्वाचः कित्त्वनिषेधसः फलं (५६०) इसुड्न इति न लीपाभावः । स्वल्वा इति चौदित्वादिम्निषेधः, स्थल्वा इति कटित्वादिमो विकल्पपचे जदाइरणं । अभयन चथी समैत्रवर्गीया भध्यमनात्र लुष्यते इति दःलीपः । एताभ्यां क्वाच् एव कित्त्वनिषेधः, क्वाच-स्थानजातस्य यपसु कित्त्वनेविति, तेन प्रस्तय प्रस्यय । पाचिनिः द। ४। ४१ ।

११६८। सेमऽज्ञुघ क्षप्र क्षिय गुध ग्टड़ स्टर वट वस ग्रहः। (भेम्।१५, प्रजुधः, यहः ध्र)।

धोः पर इम्सहितः क्वाच् किन्नस्यात्, नतु चुधादेः।. ग्रायित्वा। सेम् किं, युत्वा। चुधादेः किं, चुधित्वा। अ

११६८। तथ स्व कष वञ्च लुञ्चुतो वा १ ·

एभ्यः मेम् क्वाच् कित्र स्थादा। तर्षिला मर्षिला कर्षिला विचला लुचिला प्रत्तिला। पचे तृषिला द्रत्यास्यः। 🗘

११७०। यफान्तुङ:। (य फान ४।, नुङ: ४।)।

नकारोङस्थान्तात् फान्ताच सेम् क्वाच् कित्र स्थादा । यत्थिता यथिता, ग्रन्थिता यथिता, गुम्फिला गुफित्वा । तुङः किं, कोथिता रिफिता । ः

[ः] सह इसा वर्तते थीऽमी सेम्, क्वाच् द्रवस्य विभेषणं। भायत्वा इति शी ला, (५५४) वसीरस्थेतीम्, किस्ति विभेषात् (५४२) गुणः, (१५) णस्याने अग्र । चिधलां इति, एवं किषिता क्विंगला गुधिला सहिला सहिला चिदला चौंगला गर्धीला।एषु चिधला खिला खभयव (१०६६) चधवसेतीम् । क्विंगला इति जिल्लात् (५०३) दम्पचे प्रयोगः। भ्रभेष (५५४) वसीरस्थेतीम् । चिहला चिल्ला गर्दीला इति (६६१) जिः । गर्दीला इति (७०१) इमोदीर्थः । पाणिनिः १।२।१८,७,८ । चोधिलापीति भरीजि दौंचितः।

⁺ स्टन इति स्टन धातुः। तर्षिता इत्यादिषु (५५४) वकीऽरस्यतीम्, किस्ता-भाष-पचे यथासभावं गुणः गलीपाभागय, किस्तपचे तुगुणाभागे गर्णापयः। पाणिनिः १।२।२५,२५। एतन्यकं क्षयः तालव्यान्तः।

[‡] येन विधिस्नद्रन्तस्येति न्यायात् धान्तात् फान्तादिति। श्रश्चित्रेयादि सर्श्वव (१५४) वनीऽरस्थेतीम् । कित्ताभात्र-पत्ते नलीपाभावः, कितपत्तं (५६०) नलीपः । कोधिन्ना रेफिला इति (११६०) सेमऽसुधेति कित्त्वनिषेधं, गुणः । पाणिनः १।२।२२।

११७१। नश्-जोऽनिमः। (नम्-मः ४।, पनिमः ४।)।

नशो जानताच नुङोऽनिमः परः क्वाच् निव स्वादा। नद्दानंद्दाभक्वा भङ्का। प्रनिमः निं, प्रस्तिता। *

(८१८) ब्युड़ी इसारेरिति। युतिला योतिला, लिखिला लेखिला। रुदारेस रुदिला विदिला सुषिला। अवः निं, रेनिला। इसारेः निं, एषिला श्रोषिला। प

११७२ । पूक्तिशुदित दम् । (प्-क्रिश-चितः ४।, रम ।१।)।
एभ्यः क्राच 'दम् स्थादा । पविला पूला, क्रिशिता क्रिष्टा,
शमिला शान्ता । ध

११७३। क्रामा चें वा। (क्रम: ६।, र्च: १।, वा।१।)।

^{*} नम् च ज चित तस्मत्। नद्दा इति, नम्र स् यू नामे कदिस्वात् (५०३) इसीऽभावपर्ते (०४१) तृष् रध इति तृष्, कित्पचे (५६०) न-सोपे, (१५४) षष्, (४७) तस्माने ट। मित्रपर्ते नस्मानुस्तार: नंद्दा इति। भक्ता इति, भन्न धौ सीटने, भौदिलादिसीऽभावे, कित्पचे न-सोपे, (२११) कुड्, मित्रपर्वे (५०,५१) नस्मानुस्तार:, तस्म च ब्। मित्रस्तात् (५०३) इस्, (११६८) सेमऽचुधेति किस्तनिष्धे, नस्मानुस्तार, तस्म च अ। मिन्रपर्ते तु मक्का मङ्क्षा इति। पाणिनीः ६।४।३२।

[†] व्युक्तीऽवी इसादेरित्यंसीदाइरणमाइ, युतिलेखादि (५५४) वसीरस्वेतीम्। टेविला इति दिव्युक्तीडायां उदिस्वात् (११०२) पुक्तिग्रदित इति वा इम्, (११६८) निलाकस्वामावे ग्रयः। सनिम्पचे (८१४) यूला इति। एपिला सीपिला इति कदिस्वादनग्रीरिप वेमलादिम्पचे निलाकस्वामावः। पाणिनिः १।२।२६।

^{‡ (}१०५३) बृद्योत्यनेन कित इम्-निषेधादमाप्ती विकल्पार्थे पू इत्यस्य वहणं, पवित्वा (११६८) सेमऽसुधिति किष्णनिषेधात् गुणः। तत्रेव क्रियवजनात् क्रिमिलेखन न गुणः। भान्ता इति (१०३८) असुष्ठः इति दीर्घः, मस्यानुस्वारसस्य च नकारः। पाणिनः २१२॥५०,५१६।

क्रमिला, क्रान्या क्रन्या। #

११७8 । जुबस्या न जि: । (मृनवः रा, मारा, नि: रा)। प्रान्यां क्वाच इम् स्थात्, नतु व्रथे जि: । जरिला व्रश्चिला । पं

११७५। 'हाको हि:। (हाकः ६।, हि: १।)।

हिला। 🏗

१९७६। व्यादनञः क्वो यप् से।

(व्यात् पा, पनजः पा, कः हा, यप् । १।, से ७।)।

नञ्वर्जात् व्यात् परात् घीः क्वो यप् स्यात् से सित । प्रकर्षेण कत्वा प्रकत्य, प्रवत्य प्रतत्य प्रहत्य, उद्च्य, प्रदाय प्रमाय प्रगाय प्रहाय प्रपाय प्रस्थाय । §

कर्मार्घः स्वादा क्वाचि । क्रमिला दित चुदिच्चात् पूक्तिग्रदित् दित दम्,
 विकल्पपचे चनेन वादीर्घः । पाणिनिः ६। ।।१८०।

[†] विभाषाद्यसध्यवर्तिलादस्य निल्यता । जरिला इति (१०५१) वृद्धीति इस्निषेधेऽपि, चनेन इस्, (११६८) सेसऽच्धेति कित्त्वनिवेधात् गुणः । (६२०) वृतौ
वेसीर्घ इति वा इसी दीर्घले जरीला इत्यपि । विख्ला इति कद्त्त्वन वेसलेऽपि
चनेन निल्यसिम् । सेस्क्वाचः कित्त्वनिवेधादेव जेरमासौ चव जेनिवेधः प्रव्रस्य
इति क्वाचो यपि जिनिवेधायः । पाणिनः ७।२।५५ ।

[‡] डाको हि: स्यात्। डाक: किं, डाङ इत्यस्य डांला। पाणिनि: ७।४।४३।

[§] नामि नज्य यत्र सीऽनज्तसात्, व्यात् इत्यस्य विशेषणं। प्रकर्षेण क्रता क्रित (५४८) व्यस्य ग्यत्कारित समासे, भनेन क्रामो यिति, क्रामः स्थानिक्लेन किस्तात् गुणाभावे, (८८२) खस्य तन्, प्रकृत्य। प्र-वन प्रवत्य, प्र-तन प्रतत्य, प्र-इत्य प्रकृत्य, एषु (६०६) जम्सीपे, खस्य तन्। उद्य-पन्न (५६०) इसुङ्न इति न-सीपे चह्च्य। दा इत्यस्य प्रदाय, सा इत्यस्य प्रमाय, ग्रैप्गाय, इनक्ष प्रहाय, पा पाने प्रपाय, स्था प्रस्थाय, एषु (६१२) दामागै इत्यत्य यप्यर्जनात्न उरी। पाणिनिः श्री १९०।

(१८३) दीङ ह्यामिति यपि ङा, प्रदाय। (१८५) मिन्यी-रिति ङा, प्रमाय, प्रलाय प्रलीय। %

११७७। स्त्रोपो वानिम:।

(स्-लोप: १।, वा ।१।, ऋनिम: ६।)।

चनिमो मस्य लोपः स्यादा यि। प्रमत्य प्रमस्य । चनिमः निं, प्रथम्य । पे

११७८। वो जेरयः। (वी: प्रा, जी: दा, श्रय: १।)।

घु-पूर्वस्य जेरय: स्यात् यवि । विगणय्य । घो: किं, सम्प्रधार्य । 🕸

·११७६ । वाप:। (वा ।११, आपः ५१)।

श्राप: परस्य जेरय: स्यादा यपि। प्रापय प्राप्य । §

१९८०। वा मेच्यो मिच्यो ।

(वा ।१।, भ-च्छी, ६॥, मि च्यी १॥)।

मेङो मि: चे: ची स्यादा यि। अपमित्य अपमार्थ, प्रचीय प्रचित्य रेप

अ कोरोँ उत्य क्षयं, उत्ताय । जुनिक न चंपे, सी उत्य तृसी जग वधे एवं। उत्ताय । जी इत्यस्य विकल्पे उत्ताय प्रकीय इति । अनिकः किं, न क्रता अक्रता। से किं, सर्पादे कला इत्यादी न यप्।

[†] प्र-नम्, क्वाची यपि भनेन मलीपे, स्वस्य तन् प्रणत्य, पत्ते प्रणस्य, (५४८) णत्यं। एथं भागत्य भागस्य भ्रथादि । प्रश्नस्य इति सेमलात् न मलीपः, एवं विकस्य भाचस्य भ्रत्यादि । निर्जित्य भाइत्य विश्वत्य स्वादी भागमिविधेवंशवस्वात् भादी स्वस्य तन्, स्तरां (५८०) घीँऽजय्यरे इति न दीर्घावकाशः । पाणिनिः ६।४।६८।

[‡] लघीरव्यविद्यातस्य तस्य जेरसभावात् इस्व्यवधाने इत्यदेः। विन्गिषा इति क्रान्तात् क्वाचीयपि, भनेन केः स्थाने भय, विगणव्य, एवं विषटव्य इत्यादि। सं-प्र-धारि इति क्रान्तात् यपि, धा इति तुर्व्वचरपूर्व्वतात् केरयाभावे, जेलेंग्रे संप्रधार्यं, एवं विभाव्य विनाश्य इत्यादि। पाणिनिः ६।॥५६।

[§] प्र-मापि-यप्,पापया प्राप्त इति, गुरुपूर्व्यतादप्राप्ती, विभाषा। पाणिनिः ६। ৪। ५०। পুपनवीय इषं भ्याधिकार निश्चयं। भपनित्य इति से स्थाने नि भादिशे, सन्स

११८८१ । न वे-ज्या-व्यो जि:।

(म ।११, वे-ज्या-व्य: ६१, जि: ११)।

एषां जिनेस्यात्यपि। प्रवाय प्रज्याय प्रव्याय । 🕸

११८२ । सं-परि-व्यो वा । (मं-परि-व्यः ६), वा १९)। श्राभ्यां व्येजो जिर्वास्थात् यपि। संवीय संव्याय, परिवीयः परिव्याय। 🕆

११८३। चणम् वाभीच्णित्र पूर्वकाले। . (चणम् ११), वा ११। बामीच्या ०, पूर्वकाले श्राम

धोः पूर्वेकाले चणम् स्थादा पीनः पुन्धे। स्मृत्वा स्मृत्वा नमसि, स्मारं स्मारं नमसि। #

तन्; पर्च (६०८) ण्चोऽशिया इति अपमाय । दिधाती: ची इति दीर्घानादेशी भचीय, पर्चस्वस्य तनि भवित्य । पाणिनिः ६।४।४.०० ।

७ वे जे म्यृती, ज्यागि जरायां, उर्वजे इती, एषां (६६१) ग्र**क्स्यपायोगिति** प्राप्तीनिनंस्थान् यपि । पाणिनिः ६।२।४१-४३।

⁺ सं-परि-पूर्वस्य व्ये जैशतो देश्यस्य जिवां स्थान यपि। संबीय परिवीय सभयव जीकते, (१०३६) जिवें।ऽन्य इति दीघे:। पाणिनि:६।२।४४।

[‡] भभी प्लां सुद्र्यं-सव्ययं, तस्य भाव. भाकी च्लां तिस्त्रन्। ज्ञापि किय्यारेक कभू किले सती ति बीध्यं। स्मृता समृता नमिस, पने सारं सारं नमिस। स्मृत्याम, च दत् अव्ययं ण दत् (५००) वृद्धिः, जम् द्रत्यस्य स्थितिः। भाकी च्लाग्यें दिलं सक्तव्य (पा. ८।१।४)। किच्दाभी च्लाभिकेऽपि चणम् भवति यथाः चौर दति कत्नः दर्ति चौरद्वारमाको भति (पा. ३।४।२५), स्वाद्वारं भृद्त्ते (पा ३।४।२६), सृलक्षी पदंश भुद्धक्ते (पा. ३।४।२०); यथा कारं, तथा कारं (पा. ३।४।२०); यथा कारं, तथा कारं (पा. ३।४।२८)। क्वाच्य भवा मन्स्यायं भोजो भवति यथा, सम्भावातं हित् जीवया द्रं रिक्साति (पा. ३।४।३६), चूर्वपेषं पिनिष्ट (पा. ३।४।३५), विद्युत्पृत्याभं नम्स्रित (पा. ३।४।४५) द्रत्याति (पा. ३।४।३५) द्रत्याति (पा. ३।४।४५) द्रत्याति (पा. ३।४।३५)

क्कतो ये यत्र विश्वितास्तत्र नूनं भवन्ति ते। कादोः कभाव दृत्युक्ते-रन्यत्रापि प्रयोगतः॥ तथात्र । कत्तदितसमासाना-मभिधानं नियामकम्। स्वणस्वनभिज्ञानां तदभिज्ञानस्वकम्॥ *

११८४। बद्धलं ब्रह्मिण । ' (बहुलं १।, ब्रह्मिण ७।)।

यदिदं लीकिकप्रयोगव्युत्पत्तये लचणमुक्तं तत् वैदिकप्रयोग-व्युत्पत्ती बहुलं ज्ञेयं। क्वचित् विहितं न स्थात् (१), क्वचित् निषिंदं स्थात् (२), क्वचित् वा स्थात्, क्वचित् ततोऽन्यद्पि स्थादित्यर्थः। यथा,—पूर्वेभिः (१), ब्राह्मणाम् (२), द्रत्यादी वेदसिद्धेः। 'भ 'ब्रह्म' प्रव्होऽत्र मङ्गलार्थः।

इति इणुादि पाद:।

क्षदन्ताध्यायः।

, समाप्तम्।

[#] क्रद्रली करणं समाप्य गण्यक्षत् न्यूनता-पिरहारार्थमा ह — क्रती ये इति । ये क्रतः यत्र विष्येषु विहिताः, ते तत्र तेष्ययेषु नृतं निश्चितं भवितः । प्रयोगतः महाकिष्मियोगानुसारेण भन्यवापि स्पुः । तत्र हेत्साहं (८६५) क्रहीः कभवि इत्युक्तिरिति । तथाव, प्राश्चः इति ग्रेषः । क्रतां तिह्रितानां समासानाश्च, भिधानं प्राणीनः प्रम्हतोष- एव निगमकं, यश्चित्रये यश्चिन् लिक्ने च यत्र भवित तिव्रयमकारकं । व्याकरण्यव्यानु भन्भिक्षानां प्रसिद्धप्रमाणसनानंतां तद्भिकातस्य स्वकं प्रकाशकिस्त्यंः ।

⁺ ब्रह्माण वेदे, बहुलं — बहुव: (प्रकाराः) मन्यस्य. चूडादिलात (४४६) ल:. चयवा बहुन् प्रकारान् लाति स्टह्मातीति वहुलं, भादमालात् (८६०) ज:। सामान्यलात् नृपंस्कं। एतत् व्याकाणं ली किकप्रयोग-साधनाय, वैदिकप्रयोग-साधनायेन् प्रकारा-नरमिष स्यादिलयः, तथा हि किचिदिलादि। पूर्वेभिरित्यन, भिसः स्थानं ऐस् (१०६) विहित्तमिष न नातं। ब्राह्मणास इत्यन, सम्यानं विस्तः (१०२) विहितोऽपि निविज्कति। वेदिसबेदिति हेती पद्मती। पाणिनिः २।४।३६, ७३, ७६; ३।२।८८; ५।२।६२२, ६।१।३४; ९।२।८८; ६।१।३४; ९।२।८८; ९।३।८८; १।४।०८।

परिशिष्ट-पचम्।

लिङ्गानुशासनम्।

(११४०) स्वीकः स्वीलिङ्गस्चनामवलस्वा अत्र प्रचलितानां कतिषय-कृत्ति द्वित-

समास-प्रत्ययान्तानामेव लिङ्गनिर्देश: कियते।

• (८६७ स्वस्य टीका द्रष्ट्या।)

क्षदन्त-पुंलिङ्गाः---

(११३४) घञताः *, (११३४) भलताः *, (११४४) नङ्नाः †, (११४५-११४६) कि-प्रत्ययानाः ‡, (१९१३) ६-प्रत्ययानाः §, (११४२) भ्रयु-प्रत्य-यानाः, (१०००-१००१) य-प्रत्य-यानाः।

त्रित-पुंलिङ्गाः—

(४७५) इ.मन्-प्रत्ययान्ताः ¶।

समास-पुंलिङ्गाः—

(३६२) रात्रानाः, (१५३) महानाः ॥, (३५४) महानाः।

- अ घञनाः भलनाय भावार्थे एव पुं-लिङ्काः,श्रन्यार्थे तु विशेष्यलिङ्का भिष भवन्ति। भलन्तेषु---भर्य वर्षे पटं सुखं नपुंसलम् ।
 - † याज्ञा—स्त्री।
 - ‡ इपुधि:--पुमान्, स्त्री च।
 - § दार (काष्ठं), सनु नपुंसक्म्।
 - ¶ प्रेम--- नपुंचकमपि।
 - | पुरवाएं-नप्सकम्।

कदल स्त्रीलिङाः---

(११४०-११४८) कि-प्रत्ययान्ताः, (११५०)
भावविहितक्यप्पत्ययान्ताः *,(११५२)
भावविहित्व-यप्रत्ययान्ताः *, (११५२- ।
११५५) जप्रत्ययान्ताः,(११५६-११५०)
छ-प्रत्ययान्ताः, (११४१) णन्-प्रत्ययान्ताः, (११५०) जन-प्रत्ययान्ताः ‡,
(११५८) णि-प्रत्ययान्ताः, (११६०)
जन-प्रत्ययान्ताः ।

त्रश्वित-स्त्रीलिङ्गा;---

(४३८) तःप्रत्ययान्ताः, (१४८) स्वीकाः कतिपये — (तज्ञितः नप्यंसकः लिङ्गाः द्रष्टव्याः) ।

समास-स्तीलिङ्गाः—

(३८६) अप्रत्ययान-धुर्मव्यानाः।

- (१-१-१-८०) सुवीक्त क्यवन्ताः प्रायेण क्रम्यविदिताः कर्मृतिहिता वा दृष्यन्ते, भावविदितान्तुनप्ंस्तिलिङ्गः।
- † (८६९-८६८,८९६-८८०) स्पीत-यान्ताः प्रायेण कारक-विक्तिः, भाव-विक्तिससु नपुंसकलिङाः।
- ‡ (११६२-११६२) कुर्माविहितान-प्रत्ययात्तासुविभेष्य-खिङ्गाः।

कदन्तः नपुंसक लिङ्गाः —

(११६४-११३६) भनट्-प्रत्ययान्ता: *, (११३३) इच-प्रत्ययान्ता:, (१६५०) भावविद्यान-क्रप्रत्ययान्ता:।

तिहत नपुंसकलिकाः—

(४३३) भावार्थ-समूहार्थ-प्रस्ययान्ताः †, (४३८) स्त्र-प्रस्ययान्ताः,(४६०-४६१)

* भावविद्विता एव बीध्याः। कारक-विद्वितालु प्रायेण विश्रेष्यलिङाः। + (४४९) जनता, बस्ता. खिल्मी, इलिनी, गोवा, रष्यक्या-स्प्रोलिङाः। बात्यसु पुंलिङः। तसट्-भयट्-प्रत्यान्ताः *, (४८२) तेज-काकान्ताः, (४८२) माकट-माकिन-प्रथयानाः।

• समास-नपुंसकिकिङ्गाः— (१२२) समाहार-इन्दनिषताः, (१२२)

समाहार-दिगुनिधन्नाः +, (३२२) प्रव्ययोभावनिधन्नाः, (३८५) प्रव्य-यान-पुर्व्यन्ताः।

 स्त्री विका घिष भवित ।
 १ (१६८) घकाराल-भिन्नाः, पात्रा-दौर्नित नपुंचकानि एव । (१००,१००) स्वधीनु स्त्री विका नपुंचक विकाय ।

चगादय:।

(१००१०) स्कीक्त-मङ्गतमाशिष्य कतिपये प्रचलिताः

उषादि-प्रवयानाः निष्यने ।

Ţ

भव्य — क्र-क्ररक्षः, तृ-तरक्षः, स्ट-स्टणः, लृ-लवकः, स्ट-सारकः। भटन्—कन्क-कद्षटः, क्रप-कपटः, क-करटः, कर्ब-कर्षटः, क्रप-कपटः, सक्-सर्वेटः, श्रक भक्तटः, स्ट-सरटः। भठ-क्रस-कर्नटः, श्र-वरस्थः। भत्--क्रस-कर्नटः, ह-वरस्थः। भत्--यस-प्रत्, स्ट-सहत्, हड-हहत्। भत्--वस-वस्तिः, इन-भहत्, हड-हहत्। भत्--वस-वस्तिः, इन-भहत्, हड-हहत्। भत्--वस-वस्तिः, इन-भहत्, हड-हहत्।

बज्ञ बज्जभः, इष-त्रषभः, मू-शरभः, माल-मालभः।

चन—चव-चवनः, वर्द-कर्दनः, वल-कलनः, चर-चरनः, प्रव-प्रथमः। । चन्वच् — कड्-कड्मः, कद-कदस्वः, स्था-

षयु, षयू—सः-सर्यः, सर्यः ।

भरन् — म्ह-भररं, तुःचवरः, चम-चमरः, मन-जढरं, मर्ज-जर्जरः, भर्भः-भर्भरः, दिव-देवरः, सम्भनरः, वस-जि-वासरः।

वर---ऋ-वरतः ।

मल---तृ-तरकः, मन्ग-मङ्गलं, छ सरलः। मल---मन्त्र-मञ्जलः।

षानक--स्था-लवक:।

चसच्--चम-चमसः, तम-तमसं, नभ-नभसं, पन-पनसः, यु-यवसः, रभ-रभसः, वि-वेतसः।

ग्रा

षा — नि कष-निकषा, सस्-इ-समया ।

षाक — तड़-तड़ाकः, तड़ागः, पत-पताका,

पा-पिनाकः, वल-वलाका, यल-यलाका।

षानक — भी-भयानकः।

षानुक् — क्रय-क्रथानुः।

षान्य — वद-वदानः।

षार — षडु-षड्वारः, कड़-कड़ारः धः
भङ्कारः, मन्द-मन्दारः, सन्-मार्जारः।

षास्र — पत-पानालं, चन्ड-चख्डालः।

इन्-पण-विश्वन्। इतन्--दड-रोडित:, इ-डरिव:। इत्--तड्-तड्नि, युप-योवित, छ-सरित, इ-डरित्।

£

र्ष्ट्र— भव-भवीः, तन्त-तन्तीः, तृ-तरौः,

शःच-लच्चीः, वात-प्र-मा-वात्रप्रमीः।
देवन्-भन-भूनीकः, भन-भ्रतीकः, इव प्रयोका।
देवि—-स-मरीचिः, वे-वीविः।
देरन्-कट-भटीरः, कृ-करीरः, पट-पटीरं, मृ-भरीरं, भीट भीटीरः।
देवन्-भन्व-भन्नरीवं, कृ-करीवं, पृ-पटीरं, मृ-भरीरं, भीट भीटीरः।

ਰ 🔸

उ--- भग-भग: जन्द-इ-दुः, इष-इवः;,
कट-कट्टः, स्तन्द-कन्दुः, गइ.गड्टः,
घर-चक्टः, जन-जतुः, जन-जतु, जनदत्तः,तन-ततुः,तृ-तकः, त्सर-त्यकः,
धन-धनः, नि-भन्च न्यदः, पट-पट्टः,
फल-फल्यः वस-यन्यः, ध-भकः, मनसधु,मन-मनुः, स-मकः, ६स्त्र-मद्गः,
स्त-रख्यः, वट-वटः, वस-वन्यः,
वस-वसः, विट-विन्दः, ष्ट-शकः,
शी-श्रियः, स्तन्द सिसु, धन-हतः।
उष्-भश्-भाग्न, क-काकः, या-वायः,
स्वर-सादः।

डत-ग्ट-गवत्, स-सवत्।

ভন, ভনি, ভনা, ভনি—ম্ৰা-ম্রুন: धकुनि:, शकुन्त:, शकुन्ति:। **७**नन्—चः घरष:, घर्ज-घर्जुन:, ःक्रृ-करणः, तृ तरणः, हृ-जि-दारणः, पिश्व-पिश्वनः, मिथ-मिथुनं, व्-वक्षः। **७** मक् — कुस-कुसुमम्। उम्मक् — कुस-कुस्मम्। **उर--- मन्क- म**डुर:, कर्ब-कर्बुर:, चत-चतुरः, दृ-दर्हरः, बस्य-बस्युरः, सन्ध-मधुरा, मद-मदगुरः, मन्द-मन्द्रा, मन्क-सुकुर:, श्राग्र-श्रग्र-श्रग्रर:। **एख---**न्घट-चटुनः, तन्ड-तखुनः । **७ लि--- भन्ग-भन्र** ल: । **उग--- घन्क- घडुगः**। चषन्—कल-कलुषं, नइ-नह्षः, परुषः ।

ব্য

क-चम-चम्;, जन-जन्ः, तन-तन्ः,
दिद्रा-दर्द्रः, बस्य-वध्ः, वद्य-वधःः।
कक-वल-दिल्कः, भद्य-भद्यकः, मन्दसन्द्रकः, श्रम-श्रम्बुकः, बस्य-वस्युकं।
कव-मय-मयुद्धः।
कय-ग्य-गिध्मः।
कर-कप-कर्ष्दं, खन-खर्ज्युरः, सि मयूरः,
स्पद-धिन्द्रं।
कव-जन्य-वाङ्कः।
कवन्-गङ्गः, पीय-पीयूबं, सस्जमञ्जूषा।

Æ

च्यः—दिव-देवा, न-मन्द-नन्(ना)न्दा, सञ्चेस्था-सर्व्यक्षा, सुः कस स्वसा। चरन्—-मनः भक्तन्। T

एन — क्र. करेणुः । एन्य — इ.वरेण्यः । एश्क् — क्षठ-क्षठेरः । फ्री

भोरन्— कड़ कडोरः, किम् सृकिशोरः, चक्त-चकोरः । भोल — कप-कपोलः, पट-पटीलः ।

क — वाल-कल्का, कै काकः, निःसद-निष्तः, रा-राका, वल-वर्ष्कं, ग्रल-ऋल्कं। काक - उप उल्का, सुष सुकाः, ग्रभ ग्रकः। कन्— इ.एक:,भीभेक:। कण---चित-चिक्कणः। कातु — क्तः कातुः । क्षन --- कृ-किर्णः, एष धिषणः। वनम्--वश-उशनाः। कनिन्—तच-तचा, यु-युवा, राज-राजा । कर्यन्— इ-हिरएःं। क्तपन् — उत्त-उत्तपं, विट-विटपः, क्रण-कयन् --- तन-तनयः, भल-मलयः, वल-वलगं, इ-इदयं। करन्—पुष-पुष्करं, गृ-शकरा। कल--कम-कम्बज, कु,कम-कोमलः, चुप-चपलः, इतीइरग्लः, पल-पललं, सुष-सुषलं, लन्ग-लाङ्गलं,वल-वल्कलं, व्रष-वृत्रलः, शक-शकलः, श्रप-श्रवलः। कालन् --- कप-कपालः, कुल-कुलालः, तस-तमालः, पन्च-पञ्चालः, पल-पलालः, पौय पियाल:, सण-सणाल:, विष्-विड़ाल:, विश-विश्वाल:। क्तिनन्—सृष-सृषिकः, व्रय-वृश्विकः। कित -- वच- उचित: ।

बिन्द - पुल-पुलिन्दः । किर—मन-पनिरं, इष-इषिरः, खद-खदिर:, खिद-खिदिर:, क्रिद-क्रिदिर: तिम-तिमिरं, बन्ध-बिदः, भिदिरं, मद-मदिरा, मन्द-मन्दिरं, मिइ-मिदिर:, सुद-सुदिर:, वच-कचिर:, कथ-किथरं, भी भिविरं, भम-मिभिरः, ग्रंब-ग्रंबिरः, स्था-स्थविरः, स्था-स्थिरः, स्प्राय-स्पिरः। किष्यन्-सूज-सुजिष्यः। कौटन्---क्-किरीटं, क्रप-क्रपीटं। कु—श्रम-श्रम्ः, कर्णु-उरः,जरः, सॄत्र-ऋजु:, क्त-कुरु:,खन-खरु:,गृ-गुरु:,ट्रश-पश्च:, पन्भ-पांगः, पृ-पुरुः, प्रथ-पृथः, बन्ह-बह्:, भ्रम्ज-स्गु:, सद-सदु:, रन्घ रघु:, लन्घ लघु:, व्यथ-विधु:। कुषम्—पुर्∙पुरुषः । क्—भन्दभन्दू, जन,जन-जम्बू, दिधि-सी (६ धिष्रं, हम-हन्म: । न्न-चि-चित्रं, मिद-मित्रं। काग्र-काष्ठं, कथन्---षव-भ-षवस्यः, कुष-कुषं, रम-रथः। क्थिन्— यस- घस्यि, सन् जन्सक्यि । क्र — त ६ - त र्ष । भासन् --- क्ट-क्झलं । कर्ग्--क-कररः । कि-भू-भूरिः, सू-सूरिः। म् -- ब-बबः। क्कन्-लिइ-लिहा, विश्वःविश्वं। क्सि--- कुष-कुचि:। क्मु---इष इचुः। क्स - क्रत-क्रतसं, तिन-तीच्याः, श्लिष-श्लच्याः ख---सुइ-सूर्वः, श्रम-श्रञ्जः, श्रो-शिखा।

ग

गक् — की-कागः, पूप्पः, ध्रधः, सुद-सुद्गः, भूप्यः, सिट-पिड्गः। गन्—खड-खद्गः, गम-गद्गा, गृगर्गः।

च

चट—सिव मूची।

অ

जुष्— किं-मृ किशादः, , कक वर्ष कक्ष-वाकः, घट घाट, घर घार, करा-इ-अरायुः, जम-जातः, तृ-तालु, दृ-दाद, सन-सातः।

ट

टिषच्—श्रम-श्रामिषं, किल-किल्लिषं, मह-महिष:।

T

ठ -- क च-व खः ।

ਢ

ड— भन-भण्डं, प्लय-काष्टं, स्तन-खण्डं, गन-गण्डः, दस-दण्डः, पणपण्डः, सन-मण्डः, रस-रण्डा, स्पेन-पण्डः ।

डड — तन-तितडः ।

डक् — गु-गुउ: ।

डति-पा-पति:।

डवत् -- भा-भवान् ।

डिम्—कै-किम्। ड्त— भत्-भू-भङ्गतं।

डुम्म्--पा पुमान् ।

ब्-भग-मृ:।

ड़—भी-गा∣

डै--रा-रा:।

डेस--- उद वि उत्तै: , नि-वि नीचै: ।

डो — गम-गी:, युत-यी: । डोस् — दम-दी: । डौ-- ग्ले-ग्ली:, तुद-गी: । डुट् – इये-ग्ली । डुट् — तृ-त्रय: ।

ढ

ड --- सन - षग्छः ।

ण् विवन्-चर-चारित्रं।

षु—षज-वेषः, स्था-स्थापः। स्थ—ध्य-धिषाः।

77

तकन्— भैध-भएका। • तकक्— इच-इएका।

तन् चम-चनः, इ.एतः, गृ-गर्तः, त्स-नूसं, दस-दनः, धर्व-धूर्तः, पूपीतः, स्टनर्भः, इस-इसः।

त्तनम्-पत्त-पत्तनं, चन-वेतनं ।

ति--- चगः चगितः, ग्नः भवं गभितः, पद-पत्तिः, वस-वितः, वि-तस-वितत्तिः, मानः मानिः, सु-चस-खित।

तिका-− ज्ञान-कृत्तिका, इत-वित्तिका।

तुक् — स्ट-स्टतुः ।

तुष्--वस-वासुः।

सुन् — घव-कीतः, थाब-कीतः, तुप्र-कीष्टा, लन-जन्तः, जै जातः, तन-तनः, धा-धातः, सन-मन्तः, सध-मस्तु या-यातः, वस-वस्तु, ग्रथ-प्रज्ञः, सि-सितः, हि-हेतः।

छच्— जाया-मा-जामाता, दुइ-दुहिता, पापिता, भाज-भाता, मान-माता। लुक — स-स्लु:।

त्युक् — ६-५ वुः । विष्— भद-भितः, सु-स्रविः । घ

यक् — मच चक्यं उदगै उदगै वं, गृ गृथं, कृ-तीयं:, तुदतुस्यं, निशी-" निशीय:, प्रवप्षः, युयूयं, रिच-रिक्यं,सिच-सिक्यं।

षष-स्टन्धर्थः।

थन्— ऋ पर्यः, उप-घोष्ठः, जुष-कोष्ठः, गैनाथा, पुन्नोषः, ग्रन्थोषः।

द

ह— भव-भव्द', कम कम्दं, कुकुन्दं, बृष-वृन्दं, भीःभाटः ।

ধ

धक्—मी∗मीध ।

न

न—च्ट-चर्णः, क्ष,कृकर्णः, टुट्रीणः, धा-धानः, रमञिरबं, मृस्ना,सि-सेना,स्थास्युणा।

नक्— इ.इन:, छव छषाः, क्राव कषाः, नि जिन , द्वय द्वाः, स्काय-फेनः, दस्य-बुधः, न्नाः, मी भीनः, वी-वीषाः, सि सिनः।

नण्---रस-रास्ना, सस-सास्ना।

नि-चन, चन्त-चन्निः, द्रःद्रीणिः, स्म-पृत्रिः,युःयीनिः, वह-विक्तः, स्रि संणिः।

निक्-वृष वृषाः, स्टस्पः।

तु ---- इतः जङ्गः, धि-धेनः, भा-भातः। नुक्कु --- विष विष्णुः, मू-सूनुः।

प

पाय-- क कपांस:।

फ

पान्-गल-गल्फ:।

भ

म

स— चन-घोन, वि-चेनं, 'यस-यानः, छ-घर्षः, डा-जिक्कः, छ-धर्मः, नी-नेनः, पद-पद्मं, भा-भानः, या-यानः, वा-वानः, स्-सोनः, इ-डोनः । सक — इनध-दर्भः केन्द्र-नेन्सं का स्टूसः

मम् – इन्ध-६थां, ईर-ईसीं, चुलुमा, यम-यीमाः, तिज-तिस्माः, घृ-धूमः, भी-भीमः, भीषाः, युज-युक्यं, दच-दक्तं: स्वै-स्वामः ।

सद— चस- चप्तं, युष-लं, ग्रष-सुभं। सि — चर-जिभां, नी-नेभिः, घश-रक्षिः। सिक् — भू-भूभिः। सुक्र — चष-चळ्यकं।

ग

य — जन-जन्या, की-काया, जन-जाया, जन्मं, पूपक्यं, मा-माया, सस-सस्यं। यु — जन-जन्यः, दस-दस्यः, मन-मन्यः।

Ŧ

र— चस-षसः, षस-त्रक्षं, षर्द-पार्दः. इन्द-इन्द्रः, तस-तासं, दस-दक्षौ भी-भेक्षः, सद-सदः, सन्द-सन्द्रः, वज-वजं, वप-वप्रः, विष्रः, षज-वीरं, शक-यकः, स्काय-स्कारः।

रक् — चञ्चः चर्यं, इ.इरा, उच-उयः, सक् — च्छ्य-च्छः, वर्यः चरक् — कृ क्रसरः, घू कृरः, विष-विषः, जुद-चुद्रः, चुरः चुरः, खुर-खुरः, ग्रथः ग्रथः, चन् — स्व-म्चः। चन्द्रः, विःचौरं, क्टिक्टं, तकः स्वन् — सद-मृत्यः।

तकं, दन्भ-दसः, दुर्इ-टूरं, नी-नीरं, भन्द भद्रः, सुदःसुद्रा, दद-जि-कदः, वन्क-वकः,, इत-वृतः, ग्रच-ग्रकः, ग्रदः, ग्रभ-ग्रभः, वित-वित्रं, सि-सीरः, सु-सुरः, मू-सुरः। रि—ग्रन्ध-पद्गः, श्रद-पद्गः, भी-भेरिः। द—ग्रस-पद्गः, जन-जन्न, सि-सेदः।

ल

लक्— भी भीलं, ग्रुच ग्रक्ते:। व

व— भग-भन्नः, खट-खट्टा, कण-कलः, ग गोवा, नी-निन्नः, प्र-इंग्रहः, वीध्विन्नं, शौ-शिवः, इस-इस्तः। वल — इल-इल्लंः, पल-पल्ललः। वलञ्, वालञ्— शौ-शैवलं, शैवालं। वालन्— चत-चलालः। वि— ट-ट्विः।

Ħ

ग्रन, यन् स्पृश्-पर्शः, पार्थः।

Γ

विवन — प्रथ पृथिवी ।

हन् — उप-उट्टः, वृध-वड्डे, ग्रस-ग्रस्तं,।

प्रत् — गाइ-गाइनं, चत-घत्वनं, दिभीवनं, तृतीवनः, धा-धीवनः, ग्रेपीवनः, ह-वन्नेनः, ग्रु-ग्रन्नेनी।

स

स — छन्द-उत्सः, कम-कंसः, कब-कचः,

मन-मास्, वद-वत्सः, इन-इंसः।

सक् — ऋष-ऋषः, त्रय-वचः, खु खुषा।

सरक् — कृ-कसरः, भू-घूसरः।

सरक् — मर-मत्सरः, वस-वत्सरः।

सन् — स्व-मृष्यः।

स्व — नद-मृष्यः।

सूचीपचाणि।

सूचसूची ।

स्वादः ।

सुवादुः ।

শ্ব

ं चाइ उच्च ख क़ा, ए भी ङ,-चं प: नुवी १८ मच्योऽचन्थि ३८३ चगेर्का ६८४ चध्यच्ताचीप पि≀ १०० भाव भारालेज् तिः चचीऽस्नोपीर्घय २२४ षदात् ८०४, ८८० श्रतोऽडव्।: ६८ चलबीडवी: सी वीडवी १८५ **प्रदस: सेरी:' २**३४ चाधिकेश धर्मीपाधिश्यां **३**१० ^६ मधे: मनी दिव्य चन: ३८१ चन ब्यत्रोऽणाची विघ्योः १८१ भनडुक्कृतवाद्वादिः १०२८ भगाद: १८० चानुस सिद्देरसुव: ५६३ भनीरहात् ८०१ चन्त्रः सेरिम् पे ७६२ षमीऽदृ है: (८७ षत्वात्रादिष्टि: ८२ भन्यारभ्यार्थारात्वहिर्दिनर्ते- ३०० भनीयायज्ञानवं ८४३ च्यपयनीनित्यं २४५ પ્રમોમગી પધી મ્યોડને લુવ

षस्यवाहा १०५७

षसुद्राक्षसुसुयक्ष् षद्द्राङ्- १०४४

षयां योल्वा ३७

षर्व्वणीऽनञसुङ्खेऽसी तु १८५

षवाद्गिर: ८०४

षर्म् प्रजाया: ३४२

षक्षांऽक्षोऽनोने ४३२

ग्रा

भाभसभाः १४६ भातिःसभवि १०⊂ था-गमे: चान्ती ८६४ षाङोऽस्घमोः १०८१ चाङी भाइगमे प्टर षातीऽनाऽदरिद्र: ११६२ षातीऽनः यद्गेः ११५० चौताङ्गढा-दढा**चा-इन**यम: ८७८ भात् सुमाम: '११३ चा-वाञोऽखप्रसारे ५५३ पादिगेचीर्षत्री २३ चादित: १०७२ भादिन: ५२७ चादीपी: २४४ षादृटी त्रि: १०४१ भावीव्भसात् सेलें।प: १४८ चावत्स्त्रर्घस् ५ भागिषि १००६

सुचाइ:।

सुत्राष्ट्रः ।

₹

ŝ

र्दूप् चाम्बस्थात् २५३ र्दूषत्-दु:भी: खल्भावे ढे ११६१

उ

चचरः सटात् ८०६

चन्न् गपान्तित्व त त ४३

चनाऽगुङ्र रञ्चादे नृपाणि- २००

चदः सः स्थालकोः २४०

चदीऽनृद्धे प००

चप-यमी विवाहे ८०८

चपात् सुतौ ८०८ र

चस्चीयणसाचि लोपः ६१०

चक्रसङः २४०

জ

कश्चेष्ठीवं पदशीवं धेस्वनडुद्दी- ३२४ ऋट

स्रक्यक् ४५
स्टचः ३८०
स्टच्डी ग्रष्ठां ७५२
स्टच्च प्रवसन क्यार क्यातर दश- ३०
स्टती उत्ता तत्पुचे सगीचविर्य चे ३२१
स्टती उत्ती डुः १४१
स्टिहः शयक्-टीपे ६२०
स्टिहो ये ४३४

秜

चरतौं गः: क्लित्-च्यां €र६ चर्टिरगावुलें। छात् ६२८

Œ

एकोऽत: ३८
एक्टाञ्चानि ११८
एको युव्सं १७३
एकोऽशिखा: ६०८
एरी व्ये २३६
एवेऽनियोगे २०

प्रो.

र्घोनसः शिवाध १ भीदौतोऽज्वत् तक्षदय-काद्याः ४९ भोदौदौ १४५ भोर्शोपोऽकटुपास्कृदिये ४२०

क

क \times पीn मून्यी कखपमयोर्भ्यो ६८ कति यति तबि यावनाबदेतावत्-करकावीचाग्न्युखे ४१२ कत्क्षच् चिरधवदे ४० प कायमाखी चंवा ८४१ कदाकर्हिंभ्यांवा ८३६ कभावेऽमी ११३५ कम ऋती गुपूधूपपणपनी- ५८१ कम्पात्रार्थेङबुधयुधपृदुस्रजननशो- ८६१ क्यं क्रियाविशेषणाभिनिविशाधिशौड-१८१ कल्याची सुभगा दुर्भगा बन्धकी-कव्याद्यनेकाचीऽस्यादहन्- १३६ कांस्कान् वृं:पिवा ५६ काचे ४०६ काष्यनाभीरकेऽदिद्यंत्त्- २५४

सवादः । कासुकमण्डायंक्तीन ३०६ कामांक्रंऽकदिति ८५२ कात्मग्रीयच्योः सम्पद्मकादी-कालभाउडेवा २८० काल भावाधारं उदं प्री कि कि लास्यर्थाभ्यांती १४४ ्किंग्रच देकोन्यात दिवह्न गामेक - ५१० कित ठी डीपं ५३३ कित्तिजगुप: सर्ज्ञम् मान श्रामः किम: कालात विचनी प्रद किंस: चेपे ४०५ किनव्ययत्त्दी हिंदं प्रश्र किमेव्याचाद्रव्ये चतरां घर्तमा ४६५ कि भि: स्त्रीयी ८४२ किभिलिपायां ८३० किटें।ऽलगें: ११४५ की खोगी घीटी ठी डो डी- ५,२८ की-प-स-वत् भ्रत्भावी ११०० कौर्म: कृत: , ७०४ ११५१ कुर्त्वासीदराइ सुः खिः १०१३ कुद्धादेगांयन्यो ऽस्त्रीव्वे ऽपत्वे ४२७ कुटांण्बीच्यिति ०५५ कुत: का कुछ कुचेती इती इच्छेड- ४,२४ कुमादेरीयि ३४८ क्षदबलीयी तथे ०६५ कुषि-रन्त्र: म्यन्-पेवारे ८९८ बूखाइद्रुज़ 🕏 : क्रजी द**वी रे** क्रजी: क-भावे क्रपः क्रुपी उक्रपादी (४८. क्रविधिव्यी: क्रथी ह्यी 👓 🖰

ज वष स**ण गृह दृह भन्स** संघ- ६८३ क्षपस्त्रसम्बद्धपद्धपः सिच्यां वा ६०३ क्गजानुः किः ११३१ क्गृजापीनुङः को —दुष्ठी- ८८६ कराज्यास्त्राह्यादेनि: ११४८ कंडक:स्वी इंतुवा ४३० कोङादि: पंवत् यजातीय- ३५० कोरीषटधें ४११ को सर्वा ८२५ कौटवामात् तत्ताः ३५६ क्त-क़्तवतू भूते उभावे वे १०५० कादल्पे १६० ति: स्विधे ११४० र्तनाटि ३१२ क्तीर्ज्ज्येष ११८ क्यनाम्बीदली १४ क्वाचवानिष्धेऽश्ले-खल्ना ११६५ काद्यची चानास्यपत्यकास्य क्योऽभव्याद् यस ६४३ क्रम: पेऽपि र्घ: भूर५ क्रम क्रम भ्रम भारा भारा चरा- ५८४ क्रम गम खन सन कनी विट् १०५० क्रमी घीं वा ११०३ क्रीजीडोऽना विस्कृर- ७८३ क्रम् को भिय: ११२० क्षीऽपाद्धर्षात्रवासेच्छे- ८६७ को छो सबस्टबधी घो स्त्रियाच १३८ क्तीबात् स्यमीऽधिर्भाडितः १६० क्रीवाद यी: १४१ क्तीवादा १८३ क्रीवेनी लुब्बाधी २४२ क्षद्रवानीकदिवषुष्वेक्रमः १३

स्वादः ।

तिलात् कतीऽसात् सः घोऽदाने- १११
विप चस ग्रथ धपः कः ११०८
चप्रागोधास्यो वैरारी ४२२
चप्र वस पृजायांचागार्ध्याय- १०६६
चस्र वाद स्वास ध्वास्य भागर- १०७६
चेते याकरणा विशे ४८३
चेते याकरणा विशे ४८३
चेते शावरे वाक्षीय तुःवा १०५९
चेष्रप्यो मक्षत्र: १०६६
चर्ष्य स्वीव्रयमस्य स्थ

₹а

खनसनजनां का समी वे तु वाः ६५५ खना हिरे ये ८६८ खनी उ-करिके तबताः ११३८ खपि वा ७४ खपि वा ७४ खपि वा ७४ खपि वा १६५ खपि वा १६५ खपि वा १६५ खिल्याकार पो मन्स्रो १०१४ खें किति घं: ६०३ खें: मन्द्री, घीइंसादे चंय- ६१८ खें राज्यो लीप्योऽत्यस्- ५६४ खेंचीं दियुवर्षे ५८५ खेंचीं व्या जिल्ला प्रमूप्त खेंचीं वि क्षित प्रमूप्त खेंचीं वा क्षित स्रमूप्त खेंचीं वा क्षित स्रमूप्त खेंचीं वा क्षित स्रमूप्त खेंचीं वा क्षित स्रमूप्त स्रम

ग

गिष्ठ मिष्ठ जिला निर्म्थोऽलः ११२८ गिष्यं मन्यदे चेष्टावज्ञे उनध्याकाकः १८६ गिष्यं देशेष्टाच वस कानः १९८३ गिष्यं देशेष्टाच वस कापः ५११ गर्मे स्ट्रास्ट्रेस सुचाडः ।

गमीनिङी: ८०६ गमी≱में स दम सार्कात्तुः वाः ६२४ गगंयस्कविदादिभग्ववि- ४२८ गर्भे घोपक-पाइहारकी दे ८८१ गवाबादे: खांडले गौर्ण्यडनीयसः गास्त्रां ६८२ गीकः स सुभ सी सुवास्थाल-सुव्वां- ५०१. गीउक्तथीयोर्वा ७१२ • गीचेच्छार्थे: ८५३ गुणादिमन् भावे ४०५ गणाडे हेयम् ४६६ गुणादीबीऽखक्सीड: १६४ . गुह दुइ दिह विधा टीमदन्ये- ६५० गुहो गीक: ६५६ ग्टह्म विनीय विषुव जिल्या मूर्यं- ८६४ गेरध्वन: ३८८ गॅक्ड: खोर्च ५७० गेधीं ग्नेधिन एङ ऋको: २४ गेव्यास्थी हो दे च ८०६ गैक्यादती ऽपाचादेरीप ३६८ गीः चानटयकौ १००३ गीत्रण मेधादन्तकाएउ- ४४%(मीरतार्थे १६३ गोर्ज्वा ३८ ग्यचसावा १०८६ ग्यर्थाशंसयी: ६३६ यहस्वपप्रच्छां कि: ८०८ ग्रइस्यपाद्यो:काङित-कितीर्किः ६६१ यहेरिमी घें। ऽखां: ७०१ ग्रीरल: ८२४ म्बास्वास्थाचि पच पश्चिकः सः: ११०८

स्पादः ।

स्वाद:।

ঘ

चञलनटी ऽचे ११३४ घटादि जनी जुब क्रास रजाम- 👀 🗷 घठी-खारी वाताद विध्ववित्तानः १०१८ चनसार्वे स्वी जि: १०५५ घससद: कार: १११४ 'घस्त्रामुर्त्तडात् ८८० वसलद: सन्दाल्घिन ६०३ चान राजी सखीपय वा- ८४८ घावखसृहणीः १४३ चीटीयोषम् धीरमा ५५० चे चार्दिंडे ता: १०८२ , चिपंपरातु-क्ल-प्रत्यभ्यति-चिप- ८६० विश्रप्र ५४१ घीऽजी जी: शब्दाशनगतिश्वार्थाट- २८४ ची जें रय: ११^{०८} घो ब्रि: १२८ घ्यची-राव्यक ८७० . ध्यां ७१७ । घ्यांदीत सः ७०१ घ्यां सीर वादधी: ६८० घाषोङी ८१8 म्रीवा ७८६

क्रस्यैङोसीप: १२४ खात्रौवा २∙१ उद्यान् वार्चाग्यानुक्रानु क्षितां यम् १५१ **ज्याप्टिं** प्रश् क्रिंदिम् वीर्णी: ७२१ कंघ्योर्भ: न्२१६

चल्रतस्वारे ४८४ चत्र:क्साञ्खाञ्ऽरे- ७०६ चगैकावंक्षीवं ३२२ चजाः वागी विवयसेम् ता- ८०२ चयम् वाभी खार्रे पूर्व्यकाले ११८३ चतु:बड्-डित कतिपयात् घट् ४५५ चपोदिताकानिता र्णः े चपीऽवेजक् ५० चरट् भूतपूर्वे ४८० चरफंजीऽदुः १०८७ चर्पाली बची जी न खु: ८२६ चादिगिनिः चाय: की ८३३ विक्तिद चलस चराचर चलाचल- ८८४ चित्रे त्ययदिना ६४० चिदिकारेवा ७८७ चुर्थे। जिल्ला ७०३ चे: किलां सन्की: ७४६ चिनसिवा ८८ चैकाधुदषषी ६: ३२१ चुङ्कुङ्युङ्सग्- २११ चृत् सस्ये ४४० चि: क्रभूस्छभूततद्भावे-

कादेखनम् जीस् वै खः इहाशीर्वा १०८४ क्टिंद-भिद-विद: **क्**र: १११६ क्षोऽचः ६३ को: ग्टावणी जसकी- ८१४

मधो ऽदी यपि च १०८६

स्वादः ।

जन-खलादि गीरथ-वातात्-जनवधः सेमगी (कमवमाचमी-जयत्यो: खोर्थे ८१६ मरस जराचितु ११५ मरातीऽस्वा १६६ नराया नरस च ३०८ जस्मसी: मि: १६२ मधीधिमाधि इत्यसि- ६०० ' व्याग्य यङन्त-यज्ञ जपवद्यनम् १११७ जायो (पवनीण जिति ससुकाने- ६८८ कातमदद्दादुक्यः १५७ नातंरतो ऽस्त्री-युङःसत्नाखः- २५३ नातु-यद-यदा-यदिभि: खी ८४५ कालपिभ्यां सदा चेपे ६४० जिंवान्य: किति ६६६ निर्चे (त्य: १०३६ त्रिनंबा ८३८ कृत्रयो नृजि: ११०४ निर्गि: सन्द्यो: च्चपद्यीपामीर्थः ८१२ चानयवप्रजीभे वद: ६०० ন্মাৰাৰ্মান্ত্ৰীদাদৰ্ঘৰ- দদ্ধ ज्ञाचेंक्हार्थ जीकीलादे: सति १० थ५ चीऽचाने वे ३०३ ज्योति जैनपद राघि नाभि वर्ष्-ज्यो बहुर्ययस्त्राः ४०२ ज्वल द्वल द्वाल ग्लास्ताव**न रम**- ७८८

भएकथी: खस्कावायप्जवायने च ६४ भएनदीपीयंगास्यायदायपीगिरेव्या १८४ भभस्यपद्यंकृषां जब्बप्- ५५८ भभानस्यादिजवां भभा: पे, थीसु- १९० भस्यक्षात् भसीन देमि से सेंगः ५६२ स्वाद: ।

জ

अपे अस नी: ५१ अपीरक समीर्ण च्यक च ६ ञन जप जभ दह दनग्रभनज ८२० अमुकी भारतयौ चाति कि रं०३ व ञनेञन्वा ५८ ञि:कल्यादे: प्रपूप नि: प्रंचे ००० जिञ् जात-पिब-धे नृहद्दं वस- ११९ ञिभाजभूसइ कचचर बध- ११०६ त्रि यि सुद्रुकमो ऽङ्घिकां .≰≀३ সিন্ধী: र्ख: प: पः पः पः प्रस्थित्- ८१९ ञीन्य डिन्नैकाच: ४६० जी-वि यस्य यस्य वित्त वन्दासी- ११५¢ जेढें ऽजी घे प्रश ञे लीपोऽनाल्विणायानी- ६४१ जिंगसम्बेजुङ्गी: ५०० ञाञ्जङः खोऽनग्लोपि शास्त्रदितः ६१८

टादसथास्त्रियान्तु ना रै. इ टाभिस् के किस क्सीसा- १०६ टी ठी टी भी दिन: संमन्तु- ५५% टेरासी १८७ टे नोंपी डिति विश्वते-सेस्व को १२६ टोसीदमां इनको इन: २०५ च्या सि: ५५५१ ट्रिनोडयुभांवे ११४२

ス

ठी-प-म-वत्क्षस्कानी १०८६ स्त्रांगाञाङ्सनोस्त्रुवा ०१३ स्त्रांक्वे-प्रच्छां ६६२ स्त्रावा ६०४,७०० . सूचाइ: ।

₹

डितिसङ्गाची नम्मभीलंक् १३१ , डम्डीधीवा १८६ डाज्लीडितादेः पख ८५० डितसक्तीविमक् ११४३

ढ

हवे कात् चौत्रकण्यौनेया- ४२६ दिवे त्रायसम्बद्धकत्रत्रत्यस्य - १०५ दिवे त्रायसम्बद्धकत्रत्यस्य - १०५ दिवे त्रायसम्बद्धिक - १०५ दिवे त्रायसम्बद्धिक - १०५ दिवे त्रायसम्बद्धकर्मा दिवे व्यवस्थ - १०१ दिवे त्रायसम्बद्धकर्मा - १०१ दिवे त्रायसम्बद्धकर्मा - १९१ दिवा विष् १०१ दिवे त्रायसम्बद्धकर्मा - १९१ दिवे त्रायसम्बद्धकर्मा - १९६ व्यामित वा २६६ व्यामित ६६० द्रोदि प्रवेषा - १०९

गा

ष्यस्यसाहनो रहीप् वा तु है २६१
ष्यान्ते वा ५०८
प्यानतो डी: ६०८
पनितीऽन्याचीऽनीऽन्यसादी १०
पिने निरायच: सभग-सप्याखायीज-४१६
एक्स्यक्षां ६८८
पूर्वे क्यानिति ५४१
पूर्वे क्यानिति १२२
पूर्वे नम्हित्स १२२
पूर्वे नम्हित्स १२२
पूर्वे नम्हित्स १००
पनिनि ८०४

स्वादः ।

तः
त-तज्ञ-खादीयी कीवीः १६८
तदी दानीं वा ५१६
तदीयीगे वा ८०१
तन्थाः ग्रप्री चे ६८८
तनादेवी १७६
तपीडान यक्चरी ८८२

तप्तान्ववाद्रदसः , ३८७ तमट् षष्यादेः ४५२

तरतमी दिवह्रनामेकीत्कर्षे ४६२

त सं। म्यांऽनिर्शिस्तिती देखना वा ५०२ तच्यानीययाढ-भावे ८६७

तम् त्री: ५११ तादच्यें चतुम् ११६४ तार्थे मानात् काष्डाच्चचित्रे ३०१ तिर्थ्यगमुसुयगदसुयगुदचा तिरसा- २२५ ती-प-म-वत् स्थट-स्थमानी ११०५

तीय सम्बदीन सङ्ग्रादिगुणात्-, ५०३ तीयो ङिति ६०

तुलेच्छाराताराघाराकारा- ११५५ तुर्ज्ञोत्तातङ्वाशिषि ८५६

त्रसभी घे ८८० त्रन्थांन-लुक्याप्र-स्री ७५४

त्रन् सीप्यः ४६८ त्रप्राचीनां वा ३०४

त्व स्व क्रव वन्च लुन्वृती वा ११६६

त्रक्ष भजनपत्रथ यथ दभाय- ५७८ त्रक्ष भजनपत्रथ यथ दभाय- ५७८ त्रभ वद् जि. ४ तप्यम दन- १०२४

त खाः, बका क्रीमेष्यासकाः ६८६ तीऽन्यादेभीऽनेकतरात् १६५

त्याय विद्विणाया देखः ५२५

त्यदांटेर:क्षी १३३

मुचाङ्गः ।

लादांतदी: स: भी २१४ खदादि भवत्-समानाचीपमानात्- १०४० स्यादि-व्यासभीसितिसिसं- २०८ स्यादेश कपः ४६४ त्यादियोने कत्यदिश्वदेशीयाः स्ये ∢० स्योवनात्रीलीम्य: चवत्थाच् प्रकारे ५२३ चासुसिस्मन् कानिप्वनिप्- १०३२ विशः, प्री दी वी ची पी घो प्राः चीप्रशिर्वा ३०५ **चीसे ल**ती क्रिं २ ध वेरयङ्गामि १३२ प्राद्याऽर्घार्वैकक्षे: सेस् सर्वाः त्वती भावे ४३८

घ

यफाबुङ: ११७०

Ę

दिविणोत्तरादा ही ५२०
दम्भावद्य सहसान ५०६
दम्भावद्य सहसान ५०६
दह दोऽधः १०८०
दम्भावद्य स्थाप्त स्थाप्त

सूत्राङ्गः ।

दान्तवत.सभि ८३ दाना शान्त पूर्ण दक्त व्यष्ट व्यक्त- १०७८ दान्तं मीऽसमाजी इसे तु: ५३ दामागै इतक पिव भी स्थी- ६१२ दारुग्यङ्गले: ३३५ दायान् साहान् सीद्रान् १०११ ,दिकाभव्दात् दिग्देभकाले सात्- ५१८ दिव भौङ्सौ २३८० दिव-स-तुद-कध-क्रादि यंन्त्व- ७३८ दिवो घंवा २८० दिव्यवस्यो ऽजिगीषाजासमीं- १०५४ दिस्थोरमवा इटह ' दीङ 🛭 गांयन् येथ चौ ङा सनि- ०४३ दीधीवेळी न गः ७१४ दुग्वीर्धय १०६० दुनीभुज्यलाद्यासमसी ग्रीवा १००० दुषेरोट्टः ७८६ ह भ जुष्टम्बन् मास्टदस-वञी-् ८८१ दश भाग युध घृष सृषी ह्या ११६३ द्यीर्षु: ६१८ देथे चाच ५०० देवादे दींश्रीस्त्राच् ५१२ र्दशात् ब्रह्मण: क्स इद्वान्तुवा ३६० देशाध्वकालभावं वादै: २८२ दैकां भाऽत्वये ११० दोमोऽदसय कौ २०४ दी-बी-मा-स्वां क्षिस्वयौ १०८३ द्याङितामम् १५६ युग-खायो: खेर्जि: ,६४० यृतः कः ३३२ द्वार खर ख: खिस खाडु च डु- ४१८ दितीय हतीय तुर्यं तुरीयाः ४५०

दिवेभुद्धः ३३६

दिनेव्वायट् ४६१

दिनेव्याञ्चलेर: ३.०३

स्वादः ।

दित्राष्टाधिका दात्रयी (टा-दिवता जवादी दि: १०४ हियाद्रङ्खोपिनः १११८ दिषविदाती ऽतुम्वा ६०५

. डी बी घी णां ती हैं त्वें सी मे वां-नी-दीटीसीदैतयीरेनीऽन्तो २०६

हे पिव: पीष्यी आर्डि ७८३ द्ये: पूर्वकः खि: ५३८

द्वे: शतुर्नुगुभी १४३ बेंदें की दिगिष्ठां ६४६ '

है धंहे धाचै धंचे धाषी है कथ्यं वा ४५.६ हैवमृतपुचवन्दारखज्ञानभस्ता- २५५

हान्तर्रोथीऽवीऽनात् ३८६ ह्यो दी घी दें घे ही ७३५

' ਬ

धनोदकाण्यतः त्रवायले गंडपानात्र^६् ८४६ धर्मादन् ३४४

धाओं हि: '१०८६

धान्त्रीतात् २६€ धिक्समय।निक्षाहान्तरान्तरै⁴ र⊏६

धिटौसेः १५०

धुरीऽनचस्या: ३८८ धुड्डिश्राङ्डि ५५८

धेट हब-पा-घा-भा: म: ११८८

धेडंडनी वीशनसः २३३ भेशाच्छामात्रः से: पेलुग्वा ६१४

धे सलीपी वा ५५६

धी: केलिमी उधे रूप

भी: -- तिप्तम् अन्ति सिप्यम् थ- ५२५ धी द धीऽनलीप तिथ ०३०

स्वादः । धीरालीपीऽच्यधी १२०

धोरियुवचि १३५ धोर्मीन:फम्वि २०२

भीन्यगत्यदनार्थात् डेच १०८४

ध्वर्षासमावेषी ८६३

न किंगस्कन्दस्यन्दः ११६०

न गौर्खार्व्याच्यीसासे ८० नग्रपितिप्रियासस्यूल- १०२६

नजीऽनी वाज्भसी: ३२५

नजोऽन्याकोशेस्त्री ११६०

नजोऽहवे ४०६

नज्दु:सी: सक्यीवा ३४१

नअ्बद्दीर्माणवक-चरणे ३८१ नञ्मुत्रिव्युपाचतुरीऽ ३४५

न ग्राटनङयकन् ग्रामस् स्मासि वा ५०

नर्णान सीप्य: ७६१

नयौन् ऽयौ ७५८

न तप रुध सटपचदुइ: ८३० न दंतसी लक्ष्येंच ४३१

न द्वाङोऽचि ०३४

नन् पुंस्त्रियी: ४२६

न मेन्-सङ्गाखसनादेः २७६

नमस्तपोवरिय:साण्ड्रादिभ्य: क्य:- ८५४

न-लोप:क्यउचे ८४४

न वश: ८३२

नवग्र: पर्ने जितीऽन्य डिन्द्रां घे ५३१

न वे-क्या-स्योजि: ११८१

नग्रानीश्वाख्ये ७४२

नश्जोऽनिम: ११७१

नसम्महनी ऽधी चें ऽधी ची १६४

नदीधङ्भी २३०

नाजनादेरांदि दिः ७१८

सुवादः ।

ना जीपकीऽनाङ् नि: स्य ४० नाड़ी ग्रनी सन कर सृष्टि- १०१८ नाप सम्बार्थवदैकाजतः ५५७ नाभेनीसि ३३८ नास्त्रान्ये तिकच १००७ नास्त्रास्ययेंऽचीर्षः ४४० मारी सखी यवानी यवनानी- , २०४ नार्चीयां स्वते: सख्यादेर: 808 मावश्यको त्यज-यज-प्रवचाच ध्यवि ८०३ माविशेष्यान्यायासन्त्रात् नावीऽर्ज्ञीत् गेच ३६४ नाव्येष्ठां ६६५ नास्त्रीयुवः ८७ न।क्रीरकती ७५ निजांखेर ग्रः ०३३ निर्द्वारेऽधिकेन कियाल: ११३ निवंत्ते भावादिम: ४८**८** निर्वाण भित्तण वित्त पुद्धीत्पुद्ध- १०६५ नि विपरि खन्ज सुसुमादेः सः⁻ ६३३ निसव्यपहः प्रपः निस: श्रतो ड: ४०२ निक्रवे जः ५८€ नीन् वन्च सन्स ध्वन्स अन्य-नुष्जभीऽचि ६३५ नुखयमादी भागन्तरकादी तुवा १६३ नुसिकांऽचनानि १६८ नुष्रधीमुचां नश्मस्त्री रमलभी- ७४१ नुमामः खदापश्चार्षः नुर्व्वानामि घः न्पीऽस्यस्योक्षीपी वृति वा ६२२ वृत्कत् चृत्कृत् ढदी ऽरसी-मृत्यानरन्जः घकः १००२

समाजः ।

नेण तफी इनुतापे ८२३ नेस्तिपूजार्थाञ्चो: ५५८ निंगऽसुन्कास्ट्रास्य सी- ५५४ नेसुगुह्रग्रह: ८०७ नेस्तस्थपो ऽवस्कः ६१६ नेमेका जायहती ऽश्विशि डी- ५८० .नेम डोश्वीदिदेमी ऽपत्यनेकाज-नेस पेडाा: ६५० नेम संनिव्यई: १०७६ नैकाचो ऽव्यक्तानुकरणात् डाच्-नैकाजादिन्वा ४४४ नी ऽचीऽन्तरदुर्गे: प्राग्वसी ऽख्यास्त्र- ८६८ नी नामि घं: १८६ नोप्तामकोङ्पूरण्याख्यायुसक्त- ३१८ नोष्युको ग्रर्जातृत: ०६४ नोऽप्रमासण्डले ५५ नो खुप् फेऽधी ११८ नी ऽसङ्गादे मंट् यादि आनादगत्यर्थी- ८३२ न्याप्दीभ्यो खेराम् न्वीर्लीपीती तेऽची

प

पञ्च तिप् पञ्च ग्यन्या इय ७२३
पञ्च रः ग्रिज्ञ ५३०
पञ्चावय वर्ष्या वार्य वज्ञ ज्ञय- ६८०
पति स्टिङ्स स्टि भीडः भालः १११२
पत्नामपालकानात् २००
पत्नुस्ते १३०
पिषपुक्ते वा ४१०
पिषमण्युभुवां यितो नेनी वी १६६
पथी वा ४००

सूचाइ: ।

षच्यवपुर:से ३००५ पदभानीण में प्याय ताय दीप- ६४३ पद्मती प्रक्ती युवल नद्राक्षी खन्यं भी २०५ प•स्यः १८ पिक्रियो धेवा २८७ पर्धन्ववाङः क्रीडः ८६५ प्रधास्याभी-क्रोभट दीष्ठां ७२८ पश्चभ्यः स्थानदिषटको गोष्ठः ४८० पाच्छीणादिम्बाङ्गितीऽक्षेत्र्वा २६५ याख्दकक्षणात् भूमः: ४०० पाति स्कायी लंन् वङ्गै औं ०८० पात्पत्पौ २२०१ पाद दम ग्रंघ निशा प्रतमा ११६ पाध्य भाष्य प्रवायानाय्य कुरूपाय- १०५ पाम: क्वत्सायां ४०६ विज्ञसस्यम् ब्रुवी यङ् लुग्रुत्- ७२२ घीनुतिलीमाकर्षांदे: कुणतेल- ४८२ पुंवत स्व्यात्तपुंस्कं:स्वियां द्यमा-पंतर् स्ने: 🗣 ३२० यंवदाधीं ऋपंस्तं दायचि १७१ पुंम. सन् खर्थन्परेऽच्ये ५४ पृंसितु अस्न १०५ पुंसीऽसङ्घी २३१ पुरुषाक्षा ३७२ पुर्वीया ७३० पुत्रकासक तक चत्रयत प्रभी- ८०६ पूक्ति स वस जप व्याश्वस सियोर्जा १०६० पूक्तिग्रस्ति इम् ११७२ पूजाभिभवेच लापेः ८१४ पूजीनाधे १०५८ पूरवी प्रिया मनी चा सुभगा-पुर्वकाले ११६६ पूर्व्वादे: स्नात्श्विनी वर ११४

पूर्व्वः राज्य प्रथम चरम तथायार्चः वुर्व्वाधरावराः पुराधावाः सादधीः ५१२ पूर्वाचान्यसरेतरापराधरीत्तरीः पुर्व्वीत्तरसगाचानते: सबदः ३५८ पृब्वीऽन्यादुङ् ८१ पू भी ध्व निद सिद सिद समार्थ १०६८ पूर्णाडिडिजें। १८० पृथ सद् क्षम भाग इट परिइट खाई: 8% प्रभादे र्डि: खेरे ७२८ ष्याय: पी यंड ्क्याः ६४५ प्याची ऽगे: प्यस्ताङ्गेतु वा १०८० प्रकारी आतीय: ४८% प्रतारे विश्वगर्धेः ८१३ प्रतिज्ञा-निर्णय-प्रकाभी संप्रव्यवाश्च-८६९ प्रते: १०५€ प्रस्व शान् सामली**यः** ३८२ प्रत्युपीपात् **जा: सुम् हिसा चोदे ०५३** प्रखुरसावगवे ३८८ प्रपरापसंच्यवानुनिर्धृर्याधिस्त्प्रिः प्रश्चः यः ४०१ प्रश्नाख्याने णि: ११५६ प्रस्थाम वा, जिया १०६४ प्रसंखीकीका हा: ६२ प्रागच्कार्थादचिं हि: ५३० प्राग्वत् नी भौऽतीऽक्रस्य ३५५५ प्राग्वभी यो इसरदुर्गे यादि इन-पादगींक: सः वीऽच्ये ६८३ प्रियवशाद भयर्त्तिनेचात् सर्वः-प्रीधू जी नंन्या ७८८ पुदुस्य ख्लोऽकः: १००५ प्रीपादा**रक्षे** प्रश प्रौक्यासमावने ८४८ प्रादे: स्त्री ने ब्रगादेश्तुवा ०६८

त्वाइ:।

बहु-ग स-पूग-सङ्घाता निघट-बहुलंब्रह्मचि ११८४ बह्नत्वार्थात कामग्रम वा ४८२ बाह्यादातोऽत्रशाबादेगंगदि- ४१५ ब्रह्म बद्र भव सर्व्य सर्वेन्द्र वक्ष्या- २०१ ब्रद्धा इस्ति राज प्रस्था ब्रब्धेसः ३८४ ग्वडं इसीयी 8 १ रवे सभ्ये:

भगवद्घवद्भवतां भगोऽघी भी वा घी २२६ भनजागिलको वेसमी नंसीप: ६२६० भव्यो वाफल हेली: ८५१ भावेतु: ३४६ भावधेलाभितात् भुवः १०२३ भावादिहेवा १००३ भावादिद्वं वीदुका ऽन्वतः १०६८ भावे मार्ख ८२५ भिष-जला-कृष्ट-लुग्छ-इञ: वाक: भित्रान्येकार्थद्यादिसङ्गाव्यादीनां-भिस् भिसीऽदस्य २०७ भी भींच या ०८५ भौषि चिनि पूजि अर्थि कुन्यि ११५€ भुज वच-निषयुकी 5व्राथब्दशकी भुकोऽग्रने ८१० भुव: बाही वा मं ५४% भुवी घे स्त्रिण-सुक्र औं १०२० भुषोऽक द्यांट भावेत्वा ५६० भुवी वन् टीक्यचि ५५६ भूबोभूमभूविष्ठाः सूबीऽसमादेः ५०१

भूषरं ६८२

भूस्तापिव देनीलक पे ५५१ मू-इ्न.केयप भावे**न तथ** ६**४**७ समादे यार्थे वा ब-स-सीप व व ॥ ॥ भौ सिक्षां इंस्सिसीरकेच 🕶 🌣 8 भ्यपोइक २४१ समज विस्त युर्व भर इरिद्रा- प्र-१० सस्त्रीऽरंथी भक्तं वा **०**५१ भाज सास भास भाष दीप जीव∗ **७७**€ भ्वस्कलाम: ५८३ भ्वादिर्धः ११ भ्वाचादिणः स्रो ऽद्येषक्षश्चमं ः ५६८

मधीनसङ्बाक्तिस्योः १८१ मतुरम्यर्थं ४४१ मनयत्त्र्यतोऽहरभोरहो ऽना- ४८८ मनीवा: ३४ मनो खाप २५१ मलेगीपात् ८०१ मन्दाल्याश्चतु सेधायाः ३४२, मनात स्वार्थे १०१६ 🖊 मन्वर्जान्यर्ज्ञीचस्येनीऽनी- •४२४: मयट तद्रपे ४८६ महत्तेकार्थं नातीयघासकर- ३२६ माठीवा ८५८ मातुलोपाध्यायचिषयाचार्थ- २०२ मात्स्वर्षायुक २३५ मानादी सायां ढे २८१[.] मानीऽदनतः ५५५ मान्तीरम् विदन् वा ७११ मार्जात् क्रामी नेम् त्रणः ८८२ म।स्रोन घौर्यो ८५८ भिष्याकारि-स्थामे ८१५ निद्भास-अन्जो पुर: १४१५

नि भी नादारभ लभ शकापत-मियो र्यवणी ङा ऽखललि ०४५ त मखार्थीरसः ३५८ सुञ्जकूलास्यपुषात् घेट: १०१७ सुचीऽढे देसींच वा सनि प्रथ्र मुण्लभी ऽनेकदःसीर्गेः खल- ११३० मुडांचङ वासी १७५ . मुहर्स्यार्थे हितस्त्रध्यं ८५० मूच स्व न्चाटमर्च्य इसादी- ८२० मङ्घीको मं ७५० स्जोऽकाङिति त्रिवी लच्यगौ मधीदां नित्यं ६५€ मैपाध्यसङ्गराधि ८०२ मोङम-भाषात् वतु: ४४२ स्रोर्नुर्भसदान्ते स्त्रीपो वानिम: ११००

यङन्त-चल पत सइ वहः तिः १११८ यङखको 🛚 द्री ४८० 🕐 यङलक्कानीपे ५रेन गुत्री ८४१ यङो लुग्वापेके लु**ल प वि**- ८३€ यञ्च-यत्राभ्यां तेपचित्रे च ८४६ यती ऽपायभी सुगुप्तापरा नय- । २८८ यन् जिपत्कदिखातः ८२४ यन्वीश्रमादिमिदी खीपर्षण ७४० यम: स्थने वा त्दा हे प्रा यस मन तन गमीऽन्तर्लोपः स्त्री १०४२ यमरमनमातः पे सीरिम् सन्- ५६५ ययी लों पी ऽयक्ती पी २५८ यनायवायाबीऽचीच: यलीऽचेक् जि: ५३५ यव:किति ६६४ य वाचि ०१

स्वादः ।

यस्रौदिसासूयाको धेर्घाकचि-याचलार्थदुइ चिप्रच्छ- २८५ यायातीऽत: ५४५ यायाय भास कास स्वेश पिश्र- ११२० यावत्पुराभ्यां अच्ये ८३५ यासोऽस्य ५१०२ थि: सन् विष्यां दि: ५०२ यिनी ऽचाणी 🐠 १ युजिर छद्ग्यची ऽयज्ञपाने ८१२ युजिरीऽसे नुग्घी २१० युद्धां छे-डों: १२५ युद्ध्यां-सीयू १२१ युषादबादी-स्वाधी युवाबी युगवयी- २१५ युषादकादलनादांयुषाकासाका- ४३६ युवाल्पीकन्या ४०४ यतोऽम्यसी मांवदीधोः १३४ यम रूथेव दी ८६ यौराप: १४८ यात्रभी सुष् ८०० गुर्मे दाने ऽखद्भ व्यङ्गव्यङ्- ४१७ योर्जीपी इसये ६४२ रङी वि: सुपि १८७ र-तनी यंगिषौ ' ८२१ रन्जी ऽपषकानास्च णिनी न-लीपी- ६६० रपिखस्युसी ऽदेतिः ६५० राच्छ्रीलीप: १०४० रार्त्रमन्याक्तति ८८५ रिचीऽवे ७२ रीनृत्वत: ८१०

रीनो रिन्रनी वा ८४०

बदाय सिमे दिंखोरी सु ५६१

बङ्गीऽथी इसस्येम् ६८५

मूचाङ्गः ।

कड: पक् वा ७८८
क प नाम भीव स्थान वर्ष वधी- ४१६
दे रा स्मि १४७
रोऽव: ७३
रोम या इर्ल्या प्रमु
धाँ ऽन्मान क्यां प्रमु
धाँ उन्यर प्रमु
धाँ उन्यर प्रमु
धाँ उन्यर प्रमु
धाँ उन्यर प्रमु
विनादिन्द्याया स्थान क्यां ने प्रमु
व्यान च्त्योक धो घों उक्तर कुरी- २२ द्रं

लाल्यो र्जननौ स्नेहद्रवे वा ७८१ लिधोयं येष्टं हि:, काष्ट्रायनायां सु- ८५६ लिघोर्वा २५ लिफ्सायां वा ८०३ विसामिही ८३८ लियुपदस्रदि त्यादि विग्र: १६४ सीकोऽर्घातसः पति ४३८ ल्किन तत्र ∙ ८३ लुक् परात् ३७६ लगङ्गाऽप: ६७० ल्ङ्बदृविनां ४६८. लुपिन सन्धाद्यविधी १५ ल: काम्यक् खेच्छायां ८४२ ले: स्याख्याने जि: प्रभू ले:—सि भी जस भम् भी प्रस-सेर्वद: स्वप्यौ रूप् खेर्बहु: प्राक ४७८ लेलकी: कीपीऽचाची १८८ લીયો અં: ૧૦૭૦

स्वादः ।

लीपीऽतीऽदेशी: ५४३ लोपीऽक्योमाडी: २६ लोपीऽक्योमाडी: २६ लोपीऽक्योमाडी: ०१५ लोपीऽन्ती खी: ०१५ लोमीऽन्ति हिंभी ३४० ल्यमावतास्त्राणकसदे चेवा ३०० ल्यंसम्बुतुाता खेंगी २८० ल्युध्सन स्परपूसुद वह ११३३

. लंघूखन स्चरपूस्ट वर्दः ११३३^० वत्तस्य ख्यालिप सिच हो ङी-वचीऽरे ७२५ वच्चस्य श्विपतां थीच स्थान्य पता उन्हे ५५२ वनतनाद्यनिमां अम्लीपी- ६७६ बर्देङी धः ७८० वद्रीऽकिजभसे हमसूजीस्तु नित्यं वसीऽरस्थमनौदित: ५५४ वसीर्घर्सकाजिनात इस १०८७ वर्सार्वः सेमणुर्मतुष्योः २९८ वाचक्रमार्थतच:•सुर्धेरे ६०१० वाइगे: ८१५ वास्मि वाचाट वाचाला: ५४५ वाचापीऽनुऋष्ंस्त्रस्य २५६ वाक्तः बाज्यालेः २६८ वाच्यघी १४० वाढ़ालिक स्थुल टूर युव विग्र- ४०० वाढेऽप्यताभ्यां खी ८४८ वातीऽवाष्टी: २४८ वात् त्रोची ऽती ऽप्या: ३०४ वालरयपेऽरयम् ५२

वाधराचात्ता: ५२१

वानेकस्मार्थे ८६२

वानाप: ३७०

वाप: ११७६

स्वादः ।

। | स्वाद्धः ।

वाम खचण भ्रफ सह सहित-वामि धप वामेच्यो मिन्स्यी ११८० वाम्याङ २३८ वारादर्थें: ३०१ वा द्वाम द्वष लार संघ्वास्त्रनः ,बारे प्रधर वाव गीदांनी ३% वा श्रम यम फण गिल्खदां वाष्ट्रनी समाभी डी: २०० वाषोषिकविध्मादुद्वानी ८५२ बाड़ी बी मी चितामुवा १०८ प विंशस्यादेची ४५४ विकारसङ्कभावेदं हितस्वार्थादौ ४३३ विच्छामतिपणी वाय: विजेर्गनें मि ७५८ विडवनीर्ङा १०३१ विभी चुझुचणी ४८८ विधि-निमैत्रणामन्त्रणाध्येषंण- ८५४ विन्दिच्छू ११२४४ विपरा-मि परिव्यव-क्षी नि-विशा- ८६२ विमति व्यक्तसदीक्यो: **८०**२ विश्वराजीऽदा २१२ विस्तभा निर्व-वि-सु-निर्दः स्वप:- ६२५ वीव दे। घट की १०४६ ह्रभ्युत्थाइतायने क्रमः परीपक्रमः प्रध् इक्क्षों नेम् पेस्यसनी वांत्वने ६४८ **इ**षाकष्यग्रिमनुपूतकतुतुधितः २०३ वृती वेसीघी ऽठीडीपरी: ६२० बुद्रिज्था: किता नेम् १०५३ व: पडि: ८६३

वे: बाऽमसन्ते कते (५

वेक स्वयार्थेऽसे ४४ वेङ्गणकथ: खंजीकि ७७(वेज़ीवयवा €€₹ वेषाज्दहः ६२६ वेत्ते: कीपंठीपंवा ६८६ र्वत्ते: भतु: कॉनुर्वा ११०३ विध्याम्याक्ती १०३० वेमूदित स्वर चाय स्काय प्याय- ५०३ वंग्सहल्भ स्मृगुचवमलग-६०६ वैकोनस्येकाद्रैकाका अक्षायां १५२ वैभोऽनी प्रश्ट वेदेखी १३ वाजन्धृतौ ०१२ वार्षाः पिश्वस्ते गः ७१६ वीष्ठाली: से २८ व्य पूर्वं १६६ व्यवीतिरञ्जितिस्य ७५६ व्यजीऽरं वा त्वनवस्य-घञक्तापि पूर्व् चटेलें।पीऽनाराच्छत्रतीऽचीऽयी ४३० व्यतीहारे गतिहिंसाभव्दायं-इसान्य ८१६ व्यतीहारं चि: पूर्वी ची उनचा वा ३४८ व्यतीहार गन्स्त्रो ११४१ व्यथग्रह नगा वय व्यथ वश्र व्यच- ६५१ व्यस्य ग्यनुकार खाच्चिकर्ण ८ लं- ५४ प व्याच्छस्य गत्यये वदेस: ५०१ व्यादनञ:ऋतीयपृक्ते ११०६ व्याप्तीभावेषिनः ११४० व्याझुक्र्तः २४६ व्यासादेर्ङक्षाी ४१६ ब्युडीऽवी इसादे: सेन: क्वाच किदा- पश्य व्यक्तप: बद्ध र्वेखपस्रमी आरः ८३१

सचाडः ।

व्रज्ञवद्रस्जानिमी ऽञिश्विजागु वि:- ५०४ व्रश्वे: कडः च विदचीऽदेनीय घी र्ण-कंक्यांय-यु-ततु-ति-वभा: **४**४५ श्रंगव्दै: २ श्रांस्याद: ११५३ ब्रक्तत स्तम्बात द्वति-नायात फर्ले- १०१२ प्राचे हैं १००४ **ज्ञ**क्तार्थव प्रदाहित-सुख्या स्वाहा- २८५ प्रक्रित्यसाच्छीलये शतु: ग्रान: ११०४ भ क्।ज भाग यन वन स्ग स्न-१५५ भात सद नि घे दे। व: १११३ भ्रतादि-साम संबत्सरात् ४५३ इदोऽगतीतङ् ७८० प्रदेग इपि मं ६५४ अरपदाभीर्गत्यनुकारे भप-नाय-इत्रः ८६८ श्रव्दढाढाई: म्प्य भ्रब्दभुखकरादे: क्रतिवेदपापे ङ्याः ५५१ भ्रद्रिपाडयश्रेतीसनीविड्पामश्चिः श्रहीनहीरक्षभीरग तुरग तुरक्षम- १०२५ शसिश्रम ६० भ्रमगमि र्घ: १०४ भ्रस्-स्यम्-ङ मिन्स्यस्-ङ स्-सामां न- २१८८ श्रद्धायपात् वासि क्सभी ६१ प्राच्छासाह्याचीवेपांकौयन् **७**८२ क्याने इती मन् ११०१ भासक्ति इस्डे ऽयो को लागासय ००५ शासु जिद्दातपुषा दे उर्जे टी पे ज्- ५६५ व्यः क्रीवे **प्र** शीकी क्य येऽची प्रश्र मीङोरेष: ०१०

भी ब्रज यज विद खास मन चर- ११५०

मवादः ।

गुम्छे।चभ्छोऽपकर्षे ग्रहरी ४८१ ग्रनीरुत्यप्राग्यपमानातः ३५८ **गृ**पुद्रांस्तीवाक्तिट्**ञां ७**०२ भावन्द आहः ११२६ गुस्थाभुक संगम इन लाप इष-१११० भी ब्रते नित्यं १०८५ ग्नादगीरा लीची ऽगौ ४ में लाद: ७०% श्रुध्वीरख्वीयुवशीर्व्यात्रस्थात्रै- ५८८ यदार्थे वी ऽथदि ८५० यन्य ग्रस्थ दनभां घषि न-स्तीपी वा ७५० यास्साद्रप्रसुध्यकांवा ५१० यो: अ. धें रे त्रिय ६९१ . • श्वयुवसघीनाम् वैं।ऽते पौ १८४ यस व्यर्धन तन दाव इस: १००१ श्वेतवाहवयाजुक्षशास्परीडाशां- १८४ यतायायत्तरगालीडिता**हरतस्या**-श्वेतिर्वायङ - खो अप्रङ्भनीः

घ

पदी: क: से ६०२

पसा पसर्वात पसर्वार्थ: ४८

पन्न दन्त्र स्वन्धीऽपि नर्लीप: ६२८

पिञी द्वे न ती गासे १०५८

सीड: फे १५५

हिन्नुघ्वास्नटी: ४७

हिन्नुघ्वास्नटी: संक्ष्यिनटी: ४५०

हिन्नुघ्वास्नटी: खेडलेस ना ५८८
हिन्नुम्वास्निटी: ४८१

हिन्नुम्वास्निटी: संक्ष्येलने वा १९२६

सुन्धीऽदासे नी ऽवक्वपून्तरे- १००

स चाइतः

.

संच्यी: ८११ संजा: कं ३१६ संजीऽस्रती '२६२ संटानी भेऽधर्यों निर्श २८३ संपि∢िव्यीवा ११८२ श्वंप्रतेरस्मती पटप सक्तन, दिख्वा प्रश् सकीऽस्रोपीऽचाग्वे ६५८ सक्ष्यक्षाः षः खाङ्गे ३१४ सल्ब है। राज्ञ: ष: षगीच १५३ सब्बृष्टाडिना-माएउससी, १२६ सख्दा सेडांधे: १२० सक्राया अवयवे तथट ४६० सक्क्षाया उट्पूरणे ४५० सङ्गाया डोऽवही: १३८ सङ्गायाधाच्यकारे ४५⊂ सङ्गाया नृदीगोदावरीभ्यात्र ४०१ सङ्घावत् उत्यक्तहगणा निपि १०१ सञ्ज्ञा-वि-साहाहाक्री ऽइन् की ११८ सङ्गाव्याद्राचाङ्गुलिभ्यामः १६७ सङ्घाशन्यती डिन् ५०० . सङ्ग्रासंभद्रान्यातुर्ङ्ग् भो ४२५ सङ्गास्पमानात् पात् पादोऽहस्यादेः ३४० सङ्ग्रेकार्थात् वीप्सायां ४८३ । सतिसातीवा १००८ स त्सरे ६६८ सन्खद्मीष्ठ्यां नाखेः ६३४ सदाध्वादि व्याप्ती सन्दें: सिंडे तु धं २८३ सदानुत्रीऽसादिष्राः २२१ सदानोऽज्ञीपोऽन्वस्थात् पौ वा- ११७ सध्वारस्येम् जनीडीम्: ७०८

स्वादः।

सन: पभी घी वी लायात् ६३६ सन् यत्य ग्रस् बूकृगृदुइ नन- ८३१ सभ्जादि र्घः ६३१ सन्निच्छायां ८०३ सन्भिचाशंमृ छ: ११२३ सन्यङनी दि: ६३२ सपव-निष्वात प्रियसुखात् सद्र- ५०५ स्भमीचाङ २१० सम: प्रतिज्ञायां ८०५ समय निष्त्रल दुःख श्ल सत्याद्- ५०४ समर्थनाभिषी गीँ ८५५ समवान्धात् तमसः ३८५ समस्या २.०७ समानेदिकानद: सेक्यमू १०४८ समापानुषौ ३८७ समार्थेनार्थससाडितसुखै निर्डार- ३०२ समो ऽज्जने ८६६ समी गमक्षप्रकाल्युवेश्यतिंद्यः ८०५ सम्तुम् मन -कार्म, भवश्यं ख्ये,- १८८ सम्पर:प्रत्यनुभ्योऽत्त्यः १८१ सन्परे: सुमुपान् भूषा-सङ्घ प्रति- ०६६ सम्बुद्धी सिर्धिः ५० सरजसीपग्रने १८० सद्भी वाध्यः ८६६ चरीऽनीऽघोऽख्रानः संज्ञानात्योः **१६१** सर्व्व विश्व उभ उभय भवत् लत् - ८६ मर्व्वेकदेशसङ्गातपुग्यवर्षाहीर्घाः ३५२ सर्व्वेतिर्देशसङ्गातसङ्गाव्यात्रैका- ५५४ सर्व्वेकान् कालेदा ५१४ सर्वेसुससञ्चक्षांरङ्फेऽच: २२७ सइ: सीऽकाले १०० सङ्कः सीवा ३३३

म्बाङ्गः । सह वें वं: २२ सफ-वहीदी डि ६५३ सहवारणसभीनार्थार्थविनापृष्यकः-संब-सन्तरः सिध-सिम-तिरि साति हिति युति ज्ति ११४८ साधन है तुविश्रीषण भेदकं धं तार्ता-साहि साति चेति वैद्येकि धारि-333 सिव्यादिः क्तिः 8 8 सीमालकांगीत् प्रीचान्ते ३१४ सुच चतुर्दिने: ,४८५ सुभदीदाजम्बार्यानां धी खः समधी: सेरिम पे ६२३ स्वनावचेपयसेवासाइसप्रतियतः ८८६ स्तेन सार्या ७०८ मृतसुरभिपूर्त मैन्यादि वातूपमानात् ४०३ मूर्यागस्वस्य तिष्यपुष्यस्य ग्रामत्यः २६० म्लाबोदिइ-ची-यलस्यातो न ती- १०५२ स्क्षष्टः । १०१,१ स्रजः त्राडघात् तनीण्च ८८३ स्जदभच्पाठालतो निलानिम्तु-स्ट-नागुर्ध: ११५२ सेक सीक स्टप स्टस्ज- ५०० सेतुक-ख-प-फेवा ६६ सेनक्षात् सरी: ११५४° सेमऽच्च क्रव क्रिय गुच म्ड म्ट- ११६८ से डॉंग्रनसप्रदंशीऽने इसीऽधे: सेर्लुकृत-यासी सन्स्यो ऽकुर्वा सीवा ७०४ स्तु स्तन्भु स्तन्भु सन्भुभ्यः- ०६८ सानि गदि सदि इदि दूचे रिवु: ११३० सुयुभि:यूगात् ४६ स्त्रियां चिचतुरी सिस्टचतस्य स्टवत्- १५०

िक्रायामत चाप्

सवाजः । स्त्री सुर्धः १५८ स्त्रीयुचिङिति ८८ स्त्रीवासभासी: स्यादान पाचाघाधासार्सि- ५१० स्यादो र्ङिष्टीमेन ग्रु: ७३६ स्थोञो जाङी: ०८५ सयोध:मखादिदामवयीऽर्थ- २६२ म् ज्ञामी उसे ऽरवस इस् ५८६ स्पर्जायामाङ: ८८५ स्हियहिष्ट जेराय: ११२८ स्काय:स्कीवा १०७८ क्षिङ पूङ रन्ज्ञ श्रुकर गिर द्विय- ८०८ क्रिभ्यो र्घात् ध्वर्ये मञ्च ०८४ सम् हम(S)मनुज्ञानाप्रतियोः सनः १९८ स्पृत्वरप्रथमदन्स्प्रशीऽङ खे- ७७८ म्पर्येस्ययदि लतौते ८६१ खदैधायोद हिमयय प्रयय•स्कार- ११३८ स्यभीर्जनः 242 स्यमौजसंघि: ८१ खखडं न: €१७ स्यात् व्यपित् विद्वा ५६६ स्यादे: सो सीप: कीऽवढ वरच: स्वादे ङें ऽस्थो वा काणौ स्यादी नवद्रोऽये ७२० साद्यत्वी गार्थेङ् यक् ठीकाणी - ६१५ सादाहरु-रस्तु व्वेम सन्मदीसः ७४० स्थानस्थाराष्ट्रपृपे \$39 स्यानादादादायत्री: खेरान चां- ५५० स्रोडेती ४२ सङ्मेधास्मायात् विन्वा ४४३ सम्भ्यस्वस्वनडुष्ठांदङ् भी १८३

सिवसीस्त्रीऽद्यादेः मुगः ५१३

सवाद:। सिवाय सव ज्वर तारी वृष्ट्रका-सि-विष्या देवसा टेरहाश्री की १०४१ स्ते:स्यमस्तय १५२ सेर्डी १०४८ र्स्चनंस उल्डिसि उल्लीमा सि सौ अलात्- ११२ स्ती-वि:फी १०२ स्व:स्वेद: ५४० . स्वटीभ्यांध्यमत्रसारेर्जीपः १०६ स्वप ऋष ध्वी ङ्ज् ११२५ स्तप रचीयत प्रच्छ विच्छ याच- ११४४ स्वपीधि: ७८१ स्वयं शंवि संप्रादः भूवी डुः ११३२ स्त्रशदि-नि-चित्त्यं व्यं ६४ स्वची घर प्रश्ट स्त्रस्य तन् पिति धप्र खाचबीरौरीहिस्या ३१ स्वाङाङ्के २६^८ खासंडी ऽचि हि: ६२ खामीयराधिपतिदायादसीचि- ं ३०८

इन: जित पि: प्टर इनामजनखनघसामुङ्खीपी- २३० इनामजनखनघसामुङ्खीपी- २३० इनास्त्र-दिश्च-विष्टी वा १०८८ इनास्त्र-टिश्च-विश्व-विर्मण् वा ८२२ इनास्त्र-टिश्च-विश्व-विर्मण् वा ८२२ इनास्त्र-टिश्च-विश्व-व

सवादः । इसामयीर्वारे ८४५ हसादे: मेभी ऽद्वीदिनचणअसवधी- ५०६ हमाद्रा दिसे जापामी ८०२ समाहा २५० इसादानी श्री ७७० द्ममाञ्चीपोऽभित्यस्यी: ७०५ इसङो लोपी ऽगौ ५६० इस्यासी: ८०१ इसोऽननरः स्यः ८५ इसीऽन्तः फः प्य इस्तिथि ७२४ इस्ते पाणी प्राध्वं जीविकीपनिषदी- ७६७ इस्रोतत्तरीऽमञकः सेलीपः ०६ डाका: खेर्न र्घ: ८३० चाकोऽनालोप:स्यां **७३**१ ष्टाकी हि: ११०५ षायन: १००४ हिंस दीप कम्पाजस सिङ्कमः ११२२ इक्समी देधिः ६०१ क्षे: खेरनिक चि: ७४८ र्छऽन: २५१ हेपुरणीप्रमाणीभ्याम: ३३१ हें लें। वीऽस्वीप्रीय ५४० डी भस २१ ॰ इरी दी भी। हिन:सै १८२ हाइसेरित ८१० **ही** उत्तावा ७३२ क्रीघाचान्द्रगृद्धिन्तो वा १०६२ क्रीवीरीक्र्युगक्ताव्यातांप**य**् ७८४ द्वाटे:स्तः ज्ञीच १०८२ द्वादी रे दि: ७२६ क्वी देजिं: ६६०

ही वचाची ७२०

संज्ञासूची।

स्वादः । खस चक् खि पूरुष प्रट, हर्र, हर्र हर्र, हर्प, भव ६४६, ६४**८**−६५४ षम् ग ३१⊏ ষ্মৰ गि ₹ ٠ ۶ पादिढ १०६६, १०७३, १०८१ प्रट, हरूर, हप्रर-हप्रप्र इ क घ १८८, ३१६ र ङ घि ,८१,८२ प्रट, है३३, ८५८ द्रच द्रत् ४ 3,5 % इन्वत् ६८५ ङित् ५३२, ७२१ दुल ₹ ३१⊏ **उ**ङ् 93 चक चप् ٠, मर क ची ०६, २६४ २६८, ३१५ एङ एच कत् १ २८८, ३१६ एइ ऐच् ३ अन् গি प्रम, प्रद, ६२१, ६४०, ६५१, ₹१€ कित प्रव, प्रद, ६प्ट, ८१८, ८०८, ६६१, ६६२, ६६**६, ६६७, ६६**८, EE0, ११६0-११08 oy€, oce, coc, cae, cae, की प्ररट, टर्रस्ट हर च्ह्ह, १०**५५-१०५७**, १०६४, ११४४, ११७४, ११८१, ११८२. क्रत १६५ भाष् क्ति १२, (सि-सुप्) ७८, (तिप्-स्थामहि) भाग भूरद, हर्ष भभ क्रीव १२२ भास १३ ञप् खथ् ञम् खप

तवाडः । व्यस इ टि ६२ टी प्रट. ६६३, ६५८, ६५६ ठी ५२६, ५६३३ ड ३०६, ३१६ खित ४६० धी प्रस्ट, दर्र ढ २८१-२८४, ३१६, ६₹र ढभ ३ ढवत , ६२७ दी पूर्ट, ट्रैर, ट्रैर, सङ् रें याप ३ चम ३ चु ⊏, २३-२५, १२२, १४२, १४३, १७०, ५४२, ६१५, ६१६, ६२६, इटट. इट्ट, ७०८, ०१०, ०१४, ७१६५७१⊏, ७३३,,७३४, ^{७४}°, ७५२. ७५%, ७५८, ७६४, ७८४, ۵۰8, ۲۹۹, ۲۹٤, ۲۹٤, ۲8۴, 806E. 8068 क ५२० ती प्रह. ६३३, ६४२ ६४४, ८४७, **६६१, ६६**२ त्य १८ . ची ७६. २८८.२६३, ३१५ शी प्रस्. टर्डर ट १४, ४३१ टा प्रश टान्तवत ^दर हो ८६-८१.

६ १३

हि ६२. ६१. १७४, ५०१, ५१६, ५१७. प्रमूद, ६३२, ७१६, ७२०, ७२६. . ४०२, ८३६, ४५६, १११६ बिंद २८५ दी ७६. २८१-२८७, ३१५ दीक्कान्तल १०१४ भ रूद्र रूद्र ३१६ ধি ८. म ११, १५८, १५८, ६३१, ७८० नि १६,३४,४८, ५६, २०४, २०५. , 328, 350, 350, 366, 365. ४४८ ४५० ४५६, ४०६. ५०८, प्रथ, २०५, २८०, २८४, २८१. ८८४, १००४, १००८, १०२५. १०२८, १०३४, १०४४, १०६५. १०७५, १०७८, १०६६, ११९४, ११३६, ११७८, ११४८, ११५५ नी २० न १६ प प्रश, ६३६, ६४८, ६५०, ८३६, द्भू०, द्६०, द६१, ८२६ पि ' १०० पी ७६, २६६ ४०१, ३१३, ३१५ पंवत् १७१, १२०, १२७-१२८,१५०,४६१ प्री ७६. ३० ८ ३१५ भी ७६, २८०, ३१४, ३१५ स् ५ क ८४ बहुल ११८४ रव १३ म २८४, ३१६

भि ५४

सपादः । म ४३१. ४४४, ६३६, ६४४, ०५०, 988, E8E, E65-E96, EOE, ± = 1, € 1€, € 9 = , € 9 €, € 9 • माद्य १२५ म २० य अश्य यप 3 यम य ल ₹ 4 9 o क ५३६, ५४० र्थ ५, २२, ७७, १०४, १४४, १६४, १८४, १८६, १८८, १८६, २२४, 775, \$86, 889, 884, 480. ¥€₹, ¥€¥, €₹७, €₹٤, €¤₹, € = 8, 0 ₹ 0, 0 8 0, 00 €, 0 € =. E01, E22, E20, 8026--- 102E, १०११, १७६०, १०८०, ११७३ ť €. ७ सि १४ लुक ८३, १६१, १६८, २४६-२४८, ३१८, ३०६, ४२८, ४६८, ५१८, प्रथर, ६१४, ६७०, ७५४. ७६३. लुप १५, ३०, ३८, ७०, ११८, १८३, २४२ सीप २६-२८, ७६, ७०, १०३, ११७, १२०, १२४, १२६, १४८, १८८, २११, २२४, २१०, २५८-२६०. **११७, ३८८, ४२०, ४२४, ४१०,** ४६५. ४६८, ५४२, ५४०, ५५६, प्रदेश, प्रदेश, प्रदूष, प्रश्ट, हर्रा,

६२२, ६२८, ६४१, ६४२, ६५८, । इस

,

€€0, €0₹, €0€, €£₹. 00₹. • ७३१, ७४०, ७५०, ७६५, ७७५, ٢११, ८३८, ८४४, ८४५, ८४**८**, ८४६, ८४६, ८२६, १०४०, 2087. 2000, 2200 स्का وحو 3 9 5 व स 3 वि 8 8 व्य 8 3 ति E, २३-२४, २६ ३३, १२८, ४१६. 108, 406-40E, 6E0, 6E8. ७१८. ०४४, ८४१. १०४१ श्र स ष ३१८ षी ७६, ३०२ ३०८, ३१५ ●स १९०, ५४८, ५०१, ७६७ सङ्गावतः १९१ सन्धि १८-४५ मन्त्र (३८ स्त्रीलिङ्ग ११४७-११६० स्य ८५ . सि ८६-२० ख प, ४४, ४४, १५२, १५३, १६७, १०२, ३३०, ४३०, ४६३, ५५६, €₹[□], 988, 9€€, 99₹, 99€, 025-200, 500, 8088, 8088, १०८२ ३१५ ₹ 4 ş इल

' सुन्धबोधं व्याकरणम्।

नन् ४२६१ ७८८, ७८१ नाप् ८५० नुष १६३, १६८, १६२, २१०, २४३, २४५, ५६⊏, ६३५, ०४१ नुन् ८२०, ८२६ नुम् ११० म ६२ मन् हटप्र, १०१४, ११०१ (यक् प्रवर, प्रवर, ११, ११ यन् ७४३, ७८२, ६२४ रम् ७११ रिन् ८४०

श्रप ५४१, ६००

भुप

ं सवादः ।

सवादः । भाक् २०५ चल ६१३ भाग १८१ चन १५६, ५५०, ५८१, ६७२, ६८६ श्वस ५८३ . चहन् ८४६ चाय १८१ स्राम । प्रदर, ६०० प्रम् ६४२, ७६४, ८८२, ६२१, ६२२, 583 .393 द्मम ४१७, ४१८, ५५४, ५७३, ५८४, विष् ७८४ भूद्रक, भूद्रह, भूद्रद, भूद्रद, ६०६, प्रशाम् ७२८ ६१६, ६१७, ६२३. ६२४, ६३०, | सू प्रत् ६४८, ६४०, ६६४, ७०८, ०३८, '080, 662, 500, 502,500, हर्द, १०३३, १०५३, १०६६, मिण् टरर, ६३१ 9069, 1000-9008, 9006, 1明明 とのり、20年, 9130 , 56, 23.0 , 63.0 , 66.0 8099 र्भूम ५६१, ७२२ **ड**म ४१७, ४१८ कत् ५० क्ष भूट३, ६८७ **ष्ट** €२, ५६५, €१^८ खाम् ∢⊏७ चन् ५७ **छ** ६३ जन् ७६२

सवाङ:। ম্বা ৩३८, ৩১८ मु ६०१, ६२१,७३८, ७६८ ध्यम ५८४, ७३८, ८२८ ' सक् ६०५,६५०

मुत्राङ: ।

सुनाइ:।

सन् ५४, ५५, ५६८, ८४६ चि , प्रप्र, ६०३, ६४,७ सम ११३, ०५३, ०६६, ८६७ स्थम १५२

स्वादः । च १३३, २०६, ३२५, ५५०, ६८६ असन् ११६ प्रमुङ् २३१ अपनी २२६ चस्य ६५२ **प**ङ् ५६०,००८ चयाक धर् **चन** ५५५, ६८७ मह २१५ षतुम् ६८६, ७२३ भहन् ११६ षध्म ६८६, ७२३ भक्र ३५४, ४३२ षदसुर्च २२५ चा ६, १०८, १२६, १३०, १४६, पद्रि १०४३ १६६, १६७, २१२, २५६, ३२६, पाध प्रश्र . ३४७, ४०२, ६०८, ६६<u>४,</u> ७८३, चन् ३२५ षान २०५ **पाक**म् २१^८ षगङ १७२ ' चाव्ह २१७, २३६ चाम् १६६ चात् १०६, २५६ चासुमुर्द्रच् २२५ भान ५० षम् १०४८ भान ७७० चय् ३५ षय १०६, ११७८, ११७६ मानङ २०१, २०२ चाम १३० षायङ् १३२ भाग् ३५ चयम् २०३ चार् ८ षर प चार ४२२ पल ८ पाल ध चव् ३५ भाव चव १६, ५२२ चषा ३५१

सचाडः । तपाडः । भासन ११६ कट ८१४, १०३८ काइ ७२३ क्ट प्रवृष् ७३५ क्रफ प्र ११२. १२१, १०३, २५४-२५६, स्ट प्रश्र पुरुषु, . ७८४, ७८६, ८१३, ८१६, T 5, 906, 978, 880, 840, 408, C 8 20 હપૂષ્ઠ, દેલ્દ જુ પૂર્ एकाट ३५२ द्भत् १७३, २५४-२५६, ६४०, ७०५ . एकात्र ३५२ -इन १०६ एङ २१८ द्रनेय ४२१ एधि ६७७ द्रश्च १३५, ५८५, ५८८ एन २०८ इयम '२०३ एर ४२२ दर ६०० 3 9 द्रस ८११ ऐङ् २०३ र्षे १४८, १६१, २३६, ३८६, ४८५, ऐस् १०६ प्रथ, प्रह. ७०१, ८१२, ८१३, भी ५ ६५३ E83. ₹082. ₹₹0₹ र्देङ ७०६ भीत् ३३० भी ८. १२८. १३०, १४५, १७८, २३४ र्षुयम् ५४६ र्युष ५४६ भौड़ः २३८ र्दूर् ८१२ क ६४, ४५६, ६०२, ६०२ ६०४, च ६६, १२१, १३८, १७३, १६४, १०€३ काउट २११, १०६१ २२६, २३५, ५३५, ६८६, ८२६, 620 कत ४०८ ४१२ चङ् २४० कन् ४०४ **चत् १७३**, ८१६ काव ४१२ घदन् ११६ का ४०६-४१२ कि ७४६ खदीच २२५ की ८१३, १०४८ **छर्** ६२८ कीर्त ७०४ स्व १३५, ५८५, ५८८, ७१८ उस १२८, १३०, ५६३, ६७५, ६८६. क्रप ६४६ षी क १८०, ५१४, ६४६, ७६६, ७६७

स्वादः ।

स्यादः ।

चेप ४०० चोद ४०० कसाञ ७०६, ७०७ खङ २११ ख्याञ ००६,००० ग प्र. ६४, प्रम. ६०२-६७४ गङः २११ गच्छ ५६० गमि ⊏०६ गा ६८२, ७१३ गि ६०० गी ७१२ च ६१, १७६, १७७, ६०६ घरू १७८, २११, ८८६ घस्त ६७३, ६७४ বি ৭৪দ उर्ध प्र म्री ८२८ **७** प्र, प्र, प्र, ६० **एक ४१**६ **ख**ःख् २११ ख्य ८३५ • **छ**। २०१, ३२१, ६५५, ७३२, ७४३, ७४५. ८४६, १०३१, १०४८ **ङ** ७००, ७२६, ७३**६**, १०⊏३-१०⊏५ ख्डी ६१२,६३०, ⊏५४ खुर ४२५ र्छ ६११, ६१२ च ४६, ६४, ५५८ ७५५ फ़ुत्र

च ८१५

₹ 84. € 8. 44. € में ४६, ५८, ६४, ५५६ नाम १०६१ **जरस ११५. ३**०८ नहिं ६७७ ना ५६७ निघ ५६७ **च्य** ४७२ म ४६, ६१, १७७, ५५६ ञ ४६, ५१, ५२, ५८, ६०, ५५€ ट ४०, ६४, ५५६ ड ४७, ४८,६४,१४४,२१८,२३३,४५८ डन २३३ डनङ ८४६ डम्बम् २१८ डसङ् १८४ डा ६२०, २३२ डि १६० ड १४१ डी १२५, २००, ६०८ ४७, ६१, १७५, १७७, ५५७ ण ४०, ५१, ५२, ५६, ६०, १०७, १^८८, ३५५, ५४८, ५७०, **८६**८ षप ६८६, ७२३ त ६४, १६४, २१८, ५४८, ५८८, ६६८, ७०३, ७०४, ७२४, ६५७, ६८७, १०८६, ११२१ तक ७६०, ८०१

६०२ मुग्धबीधं व्याकरणम्।

स्वाङः. ।	स्वाद:।
तिरम् २२५	नम् ११६, २२०-२२२
तिर्दि १०४५ ,	ना १२३
तिष्ठ ५ <i>६७</i>	नि ११४८
तिस्र १५०	निश् ११६
तुङ् १६१, १६४	મૌ (<i>m</i>)
तुभ्य २१५	त (') ५०, ५३
त्न १३६ १४०	नंद ४७०
र्ते २२०-२२२ ,	नेम ७४२
च्य ४७०	नी २२०-२२२
घग: १५१	प ६४, ५५६
त्व २१.५	पङ् ७८६
लद २१५	पद्ं ११६, २२३
त्वा २२०-२२२ '	पप्त ६५२
थप ६८६. ७२३	पश्य ५१७
द ५८, ६४, २०८, ५५€	पाद् ३४७, ३४८
दङ् १८३, २४१	पिन ५६०
दम ११६, १०८८	भी ६४५. १०८०, १०८१
दव ४०॰	पीष्य ७८३
दिगि ६५६ ं '	पुर भू२२
दे ७३५ '	पृत् ११€
दोषन् १९६	प्र ४७•
द्रा च · ४००	च ५८, ६४, ५५६
द्या २५१	वंड ४००
ષ ૄ ૧, ૧૭૭, પ્ર૭૫, ૭₹૭	स ६१, १०० `
घड ् २३०, १०४६	भगी २२६
धम <i>५६७</i> .	मर्ज ७५१
ધિ ૬ ૭૧, ૭ ^૧ ૨	भिम् २०७
र्घ ॐ३५	भीष् ७६५
ध्वम ६५७	मू ६८२
म ५१,५२,५८,६०,१०५,१३४,	भी २२६
१८२, २०२, २१८, २६२, ५६८,	म ५१, ५२, ५६, ६०, १३४, १६०,
૭૫૨, ૧ૃ∘પ્ર ^ર , ૧ ૦૫ ૪, ૧૦૫ <u>૦</u> .–	
१० ६ र	१०६२, १८६४

स्वाङः ।	म्याङः ।
मद् २१५ .	वध ६७८
मन ५९०	वण् ६६३
मम २१५	वय २१५
ममक ४३६	वर् ४०० .
मह्य २१५	રવે ૪ ૭૦
मा २२० २२२	वस् २२०-२२२
माम् ११६ .	. वां २२०.२२२
मि ११ ^८ ० '	ৰি (˙) १०२, १८৩•
म् (×) ६८	वी ५८६
मं २२०-२२१	इन्द ४००
भीव ८१५	वीच ६५२
य १५, ५२, ७१, १३४, ५८८, ६८१	म ६६, ६०, ८१४
यकन् १।६	भक्तन् ११ <mark>६</mark>
यच्छ ५६७	गाधि <i>६७</i> ०
यप् ११७६	मि १६२
यव ४००	भीय ५६०
युव २१५	भीषन् ११६
युष्पाक ४३६	य ४०१
यूत्र २१५	य ६५२
यूपन् ११६	ष ४७, ६७, ०४, १११, ४३८, ५७०,
योम् १०६	५०२, ६२५, ६३३, ६३४, ६६₹,
₹ १४, ७२-७५, ४३४, ४७३, ६०४,	८१२, ८४६
€€∘ ,	षङ् १५४
र इं २२७, २६१	म ६५-६०; २२४, ३१३, ३००, ४१३,
रा १४७	ક≀કૃ. ૫૬૨, ૧૦૪૨
रि ६२०	मिधि १०४५
રી ષ્ઠક	समि १०४५
म २५, ४८, ५२ ८२४	माध ४९०
व ३५, ४३, ५२, १३६, ५८८, ६६४,	सीद ५८ <u>०</u>
६८६, ७२७, १०६३	म्य ४ <i>७</i> -
बङ् ७८७	स्थात ४६०
वच ७२५	म् ११६

सुग्धबीधं व्यावारणम्।

ۥ8

स्त ४७० स्ती १०७८ स्नात् ११२,११४ स्त्रिन् ११२,११४ स्त्रे ११२ ে। स्वाख:। स्व ८५० ४ ८१० डि. ८५०, १०८६, ११०५ ४६ ११६ इस ४७०

शब्द-सूची।

व्हादः ।

9818; F

षका ७५ ' षवि ८५ ऋग्नि €२ भगयी ६८ चावत् ११३ चाजर ⊏१ षतिषम् ७० चतियुचाद १०६ श्रतिलच्जी ६६ चितिसर्वे ५५ चलार्चाद १०६ त्रदसुयच् ११२ चदम् ११८, १२३, १२६ चनडुह पर चनादि प्पू ष्रने इस् ११८ मन्च् १०२ चालार ५४ चनरा ७४ भगवतर पर

चप १२२ श्रविधान १२८ चसुसुयच् ११२ षम्बाला ७५ म्मस्यिका ०४,०५ श्रम् ८६ ष्रर्थमन् ८३ म्रर्वन् ८५ चल्य ५५ पहार ७५ ऋवगाह १२८ प्रवयाज् १०३ चवी ७⊏ षष्टन् ६७ षस्ज १२४ चास्य ८५ चखद १०४-११• महन् १२४ चानन्द पूर चाशिस् १२३

पृष्ठाद्धः ।

वहादः ।

भासन ८३ ददम ८८, १२२, १२४ द्रमका १०० उक्षशास् ११० **उ**चकीस १२० उच्चैम् १२७ **उ**त्तमा १२० उत्यान १२० **खदक** ⊏३ सदच ११२ ' **ड**दन्च १११ खपानह ११० उभ ५३ खमा ७३ उभनम ११८ उधिए १२० जर्जा १०३, १२४ महत्विज् १०३ ऋभुचिन् ८६ एकतर ⊂३ एसङ् १०४, १२२, १२५ कटप्रू ७० काति ६४ कार्भ प्रद काली ७८ किम् १०१, १२२, १२४ क्रवा १२० क्रान्च १०२, १११ क्रीष्ट्र ६८ खन्ज १०२ खसप् ७०

गवाच १२५

गिर १००१ कि • कि गीपा ७६ गीरच ११६ गीविन्द पूर गौरी ७७ .ग्लौ **७**२ च १२७ चतुर् ६१, १२२ चमू ८० चिकीर्षं ११५ जचत्' ११३, १२५ जगन्तम् ११७ निग्मिवस ११७ जरा ७५ नायत् ११३, १२५ नामाह ७१ जात द€ ज्ञान ८१ तति ६४ तद १०४, १२२, १२५ तनू ८० तन्वी ७८ तिर्थ्यच् ११२, १२५ तिर्यंन्च, १११ तुदत् १२५ तुरासाह ८१ त्रतीय ५५ त्वतीया ७४ त्यद १०४, १२२, १२५ वि ६५,०० तिष् १२३

पृष्ठादः ।

4812: 1

ददत् ११३, १२५ दिधि ५५ . दध्य ११४ दन्त ५७. दिधच् ११६ दिव १२१ दिश १२३ दीधी ६० ′ दीव्यत् १२६ दुर्गा ७४ टुह् दद हन्मू ७० द्रश्र दंवेज् १०२ द्रोष ११६ द्यो ८० द्रह ८८ द्दि ६५, ७० दितीय प्र हितीया ०४ द्राष्ट्र प्रह धिकार्द १२० धन ८२ धनुस् १२६ षार ००, ८६ धिक १२० धंन ७६ ध्वस ११७ नदो ७८ লমূ ৩০ मञ्च ८८,११४ भासिका ०५

निर्जर ५५ নিমা ৩ খু नी, ६० नृ ७१ नेम ५४ मी ८० पचन १२५ पञ्चन् ८६ पति ६३ षदृ ५ू८ पियन हर् पथम १२६ पर ५,४ परा १२० परिस्ज १०२ परिवाज १०२ षाद ५० पित्र ७० पिधान १२८ पिपच १२६ पिपठिष ११५ પીલ, ⊂ા पुनर्भू ८० . पुसस ११८ पुर १२१ पुकदंशस् ११८ पुरीखाम , ११४ -पूर्व ५४ पूषन् ८३ पृतना ७५ पेचित्रम् ११० पील ७०

यक्तत् ९२५

पृष्ठाद्धः ।

पृष्ठाद्धः ।

८५१ प प्रथाच १११ प्रथम ५५ प्रद्यो ८६ प्रधी ६६, ७१, ⊏६ ८३ माद्रप प्रातर १२० प्रान्च् १११ प्रियचतु**र्** ८२ मुद्धि ७६ बुध १०१ बह्मन् ८२, १२३ भगवत् ११३ भवत् ११३ भात् १२५ मानु ६६ भूवाह ८८ मस्त्र १०३ भार ७५ . भू ८० मघवत् ८४ सघवन् १४ मति ७६ मिथन् ८६ मधु ८६ महत् ११२ मात ८० माया ७४ मास् ५८ स्कृत्द ५१ शुक्र दद

यज्वीन ८२ यति ६४ यद १२२, १२५ यवकी ६६,६० यभस्वत् ११३ न्यण्सिन् ८३ युज्ञ १०२ धवन् ६५ युक्षद १०४११० युष ५८ रवि '६२ बाज १०२ राजन् ८२ राम ४५.५१ रे ७२ लच्मी ७८ लिह ५० , ल्नी ६८ वगाह १२८ वधू ८० वन ८२, वा १२० व।च् १२२ वाणो छद वातप्रमी ६५ वायु ≰ ध वारि ८४ विद्यम् ११६ विभाज् १०२ विविच ११६ विश्व ११४

7812: I

प्रवादः

विश्व ५३ विश्वपा पूर विश्वराज् १०३ विश्ववाह् ८९ विश्वसृज् १०२ বিশ্বা ৩৪ 'विणु ६ ट इनहर् ६२ वेधस् ११६ व्यक्त ५१ मलत् १२५ भक्षा[°] ५६ श्रमु ६८ प्राक्तिंन् ८३ क्योर्घ ८३ ग्रुडघी ६० श्री. ७८ श्रीपति ् ६२, ६३ यीपा ८४ , श्रीमन् ११३ শুবি, ৩€ यन् ८५ श्वेतवाह ८० वय ११४ सक्षि ८५ सखि ६२ सञ्जब् १२३ सम ५४ सर्व ५३ सर्चा ७४ साध्वन्य ५५

सानु ८६

सायाच्च ५१ सुखी ६८ स्ती ६⊏ सृत्स ११६ सधी ६६, ७८, ८६ सुनौ ८६ सुपाद १११ सुविस् ११६ सुभू ७०, ८० मुभू ८० सुयुन् १०३ सुरै ८०, ८६ मुखू ७० सुवल्ग् १२४ सुवस् ११८ सुबय् ११२ सुम्यो ६६ सहिन्स् ११७ स्त्री ७८ स्तिह् ८८ सुह् ८८ स्पृद्ध ११४ सृति ०६ सम् १२२ सम् ११७ स्व ५४ खगडुह १२३ खप् १२६ स्वयम् ७० खर् १२७ खस् ८. इरि ४८

स्रील-स्वी-समासान्त-स्वी।

इन्वित् १२७ इदिस १२६ हा १२७ द्वाहा पृष्ट

विश्वादः ।

म्बाहः ।

र्दूप् २५३, २५७, २६१-२७१, २७६,

स्वादः।

च वरव, ववर, वध्र, वध्र, वह्रु, द्रु ४०३

पन् ३४४

षस् ३४२, ३४३

स्वादः ।

वोपदेवमते समासान्ताः तिखतानर्गता एव, (५२०) सूत्रं द्रष्टव्यम् ।

ं मुग्धबीधं व्याकरणम्।

तिङ्गत-सूची।

स्वाङ्गः.।

ंसूचाइए:।

ष ४१५, ४२६, ४३३ ४४६ **भ**यट ४६१ श्रम ५२२ श्रा ५२० चाल पुरुष् चावन ४१५, ४२६, ४३३ चारक ४४६ माल् '४४६ श्राहि सूर्० ' **४ ४१५, ४२६, ४३३ °** इक ४१५, ४२६, ४३३ इत ४८४ इन् ४४४, ४४१ इन ४४६ द्रभ ४४६ इस ४८.६ इसन ४०५ **४य** ४२८, ४३३ **द**र 88६ प्रस्त ४४६ इष्ठ ४६६ र्द्रक ४२८, ४३३ र्दून ४२८, ४३३ र्द्रेग अ१५, ४२६, ४३६ द्यमु ४६६ र्दूर ४४६ सर ४४६ कल ४४६, ४४६ एदाम् ५३० एन ५१६

एय ४१५, ४२८, ४३३ क्ष ४२६, ४३३ कट 938 कण् ४२८, ४२३ कल्प ४०० किन् ४४६ क्ष ४६२ गोयुग ४८० गांत्र ४६० चक्कलम ४८४ चगा ४८८ चतमां ४६५ चतरां ४६५ वन पूरह वरट् ४८०, ४८१ धशम् ४८२, ४८३ चसात् ४११, ५०• चित् प्ररद चुन्नु ४८८ नृत् 88. चि ४८५ जातीय ४८० नाइ ४८२ ड ५०९ डट् ४५० डतम ५१० डतर ন্ত নি

डाच् ५०१, ५०३ – ५०५

	स्वाद्धः ।	र्षाद्यः।
ভি ৰ ৭০৩	,	म ् ४४४, ५२५
ण ४४६		सट् ४५१
वायन्य ४२०	,	सतु ४४१
यीन ४२६, ४३३		मयट् ४ ^८ ६
चीय ४१५,४३३		भावट् ५०६
त ४३८, ४४५, ४४६, ४४६		मिन् ४४६
तम ४६२	_	्य ४१५.४२८,४३₹,४४५
	•	यु ४४५, ४४६ े
तसट् ४५२, ४५३, ४५४		र ४४६, ४८१
तयट् ४६०		रूप ४६४
तर ४६२		द्या ४⊏१
तम् ५११	•	हिं ५१५
ति ४४५		ल ४४६
तिषट् ४५६		व ४४५, ४४६
तु ४४५		वत् ४४२, ५०⊏
तैल ४८२		, a∾f 88€
व ५२५		वह ४७८
त्य प्र्		विन् ४४३
त्यग् ५२५		. स. १८६
च ४४६, ५१३		माक्ट ४६३
चाच् ५००,५१२		शाबिन ४८३
ल ४३८		पड्यव ४८०
षट् ४५५	• ,	ષ્ટન પુરુપુ
धाच् ५२३ .		ष्टर ४८१
दन्नर् ५०६		था। ४०५,४३३,११४०,११४१
दा प्रश्व, प्रश्		भाग्नि ४१५, ४३३
दानीं ५१६		थित ४२५,४३३
देशीय ४००		श्चिक ४१५,४३₹
रं ग्य ४ <i>७०</i>		'णाोक ४२६,४३३
इयसट् ५०६		र्यास्य ४१५,४३३
धाच् ४५६		काा‡ ४१५,४३३
ન		्स ४४६
प्राक्ष ४०६ .		सच् ४८५
भाग ४८५ भ		म्नात् ५१८, ५२२
,		

६१२ मृथवीधं व्याकरणम्। धातु-सूची।

पृष्ठाहर:

ष्ट्रसा€ः ।	
मच १२१	कम ३४२
भाग ३१६	काम ३४६
घद ३६१	कास ३४६
चन ३०१	कित ३३८
भन्च ३१५	कुट ४०२ •
भन्ज ३०५	कुन्य (कृथि) ३०६
च्यय ३४४	कुष ४१२
कार्द ५१६	क्र ४०७
भग ३१८, ३१२	क्रत ३८८
भ स १६६, १६१	कृत ४१६
चान्छ (पाक्टि) ३१६	क्रन्व (क्रवि) ३८७
षास ३०६	क्रप १४८
द्र(न)३६५, घषि-द्र(क) ३६६, घषि द्र(ङ)	त्तष १२४
• • •	क ४००, ४१०
द्रन्द (ददि) ३१३	क्रम ३२०
द्रन्ध ४०६	की ४०६
द्र ष ४०२	क्तम ३८३
र्दूड़ ३ <i>७</i> ५	चष ४०७
र्द्रम १०५	वि ३१८
द्रंड ३४६	বিশ ৪০৩
च्छ ११५	सु ३८१
छष ३२६	च्या ६६५
जर्ण ३७६	खद ३१०
चर १११, १८५	खन ३५२
महक् ४००	खा ३६०
मरज ३४०	गण ४१३
च्या ४००	गद ३११
एष १३८	गम ३३५
केट ३१८.	गुप ३१८, ३४०
काय ४१४	गुह २५२

	पृष्ठाद्धः । पृष्ठाद्धः ।
नै ३२⊏	ति ने '२४०
ग्रन्थ ४१२	त रे=१
ग्रह ४१०	त्द ३८८
	त्र ४०५
गुव २१६	हन्प ४००
ग्लुन् च ११६ ग्लै ३२०	हप ३६२
	' ਹਵ ੪◦ਖ਼
मा ३३० 	सॄ ३३६
चकास ३ <i>०४</i>	चष ३४१
चच ३०५	चम ३८६
चम ३२०	नुष्ट ४०३
चह ३२७	लर '३४६ ,
चाय २५३	त्विष ३५६
चि ३८६	त्सर ३२३
चित ३०१	दद ३३६
चुर ४१२	दन्भ ३६५
चृत ४०१	दन्भ १३८
च्छात ,३०४ ,	दय ३४४ ,
कृद ४०५	दिग्द्रा १०३
की ३६०	दल ३२२
जच ३०१	दह १२७
कान २८५, ३८४	दा (न) , १३१, दा ३८६
सभ ३४१	दान ३५५
काग्ट ३०२	दिव १८८
जि ३२३	दिह १.७६
ज् ३८०	दी ३६४
च्चा ४११	दीषी ४०८
क्या ४११	दीप ३६५
द ी ६४०	दु ३२४
तचा १२४	दुह्र ३०६
सन ४०६	हप ३६२
तप ३२०	हम ३३०
ताय ३४५	5" '\

	ब्रहाद्धः ।	
₹ ४११	•	पुष ३८१
दे ३४६	3	पू ४१०
दें (प) १२६		पूर- ३८५
दी ३८१		र् ष ३⊏४
द्य ३€४		प ४११
बुत ३४०		प्याय ३४४
द्रौ ≑६०	- 1	प्रक्ट ४०१
द्र १२५		प्सा ३६२
दिष ३७८		फण ३५१
था ३८० ∙	- 1	फ स १२२
খিৰ্ৰ (খিৰি) হ্ ছে		षद ५३११
તે કદ _{્યું}		मध इ४७
म् ४१०		ुध ३६५
धूप		ष् १ ⊏२ं
र्घ (ठ) १२६	1	रज ३५५
भा ३३०		ी ३⊏४
नद् (पदः ११२	•	१०६ — इ. इ.
नस (गाम) ३२२		१४४, १८८
नम (पाम) ३८:	મુ	ाम ३५२
भक्त इत्पू	भ	स ३५०
निर्मा≀(यानः) ३ २४	े स	सभ ६१८
निम ३८६	् स	ામ રૂપૂર
निन्द (गिर्दि) ३१५	म	न्थ ३०५
निनम (निमि) ३०६	क	मेच ४०१
न (ग) १६४ .	सा	₹ <i>७</i> , ३८८
है ४०३	मा	न ३४०
ष्त इदर	िस	₹₹ €
पना ३५१	f#	द ३१३
पत ३५०	िंस	हैं ३२६
पट ३१५	मी	8 0 8
पन ३५२ ८	स्च	३३,६
पर इड्०	मुह	इ.इ.च्

वहादः ।

पुष्ठाङ्ग. । [।]

4812: 1

सा ३३० स्व ३१५ स्रुप ३१६ શાત્ર રૂપ્રદ્ यम ३२१ यस १८३ था ३€६ ય રેદપ્ बधी ३२३ बध ३६१ बन्ज ३५६ बाज ३५१ राध ३८१ रिष हुरह क् ३४६, ६८१ कड ३०० अस्म ४०४ क्ष ३२५ लष ३५३ सिप १८८ लुभ १८३ वस ३०० वज ३१६ वद ३५६ वप ३५० वस ३५० वभ्र ३६३ वस ३५६, ३०६ वह ३५७

वा ३६६ विक ४०२ विज ३८६,४०४ विद ३६० विष ३८६ a ३६०, ४१₹ ०४६ मध वे ३५० नेवी ३०८ व्यच ४०२ व्यय ३४८ व्यघ • ३१.१ व्ये इपूष ब्रज ३१६ র্ম ৪০০ ब्री ४११ भद ३५१ म्र हे.३ • श्राला ३४५ भ्रम ३२६ शान ३५५ भास ई⁹⁸ भी ३०६ गुच ३२० ग्र ४१९ भी ३६० श्रम्य ४११ যি ২५५ श्चिष ३८१ श्रुष ३०१ ষি ই4•

मुग्धवीधं व्याकारणम्।

	पृष्ठाङ्ग:।	
ष्ये १२६	e	स्था(ह्रां) ३३०
क्षिव ३२३	À	स्तु(पा) ३६५
षक ३३८		स्पृम ४०१
मद (षद) ३५१		स्काय ३४४
सन (षन) ४०७		स्पुर ४०३
सन्ज (ष्न्ज) १३०		स्फुल ४०३
सङ ३५०		स्यन्द '३४८
निष (षिच) ३८६' °		सु ३३४ '
सिध (विध) ३०६, ५०८		स्वन (घन) १५२
भिव (विव) ३८८		स्वन्ज (ध्वन्ज) ३४० '
સ		स्वपु(श्वप) ३७१
म् २०६, १८२, (पू) ३८८		स्तृ १३२
स ११२	1	इन १६३
स्त ४०१		इय ३२२
स्टप ११५		हा (क) ३८४, (ङ) ३८८
मेव (षेव) ३४६		हि ३६०
सो (षो) ३६०		हिन्स (हिसि) ४०५
स्तन्द ३३५		ह इंदर्भ '
स्तु ४०६		ह ३५४
सु (ष्टु) १८१ [°]		क्री ३८४
मुभ (ष्ट्रुभ) े३४१	1	की इट ४ ह्यु १३१ ह्यु १५८
मृ १८६		ह्रे ३५६
		•

ब्रदन्त-सूची ।

	स्वादः ।
4	११५२, ११५४
च क	१००५, १००€
षधु	११४२
घ न्	\$33
षन	टटर, ११५८, ११६२, ११६६

स्वादः ।

पृष्ठाद्धः ।

मनट् ११३४, ११३५ पनि ११६० पनीय ८६७ पन ११२८ पन् ११३४, ११३५

स्वाइ:।

मुचाइ: ।

•
श्रम् १०३२
श्राय्य (१२८
मार ११२६
षालु १११२
દ १०१२
इक ११३६
इ.संवक ११३६
इत् ११३०
द्रच ११३३ .
द्रणा, ११०६
इस ् १०३२
उ ११२३
उम् १ ०३२
क्तक ११२७
क रृहि
कान १०८६
कि १२१८, ११४५, ११४५
क्तर १११६
र्कलिम रप्रय
क्त १००७, १०५०, १०६२ — १०६५
न्नावतः १०५०
तित ११४ ० •
क्षाच् ११६४,११६६⁴
क्रु ११०८
कार १११४
क्यप् ८८१, ८८३, ८८५, ८८६, ८८०,
११५०, ११५ १
क्रु ११२७
क्षुक ११२७
क्तनिप् १०३२
क म् १०८६, ११० ३
कि ११३१

- हिं प्रें १०३२, १०४७ च्चरप् ११२१ ख १०२१—१०२४ खनट १०२६ खल् ११६१ खश १०१५---१०२० िष्वि १०१३ खिया १०२० खक्तज १०२० घ १०३४ घञ् ११३४, ११३५ घ्र १११५, घिणिनि ६६० घ्यण ६००, ६०१ ङ ११५६, ११५७ ङ्ज् ११२५ चणम् ११८३ चतुम् ११६४ ञुका १११० ८ १०११ टक् १०१०, १०४० ड ६६७, ११३६ डर ११३६ ड ११३२ ष १०४०, १००१. गुक हुहु० यन् ११४१ चनट् १००३ णि ११५६ षिन् ६६३ णिन ११४० तव्य १६०

मुग्धबोधं व्याकरणम्।

स्वादः । तन् ६६० ष १०१२ विनक् ११४३ धका १००३ नङ् ११४४ वि ११४८ षण् १००८ मन् १०५२ षाक ११११ यप् १४७६ सक् १०४० ₹ ११२% क १११३ वनिप् १०३२ बर ११२०

स्त्रीत्य-सरासान्त-तित्ति-कदन्तेतर-प्रत्यय-(घात्ववयव)-सूची ।

स्वादः । स्